एक

आदर्श समत्व योगी

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

[गीता अध्याय २ श्लोक ४७-४८]
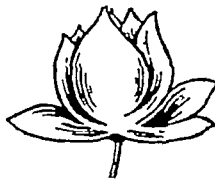
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

[गीता अध्याय ५ श्लोक १०]

सम्पादक

सत्यदेव विद्यालंकार

सह-सम्पादक

प्रेमचन्द भारद्वाज

प्रकाशक
मनोहरलाल मित्तल बी० ए०, एल० एल० बी०
मन्त्री—मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता अभिनन्दन-समिति
बीकानेर

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इन्डिया प्रिंटर्स, एस्प्लेनेड रोड
दिल्ली ६

प्राप्ति स्थान
गीता विज्ञान कार्यालय
४०—ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण
वैसाख सुदी ८, संवत् २०१५
२७ अप्रैल, १९५८

मूल्य दस रुपया

समर्पण

प्रिय आत्मीयजन,

हमारे साहित्य में गीता सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। वह केवल कोरा धार्मिक ही नहीं, किन्तु व्यावहारिक विज्ञान से भी ओत-प्रोत है। मनुष्यमात्र अपने गुण व स्वभाव के अनुसार अपने को सौंपे गए दायित्व को समष्टि अथवा समाज के प्रति यथावत निभाते हुए अपनी संसार-यात्रा को सुख-पूर्वक पूरा कर सकते हैं और विश्वात्मरूप मानव समाज (समष्टि) में अपने को वैसे ही खपा सकते हैं जैसे कि समस्त नदियों का जल अन्त में सागर में लीन हो कर अपनी पृथकता को खो देता है।

अर्जुन को श्रीकृष्ण ने गीता के इस व्यावहारिक विज्ञान का उपदेश दिया। उसके बाद भी अर्जुन ने यह प्रश्न किया कि :—

"स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥"

अर्जुन की इस जिज्ञासा को पूरा करने के लिए श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय २ के श्लोक ५५ से ६८ तक स्थित-प्रज्ञ की व्याख्या की है। परन्तु कोई भी उपदेश या आदेश केवल कहने या सुनने से हृदयंगम नहीं हो सकता जितना कि किसी प्रत्यक्ष उदाहरण से होना सम्भव है। इसी कारण किसी के जीवन का उदाहरण दे कर उसको समझाने का प्रयत्न करना अधिक अच्छा है। आमतौर पर यह उदाहरण उन लोगों का दिया जाता है जो हमारे बीच में उपस्थित नहीं होते, क्योंकि जीवनी प्रायः तब लिखी जाती है, जब स्थित-प्रज्ञ महापुरुष हममें से उठ जाते हैं। यदि कोई जिज्ञासु उनकी जीवनी के प्रत्यक्ष उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करना चाहता है, तो उसको निराश होना पड़ता है। इसलिए इस ग्रन्थ के द्वारा ऐसे समत्वयोगी महापुरुष की जीवनी प्रस्तुत की गई है जिसने स्थित-प्रज्ञ की स्थिति को अपने जीवन में पूरा उतारने का सफल प्रयत्न किया है। उनके जीवन के क्रिया-कलाप को प्रत्यक्ष रूप में देख कर कोई भी जिज्ञासु लाभान्वित हो सकता है। उनकी जीवनी के अतिरिक्त उन महानुभावों के कुछ संस्मरण भी इस ग्रंथ में दिए गए हैं, जिनको उन्हें बहुत समीप से देखने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। ये अनुभवपूर्ण संस्मरण जिज्ञासु के लिए विशेष उपयोगी हो सकेंगे।

सम्पादक
सत्यदेव विद्यालंकार

सह-सम्पादक
प्रेमचन्द भारद्वाज

प्रकाशक
मनोहरलाल मित्तल बी० ए०, एल० एल० बी०
मन्त्री—मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता अभिनन्दन-समिति
बीकानेर

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स, एस्प्लेनेड रोड
दिल्ली-६

प्राप्ति स्थान
गीता विज्ञान कार्यालय
४०—ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण
वैसाख सुदी ८, संवत् २०१५
२७ अप्रैल, १९५८

मूल्य दस रुपया

समर्पण

प्रिय आत्मीयजन,

हमारे साहित्य में गीता सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। वह केवल कोरा धार्मिक ही नहीं, किन्तु व्यावहारिक विज्ञान से भी ओत-प्रोत है। मनुष्यमात्र अपने गुण व स्वभाव के अनुसार अपने को सौंपे गए दायित्व को समष्टि अथवा समाज के प्रति यथावत निभाते हुए अपनी संसार-यात्रा को सुख-पूर्वक पूरा कर सकते हैं और विश्वात्मरूप मानव समाज (समष्टि) में अपने को वैसे ही खपा सकते हैं जैसे कि समस्त नदियों का जल अन्त में सागर में लीन हो कर अपनी पृथकता को खो देता है।

अर्जुन को श्रीकृष्ण ने गीता के इस व्यावहारिक विज्ञान का उपदेश दिया। उसके बाद भी अर्जुन ने यह प्रश्न किया कि :—

"स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी किं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम्॥"

अर्जुन की इस जिज्ञासा को पूरा करने के लिए श्रीकृष्ण ने गीता के अध्याय २ के श्लोक ५५ से ६८ तक स्थित-प्रज्ञ की व्याख्या की है। परन्तु कोई भी उपदेश या आदेश केवल कहने या सुनने से हृदयंगम नहीं हो सकता जितना कि किसी प्रत्यक्ष उदाहरण से होना सम्भव है। इसी कारण किसी के जीवन का उदाहरण दे कर उसको समझाने का प्रयत्न करना अधिक अच्छा है। आमतौर पर यह उदाहरण उन लोगों का दिया जाता है जो हमारे बीच में उपस्थित नहीं होते, क्योंकि जीवनी प्रायः तब लिखी जाती है, जब स्थित-प्रज्ञ महापुरुष हममें से उठ जाते हैं। यदि कोई जिज्ञासु उनकी जीवनी के प्रत्यक्ष उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करना चाहता है, तो उसको निराश होना पड़ता है। इसलिए इस ग्रन्थ के द्वारा ऐसे समत्वयोगी महापुरुष की जीवनी प्रस्तुत की गई है जिसने स्थित-प्रज्ञ की स्थिति को अपने जीवन में पूरा उतारने का सफल प्रयत्न किया है। उनके जीवन के क्रिया-कलाप को प्रत्यक्ष रूप में देख कर कोई भी जिज्ञासु लाभान्वित हो सकता है। उनकी जीवनी के अतिरिक्त उन महानुभावों के कुछ संस्मरण भी इस ग्रंथ में दिए गए हैं, जिनको उन्हें बहुत समीप से देखने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। ये अनुभवपूर्ण संस्मरण जिज्ञासु के लिए विशेष उपयोगी हो सकेंगे।

गीता के व्यावहारिक विज्ञान के सम्बन्ध में विशिष्ट विद्वानों के अत्यन्त सरल भाषा में लिखे हुए विचारपूर्ण कुछ लेख भी इसमें दिए गए हैं। इससे गीता में प्रतिपादित इस व्यावहारिक विज्ञान के आदर्श को सैद्धान्तिक रूप में जानने में सहायता मिल सकेगी और वे इनसे गीता को वास्तविक रूप में समझने के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे।

हमारी यह इच्छा है कि सर्वसाधारण जनता गीता को आर्य संस्कृति के व्यावहारिक-विज्ञान का संविधान अथवा कोड मान कर उसके ढाँचे में अपने व्यक्तिगत और समष्टिगत जीवन को ढाल कर अभ्युदय और निःश्रेयस के पथ पर वैसे ही अग्रसर हो, जैसे कि मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता हुए हैं। इस आशा और विश्वास के साथ यह ग्रन्थ जनता जनार्दन के प्रतिनिधि के रूप में आपकी सेवा में समर्पित है।

मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता अभिनन्दन समिति

सदस्यो की नामावली

१ अध्यक्ष—सेठ गजाधरजी सोमाणी, एम० पी०
२. मन्त्री—श्री मनोहरलालजी मित्तल, बी० ए० एल एल० बी०, बीकानेर
३ महामहिम श्रीयुत श्रीप्रकाशजी, राज्यपाल, बम्बई राज्य, बम्बई
४ लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे, यवतमाल (बम्बई राज्य)
५ सर सिरेमल बापना, भूतपूर्व दीवान इन्दौर, रतलाम, बीकानेर तथा अलवर।
६. श्री जगजीवनरामजी, केन्द्रीय रेलवे मन्त्री, नई दिल्ली
७. श्री एम० के० पाटिल, केन्द्रीय परिवहन मन्त्री, नई दिल्ली
८ श्री राजबहादुर, केन्द्रीय संचार मन्त्री, नई दिल्ली
९. श्री मोहनलाल सुखाडिया, मुख्यमन्त्री राजस्थान, जयपुर
१० श्री ईश्वरदासजी जालान, स्वायत्त शासन मन्त्री, पश्चिमी बंगाल, कलकत्ता
११ श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अर्थमन्त्री, राजस्थान, जयपुर
१२. श्री जयनारायणजी व्यास, एम० पी०, जोधपुर
१३ चौधरी ब्रह्मप्रकाशजी, एम० पी०, दिल्ली
१४. श्री मथुरादासजी माथुर एम० पी०, जोधपुर
१५. श्री कमलनयन बजाज, एम० पी०, वर्धा
१६ स्वामी केशवानन्दजी एम० पी०, सरदारशहर (राजस्थान)
१७ श्री मुकुटविहारीलालजी भार्गव एम० पी०, अजमेर (राजस्थान)
१८. श्री पन्नालाल बारूपाल एम० पी०, बीकानेर (राजस्थान)
१९. श्री विनायक राव विद्यालंकार, बार-एट-ला, एम० पी०, हैदराबाद (आन्ध्र)
२०. श्री हीरालालजी शास्त्री, एम० पी०, वनस्थली, जयपुर (राजस्थान)
२१ श्री हरीशचन्द्र हेडा एम० पी० हैदराबाद (आन्ध्र)
२२ श्री सूरजरतनजी दम्माणी, एम० पी०, बम्बई
२३. श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, एम० पी०, कलकत्ता
२४ श्री हरीशचन्द्रजी माथुर एम० पी०, जोधपुर
२५ श्री जसवन्तराज जी मेहता, एम० पी० जोधपुर
२६. श्री गोविन्द मालवीय एम० पी०, वाराणसी
२७. सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला, नई दिल्ली
२८. सेठ सोहनलालजी दूगड, कलकत्ता
२९. साहू शान्तिप्रसादजी जैन, नई दिल्ली
३० श्री रामनाथ आनन्दीलाल पोद्दार, बम्बई
३१ लाला योधराजजी, नई दिल्ली
३२. सेठ मोतीलालजी तापडिया, बम्बई
३३ सेठ रामप्रसादजी खडेलवाल, बम्बई
३४. सेठ लक्ष्मीनारायणजी गाडोदिया, दिल्ली
३५. श्री ब्रजलाल बियाणी, एम० एल० ए० अकोला (बम्बई)

३६. रायसाहब सेठ मीनामलजी सोमानी, रईस, दिल्ली
३७. श्री निरंजनप्रसादजी, भूतपूर्व प्रेजीडेन्ट, कराची काटन एसोसिएशन
३८. सेठ राधाकृष्णजी मूंदडा, भीनासर (बीकानेर)
३९. सेठ शिवदासजी मूंदड़ा, दिल्ली
४०. चौधरी हरवशलालजी, मालिक मदन रोलर फ्लोर मिल, जलन्धर
४१. श्री रामनारायणजी हुरिया, पार्टनर रवीन्द्रकुमार कम्पनी, दिल्ली
४२. श्री गोकुलदासजी मोहता, वम्बई
४३. श्रीबाबू भाई चिनाय, भूतपूर्व अध्यक्ष अखिल भारतीय उद्योग व्यापार व्यवसाय संघ, बम्बई
४४. श्री अक्षयकुमार जैन, सम्पादक दैनिक "नव-भारत" टाईम्स, दिल्ली व बम्बई
४५. श्री मुकुट बिहारीलालजी वर्मा, सम्पादक, दैनिक "हिन्दुस्तान", नई दिल्ली
४६. श्री मन्मथनाथजी गुप्त, सम्पादक "योजना", दिल्ली
४७. श्री रामगोपालजी माहेश्वरी, सम्पादक "नवभारत" नागपुर व भोपाल
४८. श्री विश्वम्भर प्रसादजी शर्मा, सम्पादक "आलोक" वं "राजस्थानी", नागपुर
४९. श्री शम्भुनाथजी सक्सेना, सम्पादक "सेनानी", बीकानेर
५०. डा० ताराचन्द के० लालवानी, सम्पादक "कराची डेली"
५१. श्री सीतारामजी सेक्सरिया, कलकत्ता
५२. श्री जयचन्दलालजी दफ्तरी, मंत्री केन्द्रीय अणुव्रत समिति सरदारशहर (राजस्थान)
५३. श्री कन्हैयालालजी सेठिया, सुजानगढ
५४. श्री डालमचन्द सेठिया, बार-एट-ला, कलकत्ता
५५. श्री ब्रजरतनजी करनाणी, कलकत्ता
५६. श्री वछराजजी सिंघी, सुजानगढ
५७. श्री ऋषभदासजी राका अध्यक्ष, जैन महामंडल, पूना
५८. श्री राधाकृष्णजी खेमका, एम० एल० ए०, तिनसुकिया (असम)
५९. श्री रामेश्वर अग्रवाल, अध्यक्ष खादी सघ, राजस्थान, जयपुर
६०. आचार्य प० नरदेवजी शास्त्री, कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
६१. श्री सन्तरामजी, होशियारपुर (पजाब)
६२. आयुर्वेदाचार्य प० शिव शर्मा, अध्यक्ष, आयुर्वेद महासम्मेलन, बम्बई
६३. आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री, ज्ञानधाम, शहादरा (दिल्ली)
६४ लाला परसादीलाल पाटणी, महामन्त्री, अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा, दिल्ली
६५. श्री खानचन्द गोपालदास, प्रिन्सिपल ला कालेज, बम्बई
६६. श्री गोकुल भाई भट्ट, सर्वोदय संघ, जयपुर
६७. श्री रणजीतमलजी मेहता, रिटायर्ड जज, जोधपुर
६८. श्री गुलाबचन्दजी नागोरी, भू० पू० अध्यक्ष माहेश्वरी महासभा, औरंगाबाद
६९. सेठ आनन्दराजजी सुराणा, दिल्ली
७०. श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल, इलाहाबाद
७१. श्री ब्रजबल्लभ दासजी मूंदड़ा, रगून (वर्मा)
७२. श्री बालकृष्णजी मोहता, कलकत्ता
७३. प्रोफेसर प्रेमचन्दजी भारद्वाज, सह सम्पादक "योजना", दिल्ली
७४ श्री सत्यदेव विद्यालंकार, नई दिल्ली

मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता अभिनन्दन समिति

सदस्यों की नामावली

१ अध्यक्ष—सेठ गजाधरजी सोमाणी, एम० पी०
२. मन्त्री—श्री मनोहरलालजी मित्तल, बी० ए० एल एल० बी०, बीकानेर
३ महामहिम श्रीयुत श्रीप्रकाशजी, राज्यपाल, बम्बई राज्य, बम्बई
४ लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे, यवतमाल (बम्बई राज्य)
५. सर सिरेमल बापना, भूतपूर्व दीवान इन्दौर, रतलाम, बीकानेर तथा अलवर।
६. श्री जगजीवनरामजी, केन्द्रीय रेलवे मन्त्री, नई दिल्ली
७. श्री एम० के० पाटिल, केन्द्रीय परिवहन मन्त्री, नई दिल्ली
८ श्री राजबहादुर, केन्द्रीय संचार मन्त्री, नई दिल्ली
९ श्री मोहनलाल सुखाडिया, मुख्यमन्त्री राजस्थान, जयपुर
१०. श्री ईश्वरदासजी जालान, स्वायत्त शासन मन्त्री, पश्चिमी बगाल, कलकत्ता
११ श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अर्थमन्त्री, राजस्थान, जयपुर
१२. श्री जयनारायणजी व्यास, एम० पी०, जोधपुर
१३ चौधरी ब्रह्मप्रकाशजी, एम० पी०, दिल्ली
१४. श्री मथुरादासजी माथुर एम० पी०, जोधपुर
१५. श्री कमलनयन बजाज, एम० पी०, वर्धा
१६ स्वामी केशवानन्दजी एम० पी०, संगरिया (राजस्थान)
१७ श्री मुकुटबिहारीलालजी भार्गव एम० पी०, अजमेर (राजस्थान)
१८. श्री पन्नालाल बारुपाल एम० पी०, बीकानेर (राजस्थान)
१९ श्री विनायक राव विद्यालंकार, बार-एट-ला, एम० पी०, हैदराबाद (आन्ध्र)
२०. श्री हीरालालजी शास्त्री, एम० पी०, वनस्थली, जयपुर (राजस्थान)
२१ श्री हरीशचन्द्र हेडा एम० पी० हैदराबाद (आन्ध्र)
२२ श्री सूरजरतनजी दम्माणी, एम० पी०, बम्बई
२३. श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, एम० पी०, कलकत्ता
२४ श्री हरीशचन्द्रजी माथुर एम० पी०, जोधपुर
२५ श्री जसवन्तराज जी मेहता, एम० पी० जोधपुर
२६. श्री गोविन्द मालवीय एम० पी०, वाराणसी
२७. सेठ जुगलकिशोरजी बिडला, नई दिल्ली
२८. सेठ सोहनलालजी दूगड, कलकत्ता
२९ साहू शान्तिप्रसादजी जैन, नई दिल्ली
३० श्री रामनाथ आनन्दीलाल पोद्दार, बम्बई
३१ लाला योधराजजी, नई दिल्ली
३२. सेठ मोतीलालजी तापडिया, बम्बई
३३ सेठ रामप्रसादजी खडेलवाल, बम्बई
३४. सेठ लक्ष्मीनारायणजी गाडोदिया, दिल्ली
३५. श्री ब्रजलाल बियाणी, एम० एल० ए० अकोला (बम्बई)

३६. रायसाहब सेठ मीनामलजी सोमानी, रईस, दिल्ली
३७. श्री निरजनप्रसादजी, भूतपूर्व प्रेजीडैन्ट, कराची काटन एसोसिएशन
३८. सेठ राधाकृष्णजी मूंदड़ा, भीनासर (बीकानेर)
३९. सेठ शिवदासजी मूँदड़ा, दिल्ली
४०. चौधरी हरवंशलालजी, मालिक मदन रोलर फ्लोर मिल, जलन्धर
४१. श्री रामनारायणजी हुरिया, पार्टनर रवीन्द्रकुमार कम्पनी, दिल्ली
४२. श्री गोकुलदासजी मोहता, बम्बई
४३. श्रीबाबू भाई चिनाय, भूतपूर्व अध्यक्ष अखिल भारतीय उद्योग व्यापार व्यवसाय संघ, बम्बई
४४. श्री अक्षयकुमार जैन, सम्पादक दैनिक "नव-भारत" टाईम्स, दिल्ली व बम्बई
४५. श्री मुकुट बिहारीलालजी वर्मा, सम्पादक, दैनिक "हिन्दुस्तान", नई दिल्ली
४६. श्री मन्मथनाथजी गुप्त, सम्पादक "योजना", दिल्ली
४७. श्री रामगोपालजी माहेश्वरी, सम्पादक "नवभारत" नागपुर व भोपाल
४८. श्री विश्वम्भर प्रसादजी शर्मा, सम्पादक "आलोक" व "राजस्थानी", नागपुर
४९. श्री शम्भुनाथजी सक्सेना, सम्पादक "सेनानी", बीकानेर
५०. डा० ताराचन्द के० लालवानी, सम्पादक "कराची डेली"
५१. श्री सीतारामजी सेक्सरिया, कलकत्ता
५२. श्री जयचन्दलालजी दफ्तरी, मंत्री केन्द्रीय अणुव्रत समिति सरदारशहर (राजस्थान)
५३. श्री कन्हैयालालजी सेठिया, सुजानगढ
५४. श्री डालमचन्द सेठिया, बार-एट-ला, कलकत्ता
५५. श्री ब्रजरतनजी करनाणी, कलकत्ता
५६. श्री बछराजजी सिंघी, सुजानगढ
५७. श्री ऋषभदासजी राका अध्यक्ष, जैन महामंडल, पूना
५८. श्री राधाकृष्णजी खेमका, एम० एल० ए०, तिनसुकिया (असम)
५९. श्री रामेश्वर अग्रवाल, अध्यक्ष खादी सघ, राजस्थान, जयपुर
६०. आचार्य प० नरदेवजी शास्त्री, कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
६१. श्री सन्तरामजी, होशियारपुर (पंजाब)
६२. आयुर्वेदाचार्य प० शिव शर्मा, अध्यक्ष, आयुर्वेद महासम्मेलन, बम्बई
६३. आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री, ज्ञानधाम, शहादरा (दिल्ली)
६४ लाला परसादीलाल पाटणी, महामन्त्री, अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा, दिल्ली
६५. श्री खानचन्द गोपालदास, प्रिन्सिपल ला कालेज, बम्बई
६६. श्री गोकुल भाई भट्ट, सर्वोदय संघ, जयपुर
६७. श्री रणजीतमलजी मेहता, रिटायर्ड जज, जोधपुर
६८. श्री गुलाबचन्दजी नागोरी, भू० पू० अध्यक्ष माहेश्वरी महासभा, औरंगाबाद
६९. सेठ आनन्दराजजी सुराणा, दिल्ली
७०. श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल, इलाहाबाद
७१. श्री ब्रजवल्लभ दासजी मूंदडा, रगून (बर्मा)
७२. श्री बालकृष्णजी मोहता, कलकत्ता
७३. प्रोफेसर प्रेमचन्दजी भारद्वाज, सह सम्पादक "योजना", दिल्ली
७४ श्री सत्यदेव विद्यालंकार, नई दिल्ली

७५. श्री कन्हैयालालजी कलयग्री, फलोदी (मारवाड़)
७६. श्रीमती सत्यवतीजी कलयनी, फलोदी (मारवाड़)
७७ श्रीमती सज्जनदेवीजी मुहनोत, एम० एल० ए०, बागराणी
७८ श्री सत्यदेवजी, जनरल मैनेजर बैंक आफ बीकानेर, बीकानेर
७९. डा० भगतरामजी, बीकानेर
८०. श्री गिरधारीदानजी, बीकानेर
८१ श्री शंकरदत्तजी वैद्य, अध्यक्ष मोहता आयुर्वेद सभा, बीकानेर
८२ ठाकुर जुगलसिंह खीची, एम०, ए०, पी एन० डी०, बार-एट ला, बीकानेर
८३. डा० छगनलालजी मोहता, बीकानेर
८४. श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा, आचार्य भारतीय विद्या भवन, बीकानेर
८५. श्री रतनलालजी शर्मा, बीकानेर
८६. आचार्य उदयवीरजी शास्त्री, बीकानेर
८७. श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर
८८. सेठ लालचन्दजी कोठारी, बीकानेर
८९. पंडित अनन्तलालजी व्यास, बीकानेर
९० श्रीहरभगवानजी सचालक, जातपात तोड़क मण्डल, लाहौर, भारत सेवक समाज, दिल्ली
९१ सेठ चाँद रतनजी बागडी, बीकानेर
९२ श्री मूलचन्दजी पारीक, अध्यक्ष बीकानेर कांग्रेस कमेटी, बीकानेर
९३. श्री सूरज करणसिहजी, बीकानेर
९४ श्रीमती सरस्वती देवीजी गाडोदिया, दिल्ली
९५. श्रीमती कौशल्या देवीजी मोहता, कलकत्ता
९६. श्रीमती गगा देवीजी मोहता, सलकिया, हावडा (कलकत्ता)
९७ श्री पी० आर० नायक, आई० सी० एस० कमिश्नर म्युनिसिपल कार्पोरेशन, दिल्ली
९८ डा० नारायणदासजी मीरचन्दानी, बम्बई
१००. श्री होतचन्द अडवानी, बैरिस्टर
१०१. श्री सोहनलाल जी सेठी, एम० ए० एल-एल० बी०, एडवोकेट, नई दिल्ली

सम्पादक की ओर से

"विनय" तथा "अभिवादन" का भारतीय जीवन, दर्शन और संस्कृति में विशेष महत्व है। ये गुण समाज मे समय-समय पर विभिन्न रूपो मे प्रगट होते रहते है। रामायण और महाभारत सरीखे ग्रथो की रचना इन्ही की परिचायक है। वडो के प्रति यह विनय और अभिवादन कुछ वर्ष पहले सार्वजनिक समारोहों एवं अभिनन्दन पत्रो द्वारा प्रगट किया जाता था। अभिनन्दन पत्रो की उस परम्परा ने अब अभिनन्दन ग्रन्थो का रूप ले लिया है। यह ठीक ही कहा गया है कि "अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥" हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक किंवा सार्वजनिक और राष्ट्रीय जीवन मे भी ये दोनों गुण हमारे स्वभाव के अंग बन गये हैं। गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय की स्थापना पुराने भारतीय आदर्शो की नीव पर की गई थी। वहां के जीवन मे इन गुणो को सदा ही प्रमुख स्थान दिया गया। इसलिये जव मुझे आदरणीय वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता के ८१–८२ वर्ष मे शुभ पदार्पण करने के उपलक्ष मे अभिनन्दन हेतु इस ग्रन्थ के सम्पादन करने का निमन्त्रण मिला, तव मैंने सहसा ही उसको स्वीकार कर लिया। मैने अपनी स्वीकृति के साथ यह भी लिखा कि यह पुनीत कार्य बहुत पहिले ही हो जाना चाहिये था। वयोवृद्ध श्रद्धेय मोहता जी सभी दृष्टियों से हमारी श्रद्धा, सम्मान और अभिवादन के पूर्णत. अधिकारी है। उनके प्रति हमारा यह कर्तव्य है, जिसका पालन करने में और अधिक देरी नही करनी चाहिए।

राजस्थान अथवा मारवाड़ी समाज मे जन्म न लेने पर भी उनके प्रति मेरा लगाव बहुत कुछ स्वाभाविक वन गया है। उनसे सम्बन्धित लोगों के प्रति मान-सम्मान व प्रतिष्ठा के प्रकट करने का साधारण सा प्रसंग उपस्थित होने पर भी मै उससे अलग नही रह सकता। १९२० मे, जब मैंने हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र मे प्रवेश किया था, तभी मेरा उनके साथ सम्पर्क हो गया था और उसके निमित्त थे जैसलमेर के अमर शहीद श्री सागरमल गोपा। उन दिनो मे भी वे सर पर कफन बाँधे जैसलमेर के लिये शहीद होने की धूमी रमाए रहते थे। स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर प० अर्जुनलालजी सेठी, अपनी लगन और धुन के धनी श्री विजयसिंहजी पथिक तथा ऐसे ही कुछ अन्य लोगो के साथ गोपाजी के ही माध्यम से मेरा परिचय हुआ था और राजस्थान तथा मारवाडी समाज के प्रति मेरा लगाव वढता चला गया। राजस्थानियो अथवा मारवाड़ियों मे अपने ही ढग की कुछ अद्‌भुत विशेषताएँ और विलक्षण गुण पाये जाते हैं। उनके सम्बन्ध में कैसी भी भ्रान्त धारणाएँ क्यो न पैदा कर दी गई हों, परन्तु मैं सदा ही उनके उन गुणों और विशेषताओ का कायल रहा हूँ। केवल एक उदाहरण लीजिये। भारत के कोने कोने में छोटी-बड़ी वस्तियाँ वसाने और उनको व्यापार-व्यवसाय व कल-कारखानो से समृद्ध करने

७५. श्री कन्हैयालालजी कलेयंत्री, फलौदी (मारवाड)
७६. श्रीमती सत्यवतीजी कलयत्री, फलौदी (मारवाड)
७७ श्रीमती सज्जनदेवीजी मुहनोत, एम० एल० ए०, वाराणसी
७८ श्री सत्यदेवजी, जनरल मैनेजर वैक श्राफ वीकानेर, बीकानेर
७९. डा० भगतरामजी, वीकानेर
८०. श्री गिरधारीदानजी, बीकानेर
८१ श्री शकरदत्तजी वैद्य, अध्यक्ष मोहता आयुर्वेद सस्था, वीकानेर
८२ ठाकुर जुगलसिह खीची, एम०, ए०, पी एच० डी०, वार-एट ला, बीकानेर
८३. डा० छगनलालजी मोहता, बीकानेर
८४. श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा, आचार्य भारतीय विद्या भवन, वीकानेर
८५. श्री रतनलालजी शर्मा, वीकानेर
८६. आचार्य उदयवीरजी शास्त्री, बीकानेर
८७. श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर
८८. सेठ लालचन्दजी कोठारी, बीकानेर
८९. पडित अनन्तलालजी व्यास, बीकानेर
९० श्रीहरभगवानजी सचालक, जातपात तोडक मण्डल, लाहौर, भारत सेवक समाज, दिल्ली
९१ सेठ चाँद रतनजी बागडी, बीकानेर
९२ श्री मूलचन्दजी पारीक, अध्यक्ष बीकानेर काग्रेस कमेटी, वीकानेर
९३. श्री सूरज करणसिहजी, बीकानेर
९४ श्रीमती सरस्वती देवीजी गाडोदिया, दिल्ली
९५. श्रीमती कौशल्या देवीजी मोहता, कलकत्ता
९६. श्रीमती गगा देवीजी मोहता, सलकिया, हावडा (कलकत्ता)
९७ श्री पी० आर० नायक, आई० सी० एस० कमिश्नर म्युनिसिपल कार्पोरेशन, दिल्ली
९८ डा० नारायणदासजी मीरचन्दानी, बम्बई
१००. श्री होतचन्द अडवानी, वैरिस्टर
१०१. श्री सोहनलाल जी सेठी, एम० ए० एल-एल० बी०, एडवोकेट, नई दिल्ली

सम्पादक की ओर से

"विनय" तथा "अभिवादन" का भारतीय जीवन, दर्शन और संस्कृति में विशेष महत्व है। ये गुण समाज मे समय-समय पर विभिन्न रूपो मे प्रगट होते रहते है। रामायण और महाभारत सरीखे ग्रथो की रचना इन्ही की परिचायक है। वड़ो के प्रति यह विनय और अभिवादन कुछ वर्ष पहले सार्वजनिक समारोहों एवं अभिनन्दन पत्रो द्वारा प्रगट किया जाता था। अभिनन्दन पत्रों की उस परम्परा ने अब अभिनन्दन ग्रन्थो का रूप ले लिया है। यह ठीक ही कहा गया है कि "अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥" हमारे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक किंवा सार्वजनिक और राष्ट्रीय जीवन में भी ये दोनो गुण हमारे स्वभाव के अग बन गये है। गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय की स्थापना पुराने भारतीय आदर्शो की नीव पर की गई थी। वहां के जीवन मे इन गुणो को सदा ही प्रमुख स्थान दिया गया। इसलिये जब मुझे आदरणीय वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता के ८१-८२ वर्ष मे शुभ पदार्पण करने के उपलक्ष में अभिनन्दन हेतु इस ग्रन्थ के सम्पादन करने का निमन्त्रण मिला, तब मैने सहसा ही उसको स्वीकार कर लिया। मैने अपनी स्वीकृति के साथ यह भी लिखा कि यह पुनीत कार्य बहुत पहिले ही हो जाना चाहिये था। वयोवृद्ध श्रद्धेय मोहता जी सभी दृष्टियों से हमारी श्रद्धा, सम्मान और अभिवादन के पूर्णत अधिकारी हैं। उनके प्रति हमारा यह कर्तव्य है, जिसका पालन करने मे और अधिक देरी नही करनी चाहिए।

राजस्थान अथवा मारवाड़ी समाज मे जन्म न लेने पर भी उनके प्रति मेरा लगाव बहुत कुछ स्वाभाविक बन गया है। उनसे सम्बन्धित लोगो के प्रति मान-सम्मान व प्रतिष्ठा के प्रकट करने का साधारण सा प्रसंग उपस्थित होने पर भी मै उससे अलग नही रह सकता। १९२० मे, जब मैंने हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था, तभी मेरा उनके साथ सम्पर्क हो गया था और उसके निमित्त थे जैसलमेर के अमर शहीद श्री सागरमल गोपा। उन दिनों में भी वे सर पर कफन बाँधे जैसलमेर के लिये शहीद होने की धूमी रमाए रहते थे। स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर प० अर्जुनलालजी सेठी, अपनी लगन और धुन के धनी श्री विजयसिंहजी पथिक तथा ऐसे ही कुछ अन्य लोगो के साथ गोपाजी के ही माध्यम से मेरा परिचय हुआ था और राजस्थान तथा मारवाडी समाज के प्रति मेरा लगाव बढता चला गया। राजस्थानियो अथवा मारवाडियों मे अपने ही ढग की कुछ अद्भुत विशेपताएँ और विलक्षण गुण पाये जाते है। उनके सम्बन्ध में कैसी भी भ्रान्त धारणाएँ क्यो न पैदा कर दी गई हों, परन्तु मैं सदा ही उनके उन गुणों और विशेषताओ का कायल रहा हूँ। केवल एक उदाहरण लीजिये। भारत के कोने-कोने मे छोटी-बड़ी वस्तियाँ वसाने और उनको व्यापार-व्यवसाय व कल-कारखानो से समृद्ध करने

मे जिस विलक्षण प्रतिभा, अटूट धैर्य और निरतर अध्यवसाय से उन्होने काम लिया है, उसके लिये उनकी जितनी सराहना की जाए कम है। जब सचार और यातायात के आधुनिक साधन नही थे तब वे देश के सुदूर क्षेत्रो मे सर्वत्र फैल गये और जहाँ भी गये वहाँ उन्होने निर्माण कला का विस्मयजनक परिचय दिया। असम के स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री बारदोलाई ने शिलाग मे मेरे साथ चर्चा करते हुए यह तथ्य प्रगट किया था कि उनके राज्य मे छोटी-बडी सभी बस्तियाँ बसाने का श्रेय उस मारवाडी लोगो को प्राप्त है जो केवल दो या तीन सन्तति पहले आकर यहाँ बसे हैं। उन्होने सरकारी गजटीयर्स मे भी इसका उल्लेख बताया। उनका कहना यह था कि बस्तियो के ठीक बीच मे उनकी बसावट और उनके मुख्य बाजार होने से यह स्वत सिद्ध है कि वे जहाँ जा कर बसे उसके चारो ओर बस्तियाँ बसती गई। उसके बाद मैंने यह देखा कि यह तथ्य प्राय सभी राज्यो की अनेक छोटी-बडी बस्तियो पर लागू होता है। मोहता परिवार के पूर्वजो ने बीकानेर नगर व राज्य के बसाने और वर्तमान कराची के निर्माण मे जो साहसपूर्ण योग दिया, उसका रोचक विवरण पाठक इस ग्रन्थ मे पढेगे। मैं यह देख कर कभी-कभी चकित रह जाता हूँ कि जिस समाज ने करोडो रुपये खर्च करके विविध सार्वजनिक कार्य सम्पन्न किए अथवा करवाए हैं उसको अपनी इस विलक्षण प्रतिभा और अद्भुत अध्यवसाय के इतिहास के लिखे जाने की आवश्यकता क्यो अनुभव नही हुई ?

इसका कारण सम्भवत यह है कि राजस्थानी लोगो मे सामूहिक समष्टिगत जीवन की दृष्टि का विकास नही हुआ। उनमें व्यक्तिगत जीवन की ही प्रमुखता रही है। अपने सामूहिक गुणो की समष्टि दृष्टि से सराहना करना उन्होने नही सीखा। इतिहास भी इसका साक्षी है कि राजपूत सरदार कभी भी किसी भी एक सरदार के झण्डे के नीचे इकट्ठे नही हो सके। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से राजस्थान और राजस्थानी जीवन सबसे अधिक विभक्त और बिखरा हुआ है। एक सामाजिकता, एक जातीयता अथवा एक राष्ट्रीयता की समष्टि भावना उनमें पनप नही सकी। अग्रेजी राज के दिनो मे यह अभिशाप देशी रजवाडो व जागीरो में राजस्थान के विभक्त होने के कारण चरम सीमा पर पहुँच गया। प्रकृति भी उनमे एकता के समष्टिगत गुण पैदा करने में सहायक नही हुई। मरुभूमि का प्रत्येक कण एक दूसरे से अलग रहता है। राजस्थान मे इसी कारण किसी ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व या नेतृत्व का विकास अथवा निर्माण नही हो सका, जिसको सारा राजस्थान या समाज समान रूप से मानता हो। एक दूसरे के प्रति सराहना अथवा गुण ग्राहकता की भावना के बिना ऐसे व्यक्तित्व या नेतृत्व का विकास अथवा निर्माण नही हो सकता। परिणाम इसका यह हुआ कि सामूहिक अथवा समष्टि दृष्टि से सारा ही प्रदेश अथवा समाज पिछडा रह गया। गुजरात, महाराष्ट्र, बगाल तथा अन्य राज्यो व समाजो मे पारस्परिक सराहना और गुण ग्राहकता जिस रूप मे पाई जाती है राजस्थान में उसका प्राय अभाव है। भारतीय जीवन के विनय और अभिवादन के गुणो ने वर्तमान में अभिनन्दन ग्रन्थो की जिस परम्परा का रूप धारण कर लिया है उसका समावेश राजस्थान अथवा

मारवाडी समाज में होना अत्यन्त शुभ है। इससे इस अभाव की पूर्ति कुछ अंशों में अवश्य ही हो सकेगी। स्वर्गीय श्री बसन्तलाल जी मुरारका और कर्मनिष्ठ स्वामी केशवानन्दजी महाराज की सेवा मे अभिनन्दन ग्रन्थो का समर्पित किया जाना इस परम्परा का शुभ श्रीगणेश है।

परस्पर सराहना न करने अथवा गुण ग्राहकता की कमी होने का एक बडा कारण यह है कि एक दूसरे को ठीक-ठीक रूप मे समझने का प्रयत्न नही किया जाता। अनेक भ्रम और भ्रान्त धारणाएँ अथवा गलतफहमिया ऐसा करने मे बाधक बन जाती हैं। यहाँ इसका एक ज्वलन्त उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा। बीकानेर के कुछ लोग अपने निहित स्वार्थों पर आंच आने के कारण मोहताजी के समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों के कट्टर विरोधी थे और उन्होने आपकी निन्दा करने मे कुछ भी उठा न रखा था। बीकानेर के राजपूत सरदार और पढे लिखे कुछ विद्वान् अनेक कारणो से मोहताजी के विरोधी रहे। महाराज गंगासिहजी भी को मोहताजी का सुधार कार्य पसन्द न था। उनके अनेक दरबारी उनको मोहताजी के सम्बन्ध मे भ्रान्तिपूर्ण समाचार देते रहते थे। महाजन के राजा साहब महाराज के विश्वासपात्र लोगो मे से थे और राजा साहब महाजन के विश्वासपात्र थे प्रज्ञाचक्षु पडित केसरीप्रसादजी। वे अपनी विद्वत्ता एव प्रतिभा के अपने सरीखे एक ही व्यक्ति थे और सारे बीकानेर मे उनको मान्यता प्राप्त थी। संस्कृत, हिन्दी, व्रज और फारसी भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। शुरू दिनों मे वे भी मोहताजी के विरोधी तथा निन्दक रहे। आपको भगी व ढेड आदि कहने मे भी वे सकोच नही करते थे। आपको सस्कृत से अनभिज्ञ बताकर आपके "गीता का व्यवहार दर्शन" का वे प्राय. उपहास किया करते थे। सुजानगढ में 'बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन' मे भी उन्होने मोहताजी के प्रति अपना विरोध व रोष प्रदर्शित किया था। परन्तु वहाँ आपका अध्यक्षीय भाषण सुनने के बाद वे ऐसे प्रभावित और आकर्पित हुए कि उन्होने अपना सारा मतभेद और विरोध सहसा ही भुला दिया। वे मोहताजी के अन्यतम प्रशसक बन गए। उन्होने वैशाख शुक्ला तृतीया संवत् २००० विक्रमी को मोहताजी को एक पत्र लिखकर अपने जो विचार प्रगट किए उनको यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। शास्त्रीजी का वह पत्र अविकल रूप मे यहां दिया जा रहा है—

"श्रीयुत परम श्रद्धेय पूज्य श्री रामगोपालजी मोहता की पुनीत सेवा मे।

श्रीयुत माननीय मोहताजी महोदय!

यद्यपि मै एक लम्बा पत्र लिख रहा हूँ, किन्तु मुझे दृढ आशा है कि आपके अमूल्य समय का एक भाग इसे भी मिलेगा। मनुष्य की विचारधारा तथा ज्ञान गति केवल अनुभव के ही नही किन्तु काल, चक्र के भी अधीन है, यही कारण है कि मै बहुत काल के अनन्तर अपने स्थिर विचार आपकी सेवा मे समर्पित कर रहा हूँ।

यह तो आप जानते ही हैं कि मेरी क्रूर किन्तु सत्य समालोचना मे चाटुकारिता को कभी स्थान नही मिला और न कभी मिलने की आशा ही है। मैंने जब जो कुछ समझा उसे प्रमाणित हो जाने पर उसी समय प्रगट कर दिया। बस मेरा यह पत्र इसी सिद्धान्त के अनुसार है। आपकी

उदारता, सभ्यता, विद्वत्प्रियता, विशेषत क्षमाशीलता ने मुझे विवश किया है कि मैं अपने अतीत भाषण के लिये आपसे सविनय क्षमा माँग कर भविष्य मे आपके किसी सिद्धान्त का प्रतिवाद कही और कभी न करूँ और मुक्त कण्ठ से कहूँ कि श्रीयुत मोहता रामगोपालजी राज्यश्री बीकानेर के अनुपम और उज्ज्वल रत्नो मे से एक है।

आपके ग्रन्थो और कार्यों मे निष्कपटता तथा धर्म दृष्टि ही की प्रधानता है और वह भी वर्तमान युग के अनुसार और अपेक्षित। इसलिये मेरी अब यह विश्वस्त धारणा हो गई है कि इस प्रकार के महात्मा लोग निन्दनीय नही अपितु प्रशसनीय एव अनुकरणीय हैं।

आपको यह पढ कर हर्ष होगा कि वर्तमान गति के अनुसार मैं आपके किसी सिद्धान्त का प्रतिवादी नही रहा। जब यथासमय वैदिक धर्म के समस्त अगो मे परिवर्तन होता आया है और उसके बीज शास्त्रों मे हैं तब आपके सिद्धान्तो का व्यर्थ विरोध क्यो किया जाय? जब आपके समस्त कार्य धर्म और सुधार के विचार से हो रहे हैं, तब कोई भी सत्य का उपासक उनका प्रतिबन्धक क्यो बने और वह भी तब जब कि आप जैसे धर्म के अग्रणी हो।

देश, जाति और धर्म की दृष्टि से आपका नेतृत्व समाज के लिये परम लाभकर है। आप जैसे व्यक्ति विशेष ही उन्नति के पथ प्रदर्शक कहे जा सकते है। इसलिये मेरे इस असम्भव परिवर्तन के लिये आपको अनेकानेक साधुवाद। अब से आपके परोक्ष मे भी आपकी किसी कृति पर मेरी ओर से कोई आक्षेप नही होगा। इसी विचार से मैने यह पत्र लिख दिया है।

जब प्राचीन टीकाकारो ही मे मतभेद है तब आपके "व्यवहार दर्शन" ही ने गीता का क्या बिगाड दिया? जब धर्म शास्त्रो मे भी नियोग और विधवा-विवाह की चर्चा पाई जाती है और आज भी इस पक्ष के पोषक सहस्रो विद्यमान है तब अकेले और आप ही को उपालम्भ क्यो? फिर अछूतोद्धार की चर्चा भी तो आज की नहीं बहुत पुरानी है। इन बातो ने मुझे आप जैसे उत्साही मनुष्यो के प्रतिपक्ष से सदा के लिये दूर कर दिया। यह समस्त प्रभाव आपके उस भाषण का है जो आपने सुजानगढ मे साहित्य सम्मेलन के सभापतित्व से दिया था। अत साधुवाद और धन्यवाद के साथ ही मैं अपनी उन कटु समालोचनाओ को वापिस लेता हूँ जो आपकी उदारता के भरोसे पर की गई थी।

भवदीय—
केसरीप्रसाद शास्त्री"

इस प्रकार यदि वस्तुस्थिति को समझकर सचाई के ग्रहण करने मे हम सब तत्पर रहें, तो बहुत से भ्रम और भ्रान्त धारणाएँ दूर होने मे अधिक समय न लगे और एक दूसरे को समझने, आपस मे एक दूसरे की सराहना करने तथा एक दूसरे के गुण ग्रहण करने में कोई कठिनाई न रहे। राजस्थान तथा मारवाडी समाज मे भ्रम अथवा मिथ्या धारणा के कारण एक दूसरे के प्रति गलतफहमी सहज मे पैदा कर ली जाती है। इस दोष या दुर्गुण का निराकरण किया जाना आवश्यक है।

हम लोगों के मार्ग मे बहुत बड़ी कठिनाई एक और थी। वह यह कि मोहताजी व्यक्ति-पूजा के कट्टर विरोधी हैं और उनकी दृष्टि मे यह अभिनन्दन-ग्रन्थ-परम्परा व्यक्ति-पूजा को प्रश्रय देने वाली है। अभिनन्दन-ग्रन्थ-परम्परा के साथ जुडा हुआ ढोग व आडम्बर आपको बिलकुल भी पसन्द नही है। इसलिये इस ग्रन्थ की भेंट को अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप मे स्वीकार करने से आपने इन्कार कर दिया। फिर भी इसको प्रकाशित करने का दुस्साहस अथवा अतिसाहस हम लोगो ने आप की इच्छा के विरुद्ध कर डाला है क्योकि आपके प्रति अपनी श्रद्धा, सम्मान एव अभिवादन की भावना को मूर्त्त रूप देने के कर्तव्यपालन से हम विमुख नही रह सकते थे। यह ग्रन्थ उस जनता की सेवा में समर्पित है, जिसकी सेवा पूज्य मोहताजी का जीवन व्रत रहा है। इस ग्रन्थ को सरसरी तौर पर देखने वाले भी यह स्वीकार करेंगे कि सभी दृष्टियो से श्रद्धेय मोहताजी हमारे सम्मान, आदर व श्रद्धा के अधिकारी है। इस अभागे देश मे जिसमे, औसत आयु ३१-३२ वर्ष से अधिक नही है, ८० वर्ष की आयु प्राप्त करना और जनता के सम्मुख दीर्घायु होने का आदर्श उपस्थित करना सामान्य बात नही है। जनता को दीर्घायु प्राप्त करने और जीवन को कला के रूप मे भोगने के लिये प्रेरित करना नितान्त आवश्यक है। सेवाभावी मोहताजी ने अपने जीवन की आधी से अधिक शताब्दी लोक सेवा और लोक कल्याण में लगाई है। आपका लोक जीवन चहुँमुखी है। लोक कल्याण के हर क्षेत्र मे आपका सहज व स्वाभाविक प्रवेश है। समाज मे फैली हुई विषमता को नष्ट करने के लिये धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति की साधना अथवा समत्व योग की प्रतिष्ठा आपके जीवन का प्रधान लक्ष्य रहा है। ३५-४० वर्ष से आप साहित्य साधना मे निरत है। गीता का गहन अनुशीलन करके उसकी गहराई मे पैठ कर आपने व्यवहार दर्शन के जो अनमोल रत्न सामान्य जनता के लिये उपलब्ध किये है वह भी आपकी बहुत बड़ी सेवा है। सामयिक समस्याओ पर आपके गहन, गम्भीर और सुलझे हुए विचार सामान्य जनता का पथ-प्रदर्शन करने के लिए दीपक के समान हैं। संक्षेप मे इतना ही कहना पर्याप्त होना चाहिये कि सामान्य लोगो के लिये आपका जीवन न केवल श्रद्धा का विषय; किन्तु अनुकरणीय आदर्श है। उसके ढाचे मे हम सब अपने जीवन को ढालकर अपनी संसार यात्रा को सरल एवं सफल बना सकते है। संसार को दुःखमय समझकर उससे दूर भागने की कल्पना को आप कपोल कल्पित मानते हैं। "सुखदु खे समे कृत्वा" और "पद्मपत्रमिवाम्भसा" के आदर्श को सदा सामने रखते हुए आपने इस ससार मे जीवन व्यतीत करने का अनुकरणीय उदाहरण अपने क्रियाशील जीवन से उपस्थित कर दिया है। इसीलिये इस ग्रन्थ को "एक आदर्श समत्व योगी" के रूप मे प्रकाशित करना आवश्यक समझा गया। किसी स्पष्ट उदाहरण अथवा प्रत्यक्ष प्रयोग के बिना सर्वसाधारण का ध्यान किसी आदर्श की ओर सहज मे आकर्षित नही हो सकता। इसीलिये इस ग्रन्थ को कुछ व्यक्तिगत रूप देना अनिवार्य हो गया और उस व्यक्तिगत रूप को स्पष्ट करने के लिये वह पारिवारिक पृष्ठभूमि देनी भी आवश्यक हो गई, जिसमें मोहताजी ने अपने यशस्वी जीवन का प्रखर विकास व निर्माण किया है।

ग्रन्थ का सम्पादन करते हुए मेरे सामने मुख्य दृष्टि यही रही कि मनस्वी मोहताजी के सेवामय व साधनामय महान जीवन का पूरा चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जाना चाहिये। इस ग्रन्थ मे कुछ कमिया हो सकती है। परन्तु जिस दृष्टि से इसका प्रकाशन किया गया है उससे इसमे कोई कमी न रहने देने की पूरी सावधानी बरती गई है।

मुझे हार्दिक दु ख है कि ग्रन्थ मे अत्यन्त आग्रह से प्राप्त किए गए कुछ लेखो का समावेश नही किया जा सका। अनेक विद्वानो ने ग्रन्थ के आशय अथवा दृष्टिकोण को ध्यान मे न रखते हुए कुछ लेख भेजने की कृपा की। उनका मेल गीता के उस व्यवहारिक रूप के साथ नही बैठता जिसको इस ग्रन्थ द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। गीता और श्रीकृष्ण के प्रति अन्ध भक्ति, अन्ध श्रद्धा अथवा अन्ध भावना को प्रश्रय देना उस उद्देश्य की हत्या करना होता, जिससे प्रेरित होकर यह ग्रन्थ तैयार किया गया है। विचार क्रान्ति प्रधान भी कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण लेखो का समावेश ग्रन्थ की पृष्ठ सख्या बढा कर भी किया नही जा सका। पूज्य मोहताजी के कुछ और उपयोगी लेख और विचार भी स्थान की कमी के कारण नही दिये जा सके। जिन सुयोग्य विद्वान लेखको के लेखो को ग्रन्थ मे प्रकाशित नही किया जा सका है उन सबसे मैं अत्यन्त विनीत भाव से क्षमा प्रार्थी हूँ। वे सहृदय और उदार भाव से क्षमा प्रदान करेंगे।

मेरी दृष्टि में ग्रन्थ का सस्मरण प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण है। किसी भी व्यक्ति का ठीक ठीक परिचय उस रूप मे मिलता है जिसमे उसको दूसरो ने देखा होता है। जो सस्मरण इस ग्रन्थ में दिये गये हैं, उनमे काफी काटछाट करने पर भी उनका विस्तार कुछ अधिक हो गया। व इस ग्रन्थ की शोभा और विशेषता है। उनमे श्रद्धेय मोहताजी के विविध रूपो के ठीक-ठीक दर्शन किये जा सकते हैं। आपकी सेवा और साधना पर उनसे पर्याप्त प्रकाश पडता है। आपके चरित्र और स्वभाव का उनसे यथार्थ परिचय मिलता है। उनमे निहित भावना, प्रेरणा, स्फूर्ति और उत्साह निश्चय ही पाठक के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं। ग्रन्थ का लक्ष्य पाठक को गीता के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप अपने जीवन को ढालने के लिये प्रेरित करना है। पूरा विश्वास है कि यह लक्ष्य कुछ न कुछ अशो मे अवश्य पूरा होगा।

जिन सहृदय सज्जनो ने अपने लेख तथा सस्मरण भेज कर अथवा अन्य प्रकार से इस ग्रन्थ को उपयोगी, सुन्दर एव आकर्षक बनाने मे सहयोग प्रदान किया है उन सबका मै हृदय से आभारी हूँ। विशेषकर अपने सहयोगी श्री प्रेमचन्द भारद्वाज और साथी श्री प्रभातकुमार जोशी का मुझे आभार मानना चाहिये। उनके एकनिष्ठ निरन्तर सहयोग के बिना इस ग्रन्थ को यह रूप नही प्राप्त हो सकता था।

४०–ए, हनुमान रोड,
नई दिल्ली
रामनवमी, १९५८

सत्यदेव विद्यालंकार

अभिनन्दन समिति के मंत्री की ओर से

मेरा मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता से १९४७ मे तब प्रत्यक्ष परिचय हुआ था जब मैंने उनके सत्संग में जाना शुरू किया था। मुझे गीता पढ़ने की इच्छा हुई। पूछताछ करने पर पता चला कि आपसे गीता पढी जा सकती है। आप गीता के वड़े विद्वान् है। वीकानेर मे आप के सम्बन्ध मे जो लोकापवाद फैला हुआ था उससे अधिक मुझे आपके सम्वन्ध मे कुछ पता नही था। मैने यह समझा कि अन्य विद्वानो की तरह मोहताजी भी वाचक ज्ञानी होगे। फिर भी मैंने यह सोचकर आपके पास जाने का निश्चय कर लिया कि अपने को तो गीता पढनी है। आप के व्यक्तिगत जीवन से क्या लेना-देना है। मैने सत्संग मे जाना शुरू कर दिया। मुझे यह मालूम होने मे अधिक समय नही लगा कि लोकापवाद सर्वथा निराधार और मिथ्या था। मोहताजी की विद्वत्ता और व्यक्तिगत जीवन का मुझ पर दिन-पर-दिन गहरा असर पडता गया।

मै कई बार यह सोचता था कि ऐसे वयोवृद्ध विद्वान्, अनुभवी और सेवापरायण महानुभाव का जीवन परिचय लिखा जाना चाहिए, जिससे जनता को मोहताजी के सम्बन्ध मे यथार्थ जानकारी मिल सके और उसका मार्ग-दर्शन भी हो सके। नवम्बर, १९५६ मे मैने अपना यह विचार मोहताजी से प्रकट किया तो आपने यह कहकर मुझे निरुत्तर कर दिया कि मुझे आडम्बर पसन्द नही हैं। दिसम्बर १९५६ मे श्री कन्हैयालालजी कलयत्री बीकानेर पधारे और उन्होने कुछ मित्रों से मोहताजी का सार्वजनिक अभिनन्दन करने की चर्चा की। मुझे अपने विचार के लिए कुछ वल मिला; परन्तु मोहताजी को सहमत करना आसान नही था। फिर भी स्थानीय सज्जनो की एक अभिनन्दन समिति वनाकर हम लोगो ने इस बारे मे चर्चा-वार्ता करनी प्रारम्भ कर दी। अभिनन्दन ग्रन्थ लिखने का निश्चय कर लिया गया। उसके लिए हमारा ध्यान हिन्दी के विद्वान लेखक, यशस्वी हिन्दी पत्रकार श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार की ओर गया। वे मोहताजी को वर्षों से जानते हैं। उनका सहयोग प्राप्त करने मे हमे कोई कठिनाई नही हुई। मोहताजी को अभिनन्दन ग्रथ और अभिनन्दन समारोह के लिए सहमत करना सम्भव न हो सका। इसीलिए "एक आदर्श समत्व योगी" नाम से यह ग्रथ तैयार किया गया है और अभिनन्दन समारोह न करके गीता विज्ञान गोष्ठी का आयोजन किया गया। ग्रंथ मे गीता के समत्व-योग का रूप प्रदर्शित करते हुए मोहताजी की जीवनी का उल्लेख यह दिखाने के लिए किया गया है कि उसका पालन जीवन मे कैसे किया जा सकता है।

मोहताजी के महान जीवन और विशिष्ट व्यक्तित्व को देखते हुए हमे यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि हम अपनी समिति को केवल बीकानेर तक सीमित न रखकर अखिल भारतीय रूप प्रदान करे। इस हेतु से हमने अनेक महानुभावों से समिति के सदस्य बनने की प्रार्थना की।

मुझे बडी प्रसन्नता है कि हमारे इस कार्य को सराहते हुए अनेक महानुभावो ने बडी प्रसन्नता-पूर्वक समिति का सदस्य बनना स्वीकार कर लिया। उनके इस कृपापूर्ण सहयोग से हमारी समिति और कार्य को अखिल भारतीय महत्व प्राप्त हो गया। समिति के सदस्यो मे सभी क्षेत्रो के और सभी विचारो के लोग सम्मिलित हैं। ससद् सदस्य, राजनीतिज्ञ, विचारक, लेखक, कवि, पत्रकार, अध्यापक, समाज सेवी और धनी मानी सेठ साहूकार तथा अन्यसब प्रकार के महानुभाव सम्मिलित हैं। इन सब महानुभावो के कृपापूर्ण सहयोग के लिए मैं उनका अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ। ग्रथ को उपयोगी, सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए श्री सत्यदेवजी विद्यालकार ने जिस लगन, धुन, तत्परता और श्रद्धा भाव से सम्पादन सम्पन्न किया है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

वयोवृद्ध मोहताजी किसी भी प्रकार की व्यक्ति-पूजा के विरुद्ध उनकी बात मानी जाती तो हमे कुछ भी करना नही चाहिए था। परन्तु हमारे लिये अपनी भावना को दबा सकना सम्भव न हो सका और उसको मूर्त्त रूप देने का हमने जो प्रयत्न किया उसका परिणाम सब के सम्मुख प्रत्यक्ष है और वह हम विनीतभाव से जनता जनार्दन की सेवा मे अर्पित कर रहे है। हमे विश्वास है कि हमारा यह प्रयत्न गीता के वास्तविक स्वरूप को जनता के सम्मुख उपस्थित करने मे सहायक होगा और गीता को स्वतन्त्र बुद्धि से अध्ययन करने के लिए उसको प्रेरित कर सकेगा। इस आयोजन के करने मे यही हमारी इच्छा, आकाक्षा और अभिलाषा है।

मनोहरलाल भितल
मत्री
मनस्वी श्री रामगोपालजी
मोहता अभिनन्दन समिति

बीकानेर
२०-३-५८

कहां-क्या ?

विषय सूची

समर्पण — तीन

मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता अभिनन्दन समिति के सदस्य — छ

सम्पादक की ओर से — नौ

अभिनन्दन समिति के मंत्री की ओर से — पन्द्रह

कहां—क्या ? — सत्रह

चित्रावलि — इक्कीस

खंड १. जीवनी प्रकरण

१. आत्मवृत्त और इतिवृत्त का महत्व — १

प्रेरणात्मक रूप—२, मोहताजी की साधना—३.

२. समत्व योग की साधना — ७

परस्पर विरोधी द्वन्द्वो मे सम बने रहने का स्पष्टीकरण—६, मानापमान मे संतुलन—६, हर्ष और शोक मे समान व्यवहार—१०, सुख-दुख के प्रति सम बुद्धि—१०, हानि-लाभ मे समान स्थिति—१०, हार-जीत अथवा सफलता-असफलता मे सम व्यवहार—११, शुभ-अशुभ मे सम व्यवहार—१२, शत्रु-मित्र के प्रति समान दृष्टि—१२, स्त्री-पुरुष के प्रति सम व्यवहार—१३, ऊँच और नीच के प्रति सम दृष्टि—१४, सोने, मिट्टी और पत्थर के सबध मे सम भावना—१६

३. वश-परिचय — १७

साहसी राजस्थानी—१७, माहेश्वरी समाज का प्रादुर्भाव—१७, सालोजी राठी—१८, मोहता वश—१६, मोहता वश और उसकी प्रतिष्ठा—१६, सँसोलाव का निर्माण—१६, सती की घटना—२०, श्रीकृष्णजी का साहस—२१, संतोपी सदासुखजी—२१, निर्भीक मोतीलालजी—२१, मोतीलालजी की सतान—२३, मोतीलालजी का सम्पन्न परिवार—२३, मोतीलालजी की पुण्य स्मृति—२४, गोवर्धन सागर वगीची—२५.

४ जीवन-परिचय — २६

वचपन—२६, पढाई का अत—२७, कराची की पहली यात्रा—२७, वीकानेर वापिस—२८, कराची की दूसरी यात्रा—२६, वीकानेर वापिस—२६, विवाह—३०, माता जी का स्वभाव और उसका प्रभाव—३०, तीसरी वार कराची—३१, वीकानेर मे—३१, कराची मे—३२, वीकानेर मे आमोद-प्रमोद का जीवन—३२, पहली कलकत्ता यात्रा—३३, यज्ञोपवीत संस्कार—३३, दिल्ली मे—३४, माताजी का सकल्प—३४, गुण प्रकाशक सज्जनालय की स्थापना—३५, कराची मे—३६, दिल्ली दरवार—३६, मूंदडा जी का देहान्त—३६, पुत्र-प्राप्ति के लिए अनुष्ठान—३७, ज्योतिपियो पर अविश्वास—३७, छोटे भाई का देहावसान—३८, मोहता मूलचन्द विद्यालय की स्थापना—३८, विद्यालय का अपना भवन—४०, सगीत विद्यालय—४१, कलकत्ता का सामाजिक जीवन—४२, साम्प्रदायिक दगा—४३, कराची मे—४३, कलकत्ता मे और पहला विश्वयुद्ध—४३, साहित्य के क्षेत्र मे—४४, डाडियो के खेल का पुनर्जीवन—४४, दु खद देहान्त और हरिद्वार यात्रा—४६, श्री लोईवालजी के यहां सवध—४६, आगरा मे दुर्घटना—४६, कोलायतजी का उद्धार—४६, पत्नी क्षय ग्रस्त—४७, कलकत्ता मे साहित्यिक प्रवृत्ति—४८, पिताजी का स्वर्गवास—४८,

दिल्ली में ब्रह्मभोज व जाति भोज की प्रतिक्रिया–४८, दोहिता और दोहिती का जन्म–४८, श्री गिरधरलाल का विवाह–४६, बम्बई और कराची मे–४६, कोलवार आन्दोलन–४६, पुत्री का दु खद देहान्त–५०, पत्नी और दोहिते का देहावसान–५०, श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला की स्थापना–५१, दूसरे विवाह की समस्या–५१, शारीरिक अस्वस्थता–५३, दो ट्रस्टो का निर्माण–५३, काश्मीर की यात्रा–५३, दोहिती का शुभ विवाह–५५, सूरजरतन को गोद लेना–५५, पाकिस्तान का निर्माण–५५, एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस–५६, गोले-गोलियो का उद्धार–५७, राज्य की राज्यसभा–५७, श्री शिवरतनजी मोहता की मत्रिपद पर नियुक्ति–५७, व्यक्तित्व, स्वभाव और चरित्र–५६, सतुलित वृत्ति–६०, सकोची स्वभाव से हानि–६०, सुखी और सम्पन्न परिवार–६१

५ **व्यापार, व्यवसाय और उद्योग** ६३

व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा-दीक्षा–६३, कराची मे कामकाज का विस्तार–६४, कराची मे आर्थिक सकट–६५, वी आर हरमन एण्ड मोहता कम्पनी–६६, मोटरो का काम और आर्थिक सकट–६६, विकट स्थिति का सामना–६७, चीनी मिल–६७

६ **समाज सुधार और सेवामयी साधना** ६६

मोहता मूलचन्द विद्यालय और आदर्श समाज सुधार–७०, श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला–७०, कुप्रथा का सदा के लिये अत–७०, दुर्भिक्षों मे सेवा व सहायता का सतत क्रम–७१, १६५३ और १६५६ के भीषण दुर्भिक्ष–७१, सम्वत् १६६५-६६ और सम्वत् २००८-६ मे–७३, राजधानी मे प्रतिक्रिया–७५, कपडे का वितरण–७६, महिलाओं व विद्यार्थियों की सेवा और सुधार–७७, विरोध और विघ्न-बाधा–७८, कलकत्ता का माहेश्वरी विद्यालय और माहेश्वरी भवन–७८, माहेश्वरी महासभा का सभापतित्व–७६, एक उदाहरण–८१, श्री देवडा का पत्र–८१, मोहताजी का उत्तर–८२, अबलाओ की पुकार–८४, मारवाडी सम्मेलन की अध्यक्षता–८५, सम्मेलन से त्यागपत्र–८६, कुछ विविध कार्य—धर्मशाला का निर्माण–८६, जिमखाना–८६, साहित्य भवन और विद्यालय–८६, श्रीमती जीताबाई मातृ सेवा सदन–८७, शरणार्थियो की सेवा–८७, महिला मडल–८७

७ **साहित्य सृजन और वेदान्त की ओर झुकाव** ८६

श्री उत्तमनाथजी महाराज का सत्सग–८६, स्वामी रामतीर्थ के भाषणो का अध्ययन–६०, "सात्विक जीवन" और "दैवी सम्पद्"–६०, "गीता का व्यवहार दर्शन"–६२, अणेजी का प्राक्कथन–६३, "गीता विज्ञान"–६४, "मान पद्य सग्रह"–६४, समाज सुधार सबधी साहित्य–६५, सामयिक साहित्य–६५, कुछ सामयिक निबन्ध व लेख–६६ ,बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व–६७, गुरु उत्तमनाथजी महाराज–६७, साहित्य सृजन की प्रेरक भावना–६८, चहुँमुखी क्रान्ति का लक्ष्य–६६

नोट—इस खण्ड के अन्तर्गत अध्यायों की सख्या जो ६, ७ और ८ दी गई है, उसको ५, ६, ७ पढ़ने की कृपा करें, क्योकि अध्याय ४ और ५ एक कर दिए गए हैं।

खंड २ साधना प्रकरण

१. **चतुर्मुखी क्रान्ति की साधना** १०३

धार्मिक क्रान्ति–१०३, सामाजिक क्राति–१०३, राजनीतिक क्रान्ति–१०३, आर्थिक क्रान्ति–१०३, धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र मे–१०४, सामाजिक क्रान्ति का रूप–१०६, धार्मिक क्रान्ति का रूप–११३, औसर निषेध–१२०, राजनीतिक विचार–१२०, आर्थिक क्रान्ति–१२४।

२ **आपका आदेश अपने अन्त-काल के सम्बन्ध में** १२६

ईश्वर के नाम पर–१३०, सुधारक वहिष्कार से विचलित न हो–१३०.

३ साहित्य सृजन की क्रान्तिकारी दृष्टि १३१

प्रज्ञावाद के प्रहरी–१३१, साहित्य सर्जना की पूर्व पीठिका–१३२, कृतियो का वर्गीकरण और परिचय–१३४, गीता-सम्बन्धी रचनाएँ–१३५, प्रकीर्णक–१३८।

खंड ३ संस्मरण प्रकरण

१ जनक का क्रियाशील जीवन
—लोकनायक श्री माधव श्रीहरि अणे १४१
२. साधना और सेवा का जीवन
—उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन १४१
३. निर्लिप्त मोहताजी
—माननीय श्री जगजीवन रामजी १४२
४. एक आदर्श की पूर्ति —सरदार स्वर्णसिहजी १४२
५ प्रेरक जीवन
—माननीय श्री मोहनलालजी सुखाडिया १४३
६ Source of Insipiration (अंगरेजी मे)
—Shri Prafulla Chandra Sen १४३
प्रेरणा के स्रोत
—माननीय श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन १४४
७. महान आध्यात्मिक व्यक्ति
—श्री लालजी महरोत्रा १०५
८. एम० एन० राय और मोहताजी
—श्रीमती एलन राय १४६
स्वर्गीय श्री राय और मोहता जी का पत्र-व्यवहार १४७
९. मोहताजी की मन्थन-शक्ति
—आचार्य पण्डित नरदेवजी शास्त्री १५७
१०. प्रगतिशील मोहताजी
—स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक १५९
११. अनिवार्य आवश्यकता —स्वामी जौन धर्मतीर्थ १६१
१२. मोहता जी का सक्रिय देश-प्रेम
—आयुर्वेदाचार्य प० शिव शर्माजी १६४
१३ तत्त्वदर्शी मोहता जी
—श्री जयनारायणजी व्यास १६६
१४ चेहरे-चेहरे पर रामगोपाल
—श्री गोकुलभाई भट्ट १७
१५. A Great Yogi (अंगरेजी में)
—Pt Narayan Rao Vyas १७
एक महान योगी
—सगीताचार्य पडित नारायणराव व्यास १७
१६ तत्वज्ञानी विदेह जनक
—आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री १७
१७. मोहताजी —श्री मन्मथनाथ गुप्त १७
१८. जैसा मैने उन्हें देखा
—श्री सन्तरामजी बी० ए० १८
१९. कहां वे कहां हम
—श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल १८
२०. स्वप्नद्रष्टा —श्री अक्षयकुमारजी जैन १८
२१. साहित्य मनीषि
—श्री मुकुटबिहारीलालजी वर्मा १९
२२ सेवा व साधना की विभूति
—श्री विश्वम्भरप्रसादजी शर्मा १९
२३ ऋषिवर मोहता जी
—श्री जगदीशप्रसादजी "दीपक" १९
२४. मेरे गुरुदेव —श्री नाथूरामजी गोयन १९
२५. मौलिक मार्ग के पथिक
—सेठ घनश्यामदासजी बिडला २०
२६. बलवान आत्मा
—श्री ब्रजलालजी वियाणी २०
२७ श्रद्धा के पात्र मोहताजी
—श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंहका २०
२८. मातृ पूजा का अनुष्ठान
—श्री सीतारामजी सेक्सरिया २०३
२९ उनकी मान्यताएं सफल हों
—श्री भागीरथजी कानोडिया २०५
३० क्रियाशील जीवन का आदर्श
—सेठ गजाधरजी सोमाणी २०६
३१ छोटे भाई की दृष्टि मे
—रा० ब० सेठ शिवरतनजी मोहता २०७

३२ जीवन मुक्त की कोटि
—श्री बालकृष्णजी मोहता २१४

३३ श्रद्धा के दो पुष्प
—श्री व्रजवल्लभ दासजी मूंदडा २१६

३४. सच्चे कर्मयोगी —सेठ रामप्रसादजी खडेलवाल २१६

३५ मोहताजी का जीवन दर्शन
—श्री माणिकचन्द्र भट्टाचार्य २२०

३६ समदर्शी मोहताजी —स्वामी केशवानन्दजी २२२

३७ "बाबा"—एक आदर्श पुरुष
—श्री पन्नालालजी वारूपाल २२३

३८. मनस्वी मोहताजी —श्री कमलनयनजी बजाज २२५

३९ भारत के टालसटाय
—श्री कन्हैयालालजी कलयत्री २२६

४० मोहताजी का सत्सग
—श्री मनोहरलालजी मित्तल २२९

४१ दुर्लभ गुणो की मूर्ति —श्री बछराजजी सिंघी २३५

४२ मनीषि मोहताजी —श्री कन्हैयालालजी सेठिया २३६

४३ जन-सेवा का उदाहरण
—श्री भगवतसिंहजी मेहता २३६

४४ लोकोपकारी व्यक्तित्व
—श्री रणजीतमल मेहता २३७

४५ महान् व्यक्ति —सेठ चादरतनजी बागडी २३८

४६ कर्मयोगी मोहताजी
— स्वर्गीय श्री चन्द्रानन्द सरस्वती २३९

४७ तच्य सस्मृत्य-सस्मृत्य हृष्यामि पुन. पुन.
—ठाकुर जुगलसिहजी खीची २४०

४८ कुछ अविस्मरणीय प्रसग —वैद्य शकरदत्तजी २४३

४९ वसत के रसिया गोपाल जी
—श्री व्रजरतनजी करणानी २४८

५० उदार चेता मोहताजी
—पडित अनन्तलालजी व्यास २५१

५१ कुछ प्रेरक प्रसग —वैद्य ठाकुरप्रसादजी शर्मा २५३

५२ मानव समाज के उपकारी
—श्री रामप्रसादजी हुरकट २५५

५३. सेवा का आदर्श
—श्री वदरी नारायणजी सोढाणी २५६

५४ प्रभावशाली व्यक्तित्व
—पडित हरिभाऊजी उपाध्याय २५७

५५ जनसेवा के घनी मोहताजी
—चौधरी कुम्भारामजी आर्य २५८

५६ मोहताजी की आत्मीयता
—सुश्री जानकी देवीजी बजाज २५९

५७ आधुनिक नरसी भगत
—श्रीमती गगादेवीजी मोहता २६०

५८ मेरे नानाजी और उनकी शिक्षा
—श्रीमती रतनदेवीजी दम्माणी २६१

५९ वश के प्रकाश-स्तम्भ
—श्रीमती कौशल्यादेवीजी मोहता २६५

६० वावाजी का दर्शन
—सुश्री गगा देवीजी साहित्यरत्न २६७

६१ कर्मयोगी —श्री एम० एन० तोलानी २७०

६२ महान विचारक —श्री टी० के० भातेजा २७०

६३ जनता का सेवक —श्री हाकू जोशी २७१

६४ अपने ढग के एक —श्री शकरलाल पारीक २७१

६५. मोहताजी का तपस्वी जीवन
—श्री गोपालदासजी २७२

६६ एक सच्चे देश भक्त —श्री हरभगवानजी २७३

६७ परोपकार भाव की पराकाष्ठा
—ठाकुर चन्द्रसिंहजी २७४

६८ गीता का व्यवहार दर्शन
—आचार्य उदयवीरजी शास्त्री २७६

६९ मोहता जी का चरित्र और स्वभाव
—श्री सत्यदेव विद्यालकार २७८

७० सेवा परायण सत
—देशभक्त सेठ सोहनलालजी दूगड २८३

७१ पितृ स्नेह —पडित विद्याभूषण चिंतामणी २८३

७२ समाज सुधारक मोहताजी
—माननीय श्री ईश्वरदासजी जालान २८५

७३ मोहता जी की दृढता
—सेठ लक्ष्मीनारायणजी गाडोदिया २८६

७४. मेरा परिचय और दर्शन
—श्रीमती सरस्वतीदेवीजी गाडोदिया २८७

७५ उन्मुक्त मानवता —श्री सी० एल० सेन्टिनेला २८६

अंग्रेजी में

True Significance of King Janak
—M S Aney २६०
Life of Devotion— S Radhakrishnan २६०
A Useful Guide —Swaran Singh २६१
A Great Student of Ancient Philosophy
—Lalji Mahrotra २६१
A Perfect Karamyogi —M. N Tolani २६२
Late M. N. Roy and Mohtaji
— Ellen Roy २६२
Important Correspondence between late M N. Roy and Mohtaji २६४
Profound Humanity —C L Sentinella ३०५
मोहताजी के सम्वन्ध में केलाजी की भावना
—स्वर्गीय श्री भगवानदासजी केला ३०५

खंड ४ लेख प्रकरण

गीता पर आधुनिक दृष्टिकोण
—श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालकार ३०६
१ लोकमान्य का कर्मयोग–३०६, २ योगीराज अरविन्द की अध्यात्म दृष्टि–३१३, ३. महात्मा गाधी का अनासक्तियोग–३१७, ४ मोहताजी का व्यावहारिक दर्शन–३२२
गीता के अर्थ का अनर्थ —श्री संजय ३३०
गीता का समत्वयोग और आधुनिक समाजवाद
—श्री देव ३४०
गीता का धर्म और नीति
—श्री सत्यदेव विद्यालकार ३४६
समभाव साधना
—श्री अगरचन्दजी नाहटा ३५३
सर्वधर्मपरित्याग
—प्रो० हवीवुररहमान शास्त्री ३५५
The Activist Philosophy of Gita
—Shri S. D. Kulkarni ३६४
विचार क्रान्ति का रूप
—स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक ३६८
सन्त सुधारको की कृति का मूल्य
—प्रो० जयचन्द्रजी विद्यालकार ३७३
भगवान् गौतम वुद्ध और महायोगेश्वर कृष्ण
—मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता ३७७

परिशिष्ट

१ A sage Counsellor
—T. J Bhojwani ४०६
२. A Dedicated Life to Public Service
—P. R. Nayak I. C S. ४०७

चित्रावली

	पृष्ठ
१. वावा जी (तिरगा)	१
२ मोहताजी १६४०	१०
३ श्रीमती चम्पावाई मोहता	१०-११
४ श्रीमती सुगनी वाई	१०-११
५ श्री भैरव रत्न वागडी	१०-११
६. स्व० सेठ मोतीलालजी के दानवीर पुत्र	२२
७. वीकानेर की धर्मशाला व औषधालय के कार्यकर्त्ता	२४
८. मोहताजी के पूज्य पिताजी	२४
६ कराची की आँख के अस्पताल की आधार शिला रखने का चित्र	२६
१०. गोवरधन सागर वगीची की प्याऊ	२५
११ मोहताजी की पूजनीया माताजी	२६
१२. मोहताजी की माताजी का स्वर्गारोहण	२७
१३ जीतावाई मातृ सेवा सदन	२७
१४. मोहताजी २० वर्ष की अवस्था मे (तिरगा)	३०
१५. मोहताजी ४० वर्ष की आयु मे	३२

१६. मित्र मडली, वीकानेर ३३
१७. तीनो भाई कराची मे ३८
१८ मोहता मूलचन्द विद्यालय के शिक्षक ३६
१६. डाडियो का खेल सम्वत् १६७१ ४४
२० डाडियों का खेल सम्वत् २०१४ ४५
२१ रा० व० सेठ शिवरतन जी मोहता व सेठानीजी श्रीमती सरस्वती देवी ४६
२२. श्री व्रजरतनजी मोहता व श्रीमती राधादेवी मोहता व उनका कुटुम्ब ४७
२३ श्री गिरिधरलालजी का वर घोडा हाथी पर पिलानी मे ४८
२४ श्री गिरधर लालजी के विवाह के शुभ अवसर पर पिलानी मे ४६
२५ स्व० श्री मूलचन्दजी मोहता उनका दत्तक पुत्र गिरधरलाल, पुत्र व पौत्र ५०-५१
२६ स्व० श्रीमती सुन्दरदेवी मोहता ५२
२७ श्री गिरधर लाल को गोद लेते समय ५२
२८. श्री मोहताजी ५२
२६ श्री मोहताजी का दत्तक पुत्र श्री सूरजरतन परिवार सहित ५३
३० श्री सूरजरतन को गोद लेते समय कराची मे ५४
३१. श्री व्रजरतन विवाह के शुभ अवसर पर कलकत्ते में ५५
३२ मोहता परिवार कराची मे ६०
३३ मोहता परिवार वीकानेर मे ६१
३४ मोहताजी के पौत्र ६१
३५ मोहता भवन, नई दिल्ली ६१
३६ मोहता मार्केट कराची ६२
३७. गवर्नर सर लैंसलौट मार्केट मे ६३
३८ कराची की कपडे की दुकान का स्टाफ ६३
३६ वी० आर० हरमन की विदाई ६३
४० कारतारक कम्पनी के भागीदार ६४
४१ गिल साहव के वीकानेर आने पर ६५
४२ स्व० सेठ गोवरधनदासजी मूंधडा व स्व० रामरतनजी मूंदडा ६६
४३ श्री चाँदरतनजी, श्री दुर्गादासजी, श्री देवकिशन जी मूंदडा व उनका पुत्र ६७
४४ मोहता विल्डिग व मोहता कपडा मार्केट, कराची ६८
४५. मोहता कपडा मार्केट, वम्वई (तिरगा) ६६
४६ अकाल पीडित शिविर १६३८-३६ ७२
४७ अकाल पीडित शिविर, १६३८-३६ ७३
४८ अकाल पीडितो को अन्न, वस्त्र वितरण ७४
४६ नौरग देसर गाँव मे अनाज वितरण ७५
५० वनिता आश्रम, वीकानेर ७६
५१. महारानी भटियाणी वनिता आश्रम की महिलाएँ ७७
५२ वनिता आश्रम भवन, जोधपुर ७७
५३. पढरपुर में माहेश्वरी महासभा के अवसर पर ७८
५४ श्री रामगोपाल हिन्दू जीमखाना, कराची ८६
५५ महिला मडल, वीकानेर ८७
५६ स्वामीजी श्री उत्तमनाथजी महाराज गुरुजी ६६
५७. समय की माँग का आवरण पृष्ठ (तिरगा) १०२
५८ मोहताजी ७२ वर्ष की आयु मे १०३
५६. कुँवर जगदीश प्रसाद गोएनका व सौ० राजकुमारीवाई गोएनका १०६
६० शिशु यशोधरा वाई गोएनका १०७
६१ हरिजन ससद् सदस्यों के बीच मोहताजी १०८
६२ राजस्थान प्रदेश दलित वर्ग सघ के अधिवेशन पर १०६
६३ घास की रोटी दिखाते हुए किसान व अकाल पीडितो को वस्त्र वितरण २०६
६४ मोहता पैलेस, कराची २१२
६५ राष्ट्रपति के साथ २१३
६६ हरिजन वालको के साथ डाडियो का खेल २२२
६७ अकाल पीडितो को सूत दिया जा रहा है २२३
६८ श्री कोलायत मे सत्सग २२४
६६ मोहता भवन मे सत्सग २२५
७० गीता सत्सग भवन मे सत्सग २२६
७१ परसनेऊ गाँव मे उपदेश देते हुए २३२
७२ परसनेऊ गाँव मे सत्सगियों मे २३३
७३. सेठ चाँदरतनजी वागडी २३८
७४ डाडियो का खेल सम्वत् १६७१ २४८
७५ डाडियो के खेल में मोहताजी सम्वत् २०१४ २४६
७६ कुँवर मदनगोपालजी दम्माणी, सौ० रतनवाई दम्माणी व उनका कुटम्व २६२-६३
७७. श्री सेन्टिनली वीकानेर में ३०४
७८. श्री सेन्टिनली, मोहताजी, शिवरतनजी तथा डा० छगनलालजी ३०५

खंड १

जीवनी प्रकरण

१. आत्मवृत्त और इतिवृत्त का महत्व
२. समत्वयोग की साधना
३. वंश परिचय
४. जीवनी परिचय
५. व्यापार, व्यवसाय और उद्योग
६. समाज सुधार और सेवामयी साधना
७. साहित्य-सृजन और वेदान्त की ओर झुकाव

नोट—अध्याय ५-६ और ७ की संख्या भूल से ६-७ और ८ दे दी गयी है। पाठक संशोधन करके पढ़ने की कृपा करेंगे।

'बाबाजी"—आजकल आपके लिए बाबाजी अथवा भाईजी शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है। (यह चित्र १८ जनवरी १९५८ को बीकानेर में लिया गया।)

आत्मवृत्त और इतिवृत्त का महत्व

आत्मवृत्त अथवा आत्मकथा और इतिवृत्त अर्थात् जीवनी लिखने की प्रणाली हमारे देश मे बहुत पुरानी नही है। किसी भी महापुरुष ने अपनी जीवनी स्वय नही लिखी और दूसरो ने जो कुछ लिखा, वह अधिकतर श्रद्धा, भक्ति अथवा स्तुति की भावना से लिखा गया है। उससे किसी को कोई प्रेरणा मिलने की सम्भावना बहुत ही कम है। भावावेश मे किसी की ि नी भी स्तुति क्यो न कर ली जाय और किसी के प्रति कितनी भी श्रद्धा-भक्ति क्यो न प्रदर्शित की जाय, ऐ किसी को कोई लाभ नही मिल सकता और किसी का कोई पथ-प्रदर्शन नही हो सकता। उसको अपना पहुंच से बाहर मान कर केवल स्तुति तथा श्रद्धा-भक्ति का विषय समझ लिया जाता है। वह केवल पूजा का विषय रह जाता है, अनुकरण का नही। हमारा प्राचीन साहित्य अधिकतर ऐसे ही स्तुति परक अथवा श्रद्धा भक्ति परक ग्रन्थो से भरा हुआ है।

आत्म-कथा अथवा जीवनी लिखने की प्रणाली आधुनिक काल की देन है। जीवनी लिखने का उद्देश्य बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए। वह यह कि पढने वाला उससे कुछ प्रेरणा, स्फूर्ति, प्रोत्साहन एवं पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर सके। सभी मनुष्य अपने समय मे एकसी परिस्थिति मे पैदा होते हैं। उन परिस्थितियो मे कोई बडा बन जाता है, कोई साधारण बना रहता है और कोई साधारण स्थिति से भी नीचे गिर जाता है। इस पर कभी विचार नही किया जाता कि ऐसा क्यो होता है ? जीवनी अथवा आत्म-कथा मे यदि इस रहस्यपूर्ण गुत्थी पर कुछ प्रकाश नही पडता तो उसका लिखा जाना व्यर्थ है। लोकोत्तर रूप मे चरित्र नायक को उपस्थित करने के लिए जो जीवनियाँ लिखी जाती है वे उनको आम जनता से दूर हटा देती हैं। जीवनी अथवा आत्म-कथा एक प्रकाश स्तम्भ होना चाहिए, जो उलझनो से भरे ससार के ऊबड खाबड मार्ग पर चलने वालो को ठीक दिशा बता सके और उनको गिरने व भटकने से बचा सके। समुद्र की उत्तुंग लहरो पर चलने वाले जहाज के कप्तान की सी हम सबकी स्थिति है। कही भी किसी भी लहर में फस कर हम अपने मार्ग से विचलित हो सकते है। कही भी किसी भी चट्टान से टकराकर हमारा विनाश हो सकता है। कही किसी भी प्रलोभन में फँस कर हम अपने सम्पूर्ण जीवन की कमाई से हाथ धो सकते हैं। छोटी-से-छोटी भूल बडे-से-बडे अनर्थ का कारण बन सकती है। इन सबसे मानव को बचाने का काम उन महापुरुषो की जीवनियाँ अथवा आत्म-कथाये कर सकती है, जिन्होने ऐसी ही परिस्थितियो मे आत्म-रक्षा करके अपने जीवन का निर्माण किया होता है। भूल किससे नही होती, कौन अपने पथ से विचलित नही होता और जीवन की लम्बी यात्रा में किसकी टाँगें लडखडाती नही अथवा किसके पग डगमगाते नही ? लेकिन धीर, वीर और साहसी व्यक्ति एक बार की गई भूल की पुनरावृत्ति नही होने देते। वे एक बार विचलित होने के बाद दुबारा विचलित नही होते। भय, आशका और सन्देह दूसरी बार उनको घेर नही सकते। ऐसी धीरता, वीरता और ऐसा साहस पैदा करने के लिए सर्वसाधारण के सम्मुख किसी ऐसे उदाहरण का आदर्श के रूप में उपस्थित किया जाना आवश्यक है जो उनके लिए अनुकरणीय बन सके और जिसको वे अपने सरीखा समझ कर उसका अनुसरण कर सकें।

इसी कारण अनेक महापुरुषो ने अपनी आत्म-कथा लिखते हुए अपनी कमियो, कमजोरियो और भूलो को छिपाने का प्रयत्न नही किया। उनको उन्होने अत्यन्त स्पष्ट रूप में सबके सामने रख दिया। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्म-कथा को "सत्य के प्रयोग" नाम दिया है और जीवन के उत्कर्ष की कहानी के साथ-साथ अपकर्ष

की उन घटनाग्रो को भी छिपाया नही जहाँ वे विचलित हुए ग्रथवा विचलित होते-होते सहसा बच गए। ग्रमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ग्रपनी ग्रात्म-कथा "कल्याण-मार्ग का पथिक" नाम से लिखी है। कल्याण-मार्ग का पथिक बनने के लिए उनको ग्रपनी व्यक्तिगत कमजोरियो के साथ जो सघर्ष ग्रथवा ग्रतर्द्वन्द्व करना पडा उस पर उन्होंने पर्दा नही डाला। युवावस्था में उनमें वे सब निर्बलताए ग्रथवा दुर्बलताएँ प्राय चरम सीमा पर पहुँची हुई थी, जिनमें ग्रौसतन ससारी जीव फसे रहते हैं। सच यह है कि पतन के विवरण के बिना उत्थान की कहानी पूरी नही हो सकती। कमल सरीखा सुन्दर ग्रौर ग्राकर्षक फूल कीच मे ही पैदा होता है, परन्तु पैदा होने के बाद जब वह ग्रपने उत्कर्ष में खिल उठता है तब पानी भी उसको स्पर्श नही कर सकता। कमल-पत्र ग्रौर पुष्प की उपमा देते हुए यह बताया गया है कि ससार की साधारण परिस्थितियो में मनुष्य को किस प्रकार ग्रसाधारण जीवन बिताना चाहिए। वह ससार के सारे व्यवहार करता हुग्रा भी ऐसा निर्लिप्त होना चाहिए कि उसको कोई भी व्यवहार वैसे ही चिपट न सके जैसे कि कमल के पत्र ग्रौर पुष्प को कीच में जन्म लेने ग्रौर पानी में रहने पर भी वे चिपट नहीं सकते। लेकिन, साधारणजन के सामने ऐसे ग्रसाधारण जनो का उदाहरण उपस्थित हुए बिना वे इस ग्रादर्श-स्थिति को प्राप्त नही कर सकते।

प्रेरणात्मक रूप

इतिवृत्त तथा ग्रात्मवृत्त का रूप उस सीढी के समान होना चाहिए जिस पर चढने वाला निरन्तर शिखर की ग्रोर बढता चला जाता है। एक-एक पग ऊपर की ग्रोर बढाते हुए उसके मन में ऊपर उठने का ग्रात्म-विश्वास स्वत पैदा होना चाहिए। उसमें यह ग्रात्म-विश्वास उत्पन्न होना चाहिए कि वह उन्नति के शिखर की ग्रोर ग्रग्रसर हो रहा है। यदि कोई जीवनी ग्रथवा ग्रात्म-कथा पाठक के मन व ग्रात्मा में ऐसी प्रेरणा तथा ग्रात्म-विश्वास उत्पन्न नही कर सकती तो उसका लिखा जाना निरर्थक है। उसको पढते हुए पाठक की ग्रन्तरात्मा में एक ज्योति ग्रथवा प्रकाश का उदय होना चाहिए ग्रौर उससे उसका सारा जीवन ग्रालोकित हो जाना चाहिए। श्रद्धा, भक्ति ग्रथवा स्तुति के लिए लिखे गए ग्रन्थ किसी की महानता का दिव्य स्वरूप तो पाठक के सामने उपस्थित कर सकते हैं, परन्तु वह उसके प्रति पूजा की भावना रखते हुए भी उसको ग्रपने लिये ग्रगम्य मानकर दृष्टि से ग्रोझल कर देता हैं। उससे वह कुछ भी प्रेरणा प्राप्त नही कर सकता। ग्रतीत के महापुरुषो को सर्वसाधारण के सम्मुख इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है ग्रौर उनको ग्रवतारी बताकर ग्राम जनता से इतना ग्रलग कर दिया गया कि वे केवल मन्दिरो में मूर्तियो के रूप में बिठाए जाने लग गए। उनका ग्रनुकरण करना सर्वसाधारण ने इसलिए ग्रसम्भव मान लिया कि उनमें जो बडप्पन था उसको ईश्वर का ग्रश मान लिया गया, जिसके बिना बडप्पन की प्राप्ति ग्रसम्भव समझ ली गई। इसी कारण ग्रात्म-विकास के लिए प्रयत्न करना भी छोड दिया गया। फिर भाग्यवाद ने मानव को ग्रौर भी ग्रधिक निष्क्रिय, निराशावादी ग्रौर हतोत्साह बना दिया। भाग्य में जो लिखा है उसको कौन मेट सकता है ग्रौर जो नही लिखा है उसको कौन बना सकता है, इस मिथ्या विश्वास ने मानव की प्रगति व विकास के सब मार्ग ग्रवरुद्ध कर दिए।

पिछले कुछ वर्षों मे ग्रभिनन्दन ग्रन्थ लिखने ग्रथवा भेंट करने की जो परिपाटी प्रारम्भ हुई है उससे स्तुतिपरक ग्रथवा भक्तिपरक ग्रन्थो के निर्माण को ग्रौर भी ग्रधिक प्रोत्साहन मिला है। उससे जीवनी एव ग्रात्म-कथा लिखने का वास्तविक उद्देश्य बहुत उपेक्षित हो गया है। इसी कारण प्रस्तुत ग्रन्थ को ग्रभिनन्दन ग्रन्थ नाम नही दिया गया ग्रौर वह नाम दिया गया है जो चरित्र-नायक मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन के बहुत ग्रनुरूप है। एक व्यापारी का श्रीमत घराने मे जन्म लेकर ग्रपने को व्यावहारिक वेदान्त की साधना मे लगाना ग्रौर गीता सरीखे गूढ ग्रन्थ का ग्रध्ययन व चिन्तन करके उसके व्यावहारिक तत्त्वदर्शन को ग्रत्यन्त सरल व सुबोध

भाषा मे जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना साधारण घटना नही है। लोकनायक श्रीयुत माधव श्री हरि अण ने लक्ष्मी और सरस्वती का जो समन्वय आप मे पाया उसकी सराहना करते हुए आपके लिखे हुए "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ को उन लोगो के लिए अत्यन्त उपयोगी वताया है, जो लोकमान्य तिलक के "गीता रहस्य" सरीखे विशाल एव महान ग्रन्थ को पढने का कष्ट नही उठा सकते। उपनिपद रूपी गाय का दोहन करने वाले ने गीतारूपी जो दुग्धामृत प्राप्त कराया है उसको सभाल कर रखने के लिए "गीता व्यवहार दर्शन" को अणेजी ने एक वहुत सुन्दर कटोरे से उपमा दी है। मोहता जी गीता के कोरे प्रवक्ता अथवा व्याख्याता ही नही है, अपितु आपने गीता से जो कुछ प्राप्त किया है उसके अनुरूप अपने जीवन को ढालने का भी प्रयत्न किया है। इसीलिए प्रस्तुत ग्रन्थ को "एक आदर्श समत्व योगी" नाम देते हुए समत्व योग के आदर्श को न केवल सैद्धान्तिक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है अपितु उसके अनुरूप ढाले गए आपके जीवन का अनुकरणीय दृष्टान्त भी उसमे उपस्थित किया गया है। दृष्टान्त के विना किसी भी सिद्धान्त अथवा आदर्श को अपनाने की प्रेरणा साधारण व्यक्ति को प्राप्त नही हो सकती।

मोहता जी की साधना

मोहता जी ने स्वय इस सम्वन्ध मे जो कुछ लिखा है उसको यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। मोहता जी ने अपने इन शव्दो मे अपने जीवन की साधना का निचोड दे दिया है। आपने उन सिद्धान्तो का भी इन शव्दो मे प्रतिपादन किया है जिनको आपने साधना के परिणामस्वरूप प्राप्त किया है। आपने लिखा है कि "अपनी आयु के लम्वे समय मे मैंने जो अनुभव प्राप्त किए है और वहुत गहरे तथा सूक्ष्म विचारो के वाद मैं जिन निश्चयो पर पहुचा हु वे निम्न प्रकार हैं —

(१) हमारे देश की प्राचीन सभ्यता वहुत उच्च कोटि की थी। इस देश के प्राचीन विचारक अनेक स्थितियो मे से गुजरते हुए, अनुकूलताओ व प्रतिकूलताओ का सामना करते हुए, प्रारम्भिक अवस्था से शनै -शनै विकास व उन्नति करते हुए वे उस उच्च कोटि तक पहुँचे थे जिसको स्वर्णयुग कहते हैं। परन्तु यह प्रकृति का नियम है कि जो वहुत ऊपर चढता है वह वहुत नीचे गिरता भी है। इसके अनुसार जव यहाँ के लोग आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो प्रकार की उन्नति के शिखर पर पहुँच चुके तव सव प्रकार के सुखो मे मस्त होकर अक्रियात्मक हो गए जिससे गिरावट हुई और गिरते-गिरते इतने गिरे कि वर्तमान समय मे वहुत ही पिछडे हुए हैं और दशा अत्यन्त शोचनीय है। यह नियम है कि मनुष्य जव तक आगे वढने के लिए क्रिया-शील तथा तत्पर रहता है तभी तक उन्नति करता है और जव स्थिर व उद्यमहीन वन जाता है तव गिरावट होती है। उद्यमहीनता, आलस्य तथा प्रमाद तमोगुण के कार्य है। इनसे गिरावट अवश्य होती है। उन्नति की रुकावट होना, एक ही स्थिति मे वने रहना अर्थात् स्थिति पालकता गिरावट का कारण होती है। इसी स्थिति पालकता से यह देश पिछड गया और दूसरे देशो के लोग अपने उद्योग तथा अध्यवसाय से उन्नति कर गए। सवसे अधिक अकर्मण्यता यहाँ के लोगो मे वुद्धि से विचार की शक्ति का अभाव है क्योकि पहले वहुत विचार कर चुके थे। अधिक विचार की आवश्यकता नही समझी होगी। शारीरिक स्थूल कर्मों की अपेक्षा वुद्धि से विचार करने के अत्यन्त सूक्ष्म कर्मो मे वहुत अधिक परिश्रम होता है जिससे थकावट आ गई होगी। अतः यहाँ के लोगो मे विचार करने की शिथिलता आ गई। मनुष्य वुद्धि के वल से ही उन्नति करता है क्योकि वुद्धि शरीर आदि सवके ऊपर है। जव विचार-शक्ति शिथिल हो गई तो सव प्रकार का अध पतन हुआ। इसलिए यदि यहाँ के लोगो को फिर से उन्नति करना है तो विचार-शक्ति को पुन. जागृत करना होगा और लोगो को वुद्धि से काम लेना सिखाना होगा।

(२) साधारण जनता की विचार शक्ति का ह्रास होने के कारण वह नाना प्रकार के अधविश्वासो मे फँस गई और अनेक प्रकार की रूढियो, रीति-रिवाजो तथा कर्म-काडो की गुलामी मे उलझ गई। वह स्वतन्त्रता का अर्थ ही नही समझती है। अपने से भिन्न किसी अदृष्ट शक्ति और अनेक शक्तियो को मानकर आत्म-विश्वास खो बैठी तथा परावलम्बी बन गई। विचारहीन, धूर्त तथा स्वार्थी लोग जनता की इस निर्बलता से अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे लग गए और एक-दूसरे को लूटना, धोखा देना तथा छीना-झपटी करना ही उनका उद्देश्य हो गया।

(३) वही मनुष्य उन्नति कर सकता है जो इन आत्म-हत्या करने वाले अधविश्वासो, मानसिक दुर्बलताओ और विचार-हीनता को त्याग कर स्वावलम्बी होता है तथा स्वतन्त्र विचार रखता है। सबसे बडा अध-विश्वास अपने और जगत से भिन्न किसी एक व्यक्ति ईश्वर को मानने का है, क्योकि ईश्वर जगत से तथा सबके अपने स्वय से भिन्न कोई व्यक्ति विशेष नही है। प्रत्येक शरीर के भीतर "मैं" रूप से अनुभव होने वाली जो शक्ति है वही सारे जगत् मे व्याप्त ईश्वर है। इसलिए किसी विशेष व्यक्ति या विशेष शक्ति के रूप मे ईश्वर को नही मानना चाहिए। किन्तु, जगत के एकता स्वरूप समष्टि भाव को ही ईश्वर मानना चाहिए। क्योकि समष्टि रूप से वह सब मे है इसलिए ईश्वर को स्वय अपने मे अनुभव करना चाहिए। जब यह निश्चय हो जाएगा तो सब अधविश्वासो का मूल ही मिट जायगा। ईश्वर, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ग्रह-नक्षत्रो का अच्छा-बुरा फल, जादू-टोना और शकुन आदि के वहम-विचार ये सब अपने मन की कल्पनाएँ हैं। अपने से भिन्न कुछ भी नही है। इस सत्य का निश्चय करके इन सब अधविश्वासो से छुटकारा पा लेना चाहिए।

(४) जितने भी साम्प्रदायिक धर्म अथवा मजहब हैं वे सब मनुष्य को अधविश्वासी बनाते हैं और गुलामी की बेडियो मे जकडे रखते हैं, इसलिए सब मजहबो और सम्प्रदायो को नाशकारी समझ कर उनसे पीछा छुडा लेना चाहिए। ऐसे किसी धर्म का अनुयायी नही होना चाहिए। ऐसा करने मे नास्तिक कहलाने से नही डरना चाहिए। गुलाम आस्तिक से स्वतत्र नास्तिक अच्छा है।

साम्प्रदायिक धर्म या मजहब सदाचार या नैतिकता के सब से बडे शत्रु हैं क्योकि प्राय सभी साम्प्रदायिक धर्म जगत् से अलग एक व्यक्ति ईश्वर की मान्यता पर अवलबित हैं और वह ईश्वर एक अपार शक्ति-सम्पन्न सम्राट् की तरह बडा खुशामदपसन्द, रिश्वत लेने वाला और पक्षपाती होने के साथ-साथ दयालु और भक्त-वत्सल भी माना जाता है जिसकी खुशामद, प्रशसा और प्रार्थना आदि करने से और जिसके नामों का जाप करने से तथा जिसके नाम पर दान, पुण्य, कर्मकाण्ड आदि करने से और जिसकी कल्पित मूर्तिया और चित्र बनाकर उसके सामने भोग-प्रसाद आदि चढाने एव बलिदान आदि देने से वह प्रसन्न होकर सब पाप क्षमा कर देता है, मन माँगे पदार्थ, भोग-विलास, धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा, पुत्र-कलत्र दे देता है। मरने पर वह स्वर्ग भी भेज देता है और ऐसा न करने वालो पर क्रोध करके उनका सर्वनाश कर देता है। इस तरह वे लोग मानते हैं। जब साम्प्रदायिक धर्मों का आधार उनका ईश्वर ही खुशामदपसन्द और पक्षपाती है तो उनके अनुयायी पवित्र, सदाचारी व नीति-मान कैसे हो सकते हैं ? क्योकि ये सस्कार उन लोगो की माता के दूध के साथ ही उनकी रग-रग मे रमे हुए रहते हैं, इसलिए जब तक इन साम्प्रदायिक धर्मों या मजहबो मे यहाँ के लोगो की श्रद्धा रहेगी तब तक देश मे पवित्रता, सदाचार और नैतिकता का पनपना सम्भव नही, चाहे कितने ही उपाय क्यो न किये जायें। सदाचार और नैतिकता स्थापन करने का सबसे पहला उपाय जनता के हृदय से इन साम्प्रदायिक धर्मों मे श्रद्धा को समूल उखाड देने का प्रयत्न करना है। अधिकतर भ्रष्टाचारी और अनीति करने वाले दुराचारी लोग ही अपने कुकर्मों को माफ कराने के लिये पूजा-पाठ, जप-तप, हवन-अनुष्ठान, सन्ध्या-वन्दन, बलिदान, प्रार्थनाओ आदि द्वारा उस ईश्वर की खुशामद करते और उसको रिश्वतें देते हैं।

(५) धर्म का व्यवसाय करने वाले साधू-महात्मा, गुरु-पुरोहित, पडे-पुजारी, सत, भक्त, ज्योतिषी, योग के चमत्कारो से अच्छा-बुरा करने वाले सिद्ध लोग, जप-तप आदि अनुष्ठानो से सकट मिटाने और लाभ पहुचाने का ठेका लेने वाले ये सब लोग या तो स्वय भूल मे पडे हुए अधविश्वासी हैं या अधिकतर पाखण्डी, जालसाज, फरेबी, लम्पट और डाकू हैं। इन लोगो की लुभावनी बातो मे कभी नही आना चाहिए बल्कि इनके पास फटकना भी नही चाहिए। मनुष्य स्वय अपना भाग्य-विधाता है। दूसरा कोई कुछ भी नही कर सकता। जैसे कर्म वह करता है वैसे ही फल स्वय भोगता है। आपके अपने सिवाय दूसरा कोई भला-बुरा करने वाला नही है। इसलिए स्वय अपने पर निर्भर रहकर अच्छे कर्म करने और बुरे कर्म त्यागने चाहिए। इसी से उन्नति तथा सब प्रकार की सुख-शाति प्राप्त होगी। पहले के किए हुए कर्म ही प्रारब्ध होते है और वर्तमान समय के किए हुए कर्म भी तत्काल प्रारब्ध बन जाते है। इसलिए प्रारब्ध कर्मो को अधिक महत्त्व नही देना चाहिए। यदि वर्तमान मे हम बुरा कर्म करते हैं तो पहले के अच्छे कर्मो के फल को बदल कर उनका प्रभाव मिटा देते हैं और वर्तमान के अच्छे कर्मो से पहले के बुरे कर्मो के फल को बदल सकते हैं। इसलिए सदा अच्छे कर्मो मे लगे रहना चाहिये। अच्छे कर्म वही है जिनसे समाज का समष्टि हित होता है। बुरे कर्म वे हैं जिनसे समाज का अहित होता है। अच्छे-बुरे कर्मो का सच्चा अर्थ यही है। सभी शास्त्रो मे शुभ और अशुभ कर्मो की व्याख्या इसी आधार पर की गई है परन्तु साम्प्रदायिक पाखड के शास्त्रो मे धार्मिक कर्मकाड और उपासना आदि को जो शुभ कर्म कहा गया है वह सब पाखड है। व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरो को हानि पहुचाना बुरा कर्म है और व्यक्तिगत स्वार्थो को सब के स्वार्थो मे जोड देना ही अच्छा अथवा शुभ कर्म है। इसलिये मनुष्य को अपने-अपने शरीर की योग्यता के कर्तव्य-कर्म समाज के हित को लक्ष्य मे रखते हुए करते रहना चाहिए। अपने शरीर के सुख के लिए आलसी, प्रमादी व निरुद्यमी नही होना चाहिए और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए दूसरो को नही दबाना और दूसरो के स्वार्थ मे हानि नही पहुचाना चाहिए। इसी से कल्याण या मुक्ति होगी। दूसरे सब जजाल छोड देने चाहिए।

(६) सामाजिक रीति-रिवाज और जात-पाँत के सब बन्धन मनुष्य की स्वतत्रता छीनते हैं और पतन करते हैं। इन सब को तोडकर मनुष्य को इनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। परन्तु ये सब बन्धन धार्मिक अन्धविश्वासो से उत्पन्न होते हैं, इसलिए धार्मिक अन्धविश्वासो को छोडे बिना सामाजिक बुराइयाँ नही मिट सकती और न बन्धन छूट सकते हैं।

(७) मैंने यह अच्छी तरह अनुभव किया है कि साधारणतया पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक कर्तव्य-परायण तथा सच्चरित्र होती है। यद्यपि वह अधविश्वास तथा भय के कारण ही ऐसी बनी हुई है। पुरुष उसके इन गुणो का अनुचित उपयोग करता है और स्त्रियो को दबाए रखता है और उनकी शारीरिक निर्बलता का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें पददलित रखता है। ये सब अत्याचार और क्रूरताएँ मिटा देनी चाहिए और स्त्रियो को समाज के आधे अग के पूरे अधिकार देने चाहिए। जब तक स्त्रियाँ पुरुषो के समान योग्य नही बनती तब तक समाज, देश और घरो मे सुख-शान्ति सम्भव नही। स्त्री-पुरुष दोनो का योग ही मनुष्य है।

(८) प्रत्येक मनुष्य (स्त्री-पुरुष) को गीता के उपदेशो को अच्छी तरह समझना चाहिए और उसमें बताए हुए मार्ग पर चलना चाहिए। अपने सब व्यवहारो, काम-धधो तथा व्यवसाय आदि शरीर-यात्रा के सारे कामो मे गीता का आधार लेना चाहिए। उसी से सारी सफलताएँ प्राप्त होगी। जहाँ तक बन सके विद्यार्थियो को बचपन की अवस्था मे ही गीता का पाठ आरम्भ करा देना चाहिए और जब वे समझने योग्य हो जायें तब "गीता विज्ञान" और "गीता का व्यवहार दर्शन" सरीखे ग्रन्थो को पढ़ाना चाहिए। गीता मे बताए हुए सात्त्विक आहार, सात्त्विक कर्म, सात्त्विक त्याग आदि करने पर सदा ध्यान रखना चाहिए। जहाँ तक बन सके जीवन सादा रखकर अपनी

आवश्यकताएँ कम करनी चाहिए। इसी से मन को शान्ति मिलेगी और तभी आत्मिक उन्नति होगी। विलासी जीवन, राजसी व तामसी आडम्बर तथा भोग व आराम आदि से शरीर मे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, मन मे अशान्ति रहती है, तृष्णा बढती है और यह अमूल्य जीवन वृथा ही चला जाता है। इस शरीर मे ही परम पद के प्राप्त करने की योग्यता होती है और वह सात्त्विक आचरण से प्राप्त की जा सकती है, रजोगुण व तमोगुण से कदापि नही। इसलिए गीता से इस विषय को भली-भाँति समझ कर उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

(६) मनुष्य को सगति पर बहुत ध्यान रखना चाहिए। अच्छे आचरण वाले मनुष्यो की सगति करनी चाहिए और बुरे आचरण वालो का साथ त्याग देना चाहिए। हमारे यहाँ अधिकाश मे धर्म का व्यवसाय करने वाले पाखण्डी लोगो का आचार बहुत ही दुष्ट है। इन से स्वय तथा अपने बालको और स्त्रियो को भी बचाना चाहिए।"

प्रस्तुत ग्रथ मे मोहताजी के जीवन-परिचय के साथ कुछ व्यक्तियो के सस्मरण भी दिये गये है, जो आपके स्वभाव, चरित्र और व्यक्तित्व पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

मोहता जी के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एव राजनीतिक विचार बहुत ही स्पष्ट और सुलझे हुए हैं। हमारे देश मे पिछली सदी मे मुख्यत दो विचार-धाराएँ विद्यमान रही हैं। महाराष्ट्र मे उनमे से एक के प्रतीक थे श्री आगरकर और दूसरी के थे लोकमान्य तिलक। श्री आगरकर समाज-सुधार को राजनीति की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते थे और लोकमान्य की दृष्टि मे समाज सुधार की अपेक्षा राजनीति का महत्त्व अधिक था। समाज सुधार के बिना पहले विचार के लोग स्वराज्य की प्राप्ति और उसके किसी प्रकार प्राप्त हो जाने पर उसको सँभाल सकने की क्षमता का पैदा होना सम्भव नही मानते थे। दूसरे, राजनीतिक स्वतन्त्रता के प्राप्त हो जाने पर कानून द्वारा समाज-सुधार का सारा कार्य कर लेने मे विश्वास रखते थे। मोहता जी के विचार इन पहली श्रेणी के विचारको के साथ मेल खाते हैं। आपने एक ग्रन्थ "समय की माँग अथवा कृष्ण की क्रान्ति" नाम से सम्वत २००७ (सन् १६५०) मे लिखकर प्रकाशित किया था। उसमे आपने बताया है कि वर्तमान राज्य-व्यवस्था का सफल हो सकना सभव नही है। उसके सुधार के लिए आपने गीता मे प्रतिपादित चार प्रकार की क्राति को आवश्यक माना है। वर्तमान स्थिति में आपकी दृष्टि में प्रजातन्त्र की अपेक्षा अधिनायकवाद अधिक उपयुक्त है। आपने वर्तमान स्थितियो में साम्यवाद का प्रचार होना भी आवश्यम्भावी बताया है। आपका यह मत है कि सामाजिक एव धार्मिक क्राति से यदि जनता के चरित्र का निर्माण नही हुआ तो वह प्रजातन्त्र के योग्य नही बन सकती और प्रजातन्त्र को सुरक्षित नही रख सकती। अपने प्रधान मत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की योग्यता एव रीति-नीति को सर्वथा उपयुक्त बताते हुए भी आपकी दृष्टि मे जनता का चरित्र उतना ऊँचा नही उठ सका है जितना कि प्रजातत्री शासन को सफल बनाने के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ को केवल स्तुतिपरक अथवा श्रद्धा-भक्तिपरक न बनाकर यथासम्भव वास्तविकता का सूचक बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ से पाठक मोहता जी के विचारो को जानने और समझने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे। आप घर-गृहस्थी और ससार का परित्याग कर साधु अथवा महात्मा नही बन गए हैं, फिर भी एक सत, विचारक और दार्शनिक हैं। आपने जीवन के व्यवहार और दर्शन दोनो का सागोपाग सूक्ष्म विवेचन करके उसको अपने दैनिक जीवन मे दूध-पानी की तरह एक करने का प्रयत्न किया है। इसी रूप मे आपका जीवन हम सबके लिए अनुकरणीय बन गया है। गीता मे ऐसे जीवनयापन करने वाले को "समत्व योगी" कहा गया है और वर्तमान परिस्थितियो में हमने आपको आदर्श समत्वयोगी कहा है। सस्मरणो मे पाठक देखेंगे कि अनेक महानुभावो ने आपको इसी रूप में देखा है। पाठक यदि आपके सक्रिय जीवन से कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे तो इस ग्रन्थ के लिए किया गया प्रयत्न कुछ सार्थक एव सफल हो सकेगा।

२

समत्व योग की साधना

सामान्य रूप से योग शब्द का अर्थ समाधि किया जाता है, जो कि साधुओ, सन्यासियो और महात्माओ आदि के लिए मानी गई है। साधारण गृहस्थ अथवा ससारी जीव का उसके साथ कोई सम्बन्ध नही माना जाता। योग के साथ साधन अथवा साधना शब्द का प्रयोग होने से वैसा भ्रम होना और भी अधिक सम्भव है, परन्तु "गीता" ऐसा नही मानती। उसमे "समत्व योग उच्यते" का स्पष्ट रूप से विधान किया गया है, अपने कर्तव्य कर्म को अपनी सामर्थ्य, शक्ति एव योग्यता के अनुसार सचाई व ईमानदारी और साम्यभाव से पूर्ण चतुराई के साथ करना योग कहा गया है, जिसका पालन प्रत्येक स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध को अपने जीवन मे नित्य प्रति और हर समय करना चाहिए। किसी भी क्षेत्र मे, चाहे वह कुछ भी काम क्यो न करता हो, वही उसके लिए योग है। शर्त केवल यह है कि उसको वह काम पूरी चतुराई के साथ करना चाहिए। साधारण किसान का कृषि कर्म, साधारण मजदूर का उद्योग धन्धो-सम्बन्धी उत्पादन कार्य, साधारण चर्मकार का मोची का काम और साधारण मेहतर का सफाई आदि का धन्धा सब योग कहे जा सकते हैं। इसलिए योग-साधना के लिए ससार का त्याग करके साधु, सन्यासी अथवा महात्मा बनने की आवश्यकता नही है, न उसके लिए लँगोटी लगाकर जगल या पहाड मे जाने की आवश्यकता है और न नाक पकडकर लम्बे साँस खीचते हुए तरह-तरह के आसन लगाने आवश्यक हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने घर मे, बाल बच्चो मे और ससार मे विचरता हुआ अपने काम-काज मे लगा रहकर भी योगी बन सकता है और समत्व की भावना से अपने काम-काज का करना ही उसको समत्व योग का साधक बना सकता है।

यह समझने की आवश्यकता है कि यह विश्व एक और सम आत्मा के अनन्त कल्पित रूपो का बनाव है। इन से उसमे कोई भेद पैदा नही होता।* विश्व का मूल तत्त्व यानी आत्मा एक और सम होने पर भी यह कल्पित बनाव, यानी उसकी प्रकृति का खेल सत्व, रज और तम गुणो की कमीवेशी के कारण अनन्त भेदो और नाना प्रकार की विषमताओ से भरा हुआ है। वे भेद और विषमताएँ कल्पित होने के कारण परिवर्तनशील है और निरतर बदलती रहती हैं। इसलिए वे मिथ्या हैं। जिसका कोई स्थायित्व नही होता, वे चीजें झूठी होती है। इन कल्पित भेदो के बदलते रहने पर भी इनका मूल तत्त्व सदा एक सा रहता है। इस अटल सिद्धान्त अर्थात् विश्व के मूलतत्त्व आत्मा की एकता, समता और नित्यता का दृढ निश्चय रखते हुए प्रकृति के तीन गुणो के नाना प्रकार

---

* मनस्वी श्री मोहता जी रचित यह भजन इस प्रसग के कितना अनुकूल है।

मैं हूँ सब का आतम प्यारा, मेरे सकल्प में ससारा ॥टेर॥
इच्छा करूँ जब खेल रचाऊँ, नाम रूप नाना बन जाऊँ। तीन गुणों का करकेपसारा ॥१॥
आप ही भोग आप ही भोगी, आप ही रोग आप ही रोगी। हर्ष, शोक-सुख-दु:ख से न्यारा ॥२॥
ये काया उपजे मिट जावे, एक पलक भी स्थिर न रहावे। मैं तो सदा रहता इकसारा ॥३॥
मैं हूँ मगल रूप सदा ही, सत् चित् आनन्द सब के माहीं। जड चेतन का मैं हूँ आधारा ॥४॥
कहे 'गोपाल' सुनो नर-नारी, यह निज-ज्ञान लेवो उरधारी। आप आपका करो उधारा ॥५॥

"प्रेम भजनावली" (पृष्ठ १३)

की विषमताओ के इस खेल मे, जिसमे जिस गुण की प्रधानता हो, उसके साथ वैसा ही यथायोग्य वर्ताव करना और गुणो की योग्यता के अनुसार ही यथायोग्य ससार मे व्यवहार करना समत्व योग का व्यवहार होता है। गुणो की कमीबेशी के अनुसार यथायोग्य भिन्नता और विषमता के आचरण करते हुए भी यह तथ्य कभी नही भुलाया जाना चाहिए कि ये भिन्नताएँ और विषमताएँ कल्पित होने के कारण मिथ्या हैं और इनका मूल आधार आत्मा, नित्य, एक, सम और सत्य है। अत सबकी आपस मे एकता सदा सत्य है। गुणो के अनुसार अलग-अलग व्यवहार करने से सबकी मौलिक एकता और समता को किसी प्रकार की हानि नही पहुचती। परन्तु यदि इस भिन्नता और विषमता के खेल मे गुणो की कमी बेशी के अनुरूप यथायोग्य आचरण नही किया जाय, अर्थात् सर्वत्र एक ही तरह का व्यवहार किया जाय, तो विषमता उत्पन्न होकर खेल बिगडता है।

इस मौलिक एकता और समता के ज्ञान युक्त तीन गुणो की कमी वेशी के अनुसार ससार के व्यवहार करने का विधान गीता मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है और इसी को समत्व योग कहा गया है।

इस तरह एकता और समता के मूल सिद्धान्त के आधार पर जगत की कल्पित भिन्नताओ मे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार करने का प्रत्यक्ष उदाहरण मनुष्य का शरीर है। जिस तरह एक ही शरीर के अनेक अग होते हैं, जिनके अलग-अलग गुणो के अनुसार काम करने की भिन्न-भिन्न तरह की योग्यताएँ होती हैं—मस्तक सत्व-गुण प्रधान होने के कारण उसमे ज्ञान और विचार करने की योग्यता होती है, हाथ रजोगुण प्रधान होने के कारण उनमे काम करने की योग्यता होती है और पैर तमोगुण प्रधान होने के कारण उनमे सारे शरीर को उठा कर चलने-फिरने की योग्यता होती है—इसी तरह भिन्न-भिन्न अगो की भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार करने की योग्यताएँ होती हैं और उनके अनुसार वे आचरण करते हैं। परन्तु वे सब एक ही शरीर के विविध अग होते हैं और एक दूसरे को एक ही समान प्यारे लगते हैं। इसलिए उनमे एकता और समता बनी रहती है। यदि कोई अग रोगी या निकम्मा हो जाय तो उसका यथायोग्य उपचार किया जाता है और आवश्यकता होने पर काट भी दिया जाता है। परन्तु ऐसा करने पर भी सारे शरीर की एकता और समता नष्ट नही होती, क्योकि शरीर की एकता और समता बनाए रखने के लिए ही ऐसा किया जाता है। इस तरह के आचरण करने से ही शरीर का व्यवहार यथावत् सुख और शाति-पूर्वक चलता रहता है। इसी तरह विश्व को नाना अगो युक्त एक ही विराट शरीर समझ कर गुणो की कमी बेशी के अनुसार यथायोग्य व्यवहार करना समत्व योग का व्यवहार है।*

---

* इस विश्वात्म रूप के सम्बन्ध मे मनस्वी श्री रामगोपाल जी रचित यह भजन कितना उपयुक्त है।

सतगुरु कहे समझाय आप आतम सव में।
सव चित आनन्द रूप आप आतम सवमें, नाना खेल करे जग में ॥टेर॥
नारी पुरुष में एक है आतम सव में, ऊँच नीच नहीं दोय, आप आतम सब में, नाना खेल करे जग में।
जैसे एक शरीर के आतम सव में, अग अनेकों होय आप आतम सप में, नाना खेल करे जग में ॥१॥
आँख, नाक, मुख, कान, त्वचा आतम सव में, हाथ, पाव, मलद्वार आप आतम सव में, नाना खेल करे जग में।
जैसी जिसकी योग्यता आतम सव में, करते सभी व्यवहार आप आतम सब में, नाना खेल करे जग में ॥२॥
एक सूत्र में बन्धे हुए आतम सव में, दु ख सुख में सव साथ आप आतम सव में, नाना खेल करे जग में।
भेदभाव कुछ भी नहीं आतम सव में, मिले रहें दिन रात आप आतम सव में, नाना खेल करे जग में ॥३॥
सव का यही उद्देश्य एक आतम सव में, सव तन में सुख होय आप आतम सव में, नाना खेल करे जग में।
तैसे ही मिल के रहो आतम सव में, भेद भाव को खोय आप आतम सव में, नाना खेल करे जग में ॥४॥

"प्रेम भजनावली" (आतम-ज्ञान भजन ३ पृष्ठ ११)

परस्पर विरोधी द्वन्द्वो मे सम बने रहने का स्पष्टीकरण

यह प्रश्न उठता है कि समत्व योगी अनुकूलताओ और प्रतिकूलताओ को अनुभव करता है कि नही ? अनुकूल वेदनाओ मे उसको सुख का और प्रतिकूल वेदनाओ मे दुःख का अनुभव होता है कि नही ? यदि होता है तो फिर वह सम कैसे बना रह सकता है ?

इसका समाधान यह है कि समत्व योगी ऐसा जड नही हो जाता कि जिसको अनुकूलता, प्रतिकूलता का भान न हो, किन्तु उसकी चेतना-शक्ति साधारण लोगो से इतनी अधिक विकसित होती है कि अनुकूल, प्रतिकूल वेदनाओ का जितना उसको अनुभव होता है, उतना साधारण लोगो को नही हो सकता, परन्तु वह अपने गम्भीर विचार से अनुकूलताओ और प्रतिकूलताओ का तात्त्विक विवेचन करके उन दोनो को अन्योन्याश्रित (जोडा) समझ कर उनसे प्रभावित नही होता, किन्तु अपने अतःकरण एवं स्वभाव का सन्तुलन बनाये रखता है।

मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता समत्व योग का पूरी तरह आचरण करने का दावा नही करते, किन्तु अपने को उस मार्ग का एक पथिक अर्थात् जिज्ञासु मानते हैं। मनुष्य के जीवन मे इस जिज्ञासा अथवा मुमुक्षु भावना का बना रहना उसके उत्कर्ष के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह भावना वह सोपान है जिस पर पैर रखता हुआ मनुष्य ऊपर उठता चला जाता है। सत्सगति, अध्ययन, चिन्तन और मनन मनुष्यो मे उस भावना को पैदा करते हैं और भावना के पैदा हो जाने के बाद उसके प्रकाश से लाभ उठाना मनुष्य का अपना काम है। दीपक प्रकाश देता है परन्तु उसके प्रकाश मे काम-काज मनुष्य स्वय करता है। दीपक साधन मात्र है। गीता और वेदान्त का मनन करके अनुकूलताओ और प्रतिकूलताओ मे सम बने रहने का जो अनुभवपूर्ण व्यवहार आपने किया है, वह सक्षेप मे यहाँ दिया जाता है। साधारण व्यक्ति ऐसे ही व्यवहार से कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकते है।

मानापमान मे सन्तुलन

आत्मा तो एक, सम, सदा एक रस रहने वाला निर्विकार है। उसका मान अपमान कुछ हो नही सकता। और शरीर अनित्य तथा परिवर्तनशील है, इसलिए उसके मान-अपमान भी अनित्य और परिवर्तनशील होते हैं। उनका स्थायित्व कुछ भी नही होता। थोडी देर के लिए मान होता है और थोडी ही देर के लिए अपमान। इन दोनो का जोडा विरोधी होने पर भी एक साथ रहता है। जहाँ मान होता है वहाँ उसकी प्रतिक्रियास्वरूप अपमान का रहना भी स्वाभाविक है। इस प्रकार विचार करता हुआ समत्व योगी मान और अपमान के व्यवहार से प्रभावित नही होता। मान और अपमान मे संतुलन बनाये रखना सामान्य बात नही है। उसके लिए भी असाधारण साधना की आवश्यकता है। साधना को ही दार्शनिक भाषा मे योग कहा गया है। इसीलिए मानापमान मे समभाव समत्व योग की ही एक साधना है। स्मृतियो मे ब्राह्मण के लिए यह विधान है कि वह मान को विष और अपमान को अमृत समझकर मान की कभी इच्छा न करे और अपमान से दूर नही भागे। तात्पर्य यह है कि मानव-जीवन मे मान और अपमान की स्थिति पैदा होना सर्वथा सम्भव है। उससे भागना अथवा भय करना कायरता का सूचक है और कायर रह कर मानव-जीवन निभाया नही जा सकता। गीता और उपनिषदो का स्वाध्याय मनुष्य मे मान-अपमान के प्रति जिस सम दृष्टि अथवा सम भावना को पैदा कर सकता है उसका एक उज्ज्वल उदाहरण आपका जीवन है। आप के जीवन मे अनेक बार ऐसे प्रसग आये जब आप को अकल्पित मान-प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और ऐसे भी अवसर आए जब आपका अपमान करने मे कुछ भी उठा न रखा गया। बीकानेर सरीखे सामाजिक रूढियो और धार्मिक अधविश्वासो के गढ़ मे खडे होकर अकेले

ही चहु-मुखी सामाजिक एव धार्मिक क्रान्ति का शख फूंकना आपके असाधारण साहस एव धैर्य का सूचक है। उसके लिए जो निन्दा, तिरस्कार, गाली-गलौज तथा भर्त्सना आपकी की गई उसमे कोई दूसरा व्यक्ति अपने आदर्श अथवा सिद्धान्त पर टिका नही रह सकता था। "तीन धडा" बन्द करके शिक्षा-प्रसार, विधवा-विवाह तथा हरिजनोद्धार मे आपने जब से तन, मन, धन से अपने को लगाया तब भी आप पर गाली-गलौज की वर्षा की गई। आपके प्रति अपमानपूर्ण व्यवहार की जो पराकाष्ठा की गई उसकी सहज मे कल्पना करना कठिन है। "अबलाओ का इसाफ" पुस्तक सन् १९२८ मे लिखी गयी थी। उस पर प्राय सारे ही मारवाडी समाज मे यहाँ तक कि सुधारक युवको मे भी रोषपूर्ण वातावरण पैदा हो गया और आपको अपमानित करने मे कुछ भी उठा न रखा गया था। आपका सामाजिक बहिष्कार किया गया। इसी प्रकार मान व प्रतिष्ठा के अवसर भी कई बार जीवन मे आये परन्तु आप न तो कभी किसी प्रकार के अपमान से विचलित हुए और न कोई मान आपको अपने कर्तव्य से विमुख कर सका। निरन्तर लोक-सेवा और लोकोपकार करते हुए भी आपने किसी पद, प्रतिष्ठा अथवा उपाधि के प्राप्त करने की कभी कोई इच्छा नही की। सब स्थितियो मे आपने अपने चित्त के सतुलन और साम्यभाव को बनाये रखा।

हर्ष और शोक मे समान व्यवहार

हर्ष और शोक भी अनित्य और अस्थायी होते हैं। पुत्र-जन्म, पुत्र-विवाह और अन्य अवसरो मे स्वाभाविक हर्ष की अनुकूलता को अनुभव करते हुए भी आप मे कभी हर्षोन्माद पैदा नही हुआ। अपने छोटे भाई, इकलौती पुत्री, इकलौते दोहिते और धर्मपत्नी आदि स्वजनो की मृत्यु के शोकोत्पादक अवसरो पर प्रतिकूलता का अनुभव करते हुए भी आपका अन्त करण शोकाकुल नही हुआ। ऐसे अवसरो पर आपने सदा ही गीता के दूसरे अध्याय के ११वें से ३०वें श्लोक मे प्रतिपादित भावो का चिंतन एव मनन करते हुए अपने चित्त का सन्तुलन नही खोया।

हर्ष और शोक का भी परस्पर विरोधी जोडा होता है। जहाँ हर्ष होता है वहाँ शोक भी होता है। दोनो विरोधी भाव परस्पर मे कट कर दोनो समाप्त और सम हो जाते हैं। इस विचार से अन्त करण की समता को आपने बनाये रखा। ऐसे सकटापन्न अवसरो पर अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय करने मे आपको कोई कठिनाई अनुभव नही हुई और सर्वथा मौलिक ढग से आपने अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय किया।

सुख-दु ख के प्रति समबुद्धि

सुख और दु ख शरीर और मन के धर्म है। जब शरीर और मन परिवर्तनशील और अस्थायी हैं तो उनके सुख-दु ख आदि भी परिवर्तनशील और अस्थायी होते हैं। सुख और दु ख का भी जोडा है। सुख के साथ दु ख और दु ख के साथ सुख लगा हुआ है। जब कभी आपके शरीर मे आघात हुए, बीमारी हुई या बिच्छू आदि जन्तुओ ने आपको डक मारे तब पीडा का अनुभव करते हुए और उनका यथोचित उपचार करते हुए भी आपने अपने अन्त करण को विक्षिप्त नही होने दिया। इसी प्रकार अनुकूल पदार्थों को भोगते हुए और पाँचो इन्द्रियो के विषयो का व्यवहार करते हुए भी उन मे आपने इतनी आसक्ति नही पैदा होने दी कि उनको छोडने की इच्छा ही न हो और उनके विछोह से आपका अन्त करण व्याकुल हो जाए।

हानि-लाभ मे समान स्थिति

अन्य विरोधी जोडो की तरह हानि और लाभ का भी अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और वे भी अस्थायी हैं सदा एक समान नही रहते। कभी हानि हो जाती है कभी लाभ। अपने व्यापार मे जब आपको अधिक
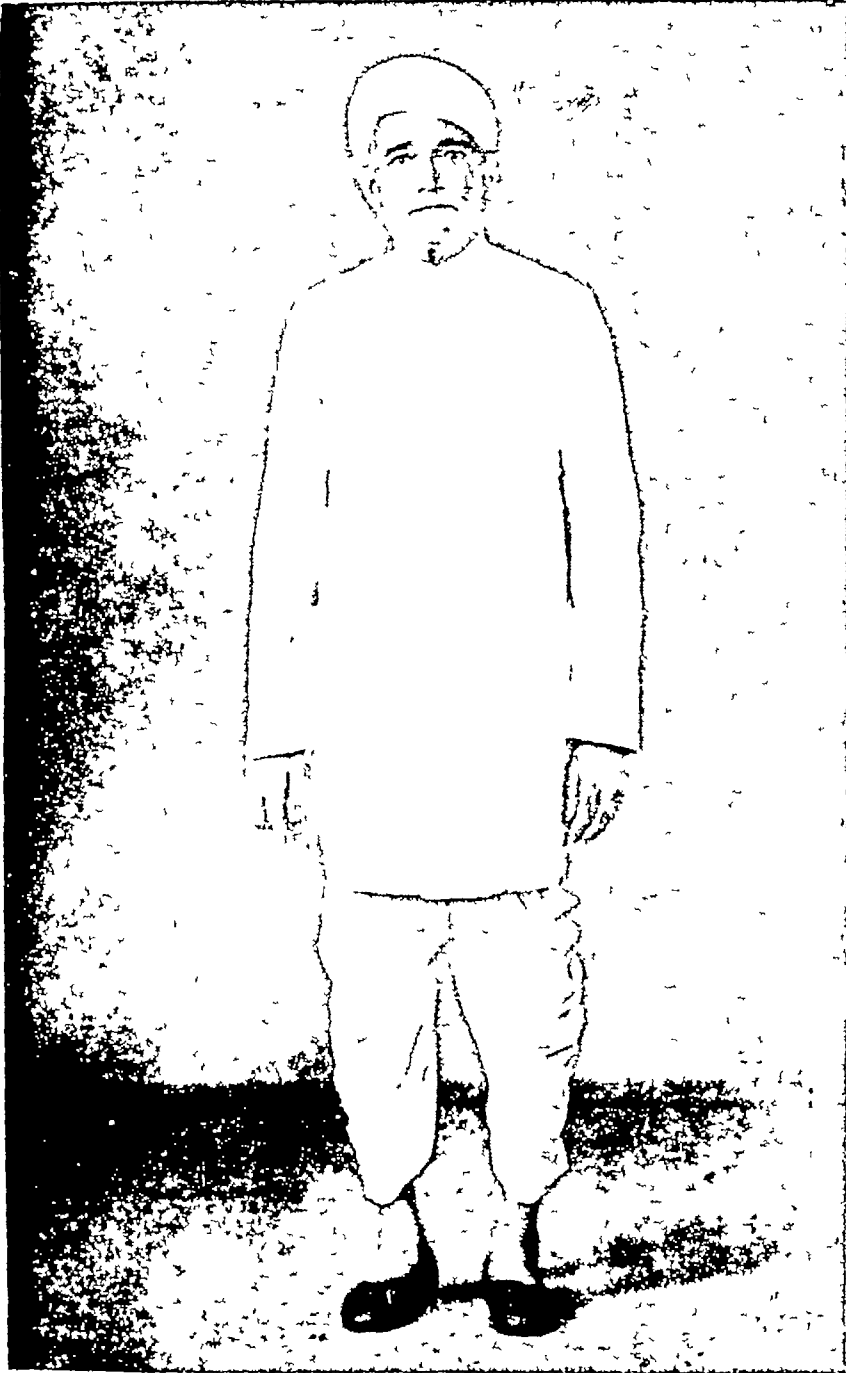
सन् १६४० मे श्री मोहता जी ।

स्वर्गीया श्रीमती मुगनी बाई सुपुत्री श्रीरामगोपाल जी मोहता

स्वर्गीय श्री भैरव रत्न बागडी
मोहताजी का इकलौता दोहिता

लाभ हुआ तव उसमे अनुकूलता का अनुभव करते हुए भी आपने अपने चित को विशेष रूप से प्रफुल्लित नही होने दिया और उस लाभ के उत्साह मे कोई विशेष हर्षोत्सव नही मनाये और न अपनी कार्य-कुशलता पर अभिमान किया। नुकसान होने पर प्रतिकूलता का अनुभव करते हुए भी, अपने अन्त करण मे सन्ताप पैदा नही होने दिया और न किसी प्रकार का कोई विषाद किया। देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के अवसर पर कराची का राजाओ का सा वैभव और अपार सम्पत्ति छोडकर वहाँ से आना पड़ा। उस भारी क्षति की प्रतिकूलता पर भी आपने अपने अन्त करण पर ऐसी कोई गहरी चोट नही लगने दी। वह अवसर ऐसा था जवकि अनेको की हृदय की गति वन्द हो गई थी। स्वप्न की तरह एकाएक सब कुछ वदल गया। परन्तु आपने अपने हृदय मे साधारण सी भी व्याकुलता उत्पन्न नही होने दी और अपने कुटम्बी जनो को भी हिम्मत नही हारने दी। जैसी स्थिति थी, उसी मे सन्तुष्ट रहते हुए धैर्य और उत्साहपूर्वक उद्यम करते रहने की प्रवृत्ति आप मे वनी रही।

उचित रूप से व्यापार और उद्योग-धन्धे अच्छी तरह करते रहने से और उसमे समुचित नफा रखने से जो लाभ होता रहा, उसी मे सन्तुष्ट रहने का प्रयत्न आपने सदा किया। छल, कपट और धोखेवाजी से लूट खसोट करने के लिए आपका मन कभी नही ललचाया और उद्योग तथा परिश्रम के विना धन कमाने के लिए सट्टे-फाटके, जूए और लाटरी आदि पर दाव लगाने की प्रवृत्ति आप मे पैदा नही हुई। अन्त करण का सन्तुलन सदा वना रहा। व्यापार, व्यवसाय व उद्योग मे ऐसा सन्तुलन वनाये रखना वडा कठिन है।

हार-जीत अथवा सफलता-असफलता मे सम व्यवहार

सासारिक व्यवहार, विशेषकर व्यापार और उद्योग-धन्धो मे प्रतिद्वदिता स्वाभाविक है, जिसके कारण कभी-कभी लडाई-झगडे भी हो जाते हैं। जहाँ तक सभव हो सका, आपने अदालतो मे जाना या न्यायालयो मे मुकदमे लडना पसन्द नही किया। जब कभी ऐसी परिस्थिति पैदा हुई, तव आपने यथासभव आपस मे समझौता करके निपटा लेना या पच-फैसला करवा लेना उचित समझा। यदि कभी विवश होकर न्यायालयो मे जाना भी पडा तो पूरी कार्यवाही करने पर जीत अथवा हार जो भी हो जाती उससे अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का अनुभव करते हुए भी आपके अन्त करण का सन्तुलन बना रहता था। वीकानेर मे आप के कुटुम्व मे सेंसोलाव के श्मशानो को लेकर विरादरी वालो के साथ वडी जिद्द चली और वडा झगडा हुआ। आप व्यक्तिगत रूप से उस झगडे मे पडना नही चाहते थे और अपने कुटुम्व वालो को भी आपने उसमे न पडने का परामर्श दिया था। उन्होने आपकी सम्मति नही मानी और कई वर्षो तक वह झगडा चलता रहा। तव आपने उसमे पूरा सहयोग दिया और वहुत परिश्रम किया। अदालती कार्यवाही पूरी हो जाने पर भी १०, १२ वर्षों तक महाराजा गगासिह जी ने कोई फैसला नही सुनाया। फिर राववहादुर शिवरतन जी के अथक परिश्रम के फलस्वरूप महाराजा गगासिह जी ने आपके पक्ष मे हुक्म दिया। आपकी उसमे विजय हुई। आपके कुटुम्वी जनो को उस पर वडी प्रसन्नता हुई परन्तु आपका चित्त विशेष प्रफुल्लित नही हुआ।

'कोलवार' प्रकरण पर माहेश्वरी समाज मे सघ और पचायत के बीच वहुत वड़ा सघर्ष हुआ। आप सघ पार्टी मे थे और 'कोलवारो' के साथ विडलो का और विडलो के साथ आप का सवन्ध होने से सघर्ष का मुख्य केन्द्र आपका घर भी था। सघ पार्टी के सव लोग आपके साथी गिने जाते थे। जव यह झगडा आरम्भ हुआ तव आपने सघ पार्टी वालो को स्पष्ट कह दिया था कि "कोलवारो के विषय मे सघ और पचायत वालो के मूल सिद्धान्तो मे आपस मे कोई अन्तर नही है, केवल पचायत वालो की मठमर्दी सहन नही होने के कारण आप लोग उनसे सघर्ष करते हैं, जिससे समाज मे इतनी कलह और अशान्ति वढ रही है। झगड़े का मूल कारण केवल हमारा-विडलो का सम्वन्ध है। इसलिए आपने अपनी खुशी से समाज से अलग हो जाने

की इच्छा प्रकट की और कहा कि हमारे अलग हो जाने से आप सब एक हो जाएँ और समाज मे शाति स्थापित हो जाए तो अच्छा है।" परन्तु सघ वालो ने आप की यह बात नही मानी, पचायत वालो के अन्याय और मठमर्दी के सामने वे झुकना नही चाहते थे। कई वर्षों तक सघर्ष चला, जिस मे कई बार हार-जीत के उतार-चढाव आये। उनसे आपके अन्त करण मे कभी कोई आवेश या विक्षोभ पैदा नही हुआ। अन्त मे पचायत वाले थक गये और सघ वालो का उनके साथ सम्मानास्पद समझौता हो गया। समाजव्यापी इतने बड़े सघर्ष के बाद समझौता हो जाने पर आपके मन मे अनुकूलता अवश्य पैदा हुई किन्तु विजयोत्सव मनाने जैसा हर्ष पैदा नही हुआ।

जो व्यापार और उद्योग-धन्धे आरम्भ किये गये, उनमे किसी मे सफलता हुई और किसी मे असफलता, परन्तु दोनो दशाओ मे आपके अन्त करण मे कोई उतार-चढ़ाव नही हुआ।

शुभ-अशुभ मे सम व्यवहार

यह ससार एक ही सम आत्मा के अनेक रूप होने के कारण कोई भी पदार्थ या वस्तु शुभ अथवा अशुभ नही होती। शुभ और अशुभ की भावना व्यक्ति अपने मन से पैदा कर लेता है। आप शुभ और अशुभ की इस भावना से कभी प्रभावित नही हुए। कई लोग किसी विशेष व्यक्ति या पदार्थ या घटना आदि को शुभ मानते हैं, दूसरे लोग उन्ही को अशुभ मान लेते हैं। आपकी दृष्टि मे ये भ्रम हैं। समाज मे आमतौर पर विधवा को अशुभ मानकर किसी मागलिक काम मे भाग नही लेने दिया जाता। भाई भी अपनी विधवा बहन से रक्षाबन्धन और तिलक नही करवाता। आप इसको घोर अन्याय मानते हैं। आप विधवाओ का आदर सुहागिनियो के समान करते हैं। उनका विवाह कर उनको सधवा बनाना आवश्यक समझते हैं।

शकुन और अपशकुन को आप बिलकुल नही मानते और ग्रह-नक्षत्रो के शुभ-अशुभ परिणामो को तथा शुभ अशुभ मुहूर्तों का बहम विचार भी आपके चित्त मे नही है। सुन्दर पदार्थों, दृश्यो तथा ऋतुओ की अनुकूलता का अनुभव करते हुए भी शुभ अथवा अशुभ या इष्ट अथवा अनिष्ट की भावना आप मे उत्पन्न नही होती।

शत्रु-मित्र के प्रति समान दृष्टि

शत्रुता और मित्रता मन के भावो पर निर्भर है। वे एकसार नही रहती। किसी परिस्थिति मे कोई व्यक्ति शत्रु होता है और दूसरी परिस्थिति मे वही मित्र बन जाता है। इसी तरह किसी परिस्थिति मे कोई व्यक्ति मित्र होता है, दूसरी परिस्थिति मे वही शत्रु बन जाता है। इसलिए कोई व्यक्ति सदा के लिए शत्रु या मित्र नही माना जा सकता। परिस्थितियो के कारण ही उसके प्रति शत्रुता अथवा मित्रता की भावना उत्पन्न होती है। इस विचार से आप अपनी ओर से किसी के प्रति शत्रुता अथवा मित्रता की आसक्ति नही रखते। जो लोग किसी कारण विशेष से आपके साथ शत्रुता अथवा मित्रता रखते हैं, उनके साथ उनकी भावना के अनुसार ही यथायोग्य वर्ताव करते हुए भी आपके अन्त करण मे शत्रुता रखने वालो के साथ विशेष द्वेष की भावना और मित्रता रखने वालो के साथ विशेष राग या आसक्ति पैदा नही होती। समत्व योग के सिद्धान्त के अनुसार अन्याय का यथायोग्य प्रतिकार करना और मिथ्या आक्षेपो का यथोचित उत्तर देना समाज की सुव्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक है परन्तु अपनी तरफ से द्वेष और बदला लेने के भाव नही रहने चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने का आप प्रयत्न करते रहते हैं।

सेंसोलाव के श्मशानो के झगडे मे और सघ-पचायत के सामाजिक सघर्ष मे आपके विपक्षी दलों के लोग आपसे शत्रुता रखते थे, परन्तु आपके अन्त करण मे उनसे व्यक्तिगत द्वेष करके उनका अहित करने

या हानि पहुँचाने का भाव नही पैदा हुआ। उनके प्रति उपेक्षा का वर्ताव अवश्य किया जाता था। परन्तु उन के यहाँ किसी युवक आदि की मृत्यु का प्रसग उपस्थित होने पर उनको सात्वना देने के लिए जाने मे आप सकोच नही करते थे। इसी तरह अपने पक्ष वाले मित्रो को अपना सहयोगी समझते हुए उनका अनुचित पक्ष लेना आप ठीक नही समझते थे।

अपने कुटुम्ब वालो मे से भी कुछ लोग कभी-कभी आपके साथ ईर्ष्या-द्वेष के भाव रखते थे, परन्तु आपके अन्त करण मे उनसे वदला लेने का भाव उत्पन्न नही होता था। उसको उनकी वेसमझी मान कर उपेक्षा करना आप ठीक समझते रहे।

स्त्री-पुरुष के प्रति सम व्यवहार

स्त्री और पुरुष दोनो मानव-समाज के आधे-आधे अग हैं। दोनो की समान आवश्यकता और बरावर योग्यता होती है। उनके शरीर की रचना मे थोडा प्राकृतिक अन्तर होते हुए भी दोनो की शारीरिक व मानसिक वेदनाएँ एक समान होती हैं। स्त्री का शरीर पुरुष की अपेक्षा सुकुमार और हृदय कोमल होता है। इसलिए दोनो का कार्य-विभाग शरीर की योग्यता के अनुसार अलग-अलग होना स्वाभाविक है। स्त्री के शरीर की स्वाभाविक योग्यता विशेष रूप से घर-गृहस्थी के काम और सन्तानो के पालन-पोपण की होती है और पुरुप की विशेष योग्यता वाहरी काम करके अर्थोपार्जन करने तथा स्त्री का सरक्षण करने की है, किन्तु यह अलग-अलग कार्य-विभाग होते हुए भी दोनो के कार्यों की एक समान उपयोगिता और आवश्यकता है। एक के विना दूसरे का निर्वाह नही हो सकता। दोनो अन्योन्याश्रित हैं। इस विचार से स्त्री और पुरुष का पद और अधिकार वरावरी का होना न्यायसगत और सुखदायक होता है। परन्तु हमारे समाज मे स्त्री को वहुत हीन समझा जाता है। उसके अधिकार कुछ भी नही माने जाते। उसकी शारीरिक और मानसिक वेदनाओ की कुछ भी परवाह नही की जाती और उसके सारे अधिकार पुरुषो द्वारा छीन लिये गये हैं। वह पुरुष की भोग की वस्तु समझी जाती है। वहुत से धर्म के ठेकेदार पुरुष तो उनकी निन्दा और घोर तिरस्कार करना अपना परम धर्म समझते हैं। यह विषमता और क्रूरता आपके लिए असह्य है और इसको मिटाने के लिए आप निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। पुत्र-जन्म पर हमारे समाज मे हर्ष मनाया जाता है और बधाइयाँ वाँटी जाती हैं किन्तु पुत्री के जन्म के समय शोक मनाया जाता है। आप इसको अच्छा नही मानते। आपके परिवार मे पुत्र-जन्म होने पर आप को कोई विशेप हर्प नही होता और पुत्री के जन्म होने पर आप कोई शोक नही मनाते। पुत्र और पुत्री का पालन-पोषण, रक्षण, शिक्षण यथायोग्य एक ही समान करना और पुत्र और पुत्री का विवाह दोनो की सम्मति लेकर करना आप उचित समझते है। पुत्र के विवाह के समय कन्या पक्ष वालो से दहेज आ।द के रूप मे कुछ भी लेने के आप विरोधी हैं। जिस विवाह मे दहेज आदि लिये जाते हैं अथवा कन्या को दान मे दिया जाता है उसमे आप सम्मिलित नही होते। पिता की सम्पत्ति मे पुत्र और पुत्री का समान अधिकार और पति की सम्पत्ति मे स्त्री का बरावरी का अधिकार आप न्याय सम्मत मानते हैं। विवाह सम्बन्ध विच्छेद और तलाक का अधिकार स्त्री और पुरुप दोनो का एक समान मानते हैं। भारत सरकार का उत्तराधिकार कानून और विवाह विच्छेद कानून दोनो के आप समर्थक ही नही किन्तु उनको अपूर्ण मानते हैं, क्योकि आपके विचार के अनुसार वे कानून स्त्रियो के प्रति पूर्ण न्याय के सूचक नही है। आप पर्दे की कुप्रथा को अत्यन्त हेय व त्याज्य मानते हैं और उसको दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लडकियो तथा महिलाओ को यथायोग्य उच्च शिक्षा प्राप्त करवाने मे सहायक होना अपना कर्तव्य समझते हैं। उनके लिए मानसिक और आत्मिक उन्नति करने का अधिकार पुरुषो के समान समझते हैं। अपने सत्सग मे आत्मज्ञान

का उपदेश स्त्री और पुरुषो को एक सरीखा बिना किसी भेद-भाव के देते हैं।

जब आपकी धर्मपत्नी को रीढ की हड्डी की राज यक्ष्मा की लम्बी बीमारी हुई तब १२ वर्षों तक उसकी चिकित्सा तन, मन व धन से करवाने मे तत्पर रहे और उसकी ऐसी सेवा की जैसी कि एक पतिव्रता पत्नी अपने पति की करती है। लोग कहा करते थे कि आपने अपनी पत्नी के पीछे जोग ले लिया है पर आपने अपवादो की कुछ भी परवाह नही की। उसका असाध्य रोग देख कर घर वालो ने आपसे दूसरा विवाह करने का अनुरोध किया और समझा-बुझाकर अथवा दबा कर उसकी सम्मति भी ले ली, परन्तु आपने यह कहकर साफ इनकार कर दिया कि अगर इसकी तरह मैं बीमार होता तो यह रात-दिन मेरी सेवा सुश्रुषा करने के सिवाय क्या और किसी तरह का विचार भी कर सकती थी? यह कितनी निर्दयता होगी कि उसकी बीमारी की इस दयनीय दशा मे उसकी वेदनाओ की सर्वथा उपेक्षा कर कें उसकी छाती पर सौत लाकर बिठा दूं। वह अपने भाग्य को कोसती रहे और मैं उसकी सौत के साथ सुख भोगूं। आपने दूसरे विवाह के प्रस्ताव को हृदयहीन राक्षसीपन समझा। धर्मपत्नी के देहान्त तक आप दोनो का आपस मे अगाध प्रेम बना रहा और उसके देहान्त होने पर आपका अन्तःकरण इस विचार से पूर्ण शान्त रहा कि उसके प्रति आपका जो कर्तव्य था उस को आपने पूरी तरह निभा दिया।

दूसरो के साथ बर्ताव करने मे गीता के अध्याय छ के श्लोक ३२ के अनुसार दूसरो के सुख-दुख आदि को अपने समान ही समझने की आत्मौपम्य बुद्धि रखने का आपने सदा प्रयत्न किया।

ऊँच और नीच के प्रति समदृष्टि

प्राणिमात्र एक ही सम आत्मा की प्रकृति के अनेक रूप हैं। शरीर सबके उन्ही पच तत्त्वो के होते हैं अत मूल मे ऊँच और नीच का कोई भेद नही है। भेद प्रकृति के तीन गुणो की कमीवेशी से होता है। जिसमे सत्वगुण की अधिकता होती है उसकी योग्यता रजोगुण तमोगुण की अधिकता वालो से ऊपर रहने की होती है। तमोगुण की प्रधानता वाले नीचे रहते हैं और रजोगुण की प्रधानता वाले दोनो के बीच की स्थिति मे रहते हैं। मनुष्य शरीर मे दूसरे प्राणियो की अपेक्षा सत्वगुण की विशेषता होने के कारण उसमे बुद्धि का विकास होता है। मनुष्यो मे भी गुणो की कमी-वेशी के अनन्त भेद होते हैं। जिनमे सत्वगुण की जितनी अधिकता होती है उतनी ही उनकी बुद्धि का अधिक विकास होता है और विशेष बुद्धिमान होने के कारण वे रजोगुण-तमोगुण की अधिकता वालो के ऊपर रहते हैं। हमारी आर्य सस्कृति मे समाज की सुव्यवस्था के लिए गुणो की योग्यता के अनुसार काम अथवा व्यवसाय करने की चार मुख्य श्रेणियां बनाई गयी थी जिसको वर्ण व्यवस्था कहा गया था। गीता ने भी कहा है कि

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ट
गुण कर्म विभागश।"

सत्व गुण की प्रधानता वालो के लिए शिक्षा का काम नियत किया गया था। रजोगुण की प्रधानता वालो के लिए रक्षा और वाणिज्य का तथा तमोगुण की प्रधानता वालो के लिए शारीरिक श्रम का काम नियत किया गया था। यह वर्ण-व्यवस्था केवल गुणो के आधार पर बनायी गयी थी और अपने-अपने स्वाभाविक योग्यता के भिन्न-भिन्न काम अथवा व्यवसाय करते हुए भी सबकी मौलिक एकता का सिद्धान्त अखण्ड रखा गया था। सबके व्यवसाय समाज की सुव्यवस्था के लिए एक समान श्रेष्ठ और आवश्यक समझे जाते थे। जिस तरह एक ही शरीर के अनेक अग अपनी अपनी योग्यता के अलग अलग काम करते हुए भी सब एक समान आवश्यक और उपयोगी होते हैं उसी प्रकार सभी वर्णों के लोग एक समान आवश्यक और उपयोगी हैं,

अत॰ उनको मनुष्यता के सब अधिकार समान रूप से प्राप्त होना आप आवश्यक मानते हैं। इस सत्य सिद्धान्त का उल्लघन करके वर्तमान मे हमारे समाज मे जन्म से वर्ण और जाति मानने के आधार पर जो ऊँच और नीच का अस्वाभाविक भेद तथा विषमता का वर्ताव प्रचलित है, जन्म से नीच माने जाने वाले लोगो पर जो अत्याचार किये जाते हैं, वहुतो को अछूत मानकर उनके साथ क्रूरता का वर्ताव किया जाता है और मनुष्यता के अधिकारो से वचित किया जाता है, इसको आप अन्यायपूर्ण और वहुत बुरा मानते हैं। इस विषमता को मिटाने का आपने भरपूर प्रयत्न किया है। केवल जन्म के आधार पर आप किसी को ऊँचा या नीचा नही मानते। जिनमे सत्त्वगुण की अधिकता होने के कारण बुद्धि का विशेष विकास प्रतीत होता है और जो सदाचारी हैं उनका आप विशेष आदर करते है, भले ही वे समाज मे किसी जाति के क्यों न माने जाते हो। जिनमे रजोगुण-तमोगुण की अधिकता होने के कारण उनकी बुद्धि कम विकसित है और जो दुराचारी हैं, उनके प्रति आप अपने अन्त करण मे आदर का भाव नही रखते, भले ही उनको समाज मे उच्च जाति का क्यो न माना जाता हो। मनुष्यता के नाते आप उनका तिरस्कार नही करते परन्तु उनकी उपेक्षा करके उदासीन रहने का प्रयत्न करते हैं। जो पाखण्डी, धूर्त और अत्याचारी होते हैं उनसे दूसरो को सावधान करना भी अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं। गुणो के अनुसार यथायोग्य वर्ताव करना ही यथार्थ समता है। परन्तु गुणो की उपेक्षा करके श्रेष्ठ और दुष्ट अथवा भले और बुरे के साथ एक सा वर्ताव करना समता नही किन्तु वास्तव मे विषमता है। मनुष्य शरीर मे यह योग्यता है कि वह शिक्षा, सगति और प्रयत्न से अपने शरीर के गुणो मे कमी वेशी कर सकता है, अत जिसमे जिस समय जिस गुण की प्रधानता हो वह उसका स्वाभाविक गुण है।

जो लोग मेहनत करके समाज की किसी भी प्रकार की आवश्यकता पूरी करते हुए सदाचार युक्त अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे नीचे माने जाने वाले कुल मे उत्पन्न होने पर भी वास्तव मे उच्च है और जो लोग विना परिश्रम किये अथवा समाज की किसी भी प्रकार की आवश्यकता पूरी किये विना निठल्ले रह कर अथवा चोरी, ठगी, फरेव, धूर्तता आदि से अपना जीवन निर्वाह करते हैं वे उच्च माने जाने वाले कुल मे उत्पन्न होकर भी वास्तव मे वहुत नीच है, ऐसी आपकी धारणा है। अपने समाज मे उच्च जाति के माने जाने वाले लोगो द्वारा हीन जाति के माने जाने वाले लोगो पर किये जाने वाले अमानुषिक अत्याचारो को देखकर आपके हृदय पर वडी चोट लगती है और इस प्राकृतिक विषमता को मिटाना आपने अपना ध्येय वना रखा है। इस विषमता का मूल कारण जन्म से जाति मानना ही आपको प्रतीत होता है। इसलिए जाति-पांति के सब भेद मिटा देने और हीन जाति के माने जाने वाले लोगों का उत्थान करने का आप यथाशक्य प्रयत्न करते हैं। इन लोगो के प्रति आपके चित मे घृणा और तिरस्कार के भाव विलकुल नही हैं किन्तु इनके साथ यथायोग्य प्रेम का वर्ताव करते हैं और इनको उचित अधिकार प्राप्त करवाने मे सहायक होते हैं। खाने के लिए पर्याप्त भोजन, पहनने के लिए वस्त्र, रहने के लिए मकान, बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा, मनोविनोद के लिए उपयुक्त साधन, रोग निवारण के लिये चिकित्सा और अन्याय का प्रतिकार करने के लिये न्याय प्राप्त करने आदि मनुष्य जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने का अधिकार एव अवसर उनको भी उच्च जाति के माने जाने वाले लोगो की तरह ही प्राप्त होना चाहिए, ऐसा आप मानते हैं। परन्तु इस वात का ध्यान अवश्य रखते हैं कि इनका उत्थान करने और मनुष्योचित अधिकार प्राप्त करने के आवेश मे कही यह भूल न हो जाए कि उनका जीवन भी अमीर लोगो की तरह विलासी, आलसी और प्रमादी न वन जाए, उनके दुर्गुण इनमे न आ जाए, वर्तमान परिस्थिति मे उनकी आवश्यकताएँ इतनी न वढ जाए कि उनकी पूर्ति करने के लिये समाज मे कही अशान्ति उत्पन्न हो जाए, उनके शरीरो की दृढता और तितिक्षा-शक्ति का ह्रास होकर वे लोग दुर्वल तथा रोगी न वन जायें और ये शारीरिक श्रम करने के अयोग्य न हो जाए, जिससे समाज का और स्वय इनका हित होने के वदले उल्टा अहित

हो जाए। अकाल पडने पर दुर्भिक्ष पीडितो की सहायता के लिए जो योजनाएँ आपने बनाई उनमे खाने के लिए मोटा अन्न जैसा कि वे लोग अपने घरो मे साधारणतया खाते हैं, वैसा ही दिया गया। पहनने के लिए मोटे और सादे वस्त्र, रहने के लिये झौंपडियो का प्रबन्ध किया गया। इनके बालको को प्राथमिक शिक्षा मिलने का आयोजन भी आपने किया। उनसे यथायोग्य शारीरिक श्रम भी कराया गया। स्त्री-पुरुष को शिक्षाप्रद उपदेश दिलाये गये। शरीर और कपडो की सफाई रखने पर यथोचित ध्यान दिया गया। त्यौहार मनाने और अन्य मनोविनोद के साधन यथायोग्य उपलब्ध किये गये। इसका पूरी तरह ध्यान रखा गया कि इनमे ऐसी आदतें न डाली जाए कि अपने घरो को लौटने पर अपने काम यथायोग्य करने मे इनमे कुछ कमी या निर्बलता पैदा हो जाए। साधारण अवसरो पर भी इनको सहायता देने मे आप इन सब बातो का पूरा ध्यान रखते हैं। केवल धन और पद प्रतिष्ठा के कारण आप किसी को ऊँच या नीच नही मानते।

सोने-मिट्टी और पत्थर के सम्बन्ध मे सम भावना

सोना और मिट्टी-पत्थर दोनो ही जड खनिज पदार्थ है। परन्तु उनके गुण अलग-अलग होने के कारण उनका उपयोग भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। सोना चमकदार सुन्दर रग और बहुत भारी तथा गुणो वाला होने के कारण आभूषण और सिक्के के काम मे आता है और कम मात्रा मे तथा बहुत परिश्रम करने से उपलब्ध होता है इसलिए उसकी कीमत ज्यादा मानी जाती है। मिट्टी पत्थर मे सोने के गुण नही होते और थोडे परिश्रम से अधिक मात्रा मे उपलब्ध होते हैं, इसलिए उनकी कीमत कम मानी गयी है, परन्तु दोनो अपने-अपने स्थान मे आवश्यक और उपयोगी हैं। मिट्टी पत्थर का काम सोना नही दे सकता। अनेक अवसरो पर सोना दु खदायी हो जाता है और मिट्टी पत्थर से उसकी रक्षा होती है। मिट्टी पत्थर का उपयोग सोने से अधिक है इस विचार से आप दोनो का यथायोग्य उपयोग करते हुए भी सोने मे विशेष आसक्ति नही रखते। दोनो विश्वयुद्धो के समय बहुत से लोगो ने सोने, चादी और जवाहिरात का सग्रह किया था, परन्तु आपने नही किया और उनके लिये आप मे मोह नही पैदा हुआ।

इस प्रकार अपने जीवन मे सभी दृष्टियो से समता की भावना पैदा कर आपने समत्व योग की जो साधना की है वह सासारिक जीवन यापन करने वालो के लिए अनुकरणीय होने से आदर्श कही जा सकती है। हम सबको अपने जीवन मे समत्व योग के इस आदर्श को आपके ही समान प्रतिष्ठित करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए और आपके जीवन का अनुकरणीय उदाहरण हमेशा अपने सामने रखना चाहिए।

३

वंश परिचय

वीकानेर शहर के मध्य मे स्थित मरुनायक जी का मदिर साक्षी है कि वीकानेर के नगर तथा राज्य को वसाने मे माहेश्वरी मोहता परिवार के पूर्वज सालो जी राठी का मुख्य हाथ था। वे राव वीका जी के साथ सबसे पहले अपने कुछ साथियो सहित इस प्रदेश मे आये थे। सालो जी अपने साथ मरुनायक जी की मूर्ति भी लाये थे और उन्होने वर्तमान मरुनायक जी के मदिर मे उस मूर्ति की स्थापना करके उसके आस-पास अपने साथियो को वसा लिया था। राव वीका जी ने अपना डेरा वहाँ डाला था जहाँ इस समय लक्ष्मीनाथ जी का मदिर वना हुआ है। दोनो के सहयोग से वीकानेर शहर वसाया गया। यह वसावट वहुत पुरानी नही है। लगभग ५०० वर्ष पहले सवत् १५४५ वैसाख सुदी २ को एक गाँव के रूप मे यह नगर वसना शुरू हुआ था।

साहसी राजस्थानी

सालो जी के यहाँ आकर वसने का किस्सा अत्यन्त साहसपूर्ण है। उससे पता चलता है कि राजस्थान के राजपूत और वैश्य स्वभावत वडे साहसी, उद्यमी और अध्यवसायी रहे है। उन्होने अपने इस स्वभाव के कारण देश मे चारो ओर हजारो छोटी-वडी वस्तियाँ वसायी हैं। न केवल राजस्थान मे किन्तु देश के कोने-कोने मे वे जहाँ भी कही पहुँचे, वहाँ नयी वस्तियाँ आवाद होने मे अधिक समय नही लगा। जहाँ उन्होंने वसेरा डाला वह एक नयी वस्ती का केन्द्र वन गया और उसके चारो ओर नया गाँव या नगर वसता चला गया। उसको उन्होने व्यापार-व्यवसाय से सम्पन्न और समृद्ध वनाने मे कुछ भी उठा न रखा। असम मे ब्रह्मपुत्र को पार करके सुदूर पहाडी घाटियो, उडीसा मे महानदी को पार कर घने जगलो, वगाल में हुगली को पार कर लम्वे-चौडे मैदानो तथा हिमालय की उपत्यकाओ, दक्षिण मे सुदूर समुद्री किनारो पर तथा पजाव मे भी पठानो के सीमान्त प्रदेश तक मे राजस्थान के ये वीर, साहसी, अध्यवसायी और कर्मठ लोग पहुचे, तव वहाँ अनेक छोटी-वडी वस्तियाँ कायम हुईं। उन दिनो यातायात के न कोई आधुनिक साधन थे और न कोई ऐसी सुरक्षा-व्यवस्था थी। सिर हथेली पर रख अपने सर्वस्व की वाजी लगा, वे अपने घरो से कुछ साथियो के साथ उतना ही सामान लेकर निकलते थे, जितना वे स्वय अपने कधो पर उठा सकते थे। वे जहाँ भी पहुँचे, वहाँ कुछ ही समय में नयी आवादी वसनी शुरू हो गयी। हमारे देश की प्राय. सभी छोटी-वडी वस्तियो के आवाद होने का यही इतिहास है। वम्वई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, कराची, कटक, गौहाटी, शिलाग, दक्षिण हैदरावाद के अनेक नगरो, शोलापुर, नागपुर तथा अन्य नगरो के भी आवाद होने की कहानी की यदि छानवीन की जाए तो इसी परिणाम पर पहुँचा जाएगा। प्राय सभी वडे-वड़े शहरो के मध्य भाग मे पुरानी आवादी राजस्थानी लोगो की पायी जाती है। आवू के अत्यन्त सुन्दर सगमरमरी मदिर, अनेक तीर्थों पर वडे-वडे देवालय, घाट तथा धर्मशालाएँ आदि इनकी ही वनवायी हुई हैं। जगन्नाथ पुरी के प्राचीन मदिर का इतिहास भी इसी सचाई का सूचक है। आधुनिक निर्माण का अधिकाश श्रेय इन्ही को प्राप्त है। वर्तमान कराची नगर के निर्माता मोहता कहे जा सकते है। वीकानेर भी उसी प्रकार वसाया गया है और उसको वसाने वाले थे वर्तमान राजवश के पूर्वज राव वीका जी तथा मोहतो के पूर्वज राठी सालो जी।

माहेश्वरी समाज का प्रादुर्भाव

माहेश्वरी समाज का कोई क्रमवद्ध इतिहास नही मिलता। अन्य समाजो तथा जातियो के समान

माहेश्वरी जाति के उद्गम के सम्बन्ध मे भी कुछ पौराणिक गाथाएँ प्रचलित हैं। उनमे सबसे मुख्य और अधिक प्रचलित गाथा यह है कि खण्डेला नगर के क्षत्री चौहान राजा खडगसेन के पुत्र सुजान कुंवर ने ब्राह्मणो पर अत्याचार किये। इस कारण ब्राह्मणो ने उसको श्राप दिया कि तुम अपने सरदारो-उमरावो सहित पत्थर के हो जाओ। वैसा ही हुआ। वह अपने ७२ सरदारो के साथ पत्थर का बन गया। कुछ दिनो के बाद महादेव जी पार्वती जी के साथ उस ओर से गुजरे। तब पार्वती जी उनको देखकर आश्चर्य से चकित हो गयी और महादेव जी से उन्होने उनको फिर से जीवित करने की प्रार्थना की। महादेव जी ने उनको पुनर्जीवित कर दिया। उनके पत्थर के बन जाने से उनके राज्य और जागीरो पर दूसरो ने अधिकार कर लिया था। उन्होंने अपने को असहाय पाकर महादेव जी से निवेदन किया कि हम लोग अपना जीवन निर्वाह कैसे करें? महादेव जी ने उनसे कहा कि तुम सब वैश्य बन जाओ और वैश्य वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करो। वे वैश्य बन गये और ७२ सरदारो के जो गोत्र थे उन पर माहेश्वरियो की खाँपें बन गयी। उनमे आपस मे रोटी-बेटी का सामाजिक व्यवहार होना शुरू हो गया। महादेव जी की कृपा से पुनर्जीवित होने के कारण उनको माहेश्वरी कहा जाने लगा। सुजान कुंवर के वश के लोग उनकी वशावली का इतिहास रखने लग गये और "भाट राजा" कहे जाने लगे।

मूंडवे वाले श्री शिवकरण जी रामरतन जी दरक ने अपने "वैश्यकुल भूषण" ग्रन्थ मे माहेश्वरियो के कुल भाट अथवा जागो की वहियो के आधार पर माहेश्वरियो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे यह पौराणिक गाथा लिखी है।

इस पौराणिक कथा रूपक का यह अर्थ हो सकता है कि बौद्ध धर्म के प्रचार के समय इन क्षत्रियो ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार करके वैदिक कर्मकाड, यज्ञ पूजापाठ की निन्दा एव निषेध करना प्रारम्भ कर दिया हो। इस पर ब्राह्मणो ने उनको जातिच्युत करके समाज से बहिष्कृत कर दिया और उनका सारा राज्य जब्त कर लिया। उन्होने जीवन-निर्वाह के लिए वैश्य वृत्ति स्वीकार कर ली, बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद जब आदि गुरु श्री शकराचार्य ने फिर से वैदिक धर्म का उद्धार करना शुरू किया, तब उनको भी वैदिक धर्म का अनुयायी बना लिया गया और समाज ने उनको क्षत्री वर्ण मे सम्मिलित न करके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वैश्यवर्ण मे सम्मिलित कर लिया। यह भी सम्भव है कि खडेला मे अपने राज्य व जागीरो के छिन जाने के कारण वे डीडवाना मे आकर बस गये और इसी कारण वे डीडू माहेश्वरी कहलाये।

यह पौराणिक गाथा और उसके साथ जुडा हुआ इतिहास कुछ भी क्यो न हो, यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे वर्ण तथा जाति का बन्धन इतना कठोर नही था और बडे-बडे समूहो मे भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वर्ण-परिवर्त्तन एव जाति-परिवर्तन होता रहता था। जन्म का सम्बन्ध केवल गोत्र अथवा खाँप के साथ था। मोहता राठी खाँप के माहेश्वरी हैं। राठी खाँप का गोत्र कपिलाश, सामवेद, गढ रणथम्भौर के गणपति विनायक और नागोर के भैरव की उपासना, कुलदेवी ओसिया गाँव की सचाय माता और गुरु पुरोहित पहले पल्लीवाल धामट ब्राह्मण हुए, पीछे पुष्करणा छगाणी हुए। उनकी चार खाँपें हैं यथा छगाणी, गढडिया, कलवाणी और देरासरी। सचाय माता के मदिर पुरानी जोधपुर रियासत मे ओसिया गाँव मे एक ऊँचे चट्टान पर शिखर बध बना हुआ है जो जोधपुर से फलोदी जाने वाली रेल से ओसिया स्टेशन से सामने दीखता है। अब यह मदिर जीर्ण हो गया है।

सालोजी राठी

सालोजी ओसिया गाव के विक्रम सी राठी नाम के एक वीर पुरुष की चार सन्तानो मे से सबसे बडे थे। अन्य पुत्रो के नाम मालोजी, सावन जी, और शभूजी थे। सालोजी अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न और विशेष

लोकप्रिय थे। वे श्री मरुनायक जी अथवा मूलनायक जी की प्रतिमा के उपासक थे। ओसिया के ठाकुर या राजा के साथ कुछ अनवन हो जाने से उन्होने सपरिवार मरुनायक जी की मूर्त्ति सहित उसके गाँव को त्याग दिया और सिंध की ओर जाने को निकल पडे। पुजारी मूधाडा सेवक, रत्तो जी कथाव्यास, छागोजी कुल गुरु और सभी कारू अर्थात् सव प्रकार का पेशा करने वाले लोग जिनकी सख्या ३६ वतायी जाती है सकुटुम्व ओसिया छोडकर उनके साथ चल दिये। चमडे का काम करने वाला टीलो जी मेघवाल भी उनके साथ आया, जिसके वशज आज भी जैसोलाई मोहल्ले मे वसते है।

सालोजी ने एक पडाव उस स्थान मे किया जहाँ वीकानेर से ५ कोस अथवा १० मील पर सालासर वसा हुआ है, जो कि कोडमदेसर जाने वाले मार्ग पर स्थित है। उन्ही दिनो मे राव वीकाजी राठोड कोडमदेसर मे पडाव डाले हुए थे। वे अपने पिता जोधपुर के राजा जोधाजी से अनवन होने के कारण स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से घर से निकल पडे थे। उनके साथ उनके चाचा काधल जी, मामा नापा साखला तथा कुछ अन्य साथी थे। राव वीकाजी और राठी सालोजी मे परस्पर मुलाकात हुई। दोनो प्राय एक ही उद्देश्य से घर से निकले थे। राव जी ने राठी जी को सिंध जाने से रोक दिया और दोनो ने मिलकर वीकानेर नगर वसाने और वीकानेर राज्य कायम करने का निश्चय किया। वर्तमान वीकानेर नगर और राज्य के प्रादुर्भाव की यही मूल कहानी है। दोनो के सम्मिलित सकल्प व प्रयत्न से नगर वस गया और राज्य भी कायम हो गया।

मोहता वश

सालोजी ने अपना मुख्य निवास स्थान सालासर मे रखा और नित्यप्रति वे मरुनायक जी के दर्शन करने वीकानेर आते-जाते रहे। उनके साथ आने वाले वाकी सव साथी वीकानेर मे वहाँ वस गये जहाँ मरुनायक जी की मूर्त्ति स्थापित की गयी थी। सालोजी के चार पुत्र हुए। उनके नाम थे अर्जुन जी, शिवराज जी, धन जी और सेवोजी। सेवोजी को राव वीकाजी ने अपना दीवान नियुक्त किया। तवसे इन्ही के परिवार के लोग दीवान के पद तथा अन्य कामो पर कामदार नियुक्त किये जाते रहे। इसी कारण उनके वशज 'मोहता' कहलाये। इसी प्रकार मोहतो को न केवल वीकानेर नगर व राज्य की स्थापना करने मे भाग लेने का श्रेय प्राप्त है, अपितु उस विशाल राज्य के सचालन का श्रेय भी प्राप्त है।

मोहता वंश और उसकी प्रतिष्ठा

सेवोजी के दीवान नियुक्त किये जाने और वश परम्परा से दीवान तथा राजकाज के सव पद उनके ही वशजो को प्राप्त होने के कारण वीकानेर मे "मोहता" समस्त माहेश्वरी समाज मे अग्रणी माने गये। समाज के औसर नुखते, जिनको गाँव सारनी कहते थे इनकी आज्ञा से होते थे। समाज की पचायत भी उनके ही दीवान खाने मे होती थी।

सेसोलाव का निर्माण

सेवोजी के पुत्र सेहसो जी ने सहसोलाव तालाव वनवाया, जिसका उल्लेख जागो की वहियो मे मिलता है। तव से मोहतो के श्मशान इसी तालाव पर हैं। सेहसोजी के चार वेटो मे से देवीदास जी के वेटे गोविन्द जी के नाम से राठी मोहते गोविन्दाणी कहलाये। उन दिनो मे पिता के नाम के पीछे "णी" लगाकर पुत्र के नाम के साथ प्रयुक्त किया जाता था। गोविन्दाणी उपनाम इसी प्रकार चालू हुआ। गोविन्द जी के छ वेटे हुए। उनकी तीसरी पीढ़ी मे कल्याण दास जी हुए जिन्होंने मदन मोहन जी का मन्दिर वनवाया और राज्य से भी दीवान

की पदवी वश परम्परा के लिए प्राप्त की । उनके वशज श्री दीवान मोहता कहे जाने लगे । उनके पुत्र जसवत सिह जी ने जस्सूसर कुआँ और वगीची का निर्माण करवाया, कुआ जसवत सागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उनके दो पीढी बाद फतेसिह जी हुए । उनके वश मे राज्य का दीवान पद रहा । मोहतो के अतिरिक्त सालोजी के परिवार मे मीमाणी, करनाणी द्वारकाणी, तेनाणी, सादाणी, दमाणी, विनाणी, घनाणी, नथाणी, लखाणी आदि अनुमानत १६ शाखाओ का फैलाव बीकानेर मे हो गया ।

माहेश्वरी समाज मे बहुत सी खाँपो मे जो अनेक शाखाए अथवा नख निकले है उनके नामो का सम्वन्ध केवल जन्म के साथ नही है, अपितु निवास स्थान, पेशे अथवा विशेष लक्षणो एव गुणो के आधार पर भी उनके नाम रखे गये हैं । उदाहरण के लिये पूगल मे रहने वाले पुगलिये और वागड मे रहने वाले बागडी कहलाए । इसी प्रकार राज्य के दीवान मोहता कपडे का काम करने वाले वजाज, लोहे का काम करने वाले लोहिये, पसारट का काम करने वाले पसारी, मोदीखाने का काम करने वाले मोदी, कोठार का काम करने वाले कोठारी, भडार का काम करने वाले भडारी और माछर, डोड, कचोलिया, नौलखा, नौगजा और डागरा आदि कहलाये ।

गोविन्द जी के छठे वेटे दासो जी उर्फ श्रीचन्द दास राज्य के कोठार के काम पर नियुक्त होने से कोठारी कहे गये और उनके वशज कोठारी मोहता के नाम से प्रसिद्ध हुए । श्री रामगोपाल जी के दादा सेठ मोतीलाल जी के परिवार के मोहता इन्ही के वश के हैं ।

सती की घटना

दासोजी के बाद पाँचवी पीढी मे सुखदेव जी के पुत्र प्रेमराज का देहान्त निस्सतान देशावर मे हुआ और उनकी पत्नी बीकानेर मे सती हो गयी । कहते हैं कि उसको अपने पति के देहान्त का भान स्वत हो गया था । उस पर उसने अपने ससुराल वालो से सती होने की इच्छा प्रगट की । उन्होने उसकी बात पर विश्वास नही किया । विश्वास करने के लिए उन दिनो मे रेल, डाक व तार आदि की कोई व्यवस्था नही थी । इस पर वह नाराज होकर अपने पीहर पेडीवालो के यहाँ चली गयी और अपने ससुराल वालो के श्मशान सैंसोलाव मे न जाकर पीहर वालो के सहयोग से उनके श्मशान मे सती हो गयी । सती होने से पहले उसने ससुराल वालो को श्राप दिया कि उनका वश नही चलेगा । चिता मे आग देने के लिए सपिंड की आवश्यकता होने से ससुराल वालो को कहा गया, किन्तु उन्होंने श्राप के कारण आग देने से इनकार कर दिया । तब उसने अपने शाप को कुछ वदल दिया और कहा कि सात पीढी तक एक ही सतान रहेगी और उसके वाद वश का विस्तार हो सकेगा । इस पर चिता मे आग दी गयी और वह सती हो गयी । तब से मोतीलाल जी के वशजो के श्मशान सैंसोलाव से हटकर वहाँ आ गये जहाँ कि सती जी की देवली और थडा वना हुआ है । उनके कुटुम्ब के कई लोग प्राय. जन्म और विवाह के अवसरो पर सती जी की जात देते हैं । दीवाली के दिन वहाँ पूजा होती है । सती जी के कीर्ति स्तम्भ पर एक शिलालेख भी है, जिस पर यह लिखा है कि

श्री रम जी

अत्रि विंशतार्थं सिधर्यं पूजनी स्वरासुर सर्व विघ्नछेदेतस्मै श्री गणाधिपतये नम अथ शुभ सवत सरे श्रीमन विक्रमादित्य रज से १७४९ वर्षे शाके १६१४ प्रवर्तमाने महा मागल्य प्रद दुतीक भाद्रपदे मासे शुक्ले पक्षे चतुर्थी तिथि रविवासरे स्वाति नक्षत्रे घटी १२ वधत घटी ४१ ता दिने कोठारी सुषदेव तत्पुत्र येमराज सार्थे महासती भामपेढीवाल रिद्धराम पुत्री स्वर्गलोके प्राप्त शुभ भवत ॥ १ ॥

॥ करत वा सलावट रामचन्द ॥

श्रीकृष्ण जी का साहस

सवत् १८१२ मे बीकानेर मे सात वर्ष से अन्न की कमी होने के कारण दुर्भिक्ष की सी स्थिति रही। अन्न की अपेक्षा पैसो की कमी अधिक थी और क्रय-विक्रय की सामर्थ्य का भी अभाव था। दासो जी के बाद पाचवी पीढी मे सुखदेव जी के भाई राजाराम जी के एक पुत्र नथमल जी हुए और नथमल जी के पुत्र श्रीकृष्ण जी हुए। दुर्भिक्ष के कारण श्रीकृष्ण जी ने मालवा की ओर जाने का निश्चय किया। इस प्रकार घर त्यागने को उन दिनो मे "मऊ" कहा जाता था। जागलू मे अपने नाना जी के पास वे ठहरे। वे अच्छे पैसे वाले थे। उन्होने उनको मालवा जाने से रोक दिया और सिंध से अनाज लाकर साझे मे काम करने के लिए प्रेरित किया। हालाँकि सिंध की ओर से ऊँटो और बैलो पर अनाज लाकर उसको बेचना और रकम इकट्ठी करके फिर वापस सिंध मे जाना बडी जोखिम का काम था। सारा रास्ता उजाड था। परन्तु श्रीकृष्ण जी ने बडे साहस से ५ वर्षों तक अनाज का काम किया और किसी भी कठिनाई की कोई परवाह नही की। पाँच साल के बाद उन्होने रकम इकट्ठी हो जाने पर जागलू, जेगलो, नोखा, चरकडो, कक्कू और घट्टू आदि गाँवो मे जाट किसानो को व्याज पर रकम देने का साहूकारा शुरू कर दिया। उसको "बोहरगत" कहा जाता था। श्रीकृष्ण जी ने अपने परिश्रम से अपनी स्थिति बहुत अच्छी बना ली। निस्सतान होने से उन्होने तीर्थयात्रा की। वे सोरो गगा जी और हरिद्वार दो-तीन बार गये। उनकी इस तीर्थयात्रा का उल्लेख गगागुरो की बहियो मे मिलता है। पीछे उनको एक लडका और लडकी हुए। स० १८६५ मे ८५ वर्ष की अवस्था मे उनका देहान्त हुआ। उनके बेटे गदाधर जी का छोटी उम्र मे देहान्त हो गया। उनके एक पुत्र सदासुख जी हुए।

संतोषी सदासुख जी

सदासुख जी ने बीकानेर मे कपडे की दुकान खोल ली थी। दादा जी की छोडी हुई रकम और इस दुकान की आय पर वे अपना जीवन बडे सतोष के साथ बिताते थे। वे बहुत ही बुद्धिमान, धैर्यवान और गम्भीर प्रकृति के थे। नाडी विज्ञान मे वे बडे चतुर थे। यह गुण उन्होंने नथमल जी वाले पुरोहितो के परिवार की एक बूढी औरत से सीखा था। नाडी विज्ञान मे वे इतने चतुर थे कि महीनो पहले किसी की मृत्यु की ठीक-ठीक तारीख बता देते थे। वे गरीब अमीर सब की समान भाव से नाडी विज्ञान के आधार पर चिकित्सा किया करते थे। इस सम्बन्ध मे उनके कई चमत्कार प्रसिद्ध हैं।

निर्भीक मोतीलाल जी

सदासुख जी के चार पुत्र हुए, जीवण राम जी, रघुनाथ दास जी, मोतीलाल जी और जोरावर मल जी। मोतीलाल जी बहुत सूक्ष्म विचारवान, गम्भीर, मिलनसार, तेजस्वी और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। बोलने मे नि शंक और निडर थे। उनकी आवाज बहुत गूँजने वाली, ऊँचे स्वर की तथा प्रभावशाली थी। जब वे जोर से बोलते थे तो लोग डर जाते थे। क्रोध मे जब बोलते थे तों आवाज गूंज उठती थी। एक बार की घटना है कि उनका राज्य मे कोई काम था। वे स्वय उसके लिए गढ मे गये। वहाँ दीवान हीरालाल जी मूंघडा के साथ कुछ कहा-सुनी हो गयी तो वे आवेश मे आकर इतने जोर से बोले कि सारा गढ गूंज उठा और महाराज डूंगरसिह जी ने भी जो दूसरे महल मे थे आवाज सुनकर पूछताछ करनी शुरू की कि मामला क्या है। उनके पास मोतीलाल जी का मित्र गुमानमल जी बरड़िया उपस्थित था। उसने दीवान जी के मोतीलाल जी को जबरन दबाने का सब किस्सा कह सुनाया। उन्होंने दीवान जी को बुलाकर मोतीलाल जी के साथ न्याय करवा दिया। वे अन्याय से कभी दबते नही थेऔर उस पर बड़े भावावेश मे आ जाते थे।

पच पचायती के सामाजिक मामलो मे भी उनका वडा मान था। न्याय सम्बन्धी मामलो मे पंचायत मे वे बडे नि शक होकर बोलते थे और उनकी वात का वजन माना जाता था।

अपने पिता जी से उन्होने नाडी विज्ञान का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था और नाडी देखकर वे रोग का निदान इतना अच्छा करते थे कि रोगी के खाने पीने और उससे बुराई होने का सव हाल बिना पूछे कह देते थे। नाडी विज्ञान के उनके चमत्कार देखकर लोग उन पर किसी इष्टदेव की कृपा बताया करते थे। सूक्ष्म बुद्धि भी कमाल की थी। सूक्ष्म विवेचनयुक्त आपके नाडी विज्ञान का लाभ अधिकतर गरीबो को ही मिलता था। किसी वडे के यहाँ जाकर चिकित्सा वे प्राय नही किया करते थे, क्योकि उसमे उनका कोई स्वार्थ अथवा आर्थिक लाभ न था। हरिजन रोगियो की उनके यहाँ भीड लगी रहती थी और उनको वे औषध आदि इतनी सस्ती बताते थे कि उनका कुछ भी खर्च नही होता था। उनको देखने मे वे कुछ भी परहेज या आलस्य नही किया करते थे। देखने के बाद केवल स्नान कर लिया करते थे। उनकी मृत्यु पर इसी कारण हरिजनो ने सवसे अधिक शोक मनाया।

मोतीलाल जी के भी चिकित्सा सम्बन्धी अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं। उनके तीसरे पुत्र लक्ष्मीचन्द जी सग्रहणी से कलकत्ता मे बीमार हो गये। वहाँ किसी औषधोपचार से लाभ न होने पर उनको जगन्नाथ जी अपने साथ वीकानेर ले आये। रेलगाडी तब केवल दिल्ली तक बनी थी और दिल्ली से वैलगाडियो अथवा ऊँटो पर आना पडता था। बीकानेर पहुँचने पर मोतीलाल जी ने देखा और बता दिया कि मूंग की दाल का सीरा और वडे खाने के बाद पानी न पीने से वह व्याधि हुई है। सागरियो का चूर्ण और साग कई दिन तक खिलाया गया और वे अच्छे हो गये।

उनके ही मुहल्ले मे रहने वाले मेघराज छगाणी की स्त्री बहुत बीमार हो गयी। किसी औषधोपचार से लाभ न होने पर वह आपको बुला ले गया। आपने जाकर देखा और कहा कि मतीरे का बीज निगल जाने से वह तकलीफ हुई है। तूंबे की गिर का चूर्ण दिया गया कि दस्त होकर सारा विकार दूर हो गया।

नारायण दास जी वाले वशीलाल जी बागडी का बेटा मुरलीधर बहुत बीमार हो गया। सन्निपात हो जाने से उसके बचने की कोई आशा नही रही थी। मुरलीधर जी महाराज डूंगरसिंह जी के बहुत कृपापात्र थे और उनकी बीमारी का समाचार हमेशा मालूम करते रहते थे। किसी भी औषध से कोई लाभ न होने पर मोतीलाल जी को बुलाया गया। उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि उनके यहाँ डाक्टरो और वैद्यो की क्या कमी है? मुरलीधर जी मोतीलाल जी की पत्नी के चचेरे भाई थे। उसकी मार्फत उनसे आग्रह करके उन को बुलाया गया। उन्होने नाडी देखी और अपने यहाँ से दवाई मगाकर राई के बराबर गोलियाँ दी। बीमार की दशा मे सुधार हुआ और कुछ ही दिन बाद वे बिलकुल ठीक हो गये।

सवत् १८९९ मे मोतीलाल जी श्री हीरालाल मूणलाल ढड्ढा की दुकान पर दक्षिण हैदराबाद मे ५०१ रुपये वार्षिक पर मुनीम नियुक्त होकर गये। उन दिनो मे यह वेतन बहुत ऊँचा माना जाता था। वे पहली बार वहाँ ४ वर्ष रहे। हैदराबाद सरीखे सुदूर स्थान पर जाना वडे साहस का काम था। यात्रा मे असाधारण कठिनाइयो का सामना करना पडता था और समय भी बहुत लगता था।

सवत् १९०२ मे वे हैदराबाद का काम छोडकर चले आये और एक वर्ष बीकानेर मे रहने के बाद अपने मामा श्री जुगलकिशोर जी पुगलिया की रायपुर जिले मे अणदगाँव की दुकान पर चले गये। वे लखपति थे। उनके साथ उनके भतीजे श्री अबीरचन्द जी भी गये। अबीरचन्द जी को वहाँ छोड कर वे स्वय नागपुर की दुकान पर चले आये। अबीरचन्द जी को कुछ समय बाद क्षय की बीमारी हो गयी। पहले भी उस दुकान पर कई व्यक्तियो का इस बीमारी के कारण स्वर्गवास हो चुका था। उस बीमारी को उन दिनो "सोखता चुडैलण"

स्वर्गीय सेठजी श्री मोतीलालजी मोहता के दानवीर सुपुत्र

स्वर्गीय सेठ शिवदासजी मोहता
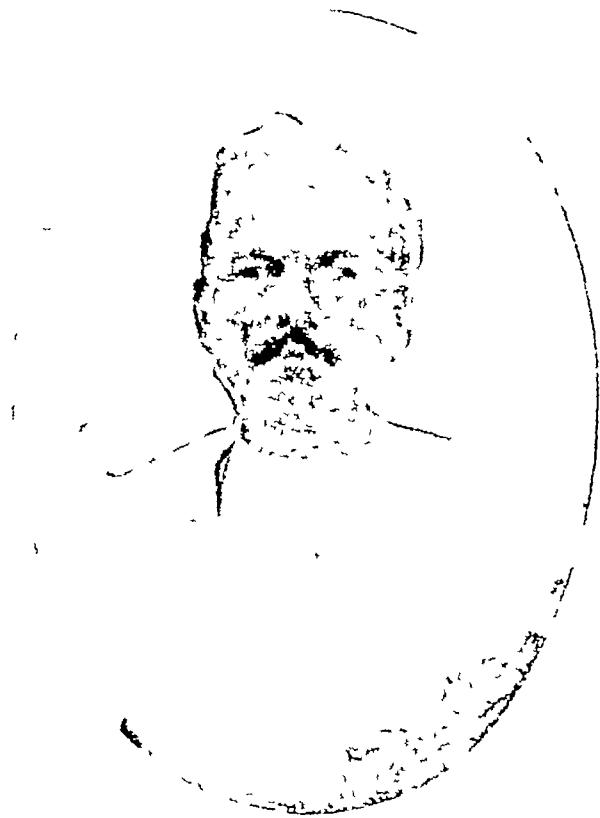
स्वर्गीय सेठ जगन्नाथजी मोहता

स्वर्गीय सेठ लक्ष्मीचन्दजी मोहता
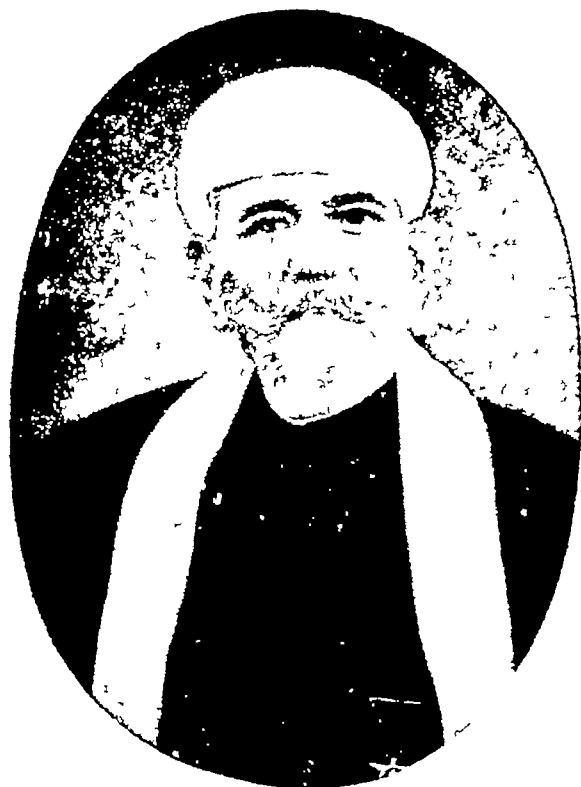
स्वर्गीय राव बहादुर सेठ गोवर्द्धनदासजी मोहता ओ० बी० इ०

कहा जाता था। मतलब यह था कि किसी चुड़ैल के लगने से सूखे की वीमारी होती थी। एक वर्ष वीमार रहे। उनका १६०४ मे स्वर्गवास हो गया। उसी साल मे वीकानेर मे रघुनाथदास जी का भी स्वर्गवास हो गया था, वडे भाई और भतीजे के प्राय एक साथ देहान्त होने का उन पर वहुत बुरा असर पडा। उनका मन इतना उचाट हो गया कि मामा के वहुत समझाने पर भी वे वीकानेर चले आये। वीकानेर रह कर उन्होने पिता जी की कपडे की दुकान के काम मे अपने को लगा दिया। फिर कही वीकानेर से वाहर काम करने नही गये। इन्होने रायसर और हिमतासर गाँवो के वीच मे एक तालाव खुदवाकर उस पर घाट वनवाया।

मोतीलाल जी की सन्तान

श्री मोतीलाल जी के चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। उनके नाम शिवदास जी, जगन्नाथ जी लक्ष्मी चन्दजी, गोवर्धनदास जी, रभावाई, अम्वावाई और केसरवाई थे। शिवदास जी को रघुनाथ दास जी और जगन्नाथ जी को अवीरचन्द जी के गोद दे दिया गया था। फिर भी उनके साथ उनका अपने पुत्रों का सा व्यवहार रहा। परिवार वडा था और परिमित आमदनी से खर्च वहुत मुश्किल से चलता था, इसलिए उन्होने अपने लडको को कुछ पुरुपार्थ करने के लिए कहा। शिवदास जी उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कलकत्ता चले गये और वहाँ नौहरे के रघुनाथ दास शिवलाल पचीसिया की दुकान पर ४०१ रुपये साल पर मुनीम नियुक्त हो गये। दूसरे पुत्र जगन्नाथ जी ने वीकानेर मे कपडे की दुकान करली। इसमे उन्होने जयपुर, पाली और कलकत्ते से कपडा और दिल्ली से किनारी गोटा मँगाकर वेचना शुरू किया। काम कुछ अच्छा न चलने से तीन वर्ष वाद दुकान वन्द करदी और भिवानी जाकर वहाँ जगन्नाथ मोहता के नाम से श्री छोगमल चुन्नीलाल डागा के साझे मे दुकान खोल ली। दो वर्ष वाद उन्होंने उस दुकान से अपना हिस्सा निकाल लिया और उसके वाद चारो भाइयो ने कलकत्ता मे काम शुरू कर दिया।

मोतीलाल जी की माताजी का देहान्त सवत् १६१२ माघ वदी ७ और पिताजी का संवत १६१८ मगसर सुदी ११ को हुआ। पिताजी के देहान्त के सम्वन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि उन्होने घरवालो को कह दिया था कि कार्तिक सुदी ११ को आधी रात के वाद मेरा देहान्त हो जाएगा। घरवालो को विश्वास नही हुआ, क्योकि उनका स्वास्थ्य वहुत अच्छा था। आधी रात मे उन्होने फिर कहा कि मृत्यु एक महीने के लिए टल गई है और ठीक एक मास वाद उनके वताए हुए दिन उनका स्वर्गवास हो गया।

सवत् १६३६ मे माघ सुदी ६ को न्युमोनिया से मोतीलाल जी का स्वर्गवास हो गया। वे मरुनायक जी के वडे उपासक थे। नित्य नियम से उसका दर्शन करने मन्दिर जाया करते थे। वीमारी मे भी उनका चित्र सामने रख कर उनका स्मरण करते हुए उन्होने शरीर त्यागा।

मोतीलाल जी का सम्पन्न परिवार

मोतीलाल जी के पुत्रो ने उनके जीवित काल मे ही वडा यश और वैभव प्राप्त किया। अपने व्यापार व्यवसाय मे इतनी सफलता प्राप्त की कि आर्थिक दृष्टि के उनके घराने की वड़ी प्रतिष्ठा वन गयी। उनके पुत्र शिवदास जी और जगन्नाथ जी ने कलकत्ता तथा भिवानी मे जिस प्रकार काम शुरू किया उसका उल्लेख यथा स्थान किया जा चुका है। थोडे वर्षो वाद जगन्नाथ जी और लक्ष्मीचन्द जी भी कलकत्ता पहुच गये। वहाँ तीनो ने अपना कपडे का काम शुरू किया। कलकत्ता मे विलायती कपडे का वहुत वडा काम था। विलायती कपडे का आयात का सारा काम अग्रेजो के हाथ मे था, उनकी कम्पनियो के इम्पोर्ट हाउस थे, जिनको कलकत्ता मे "हौस" कहा जाता था।। उनमे वहुत ही कम हिन्दुस्तानी हिस्सेदार थे। प्राय. अग्रेज कम्पनियो और हिन्दुस्तानी व्यापारियो के वीच अधिकतर वे दलाल का काम किया करते थे। हिन्दुस्तानी व्यापारियो से अपरिचित होने के

कारण अग्रेंज कम्पनी वाले उनके साथ सीधा व्यापार नही करते थे । उन्ही हिन्दुस्तानी दलालो के मार्फत काम किया जाता था, जो कि, उनके माल के जामिन होते थे । वे दुहरा काम किया करते थे । पहला यह कि माल की डिलीवरी आने पर रुपये का प्रवन्ध किया करते और दूसरा व्यापारियो को माल वेचते और उनके यहाँ रकम न डूबने की गारटी देते । इसीलिए उनको गारटी ब्रोकर, वेनियन अथवा मुसद्दी कहा जाता था । उनके नीचे छोटे दलाल रहा करते थे । बेनियन्स को एक रुपया सैकडा और छोटे दलालो को छ आना सैकडा कमीशन मिला करता था, आरम्भ मे मुसद्दियो का सारा काम प्राय खत्रियो के हाथो मे था । अपनी विलासप्रियता के कारण वे उस काम को सँभाल न सके और धीरे-धीरे उनका स्थान मारवाडी अथवा राजस्थानियो ने ले लिया । राली और ग्राम कम्पनियो के सबसे बडे हौस थे । जिनके खत्री मुसद्दियो का स्थान क्रमश रामचन्द जी हरीराम जी गोविन्दका और सूरजमल शिवप्रसाद झुनझुनू वाला मारवाडियो ने ले लिया । एफ० स्टेनर कम्पनी मेचेस्टर वाले के जनरल मैनेजर जेम्स कार थे । उन्होने यहाँ अपना माल और अधिक वेचने के लिए तारकनाथ सिरकार और अपने छोटे भाई हैनरी कार के साझे मे कारतारक कम्पनी के नाम से कलकत्ता मे हौस खोली । उन दिनो मे यही एक कम्पनी थी जिसमे अगरेज और हिन्दुस्तानी दोनो शामिल थे । इसमे एफ० स्टेनर कम्पनी का लाल कपडा विशेष रूप से आया करता था । वह लाल कपडा खादी रगकर वनाये गये लाल कपडे की नकल मे बनाया गया था, इसलिए वह खूब चलता था । उसके पहले मुसद्दी मुकन्दीलाल खत्री थे । उनके नीचे के छोटे मुसद्दियो मे श्री शिवदास जी और जगन्नाथ जी भी शामिल थे । दलाली मे खूब पैदा हुआ और कुछ ही समय बाद उन्होने शिवदास जगन्नाथ नाम से लाल कपडे की अपनी दुकान खोल ली, उसमे मुकन्दीलाल खत्री का भी साझा रखा गया था ।

सवत् १९३२ मे वयस्क होने पर गोवर्धनदास जी भी कलकत्ता आ गये । उन्होंने गोवर्धन दास शिव प्रताप के नाम से धुलाई कपडो की दुकान खोली । उसमे ग्राम कम्पनी का माल विशेष रूप से वेचा जाता था । इन दोनो दुकानो मे क्रमश हीरालाल जी, रामनारायन जी मोहता करमसोत तथा जोधराज जी धानूका साझेदार हुए । उसमे इनको लाखो का मुनाफा हुआ और उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गयी । उससे कुछ रकम जमा हो जाने से उन्होंने शिवदास जगन्नाथ के नाम से सराफे की दुकान खोली । उन दिनो मे बीकानेरी समाज मे सराफा दुकान वालो की वडी प्रतिष्ठा थी । उनकी हुडी चिट्ठी का भाव बहुत ऊँचा रहता था और रकम उनको कम व्याज पर मिल जाती थी । वे दूसरो को ऊँचे भाव मे देकर अच्छा मुनाफा कमा लेते थे । बैंकवाले भी व्यापारियो की हुडियाँ न लेकर उनकी ही हुडियाँ लेते थे । जल्दी ही उनका फर्म डागो और दम्माणियो की श्रेणी मे गिना जाने लगा ।

मोतीलाल जी के १९३९ मे देहान्त होने के समय उनके चारो लडको की गणना लखपतियो मे होने लग गयी थी ।

मोतीलाल जी की पुण्य स्मृति मे

स्वर्गीय मोतीलाल जी की स्मृति मे सवत् १९५०-५१ मे उनके पुत्रो जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी ने वीकानेर रेलवे स्टेशन के पास एक विशाल धर्मशाला और उसके साथ पानी की प्याऊ वनवायी । इस धर्मशाला मे एक सस्कृत पाठशाला की भी स्थापना की गयी । फिर सवत् १९७४ मे धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय और रसायन शाला स्थापित किये गये । धर्मशाला के साथ पानी के जमा करने की एक वडी वावडी और वाद मे एक कुंवा भी वनवाया गया । इन सवके निर्माण मे लाखो रुपये लगाये गये और इनके व्यय के लिए भी लाखो रुपयो की सम्पत्ति का ट्रस्ट वनाया गया जिनके एक ट्रस्टी और मत्री श्री रामगोपाल जी
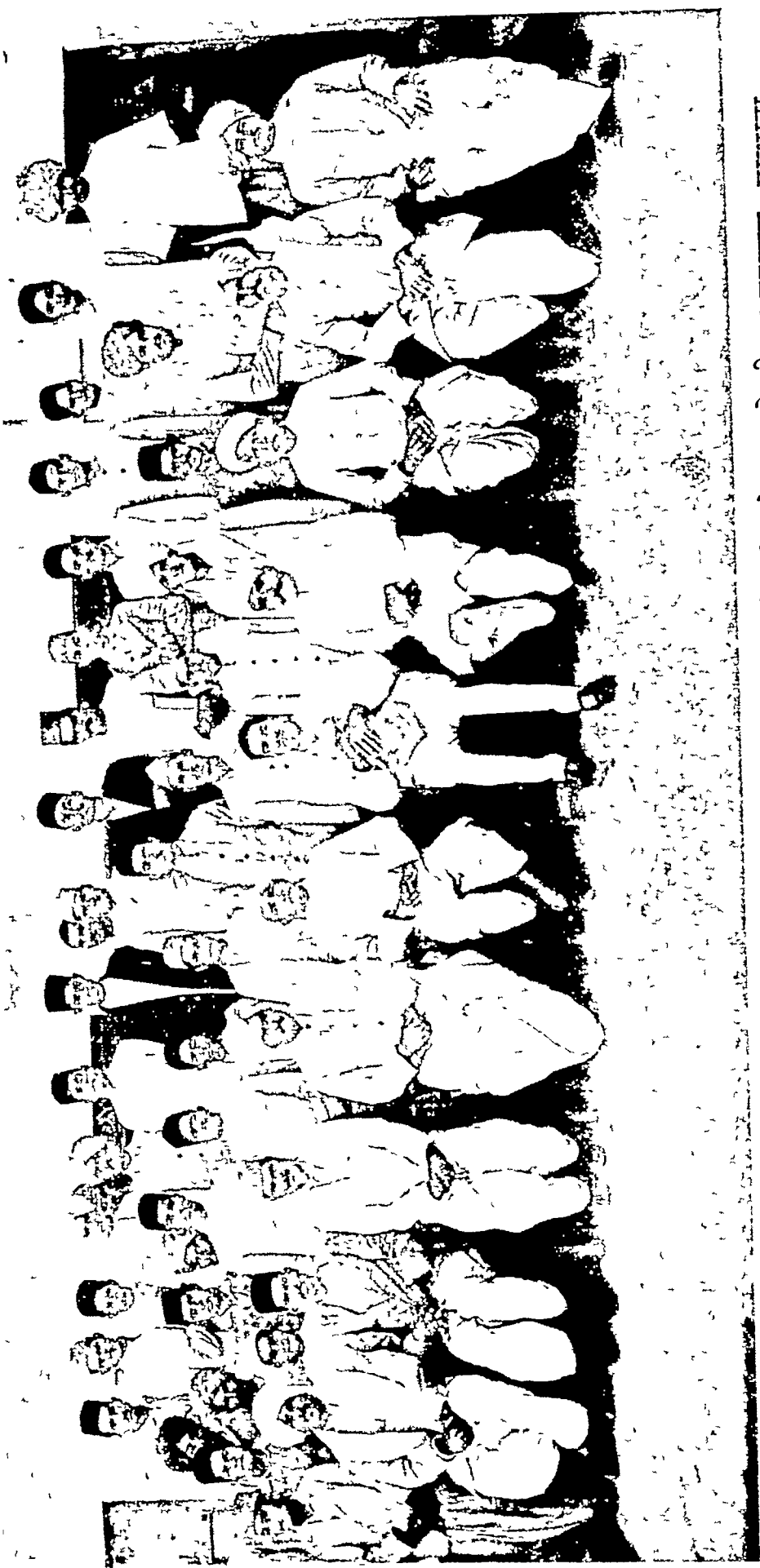
मोहता मोती लाल धर्मशाला व धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय बीकानेर के कार्यकर्त्ता। बीच मे राज्य के दीवान महाराज मान्धाता सिंह जी, उनके दाहिनी ओर श्री रामगोपाल जी मोहता और श्री शकरदत्त जी वैद्य। बाई ओर श्री शिवरतन जी मोहता और श्री पुनषोत्तम दास जी पाडिया, मैनेजर।

मोहता जी के पूज्य पिताजी स्वर्गीय
राव बहादुर सेठ गोवर्धन दास मोतीलाल जी मोहता श्रो० बी० श्राई०

राव बहादुर गोवरधन दाम मोतीलाल मोहता ग्रांख के ग्रस्पताल, कराची की ग्राधारशिला रखने के ममय का चित्र ।

गोवरधन सागर बगीची बीकानेर की सत्सग भवन की प्याऊ से पानी भर कर जाते हुए कुम्हार ।

मोहता नियुक्त किये गये । अनुमानत तीस-पेतीस वर्षों तक आपने इन सब सस्थाओ का प्रबन्ध सुचारु रूप से किया ।

गोवर्धन सागर वगीची

आपके पिता जी राव वहादुर सेठ गोवर्धन दास जी ने सवत् १९७०-७१ मे बीकानेर शहर के वाहर दक्षिण-पश्चिम की ओर एक वगीची वनवायी जिसमे आगन्तुक साधु-सतो तथा अन्य ग्रामीण यात्रियो के ठहरने के लिए कई मकान वनवाये । उन दिनो बीकानेर मे पानी की बहुत तगी रहती थी । नल नही लगे थे । इसलिए पानी की एक वावडी और तलाई वनवायी तथा पानी पिलाने की प्याऊ स्थायी रूप से लगायी । इसी वगीची मे श्री उत्तमनाथ जी महाराज ठहरते और सत्सग किया करते थे । आजकल मोहता जी इस मे ही नित्यप्रति सत्सग करते हैं, जिसमे वहुत-से सत्सगी नर-नारी सम्मिलित होते हैं । इसका नाम "गोवर्धन सागर वगीची और गीता सत्सग भवन" रखा गया है । इसमे राहगीर पानी पीते है और आस-पास के गाँवो के लोग विशेषकर गगाशहर मे रहने वाले कुम्हार लोग सैंकडो की सख्या मे अपने-अपने गदहो पर पानी से भरे हुए घडे नित्य प्रति ले जाते है । उनका ताँता लगा रहता है । इस सस्था के खर्च निर्वाह के लिए सेठजी ने एक स्थायी ट्रस्ट बना दिया था ।

संवत् १९७० मे राव वहादुर सेठ श्री गोवर्धनदास जी ने कराची मे आँख के रोगो की चिकित्सा के लिये एक अस्पताल की स्थापना करने के लिए सिंध की सरकार को ७०,००० रुपये प्रदान किये । उस अस्पताल का शिलान्यास उस समय के वम्बई और सिंध के गवर्नर सर एच० एस० लारेंस ने किया था ।

४

जीवन परिचय

वयोवृद्ध, मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता का जन्म सवत् १९३३ मगसर बदी १२ को हुआ। बचपन मे आपका रूप रग व आकृति आकर्षक और बोली मीठी थी। लोग आपको बहुत प्यार करते थे। दादा मोतीलाल जी आपसे विशेष प्रेम करते थे और प्राय अपने पास ही रखते थे। आपके चरित्र पर आपके पिताजी और माताजी के स्वभाव का ही विशेष प्रभाव पडा। आपके पिता जी बडे पवित्र, उदार स्वभाव के और धार्मिक वृत्ति के सात्विक सज्जन थे। वे बहुत साहसी, निर्भीक, नि शक, अध्यवसायी, कुशल, विचारशील और दूरदर्शी व्यापारी थे। बडे-बडे अगरेज व्यापारी और अफसर उनके घनिष्ठ मित्र थे और उनका बडा आदर करते थे। पिछली अवस्था मे जब वे अधिकतर बीकानेर रहने लगे तब उनके परिचित अगरेज व्यापारी विलायत से भारत आने पर उनसे मिलने के लिए बीकानेर आया करते थे। अगरेजी भाषा न जानने पर भी दुभाषिये द्वारा वे अगरेजो से वार्तालाप अच्छी तरह कर लेते थे और अपने भाव उनको समझा देते थे तथा उनके भाव स्वयं अच्छी तरह समझ लेते थे। दीन दुखियों की सहायता और परोपकार के कामो मे वे मुक्त हस्त दान दिया करते थे। उनके परोपकारी स्वभाव की कुछ घटनाएँ बीकानेर के लोग अबतक भी याद करते और एक दूसरे को सुनाते हैं। शाम को टहलने के लिए जब निकलते तब जेब मे जितनी भी धनराशि रख लेते वह सब बाटकर घर लौटते। दीन-दुखियो और सकटापन्नो का अपने आदमियो द्वारा पता लगवाकर उनको कभी-कभी गुप्त रूप से इस प्रकार सहायता पहुँचाते कि लेने वालो को पता तक न चलता कि किसने कहाँ से सहायता पहुँचाई है। वे उस को ईश्वरप्रदत्त मानकर संतोष कर लेते। एक हाथ से दिया हुआ दूसरे हाथ को भी मालूम नही होना चाहिए—यह कथन आपकी उदारता पर सचमुच ही पूरा उतरता था। अपने ही उद्योग से उन्होने अपनी स्थिति और कीर्ति करोडपतियो के समान यशस्वी और वैभवशाली बना ली थी। लोकोपकारी कार्यों मे उन्होने जिस उदारता से अपनी कमाई का सदुपयोग किया उससे प्रसन्न होकर अगरेज सरकार ने पहले उनको रायबहादुर की और पीछे ओ० बी० ई० उपाधियो से विभूषित किया था। पिताजी के ये सब सद्गुण मोहता जी के सस्कारी चरित्र मे जिस रूप मे प्रस्फुटित हुए उसी का शुभ परिणाम आपका वर्तमान जीवन कहा जा सकता है।

बचपन

आपके पूरे नाम का उपयोग बहुत कम हुआ। बचपन मे गोपाल, फिर गोपाल जी नामो का अधिक प्रयोग हुआ। आजकल प्राय भाई जी और बाबा जी का अधिक प्रयोग किया जाता है। "बाबाजी" आपके सरल, सहृदय एव सन्त स्वभाव का सूचक है। उस निर्लिप्त स्थिति का भी इससे परिचय मिलता है जिसको आपने समत्व योग के पथिक बन कर प्राप्त किया है।

चार वर्ष की छोटी आयु मे आपके दादा जी आपको अपने साथ तीर्थ यात्रा मे ले गये। माता जी साथ नही थी। आपकी अद्भुत स्मरण-शक्ति और सहज प्रतिभा का परिचय इस यात्रा से लौटने के बाद मिला, जबकि उसका सारा विवरण आप लोगो को ऐसे सुनाया करते थे जैसे कि वह आपको याद कराया गया हो। अजमेर तक की ऊटो पर और बाद मे रेलगाडी पर की गयी यात्रा, मार्ग मे ठहरने के स्थानो व गाँवो और तीर्थों का पूरा विवरण आप के मुँह से बहुत ही अच्छा मालूम होता था और उसको बार-बार लोग बडे चाव से सुनते थे।

मोहता जी की पूजनीया माता जी स्वर्गीया श्रीमती जीता-
बाई मोहता।

मोहता जी की पूजनीया माता जी का स्वर्गारोहण।
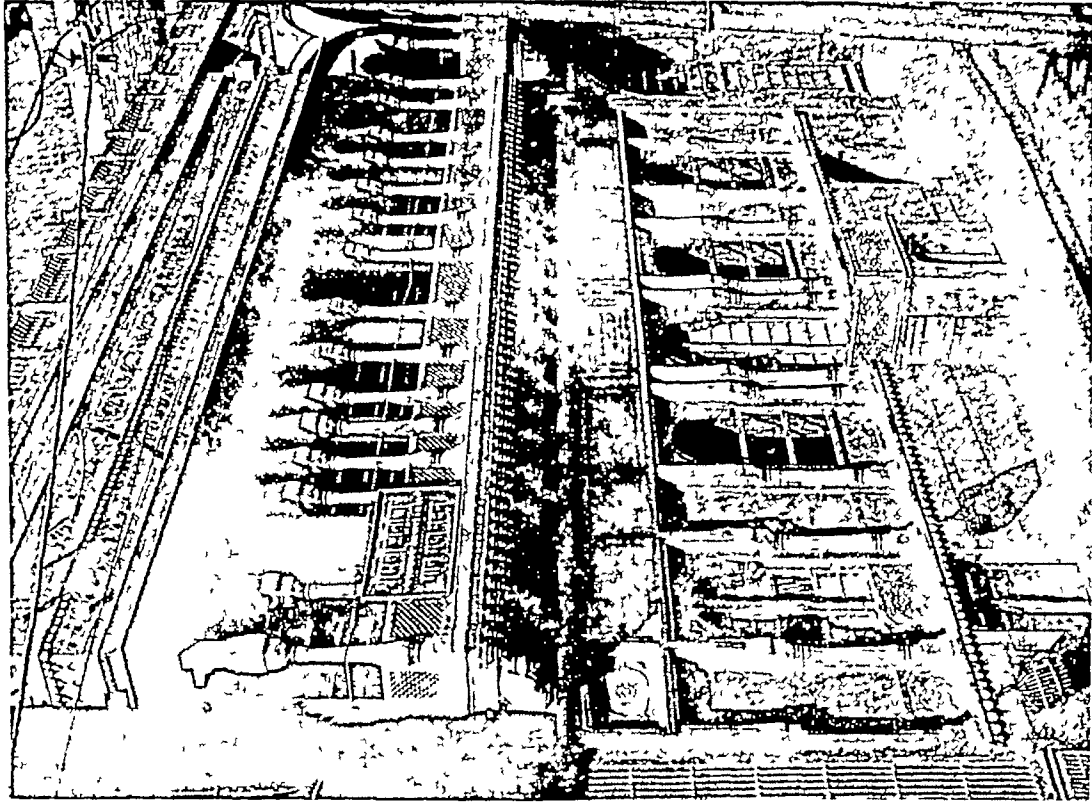
श्रीमती जीताबाई मातृ सेवा सदन, बीकानेर

आपकी ६ वर्ष की आयु मे दादा जी का देहान्त हो गया ।

पढाई का प्रारम्भ

आपकी शिक्षा का प्रारम्भ वचपन मे दादा जी के सामने हो गया था। पहाड़ो, लेखो, व्याज फैलाने और वारगीके अक्षरो की हुण्डी चिट्ठी लिखने तक की सव पढाई आपने पूरी कर दी। सवत् १९४१-४२ मे बीकानेर मे सरकारी स्कूल स्थापित हुआ। उसमे हिन्दी अगरेजी पढाने का प्रवन्ध किया गया था। उसमे सव से पहले भरती होने वालो मे आप भी थे। आपकी श्रेणी सव से ऊँची थी और उसमे आप सदा पहले या दूसरे रहा करते थे। पारितोषिक प्राप्त करने वाले छात्रो मे आप भी होते थे।

संवत् १९४० मे आपकी पहली वहन कस्तूरी वाई का देहान्त हो गया और उसी वर्ष दूसरी वहन जानकी वाई का जन्म हुआ।

आपकी ननिहाल भीनासर मे थी, जहाँ कि कभी-कभी माता जी के साथ आना-जाना हो जाता था। वडे वाप शिवदास जी के कोई सन्तान न होने से वे आपको वड़ा प्यार करते थे। सवत् १९४२ मे उनके साथ आप कोलायत के मेले मे गये।

कराची की पहली यात्रा

सवत् १९४३ सावन मे १० वर्ष की आयु मे वहावलपुर के रास्ते आपने पहली कराची यात्रा की। आपको आपके पिता श्री गोवर्धन दास जी अपने साथ तव कराची ले गये थे। घर मे अगरेजी पढाने वाले भी साथ थे। सावन का महीना यात्रा के लिए शुभ नही माना जाता था। इसलिए माता जी की भेजने की इच्छा नही थी, परन्तु पिता जी ऐसा कुछ विचार नही रखते थे।

रेलगाडी मोटर और हवाई जहाज से आजकल लम्वी यात्राएँ करने वाले उन दिनो मे ऊँटो पर की जाने वाली यात्रा के कष्टो की कल्पना तक नही कर सकते और यह नही जान सकते कि उन दिनो मे प्रवास के आधुनिक साधनो के अभाव मे किस प्रकार कठोर यात्रा करते हुए राजस्थान के वीर, धीर, अध्यवसायी और उद्यमी लोग देश के दूर-दूर कोनो मे पहुँच गये। राजस्थान से दूर स्थानो की यात्रा करने वाले एक-एक परिवार की साहसपूर्ण कहानी अत्यन्त मनोरजक, प्रेरक और उत्साहप्रद है। वीकानेर से कराची की यात्रा की कहानी भी वैसी ही है। उससे उन दिनो की यात्रा की कठिनाइयो और यात्रा करने वालो के साहस का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। बीकानेर से वहावलपुर तक का रास्ता ऊँटो पर तय करके वहावलपुर से रेलगाडी पर सवार हुआ जाता था। बीकानेर से वहावलपुर तक सोमासर, चेणावाला, पूगल, सेसाडा, मौजगढ और पवाखाडा पर पडाव किये जाते थे। ऊँटो पर आवश्यक सामान के अलावा खाने के लिए पेठा, शक्करपारे और भुजिया जिसको "सिरावणी" कहते थे बकरो के ऊन से बने थैलो मे वाँध कर और पानी चमडो की दीवडियो मे भर कर ऊँटो के दोनो ओर लटका दिया जाता था। कुछ आटा, सीधा आदि भी साथ मे ले लिया जाता था। जहाँ आटा व सीधा आदि मिल जाता वहाँ कच्ची रसोई का प्रवन्ध किया जाता नही तो अपने पास के सामान से रसोई तैयार की जाती। यदि भोजन वनाने की सुविधा न होती तो 'सिरावणी" पर ही ५-६ दिनो तक गुजारा किया जाता। खाने-पीने की इस कठिनाई के अलावा मार्ग की अन्य असुविधाएँ भी कुछ कम नही थी। वहावलपुर तक का मार्ग रेतीला, ज्गली और वियावान था। गरमी के कारण दिन मे यात्रा सम्भव न होती थी और रात्रि को ही सफर किया जाता था। वच्चो को ऊँटो पर सुलाकर वडे लोग उन पर पैर पसार के इसलिए वैठते थे कि कही वे नीचे न गिर जाएँ। यात्रा के लिए कोई मार्ग भी नही था। ऊँट अपनी आदत से पगडण्डी के रास्ते पर चलते जाते थे। यदि कही वे रास्ता भूल जाते, तो मीलो चलने

के बाद रास्ता भूलने का पता चलता तो शेष रात वहाँ जगल मे ही डेरा डालकर काटनी पडती। रात्रि मे ठीक रास्ते का पता लगा सकना सम्भव न होता था। दिन मे भी रास्ता ढूंढने मे घण्टो लग जाते थे। यदि कही रास्ते मे वर्षा, आँधी या तूफान आ जाता तो कठिनाई कई गुना बढ जाती। आपको अपनी इस यात्रा मे ऐसे सभी कष्टो और असुविधाओ का सामना करना पडा।

यात्रा की चौथी मजिल सेसाडे की बावडी और साल कुछ ही दूर थे कि सवेरे ४ बजे जोर की वर्षा शुरू हो गयी। कोई ओट वगैरह नही थी। वर्षा का पानी सीधा सिर पर गिरता था। ऊँटो को बैठाकर वर्षा थमने की प्रतीक्षा की गयी। वर्षा थमी तो चारो ओर ज़मीन के बडे-बडे मैदान जिनको "चितराग" कहते थे पानी से भर गए। समुद्र का सा दृश्य दीखने लगा। केवल रेत के टीबे पानी मे दीख पडते थे। चितराग जब सूखे रहते थे तो दूर से मृगतृष्णा का दृश्य दीख पडता था। चितरागो की मिट्टी इतनी चिकनी थी कि उनपर ऊँटो के पैर जमने मुश्किल हो गये। इसलिए ऊँटो को लम्बा चक्कर काटकर सेसाडे के लिए रवाना किया गया और यात्रियो ने पैदल पानी का रास्ता तय किया। कपडे सब भीगे हुए थे। सवेरे ६ बजे के करीब पैदल यात्री सेसाडा पहुँच गये और ऊँटो को पहुँचने मे दोपहर के ११-१२ बज गये। कपडे निचोड कर सुखाये गये और ऊँटो पर लदा हुआ सारा सामान भी सुखाया गया। सीला हुआ खाने का सामान "सिरावणी" भी सुखानी पड गयी। दोपहर को कच्ची रसोई जीम कर शाम को ४ बजे आगे की यात्रा शुरू की गयी। वर्षा से कपडो आदि के भीग जाने से परेशानी तो बहुत हुई, किन्तु यह लाभ भी हुआ कि पीने के पानी का कुछ कष्ट कम हो गया। पीने का मीठा पानी मिल जाना भी बहुत बडी नियामत थी। बावडी वर्षा के पानी से भर तो गयी; किन्तु उसके पानी को फिटकरी से साफ करके ही काम मे लाया जा सका।

सेसाडा से रवाना होने के लगभग आधी रात के बाद ऊटो के रास्ता भूल जाने की कठिनाई का अनुभव भी प्राप्त हो गया। काफी दूर निकल जाने के बाद पता चला कि ऊँट रास्ता भूल गये। उस अँधियारी और उजाड मे पडे हुए रात बिताने के सिवाय दूसरा कोई चारा न था। सवेरा होने पर ऊँट वाले रास्ता ढूंढने निकले तो आधा दिन बीत जाने पर रास्ते का पता लग सका। वहाँ ही "सिरावणी" खाकर और चमडे की दीवडियो मे साथ मे रखा हुआ पानी पीकर भूख व प्यास शाँत की गयी और ऊँटो के पलाण खडे करके उन पर कपडा तान कर उसकी छाया मे दिन बिताया गया।

शाम को वहाँ से चलकर दूसरे दिन सवेरे मौजगढ़ पहुँचे। यहाँ माहेश्वरियो के घर मे कुछ आराम मिला। वहाँ से शाम को चलकर तीसरे दिन बहावलपुर पहुँचे। ६ दिन की यात्रा की मिट्टी और मैल शरीरो पर चढा हुआ था। मुलतानी मिट्टी, जिसे मेट कहते थे, सिर और वदन पर मल कर स्नान किया गया। उन दिनो मे साबुन का चलन नही हुआ था। बहावलपुर मे ६ दिन की ऊँटो की यात्रा के बाद कुछ आराम मिला। आगे का रास्ता रेलगाडी पर तय किया गया। सक्खर के पास सिंधु नदी पर अभी रेल का पुल नही बना था। उसको छोटे स्टीमरो से पार किया जाता था।

कराची मे फर्म के मुख्य कार्यकर्ता आपके फूफा केसर बूआ के पति श्री गोवर्धन दास जी मूंदडा थे। आपको उनके सरक्षण मे रखा गया और वे बडे लाड-प्यार से आपको रखते थे। कुछ समय सैर-सपाटे मे, कुछ घर पर अग्रेजी पढने मे और अधिक समय दफ्तर व दुकान मे बीतता था। उन दिनो मे काम-काज और व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा इसी प्रकार दी जाती थी। वहाँ आप अपनी बहन जानकी बाई को बहुत याद किया करते थे।

बीकानेर वापस

चार मास बाद फिर मगसर मे दादी जी की बीमारी का तार पाकर उसी रास्ते से पिता-जी के साथ

वीकानेर लौट आये। वहावलपुर से वीकानेर की यात्रा ६ दिन के वजाय ऊँटो को भगाते और विश्राम लिए विना ३ ही दिन मे पूरी की गयी। वीकानेर मे पढाई का क्रम फिर स्कूल मे शुरू हुआ। स्कूल का नाम दरवार हाई स्कूल रख दिया गया था। घर मे भी पढाई का क्रम चालू रखा गया। गणित, हिसाव और इतिहास मे आपका मन नही लगता था। उसमे कमजोर रहने पर भी अनुत्तीर्ण होने का अवसर कभी नही आया।

कराची की दूसरी यात्रा

सवत् १९४४ भादवा सुदी मे कराची की दूसरी यात्रा वहावलपुर के रास्ते से ही की गयी। इस वार माता जी, वहन जानकी वाई, केसर वुआ, उनकी पुत्री वुलाकी वाई और उनकी काकी सास भी साथ थी। श्री गोवर्धन दास जी मूँदडा के साथ यह यात्रा की गयी थी। वच्चो व स्त्रियो के लिए ऊँटो पर "कजावा" वनाया जाता था, जो कि उल्टी खाट ऊँटो पर वाँध कर उनके पायो को रस्सो से वाँध कर तैयार किया जाता था। इससे सवारियो को नीचे गिरने का भय नही रहता था। रास्ता वियावान, उजाड और जँगली होने पर भी डाकुओ के भय से सर्वथा रहित था। सिंधु मुसलमान भेड़-वकरियाँ और गाय आदि पालकर अपना गुजारा चलाते थे। किसी-किसी के पास एक-एक हजार गायो तक का ठाठ और भेडो वकरियो का रेवड रहता था। उनका दूध, घी, छाछ वगैरह तथा वकरियो व भेडो का ऊन वेचकर वे अपना काम चलाते थे। इस यात्रा मे कुल आठ नौ दिन लगे होंगे। ६ मास वम्वई वाजार की दुकान के ऊपर के कमरो मे पहले के समान रहे। माघ सुदी ५ सवत् १९४४ को कोठी वाले मकान की प्रतिष्ठा की गयी। प्रतिष्ठा के लिए अमृतसर से सुप्रसिद्ध पण्डित श्री काशीनाथ जी और उनके पुत्र अम्वादत्त को विशेषरूप से वुलाया गया। शास्त्रीय विधि से वडे समारोह से सारा कार्य सम्पन्न किया गया। मकान वन जाने पर उसके ऊपर के कमरो मे रहना शुरू कर दिया गया। यह मकान वहुत वडा और वहुत सुन्दर वनाया गया था। नीचे दुकान, उसके ऊपर वडी वैठक और वैठक के ऊपर रहने के कमरे व रसोई आदि की व्यवस्था थी। पीछे की ओर घरेलू मदिर, रसोई घर और टट्टी आदि की व्यवस्था थी। पिता जी की साधु-सतो और महात्माओ मे वडी श्रद्धा थी। उनको वे प्राय. भोजन आदि के लिए निमन्त्रित किया करते थे। उनमे श्री सच्चिदानन्द नाम के सस्कृत के एक विद्वान साधु थे। आपको उनसे महिम्न स्तोत्र, गगा लहरी और आदित्य हृदय आदि स्तोत्रो के पाठ पढवाये गये।

सवत् १९४५ मे रोकडिये के ३ मास की छुट्टी जाने पर रोकड का सारा काम आपको सौंपा गया, जिसको आपने वडी होशियारी व सावधानी से किया। व्यापार, व्यवसाय निरन्तर फैलता गया। उसके लिए पिता जी को वम्वई, कलकत्ता और पजाव आदि का दौरा प्राय. करना पडता था।

वीकानेर वापस

आपके छोटे भाई राव वहादुर श्री शिवरतन जी का जन्म संवत् १९४५ श्रावण सुदी ८ को कोठी के ऊपर के कमरे मे हुआ। उसी वर्ष वुआ केसर वाई की लडकी सीता का भी जन्म हुआ। शिवरतन जी के ६ मास के हो जाने पर पिता जी सवको कराची से वीकानेर ले आये और यह यात्रा वहावलपुर से ऊँटो पर न करके मुल-तान, फिरोजपुर और अजमेर के रास्ते से की गयी। फिरोजपुर से रिवाडी होकर छोटी लाइन से अजमेर पहुँचे ही थे कि पिता जी को कारतारक कम्पनी का वम्वई पहुचने का तार मिला। सव के वीकानेर जाने के लिए वैलगाडियाँ व ऊँट आदि की समुचित व्यवस्था करके और नौकरो आदि के साथ सव को रवाना करके पिता जी वम्वई चले गये। इस रास्ते मे शिवनाथ सिंह नाम के डाकू का उन दिनो मे वडा आतंक था। इसलिए चरकड़े गाँव के दो राज-पूत भी रखवाली के लिए साथ भेजे गये। उन्होने वडा काम दिया। रास्ते मे एक वार कुछ डाकुओ से जो सामना

हुआ तो वे उनकी पहचान के निकले और सबकी रक्षा हो गयी। फाल्गुन सुदी ३ को सकुशल भीनासार पहुँच गये। बडे पिता श्री जगन्नाथ जी के दूसरे विवाह के कारण घर के सब लोग वहाँ मिल गये।

विवाह

बीकानेर पहुचने पर आपके विवाह की चर्चा चली। आपकी सगाई श्री जुगल किशोर जी डागा के सुपुत्र श्री नवलकिशोर जी की पुत्री चम्पा उर्फ भत्ती बाई के साथ हो चुकी थी। उसकी आयु केवल ९ वर्ष की होने से ससुराल वाले विवाह के लिये सहमत नही थे। परन्तु दादी जी का अत्यन्त आग्रह होने से उनको सहमत किया गया। चचेरे भाई कन्हैयालाल जी की सगाई भट्टडो के यहाँ हुई थी। लडकी की आयु बडी होने से वे विवाह के लिए बहुत आग्रह कर रहे थे। इसलिए दोनो विवाह आषाढ सुदी ९ सवत् १९४६ को एक साथ करने का निश्चय किया गया। बडे पिता शिवदास जी और जगन्नाथ जी अपना काम-काज अलग-अलग करने का निश्चय करके कलकत्ता गए हुए थे। उनको वहा से विवाह के निमित्त बुलाया गया। कराची से आपके फूफा श्री गोवर्धन दास जी मूंदडा और श्री शिवप्रताप जी मोहता बडे उत्साह से विवाह मे सम्मिलित होने के लिए बहावलपुर के रास्ते आये। मूंदडा जी को घुडसवारी का बडा शौक था। वे सवारी की घोडी, घोडो की जोडी और एक घोडा गाडी साथ मे ले आये थे, परन्तु सडको के अभाव मे वह काम मे नही आईं। विवाह की तैयारियाँ बडे उत्साह से की गयी। उस समय की परिपाटी के अनुसार विवाह मे वेश्या नृत्य भी हुआ और दो नामी वेश्याएँ उसके लिए बुलाई गयी। विवाह बडी धूमधाम से हुआ।

माता जी का स्वभाव और उसका प्रभाव

विवाह के बाद भी घर और स्कूल मे पढाई का क्रम जारी रहा। विष्णु-सहस्र-नाम और गोपाल सहस्र नाम का पाठ बीजराज व्यास से सीखा। माता जी का स्वभाव बडा शात, सरल, सहृदय, सहनशील और दयालु था। बडे लाड-प्यार से वे बच्चो का लालन-पालन किया करती थी। अपशब्द कहना तो दूर रहा वे कभी किसी को डाँटती या धमकाती तक नही थी। पढने के लिए भी किसी पर कोई दबाव नही डालती थी। वे अत्यन्त धार्मिक वृत्ति की और आस्तिक आचार विचार की थी। रामसनेही साधुओ के सत्सग के कारण उन्होंने उनकी कठी धारण की हुई थी। भजन-पूजन व नित्य नेम मे वे कभी चूकती नही थी, नरसी जी की हुन्डी, दानलीला और भगवान राम व कृष्ण के भजन वे नित्य बडी तन्मय होकर गाती थी। काम-काज करते हुए भी वे भक्ति के भजन गाती रहती थी। कार्तिक मे तुलसी और महादेव पार्वती का व्यावला गाया करती थी। उन गीतो को माता जी के मुख से सुनते हुए आपने याद कर लिया था। भीनासर के मुरली मनोहर के मदिर के कथावाचक रुघजी व्यास माता जी को भागवत् की कथा सुनाया करते थे। कई वार भागवत् का पारायण करने से माता जी को उसकी सारी कथाए याद हो गयी थी। चौमासे के दिनो मे घर के पास ही तुलसीकृत रामायण की कथा दोपहर के समय हुआ करती थी। भजन भी गाये जाते थे। माता जी बडे नियम से उसमे सम्मिलित हुआ करती थी और रामायण की सारी कथा व भजन उनको कठाग्र हो गये थे। "हरे राम, हरे कृष्ण" की माला नित्य नियम से फेरा करती थी। लाखो मालाएँ उन्होने फेरी होगी। देह मे जितने रोम हैं उतनी मालाएँ फेरने की भावना को उन्होने पूरा किया होगा।

माता जी की इस धार्मिक एव सात्विक वृत्ति का आपके जीवन पर जो अचूक प्रभाव पडा वह स्पष्ट रूप मे प्रगट हो चुका है। लेकिन, उस धार्मिक एव आस्तिक वृत्ति मे जो अध भावना थी, उस पर आपका मन उन दिनो मे भी बैठता नही था। आप भागवत के सम्बन्ध मे रुघजी व्यास से प्राय शकाएँ करते रहते थे। हिरणाक्ष द्वारा पृथ्वी के समुद्र मे डुबोने और वराह द्वारा उसका उद्धार किये जाने की कथा सुनने पर आपने प्रश्न,

मोहता जी का २० वर्ष की अवस्था का चित्र सवत् १९५३।
आपके दाहिनी ओर मुगनचन्द ओझा और बाई ओर
पोरिया नाई खडे हैं।

किया कि सारी पृथ्वी के जल मे डूब जाने के बाद वराह आदि कहाँ टिके होगे ? रुघजी के पास आपकी इस और ऐसी शकाओ का एक ही उत्तर था कि धर्म के मामले मे शका करना पाप है। इस प्रकार आपकी शकाएँ तो दबा दी जाती, किन्तु हृदय मे पैदा होने वाला सन्देह दूर नही किया जा सकता था। आश्चर्य नही कि इसी सन्देह व आशका ने अध श्रद्धा के प्रति अविश्वास का रूप धारण कर लिया हो और वह आप की विवेकपूर्ण अतर्द्दष्टि को जगाने का निमित्त बन गया हो। माता जी से प्राप्त हुए सस्कारो का यह परिणाम आपके जीवन-निर्माण का मुख्य साधन बन गया।

तीसरी बार कराची

संवत् १९४७ भाद्रपद मे तीसरी बार आप श्री गोवर्धनदास जी मूँदडा के साथ कराची गये। यह यात्रा भी बहावलपुर के रास्ते ऊँटो पर की गयी। कुछ दिनो बाद बडे पिता लक्ष्मीचन्द जी के बडे पुत्र कन्हैयालाल जी और जगन्नाथ जी के दूसरे पुत्र बुलाकी दास भी वहाँ आ गये। दिन मे आप दफ्तर मे काम सीखने, कपडो के नमूने व माल के स्टाक का हिसाब रखते और कारतारक कम्पनी के मैनेजर वर्दिगटन के पास जाते-आते। श्री शिव-प्रताप जी मोहता के छुट्टी जाने पर आफिस की अंगरेजी रोकड का काम भी आपके सुपुर्द किया गया। दुकान की कच्ची से पक्की रोकड उतारने और खतावनी करने का काम भी आप को सौंपा गया। घर मे अगरेजी पढने और उसका अभ्यास करने का क्रम जारी रहा।

श्री शिवप्रताप जी मोहता और श्री गोवर्धनदास जी मूँदडा को धार्मिक पुस्तकें पढने-सुनने का कुछ शौक था। खाली समय मे बैठक मे वे भागवत का शुक सागर, भारत सार, योग वाशिष्ठ, तुलसी कृत रामायण, आदि पढा करते थे। आप भी ये पुस्तकें पढ कर उनको सुनाते थे। आप को उनसे हिन्दी का कुछ अभ्यास हो गया। कई भजन कठाग्र हो गये तथा रामायण, महाभारत, भागवत आदि की कथाएँ भी याद हो गयी। ठाकुर बाडी मे आप नित्य नियम से महादेव जी की पूजा किया करते थे।

बीकानेर मे

दो-ढाई वर्ष कराची मे बिताने के बाद आप कन्हैयालाल जी और बुलाकीदासजी के साथ सवत् १९४९ कार्तिक बदी मे बीकानेर लौटे। तब बीकानेर की रेलवे लाइन मारवाड जकशन जोधपुर होकर बन चुकी थी। इसलिए यह यात्रा मुल्तान, अमृतसर, दिल्ली और मारवाड जकशन के रेलवे मार्ग से की गयी। पिता जी मस्से और भगन्दर के इलाज के लिए बीकानेर आये हुए थे। दीवाली से दो-एक दिन पूर्व बीकानेर पहुँचना हुआ। दीवाली मनाने के बाद परिवार के सब लोग कोलायत जी के मेले पर गये। वहाँ से लौटने के दो दिन बाद आपकी दादी जी का देहान्त हो गया। "खीचडे" और तेरहवी की मिठाई आदि खाने के कारण आपको आँव की शिकायत हो गई। फिर मलेरिया भी हो गया। कई महीने बीमार रहे।

वैशाख सवत् १९५० मे छोटे भाई श्री मूलचन्द जी और उसी वर्ष माघ सुदी २ को आपकी पुत्री सुगनी बाई का जन्म हुआ।

श्री मेघनाथ बनर्जी नाम के एक बंगाली सज्जन से आप अगरेजी का अभ्यास किया करते थे। "टाइम्स आफ इडिया" पत्र आदि वह पढाया करता था। अगरेजी के साथ-साथ सामयिक विषयो की जानकारी भी उससे मिलनी शुरू हो गयी। बाबू जी जगन्नाथ जी की सगति से आपको विशेष लाभ मिला। वे दोपहर को दीवानखाने मे बैठा करते थे। उनके पास सभी तरह के लोग आते और अनेक विषयो पर चर्चा वार्ता किया करते थे। वह सारी चर्चा वार्ता आप बहुत ध्यान से सुनते और उससे आपकी साधारण जानकारी खूब बढी। उनका

वाणीका का पत्र-व्यवहार आप पढते थे। वे उसमे बहुत ही निपुण थे। उससे भी आपने लाभ उठाया और पत्र आदि लिखने का आपको अच्छा अभ्यास हो गया।

कराची मे

दो वर्ष इस प्रकार बीकानेर मे बिताकर आप अपनी माताजी, अपने दोनो छोटे भाइयो, वहन, स्त्री और शिशु कन्या के साथ सवत् १९५१ भादवा मे कराची के लिए रवाना हुए। तब फुलेरा की लाइन बन चुकी थी। इसलिए यह यात्रा फुलेरा, रिवाडी, फिरोजपुर, मुल्तान और सक्खर के रास्ते की गयी। कराची पहुँचकर आफिस मे आपने मूंदडा जी के साथ काम करना शुरू किया। दुकान मे खाता खताने का काम भी आपको सौंपा गया।

इस वर्ष कराची मे गहरी नालियाँ खोदकर गदे पानी के गटर विठाये जा रहे थे और उनके लिए खोदी जाने वाली नालियो का पानी पम्प करके सडको पर ही वहा दिया जाता था। उसके कारण कराची मे मलेरिया व न्युमोनिया खूब फैला। कोठी मे भी वहुत से लोग वीमार पड गये। आप भी अपने भाई-वहन सहित वीमार हो गये। ताप और तिल्ली की शिकायत रहने लगी। मूदडा जी को भी निमोनिया ने आ घेरा। माता जी और पिता जी पूरी तरह स्वस्थ रहे। सवा वर्ष, कराची मे रह कर सवत् १९५२ कार्तिक मे अमृतसर, हरिद्वार और दिल्ली होते हुए आप वीकानेर लौट आये। दीवाली दिल्ली मे मनायी गयी। इस वार के कराची निवास की मुख्य घटना मार्केट की नीव का रखा जाना था, जो कि कोठी के सामने वाले गोदाम के स्थान पर बनाया गया था। आपको समाचार पत्र और पुस्त ें पढने का विशेष शौक था, इसलिए आप "डैन्सोहाल लायब्रेरी" मे नियमित रूप से जाया करते थे। वहाँ रामायण व महाभारत अगरेजी मे, मिस्ट्रीज आफ लन्दन तथा अन्य समाचार पत्र आदि पढते थे। हिन्दी पुस्तकें पढने का भी आपको शौक था। श्री देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास चन्द्रकान्ता, नरेन्द्र-मोहनी, कुसुमकुमारी आदि भी पढ डाले और "चन्द्रकान्ता सन्तति" के ग्राहक वन गये। इन पुस्तको से आपका भाषा-ज्ञान वढने के साथ-साथ आपको दुनियादारी की भी अच्छी शिक्षा मिली।

बीकानेर मे आमोद-प्रमोद का जीवन

बीकानेर मे आपके मकान के उत्तरार्ध की ओर सटा हुआ घर श्री लक्ष्मीचन्द जी की निगरानी मे वन रहा था। उसकी निगरानी आप करने लग गये। कोई विशेष काम न था। इसलिए अधिक समय गाने-बजाने, राग-रग और विनोद मे बीतने लगा। उन दिनो मे आपकी मण्डली जोरदार थी। कराची से आप अपने साथ जो उपन्यास आदि ले आये थे उसको सारी मण्डली बडे चाव से पढने लगी। आपने इस मण्डली के साथ उन दिनो के आमोद प्रमोद का वर्णन जो स्वय लिखा है वह यहाँ उद्धृत किया जाता है। आपने लिखा है कि "मेरी प्रकृति रजोगुण प्रधान, विनोदी और विलासी थी इसलिए रसिकता की मात्रा अधिक थी। वीकानेर मे अधिक रहने से कुछ कुसग के प्रभाव के कारण पथभ्रष्ट भी अनेक वार हुआ। पर सत्वगुण की मात्रा भी पर्याप्त थी। तमोगुण कम था इसलिए विचारशक्ति तेज थी। सावधानी और सतर्कता अधिक थी। कुमार्ग मे मैं इतना नही उलझा कि जिससे मेरा पतन होकर वदनामी हो जाती और प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती। उस समय के अनुभव से आगे चलकर मुझे यह निश्चय हुआ कि हम लोगो के अधिक विश्वास-पात्र नौकर हमारे वालको को अधिक विगाडते हैं। विशेषकर ब्राह्मण देवता तो कोई विरला ही विश्वास का पात्र होता होगा। मेरी वरावरी वालो मे भीखणचन्द्र राठी मेरा घनिष्ठ मित्र था। फतेलाल भइया और रामप्रताप चाडक हँसी मजाक के लिए उपयोगी थे। वाकूदास व्यास हाजिर जवावी, प्रसगानुसार कविताएँ, दृष्टान्त व चुटकुले आदि कहने मे तथा विनोद की वातें करने मे वहुत कुशल था। उसके कहे हुए चुटकुले, दृष्टात और कविताएँ समय-समय पर प्रसग आने पर मुझे अव भी

मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता — ४० वर्ष की आयु मे

मित्र मण्डली बीकानेर सन् १९१० । बायें से छठे मोहता जी ।
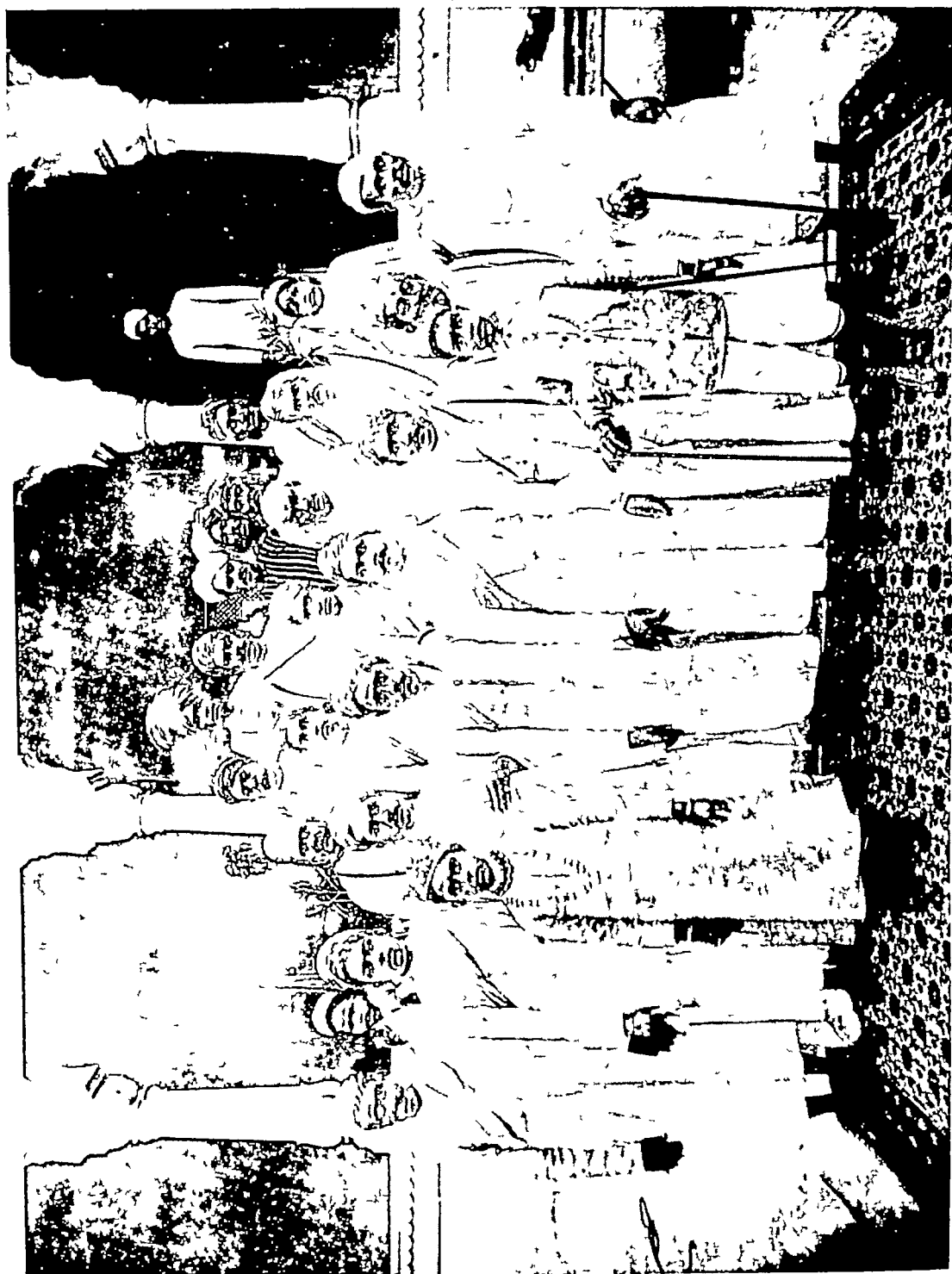
याद आती हैं। वह शायर था। उनके अतिरिक्त और भी कई लोग हमारी हाजरी भरने आया करते थे। हमारी मडली के लोग अपने-अपने काम के लिए देशावरो मे जाते थे पर होली और चौमासे के दिनो मे सव वीकानेर आकर एकत्र हो जाते थे। होली के दिनो मे गाने वजाने, हँसी-मजाक और विनोद की वहुत धूम रहती थी।

चौमासे के दिनो और होली के दिनो मे गोठें वहुत किया करते थे। वदरी भैरव के स्थान मे वक्सीराम व्यास नाम का एक वडा धूर्त स्वाँग करके वैठा रहता था और कई तरह की सिद्धाइयो का पाखंड किया करता था। मुझे भी उन दिनो सिद्धाइयो मे विश्वास था। मैं उसके पास जाया करता और उसके जाल मे पड कर कई दिनो तक उससे ठगा जाता रहा। उसकी ठगाई और धूर्तता का भेद पीछे खुला। दोपहर के समय पूज्य वावू जी जगन्नाथ जी के पास दीवानखाने मे मैं वैठा करता और देशावरो की आई हुई चिट्ठियाँ वाँचता। उनके उत्तर पूज्य वावू जी की आज्ञानुसार मैं लिखता और जो कोई काम करने को कहते वह किया करता। सुवह और शाम के समय हम लोग पूरे स्वतंत्र थे। उसमे वडो की तरफ से हमे कोई रुकावट नही होती थी।"

यह लम्वा उद्धरण आपका लिखा हुआ केवल यह स्पष्ट करने के लिए दिया गया है कि आपके जीवन का जो उत्कर्ष हुआ उसके वीज आप मे युवावस्था मे ही विद्यमान थे। यदि वे न होते तो साधारण मनुष्यो की तरह आप भी अपने जीवन मे कोई विशेषता प्राप्त नही कर सकते थे और युवावस्था मे फिसला हुआ आपका पहला ही कदम शतमुखी पतन का निमित्त वन गया होता। युवावस्था मे हर व्यक्ति के जीवन मे एक द्वन्द्व होता है, जिसको देह और आत्मा का द्वन्द्व कहा जाता है। आमोद-प्रमोद, राग-रग और भोग-विलास मे उलझ जाने वाला देह-सम्वन्धी आवश्यकताओ का दास वन जाता है फिर उसका विकास नही हो सकता। जो उन पर विजय पा लेता है उसकी अतर्दृष्टि जागनी प्रारम्भ हो जाती है और उसका ध्यान आत्मा की ओर लग जाता है। आपके सस्कारी जीवन का विकास इसी रूप में हुआ। आपकी दृष्टि अन्तर्मुखी होकर आत्मा की ओर लग गयी।

पहली कलकत्ता यात्रा

सवत् १९५४ मे वम्वई और कराची मे प्लेग की शिकायत होने से आप अधिकतर वीकानेर ही रहे। भाद्रपद १९५४ मे आप और आपके चचेरे छोटे भाई कन्हैयालाल जी कलकत्ता गये। कलकत्ता की आपकी यह पहली यात्रा थी। इसलिए कलकत्ता देखने की वडी लालसा थी।

यज्ञोपवीत संस्कार

कलकत्ता आये अभी दो ही मास हुए थे कि आपका और आपके वडे चचेरे भाई मदन गोपाल जी का यज्ञोपवीत सस्कार करने का निश्चय किया गया। आपके घर मे यज्ञोपवीत पहनने की परिपाटी नही थी। सवसे पहले जगन्नाथ जी का यज्ञोपवीत सस्कार हुआ था और उनके वाद आप दोनो का कातिक सुदी ११ को पुष्कर राज मे सस्कार होना निश्चित हुआ था। धर्मशाला की सस्कृत पाठशाला के पडित परमानन्द जी श्रीमाली को अपने साथ लेकर पिताजी वीकानेर से रवाना हुए और आप दोनो उनको फुलेरा मे मिल गये। वहाँ पहुचने पर पता चला कि पुष्कर मे प्लेग फैल जाने से यात्रियो का वहाँ जाना रोक दिया गया है। साभर के पास "देवयानी" तीर्थ पर ठीक मुहूर्त के दिन पडित श्रीमाली जी से आप दोनो का यज्ञोपवीत सस्कार यथाविधि करवा लिया गया। वीकानेर आकर पडित जी से सध्या और गायत्री की दीक्षा ली। गणेश पूजन के साथ सध्या और गायत्री जाप करने का भी नियम शुरू हो गया, जिसको वडे प्रेम और श्रद्धा से निभाया जाने लगा।

सवत् १९५६ मे आपको पजाव मे गेहूँ की सन्डे पैट्रिक कम्पनी की अनाज की खरीद के रुपये भुगताने

का सराफे का काम सौंपा गया। उसके लिए आप पजाव आते-जाते रहते और गेहूँ के बाजार मे तेजी आ जाने के कारण दो मास अमृतसर मे रहे। कसूर, फिरोजपुर आदि मडियो मे भी आपका आना-जाना हुआ।

सवत् १९५७ मे आपकी एकमात्र वहन जानकी बाई का देहान्त हो गया जिसकी माता जी को वहुत गहरी चोट लगी। उनको सात्वना देने के लिए तीर्थ यात्रा करने का निश्चय किया गया। पिताजी, माता जी के साथ आप के दोनो भाइयो श्री शिवरतन जी, श्री मूलचन्द जी तथा आपकी पुत्री सुगनी बाई को साथ लेकर श्रावण मास मे यात्रा के लिए विदा हुए। पूज्य लक्ष्मीचन्द जी भी सपरिवार साथ गये। आप अपनी पत्नी के साथ वीकानेर रहे। नाथद्वारा मे कुछ दिन रह कर वे मथुरा व वृन्दावन मे व्रज-यात्रा मे शामिल हुए। पिताजी जरूरी तार पाकर वहाँ से कराची चले गये और सबको बीकानेर लौटा दिया। थोडे ही दिन बाद पिताजी बीमार होकर वीकानेर आ गये। वर्षा की अधिकता से फिरोजपुर के पास सतलज मे बाढ आ जाने से रेल की पटरी टूट गयी थी। काफी रास्ता उनको पैदल पानी मे से होकर पार करना पडा। इसके कारण पहले बुखार शुरू हुआ, फिर आँव की शिकायत हो गयी। उनकी वीमारी और कमजोरी के कारण लम्वे समय तक आपको बीकानेर मे ही रहना पडा। सर्दियो मे आप कन्हैयालाल जी के साथ पजाव होते हुए कराची गये और वहाँ कुछ दिन रहकर हैदराबाद से लूनी तक बनी हुई नई रेल-लाइन से बीकानेर लौट आये। यह पहला अवसर था, जब कि सुबह १० बजे कराची से चलकर दूसरे दिन रात के ११ बजेबीकानेर पहुँचना हुआ था। इसलिए यह यात्रा बडी सुखद रही।

दिल्ली मे

पर्याप्त वर्षा के कारण गेहूँ की फसल बहुत अच्छी हुई थी इसलिए सण्डे पैट्रिक का काम पजाब के अलावा दिल्ली और उत्तर प्रदेश की मडियो मे भी फैल गया और अनेक स्थानो पर उसकी एजेन्सियाँ कायम हो गयी, उसके भुगतान का सारा काम आप लोगो के ही जिम्मे था। दिल्ली मे भी नयी दुकान का खोलना आवश्यक हो गया। वहाँ चौवे कटडे मे कपडे की दुकान गोवर्धनदास मदनगोपाल के नाम से पहले ही चलती थी। इस काम के लिए सराफे की नयी दुकान खोलने के लिए आपको दिल्ली भेजा गया। आपने जौहरी बाजार मे गोवर्धनदास गोकुलदास के नाम से दुकान खोली। हापुड, मेरठ, मुजफ्फरनगर, देववन्द, खतौली, सहारनपुर, गाजियाबाद, पानीपत, करनाल रोहतक आदि मडियो मे खरीद होने लगी। सब जगह गुमाश्ते नियत किये गये। कुछ स्थानो पर आढ-तियो की मार्फत भी काम होने लगा। लाखो का लेन-देन दिल्ली से होने लगा। वम्बई और कराची की हुण्डी का भाव दिल्ली मे गिर जाने से रोकड रकम वम्बई से मँगायी जाने लगी। सवा लाख की रोकड लाने मे रेलभाडा ठीक पडता था। इतनी बडी-बडी रकमें कई बार मँगायी गयी। दिल्ली के अलावा अमृतसर और पजाव का काम भी आपको देखना पडता था।

माता जी का सकल्प

सवत् १९५८ भाद्रपद मे श्री शिवरतन जी और श्री लक्ष्मीचन्द जी के पुत्र श्री सोहनलाल जी के विवाह एक साथ हुए। उनके लिए आप भी वीकानेर आये। विवाहो के वाद माताजी के साथ आप और आपकी पत्नी को वैल-गाडी पर राणीचा रामदेवजी के मेले पर जात देने के लिए जाना पडा। वाल्यावस्था मे आपके गुदा मे मस्सा हो जाने से माता जी ने सपत्नीक आपकी जात देने का सकल्प किया था और तव तक वाएँ हाथ से खाने का नियम लिया था। वह सकल्प अव पूरा हुआ। रास्ते मे डाकुओ का वडा भय था। इसलिए साथ मे शस्त्रधारी राजपूत रखवाली के लिए गये और मडगाँव से वन्दूकधारी एक थोरी (भील) को भी ले लिया गया। गाँव नोखडा और सिरडों के वीच डाकुओ ने ऊँटो पर पीछा किया। राजपूत तो डर गये किन्तु थोरी वन्दूक लेकर सामना करने को

तैयार हो गया। डाकू छोडकर चले गये ; किन्तु आपकी पत्नी ऐसी भयभीत हो गई कि उसको बुखार और दस्त लगने लगे। जैसलमेर के वाप गाँव पहुँच कर वहाँ के हाकिम से एक घुडसवार को साथ ले लिया गया। उसको उन दिनो मे "वोलाऊ" कहते थे। आप, माताजी और साथ के सुगना ओझा और पोरिया नाई के सिवाय वाकी सव इतने भयभीत थे कि यात्रा पूरी करनी वहुत भारी पड गयी। माताजी पत्नी को सदा छाती से लगाए रखती थी और वडी ढाडस वँधाती रहती थी। गहने उतार कर एक विश्वासी नौकर को दे दिये गये थे, जो काफी दूर रहकर पीछे पैदल चलता था। उसका नाम पुरोहित था। वह वडा निर्भीक और साहसी था। रामदेव जी की जात देकर सव लोग जव तक कोलायत वापस नही पहुच गए तव तक भय दूर नही हुआ। वीकानेर पहुच कर भी आपकी पत्नी वहुत दिन वीमार रही। इस यात्रा के इस विवरण से उन दिनो की असुविधाओ और कठिनाइयो को सहज मे समझा जा सकता है।

गुण प्रकाशक सज्जनालय की स्थापना

सवत् १९५८ माघ सुदी १३ को वीकानेर मे सम्भवत पहली सार्वजनिक सस्था की नीव डाली गयी। इसकी स्थापना का विशेष श्रेय आपको है। फतेसिंह, दीवान मोहता कुल के श्री जगन्नाथ जी के पुत्र श्री गिरधर लाल जी आपकी आयु के उदार विचारो के सज्जन थे। उनके आपके विचार खूब मिलते थे। एक दिन आपस मे यह चर्चा हुई कि युवक अपना सारा समय ताश, चौपड व गप-शप वगैरह मे यो ही विता देते हैं और कोई काम न होने से कुमार्ग मे पड जाते हैं। इसलिए कुछ मित्रो से सलाह-मशवरा करने के वाद दोनो ने मिलकर इस पुस्तकालय की स्थापना की। पहले सभापति मोहतो के टिकाई श्री किशन सिंह जी वनाये गये। मत्री श्री गिरधर लाल जी और आप कोपाध्यक्ष वनाये गये। मोहतो के सव युवक और शहर के कुछ और लोग भी उसके सदस्य वने। चार आना मासिक चन्दा रखा गया। कुछ धनाढ्य लोग एक रुपया, दो रुपया मासिक भी देते थे। पुस्तको के लिए विशेष चन्दा किया गया। पुस्तकें हिन्दी और सस्कृत की सव धार्मिक मँगायी गयी। कारण इसका यह था कि सारे सदस्य कट्टर सनातनी थे और आप भी उन दिनो मे कट्टर सनातनधर्मी थे। प्रात नियम से मरुनायक जी तथा मदनमोहन जी के और शाम को लक्ष्मीनाथ जी के दर्शन करने जाया करते थे। श्रावण के सोमवार और शिवरात्रि आदि के दिनो मे शिववाडी, काशी विश्वनाथ जी और गोपेश्वर महादेव आदि के दर्शन किया करते थे। हिन्दी के कलकत्ता के पत्र "हिन्द वगवासी" तथा "भारत मित्र", इलाहावाद के साप्ताहिक "अभ्युदय" तथा मासिक "सरस्वती", वम्वई का 'वेंकटेश्वर समाचार" और लखनऊ की मासिक पत्रिका "माधुरी" मँगाये जाने लगे। आपने मनुस्मृति, या यवल्क्य स्मृति, पाराशर स्मृति, धर्म सिन्धु, निर्णय सिन्धु तथा भर्तृहरि शतक और सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ पढ डाले। दर्शन भी आपने पढे परन्तु उनके सूक्ष्म विचारो मे आपका मन नही लगता था। सस्था मे आर्यसमाजी विचारो के भी कई सज्जन सदस्य थे।

इस सस्था के तत्त्वावधान मे प्रति रविवार को व्याख्यान आदि होते थे और वोलने का अभ्यास किया जाता था। पडित चिरजीलाल जी गोस्वामी के अध्यापन मे एक सस्कृत पाठशाला भी चलायी गयी। आपने भी सस्कृत का कुछ अभ्यास किया और लघु कौमुदी का पूर्वार्ध कठ कर लिया। वाहर से भी पडितो को व्याख्यान देने के लिए वुलाया जाता था। व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालु जी शर्मा के व्याख्यान वहुत पसन्द किये गये। पुस्तकालय का काम मोहतो के चौक मे वुद्धिसिंह जी की प्रोल मे शुरू किया गया। सैसोलाव का झगडा होने पर जव मोहतो के दो धाईपे (दल) हो गये तव पुस्तकालय वाठियो के चौक मे एक किराये के मकान मे रखा गया। उसके वाद वर्षो तक श्री चतुर्भुज जी शिवरतन जी पूगलवालो के मकान मे रहा। अन्त मे १९९६-९८ मे कोट दरवाजे के अन्दर उसका अपना भवन आपके उद्योग से वनवा दिया गया जहाँ वह अव तक

कायम है । उसके मत्री श्री गिरधारीलाल जी के बाद आप, कन्हैयालाल जी, शिवरतन जी, मोहनलाल जी और रामकिशन जी मोहता आदि आपके ही परिवार के व्यक्ति रहे ।

कराची मे

सवत् १९५९ मे पिता जी ने एलिगर मोहता कम्पनी कायम करने का निश्चय किया और उसके लिए आपको कराची बुलाया गया । आप सपत्नीक वहाँ गए और वहाँ जाकर एलिगर साहब से मिले । कम्पनी के कायम होने के बाद एलिगर की अनुपस्थिति मे उसके मैनेजर का काम आपने सम्भाल लिया । अग्रेजी का साधारण ज्ञान होने पर भी आप इगलैड के आढतियो से अग्रेजी मे खूब अच्छा पत्र-व्यवहार कर लिया करते थे और कम्पनी का काम खूब चल निकला ।

दिल्ली दरबार

सवत् १९५९ मे आप श्री गोवर्धन दास जी मूदडा के साथ दिल्ली मे लार्ड कर्जन का दरबार देखने गये । श्री मदन गोपाल जी भी उसके लिए कलकत्ता से दिल्ली पहुँच गये थे । श्री भजनलाल जी लोहिया के प्रयत्न से आपको और मदनगोपाल जी को दरबार के भीतर जाने के पास मिल गये । दिल्ली से आप केसर बुआ के पुत्र रामरतन जी मूँदडा के विवाह के लिए बीकानेर आ गये और विवाह के बाद आप कराची लौट गये । कराची मे प्लेग होने से आप सपरिवार बीकानेर लौट आये । कूचामन मे लक्ष्मीचन्द जी के पुत्र मेघराज जी के विवाह के बाद आप फिर बीमार पड गये । स्वास्थ्य लाभ करके आप फिर कराची लौट गये ।

सवत् १९६१ मे जेठ प्रथम वदी ५ को छोटे भाई मूलचन्द जी और पुत्री सुगनी बाई के विवाह एक साथ बडी धूमधाम के साथ किये गये । दोनो विवाहो के कार्यभार के कारण आप और आपकी पत्नी फिर बीमार पड गये ।

मूँदडा जी का देहान्त

सवत् १९६२ भादवे मे पिता जी और श्री लक्ष्मीचन्द जी तीर्थयात्रा पर गये । श्री शिवरतन जी उनकी व्यवस्था करने के लिए उनके साथ थे । आप कराची मे रहे । श्री गोवर्धन दास जी मूँदडा भी कराची मे ही थे । उनको पेट की कुछ शिकायत हुई, जो दिन-पर-दिन बढती गयी । खाने-पीने का उनको सयम न था । बीमारी के बढते रहने पर भी उनको अपनी जन्म-पत्री पर बडा विश्वास था । उसमे उनकी आयु ७२ वर्ष की बतायी गयी थी । इसलिए वे यह न मानते थे कि उससे पहले उनका कुछ बिगाड हो सकता है । मना करने पर भी वे खाने-पीने मे गडबड कर जाते थे । अपनी जन्म-गाठ उन्होने बीमार रहते हुए भी बडे उत्साह से मनायी । विशेष पकवान, मेवे की खिचडी और पकौडी आदि बनाये गये । उसको खाने मे आपने सकोच नही किया । उनकी इच्छा के विरुद्ध डाक्टर को बुलाया गया । उसने जलोदर बताकर कराची का जलवायु उनके प्रतिकूल बताया । इसलिए आपने उनसे बीकानेर जाने का अनुरोध किया परन्तु वे सहमत नही हुए । बडी मुश्किल से आपने उनको इसके लिए सहमत किया । बीकानेर आने के एक ही मास बाद उनका देहान्त हो गया । पिता जी वह दुखद समाचार सुन कर यात्रा के बीच से लौट आये । कराची के सारे काम-काज का भार आप पर आ पडा । श्री मूँदडा जी व्यापार-व्यवसाय मे बहुत चतुर और अनुभवी थे । अगरेजी के ज्ञान के अभाव मे भी वे किसी काम मे अटकते नही थे । एलिगर साहब विलायत गये हुए थे । उनके दफ्तर का सारा काम-काज भी आप (मोहता जी) ही सम्हालते थे । इसलिए दुकान और दफ्तर दोनो का सारा काम अकेले चलाते रहे । एलिगर साहब के विलायत

मे लौटने के वाद आपको बीकानेर आने का अवसर मिला। मूंदडा जी के वडे पुत्र रामरतन जी आपकी आधीनता मे काम सीखने लगे।

पुत्र-प्राप्ति के लिए अनुष्ठान

आपको कोई पुत्र नही हुआ था। इसलिए माता जी के आदेश और पत्नी के अनुरोध पर पुत्र-कामना के लिए "सवा लक्ष" महादेव का अनुष्ठान सवत् १९६४ श्रावण मे मोहता धर्मशाला मे गणेश जी के मन्दिर के दक्षिण वाले कमरे मे विधिपूर्वक करवाया गया। इसके लिए शहर के आठ नामी पडित जपिये बिठाये गये। रोज सवेरे "ओम् नम शिवाय" के मत्रो का जाप करते हुए महादेव जी की मिट्टी की लिगियाँ वनायी जाती थी। पडित गणेशदत्त जी व्यास काव्य तीर्थ के साथ आप अपनी पत्नी सहित दोपहर को वहाँ जाकर विधिपूर्वक पूजन, रुद्री और महिम्न के पाठ करके आरती उतारते थे। भोजनभट्ट जपियो को उनकी इच्छानुसार नित्य नया मिष्ठान्न वनाकर वढिया भोजन करवाया जाता था। उन सस्ते दिनो मे भी एक समय पर एक जपिया के भोजन पर सवा रुपया खर्च आ जाता था। उन्ही दिनो मे धर्मशाला मे एक घटना ऐसी घट गयी कि आपके अन्ध विश्वास और अन्ध श्रद्धा को वहुत गहरी ठेस लगी। एक धूर्त, ठग धर्मशाला मे आकर ठहरा था। उसने सामने रखी हुई थाली मे लोगो की मनचाही चीज उपस्थित करके शहर मे चारो ओर वडा आश्चर्य फैला रखा था। एक रात को वह गणेश जी के सारे आभूषण लेकर गायव हो गया। पुलिस ने सन्देह मे पुजारी देवीदास को सताना शुरू किया। उसने तग आकर धर्मशाला की वावडी मे डूब कर आत्महत्या कर ली। उसका लडका मूलचन्द अव भी पुजारी का काम करता है। धर्मशाला के आदमियो ने देवीदास के भूत होने की वात चारो ओर उडा दी और लोगो ने वावडी की ओर के कमरो मे रहना छोड दिया। जपिये भी भूत का भय मानने लग गये थे। रात मे धर्मशाला के पीछे तालाब पर धोवी कपडे धोया करते थे। उनकी आवाज की जो ध्वनि धर्मशाला मे होती तो लोग उसको भूत की आवाज़ बता कर और अधिक भयभीत होने लगे। एक रात को जपिये वर्षा के कारण पूजा वाले कमरे मे सो गये और उनमे से एक ने अपनी पूजा का सामान एक आले मे रख दिया। उसमे से कोई वर्तन नीचे गिर गया तो भूत के कमरे मे आने का शोर मचा कर सारे जपिये घवडा कर वाहर दौड पड़े और सारी धर्मशाला मे भगदड मच गयी। दूसरे दिन पूजा के लिए जव आप गये तव भूत का सारा किस्सा आपको वताया गया। आपने जपियो को डाँटा-डपटा और कहा कि "तुम तो भूतो के ईश्वर महादेव जी का अनुष्ठान करते हो और रुद्री तथा महिम्न का पाठ करते हो फिर भी तुम लोगो को महादेवजी पर विश्वास नही है। भूतो से डरते हो तो तुम लोग मुझे क्या पुत्र-प्राप्ति करवाओगे ?" जपिये तव अनेक प्रकार के वहाने वनाने लगे। आप स्वय पोरिया नाई के साथ रात को १२ वजे से सुवह के ४ वजे तक वावडी वाले चौक मे घूमते रहे और लोगो को भूत के भय से मुक्त किया। आपने स्वय लिखा है कि "अनुष्ठान का फल यही हुआ कि मेरे हजारो रुपये फिजूल खर्च हुए और जपियो ने माल उडा कर ऊपर से दक्षिणा भी ऐंठ ली। पूज्य माता जी और मेरी पत्नी के मन मे सन्तोष हुआ कि "सवा लक्ष" पूरा हो गया अव पुत्र अवश्य होगा पर कुछ भी नही हुआ।"

ज्योतिषियों पर अविश्वास

एक और वात से भी आपके अन्धविश्वास और अंध श्रद्धा को ठेस लगी। ज्योतिषियो ने आपकी माता जी के देहान्त का सवत् १९६३ आपके पिता जी को वता रखा था। इसलिए माता जी के हाथो से दान पुण्य आदि सब करवा दिया गया, परन्तु माताजी का देहान्त नही हुआ। ज्योतिषियो की वात असत्य सिद्ध हुई।

इसी प्रकार की एक घटना और घटी। मेरठ की ओर से कोई एक वडा ज्योतिषी आया था। वह

अपने पास भृगुसंहिता रखता था और उसके आधार पर सबकी जन्मपत्री तथा भविष्य आदि बताया करता था। पडित गणेशदत्त जी आपको भी अपने साथ उसके पास ले गये। उसने दो दिन के लिए टाल दिया और दो दिन बाद एक जन्मपत्री दे दी। पिछली बातें उसने बहुत कुछ ठीक बता दी परन्तु भविष्य की जो बातें बतायी ठीक न निकली। जगन्नाथ जी के पुत्र बुलाकीदास की आयु उसने ७२ वर्ष बताई, परन्तु उनका ३० वर्ष की आयु मे ही देहान्त हो गया। इससे आप इस परिणाम पर पहुँचे कि ये ज्योतिषी जिस शहर मे जाते हैं वहाँ के पडितो के साथ मिलकर बडे-बडे लोगो की जन्मपत्रियाँ और उनके बारे मे जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। आपको यह भी सन्देह हो गया कि हमारे घर के ज्योतिषि और कही पडित गणेशदत्त व्यास भी उससे मिल न गये हो। आपने लिखा है कि "ज्योतिषियो, पडितो और सिद्धो की पोल, पाखण्ड और ठगाई की बातो का मैंने अपनी आयु मे बहुत ठगे जाकर अनुभव प्राप्त किया। ये बडे धूर्त व धोखेबाज होते हैं, लोगो को ठग-ठग कर खाते हैं।"

परिणाम यह हुआ कि ज्योतिषियो से भविष्य और मुहूर्त निकलवाने मे आपकी कुछ भी श्रद्धा न रही। सवत् १९६४ मे श्री लक्ष्मीचन्द जी और आपके पिता जी ने जब अलग-अलग होने का निश्चय किया तब लक्ष्मीचद जी ने तो मुहूर्त वगैरह निकलवा कर आषाढ सुदी २ को कलकत्ता और बम्बई का काम शुरू किया। और आपने मोतीलाल गोवर्धनदास के नाम से दीवाली के दिन बिना मूहूर्त निकलवाए ही बहियो का पूजन वगैरह कर लिया। बाद मे पता चला कि उस दिन चन्द्रग्रहण भी था, जिसका उल्लेख पचाग मे नही किया गया था। दोनो फर्मों का काम कैसा चला यह बताने की आवश्यकता नही।

उसके बाद काम-काज के सिलसिले मे आप कई मास तक कराची मे रहे। दोनो छोटे भाई श्री शिवरतन जी और श्री मूलचन्द जी भी कराची आ गये। तीनो भाई आपस मे खूब मिलजुल कर एक साथ रहने लगे। छोटा भाई मूलचन्द बडा स्वस्थ और हृष्टपुष्ट था। सवत् १९६५ भादवें मे आप दोनो भाइयों को कराची छोडकर बीकानेर आ गये। पीछे मूलचन्द को बुखार रहने लगा और वह भी बीकानेर आ गया। कुछ दिन बाद उसके स्वास्थ्य-लाभ करने पर पिता जी माता जी और मूलचन्द को सपत्नीक आसोज सुदी ९ को बीकानेर से कराची ले गये। जाने का मूहूर्त निकलवाया गया और सब विधि-विधान करके पिता जी रवाना हुए। उन दिनो मे विदा होने के समय गुड के लड्डू, नारियल और पानी का लोटा हाथ मे लेकर कमर बाँधकर, किसी सुहागिन बहन-बेटी को सामने बुला कर घर से विदा होने की विधि की जाती थी। सब विधि-विधान यथावत् की गयी।

श्री हरकिशन व्यास नाम के एक पडित पर पिता जी की बडी श्रद्धा थी। पिता जी ने सैसोलाव के तालाब पर हरकिशन मोहता की बगीची मे उसको वरणी बैठाया था। उसकी पूजा की सजावट बहुत ही सुन्दर थी। पिताजी ने आपको आदेश दिया था कि तुम प्रतिदिन उसके दर्शन किया करना और वरणी की समाप्ति पर पूर्णाहुति आदि देकर सब विधियाँ पूरी कराना। वैसा ही किया गया।

छोटे भाई का देहावसान

कराची गये एक मास भी पूरा नही हुआ था कि मूलचन्द को सन्निपात ज्वर हो गया और आपको कार्तिक सुदी १० को उसकी सख्त बीमारी का तार मिला, जिसमे तुरन्त कराची पहुँचने को लिखा गया था। उस समय आपकी पत्नी भी बहुत बीमार थी। पिताजी के विदा होने के समय बनाये गये गुड के लड्डू खाने के कारण पेट मे लाग होकर बहुत सख्त दर्द रहने लगा था। कई मास तक वैद्यो और डाक्टरो का इलाज करवाया गया जिससे आराम नही हुआ अत मे रुघजी व्यास की बताई हुई दवा अजवाइन, दाणा मेथी, चन्दलिया, हरड, सोठ, सेंचल लूण तथा गुड का काढा दिया गया और वे ठीक हो गयी।

अपनी पत्नी के अस्वस्थ होने पर भी आप कराची के लिए रवाना हो गये। गाडी रात को ३ बजे

बाए से दाए—श्री शिवरतन जी मोहता, श्री रामगोपाल जी मोहता और स्वर्गीय श्री मूलचन्द जी मोहता,
लेटे हुए श्री मथुरादास जी मोहता, कराची सवत १९६४।
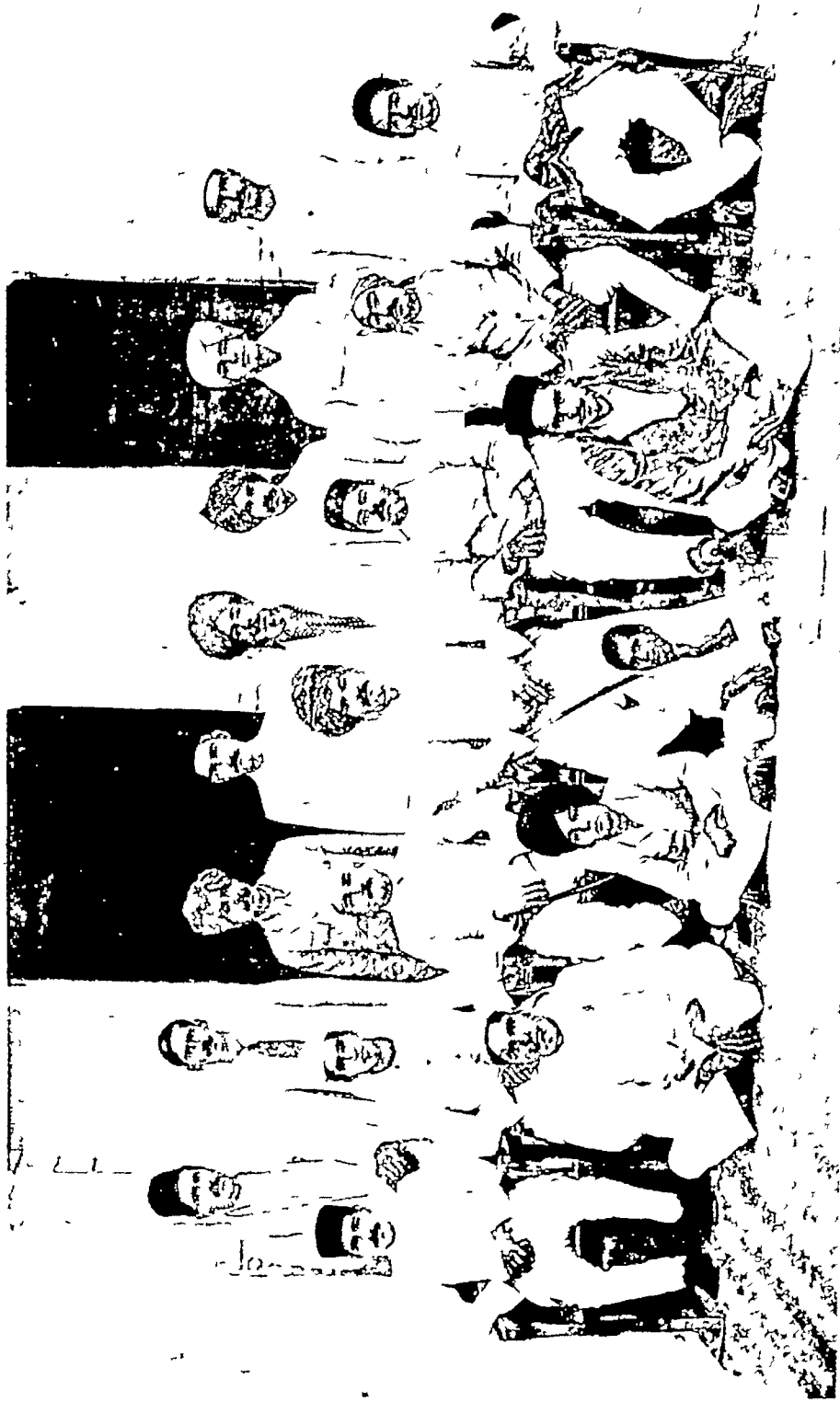
मोहता मूलचन्द विद्यालय बीकानेर के शिक्षको के साथ मोहता जी (दूसरी पक्ति बाए से तीसरे) बीच मे बाए से चौथे विद्यालय के तत्कालीन मत्री ठाकुर जुगलसिंह जी खीची बार-एट-ला।

चलती थी ; परन्तु आप रात को ११ वजे ही गाडी मे जाकर सो गये। उस दिन सुबह वायसराय की स्पेशल आने वाली थी जिसके कारण आपकी गाडी सवेरे ६ वजे रवाना हुई, परन्तु मेडता रोड ४ घण्टे न ठहरकर उसने लूणी मे दूसरी गाडी को पकड लिया। रास्ते मे सुरपुरा के स्टेशन पर जगन्नाथ जी और लक्ष्मीचन्द जी से मुलाकात हुई तव वे भी मूलचन्द की बीमारी का हाल सुनकर वडे चिंतित हुए। वे दोनो कूचामन से किशनलाल जी कावरे की मृत्यु के मोकान से लौट रहे थे। लूणी से समदडी के रास्ते तक आपको जंगल मे बहुत दूर तक आग जलती हुई दीख पडी। मन पहले ही से विक्षिप्त था। तरह-तरह के अनिष्ट की कल्पना कर आप और भी अधिक विक्षिप्त होने लगे। साथ ही यह भी सोचने लगे कि यदि कही मूलचन्द का स्वर्गवास हो गया तो क्या किया जाना चाहिए ? "गुणप्रकाशक सज्जनालय" की स्थापना के समय से आपके हृदय मे समाज-सुधार की भावना पैदा हो चुकी थी। आपने तै किया कि उसकी स्मृति मे ऐसा कोई काम किया जाना चाहिए जिससे लोगो का भला हो और उसका नाम भी अमर हो जाय। गिरधर लाल जी मोहता तथा गणेशदत्त जी व्यास के साथ वीकानेर की पिछडी हुई अवस्था को सुधारने के सम्बन्ध में प्राय चर्चा हुआ करती थी और विद्या-प्रसार के लिए कुछ न कुछ करने का विचार किया जाता था। यह भी सोचा जाता था कि शहर मे मृत्यु के अवसर पर जो लाखोरुपये "तीन घडे" के ब्राह्मण-भोजन मे प्रति वर्ष खर्च होते है वे विद्या प्रचार मे क्यो न लगाए जायें ? आपके मन मे इसी तरह के सकल्प-विकल्प उठते रहे और आपने निश्चय कर लिया कि मूलचन्द के स्वर्गवास के वाद पिता जी को समझा कर तीन घडो का भोजन नहीं किया जाय। उस पर खर्च होने वाली रकम मे कुछ और मिलाकर उसकी स्मृति मे एक विद्यालय की स्थापना की जाय।

कराची स्टेशन पहुँचे तो स्टेशन पर घर का कोई आदमी नही मिला। पिताजी को सत्यनारायण जी के मन्दिर मे कथा सुनाने वाले प० सुखदेव जी मिले तो उनसे पहले दिन कार्तिक सुदी ११ की शाम को मूलचन्द के देहावसान का दारुण समाचार आप को मिला।

कोठी पर पहुँचे तो सव शोकाकुल थे। पिता जी रोते हुए मिले और अत्यन्त उद्विग्न मन से उन्होंने उसकी मृत्यु का वर्णन किया। माता जी कुछ सभली हुई थी। उसके वाद के वारह दिन के क्रिया कर्म निपटा कर तेरहवें दिन भाई शिवरतन और मूलचन्द की विधवा पत्नी के साथ आप वीकानेर लौट आए।

मोहता मूलचन्द विद्यालय की स्थापना

वीकानेर से कराची जाते हुए आपने यह सकल्प कर लिया था कि मूलचन्द की मृत्यु के वाद तीन घडा न करके उसकी स्मृति मे विद्यालय की स्थापना की जायगी और तीन घडे के भोज पर खर्च की जाने वाली धन-राशि विद्यालय के काम मे लगाई जायगी। कराची से चलते हुए पिता जी को आपने इस सकल्प से सहमत कर लिया और विद्यालय की स्थापना करने के लिए उनकी अनुमति प्राप्त कर ली। उस समय इस काम के लिए २५,००० रु० खर्च होने का अनुमान था। पडित गणेशदत्त जी व्यास ने आप के विचार का समर्थन किया और पूरा सहयोग देने का विश्वास दिलाया। ब्राह्मणो के लडको को सव से अधिक शिक्षा की आवश्यकता थी। इस-लिए उनके मुहल्ले के पास विद्यालय खोलना निश्चित किया गया। शहर के कुछ प्रतिष्ठित लोगो की कमेटी वनाने का विचार किया गया। श्री केदारनाथ जी डागा और श्री वदनचन्द जी दम्माणी जव शोक प्रकट करने आए तव उनसे भी चर्चा की गई और वे कमेटी मे सम्मिलित होने को सहमत हो गए। मुन्शी झम्मनलाल जी वकील ने भी अपनी सहमति दे दी। श्री मदनगोपाल जी मोहता ने आप के विचारो का समर्थन किया। ब्राह्मणो मे प० गणेशदत्त जी व्यास और श्री विजयशकर जी के पिता पं० गेरमल जी व्यास ने भी कमेटी मे सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। सात-आठ सज्जनो की एक कमेटी वना दी गई। दरवार हाई स्कूल के हेडमास्टर श्री

कृष्णशंकर जी तिवारी बडे ही सज्जन और विद्या-प्रेमी थे। श्री शिवरतन जी उनसे पढे थे। उन्होंने प्रबन्ध मे पूरा सहयोग दिया। उनकी सम्मति से श्री कस्तूरचन्द जी व्यास मुख्याध्यापक नियुक्त किए गए। नए शहर मे श्री रिखनाथ जी बागडी के पुत्र श्री रतनलाल जी से उनकी कोटडी माँगकर माघ सुदी ५ को "मोहता मूलचन्द विद्यालय" की स्थापना हुई। श्री कृष्णशकर जी तिवारी से उसका उद्घाटन करवाया गया। जिसमे हिन्दी, अगरेजी, वाणीका हिसाब-किताब और महाजनी वहीखाते के काम की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। हिन्दी के अध्यापक प० वसुदेव जी गोस्वामी और वाणीके के श्री लालचन्द जी श्रीमाली नियत किए गए। ब्राह्मणो के बालको को आकर्षित करने के लिए ४ आना मासिक छात्रवृत्ति रखी गई। ऊपर की कक्षाओ मे आठ आना, बारह आना और एक रुपया छात्रवृत्ति दी जाती थी। सब पुस्तकें और पाठ्य सामग्री मुफ्त दी जाती थी। यह सब विद्यार्थियो को विशेषत ब्राह्मणो के बालको को प्रोत्साहन देने के लिए किया जाता था। ब्राह्मणो के ये बालक ४ आना महीना पर महाजनो के यहाँ उनके बच्चो को खेलाने आदि के काम किया करते थे और उनके यहाँ होने वाले जीमनवार व दान-दक्षिणा आदि पर गुजारा किया करते थे, इसी कारण उनमे अनेक दुर्व्यसन पैदा होकर आपस मे लडाई-झगडा वगैरह भी होता रहता था। वे बेकारी या आवारागर्दी मे अपना समय बिताया करते थे। उनको रास्ते पर लाने के लिए यह पहला प्रशसनीय प्रयत्न किया गया था। परन्तु उन्होने इसका भयानक विरोध किया। पिता जी ने जिस प० हरकिशन व्यास से अनुष्ठान करवाया था, जो मूलचन्द की मृत्यु के कारण पूर्णाहुति के बिना बीच मे ही रह गया था, वही पण्डित इस विरोधी आन्दोलन का प्रमुख नेता था। इन लोगो ने सनातनधर्म के नाम पर प्रगति और उन्नति के इस काम का भी कडा विरोध किया। इस निन्दा और विरोध की तनिक भी परवाह न कर आप विद्यालय के काम मे लगे रहे और उसकी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति होती रही। एक-दो वर्षों मे मिडिल तक पढाई होनी शुरू हो गई और कुछ वर्षों के बाद वह हाई स्कूल बन गया और उसको सरकारी सहायता मिलने लग गई। श्री कस्तूरचन्द जी व्यास के बाद श्री गणेशदत्त जी व्यास मुख्याध्यापक नियत किए गए। फिर हाई स्कूल बनने के बाद अग्रेजी के जानकार को मुख्याध्यापक बनाना आवश्यक हो गया।

विद्यालय का अपना भवन

कराची से पिताजी आए, तो स्कूल की प्रगति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कराची मे एक लाख का मकान खरीद कर उसकी आमदनी से स्कूल को चलाने का स्थायी प्रबन्ध कर दिया और आर्थिक चिन्ता से उसको मुक्त कर दिया। कुछ समय बाद सम्वत् १९६८ मे नथूसर दरवाजे के अन्दर रघुनाथ सागर कुएँ की ओर जाने वाले रास्ते पर विद्यालय का अपना विशाल भवन बना दिया गया जिसमे वह अभी चल रहा है। सम्वत् १९७७ मे राज्य से नये शहर मे जसूसर दरवाजे के भीतर ८००० गज जमीन लेकर लक्ष्मीचन्द जी के पुत्रो ने २० हजार रुपया लगा कर उनकी स्मृति मे विद्यालय के साथ छात्रावास भी बनवा दिया, जिस पर उनके नाम का पत्थर लगा दिया गया। महाराज गगासिंह जी की सम्वत् १९६९ मे हुई रजत जयन्ती और सम्वत् १९९४ मे हुई स्वर्ण जयन्ती पर विद्यालय की ओर से उनको मानपत्र भेंट किए गए। उन्होंने विद्यालय की बडी प्रशसा की। इस विद्यालय से निकले हुए अनेक छात्र देशावरो मे गुमाश्ते, मुनीम और राज्यो के उच्च पदो पर काम करने मे सफल हुए।

बीकानेर मे निजी रूप से कायम किया गया यह पहला सार्वजनिक विद्यालय था। इससे न केवल आप के विद्या-प्रेम एव सार्वजनिक भावना का ही पता चलता है; परन्तु समाज सुधार सम्बन्धी उत्कट क्रान्तिमयी भावना का भी विशेष परिचय मिलता है। तीन घडो की जीमनवार को समाप्त करके उस पर खर्च की जाने वाली विपुल धन राशि का विनियोग सार्वजनिक सेवा एव विद्या-प्रसार के लिए किया जाना आप के असाधारण साहस एव अद्भुत धैर्य का सूचक था। ब्राह्मणो की ओर से जीमनवार और उसकी दक्षिणा बन्द होने के कारण

आप पर जो गर्हित एव वीभत्स आक्षेप किए गए उनको सहन करना साधारण वात नही है। लोग जलूस वना-कर आपकी निन्दा के गीत गाते हुए निकलते थे। शहर की दीवारो पर आपके लिए गन्दे से गन्दे शब्द लिखे जाते थे। घर के दरवाजे पर जाकर भी विरोधी लोग गन्दे प्रदर्शन करते थे। आप हँसकर रह जाते थे और आपने कभी किसी के विरुद्ध कोई कार्रवाई नही की। आप ने शान्ति, धैर्य और सहन-शक्ति का अपूर्व परिचय दिया। अपने विचारो तथा भावना पर आप चट्टान की तरह अडिग रहे। हाई स्कूल वनने के बाद ठाकुर श्री युगलसिंह जी खीची ने कई वर्षो तक और उनके वाद श्री गणेशदत्त जी व्यास के सुपुत्र श्री अनन्तलाल जी व्यास ने विद्यालय के अवैतनिक मन्त्री के पद पर वडी योग्यता तथा तत्परता के साथ काम किया।

सम्वत् २००७ मे विद्यालय उसकी कुल सम्पत्ति के साथ राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग को सौंप दिया गया और यह शर्त कर दी गई कि विद्यालय का नाम और छात्रावास पर लगाया गया श्री लक्ष्मी-चन्द जी का स्मृति-चिन्ह यथावत् वने रहेगे। इसका मुख्य कारण देश का विभाजन हो जाने से कराची के मकान की आमदनी का वन्द हो जाना था।

संगीत विद्यालय

दूसरा वडा काम विद्या-प्रसार के सम्वन्ध मे आपने जो किया वह था सगीत की शिक्षा का। सगीत का रूप हमारे देश मे वहुत विकृत हो चुका था। वह या तो अश्लीलता का विषय वनकर त्याज्य समझा जाने लग गया था अथवा निवृत्ति के मार्ग को अपनाने वाले साधु-सन्तो के लिए समझा जाकर गृहस्थियो के लिए वर्ज्य माना जाता था। वह उन वेश्याओ का धन्धा वन गया था जो समाज मे अत्यन्त हीन दृष्टि से देखी जाती थी। राज प्रासादो और धनिको की अट्टालिकाओ मे वह केवल मनोरजन एव विलासिता का विषय वन गया था। धार्मिक एव सामाजिक समारोहो की दृष्टि से भी वह मन्दिरो अथवा साधु सन्तो तक ही सीमित रह गया था। उसका जनता के सार्वजनिक एव सास्कृतिक जीवन के साथ कोई सम्पर्क न रहा था। आप मे सगीत के लिए अभिरुचि का प्रारम्भ धार्मिक समारोहो और साधु सन्तो की सगति से हुआ था। माता जी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। वे न केवल पूजा पाठ के समय, किन्तु घर-गृहस्थी के अन्य काम काज करती हुई भी भक्ति-प्रधान गीत, भजन व लावणियाँ गाती रहती थी। माता जी के धार्मिक स्वभाव से आप मे सगीत के सस्कार पैदा हुए थे। सगीत आप के दैनिक जीवन का प्रधान अंग वन गया। आपने कराची मे महाराज स्वामीदास गवैये से हारमोनियम पर कुछ रागो व सरगम आदि का अभ्यास किया था। वीकानेर मे प्राय सभी मन्दिरो मे एकादशी आदि के अव-सरो पर रात को जागरण करके गाने वजाने तथा कीर्तन आदि की पुरानी प्रथा थी। आप के कुल परम्परागत मन्दिर मरुनायक जी मे लाभू जी गोस्वामी रात जाग करके राग-रागिनी के भजन गाया करतेथे। इसी प्रकार श्री रघुनाथ जी के मन्दिर मे आप के पडौसी श्री हरिराम जी ओझा, श्री चेलाराम खत्री और श्री वुलाकीदास व्यास राग-रागिनी के भजन गाया करते थे। दूसरे मन्दिरो मे भी राम घमन्ड के भजन गाए जाते थे। आप अनेक वार रघुनाथ जी व मरुनायक जी के मन्दिरो मे भजन सुनने जाया करते थे। आप की धर्मशाला मे गणेश जी के मन्दिर मे भी गणेश चतुर्थी पर इसी प्रकार का जागरण होकर राग रागिनियाँ गाने का कार्यक्रम रहता था। उसमे हरीराम जी की मण्डली शामिल हुआ करती थी। उनके स्वर्गवास के वाद श्री लाभू जी गुसाँई आने लगे। आप भी रात को जागरण करके गाने वजाने व कीर्तन के कार्यक्रम मे सम्मिलित हुआ करते थे। इससे आपको अनेक राग-रागिनियाँ गाने का अभ्यास हो गया। इस प्रकार आप के हृदय मे वीकानेर मे सगीत-विद्या के प्रचार का विचार पैदा हुआ।

इस वीच सवत् १९५६ मे सुप्रसिद्ध सगीताचार्य श्री विष्णु दिगम्वर जी का वीकानेर मे शुभागमन

हुआ। आपकी धर्मशाला मे वे एक मास तक ठहरे और सगीत का प्रतिदिन कार्यक्रम चलता। शहर के सभी सगीतज्ञ उसमे सम्मिलित होते। सगीत की बडी धूम रहती। आपका उनसे परिचय हुआ। सबका यह आग्रह था कि बीकानेर मे सगीत की शिक्षा की कुछ व्यवस्था की जानी चाहिए। सवत् १९६० मे आपने अपने चौक मे श्री चतुर्भुज जी मोहता के मकान का ऊपर का कमरा किराये पर लेकर वहाँ सगीतशाला स्थापित कर दी। लाभूजी गोस्वामी उसके शिक्षक नियुक्त किए गए। उसमे गाना, तबला, हारमोनियम, सितार आदि की नियमित शिक्षा दी जाने लगी। गोसाँइयो के बालको मे सगीत का विशेष प्रचार होने से वे अधिक सख्या मे उससे लाभ उठाने लगे। मोहता चिकित्सालय का भवन बन जाने के बाद उसकी तीसरी मजिल मे सगीतशाला लाई गई और लाभूजी गुसाँई के जीवित रहने तक वह चलती रही। शहर मे जब भी कभी बाहर का कोई सगीतज्ञ अथवा नृत्यकार (कथक) आता तो उसका विशेष कार्यक्रम शाला को ओर से रखा जाता। शहर के सभी गुणीजन उसमे निमत्रित किए जाते। स्थानीय सगीतज्ञो के कार्यक्रम का भी समय-समय पर आयोजन किया जाता। आपकी सगीत और नृत्य मे जो रुचि थी उसी का यह परिणाम था।

आपने स्वय इस शाला मे सगीत का अभ्यास किया और अनेको ने उससे विशेष लाभ उठाया। कुछ होनहार कलाकारो को आप छात्रवृत्ति भी दिया करते थे। उनमे श्री गोपाल आचार्य एक थे जो कुछ विक्षिप्त हो जाने से अपने को लक्ष्मीनाथ कहते थे। ये शाला के पहले विद्यार्थी थे और बहुत ही कुशाग्र बुद्धि तथा तीव्र स्मरण-शक्ति रखते थे। इनको सगीत के साथ-साथ चित्रकला का भी बडा शौक था। इनको कलकत्ता भेजकर आपने चित्रकला का विशेष अभ्यास करवाया। मोहता मूलचन्द विद्यालय के ये प्रथम छात्रो मे थे। हीरालाल ओझा ने भी इसी शाला मे गाना-बजाना सीखा था। इस प्रकार होनहार युवको पर अपने हजारो रुपया खर्च करके उनको कलाकार बनाने मे विशेष सहायता प्रदान की। सगीत मे आपकी इस अभिरुचि का लाभ यह हुआ कि अश्लील गीतो का स्थान समाज-सुधार सम्बन्धी और भक्ति रस प्रधान गीतो को मिल गया। अपने स्वय ऐसे अनेक गीतो की रचना की और आपके ही कारण जनता मे उनका प्रसार हुआ।

कलकत्ता का सामाजिक जीवन

सवत् १९६७ मे अपने व्यापार व्यवसाय के सिलसिले मे कलकत्ता आने पर यहाँ के सामाजिक जीवन के प्रति आपके चित्त मे बहुत ग्लानि उत्पन्न हुई। मारवाडी और खत्री युवको मे विलासिता चरम सीमा पर पहुची हुई थी। वेश्याओ को रखेल या नौकर रखना बडी शान समझा जाता था। बगीचो मे नाच मुजरा वगैरह जब होता तो सैकडो युवक उसमे सम्मिलित होते। आपके बडे पिता शिवदास जी के स्वर्गवास के बाद कलकत्ता मे जब औसर और ब्राह्मण भोजन हुआ था तब गगा बिशन उर्फ हरसा महाराज से आपकी जान-पहचान हो गई थी। वह पुष्करणा ब्राह्मणो का पच था। वह बडा विलासी था और उसने एक मुसलमान वेश्या रखी हुई थी। वह शेयर बाजार मे दलाली मे कुछ अच्छा कमा लेता था और सारा विलासिता मे फूंक देता था। आसाराम मोहता नाम का एक आदमी आपकी हाजरी मे रहता था। उसका सम्बन्ध विलासी लोगो के साथ था। दुलीचन्द अग्रवाल के बगीचे मे उसकी रखेल वेश्या ने सब गाने-बजाने वाली वेश्याओ के नाच-गान का आयोजन किया था। आसाराम मोहता और हरसा महाराज के कहने पर आप भी उसमे सम्मिलित हुए। उसका विवरण आपने स्वय लिखा है। उससे कलकत्ता के उन दिनो के सामाजिक जीवन और उसकी आपके हृदय पर जो प्रतिक्रिया हुई उसका अच्छा परिचय मिलता है। आपने लिखा है कि "उसमे कई विलासी खत्री और मारवाडी आए थे। गाने-बजाने के साथ पान खाने और शरबत आदि पीने की भरमार थी। जिन गिलासो मे वे लोग शरबत पीते थे उन्ही मे वेश्याएँ भी पीती थी। पान की पीक-दानिया सभी उठाकर उनमे पीक थूकते थे। आचार-विचार का कुछ भी व्यवहार नही करते थे। इस तरह

के भ्रष्टाचार से मुझे वहुत ग्लानि हुई। उनके आपस मे हँसी-मजाक और असभ्य व्यवहार से भी मुझे वहुत घृणा उत्पन्न हुई। इसलिए मैं तो घण्टे-दो घण्टे ठहर कर घर आ गया। वे लोग रात-भर वहाँ रहे। यह दृश्य देखकर धर्म का ढोग करने वाले ब्राह्मण और वैश्यो के दुराचारो और भ्रष्टाचारो की पोल मैंने प्रत्यक्ष देख ली। इन लोगो के ऊपरी दिखाने की धर्मान्धिता और पवित्रता एक वडा पाखण्ड है। वास्तव मे ये लोग घोर नास्तिक और भ्रष्टाचारी होते हैं।"

आपके हृदय मे विद्यमान सतोगुण प्रधान वृत्ति का परिचय आपके इन शब्दो से मिलता है। अपनी इस वृत्ति के ही कारण आप शतमुखी पतन से वाल-वाल वच गए और सासारिक व्यवहार मे आपकी स्थिति प्राय जल मे कमल-पत्र की सी रही। उसका दुष्प्रभाव आपने अपने पर पडने नही दिया।

साम्प्रदायिक दगा

मगसर के महीने मे कलकत्ता मे भीषण साम्प्रदायिक दगा हुआ, जिसका मुख्य क्षेत्र चितपुर रोड से पूर्व की ओर हैरिसन रोड और जकरिया मस्जिद के आस-पास था। आपके मकान के चारो तरफ मारवाड़ियो की विशेष आवादी थी और उन पर ही मुसलमानो की आँखें थी। वे वडे भीरु और निर्वल थे। किसी मे मुसलमानो का सामना करने का साहस नही था। उनके मकानो मे रहने वाले जमादार भी कुछ साहस न दिखा सके। मकानो के दरवाजे वन्द करके सव भीतर दुवक कर वैठ गए। जो कोई वाहर रह गया वह वुरी तरह मारा-पीटा गया। आपकी पत्नी अपनी पुत्री सुगनी वाई के साथ अपने पीहर वासतल्ला स्ट्रीट से, घोडागाडी पर लौट रही थी। सडक पर मुसलमानो की अपार भीड जमा थी। आप अपने मकान के वराण्डे से सारा दृश्य देख रहे थे। नीचे मकान के फाटक वन्द थे। गाडी का कोचवान मुसलमान था। गाडी आते देखकर आपके मन मे भय और शका कुशकाएँ पैदा हुई। परन्तु कोचवान ने गाडी को लाकर जैसे फाटक पर खडा किया वैसे ही अकस्मात् जमादार ने फाटक खोला और वे भीतर आकर ऊपर चढ गईं। फाटक वन्द कर लिया गया। मुसलमान उनको देखकर लपके परन्तु कुछ कर न सके। मकान के नीचे ईस्ट वंगाल रेलवे का वुकिंग आफिस था इसलिए वह हमले से सुरक्षित रहा। पुलिस दगे को न दवा सकी तो फौज वुलाई गई। दूसरे दिन दोपहर को दगा कुछ शात होने पर रिखनाथ जी वागडी की वाडी से श्री रतनलाल वागडी ने अपनी गाडी फौज के सिपाहियो के साथ आप लोगो को लेने के लिए भेजी। आप पत्नी और पुत्री सहित उसमे वागडी जी के यहाँ चले गए और कुछ दिन के वाद वीकानेर चले गए।

कराची मे

वीकानेर से आप कराची चले गये। वहाँ आपको डफरिन अस्पताल की कमेटी का सदस्य और आनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। आप वहाँ हवा वन्दर के वगले मे रहते थे। यह पहले मीनवाला पारसी से किराये पर लिया गया था और सम्वत १९६९ में खरीद लिया गया। वहाँ से सम्राट् पंचम जार्ज के दिल्ली दरवार मे सम्मिलित होने आए और कराची मे हुए उनके दरवार मे भी सम्मिलित हुए। गवर्नमेट हाऊस मे होने वाले सभी समारोहो मे आपको निमन्त्रित किया जाता था।

कलकत्ता मे और पहला विश्वयुद्ध

सम्वत् १९६७ के वाद आपने व्यापार व्यवसाय के सिलसिले मे दिल्ली, कानपुर और कलकत्ता आदि के कई दौरे किए। सवत १९७१ का अधिक समय आपका कलकत्ता मे वीता। वहाँ आप सपरिवार ढाका पट्टी मे भैरोदान नेवर की वाडी का ऊपर का तल्ला किराये पर लेकर रहने लगे। उसी वर्ष पहला विश्व युद्ध शुरू

हुआ था। कलकत्ता मे जर्मनी के लगातार विजयी होने और अंग्रेजो के हारने का बहुत बुरा असर पडा। मारवाडियो मे भगदड मच गई। उन्होंने अपना चाँदी सोना आदि सामान लेकर राजस्थान जाना शुरू कर दिया उनका व्यापार व्यवसाय डूबने की सी परिस्थिति पैदा हो गई। आपको अंग्रेजो की राजनीतिमत्ता पर पूरा भरोसा था। आप यह नही मानते थे कि महायुद्ध मे उनकी हार होगी। आपने समाचार पत्रो मे कई लेख लिखकर लोगो को धैर्य बँधाया और जमकर अपने व्यापार व्यवसाय मे लगे रहने की सलाह दी। "कलकत्ता समाचार" मे प्रकाशित "युद्ध और भीतरी व्यापार" शीर्षक आपके लेख को श्री कन्हैयालाल जी जालान के सुपुत्र श्री दुर्गा प्रसाद जालान ने स्वतन्त्र ट्रैक्ट के रूप मे छपवाकर लोगो मे बाँटा। उसमे आपने लोगो को यह समझाया था कि युद्ध के भय से भीतरी व्यापार व्यवसाय को बन्द करने का कोई कारण नही है। अपितु और जोर से व्यापार करके पूरा लाभ उठाना चाहिए। उन्ही दिनो मे बगाल की खाडी मे जर्मनी के "एमडन" जहाज ने अंग्रेजो के अनेक व्यापारी जहाज डुबा दिये थे और मद्रास पर भी गोले बरसाये थे। इससे लोगो मे युद्ध का आतक और भी अधिक फैल गया और बहुत अधिक भगदड मच गयी। लोग यह समझे हुए थे कि मद्रास की तरह किसी दिन कलकत्ता पर भी बम गिरेंगे। परन्तु आप उसके विपरीत लोगो को धैर्य व साहस से काम लेने की सलाह देते रहे। आपने और आपकी सलाह मानने वालो ने खूब जमकर व्यापार किया और खूब अनाप शनाप लाभ उठाया। बिडला बन्धु उन्ही दिनो मे व्यापार व्यवसाय मे चमके और पहली श्रेणी के व्यापारी बन गए।

साहित्य के क्षेत्र मे

साहित्य के क्षेत्र मे आपने समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर प्रवेश किया और सबसे पहले अलीगढ से प्रकाशित होने वाले "माहेश्वरी" पत्र मे उसके सम्पादक स्वर्गीय श्री भागीरथ दास जी की प्रेरणा से एक लेखमाला "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" नाम सेलिखी, जो बाद मे पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित हुई।

डाडियो के खेल का पुनर्जीवन

बीकानेर लौटकर आप कोलायत जी के मेले मे सम्मिलित हुए। मरुनायक जी के चौक मे होली पर डाडियो के खेल की बहुत पुरानी प्रथा चली आती थी। वह कुछ वर्षो से बन्द हो गयी थी। कोलायत जी के मेले से लौटकर आपके हृदय मे उसको पुनर्जीवित करने का विचार पैदा हुआ। मरुनायक जी के चौक मे रहने वाले समाज के नेताओ के साथ आपने इसके लिए परामर्श किया। वे सहमत हो गए। आपके कुटुम्ब के सभी युवक और मण्डली के मित्र उसमे बडे शौक से भाग लेते थे। श्री रामकिशन जी दम्माणी को गाने का बडा शौक था। वे भी आबाल वृद्ध दलबल सहित आकर सम्मिलित होने लगे। कुछ लोग उस खेल को बुरा मानते थे और दोषपूर्ण बताकर उसका विरोध करते थे। ऐसे लोगो का भ्रम व विरोध दूर करने के लिए आपने "डाडियो का खेल" नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित की। उसमे खेल के निर्दोष होने और उसके गुणो पर प्रकाश डाला गया। पुराने गीतो मे कही कही पर कुछ अश्लीलता अवश्य थी उसको आपने दूर कर दिया और उसमे नए पद्य शामिल कर दिये। कुछ नए गीत भी बनाए गये। मगलाचरण के रूप मे गणेश जी की स्तुति के सम्बन्ध मे भी आपने एक नया गीत लिखा जो कि खेल के शुरू मे गाया जाता था। यह आपकी अपनी सूझ थी। पहले ऐसा कोई मगलाचरण का गीत नही था। कृष्ण की रासलीला और सुधार सम्बन्धी कई गीत भी आपने रचे।

गणेश जी मे आपकी बहुत गहरी व पुरानी श्रद्धा भक्ति थी। धर्मशाला मे स्थापित गणेश जी के मन्दिर मे आप नित्य उनकी उपासना किया करते थे। पिताजी ने मूंगे के रत्न जटित गणेश जी की एक मूर्ति खरीदी थी।
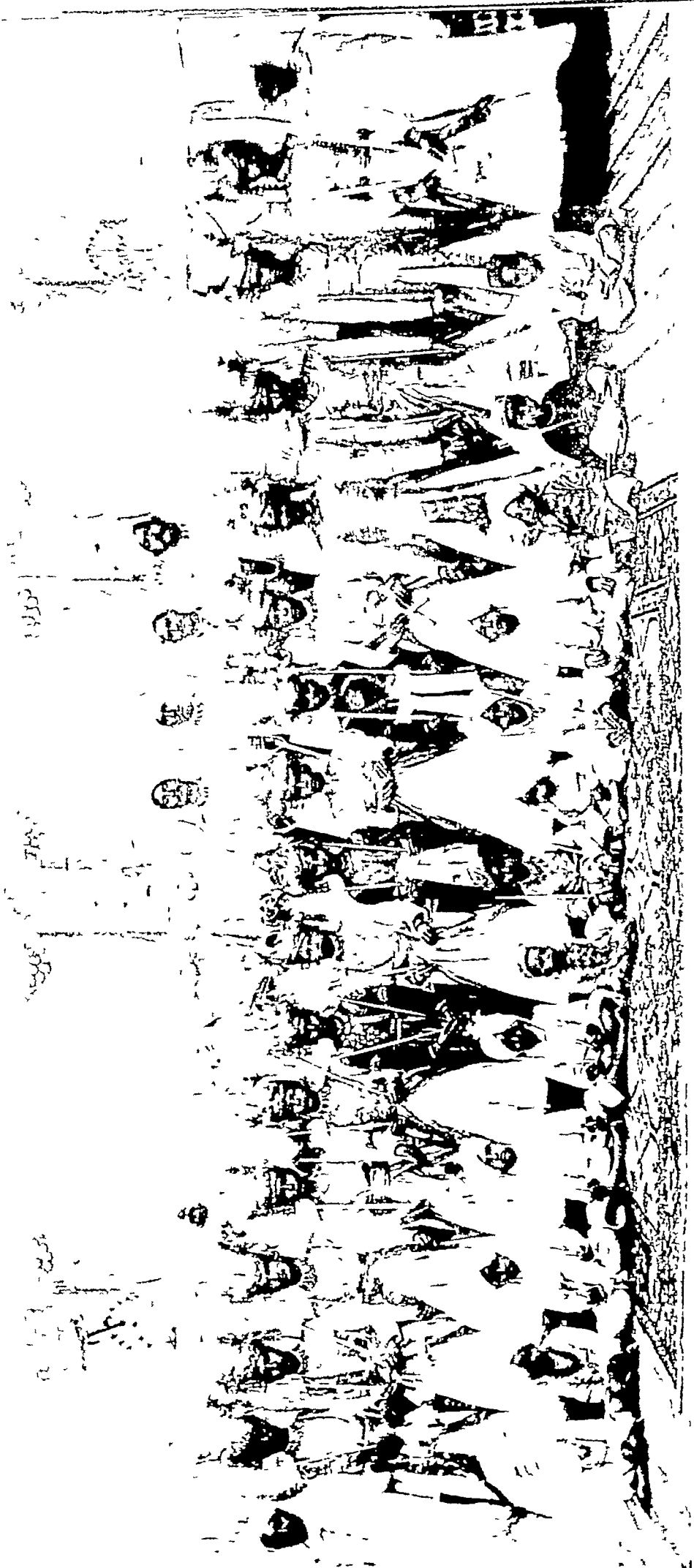
वीकानेर मे श्री मरुनायक जी के मन्दिर के चौंक मे डाडियो का खेल करने वाले खिलाडियो के मध्य श्री मोहता जी ।

श्री मरुनायकजी के मन्दिर के चौक मे डाडियो के खेल के गायन करने वालो केमध्य
मे श्री मोहताजी सम्बत् २०१४ फाल्गुन शुक्ला १३

उसका पूजन आप नित्य प्रति यथाविधि १६ वेद मन्त्रो और गणेश स्तुति के कई स्तोत्रो के साथ किया करते थे।

फागुन सुदी ८ से होली की पहली रात तक ७ दिन यह खेल वडे उत्साह के साथ हर साल होना शुरू हो गया। इधर कुछ वर्षों से वह फिर बन्द है और उसको पुनर्जीवित करने का प्रयत्न आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी कर रहे हैं। हजारो स्त्री पुरुष इसको देखने के लिए इकट्ठा होते थे। कभी कोई दुर्घटना या शिकायत सुनने मे नही आई। बीच मे नगाडे बजाये जाते थे और उनके चारो ओर घूमते हुए युवक हाथो मे डाडिया लेकर नाचते गाते हुए एक दूसरे के डाडियो को लडाते हुए ऐसी सुन्दर ध्वनि करते थे कि देखने वाले मुग्ध हो जाते थे युवको की वेश भूषा एक से एक बढकर रहती थी। लाखो का गहना उनके बदन पर रहता था फिर भी किसी चीज के गुम होने अथवा चोरी जाने की शिकायत सुनने मे नही आई। इस पुराने खेल का पुनरुद्धार भी आपकी सार्वजनिक भावना का सूचक है। अपने सगीत प्रेम, साहित्य प्रेम और समाज सुधार प्रेम तीनो का इसमे आपने अद्भुत समन्वय कर दिया था। इसको आपकी प्रगतिशील सार्वजनिक प्रवृतियो की त्रिवेणी का सगम कहना चाहिए। सब को साथ लेकर लोक सग्रह करने की आपकी अद्भुत शक्ति, प्रवृत्ति एव प्रतिभा का इससे सुन्दर परिचय मिलता है।

डाडियो के खेल और सगीत विद्या के पुनरुज्जीवन के लिए किया गया काम भी दोनो ही दृष्टियो से उल्लेखनीय है। इस प्रकार डाडियो के खेल का परिष्कार करके एक ओर होली के त्योहार मे विद्यमान अश्लीलता को सर्वथा दूर किया और आपने समाज सुधार की दिशा मे एक बडा कदम उठाया तो दूसरी ओर जनता मे सामाजिक चेतना पैदा करने के लिए वह कदम वरदान सिद्ध हुआ। सभी समाजो के छोटे बडे लोग इसमे बडे उत्साह से समान रूप से भाग लिया करते थे और हजारो की उपस्थिति होने पर भी किसी को कोई अशिष्ट अथवा अश्लील व्यवहार करने का साहस नही होता था। खेल और सगीत मे लोग ऐसे तन्मय हो जाते थे कि सब ध्यान योग मे स्थिर हो गए जान पडते थे। खिलाडियो के रूप मे भी सभी जातियो के लोग बिना किसी भेदभाव के उसमे सम्मिलित होते थे। ऊँच नीच आदि की कोई भावना किसी मे नही रहती थी। सब में आपस मे समता का व्यवहार रहता था। महाराष्ट्र मे गणपति उत्सव को सार्वजनिक रूप देने के सम्बन्ध मे जो भावना लोकमान्य बाल गगाधर तिलक के हृदय मे विद्यमान थी उसी से प्रेरित होकर आपने डाढियो के खेल को एक नया रूप प्रदान कर उसमे नई चेतना और नया जीवन पैदा किया था। यह दुर्भाग्य था राजस्थान का, कि वह अनेक छोटे-बडे राज्यो मे बटा हुआ था और उसमे महाराष्ट्र की सी एकरूपता और एक भावना विद्यमान नही थी, अन्यथा इस खेल को राजस्थान मे राष्ट्रीय गौरव प्राप्त होकर वह जनता मे सामाजिक एव राजनीतिक चेतना पैदा करने का प्रमुख साधन बन सकता था। फिर भी बीकानेर नगर मे उससे असाधारण जीवन-जागृति एव चेतना पैदा हुई।

समाज सुधार की दृष्टि से सबसे बडी बात यह थी कि इस खेल मे ब्राह्मण, वैश्य, नाई, माली, धोबी, करोडपति व निर्धन सभी समाजो तथा वर्गों के लोग बिना किसी सामाजिक ऊँच-नीच अथवा धार्मिक भेदभाव की भावना के सम्मिलित होकर समान रूप से भाग लिया करते थे। बीकानेर सरीखे पिछडे हुए नगरो के रूढिपथी लोगो मे गीता के समत्व दर्शन एव समत्व व्यवहार के आदर्श को इस प्रकार क्रियात्मक रूप तब दिया गया था जब कि आपके समाज सुधार के कार्यों का कुछ लोग घोर विरोध किया करते थे। कुछ लोगो को अपने बडप्पन के कारण और कुछ लोगो को उसमे परम्परा से गाये जाने वाले अश्लील गीतो के कारण सम्मिलित होने मे कुछ आपत्ति थी। आपने गणेश जी के मगलाचरण से उसको प्रारम्भ करके उसमे स्वरचित सुधार के गीतो का समावेश कर दिया और सब लोगो के लिए उसमे सम्मिलित होना निरापद बना दिया। बीकानेर का अनुकरण करके कलकत्ते मे भी यह खेल "माहेश्वरी भवन" मे बड़े धूमधाम से खेला जाता है।

दुखद देहान्त और हरिद्वार यात्रा

आपके छोटे भाई राव बहादुर श्री शिवरतन जी मोहता की पत्नी को क्षय रोग की शिकायत हो गई और वह दिन पर दिन बढता ही गया। कई मास बीमार रहने के बाद चैत सुदी सम्बत् १९७२ मे उसका स्वर्गवास हो गया। उसका आपकी पत्नी के साथ बहुत स्नेह था। बीमारी के दिनो में भी वह उनकी गोद मे लेट जाती थी। परिणाम यह हुआ कि आपकी पत्नी को भी क्षय की शिकायत हो गई। उसका पता कुछ समय बाद लग सका। शिवरतन जी की पुत्री सहोदरा बाई को भी वह बीमारी हो गई और उसी के कारण उसका देहान्त हो गया। इन दोनो दुखद घटनाओ की आपकी पत्नी के हृदय पर बडी चोट लगी। उसको शान्त करने और सात्वना पहुचाने के लिए आपने उसको साथ लेकर हरिद्वार जाने का निश्चय किया। अपनी पुत्री सुगनी बाई और पत्नी के साथ आप डेढ मास हरिद्वार रहे और ऋषिकेश, देहरादून तथा मसूरी आदि भी गए। वहाँ से बीकानेर लौट आए। यहाँ पहुचने पर श्री शिवरतन जी के दूसरे विवाह की चर्चा प्रारम्भ हुई।

श्री लोईवाल जी के यहाँ सम्बन्ध

सम्पन्न घर होने से सगाई के लिए अनेक प्रस्ताव आए। "माहेश्वरी" के सम्पादक श्री भागीरथ दास जी भूतडा ने रायबहादुर श्री श्यामसुन्दर लाल जी लोईवाल की लडकी का प्रस्ताव उपस्थित किया। लोईवाल जी को आप भली प्रकार जानते थे। वे वैश्य महासभा और माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष रह चुके थे। समाचार पत्रो मे उनके सम्बन्ध मे प्रकाशित समाचार आदि आप पढते रहते थे। वे जब किशनगढ के दीवान थे, तब बीकानेर भी आए थे और तब सब माहेश्वरियो को इकट्ठा करके उन्होने समाज-सुधार के सम्बन्ध मे भाषण दिया था और कुछ चर्चा भी की थी। तब भी वे आपसे मिले थे। बाबू जी जगन्नाथ जी के साथ भी उनका पुराना परिचय था। वह सम्बन्ध आपको जच गया और पडित गणेशदत्त जी व्यास को लडकी देखने के लिए ग्वालियर भेजा गया। फिर श्री शिवरतन जी को स्वय ग्वालियर भेजा गया। आपकी माता जी और पिता जी बीकानेर के बाहर सम्बन्ध करने के पक्ष मे नही थे। परन्तु शिवरतन जी के पसन्द कर लेने पर वे सहमत हो गए। सवत् १९७२ मे विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह बहुत धूमधाम से हुआ। ग्वालियर महाराज भी विवाह मे सम्मिलित हुए थे।

आगरा मे दुर्घटना

ग्वालियर से बारात के लौटने पर आगरा मे एक भयानक दुर्घटना होते-होते बची। रेल की पटरी पार करके आप सैकण्ड क्लास के टिकट फर्स्ट क्लास के कराने के लिए जब दूसरी ओर गए तब लौटते हुए अधेरे मे आपका पैर फिसल गया और आप इजन के कोयला गिराने के गड्ढे मे गिर गए। छाती मे चोट लगी और कुछ बेहोश से भी हो गए। सहसा ही सम्भलकर आप उठे और दूसरी ओर पहुँच गए। आपके उठने के थोडी ही देर बाद उसी लाइन पर से एक इजन गुजरा। यदि दो-चार मिनट की भी देर हो जाती तो आश्चर्य नही कि आप उसी गढे मे दबकर रह जाते और किसी को कुछ पता भी नही चलता। मदनगोपाल जी की तबीयत भी बिगड रही थी। उनको कै आ रही थी, गणेश जी पर उनकी बडी श्रद्धा थी। अपनी जीवन रक्षा को गणेश जी की कृपा मानकर और उनका नाम लेकर कुछ लोग चबाये। वे अच्छे हो गये। बीकानेर लौटने पर भी छाती का दर्द कई दिन तक बना रहा। अन्त मे गुड चूने का लेप करके पट्टी बाँधने से ठीक हुआ।

कोलायत जी का उद्धार

सवत् १९७२ मे दुर्भिक्ष पड़ने पर आपके मन मे कोलायतजी के तालाब की मिट्टी निकलवाने का विचार

राव बहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता

श्रीमती सरस्वती देवी जी धर्मपत्नी रा० ब० शिवरतन जी मोहता
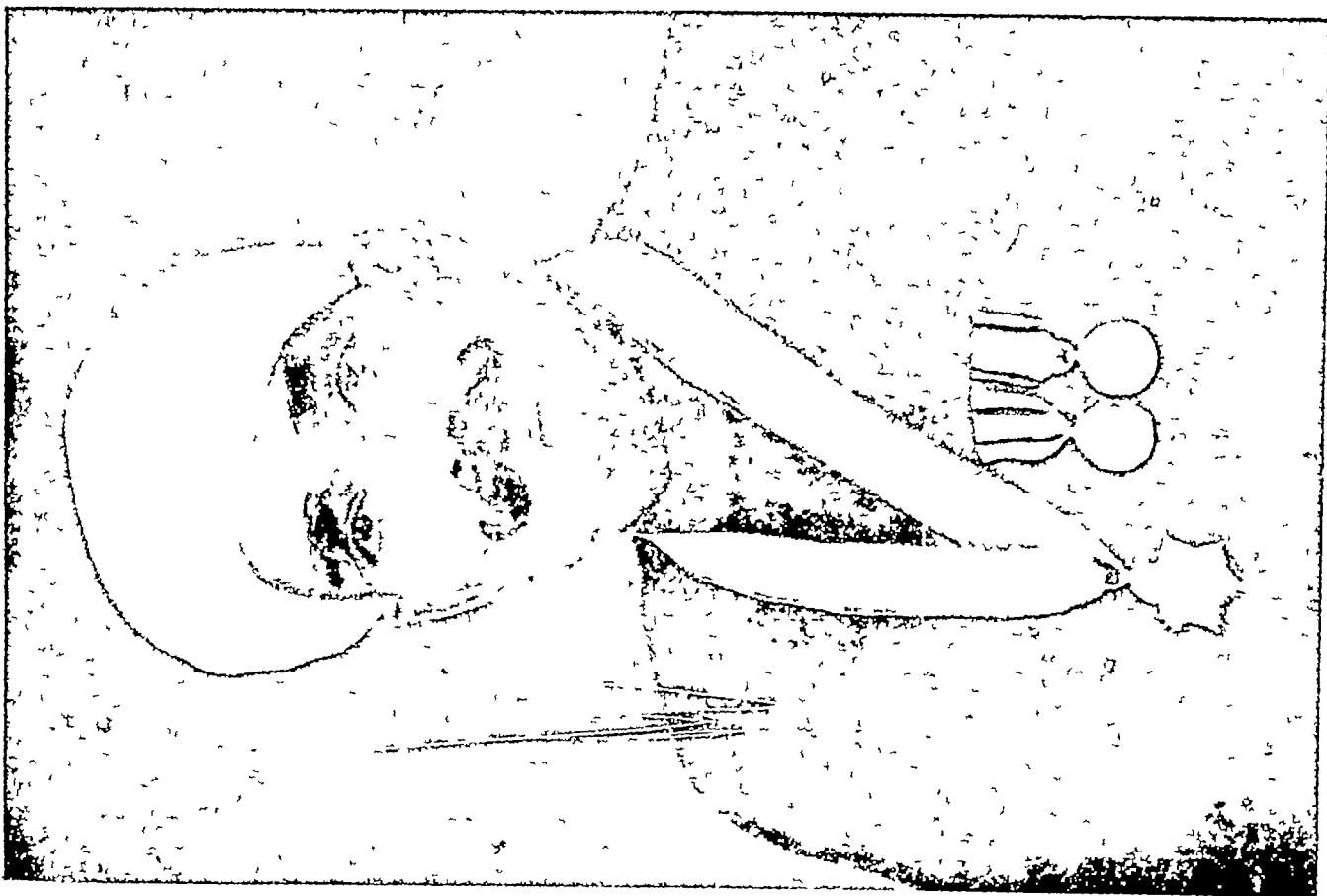
श्री व्रजरतनजी मोहता सुपुत्र श्री शिवरतनजी मोहता ।

सौ० श्रीमती राधादेवी धर्मपत्नी श्री व्रजरतनजी मोहता ।

सौ० राजकुमारी बाई सुपुत्री श्री व्रजरतनजी मोहता ।

श्री राजेन्द्र कुमार मोहता ज्येष्ठ पुत्र श्री व्रजरतनजी मोहता ।

श्री वीरेन्द्र कुमार मोहता कनिष्ठ पुत्र श्री व्रजरतनजी मोहता ।

पैदा हुआ। तालाव मे मिट्टी भर जाने से उस वर्ष मेला नही लग सका था। "श्री कोलायत गगा जी का जीर्णोद्धार और अकाल पीडितो की सहायता—एक पथ दो काज" शीर्षक से आपने एक अपील प्रकाशित की। उसमे कोलायत का महात्म्य भी दिया गया। सेठ साहूकारो और आम जनता से लगभग चालीस हजार रुपये जमा हो गए। जिससे हजारो दुर्भिक्ष पीडितो को काम पर लगाया गया। तालाव की सफाई के साथ-साथ घाटो की मरम्मत भी करवाई गई। स्वत् १९७३ के आपाढ मास तक यह काम चला। जो रकम वची वह वाद मे इसी काम मे लगाई गई। आपकी दुर्भिक्ष पीडितो को इस प्रकार राहत पहुँचाने की यह समाज सेवा की भावना निरन्तर वनी रही। जव भी कभी ऐसा कोई दैवी सकट उपस्थित हुआ तव हमेशा आप आगे वढते और हजारो रुपया खर्च करके इसी प्रकार सकटापन्नो की सहायता करते रहे।

पत्नी क्षय ग्रस्त

आपकी पत्नी को क्षय की जो शिकायत हुई थी वह उत्तरोत्तर वढती गई। पीठ मे दर्द रहने लगा और डकार आने लगे। वीकानेर और कराची मे कराए गए उपचारो से कोई लाभ नही हुआ। तव १९७३ के अन्त मे आप उसको लेकर कलकत्ता चले गए। वहाँ पहले आयुर्वेदिक औषधोपचार करवाया गया उससे कुछ लाभ न होने पर डाक्टरी इलाज शुरू किया गया। डाक्टर कैलाश ने पीठ की हड्डी का क्षय वताया और हिलना डुलना वन्द करके प्लास्टर से देह को पाट कर लेटे रहने और ताकत की दवाइयाँ देने का परामर्श दिया। फिर सुप्रसिद्ध सर्जन डा० सुरेश प्रसाद सर्वाधिकारी को दिखाया गया तो उसने एक मोटे कपडे की जाकट वनवा दी जिसके पीछे और आगे दोनो तरफ दो लोहे की मजवूत पट्टियाँ मोडकर लगाई गई थी जो शरीर मे पूरी तरह फिट हो गईं। जाकट के वाँधने से रीढ की हड्डी पूरी तरह जमी हुई रहती थी। उसको वाँधे और कसे हुए लकडी के तख्ते पर लेटे हुए रहना पडता था। खाना, पीना और टट्टी पेशाव वैसे ही लेटे रहते हुए करना पडता था। इस प्रकार चार-पाँच महीनो तक वँधे रहने से वह हड्डी मजवूत हो गई। दर्द सव दूर हो गया। परन्तु जाकट का वाँधा रहना आवश्यक था। पत्नी के स्वस्थ होने पर फिर आप कराची आ गए। घर के सव लोग पिता जी, माता जी और शिवरतन जी सपरिवार वही थे।

व्यापार-व्यवसाय के काम से पिता जी के आदेश पर आपको एका-एक दिल्ली आना पड गया। यहाँ का काम सुलटा कर आप वीकानेर पहुँचे तो पिता जी, माता जी और आपकी पत्नी को साथ लेकर वीकानेर आ गए। छोटी लाइन की यह यात्रा वहुत कष्टप्रद सिद्ध हुई। क्षय की वीमारी ऊपर से तो विल्कुल ठीक हो गई थी, परन्तु उसके कीटाणु जो भीतर रह गए थे वे फिर उभर पडे और पीठ की नस मे भी फैल गये। फिर वैसा ही दर्द रहना शुरू हो गया। तव फिर कलकत्ते जाकर डा० सर्वाधिकारी का उपचार शुरू किया गया। डाक्टर ने इस वार कमर से सिर तक लोहे के पट्टे मोडकर जाकट वनवाई और सिर के पीछे के भाग मे लोहे की आधी टोपी की तरह अर्ध गोलाकार टोप वनवाया। उस पर मखमल चढाकर सिर को उस पर टिका कर वगल से वाँध दिया। पहले की ही तरह उसमे सारा शरीर जकड कर फिर लिटा दिया और हड्डी तथा नस का हिलना तक वन्द कर दिया। छ महीनो तक इस तरह रहने से वह ठीक हुई।

पत्नी की वीमारी के इन वर्षों मे आपका अधिक समय उसी के पास वीतता। आपने इस भयानक वीमारी मे भी ऐसी तन्मयता के साथ उसकी सेवा की। उसके पास वैठकर आप स्वयं उसको खाना खिलाते और अन्य सव सेवा सुश्रुपा भी स्वय करते। वीमारी से उसका ध्यान हटाने के लिए तरह-तरह से उसका मनोरजन करते रहते।

कलकत्ता मे साहित्यिक प्रवृत्ति

कलकत्ता मे आप सामाजिक मामलो और सार्वजनिक कार्यो मे विशेष भाग लेने लग गए थे। साहित्यिक अभिरुचि भी आपमे विशेष रूप से जागृत हो चुकी थी। मोहता मूलचन्द विद्यालय मे व्यापारिक शिक्षा के लिए कोई पुस्तक नही थी। आपने "व्यापार विज्ञान" के नाम से कुछ पुस्तकें लिखने का विचार किया। उसका पहला भाग लिख भी लिया, किन्तु वह छप नही सका। इसी प्रकार अग्रेजी के व्यापारिक पत्र "कामर्स" और "कैंपिटल" के ढग पर हिन्दी में भी एक व्यापारिक पत्र निकालने का निश्चय किया। उसके लिए सम्पूर्ण साहित्य सामग्री भी जुटा ली गई किन्तु योग्य सम्पादक न मिलने से उसका प्रकाशन प्रारम्भ नही किया जा सका।

पिता जी का स्वर्गवास

सवत् १९७५ के शीत काल मे आपके पूज्य पिता जी को जलोदर का रोग हो गया जिसका इलाज वैद्य रामलाल जी जती से कराया गया परन्तु आराम नही हुआ। रोग बढता ही गया। अपना अतकाल निकट देख कर सवत १९७६ गगा सप्तमी के दिन उन्होंने हरिद्वार जाने का सकल्प प्रकट किया। उसी समय स्पेशल ट्रेन का प्रबन्ध करके उनको सारे परिवार सहित हरिद्वार लेजाया गया, घर के कई बडे लोगो ने हरिद्वार मे ही जाकर अपनी इह लीला समाप्त की थी। परिवार की इस परम्परागत धार्मिक भावना को उन्होने भी निभाया था। वहाँ वैशाख सुदी ११ सवत् १९७६ को उनका स्वर्गवास हो गया। उन्होने बीमारी को असाध्य समझकर पहले ही अपनी सावधानी कीदशा मे अपनी जो इच्छा थी वह सब लिपिबद्ध कर दी थी। धर्मार्थ तथा कुटम्ब की बाई बेटियो व नौकरो आदि को जो कुछ दिलाना था वह सब लिख दिया था। आपने उनकी इच्छानुसार १५ दिन हरिद्वार मे रहकर सब क्रिया कर्म यथावत किए और करवाए। यद्यपि उनमे आपकी श्रद्धा बहुत कम हो गई थी परन्तु उनको त्यागने का साहस व बल पैदा नही हुआ था। आपने अपना कर्तव्य यह समझा कि पिता जी की इच्छा एव आदेश का यथावत् पालन किया जाय। बाबू जी जगन्नाथ जी की भी उनमे बडी श्रद्धा थी। उनकी भावना का आदर करना भी आवश्यक था।

दिल्ली मे ब्रह्मभोज व जातिभोज की प्रतिक्रिया

वहाँ से दिल्ली आकर सत्रहवें दिन ब्रह्मभोज और जातिभोज करना आवश्यक हो गया। इस गर्हित एव निन्दनीय कुप्रथा के सम्बन्ध मे आपने लिखा है कि "इसके लिए जो तैयारियाँ की गई थी उनको देखकर मुझे बडा आश्चर्य और विक्षोभ हुआ। मुझे तो अपने पिता जी के न रहने का बडा घाटा हो गया और ये लोग नाना तरह की मिठाइयाँ, मेवे और नमकीन पकवान आदि की तैयारियाँ बडी खुशी से उत्सव की तरह कर रहे थे। कुलफी और मलाई आदि का भी प्रबन्ध किया गया था। दो दिनो तक सैकडो आदमी जीमते रहे। मैंने उसके लिए पचो को बडा उपालम्भ दिया और यह सूचना भी दे दी कि भविष्य मे हमारे यहाँ से ऐसे भोजनो मे कोई सम्मिलित न होगा।"

दोहिता और दोहिती का जन्म

सवत् १९७६ मे आपकी पुत्री सुगनी बाई के पुत्र हुआ। वह उसकी २६ वर्ष की आयु मे हुआ था इसलिए आपकी पत्नी ने उसकी बडी खुशियाँ मनाईं और बधाइयाँ बाँटी। जापे के लिए कराची से डेढ महीने पहले एक विशेषज्ञ अगरेज दाई बुलाई गई। दोहिते का नाम भैंरवरत्न रखा गया। मिती भादवा सुदी ६ सवत् १९७९ को आपकी दोहिती रतन बाई का जन्म हुआ।

चि० गिरधर लाल मोहता के शुभ विवाहोत्सव पर पिलानी मे बारात का जलूस
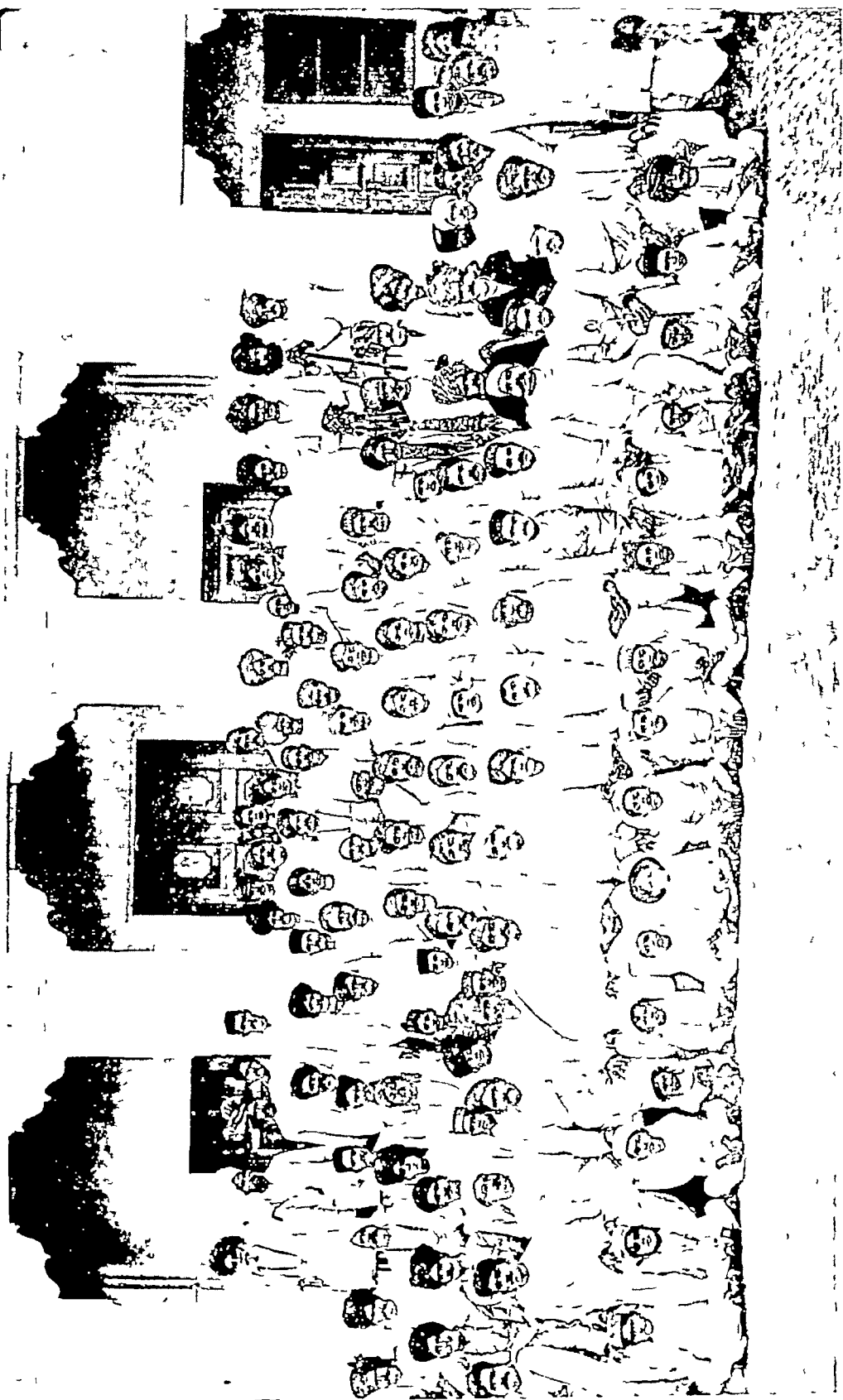
श्री गिरधर लाल जी मोहता के विवाह के अवसर पर पिलानी मे बिडला बन्धुओ व बरातियो के बीच मोहता जी सवत् १९८४।

सवत् १९७७ मे आपने माता जी, अपनी पत्नी, मूलचन्द की विधवा पत्नी, अपने फूफा गोविन्द दास जी डागा और भुवाजी अम्बाबाई के साथ कराची से स्टीमर से द्वारका जी की यात्रा की। माता जी ने चारो धाम की यात्रा का सकल्प किया हुआ था। उसमे द्वारका जी की यात्रा बाकी थी। उस यात्रा से उनका वह सकल्प पूरा हो गया। उस वर्ष शिवरतन जी कराची से आकर डाडियो के खेल मे सम्मिलित हुए थे और बीकानेर से पालनपुर जाकर महाराज गगासिंह जी से सँसोलाव के मामले मे मिले। महाराज ने आपके पक्ष मे फैसला दिया।

श्री गिरधर लाल का विवाह

सवत् १९७८ मे चिरंजीव गिरधर लाल की सगाई श्री रामेश्वरदास जी बिडला की पुत्री सत्यवतीदेवी के साथ करने के लिए सन्देश आया और जांच करने के बाद टीका ले लिया गया। विवाह सवत् १९८४ के वैशाख मास मे हुआ। ११८ बराती स्पेशल गाडी से पिलानी गए। सादूलपुर (राजगढ) पर मोटर गाडियो का बिडलाओ की ओर से प्रबन्ध किया गया था। पिलानी मे बडे उत्साह और धूमधाम से बरात का स्वागत किया गया। राजा बलदेव दास जी बिडला विवाह मे सम्मिलित होने के लिए बनारस से विशेष रूप से पधारे थे। हाथी पर सवार करके चिरजीव गिरधर लाल को चँवरी के लिए ढुकाया गया। एक ही घरवालो की तरह वर पक्ष और वधू पक्ष के लोग वहाँ रहे। दोनो पक्षो के युवको मे फुटबाल का खेल हुआ और आपकी ओर से डाडियो का खेल भी किय गया जो कि सबने बहुत पसन्द किया। विवाह के उपलक्ष्य मे १,५१,००० के दान का सकल्प कराया गया। उसमे से ५०,००० रुपये लन्दन मे मन्दिर व धर्मशाला और २४,००० रुपये हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस मे छात्रावास के निर्माण के लिए दिया गया। ५,००० रुपये मासिक पत्र "चाँद" को २ वर्ष के लिए महिलाओ को मुफ्त देने के लिए दिए गए और शेष रकम पिलानी, बीकानेर, कराची, कलकत्ता और अन्य स्थानो की सार्वजनिकसस्थाओ को वितरित कर दी गई। बीकानेर तथा अन्य स्थानो के सब नौकरो तथा कर्मचारियो को विशेष पुरस्कार दिए गए।

बम्बई और कराची मे

सवत् १९८० मे आप अपनी पत्नी सहित बीकानेर से बम्बई गए। श्री रामेश्वरदास जी बिडला की पत्नी का देहान्त उन्ही दिनो मे हुआ था। आप उनके दफ्तर मे शोक और सहानुभूति प्रगट करने गए। तब वहाँ डागाओ के मुनीम श्री लक्ष्मणदास जी डागा भी उपस्थित थे। उनकी माहेश्वरी समाज मे विशेष प्रतिष्ठा और सम्मान था। उन्होंने बिडलाओ के साथ हुए आपके सम्बन्ध की बडी प्रशसा की। श्री रामेश्वर दास जी ने आपसे अग्रवालो और माहेश्वरियो मे परस्पर विवाह-सम्बन्ध करने के सम्बन्ध मे चर्चा की। आपने ऐसे सम्बन्ध को सर्वथा उचित बताया। डागा जी ने इस पर इतना ही कहा कि किसी को वैसा करने का साहस नही होता। वहाँ से आप कराची चले गए। अपनी पुत्री सुगनी बाई, उनके पति श्री चाँदरतन जी बागडी और दोनो बच्चो को भी कराची बुला लिया। आपकी माता जी और भाई शिवरतन जी आदि वहाँ पहले से उपस्थित थे।

कोलवार आन्दोलन

कुछ ही समय बाद श्री रामेश्वर दास जी बिडला के खुर्जा निवासी श्री बालमुकन्द जी भवर की लडकी से विवाह-सम्बन्ध किए जाने के कारण कोलवार माहेश्वरियो को लेकर माहेश्वरी समाज मे सामाजिक आन्दोलन शुरू हो गया। समाज का एक पक्ष कोलवारो को डीडू माहेश्वरी नही मानता था। उसने बिडलाओ और उनके साथ सम्बन्ध रखने वालो के सामाजिक बहिष्कार का प्रचड आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। उसने धीरे-धीरे देश-व्यापी सघर्ष का भयानक रूप धारण कर लिया। बाबूजी जगन्नाथ जी और शिवकिशन जी मीमाणी आदि ने

बीकानेर से तार व पत्र देकर उस सघर्ष मे सम्मिलित होने का आपसे अनुरोध किया। कलकत्ता मे इस सघर्ष को पचायत और सघ की कलह का भीषण रूप दे दिया गया था और उनके नाम से सारा ही समाज मुख्य दो दलो मे बँट गया था। आपकी स्वभावत ऐसे सघर्षो मे अभिरुचि नही थी। आपकी दृष्टि मे इसका किसी सिद्धान्त के साथ कोई सम्बन्ध न था। कोलवारो को ये दोनो पक्ष माहेश्वरी नही मानते थे और उनके साथ विवाह-सम्बन्ध करने के कारण दोनो ही ने बिडलाओ का सामाजिक बहिष्कार किया हुआ था। बिडला बन्धुओ की बढती हुई समृद्धि के प्रति कई लोगो मे ईर्ष्या व जलन पैदा हो गई थी और यही इस सघर्ष का मुख्य हेतु था। बिडला बन्धुओ ने इसकी कुछ भी परवाह नही की। उस आन्दोलन के अगुवा भी आज अपनी भूल को स्वीकार करते और बिडला बन्धुओ का वैसा ही सम्मान करते हैं। इस आन्दोलन व सघर्ष के कारण समाज सुधार के वे सब काम पीछे पड गए थे जिनमे आपकी विशेष रुचि थी। इसलिए आपकी इच्छा उसमे पडने की बिलकुल भी नही थी। फिर भी बीकानेर और कलकत्ता के मित्रो के अत्यन्त आग्रह और अनुरोध पर आपको कराची से बीकानेर जाना पड गया और सघ के सगठन मे अपनी शक्ति लगानी पडी। उसी के लिए आपने समाज सुधार सम्बन्धी कामो मे भी ऊपर से दिलचस्पी लेना कुछ समय के लिए बन्द कर दिया। अन्त मे सवत् १९८७ मे आप त्यागपत्र देकर सघ से अलग हो गए।

पुत्री का दुखद देहान्त

सारा परिवार कराची था। आप बीकानेर आ गए थे। कुछ समय बाद आपको समाचार मिला कि आपकी पुत्री सुगनी बाई की आँतो मे दर्द रहना शुरू हो गया और उसको उपचार के लिए बीकानेर लाया गया। राजस्थान के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री लक्ष्मीराम जी को जयपुर से बुलाया गया। उनके औषधोपचार से बहुत लाभ हुआ। परन्तु सर्दियो के बाद स० १९८२ की गर्मियो मे फिर गडबड शुरू हो गई। इसलिए आप सारे परिवार के साथ मसूरी चले गए। वैद्य स्वामी लक्ष्मीराम जी भी आपके साथ गए। एक मास वहाँ रहने पर भी कोई लाभ नही हुआ। वहाँ से हरिद्वार और जयपुर आकर औषधोपचार कराया गया। कुछ लाभ होने पर बीकानेर चले गए। चौमासे मे बीकानेर मे ही स्वामीजी के शिष्य श्रीनारायण जी का उपचार कराया जाता रहा। उससे बडा लाभ हुआ और दीवाली पर सर्वथा नीरोग होकर उसने पूरी तरह स्वास्थ्य-लाभ कर लिया। धनतेरस पर उसके पुत्र भैरवरत्न की वर्ष गाँठ बडे उत्साह से मनाई गई। उसमे बने मिष्ठान व बडे खाने के कारण उसका स्वास्थ्य फिर बिगड गया। पेट मे बनने वाली हवा का असर दिमाग पर होने लगा। क्षय का भयानक दौरा फिर उठ खडा हुआ। वैद्यो और डाक्टरो के सब उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। अन्त मे मगसर वदी ४ को उसका दुखद देहान्त हो गया। आपको तो सत्सग तथा गीता के अनुशीलन के कारण विशेष सताप नही हुआ किन्तु आपकी धर्म-पत्नी ने छोटे बच्चो के मातृहीन हो जाने का बडा दुख माना और वह भी बीमार रहने लगी। सर्दी मे बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया और क्षय की पुरानी बीमारी ने फिर जोर पकड लिया। उन्होंने बडे शौक से बम्बई से लाए हुए मारबल टाइल्स तथा काँच आदि के सामान से घर का बहुत ही सुन्दर नव निर्माण करवाया था। वह सब फीका सा लगने लगा। रात दिन बीमारी के उपचार मे लगे रहने के कारण कुछ और काम-काज नही होता था।

पत्नी और दोहिते का देहावसान

बीकानेर मे कोई लाभ न होने से आप अपनी पत्नी को लेकर फिर कलकत्ता चले गए। डा० सर्वाधिकारी के स्वर्गवास के कारण डा० कैलाश को दिखाया गया। उसने बताया कि बीमारी का असर फेफडो पर भी हो गया है और कलकत्ता की आब-हवा उनके अनुकूल नही है। वहाँ गणेश भवन मे रहे, जिसका उनको बडा चाव था।

स्वर्गीय श्री मूलचन्द जी मोहता
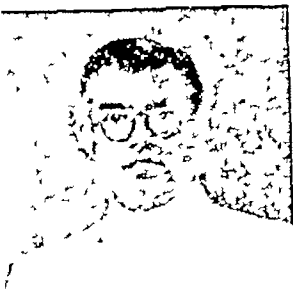
श्री गिरधरलालजी मोहता
दत्तकपुत्र श्री मूलचन्दजी
मोहता ।

सौ० श्रीमती सत्यवतीदेवी
धर्मपत्नी गिरधरलालजी
मोहता ।

श्री रविकुमार मोहता ज्येष्ठ
पुत्र गिरधरलालजी
मोहता ।

श्री सुरेन्द्रकुमार
सुपुत्र श्री रविकुमार मोहता ।

सौ० श्रीमती विमलादेवी
धर्मपत्नी रविकुमार मोहता ।

श्री शशिकुमार मोहता
कनिष्ठ पुत्र श्री गिरधरलालजी
मोहता ।

सौ० श्रीमती वीनादेवी
धर्मपत्नी शशिकुमार मोहता ।

बीमारी के कारण उनका वहाँ रहने का चाव पूरा न हो सका। कुछ दिन वायु-परिवर्तन के लिए जसीडीह रहकर बीकानेर चले आए। यहाँ भी औषधोपचार चलता रहा। कुछ लाभ न हुआ और सावन वदी १३ सवत् १९८३ को उनका देहावसान हो गया। कुछ समय बाद फागुन १९८३ मे आपके दोहिते चिरजीव भैंरवरत्न का भी न्यु-मोनिया से देहावसान हो गया।

श्री भैंरवरत्न-मातृ पाठशाला की स्थापना

इन मर्मान्तक दुखद घटनाओ को आपने बडे धैर्य, साहस और शान्ति के साथ सहन किया। चित्त का सतुलन बिगडने नही दिया। श्री चाँदरतन जी बागडी को उसका बडा दुख हुआ था। उनको भी गीता का उपदेश देकर धैर्य बँधाया। उनके लडके भैंरवरत्न और पत्नी सुगनी बाई की स्मृति मे आपने "श्री भैंरवरत्न-मातृ पाठशाला" की स्थापना करवाई। वह पाठशाला अब भी बहुत अच्छी चल रही है और बीकानेर की शिक्षा सस्थाओ मे उसको प्रमुख स्थान प्राप्त है।

दूसरे विवाह की समस्या

धर्म-पत्नी के देहान्त के समय आपकी आयु लगभग ५० वर्ष की थी। सन्तानोत्पत्ति के लिए माताजी के आग्रह पर विशेष अनुष्ठान करने पर भी कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ था। उसकी मृत्यु से पहले उसकी लम्बी बीमारी मे ही आपसे सन्तान के लिए दूसरा विवाह करने का आग्रह किया जाने लग गया था और उसके लिए आपकी पत्नी की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली गई थी परन्तु आपने उस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि उसकी भयानक रोग-ग्रसित अवस्था मे उसकी छाती पर एक सौत लादूँ तो यह कितना नृशस अत्याचार होगा? अगर मैं उसकी तरह बीमार होता तो वह क्या करती?

परन्तु उसकी मृत्यु के बाद तो चारो ही ओर से आप पर दूसरे विवाह के लिए दबाव डाला जाने लगा। आपकी सम्पन्न स्थिति के कारण ऐसे माता पिताओ की कमी नही थी जो अपनी कन्याओ का प्रस्ताव लेकर आपके पास आए। परन्तु आपने घर वालो से स्पष्ट कह दिया कि जब मेरे ही घर मे मेरे अनुज की युवा पत्नी वैधव्य का असह्य सन्ताप सहन कर रही है तब मुझे पोती के समान किसी कन्या का जीवन नष्ट करना कैसे शोभा दे सकता है। मुझे गृहस्थ जीवन बिताना हो तो मे उसके साथ ही गृहस्थ क्यो न करू? आप वैसे भी विधवा विवाह के पक्षपाती थे और आपके गुरु श्री उत्तमनाथ जी महाराज का भी यह स्पष्ट मत था कि समाज मे उच्च वर्ण के लोगो मे विधवाओ की दुर्दशा को देखते हुए उनका विवाह किया जाना सर्वथा उचित है। वे नीचे के वर्ण के लोगो मे प्रचलित नाते की प्रथा को उच्च वर्ण के लोगो मे अपनाये जाने के भी समर्थक थे। उसको वे विधवाओ के आवारा बना देने की अपेक्षा बहुत अधिक उचित मानते थे। मोहता जी "नियोग" की प्रथा के भी पक्षपाती थे और उसके लिए वे राजा शान्तनु के पुत्रो की विधवाओ का उल्लेख किया करते थे जिन्होंने वेद व्यास के साथ "नियोग", करके पाडवो और कौरवो के वंश को चालू रखा था। इन सब बातो का विचार करके आपने अपने अनुज स्वर्गीय श्री मूलचन्द मोहता की विधवा पत्नी श्रीमती सुन्दर देवी को अपनी धर्मपत्नी बनाने का निश्चय कर लिया। वह बहुत बुद्धिमती और साहसी महिला थी। पढने का उसे बडा शौक था। तुलसीकृत रामायण का उसने अच्छा अध्ययन किया था। अपने वैधव्य मे उसने उन कठिनाइयो और यातनाओ का भी कटु अनुभव प्राप्त किया था जिनको हिन्दू विधवाओ को प्राय भुगतना पडता है। इसलिए उसने भी आपका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और अपने जेठ की पत्नी बनकर रहने मे सकोच नही किया। यह साधारण साहस का काम नही था। लोकापवाद की तनिक भी परवाह न कर आपने उनको उनके मृत्यु काल

तक अपनी गृह-पत्नी के रूप मे रखा और जहाँ कही भी गए वहाँ उनको अपने साथ ले जाने मे सकोच नही किया। सवत् १९८९ मे की गई काश्मीर यात्रा मे भी वह आपके साथ गई थी, उसमे घर के अन्य अनेक सदस्य भी सम्मिलित थे। उसका व्यवहार घरवालो के साथ और घरवालो का उसके साथ वैसा ही रहा जैसा कि आपकी पत्नी के प्रति होना चाहिए था। विधवा होने के कारण घर के काम-काज और व्यवहार मे उसके प्रति कभी भी उपेक्षा का हीन अथवा अनुचित व्यवहार नही किया गया। उन्होंने आपकी एकलौती दोहिती के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसे कि वह उसके ही उदर से उत्पन्न उनकी दोहिती हो।

कुटुम्बियो और सगे-सम्बन्धियो ने कभी कोई आपत्ति नहीं की। समाज मे भी कभी कोई ऐसा विरोध नही हुआ। कोलवार माहेश्वरी आन्दोलन मे किसी की भी पगडी उछालने मे कसर नही रखी गई थी, परन्तु आप पर इस सम्बन्ध के कारण कभी कोई अगुली नही उठाई गई। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि समाज मे उसको बुरा न मानते हुए भी वैसा करने का कोई साहस नही करता। आप सबको खुले आम ऐसा करने का परामर्श दिया करते थे और अब भी देते हैं, क्योंकि इसमे दो लाभ स्पष्ट हैं, एक तो यह कि पतित, भ्रष्ट एव दुराचारी लोगो के चगुल मे फँसकर विधवाएँ पथ-भ्रष्ट होने से बचती हैं और दूसरा यह कि अनेक घर बरबाद होने से बच जाते हैं। ऐसी भ्रष्ट होने वाली विधवाओ और नष्ट होने वाले घरो के कारण समाज को भी कुछ कम हानि नही उठानी पडती। अपने इस उदाहरण से आपने हिन्दू समाज के सम्मुख उसके कर्तव्य को स्पष्ट रूप मे उपस्थित किया।

यथासम्भव सुन्दरदेवी को आपने सुयोग्य सम्मान प्रदान कराने मे कोई कमी नही रहने दी। जोधपुर मे महारानी भटियाणी जी के नाम से जब वनिता आश्रम और विधवाओ के उद्धार के लिए एक लाख का ट्रस्ट अलग बनाया गया तब जोधपुर महाराज ने प्रसन्न होकर आपको तथा आपके छोटे भाई राव बहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता को सोने का लगर पहनने का सम्मान प्रदान किया। तब इस सम्मान मे सुन्दरदेवी को भी वैसे ही शामिल किया गया। उसको पैर मे सोना पहनने-ओढने का बडा चाव था इसलिए यह सम्मान प्राप्त करके उसको बडी प्रसन्नता हुई।

आपके सार्वजनिक कार्यों विशेषत बीकानेर के "वनिता आश्रम" मे होने वाले विधवा विवाहो मे वह बडे उत्साह से भाग लिया करती थी और आप से कहा करती थी कि किसी के भी विरोध से डर कर आप इस काम को बन्द मत करियेगा। इससे बडा कुछ दूसरा उपकार नही हो सकता है। मैं स्वय भुक्तभोगी हूँ और जानती हूँ कि विधवाओ के साथ क्या बीतती है? "अबलाओ का इसाफ" पुस्तक लिखने के लिए सामग्री जुटाने मे उसने बडी सहायता की थी, अनेक आपबीती और दूसरी विधवाओ के साथ बीती घटनाओ का विवरण उस पुस्तक के लिए सग्रह किया था।

आप के छोटे भाई शिवरतन जी मोहता के सब से बडे पुत्र श्री गिरधरलाल जी को सुन्दर देवी की गोद दिया गया। यह विधि आपने वैशाख सम्वत् १९९० मे कराची मे स्वय सम्पन्न कराई थी। उन्होने उनके पुत्र रविकुमार के जन्म होने का समाचार पाकर अपने पौत्र पैदा होने की खुशियाँ मनाईं और सब मँगलाचार किए तथा बधाइयाँ बाँटी।

सम्वत् १९९१ कार्तिक सुदी ६ को उनका न्युमोनिया रोग से कलकत्ते मे देहान्त हुआ। तब उनकी इच्छानुसार लिलुवा मे एक बगीचा अनुमानत ५० हजार मे खरीद कर "श्रीमती सुन्दरबाई अबला आश्रम" के लिए दिया गया जिसमे आश्रम चलता है। अनाथ असहाय अबलाओ के उद्धार मे उनकी बहुत प्रीति थी। यह आश्रम अब बगाल सरकार को सौंप दिया गया है।
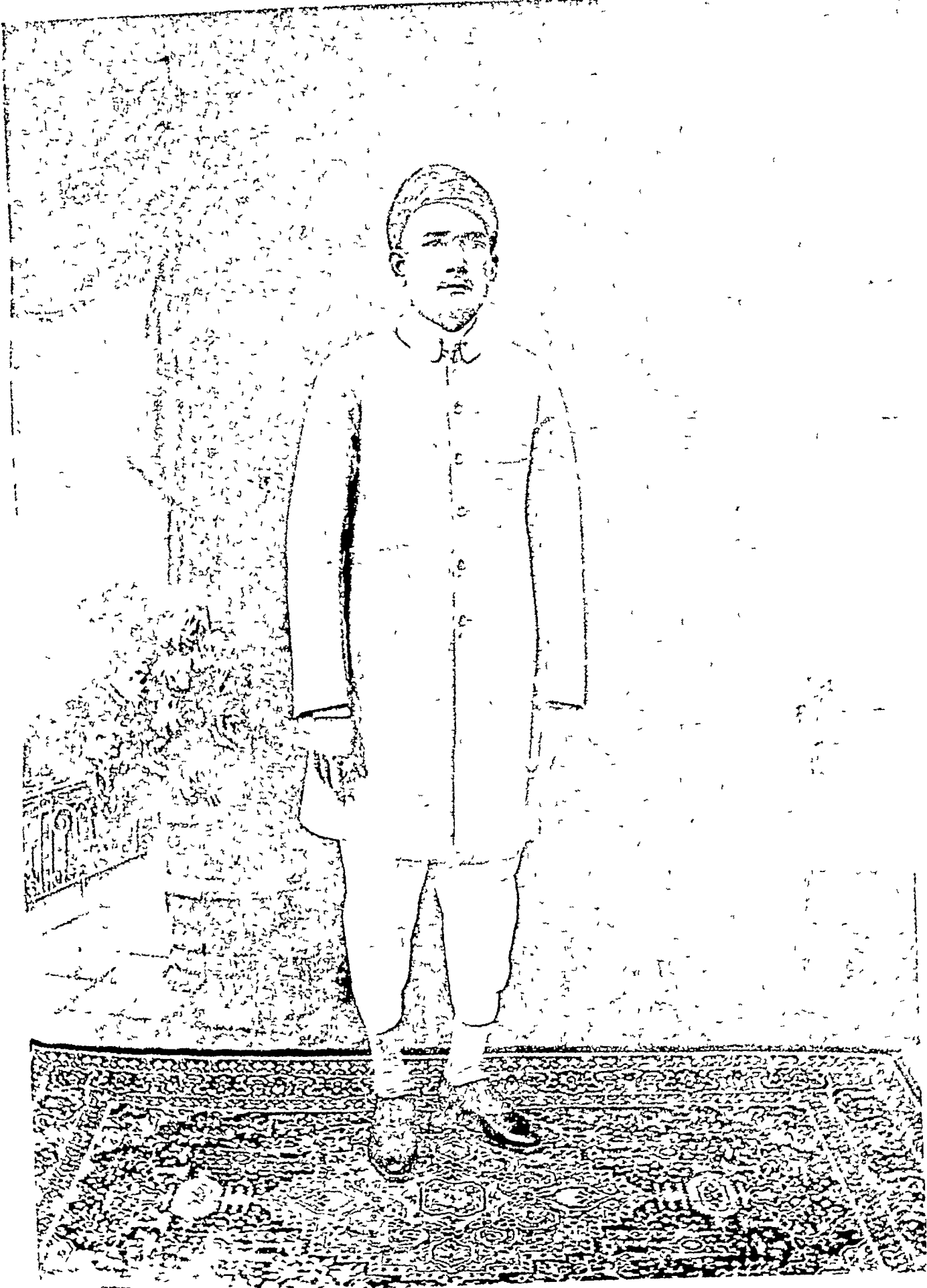
मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता—सन् १९२७

सौ० श्रीमती रतनदेवी मोहता
धर्मपत्नी श्री सूरजरतनजी मोहता ।

श्री सूरजरतन मोहता दत्तकपुत्र श्री रामगोपालजी
मोहता ।

श्री आनन्द कुमार मोहता सुपुत्र श्री सूरजरतनजी
मोहता ।

स्वर्गीया श्रीमती सुन्दरबाई मोहता। धर्म पत्नी स्वर्गीय श्री मूलचन्द जी मोहता।
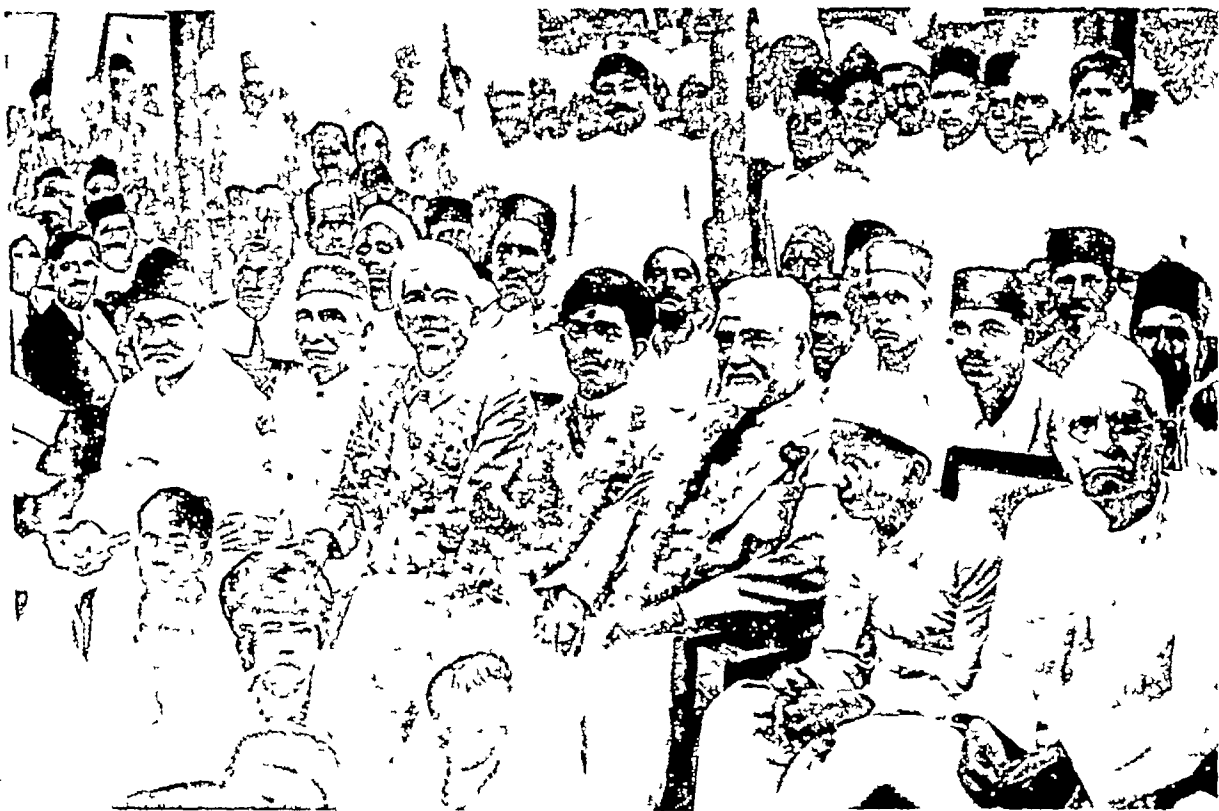
श्री गिरधर लाल एम० मोहता को श्रीमती सुन्दर देवी धर्म पत्नी स्वर्गीय श्री मूलचन्द मोहता द्वारा गोद लेने के समारोह पर कराची मे लिया गया चित्र

शारीरिक अस्वस्थता

सम्वत् १९८४ के कार्तिक मास मे पढरपुर मे अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के महत्वपूर्ण अधिवेशन का सभापतित्व करके लौटने पर आप कुछ अस्वस्थ हो गए। लीवर वढ जाने से आप कई मास वीमार रहे। माघ मे जयपुर जाकर तीन मास वहाँ रह कर स्वामी लक्ष्मीराम जी का औषधोपचार करवाया। स्वस्थ हो जाने पर भी पाचन शक्ति वैसी नही रही। वैशाख मे आप जयपुर से कराची चले गए। रास्ते मे अपने गुरु उत्तमनाथ जी से मिलने के लिए आप जोधपुर ठहरे। वे अपने गुरु नवलनाथ जी के मकान के सम्वन्ध मे राज्य के साथ एक झगडे मे उलझे हुए थे। उनको उस झगडे के कारण विक्षिप्त देखकर आपको वडा आश्चर्य हुआ। उन पर आपने अपना यह भाव प्रकट किया तो वे वोले कि गुरुजी की आज्ञा से यह झगडा करना पडा है। नही करता तो वे रुष्ट होते। अन्त मे वे मुकदमा जीत गए। जोधपुर के महाराज और महारानी भी उनका वडा सम्मान करते थे।

दो ट्रस्टो का निर्माण

श्रावण सम्वत् १९८५ (सन् १९२८) मे आपने कंराची मे दो ट्रस्ट वनाए। एक अपनी दोहिती रतनवाई के लिए और दूसरा हिन्दू महिलाओ की रक्षा और उन्नति के लिए। इससे कराची और वीकानेर मे वनिता आश्रम तथा अनाथालय खोले गए। इन्दौर मे भी वनिता आश्रम खोला गया। समाजसेवी श्री द्वारका-प्रसाद जी सेवक को उसका काम सौपा गया। इलाहावाद मे भी वनिता आश्रम की स्थापना की गई। जिसका काम "चाँद" सम्पादक स्वर्गीय श्री रामरखसिंह सहगल के सुपुर्द किया गया। जोधपुर मे भी रानी भटियाणी जी के नाम से वनिता आश्रम खोला गया। उसके लिए ट्रस्ट मे से एक लाख रुपया देकर जोधपुर राज्य के सहयोग से एक अलग ट्रस्ट वनाया गया।

सम्वत् १९८६ मे आप के छोटे भाई राव वहादुर शिवरतन जी मोहता का करांची मे डा० मुलगाँव-कर को वुलाकर भगदर का आपरेशन करवाया गया और उसी वर्ष हवावन्दर के पुराने वंगले को तोड कर और पास की थोडी और जमीन लेकर "मोहता पैलेस" वनवाने का काम श्री शिवरतन जी ने शुरु किया। वह दो वर्ष मे पूरा होकर कराची का एक वहुत वडा, सुन्दर, आकर्षक और दर्शनीय स्थान वन गया। देश विभाजन के समय उसकी कीमत १६ लाख रुपया थी। वाहर से कराची आने वाले उसको भी वडे चाव से देखने आया करते थे। उसके तलघर मे एक सुन्दर सग्रहालय वनाया गया था। उसको देखने आने वालो के हस्ताक्षरो के लिए एक दर्शक पजिका रखी गई थी। उस पर पौने दो लाख दर्शको के हस्ताक्षर १९४७ तक हो चुके थे। उनमे देश के प्राय सभी गण्यमान्य नेताओ और अनेक ख्याति प्राप्त विदेशी राजनीतिज्ञो के हस्ताक्षर भी थे। उल्लेखनीय नाम महात्मा गाँधी का है। वे १५ दिन वहाँ ठहरे थे और प्रतिदिन नित्य नियम से उसके आँगन मे उनकी सार्व-जनिक प्रार्थना का आयोजन हुआ करता था।

इसी वर्ष आसोज के महीने मे श्री उत्तमनाथ जी के मकान से गिर कर घायल होने का समाचार आप को वीकानेर मे मिला। तव आप जोधपुर गए। वे अस्पताल मे थे। उनकी ठोणी की और नाक की कुछ हड्डियाँ तथा दाँत टूट गए थे। विना क्लोरोफार्म के उन्होने आपरेशन करवाया और उनकी टूटी हुई हड्डियाँ निकाली गई।

काश्मीर की यात्रा

सम्वत् १९८९ की गरमी मे आपने काश्मीर की यात्रा की। वीकानेर से श्रीमती सुन्दर देवी और

आपकी दोहित्री श्रीमती रतनबाई तथा कर्मचारी आप के साथ थे। कराची से श्री गिरधरलाल सपत्नीक तथा श्री ब्रजरतन और श्री सूरजरतन भी आ गए थे। श्रीनगर मे अपने मित्र राव वहादुर डा० मथुरादास मोगेवाले के गुपकार रोड के बगले मे ठहरे। दो महीने वहाँ रहे। फिर हिन्दू मुसलमानो का दगा हो गया तव लौट आये। काश्मीर जाते समय रास्ते मे लाहौर मे राय वहादुर लाला रामशरणदास जी की लाल कोठी मे तीन चार दिनो तक ठहरे। उन्होने अपने सनातन धर्म कालेज, स्कूल और कन्या पाठशाला आदि सस्थाओ का निरीक्षण करवाया और सनातन धर्म कालेज मे आप का भाषण कराया। भाषण मे आप ने कहा कि "सनातन धर्म का नाम सुनकर चित्त मे वडी श्रद्धा और प्रसन्नता उन्पन्न होती है, परन्तु सनातन धर्म के महत्व को विरले ही समझते होंगे। सनातन वह होता है जिसका कभी नाश नही होता। जो सदा विद्यमान रहता है और उसका क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि जिसमे सव समा सकते हैं। परन्तु वर्तमान मे जिसको सनातन धर्म कहा जाता है- वह तो जरा-सी छूत-छात से ही नष्ट हो जाता है। रीति-रस्मो के पालन न करने से धर्म डूब जाता हैं और किसी से सम्पर्क नही करने देता। यह सनातन धर्म नही है। केवल आत्मा सनातन है। शरीर कभी सनातन नही हो सकता और शरीर सम्बन्धी रीति-रिवाज, कर्म काड आदि सनातन नही हो सकते। आत्मिक धर्म ही सनातन हो सकता है और आत्मा सब मे एक तथा सम है। इसलिए सनातन धर्म मे सारे विश्व की एकता होनी चाहिए और सवको अपने अन्दर सम्मिलित करने की शक्ति होनी चाहिए। हमारे यहाँ तो वैदिक धर्म के अनुयायी भी एक नही हो सके। सनातनी और आर्य समाजी आपस मे लडते झगडते हैं फिर दूसरे लोगो को कैसे हजम कर सकते हैं। हम लोगो को सच्चे सनातन धर्म का अर्थ समझ कर अपना क्षेत्र विश्व व्यापक बनाना चाहिए।"

उन दिनो सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल सस्कृत के धुरन्धर पडित और सुप्रसिद्ध विद्वान् पडित गणेशदत्त जी वेदान्ततीर्थ थे। वे तथा अन्य प्रोफेसर लोग आपका भाषण सुन कर बडे प्रभावित हुए और कहने लगे कि सनातन धर्म की सच्ची व्याख्या यही है। आज तक हम लोगो ने यह व्याख्या नही सुनी थी। रा० व० लाला रामशरणदास जी तथा कालेज़ के अन्य प्रबन्धक लोग भी वहुत प्रभावित हुए। जव आप ने कन्या पाठशाला का निरीक्षण किया तब कन्याओ ने वेद मन्त्रो से स्वस्तिवाचन किया। इस पर आपने अपने भाषण मे इस वात पर वहुत प्रसन्नता प्रकट की कि जहाँ सनातन धर्म का झूठा दावा रखने वाले लोग स्त्रियो को वेद पढने का अधिकार नही देते वहाँ सनातन धर्म कन्या पाठशाला मे कन्याओ को वेद के मन्त्र पढाये जाते हैं।

लाहौर से आप काश्मीर गए तो जम्मू मे वहाँ के भूतपूर्व दीवान की धर्मपत्नी जो राय वहादुर लाला रामशरणदास जी की वहन थी उनके पास आप ठहरे थे। वहाँ आप को विदित हुआ कि उक्त महिला अपने भाई की मार्फत महामहोपाध्याय पंडित गिरधर शर्मा जी को जयपुर से वुलाकर श्रीनगर मे उपनिषदो की कथा सुनेंगी। आप के श्रीनगर पहुँचने के थोडे दिनो वाद वहाँ की सनातन धर्म सभा के सभापति आप से मिले। उक्त कथा का हाल कहा कि पडित गिरधर शर्मा जी उपनिपदो की कथा जब सुनाते हैं तब उक्त महिला के परदे के आगे एक उनके अधिकारी पुरुष को वैठाकर उसको लक्ष्य करके सुनाते हैं; क्योकि स्त्रियो को वेद सुनने का अधिकार नही है ऐसा वे मानते हैं। आप ने कहा यह तो वडा दम्भ है। जव कथा एक स्त्री को सुनाने का ही उद्देश्य है और एक पुरुष को वीच मे रखकर सुनाया जाता है तो स्त्री को नही सुनाने की वात कहाँ रही? सनातन धर्म सभा मे भी वेद सभी को सुनाए जाते हैं। वे कुछ सुलझे हुए विचारो के थे। उन्होने सभा करके स्त्रियो को वेद पढने के अधिकार के विषय मे चर्चा करने का आयोजन किया जिसमे पडित जी को भी निमन्त्रण दिया गया पर वे नही आये। आप ने शिष्यो को भेजा। सभापति जी ने मोहता जी से इस विपय मे सम्मति माँगी। तव आपने उनको स्पष्ट वता दिया कि वेद पढने का सवको समान अधिकार है। गीता का पाठ स्त्रियाँ नित्यप्रति करती हैं। गीता के अनेक स्थलो मे ओकार का उच्चारण आया है। ओम् सव वेदो का मूल-

मन्त्र है फिर वेद पढने के अनधिकार की बातें कहाँ रही ? पूर्वकाल मे अनेक विदुषी स्त्रियाँ वेदो मे पारगत होती थी। काश्मीर मे तो पडित मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी ने जगद्गुरु आदि शकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। अब जब कि वेद छप गए हैं तब किसी के पढने न पढने का प्रश्न ही कहाँ रहा ? यह इन झूठे सनातनी पडितो की हठधर्मी और पाखण्ड है। एक तरफ स्वय परदे की ओट मे स्त्रियो को वेद सुनाते है और दूसरी तरफ उनको अनधिकारी कहते हैं।

दोहिती का शुभ विवाह

सम्वत् १९९० मे आप की दोहिती रतनबाई के विवाह के लिए उसके पिता बागडी जी ने आग्रह करना शुरू किया। बडे-बडे घरो से सम्बन्ध आए परन्तु वह उनके लिए सहमत नही थी। उसकी इच्छानुसार १९९० फागुन सुदी ४ को उसका विवाह श्री मदन गोपाल जी दम्माणी के साथ किया गया। इस विवाह सस्कार मे आपकी तरफ से माहेरा नही दिया गया। रतनबाई की पहली लडकी सुशीला बाई सवत् १९९२ चैत सुदी १५ को कराची मे मोहता पैलेस मे पैदा हुई। उसके दो वर्ष बाद सवत् १९९३ मे फागुन वदी अमावस्या को चि० कृष्णकुमार का जन्म भी कराची मे हुआ। तीसरी सन्तान (दूसरी कन्या) सरोज का जन्म सम्वत् २००३ भादवा सुदी ५ को बीकानेर मे हुआ।

सूरजरतन को गोद लेना

गिरधरलाल को मूलचन्द के गोद करने के थोडे ही दिनो बाद शिवरतन जी के सब से छोटे लडके सूरजरतन को इन्होने अपनी गोद लेने की कानूनी लिखा पढ़ी करवाली ताकि उनके पीछे उनकी सम्पत्ति के सम्बन्ध मे शिवरतन जी के तीनो लडको गिरधरलाल, ब्रजरतन और सूरजरतन मे कोई झगड़ा उत्पन्न न हो और सयुक्त परिवार की सारी सम्पत्ति के बराबर के तीन हिस्से कर दिये गये।

सूरजरतन का विवाह उसकी सम्मति से बीकानेर मे ही इनको समाज बहिष्कृत करने वाले प्रमुख पचायतिष्ट परिवार के श्री विट्ठलदास जी बागडी की सुन्दर और सुशील पुत्री श्रीमती रतनदेवी के साथ सम्वत १९९८ माघ सुदी ५ को बडी धूम-धाम और आमोद प्रमोद के साथ किया गया।

शिवरतन जी का मझला लडका ब्रजरतन उनकी थित मे रह गया। उसका विवाह सम्वत् १९९४ मगसर मे श्री रामेश्वरदास जी बिडला की सुन्दर और सुशिक्षित पुत्री श्रीमती राधादेवी के साथ कलकत्ते मे धूम-धाम से हुआ। इसकी बरात कराची से कलकत्ता गई थी। इस विवाह मे दहेज के दिखावे की प्रथा बन्द कर दी गई। विवाह के अन्य कार्यक्रम के साथ एक दिन सत्सग का आयोजन किया गया था जिसमे बिड़ला बन्धु भी बडे प्रेम से सम्मिलित हुए।

सम्वत् १९९६ माघ सुदी ७ को आप की माता जी का देहान्त ८२ वर्ष की आयु मे बीकानेर मे हुआ। उनकी बीमारी के दिनो मे और अन्त समय तक आप उनकी सेवा मे उपस्थित रहे। उनके अन्त समय मे सारे परिवार को कराची से बीकानेर बुला लिया गया था और सब मृत्युशय्या के पास उपस्थित थे। उनके क्रियाकर्म के सम्बन्ध मे गरुड पुराण के बदले मे आपने गीता अर्थ सहित पढकर सारे परिवार के लोगो को दस दिनो तक सुनाई। उनके पीछे मृत्युभोज नही किया गया और न किसी रूढि का पालन किया गया।

पाकिस्तान का निर्माण

सिन्ध को बम्बई से अलग करके जब पृथक प्रान्त बनाया गया तभी से आपने पाकिस्तान के बनने की

स्पष्ट कल्पना कर ली थी और आपका निश्चित मत था कि पाकिस्तान मे हिन्दुओ को भयानक अन्याय, अत्याचार और यातनाओ को भोगना पडेगा। आपकी यह भी स्पष्ट सम्मति थी कि हिन्दुओ को सिन्ध मे से अपना उद्योग व्यापार और व्यवसाय समेट कर हिन्दू बाहुल्य प्रान्तो मे जाकर बस जाना चाहिए और वहाँ ही उद्योग, व्यापार व व्यवसाय करना चाहिए। आपका कांग्रेस की नीति और मुसलमानो पर बिलकुल भी विश्वास न था। आप जिन्ना को बहुत ही चालाक और होशियार राजनीतिज्ञ मानते थे। आपका यह भी विश्वास था कि उसके सामने गाधी जी और काग्रेस की एक भी न चलेगी। गाधी जी जब जिन्ना को मनाने के लिए बम्बई गए तब आपको पाकिस्तान के बनने मे सन्देह न रहा और आप सिन्ध मे बना रहना बहुत बडी भूल समझते थे। खुले रूप मे आप अपने ये विचार सब पर प्रगट किया करते थे। इसी कारण मोहता नगर की खाड की मिल और खेती की जमीन बेच दी गई। उसके बदले मे अहमदाबाद मे "भारत सूर्योदय मिल" का काम ले लिया गया और इन्दौर मे "मालवा वनस्पति एण्ड कैमिकल" कारखाना खोलने का निश्चय किया गया। कलकत्ता मे कोयला खानो का काम बढाया गया। बम्बई मे भी नया दफ्तर खोला गया। बीकानेर, जोधपुर और जयपुर में भी काम बढाया गया। अजमेर मे अभ्रक की खानो का काम शुरू किया गया, फिर भी कराची के मकानो की विशाल सम्पत्ति और फैले हुए काम को एकाएक समेटा न जा सका सिन्ध के मुसलमान मन्त्री शिवरतन जी के बडे मिलने-जुलने वाले और मित्र भी थे। वे उनको हमेशा यह विश्वास दिलाया करते थे कि हिन्दुओ के साथ कोई अन्याय व ज्यादती न होगी। इसलिए शिवरतन जी, चादरतन जी और अन्य युवको के दिमाग मे आपकी बात पूरी तरह बैठ नही सकी। वे यह भी मानते थे कि स्वतन्त्र राज्य की राजधानी बन जानेसे कराची का तो विकास ही होगा और व्यापार व्यवसाय करने के अवसर बहुत ही बढ़ जायेंगे। कराची का सारा काम-काज समेटा न गया और सारी जायदाद बेची न गई। बी० आर हरमन एण्ड मोहता कम्पनी तथा लोहे के कारखाने का काम पिछले ही वर्षों मे बहुत अधिक बढाया गया था। दूसरे महायुद्ध के दिनो मे उसके लिए अनुकूलता भी अच्छी पैदा हो गई थी। लेकिन, पाकिस्तान के निर्माण की घोषणा होते ही स्वप्न की तरह सारी दुनिया बदल गई। जो कुछ आप कहा करते थे वह कठोर सत्य एव ठोस वास्तविकता बन कर सामने आगया। मुसलमानो के अत्याचार शुरू होने और भगदड मचने पर कुछ सम्पत्ति बेचनी शुरू की गई, परन्तु इतनी विशाल और चारो ओर फैली हुई जायदाद का एकाएक बेचना सम्भव न था। हवा बन्दर के "मोहता पैलेस" पर वहाँ की सरकार ने पाकिस्तान बनने के ही दिन कब्जा कर लिया था। सब सामान समेट कर वहाँ से व्यवस्थित रूप से आने का अवसर नही दिया गया। बी० आर हरमन एण्ड मोहता कम्पनी तथा विशाल कारखाने का कुछ भी किया नही जा सका।

श्री शिवरतन जी के निरन्तर प्रयत्नो के कारण तीन वर्ष बाद कोठी, बिल्डिग, धर्मादा ट्रस्ट के दो मकानो, 'बडी कपडा मार्केट' और 'कासर बिल्डिग' का अदला-बदला हो सका।

एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस

स्वर्गीय महाराजा गगासिह जी ने राज्य सभा के अतिरिक्त राज्य प्रबन्ध के लिए एक एडमिनिस्ट्रेटिव कान्फ्रेंस स्थापित की थी। इसमे सरकारी और गैर सरकारी सदस्य नियुक्त किए गए थे। राज्य प्रबन्ध के सम्बन्ध मे उसमे विचार-विमर्श किया जाता था। केवल दो वर्ष तक वह चल सकी। शिवरतन जी की अनुपस्थिति मे आप भी उसके एक गैर सरकारी सदस्य थे और आप अत्यन्त निर्भयतापूर्वक राज्य की त्रुटियो की चर्चा करके उनके उपाय भी सुझाया करते थे। दूसरी कान्फ्रेंस मे आपने जागीरो मे जागीरदारो द्वारा अपनी प्रजा पर की जाने वाली ज्यादतियो, बेगार, लागबाग, दास दासी आदि पर होने वाले अमानुषी अत्याचारो की चर्चा की। इस पर बडे-बडे जागीरदार, जो कि राज्य के ऊँचे पदो पर भी नियुक्त थे आप पर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने आप

पर नाना प्रकार के आरोप लगाते हुए आपको वागी तक कह दिया। आपने निर्भय होकर फिर उनका उत्तर दिया। महाराज मान्धाता सिंह उन दिनो मे राज्य के दीवान और उस कार्फेस के सभापति थे। उन्होंने आपकी वहुत सी वातो को सच वताकर उनका समर्थन किया और आपकी बडी सराहना की।

गोले गोलियो का उद्धार

सामन्ती शासन के प्रदेशो मे दास दासी रखने की प्रथा का वडा जोर था। राजाओ के पास सैकडो की सख्या मे दास दासी जो "गोले गोली" कहलाते थे रहते थे। जागीरदारो के पास उनकी जागीरो के अनुसार कोडियो व दर्जनो और वहुत छोटो के पास वे कम सख्या मे रहते थे। परन्तु थोडी सी जमीन के मालिक के पास भी एक दो गोला गोली अवश्य ही होते थे। इन गौले गोलियो को वे पशुओ की तरह अपनी सम्पत्ति मानते थे। गोलियाँ घर के काम काज करने के अतिरिक्त उनकी भोग सामग्री भी थी। जिनके साथ सव तरह का अनाचार व पापाचार किया जाता था। लडकियो के दहेज मे भी ये आमतौर पर दिये जाते थे। इन पर वे लोग मनमाना अत्याचार करते थे। राज्य और जागीरो के चले जाने पर यद्यपि यह राक्षसी प्रथा कम हो गई है पर अभी तक इसका अन्त नही हुआ है। अनेक अवसर ऐसे आए जव कई गोले गोलिया अपने स्वामियो के अमानुषी अत्याचारो की यातनाएँ न सह सकने के कारण भाग कर आपकी शरण मे आए और आपने उनको अपने यहाँ आश्रय दिया। उनके स्वामियो को पता लगने पर वे अपनी उस सम्पत्ति को उन्हे लौटाने के लिये आप पर दवाब डालते। इस पर आपका यही उत्तर होता था कि "अगर वे अपनी खुशी से जाना चाहे तो आपके पास जा सकते हैं। मैं इनको जवरदस्ती आपके सुपुर्द नही कर सकता। आप चाहें तो कानूनी कारवाई कर सकते है।" कानूनी दावा करके वे उनको नही ले जा सकते थे। इसलिए वे वहुत विगडते थे और आपसे दुश्मनी रखते थे। कई प्रकार की तकलीफें देने के षडयन्त्र करते थे। महाराजा गगासिह जी को भी शिकायत की जाती थी परन्तु आप उनसे कभी नही घवराए और वेचारे गोले गोलियो का सरक्षण करते रहे। उन दिनो मे वीकानेर के दीवान सर मनुभाई मेहता थे। वे आपके वडे सहायक थे।

राज्य की राज्य सभा

उससे पहले सवत १९६९ मे महाराजा गगासिह जी ने जव राज्य सभा कायम की थी तव आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी मोहता को उसका एक सदस्य नियुक्त किया था। उनका महाराजा गगासिह जी, राज्य के अधिकारियो तथा सरदारो पर अच्छा प्रभाव था। राज्य सभा मे उन्होने अनेक निर्भीक भाषण दिए। वहस मे स्वतत्रापूर्वक भाग लिया और अनेक उपयोगी विधेयक प्रस्तुत करके नये कानून वनवाए। उनमे 'वाल विवाह और वच्चो के धूम्रपान निषेध कानून, और गरीव कर्जदारो के सुभीते के कानून प्रसिद्ध हैं। वे राज्य सभा का सारा काम आपके परामर्श से किया करते थे। अपने भाषण आदि भी आपको दिखाकर तैयार करते थे और आपकी सम्मति का यथावत पालन करते थे।

श्री शिवरतन जी मोहता की मन्त्रिपद पर नियुक्ति

सवत् २००२ के श्रावण मास मे आप परिवार के सव लोगो के साथ कराची मे थे। तव महाराजा शार्दूलसिंह जी ने आपको और आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी को तार देकर अत्यन्त आग्रह से वीकानेर वुलाया और आपसे राज्य प्रवन्ध मे हाथ वटाने का अनुरोध किया। सिविल सप्लाई विभाग मे अव्यवस्था होने के कारण जनता मे विशेष असन्तोष फैला हुआ था। उस विभाग का मन्त्रिपद सम्भाल कर उसकी व्यवस्था

जमाने का आपसे विशेष अनुरोध किया गया। आपके परामर्श पर लोकसेवा की भावना और अत्यन्त निस्वार्थ भाव से श्री शिवरतन जी मोहता ने उस विभाग का मन्त्री बनना स्वीकार किया। उनकी वेतन लेने तथा राज्य की ओर से दी जाने वाली सुविधाओ से लाभ उठाने की इच्छा बिलकुल भी नही थी। राज्य के नियम का पालन करने के लिए केवल एक रुपया मासिक वेतन स्वीकार किया। अपने ही घर के बाहर के कमरे मे अपना दफ्तर रखा। कोई अरदली या सिपाही रख कर लोगो के मिलने जुलने के लिए आने मे रुकावट नही रखी। सरकारी मोटर का प्रयोग नही किया। ६ महीने मेहनत करके सारी व्यवस्था बनाई गई और जनता के लिए अन्न, चीनी, वस्त्र तथा इधन आदि का यथोचित प्रबन्ध किया गया। उन दिनो की सुव्यवस्था को लोग अब भी याद करते और उसकी सराहना करते हैं। आपने अपने ही यहाँ डीपो खोलकर कपडा प्राप्त करने की सुविधा कर दी।

श्री शिवरतन जी की मिलनसारिता, सहृदयता, कार्यकुशलता तथा लोकसेवा की भावना के कारण उनको सरकार ने राव बहादुर की पदवी से सम्मानित किया। उनको आनरेरी मजिस्ट्रेट और जे० पी० (जस्टिस आफ पीस) भी बनाया गया था। सरकार की खुशामद अथवा अधिकारियो की चाटुकारिता आपको और आपके कारण आपके परिवार मे किसी को भी पसन्द नही थी। आपका सारा परिवार जिस ढांचे मे ढाला गया उसका निर्माण आपने किया और उसके कारण ऐसी कोई हीन भावना कभी किसी मे पैदा नही हुई। निर्भयता, निरहकार आपके सारे परिवार मे विशेष रूप से पाया जाता है। सरलता, उदारता, स्नेह एव सहृदयता आदि सद्गुण भी सारे परिवार मे ओतप्रोत हैं। पैसे अथवा पूंजी का गर्व किसी को छू नही गया है। गरीब से गरीब और साधारण से साधारण व्यक्ति भी आपके पास सीधा पहुच कर अपने दुख दर्द तथा व्यथा की सारी कथा कह सकता है और उसके लिए समुचित समाधान प्राप्त किए बिना निराश नही लौट सकता। दीन दुखियो और सकटापन्नो की तन मन धन से सहायता करने के लिए आप सदैव तत्पर रहते है।

देश के अनेक गण्य मान्य नेताओ के साथ आपकी गहरी आत्मीयता रही है। जब आप पुराने विचारो के थे तब सनातन धर्म के प्रभावशाली वक्ता व्याख्यान वाचस्पति पडित दीनदयालु जी शर्मा आपके निमन्त्रण पर बीकानेर पधारा करते थे और गुण प्रकाशक सज्जनालय की ओर से उनके व्याख्यानो का प्रबन्ध किया जाता था। सगीताचार्य स्वर्गीय पडित विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर बीकानेर मे आपकी धर्मशाला मे एक मास तक ठहरे थे। सगीताचार्य ठाकुर ओकारनाथ और पडित नारायण राव व्यास भी आपके निमत्रण पर कराची और बीकानेर पधारे और कई दिनो तक उनके सगीत का आकर्षक कार्यक्रम करवाया गया। स्वर्गीय महामना पडित मदनमोहन जी मालवीय आपसे बहुत प्रेम रखते थे। जब वे बीकानेर महाराज से मिलने के लिए बीकानेर पधारते तब आपसे मिले बिना नही रहते। जब कराची जाते तो हवा बन्दर के मोहता पैलेस में आपके पास ही ठहरते थे। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विषयो पर उनके साथ खूब चर्चा होती थी। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए आपने कई बार बडी-बडी रकमे दान मे दी।

महात्मा गाधी भी कराची मे आपके मेहमान हुए थे और उनके साथ आपने काग्रेस की मुस्लिम लीग परस्ती नीति के सम्बन्ध मे विस्तार से विचार विनिमय किया था। स्वर्गीय देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी और पजाब केसरी लाला लाजपत राय जी तथा अन्य नेता कराची और बीकानेर मे आपके मेहमान रहे है।

वृद्धावस्था मे गर्मी के दिनो मे बीकानेर की भीषण गर्मी आपको सहन नही होती थी, इसलिए पाकिस्तान बनने के पहले आप तीन महीने कराची मे रहा करते थे। उसके बाद तीन वर्षो तक तो बम्बई जाते रहे, फिर सन् १९५१ से हरद्वार जाकर गगा के किनारे के मकानो मे रहा करते हैं और सत्सग का कार्य-क्रम वहाँ भी चलता रहता है। हरद्वार मे तथाकथित साधुओ और महन्तो के अनाचार और पाखण्ड प्रत्यक्ष देखे और उन लोगो के प्रति इनकी ग्लानि बढती गई।

मनस्वी श्री रामगोपालजी के दत्तक पुत्र श्री सूरजरतनजी को गोद लेने के ममय का चित्र

चिरजीव ब्रजरतनजी मोहता (शुभ विवाह के अवसर पर)

सन् १६५२ मे हरद्वार मे "प्रगति सघ" नाम की सस्था वनाई। डा० जगदीश मित्र कौशल को मन्त्री नियत किया और एक प्रवन्धकारिणी कमेटी वनाई। इसकी एक शाखा दिल्ली मे स्थापित की और एक शाखा वीकानेर मे स्थापित की। दोनो जगह प्रवन्धक कमेटिया वनाईं, परन्तु कार्यकर्ताओ की शिथिलता के कारण यह सस्था दो तीन साल चलकर वन्द हो गई। "प्रगति सघ" के नाम से चतुर्मुखी क्रान्ति के कई लेख, पर्चे और पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जिनमे साधुओ, पन्डे, पुजारियो और गुरु आचार्यो के काले कारनामो का भी भडा-फोड किया गया। हरद्वार के भोलागिरि आश्रम से तीन युवक साधुओ को निकाल कर सासारिक जीवन मे लगाया गया। जिनमे एक राणा ध्रुव जग वहादुर नैपाल वाला अभी मिलिट्री पुलिस मे शिक्षा पाकर एक आफिसर वन गया है। दूसरा वादल तालपत्र नाम का एक वगाली लडका अपने भाइयो के साथ व्यापारिक काम मे सम्मिलित हो गया और तीसरा चन्द्रेश्वर प्रसाद शर्मा हाथ से कपडे वुनने का काम सीख कर अव "मगरा उत्पादक सहकारी" समिति मे काम कर रहा है।

कई वर्षो से आपके ववासीर की तकलीफ रहती थी। देहरादून मे एक रिटायर्ड वगाली सज्जन राय साहव चक्रवर्ती ववासीर की चिकित्सा करते थे। मगलवार को सुवह के समय वे रोगियो को एक छोटे से चीनिया केले के टुकडे मे दवाई डालकर मुंह के अन्दर इस तरह अगुलियो से फेंकते थे कि वह सीवी गले के नीचे चली जाती थी। एक ही वार यह दवाई देने से अधिकतर आराम हो जाता था। अगर किसी के थोडी कसर रह जाती तो एक साल वाद फिर वही दवाई देते थे जिससे विलकुल आराम हो जाता था। मोहता जी सवत् २००० मे हरिद्वार से देहरादून गए और चक्रवर्ती जी से दवाई ली। चिकित्सा की फीस वे विलकुल नही लेते थे। मोहताजी ने उनको कुछ न कुछ देना चाहा पर उन्होने कुछ नही लिया। चिकित्सा से वहुत लाभ हुआ परन्तु कुछ कमी रही। इसलिए दूसरे साल फिर उनके पास गए और उनसे दवाई ली। आपने उनसे दवाई वताने का आग्रह किया जिसे आप अपने औषवालय मे वनाना चाहते थे पर उन्होने उसका भेद नही दिया। इतना ही कहा कि पहाडो मे वहुत खोज करने से मिलती है। उस समय आपने उनको १५००) दिए। थोडे समय वाद वे मर गए और दवाई का भेद अपने साथ ले गए। अपने पुत्र को भी नही वताया। मोहता जी को विलकुल आराम हो गया। उसके वाद अव तक कभी तकलीफ नही हुई।

इन्ही वर्षो मे आप देहरादून जाने पर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक श्री मानवेन्द्रनाथ राय से उनके निवास स्थान पर जाकर मिले। पहली ही मुलाकात मे परस्पर इतना गहरा सम्वन्ध कायम हो गया कि अनेक विषयो पर आपस मे पत्र-व्यवहार द्वारा और प्रत्यक्ष मिलने पर भी विचार विनिमय होता रहा। उनके साथ आपका सम्वन्ध उत्तरोत्तर वढता ही गया।

दिल्ली, कलकत्ता और वम्वई आदि जाने पर वहाँ के प्रमुख व्यक्तियो से आप प्राय विचार विनिमय करते रहते हैं। पिछले कुछ समय से लम्वी यात्रा न कर सकने के कारण ग्रीष्म ऋतु के सिवाय आपने वीकानेर से वाहर जाना प्राय छोड दिया है।

व्यक्तित्व, स्वभाव और चरित्र

आपका स्वभाव अत्यन्त सरल, साधु, सहृदय और मिलनसार है। छल कपट से आप वहुत दूर हैं। एकाएक किसी पर अविश्वास नही करते। वीकानेर के महाराजा गगासिह जी आपको "नरसी मेहता" की उपमा दिया करते थे। सकटापन्न की सहायता करना आपका स्वभाव वन गया है। लाखो रुपया आपने लोकोपकार के लिए खर्च किया है और उसमे आप निरन्तर लगे रहे हैं। सार्वजनिक जीवन मे आपका स्वभाव सकोची है। आत्म-विज्ञापन और प्रकाशन से आप वहुत दूर रहते हैं। इतनी लोकसेवा और लोकोपकार करते हुए भी उसक वारे मे समाचार पत्रो

मे बहुत कम समाचार प्रकाशित हुए हैं। अनेक समाचार पत्रो को भी आपकी भरपूर सहायता प्राप्त हुई परन्तु उनमे भी प्रशसा आदि प्रकाशित नही हुई। दिखावे और बनावट से आप बहुत दूर हैं। बीकानेर के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा अन्य कार्यों मे भी आपने प्रमुख रूप से भाग लिया है। बीकानेर मे सामाजिक और सार्वजनिक जीवन का सूत्रपात करनेवालो मे आपका प्रमुख स्थान है और लोकोपकारी सार्वजनिक सस्थाओ की स्थापना का आपने शुभ श्री गणेश किया, परन्तु आपकी नीति यह रही कि जो एक हाथ से दिया या किया जाय उसका पता दूसरे हाथ को भी नही लगना चाहिए। निस्वार्थ भावना आप मे ओत-प्रोत है। दृढ निश्चय के आप धनी हैं। अपने सकल्प से कभी विचलित नही हुए। लोकापवाद से कभी भयभीत नही हुए। धर्मान्धता, रूढिवाद और परम्परावाद मे आपका तनिक सा भी विश्वास नही हैं। आपकी वृत्ति अत्यन्त सरल, पवित्र व सात्विक है। विना कारण क्रोध करना और भावावेश मे आना आप जानते ही नही। जमुना के प्रवाह की तरह आपके जीवन मे अद्‌भुत समरसता पाई जाती है। दुख मे विषाद और सुख मे उल्लास व हर्षोन्माद प्राय आपको नही होता। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियो मे भी मानसिक सतुलन कभी नही बिगडने देते। सादगी, सहिष्णुता और सहृदयता आदि सद्‌गुण स्वभाव सिद्ध हैं।

सतुलित वृत्ति

व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र मे भी आपके इस स्वभाव का अनेक बार खासा परिचय मिला। कोई बडा कदम उठाने अथवा नया काम-काज शुरू करने मे कभी जल्दवाजी नही की। खूब सोच विचार कर अत्यन्त सतुलित वृत्ति से सदा काम लिया। इससे कभी-कभी अपरिमित लाभ हुआ तो हानि भी कुछ कम नही हुई। अपने पिताजी और भाई श्री शिवरतन जी मोहता की तरह आपने किसी काम मे एकाएक हाथ कदाचित ही डाला होगा। आज कल की भाषा या परिभाषा मे जिसको साहस कहा जाता है उससे जल्दवाजी मे आपने कभी कोई निर्णय नही किया। सब वातो का आगा-पीछा आप खूब सोचते हैं। किसी भी काम के प्रारम्भ करने मे आप यह खूब तोल लेते हैं कि उसके लिए कितनी शक्ति की आवश्यकता है, वह शक्ति अपने मे है कि नही, सफलता की क्या सभावना है, उसमे कितनी रकम लगानी होगी, कितनी रकम का फैलाव करना होगा और उसका प्रबन्ध हो सकेगा कि नही ? सोच-विचार किए बिना आप कभी कुछ कहते नहीं और कहने के वाद पीछे हटते नही। अपनी बात के वजन का आप को हमेशा ध्यान रहता है। अधमनेपन से किसी काम को करना आप जानते नही। किसी काम को शुरू किया तो उसमे अपने को सर्वतोभावेन लगा दिया और उसको सफल बनाने मे कुछ भी उठा न रखा। यदि कभी किसी काम से हाथ खीचना पड गया तो उसको समेटने मे भी कुछ सकोच नही किया। जय पराजय का अहकार अथवा प्रतिष्ठा की मिथ्या भावना आपके मार्ग मे कभी वाधक नही वनी।

सकोची स्वभाव से हानि

जीवन मे ऐसे कई प्रसग आए जवकि नया काम शुरू करके बहुत बडा मुनाफा पैदा किया जा सकता था, परन्तु आपने मुनाफे के प्रलोभन मे फँसकर एकाएक नया काम शुरू नही किया और अनेक अच्छे अवसर खो दिये। शार्पल्स साहव के साथ कलकत्ता मे नया काम शुरू करने का प्राय निश्चय हो चुका था। वातचीत करने के लिए पिताजी ने आपको वम्वई भेजा। छोटे भाई मूलचन्द जी मोहता की मृत्यु से घर के सब लोग विह्वल थे। आपके हृदय पर भी उस मृत्यु की वडी चोट लगी थी, उसीकी वात कह कर आपने शार्पल्स साहव को टाल दिया। उसने वहुत कहा कि आप लोगो के ही कहने पर मैंने विलायत वालो के साथ पत्र-व्यवहार करके उनकी स्वीकृति प्राप्त की है। आप कुछ समय वाद विचार करने की वात कहकर टाल आए। यदि आपके स्थान पर आपके छोटे
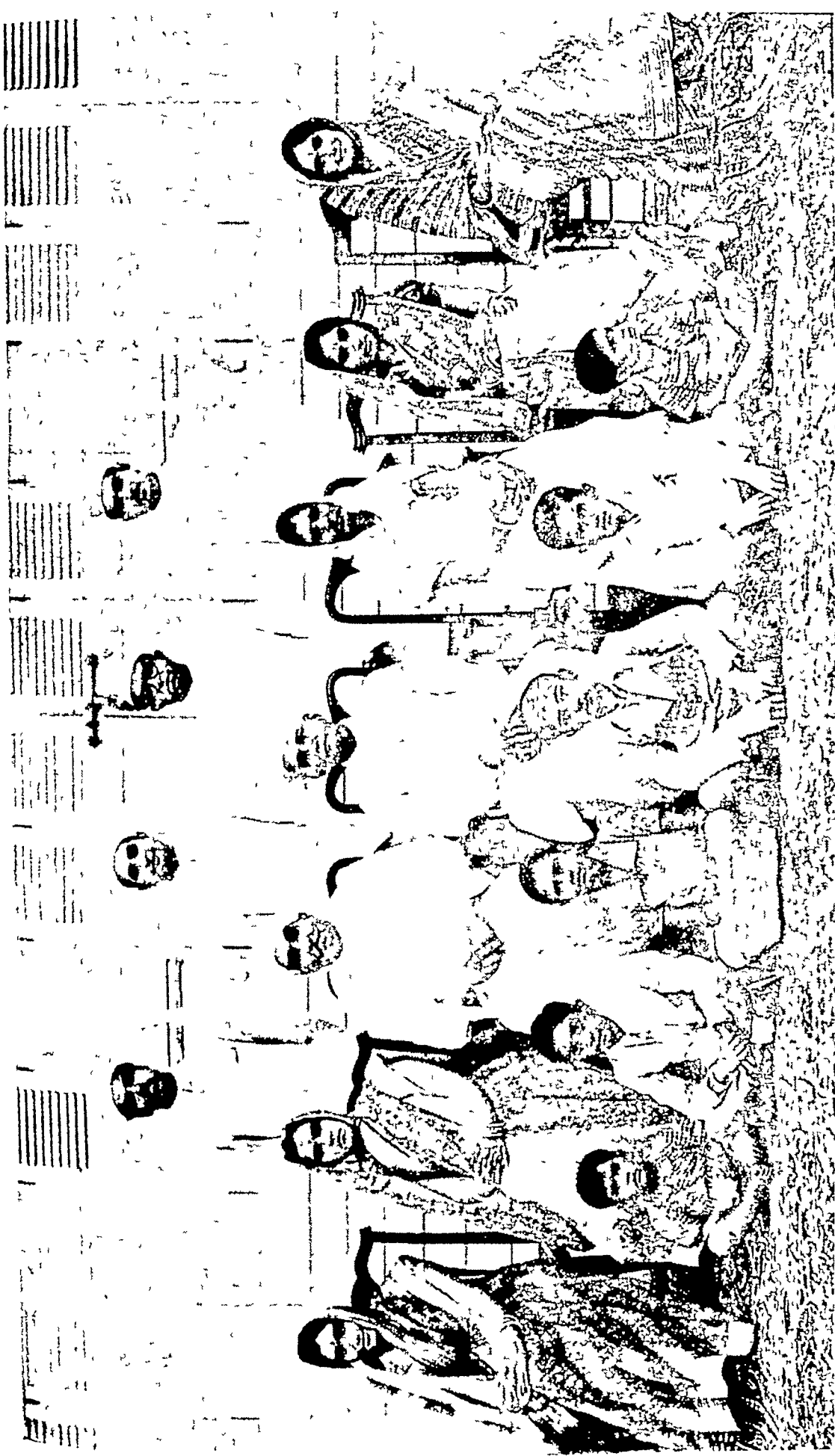
मोहता पैलेस कराची मे मोहता परिवार ।

खड़े हुए (बांए से दांए) श्री सूरज रतन जी मोहता, श्री मदन गोपाल जी दम्माणी, श्री गिरधर लाल जी मोहता, श्री ब्रजरतन जी मोहता,

कुर्सी पर (,, ,,) श्रीमती रतन देवी सूरजरतन मोहता, श्रीमती रतन देवी मदन गोपाल जी दम्माणी, रा० ब० शिवरतन जी मोहता, मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता, श्रीमती सरस्वती देवी शिवरतन मोहता, श्रीमती सत्यवती देवी गिरधर लाल मोहता, श्रीमती राधा देवी ब्रजरतन मोहता। (जमीन पर बैठे हुए) श्री राजेन्द्र कुमार मोहता, श्री शशि कुमार मोहता, सुशीला कुमारी दम्माणी, श्री रवि कुमार मोहता, श्री कृष्ण कुमार दम्माणी, राजकुमारी मोहता।
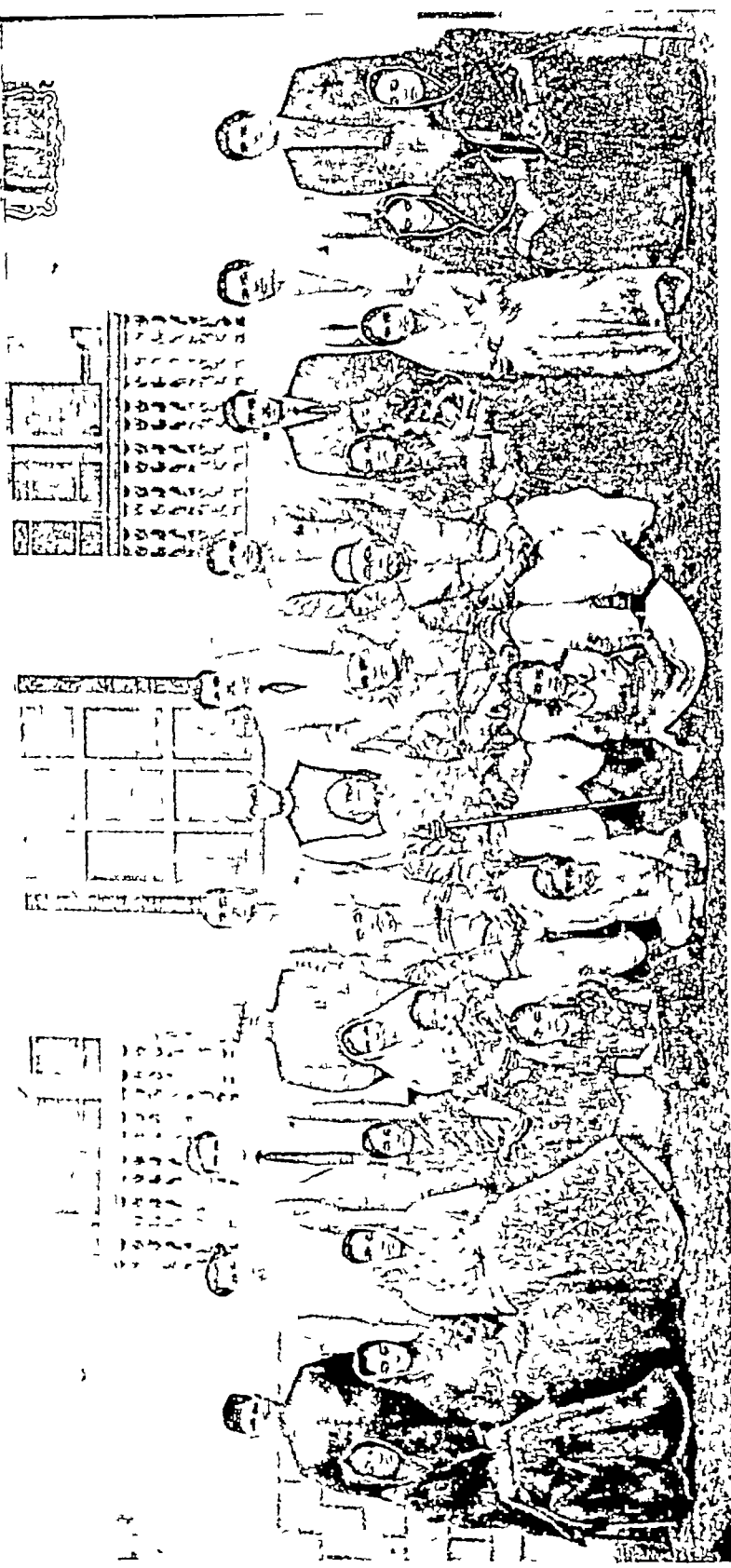
मोहता परिवार मोहता भवन बीकानेर मे जनवरी १९५७। मोहता जी की दोहिती श्रीमती रतन बाई दम्माणी के सुपुत्र चि० कृष्णकुमार के शुभ विवाह के अवसर पर एकत्रित हुए कुटम्बीजन।

खड़े हुए (बांए से दांए) श्री नन्दलाल जी डागा। श्री रविकुमार जी मोहता, श्री कृष्णकुमार जी दम्माणी, श्री दुर्गादास जी मूदड़ा, श्री सूरज रतन जी मोहता, श्री गिरधर लाल जी मोहता, श्री ब्रजरतन जी मोहता, श्री मदन गोपाल जी दम्माणी, श्री शशिकुमार जी मोहता, श्री बालेश्वरदास जी लोईवाल, श्री राजेन्द्र कुमार जी मोहता।

बैठे हुए (बांए से दांए)

१ श्रीमती वीणा देवी शशिकुमार मोहता, २ श्रीमती विमला देवी रवि कुमार मोहता, ३ श्रीमती रतन देवी सूरजरतन मोहता, ४ श्रीमती सत्यवती देवी गिरधर लाल मोहता ५ श्रीमती सरस्वती देवी शिवरतन मोहता, (गोद मे श्री आनन्दकुमार सूरजरतन मोहता) श्री शिवरतन जी मोहता, श्री रामगोपाल जी मोहता, श्री चांदरतन जी मूदड़ा, श्री बालगोविन्द दास जी लोईवाल, श्रीमती रतन देवी मदन गोपाल जी दम्माणी, (गोद मे श्री सुरेन्द्र कुमार रविकुमार मोहता), श्रीमती राधा देवी ब्रजरतन मोहता, श्रीमती कान्ता देवी कृष्णकुमार दम्माणी, श्रीमती सुशीला देवी बालेश्वर दास लोईवास।

नीचे बैठे हुए—इन्दुकुमारी मोहता, वीरेन्द्रकुमार मोहता, सरोजकुमारी दम्माणी।
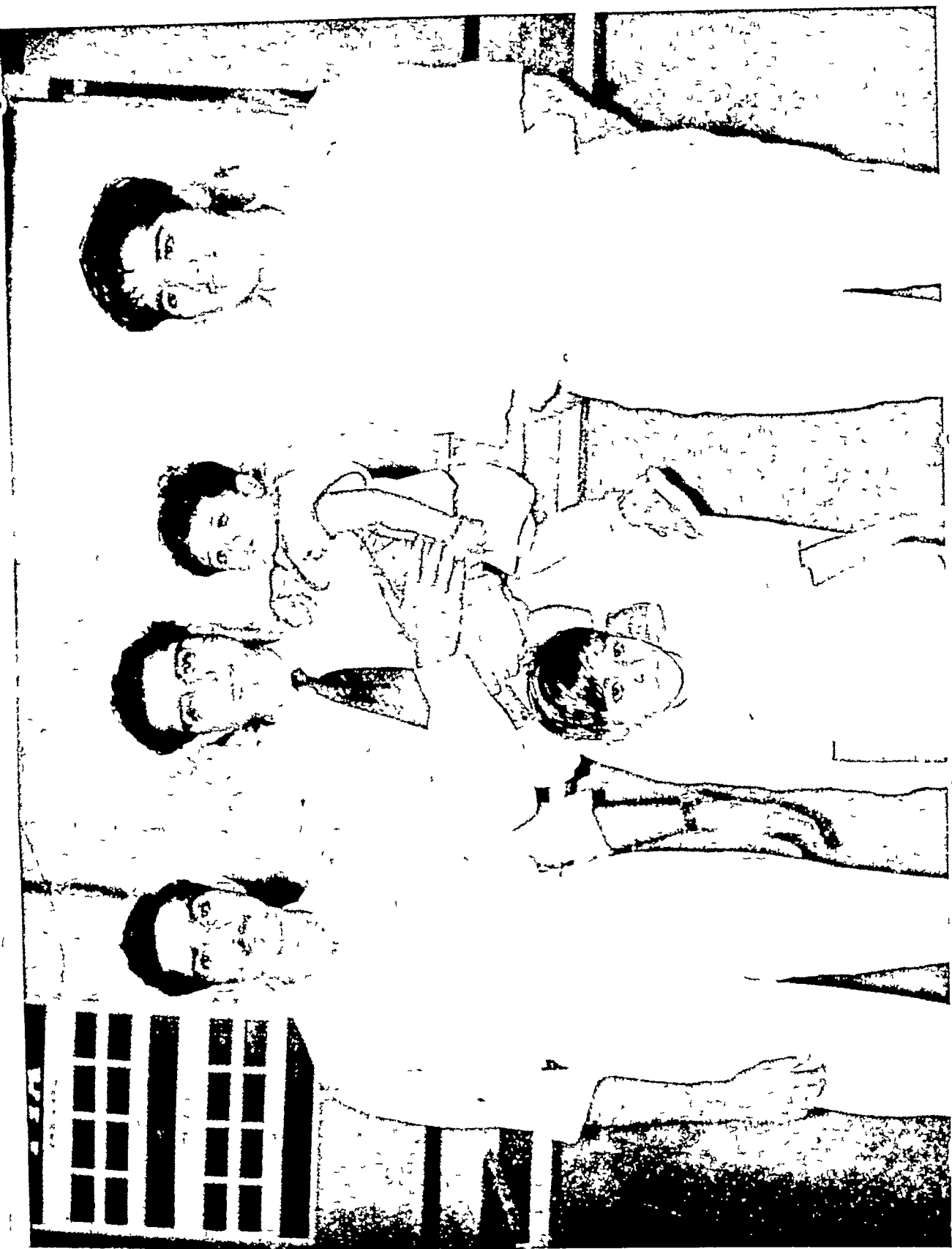
मोहता जी के पौत्र

वाएँ से—(१) श्री शशिकुमार मोहता, (२) श्री रविकुमार मोहता (गोद मे चि० आनन्दकुमार), (३) श्री राजेन्द्रकुमार मोहता

(सब के आगे खडा हुआ) चि० वीरेन्द्रकुमार

मोहता भवन, २० फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली

भाई श्री शिवरतन जी होते तो वे इनकार नहीं करते ।

बीकानेर मे भी ऐसे कई प्रसग आए । कोट दरवाजे के बाहर किंग एडवर्ड मेमोरियल रोड पर कर्नल बेक साहब ने नया बाजार बसाने के लिए दुकानो की जमीन बहुत सस्ते दामो पर बेचनी शुरू की तब उसने आपसे भी बडा आग्रह किया । लाभू श्रीमाल के कटरे वाली जमीन भी कोडियो की कीमत पर मिल रही थी । उस समय वह सारी जमीन उजाड पडी थी । आपने यह सोचकर जमीन खरीदना उचित नही समझा कि बीकानेर मे कौनसा व्यापार व्यवसाय है जो कि वहाँ बाजार बस सकेगा । अब वह कटरा बहुत आबाद हो रहा है और उससे अच्छी आमदनी है । इसी प्रकार बीकानेर राज्य मे नहर आने पर उसके किनारे की जमीनें रडकिन साहब ने बहुत सस्ते दामो पर खरीदने के लिए आपको समझाया परन्तु आप यह सोचकर उसके लिए तैयार न हुए कि वहाँ जाकर कौन खेती करेगा । गंगानगर मडी की दुकानो के प्लाट भी ऐसा ही विचार करके नही लिए । यदि ये जमीनें खरीद ली जाती तो बडा लाभ होता ।

दिल्ली मे एक कपडे की मिल जब सिखो के हाथ मे थी तब वह चार लाख रुपये मे बिक रही थी । आप अपने मुनीम श्री लक्ष्मीनारायण गाडोदिया के साथ उसको देखने गए और सौदा बिलकुल जच गया । लेकिन गाडोदिया जी ने यह कह दिया कि मिल का काम दिल्ली के काम के साथ नही रखा जायगा । उसको आप अपने नाम रखें । इस पर यह सोचकर कि उसको कौन सँभालेगा आप सकोच मे पड गए । यह मिल अब बहुत उन्नति कर गई हैं ।

कलकत्ता मे जूट मिल कायम करने या खरीदने के भी अनेक प्रस्ताव समय-समय पर आपके सामने रखे गए । लेकिन आप तैयार नही हुए । यदि यह काम कर लिया जाता तो बहुत उन्नति हुई होती ।

व्यापार व्यवसाय मे जैसे आपका सकोची स्वभाव रहा वैसे ही घर गृहस्थी तथा परिवारिक और सामाजिक कामो मे भी आपको विग्रह अथवा लडाई झगडा बिलकुल पसन्द न था । बिरादरी के काम-काज भी बिना कलह के ही समेटने की आपकी प्रवृति रही । आप इस बात का सदैव बडा ध्यान रखते थे कि कुटुम्ब मे कोई कलह न होकर आपस का प्रेम सम्बन्ध बिगडने न पावे । यदि आपस मे कभी किसी मे कुछ कहासुनी, खींच-तान या तनाव पैदा हुआ तो उसको आपने बडी शान्ति, प्रेम व धैर्य से निपटा लिया । सबको आपस मे मिलाकर रखने मे ही आप निरन्तर लगे रहे । आपकी इस प्रकृति और स्वभाव के कारण घर की शोभा, सौन्दर्य व समृद्धि मे निरन्तर वृद्धि हुई है और उसका मान सम्मान तथा प्रतिष्ठा भी निरन्तर बढती रही है । "स जातो येन जातेन याति वश समुन्नतिम्" की उक्ति आप पर पूरी उतरी है ।

सुखी और सम्पन्न परिवार

स्वर्गीय श्री मोतीलाल जी के चारो पुत्रो शिवदास जी, जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी और गोवनर्धदास जी ने उनके जीवन काल मे ही लखपति की स्थिति एव गौरव प्राप्त कर लिया था । वे स्वयं वैसे सम्पन्न नही थे । चार पाँच सौ रुपये साल पर वे हैदराबाद और नागपुर मे मुनीमी करने गये थे । उन दिनो मे इस मुनीमी को भी बहुत बडा वैभव समझा जाता था । परन्तु उनके चारो ही पुत्रो ने स्वतन्त्र व्यापार व्यवसाय किया और व्यापारिक समाज मे अपनी प्रतिष्ठा, गौरव, यश तथा वैभव का निर्माण करके अपनी सर्वथा स्वतन्त्र स्थिति बनाली थी ।

मोहता जी के पिता श्री गोवर्धनदास जी को राव बहादुर और ओ० बी० ई० की पदवियो से सरकार ने सम्मानित किया था । आपके अनुज श्री शिवरतन जी मोहता को सरकार ने राव बहादुर तथा जस्टिस ओफ दी-पीस की पदवी से सम्मानित किया और आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया । बीकानेर राज्य मे वे पहले राज्य

सभा के सदस्य और बाद मे रसद मन्त्री बनाये गये। राज्य सभा मे उन्होने जिस निर्भीकता और लोक सेवा की भावना से काम किया तथा केवल एक रुपया मासिक वेतन लेकर मन्त्रिपद के कार्य को निभाया उसकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। आपके परिवार के प्राय सभी सदस्यो ने सासारिक दृष्टि से सुख, सम्पत्ति एव वैभव का सम्पादन किया। इस समय मोतीलाल जी के परिवार के सदस्यो की सख्या सैकडो मे गिनी जा सकती है और सभी ने विशेष सम्मान एव प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इतने बडे परिवार मे परस्पर स्नेह, सहृदयता और बन्धुभाव जिस रूप मे पाया जाता है वह किसी के लिए भी अनुकरणीय है। सांसारिक सम्पन्नता को कलह का कारण माना जाता है और इस गृह कलह के कारण बडे-बडे परिवार भी बिखर जाते हैं। परन्तु आपके इतने बडे परिवार मे किसी प्रकार की कलह होने का कोई प्रसग उपस्थित नही हुआ। मोतीलाल जी के बाद सब के साझे मे व्यापार व्यवसाय चलता रहा और कराची से कलकत्ता तक प्राय समस्त उत्तर भारत मे आप लोगो का व्यापार व्यवसाय फैला हुआ है। व्यापार व्यवसाय के इतने फैलाव के बाद भी आपस मे कभी कोई कलह नही हुई। चारो भाइयो मे जब बटवारा हुआ और व्यापार व्यवसाय अलग-अलग किया गया तब कानो-कान उसका किसी को पता तक न चला, आपस के स्नेह, सहृदयता और बन्धुभाव पर कोई आँच नही आयी। किसी ने किसी के हिसाब-किताब पर कोई सन्देह एव आशका नही की। शिवदास जी के पुत्र गगादास जी का छोटी उम्र मे स्वर्गवास हो गया था। उनके काम को सम्भाला और उनके दोनो पुत्रो को शिक्षा-दीक्षा दिलवाकर अपने पैरो पर खडा कर दिया। सारे परिवार मे लडकियो को लडको के समान समझा गया और उनका योग्य सम्मान करने मे कोई कसर नही रखी गयी।

आपका अपने भाई शिवरतन जी के प्रति जो स्नेह भाव है और उनका आपके प्रति जो आदर भाव है वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दोनो की पारस्परिक भावना को देखते हुए "राम लक्ष्मण" की जोडी की उपमा दी जाती है। आपने स्वय लिखा है कि "कराची का सारा काम शिवरतन ने २१,२२ वर्ष की आयु मे बहुत अच्छी तरह सम्भाल लिया था, मार्केट, मकानो, आफिसो और दुकानो का बहुत फैला हुआ काम था उसको उसने बडी योग्यता से करना शुरू कर दिया। उसकी सूझ- बूझ और विचार शक्ति बडी तेज है। बडा मिलनसार, बहुत हसमुख, सहनशील और वाक् चातुर्य मे अत्यन्त प्रवीण है। पहली ही मुलाकात मे सामने वाले को अपना बना लेता है। अपने इन गुणो के कारण कराची मे अग्रेजो, सिन्धियो तथा मुसलमानो और पारसियो से भी उसने खूब मेल बढा लिया। दफ्तर वालो तथा सरकारी अधिकारियो के साथ अच्छा मेल मिलाप और प्रभाव पैदा कर लिया। वह निरतर मेरी आज्ञा पालन करता है। मैं जो कुछ कह देता अथवा लिख देता हूँ उसमे वह कभी कोई उज्र या आपत्ति नही करता। मुझ पर उसकी अटल श्रद्धा है। कभी मन से भी मेरा अनादर नही किया। स्वय किये हुए काम का श्रेय भी वह मुझे ही दिया करता है। इस प्रकार के आज्ञाकारी भ्रातृ भक्त छोटे भाई की लक्ष्मण से उपमा दी जाती है। किसी विरले व्यक्ति को ही ऐसा छोटा भाई प्राप्त होता है। यही कारण है कि अपने घर मे इतनी एकता, प्रेम व सुख शान्ति बनी हुई है और उसकी शोभा सर्वत्र हो रही है। मैं कभी कोई कठोर बात कह देता हूँ तब भी वह उसको चुपचाप सहन करलेता है, क्रोध उसको आता ही नही।"

आपके ये शब्द अक्षरश सत्य हैं और इन शब्दो मे आपके परिवार की सुख शान्ति का रहस्य छिपा हुआ है। आपका आदेश अथवा विवादास्पद मामलो मे आपका मत अथवा निर्णय बिना किसी सकोच के स्वीकार किया जाता है। सब के प्रति सम दृष्टि रखते हुए सबको अपने-अपने कर्तव्य कर्म मे आप निरन्तर लगाये रखते हैं। मोहता परिवार की शोभा को आपके गम्भीर व्यक्तित्व ने बढाया और उज्ज्वल बनाया है।
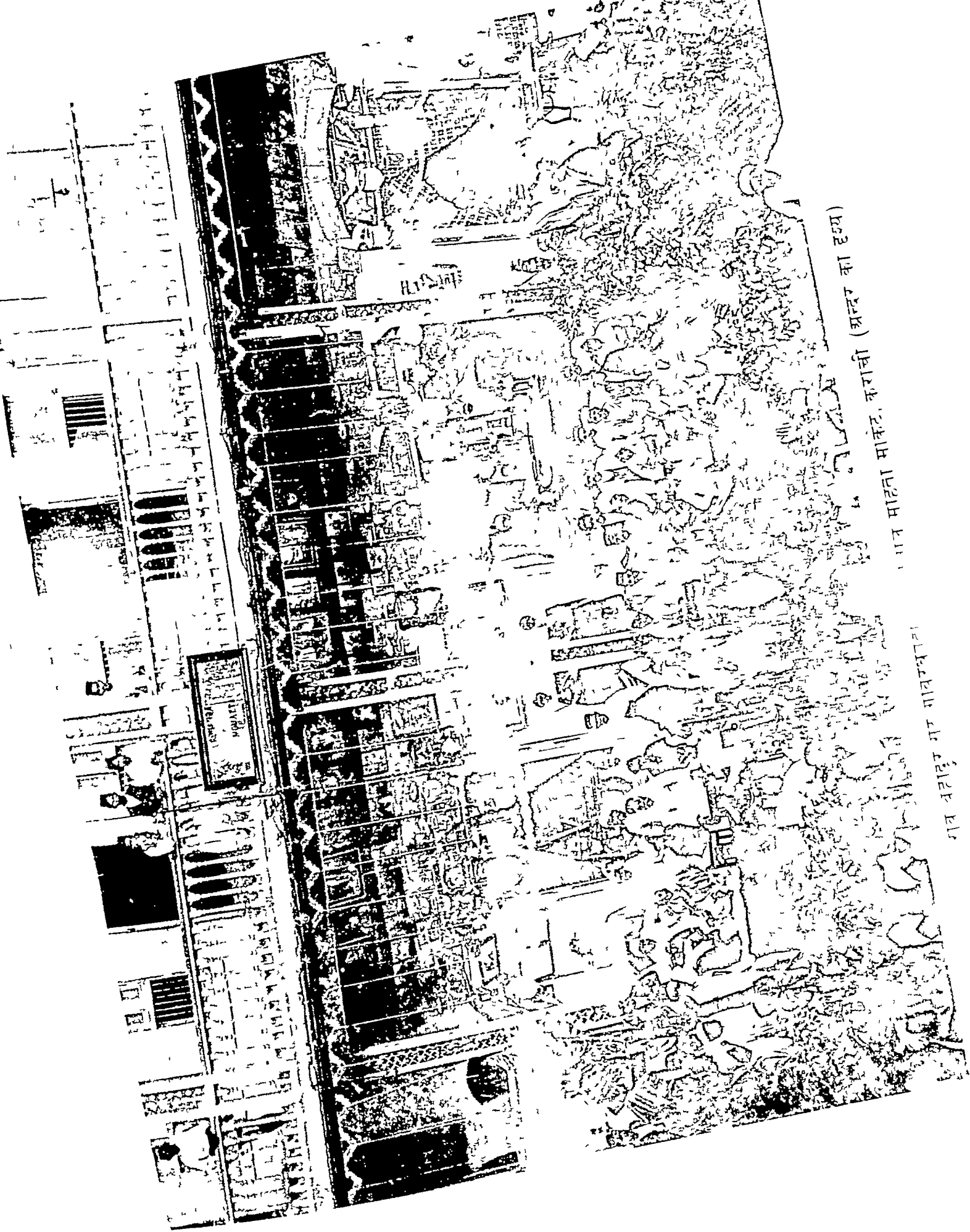
मर लैसलौट और लेडी ग्राहम के मोहता मार्केट पधारने पर लिया गया चित्र ।

कराची की बडी कोठी व कपडे की दुकानो के स्टाफ के मध्य मोहता जी सवत् १९७१

बाए से दाए (कुर्सी पर) श्री कृष्ण गोपाल जी ओझा, श्री लोकराम जी शिकारपुरी, श्री खुशीराम जी गावा, श्री गोविन्ददास जी डागा, श्री राम गोपाल जी मोहता, राय बहादुर श्री गोवर्धन दास जी मोहता (उनकी गोद मे चि० गिरधर लाल) रा० ब० शिवरतन जी मोहता, श्री राम रतन जी मूंदडा, श्री छबील दासजी चावला, श्री शिवगोपाल जी मूंदडा और श्री हेत चन्द जी सिन्धी, नीचे बीच मे बैठी हुई श्री शिवरतन जी की पुत्री स्वर्गीया सहोदरा बाई

कराची मे श्री बी० ग्रार हरमन की विदाई पर हरमन मोहता एड कम्पनी के भागीदार व कार्यकर्त्ता । मध्य मे श्री बी० ग्रार० हरमन, इनकी दाहिनी ग्रोर श्री मोहता जी व श्री इवार्ट हरमन । बाई ग्रोर श्री लिंडसे हरमन ग्रौर श्री चादरतन जी मूंदडा ।

६

व्यापार, व्यवसाय और उद्योग

व्यापार-व्यवसाय आपका वशानुगत अध्यवसाय था। आपके पिता जी ने उसको खूब चमकाया था। वीकानेर तो केवल जन्म स्थान था। व्यापार-व्यवसाय के लिए वहाँ कोई क्षेत्र नही था। जैसे राजस्थान के अन्य अनेक स्थानो से व्यापार व्यवसाय के निमित्त राजस्थानी अथवा मारवाडी समाज के साहसी और अध्यवसायी लोग देश मे दूर-दूर चारो ओर फैल गये, वैसे ही वीकानेर के भी कुछ साहसी और अध्यवसायी लोग देश मे चारो ओर पहुच गये। आज के रेल मोटर तथा हवाई जहाज और फोन, रेडियो तथा टेलीविजन आदि के युग के लोग उन दिनो के इन साहसी एवं अध्यवसायी लोगो के पुरुषार्थ की कल्पना भी नही कर सकते। इन्होने पैदल, ऊँटो व वैलगाडियो के सहारे व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र मे जो दिग्विजय की वह अत्यन्त विस्मयजनक है। तिलस्मी कहानी की तरह इनके अद्भुत् यात्रा विवरण भी अत्यन्त आश्चर्यप्रद हैं। कभी-कभी तो उनमे जादूगर की कहानियो का सा रोचक विवरण मिलता है। आपके पिता जी इसी प्रकार ऊँटो पर सवार होकर वीहड जगलो और सूखे रेगिस्तानो को पार कर वहावलपुर होते हुए कराची पहुचे थे। वहाँ उन्होने व्यापार-व्यवसाय द्वारा अपने को समृद्ध वनाने के साथ-साथ कराची नगर को भी अत्यन्त सम्पन्न वनाने मे यशस्वी भाग लिया। मोहता परिवार को वर्तमान कराची के निर्माताओ मे गिना जा सकता है। वहाँ के व्यापार-व्यवसाय को उन्नत वनाने, विशाल भवनो के निर्माण करने और समुद्र को पीछे धकेल कर वसाई गई वस्ती को आवाद करने का श्रेय आपके पिता जी को प्राप्त है। वहाँ का कपडा व्यवसाय और अत्यन्त विशाल कपडा मार्केट उनकी ही सूझ वूझ और अध्यवसाय के परिणाम थे। वी० आर० हरमन मोहता एड कम्पनी का विशाल लोहे का कारखाना और मोहता नगर की चीनी मिल तथा गन्ने की विशाल खेती तो आपके भाई राव वहादुर श्री शिवरतन जी की कल्पना और हिम्मत का परिणाम था।

कराची से मोहतो का व्यापार-व्यवसाय सारे पजाब, दिल्ली, कलकत्ता, वगाल, उत्तर प्रदेश और वम्वई तथा सारे उत्तरी भारत मे फैल गया। वाद मे अहमदावाद, मध्य भारत और राजस्थान के विविध स्थानो मे भी उसका फैलाव हुआ। औद्योगिक क्षेत्र मे मोहतो की भी धाक जम गयी और देश के विविध स्थानो मे निर्माण (कस्ट्रक्शन) के अनेक बडे-से-वडे ठेके लिये गये। कोयला और अभ्रक की खानो का काम भी मोहतो ने अपने हाथ मे लिया। अनेक उद्योग शुरू किये गये। औद्योगिक क्षेत्र मे मोहता नाम को चमकाने का श्रेय आपको और आपके साहसी भाई श्री शिवरतन जी को है। देश मे व्यापारी, व्यवसायी और औद्योगिक क्षेत्र मे जो नाम प्रमुख रूप से लिये जाते हैं उनमे मोहता नाम भी अपना स्थान रखता है।

व्यापार-व्यवसाय की शिक्षा दीक्षा

आपका अपना वशानुगत व्यापार-व्यवसाय, मुख्यत कपडे और सराफे का था। उसकी शिक्षा-दीक्षा आपने पिता जी के साथ रह कर कराची मे क्रियात्मक रूप से प्राप्त की थी। आज की तरह व्यापार की शिक्षा देने वाले न कोई विद्यालय अथवा महाविद्यालय थे और न सरकार की ओर से उनकी शिक्षा अथवा प्रशिक्षा देने के लिए कोई ऐसा प्रवन्ध था। पडितो व पाधो की चटसाल मे गिनती, पहाडे और जोड-वाकी करना सीख लेने वाले युवक अपने पूर्वजो की दुकानो पर वैठकर व्यापार व्यवसाय की शिक्षा-दीक्षा लेकर उसमे जैसे निष्णात वन

जाते थे उसका एक उत्कृष्ट उदाहरण आपकी व्यापार व्यवसाय मे प्राप्त की गयी कुशलता और सफलता है। कराची की दुकान मे उठते-बैठते धीरे-धीरे आपने रोकड, वहीखाते, आढतियो के पर्चों के भुगतान और रोजमर्रा के लेन-देन की खतावणी करते-करते अपने को अपने सारे व्यापार-व्यवसाय का सचालक बना लिया और सारे काम-काज पर नियन्त्रण कर लिया। अगरेजी मे साधारण स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यापारिक पत्र-व्यवहार का अगरेजी मे जो अभ्यास किया वह भी इसी प्रकार दुकान मे उठते-बैठते और अगरेज कर्मचारियों के सम्पर्क मे आते हुए किया था। विशेष कुशलता, चतुराई और दूरदर्शिता से काम लेना छोटी ही अवस्था मे शुरू कर दिया था और पिता जी को आप पर इतना भरोसा हो गया था कि वे कराची का सारा काम आप पर छोड कर महीनो के लिए कराची से बीकानेर अथवा अन्य स्थानो पर चले जाते थे।

कराची मे काम-काज का विस्तार

सवत् १९४० के लगभग की घटना है। विलायत मे मेचेस्टर मे एफ० स्टेनर कम्पनी का लाल कपडा और छीट, चुनडी आदि छापने का बडा कारखाना था। यह माल वह कम्पनी हिन्दुस्तान मे बहुत बडी मात्रा मे बेचती थी। कलकत्ते मे उसका माल बेचने का काम कारतारक कम्पनी करती थी जिसमे श्री तारक नाथ सरकार, उनके बेटे और स्टेनर कम्पनी के बडे मैनेजर जेम्स कार के भाई हैनरी कार साझेदार थे। श्री जेम्स कार ने अपने कलकत्ता आफिस को लिखा कि कराची का बन्दरगाह शीघ्र ही बहुत उन्नति करेगा। सिंध, पजाब, मारवाड और काठियावाड आदि का व्यापार वहाँ से होगा। उधर लाल कपडे की खपत अच्छी है, वहाँ अपना दफ्तर कायम किया जाना चाहिए। इसलिए वहाँ जाकर उसकी व्यवस्था करो। तब कलकत्ता से तारक नाथ सरकार, उनके बेटे श्री नलिन विहारी सरकार और हेनरी कार साहब कराची गये। दलाल के बिना उनका काम नही चल सकता था इसलिए उन्होने श्री जगन्नाथ जी और श्री गोवर्धन दास जी को अपने साथ चलने के लिए कहा। उन दिनो मे शिवदास जी, जगन्नाथ जी, लक्ष्मी चन्द जी और गोवर्धनदास जी, चारो भाई काम-काज मे शामिल थे परन्तु श्री शिवदास जी और श्री लक्ष्मीचन्द जो बीकानेर रहने लग गये थे। श्री जगन्नाथ जी और गोवर्धनदास जी दोनो ही बडे साहसी और दूरदर्शी थे। उनको काम बढाने का भी बडा शौक था। श्री जगन्नाथ जी ने स्वय कलकत्ता रहना आवश्यक समझ कर गोवर्धनदास जी को उनके साथ कराची भेज दिया। वश परिचय के विवरण मे विदेशी कम्पनियो के काम-काज की उन दिनो की पद्धति के सम्बन्ध मे काफी प्रकाश डाला गया है। उनका काम दलालो के बिना नही चलता था। कराची के काम के लिए भी दलालो की आवश्यकता थी। मोहता कारतारक कम्पनी के कलकत्ता मे परखे हुए अपने दलाल थे। वे लोग कराची मे काम शुरू करने का निश्चय करके कलकत्ता लौट आये।

स्टेनर वालो का अपना आदमी डब्लु० बी० जेमसन कलकत्ता मे काम करता था। उसको और गोवर्धनदास जी को कराची भेजना तय किया गया। कारतारक कम्पनी की शाखा वहाँ खुल गयी और गोवर्धनदास जी ने भी शिवदास गोवर्धन दास के नाम से अपने सराफे की दुकान खोल ली। वे कारतारक कम्पनी के गारटी ब्रोकर अथवा बेनियन मुकर्रर हुए। कराची मे मोहतो के काम-काज का श्री गणेश यही से हुआ और उसमे आशातीत व कल्पनातीत सफलता मिली। लाल कपडा खूब चल निकला और खासी आमदनी होनी शुरू हुई। डब्लु० बी० जेमसन बडा दूरदर्शी और स्नेही व्यक्ति था। गोवर्धनदास जी को उसने परामर्श दिया कि कराची खूब उन्नति करेगा, जमीन खरीद कर मकान बनाने मे बडा लाभ होगा। उसके परामर्श पर गोवर्धन दास जी ने फर्म की आर्थिक स्थिति के अनुसार जमीन जगह खरीदनी शुरू की। चार ही वर्षो मे स० १९४४ में इतना बडा मकान बना लिया कि उसमे सकुटुम्ब रहने लगे और अपनी गद्दी तथा कारतारक कम्पनी के आफिस के अतिरिक्त माल के गोदाम भी उसी मे हो गये।

कारतारक कम्पनी के भागीदार मि० डब्लु० वी० जेमसन साहव और वावू नलिन विहारी सरकार सवत् १९५६ मे मोहता वन्धुओ से मिलने के लिए बीकानेर आए ।

बैठे हुए बाए से दांए—सेठ लक्ष्मीचन्द जी मोहता, सेठ शिवदास जी मोहता, मि० डब्लु० वी० जेमसन, वावू नलिन विहारी सरकार (सुपुत्र वावू तारकनाथ सरकार), सेठ जगन्नाथ जी मोहता

खडे हुए (पहली पक्ति) बांए से दाए—सेठ शिवरतन जी मोहता, सेठ गोवर्धन दास जी मूंदडा, राय वहादुर सेठ मदन गोपाल जी मोहता, (सुपुत्र सेठ जगन्नाथ जी) सेठ गगादास जी मोहता (सुपुत्र सेठ शिवदास जी), सेठ सोहन लाल जी मोहता (सुपुत्र सेठ लक्ष्मी चन्द जी),

खडे हुए (दूसरी पक्ति) बांए से दाए—सेठ रामगोपाल जी मोहता, सेठ कन्हैया लाल जी (सुपुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द जी मोहता)

जाते थे उसका एक उत्कृष्ट उदाहरण आपकी व्यापार व्यवसाय मे प्राप्त की गयी कुशलता और सफलता है। कराची की दुकान मे उठते-बैठते धीरे-धीरे आपने रोकड, बहीखाते, आढतियो के पर्चों के भुगतान और रोजमर्रा के लेन-देन की खतावणी करते-करते अपने को अपने सारे व्यापार-व्यवसाय का सचालक वना लिया और सारे काम-काज पर नियन्त्रण कर लिया। अगरेजी मे साधारण स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यापारिक पत्र-व्यवहार का अगरेजी मे जो अभ्यास किया वह भी इसी प्रकार दुकान मे उठते-बैठते और अगरेज कर्मचारियो के सम्पर्क मे आते हुए किया था। विशेष कुशलता, चतुराई और दूरदर्शिता से काम लेना छोटी ही अवस्था मे शुरू कर दिया था और पिता जी को आप पर इतना भरोसा हो गया था कि वे कराची का सारा काम आप पर छोड कर महीनो के लिए कराची से बीकानेर अथवा अन्य स्थानो पर चले जाते थे।

कराची मे काम-काज का विस्तार

सवत् १९४० के लगभग की घटना है। विलायत मे मेचेस्टर मे एफ० स्टेनर कम्पनी का लाल कपडा और छीट, चुनडी आदि छापने का वडा कारखाना था। यह माल वह कम्पनी हिन्दुस्तान मे वहुत वडी मात्रा मे वेचती थी। कलकत्ते मे उसका माल वेचने का काम कारतारक कम्पनी करती थी जिसमे श्री तारक नाथ सरकार, उनके बेटे और स्टेनर कम्पनी के बडे मैनेजर जेम्स कार के भाई हैनरी कार साझेदार थे। श्री जेम्स कार ने अपने कलकत्ता आफिस को लिखा कि कराची का बन्दरगाह शीघ्र ही बहुत उन्नति करेगा। सिंध, पजाव, मारवाड और काठियावाड आदि का व्यापार वहाँ से होगा। उधर लाल कपडे की खपत अच्छी है, वहाँ अपना दफ्तर कायम किया जाना चाहिए। इसलिए वहाँ जाकर उसकी व्यवस्था करो। तव कलकत्ता से तारक नाथ सरकार, उनके बेटे श्री नलिन विहारी सरकार और हेनरी कार साहव कराची गये। दलाल के विना उनका काम नही चल सकता था इसलिए उन्होने श्री जगन्नाथ जी और श्री गोवर्धन दास जी को अपने साथ चलने के लिए कहा। उन दिनो मे शिवदास जी, जगन्नाथ जी, लक्ष्मी चन्द जी और गोवर्धनदास जी, चारो भाई काम-काज मे शामिल थे परन्तु श्री शिवदास जी और श्री लक्ष्मीचन्द जो बीकानेर रहने लग गये थे। श्री जगन्नाथ जी और गोवर्धनदास जी दोनो ही बडे साहसी और दूरदर्शी थे। उनको काम वढ़ाने का भी बडा शौक था। श्री जगन्नाथ जी ने स्वय कलकत्ता रहना आवश्यक समझ कर गोवर्धनदास जी को उनके साथ कराची भेज दिया। वश परिचय के विवरण मे विदेशी कम्पनियो के काम-काज की उन दिनो की पद्धति के सम्बन्ध मे काफी प्रकाश डाला गया है। उनका काम दलालो के विना नही चलता था। कराची के काम के लिए भी दलालो की आवश्यकता थी। मोहता कारतारक कम्पनी के कलकत्ता मे परखे हुए अपने दलाल थे। वे लोग कराची मे काम शुरू करने का निश्चय करके कलकत्ता लौट आये।

स्टेनर वालो का अपना आदमी डव्लु० बी० जेमसन कलकत्ता मे काम करता था। उसको और गोवर्धनदास जी को कराची भेजना तय किया गया। कारतारक कम्पनी की शाखा वहाँ खुल गयी और गोवर्धनदास जी ने भी शिवदास गोवर्धन दास के नाम से अपने सराफे की दुकान खोल ली। वे कारतारक कम्पनी के गारटी ब्रोकर अथवा वेनियन मुकर्रर हुए। कराची मे मोहतो के काम-काज का श्री गणेश यही से हुआ और उसमे आशातीत व कल्पनातीत सफलता मिली। लाल कपडा खूव चल निकला और खासी आमदनी होनी शुरू हुई। डव्लु० वी० जेमसन वडा दूरदर्शी और स्नेही व्यक्ति था। गोवर्धनदास जी को उसने परामर्श दिया कि कराची खूव उन्नति करेगा, जमीन खरीद कर मकान वनाने मे बडा लाभ होगा। उसके परामर्श पर गोवर्धन दास जी ने फर्म की आर्थिक स्थिति के अनुसार जमीन जगह खरीदनी शुरू की। चार ही वर्षों मे स० १९४४ में इतना बडा मकान वना लिया कि उसमे सकुटुम्व रहने लगे और अपनी गद्दी तथा कारतारक कम्पनी के आफिस के अतिरिक्त माल के गोदाम भी उसी मे हो गये।

कारतारक कम्पनी के भागीदार मि० डब्लु० वी० जेमसन साहव और वावू नलिन विहारी सरकार सवत् १९५६ मे मोहता बन्धुओ से मिलने के लिए बीकानेर आए।

वैठे हुए वाए से दाए—सेठ लक्ष्मीचन्द जी मोहता, सेठ शिवदास जी मोहता, मि० डब्लु० वी० जेमसन, वावू नलिन विहारी सरकार (सुपुत्र वावू तारकनाथ सरकार), सेठ जगन्नाथ जी मोहता,

खड़े हुए (पहली पक्ति) वाए से दाए—सेठ शिवरतन जी मोहता, सेठ गोवर्धन दास जी मूंदडा, राय वहादुर सेठ मदन गोपाल जी मोहता, (सुपुत्र सेठ जगन्नाथ जी) सेठ गगादास जी मोहता (सुपुत्र सेठ शिवदास जी), सेठ सोहन लाल जी मोहता (सुपुत्र सेठ लक्ष्मी चन्द जी),

खड़े हुए (दूसरी पक्ति) वांए से दाए—सेठ रामगोपाल जी मोहता, सेठ कन्हैया लाल जी (सुपुत्र सेठ लक्ष्मीचन्द जी मोहता)

एफ० स्टेनर कम्पनी मैंचेस्टर के बडे मैनेजर श्री गिल साहब के बीकानेर आने पर लिया गया चित्र।
बाँए से कुर्सी पर—(१) मोहता जी के ताऊजी श्री लक्ष्मीचन्द जी (२) श्रीमती गिल (३) श्रीमान गिल (४) ताऊजी श्री जगन्नाथ जी (५) पिताजी श्री गोवर्धनदासजी (गोद मे) श्री गिरधरलाल

गोवर्धनदास जी ने वम्वई जाकर वहाँ भी शिवदास जगन्नाथ के नाम से सराफी और आढत की दुकान स्थापित की। कराची और कलकत्ता दोनो का वम्वई के साथ वहुत सम्बन्ध था। कुछ समय वाद अमृतसर मे शिवदास गोवर्धनदास के नाम से काम शुरू किया गया।

सम्वत् १६४६ मे शिवदास जी ने अपना अलग काम कर लिया और सम्वत् १६५६ मे जगन्नाथ जी भी अलग हो गये, परन्तु लक्ष्मीचन्द जी गोवर्धनदास जी शामिल रहे और वटवारा होने के वाद कलकत्ता का काम जगन्नाथ जी ने अपने पास रखा और पजाव, वम्वई तथा कराची आदि का काम लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी के नाम हो गया। कराची मे मारकेट और मकान आदि की जायदाद वहुत फैल गयी थी, उसका वटवारा आपस मे पहले ही कर लिया गया था, अलग-अलग होने का यह सारा काम इतने प्रेम से निपटाया गया कि उसका किसी को पता भी न चला।

संवत् १६६४ मे लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी भी अलग-अलग हो गये। कराची का सारा काम गोवर्धन दास जी और वम्वई व पजाव का सारा काम लक्ष्मीचन्द जी के हिस्से रहा। कराची मे वडी दुकान का नाम मोतीलाल गोवर्धनदास और कपडे की दुकानो का नाम गोवर्धनदास रामगोपाल तथा रामगोपाल शिव रतन रखा गया। वम्वई की दुकान का नाम लक्ष्मीचन्द कन्हैयालाल और पजाव की दुकानो का नाम लक्ष्मीचन्द मोहनलाल रखा गया। यह वटवारा भी वडे प्रेम से हो गया। देशावरो से प्राप्त हुआ हिसाव-किताव विना किसी आपत्ति के वहीखातो मे दर्ज कर लिया गया। परिवार के लिए यह वड़ी शोभा थी कि कभी भी किसी वात पर आपस मे कोई कलह, खीचतान अथवा मतभेद नही हुआ।

आपके फूफे श्री गोवर्धनदास जी मूंधडा कराची, पजाव और दिल्ली के व्यापारिक काम-काज मे साझेदार थे। संवत् १६६२ मे उनका देहान्त हुआ तव उनके दो पुत्र रामरतन जी और चाँदरतन जी नावालिग थे। उनका हिस्सा ज्यो का त्यो रखा गया और दोनो को अपनी सभाल मे रखा और काम-काज में निपुण किया गया।

सवत् १६५६ मे कराची मे आपके पिता जी ने एलिगर मोहता कम्पनी कायम करके नया काम शुरू करने का निश्चय किया। उसके लिए आपको वीकानेर से कराची वुलाया गया। एलिगर साहव के विलायत जाने पर उसके मैनेजर का काम पिता जी ने आपको सौंपा। अगरेजी की उच्च शिक्षा की परीक्षा पास न होते हुए भी आपने विलायती आढतियो के साथ अगरेजी मे किया जाने वाला पत्र-व्यवहार वडी योग्यता के साथ किया और कम्पनी का सारा काम खूव अच्छी तरह सम्भाल लिया। इस प्रकार पजाव और कराची का सारा काम-काज आप सम्भालने लग गये।

कराची मे आर्थिक सकट

सम्वत् १६६६-७० मे कराची के वाजार मे आर्थिक स्थिति वडी विकट हो गयी। नगद रकम का मिलना मुश्किल हो गया। रुई व अनाज के सिन्धी व्यापारियो को वहुत कठिनाई का सामना करना पडा। श्री खेमचन्द्र ईश्वरदास नाम की वहुत पुरानी फर्म पर वहुत वडा सकट आया। तव उससे आपने मारकेट के सामने वन्दर रोड वाला उसका वडा मकान २ लाख ८० हजार मे खरीद लिया। वही मकान दो वर्षो वाद ४ लाख ७५ हजार मे कपडे के व्यापारियो को इस शर्त पर वेच दिया गया कि वहाँ कपड़े का ही मार्केट वनाया जाए। इससे आप के कपडे के मार्केट का महत्व और भी अधिक वढ गया। वह कपड़े के व्यापार का मुख्य केन्द्र वन गया। चारो ओर रुपये की तेजी और सकट होने पर भी आप के यहाँ रुपये की कमी नही थी। इससे व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र मे आप की साख वहुत वढ गयी।

सट्टे फाटके का काम आप की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल था। इसलिए आपने शेयरो, सोने-चाँदी, रुई या अन्य किसी पदार्थ का सट्टा फाटका नही किया और सबको, विशेष कर अपने कुटुम्व वालो को भी, उससे रोकते रहे।

बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी

सम्वत् १९७६ के जेठ मे बी० आर० हरमन साहब ने अपनी बी० आर० हरमन कम्पनी के लोहे के कारखाने मे हिस्सा करने के लिए श्री शिवरतन जी से कहा और उन्होंने आपकी स्वीकृति माँगी। इससे पहले किसी वडे उद्योग मे आपने हाथ न डाला था। परन्तु वैसा काम करने की इच्छा अवश्य थी। आप ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। ११ लाख की पूंजी से प्राइवेट लिमिटेड कपनी बी० आर० हरमन एण्ड मोहता लिमिटेड के नाम से वनाई गई और वह कारखाना इसी कम्पनी के नाम से खरीद लिया गया। शुरू मे इसके ५ लाख ७५ हजार के शेयर अलग-अलग नामो से आपके फर्म मे लिये गये। बी० आर० हरमन साहब वृद्धावस्था के कारण इगलैड चले गये। वह कुछ शेयर अपने वडे लडके लिंडसे हरमन और ५० हजार के शेयर छोटे लडके एवर्ट हरमन के नाम कर गये। कुछ अपने नाम रख लिये। बाद मे उसके शेयर आप ने खरीद लिये। लिंडसे हरमन के मरने पर उसके शेयर भी उसकी स्त्री से खरीद लिये गये। इस प्रकार कुल मिलाकर १० लाख ५० हजार के शेयर आप लोगो के हाथ मे अलग-अलग नाम से आ गये। आप के छोटे भाई श्री शिवरतन जी और फूफेरे भाई रामरतन जी मूंघडा ने वडे उत्साह व लगन से कम्पनी का काम चलाया।

मोटरो का काम और आर्थिक सकट

लोहे के कारखाने के साथ-साथ अमरीका और इगलैड की अनेक मोटर-कम्पनियो की एजेन्सियाँ भी ली गयी। ईरान और अफगानिस्तान से मोटरो के बहुत से आर्डर मिलने के कारण सैकडो मोटरो के आर्डर इगलैड और अमरीका को दे दिये गये। मोटरो का काम कराची मोटर कार कम्पनी के नाम से बी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी के अतर्गत एक विभाग के रूप मे किया गया। यह काम लिंडसे हरमन के अधीन था। वह बहुत उतावला, हठी, अभिमानी और उद्दड प्रकृति का था। वह बिना विचारे मोटरो का आर्डर देता गया और विना मुद्दत का क्रेडिट खोलता गया। अमरीका वालो ने मोटरो का चलान टाइम पर नही किया और यहाँ वाजार बहुत मन्दा हो गया। बाजार मे माँग नही रही। गोदामो मे माल इकट्ठा होगया। बैंको की विल्टियाँ छुडानी मुश्किल हो गयी। मोटरो की बहुत बडी सख्या गले मे रह गयी। बडी विकट स्थिति पैदा हो गयी। माल पर डेमरेज खूब पडने लगा। श्री शिवरतन जी और श्री रामरतन जी बडी चिन्ता मे फँस गये। दूसरी ओर कपडे का काम भी खूव वढ गया। विलायती हुडी का भाव गिर जाने से कपडे की कीमतें बहुत गिर गयी थी। इसलिए लोगो ने सस्ता भाव देखकर बडे-वडे आर्डर दिये थे। पर भाव और अधिक गिर गया। दिल्ली के व्यापारियो ने झगडे खडे करके डिलीवरी नही ली। रुपये पैंमे की वहुत तगी होजाने से बडी विकट स्थिति का सामना करना पडा। मान-प्रतिष्ठा का बना रहना भी कठिन हो गया। श्री शिवरतन जी कराची की स्थिति को सभालने मे जुटे रहे और श्री रामरतन जी ने दिल्ली जाकर वहाँ की स्थिति को सभाला।

तीसरी मुसीवत यह थी कि कराची मे जमीन का सट्टा वहुत जोर का चला था। श्री शिवरतन जी और श्री रामरतन जी ने गार्डन क्वार्टर, ट्रेंसलियारी क्वार्टर और मलीरड्रिग रोड मे बहुत सी जमीन बहुत ऊँचे भाव पर खरीदी थी। उनमे वहुत रकम उलझ गयी थी। भीखणचन्द गगादास और बद्रीदास मोहनलाल मे आपकी योक रकमे लेनी थी। उन्होंने ऊँची कीमत पर वहुत सी जमीनें खरीदी थी। उस रकम के बदले मे ये

स्वर्गीय सेठ गोवर्द्धनदासजी मूँदडा

स्वर्गीय श्री रामरतन जी मूँदडा

श्री चाँदरतनजी मूदडा

श्री दुर्गादासजी मूंदडा
सुपुत्र श्री रामरतनजी मूदडा

श्री देवकिशनजी मूंदडा
सुपुत्र श्री दुर्गादास जी मूदडा

श्री श्रीरतन मूदडा
सुपुत्र श्री देवकिशनजी मूदडा

जमीनें आप के ही गले पडी। यह इतना वडा सकट था कि घर के सभी लोग चिन्तित रहने लगे। रामरतन जी तो दिल की वीमारी से पीडित होकर वीकानेर चले आये। वहाँ अच्छे से अच्छे इलाज किये गये, कुछ सुधार हुआ। किन्तु स० १९७७ की दीवाली के १५ दिन वाद उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु की आप के दिल पर वडी चोट लगी और आप स्वय विकट स्थिति का सामना करने के लिये कराची पहुँचे।

विकट स्थिति का सामना

वहाँ पहुँचकर आपने लिंडसे की हरकतो पर नियन्त्रण किया। वृद्ध हरमन वहुत ही भला आदमी था। वह आपकी वात कभी नही टालता था। उसकी मार्फत आपने उसके लडके की उद्दडता की रोक थाम की। मोटरो के वहुत से आर्डर अमरीका तार देकर रद्द किये गये। धीरे-धीरे काम को समेटा गया। कराची मे वी० आर० हरमन एण्ड मोहता लिमिटेड की मैनेजिंग एजेन्सी मे लारियाँ और मोटर गाडियाँ चलाने के लिए एक पव्लिक लिमिटेड कम्पनी कायम की गयी थी। वहुत से साधारण आदमियो ने भी उसके हिस्से खरीदे थे। वह वहुत नुकसान मे चली और सारी रकम डूव गयी। गरीव लोगो का यह नुकसान आपको सहन नही हुआ। आपने उसके हिस्सो की पूरी रकम चुकाने की घोषणा कर दी। ५० हजार के हिस्सो की रकम वापस की गयी। इससे आपका वडा नाम हुआ और प्रतिष्ठा वहुत वढ गयी।

पहले वर्ष तो वी० आर० हरमन एण्ड मोहता कम्पनी के काम मे वडा लाभ हुआ किन्तु दूसरे वर्ष मे इस सकट के कारण ऐसी विपरीत स्थिति पैदा हो गयी कि उसको सभालने मे कई वर्ष लग गये। लिंडसे की मृत्यु के वाद सारा काम-काज आप के हाथ मे आने पर कम्पनी का काम फिर चमक उठा। आप के धैर्य व साहस और श्री शिवरतन जी की कार्य-कुशलता व अथक परिश्रम के कारण कम्पनी और कारखाने का देश के लोहे के उद्योग मे प्रमुख स्थान वन गया। स्वर्गीय आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय स्वदेशी उद्योग धन्धो के प्रमुख पुरस्कर्ता थे। सन् १९३१ मे आप के इस कारखाने को देखकर उन्होने मोहता वन्धुओ को औद्योगिक क्षेत्र मे "आयरन किंग" कहा था। इस विकट आर्थिक सकट मे आप ने जिस धैर्य, विश्वास और साहस का परिचय दिया उसकी जितनी प्रशसा की जाए थोडी है। अन्यथा जिस परिस्थिति का सामना कम्पनी और कारखाने को करना पडता उसकी कल्पना करना कठिन नही है।

लगभग ५० वर्षों की आयु के वाद आपने शनै-शनै व्यापार, व्यवसाय के कामो से अवकाश लेना आरम्भ किया और अनुमानत. ६० वर्ष की आयु मे काम-काज का सारा भार छोटे भाई शिवरतन जी पर छोड़ कर आप ने पूरा अवकाश ले लिया, समय-समय पर केवल परामर्श देते रहे।

चीनी मिल

सम्वत् १९९० मे राव वहादुर श्री शिवरतन जी ने सिंध मे चीनी की मिल स्थापित करने का आयोजन किया और हैदरावाद के मुखी गोविन्दराम प्रीतमदास के साथ मिलकर उनके गाँव प्रीतमावाद मे मिल स्थापित करने का निश्चय किया। "पायोनियर सिन्ध शूगर मिल कम्पनी लिमिटेड" के नाम से एक पव्लिक लिमिटेड कम्पनी कायम की गयी और कम्पनी की ओर से तीन हजार एकड जमीन गन्ने की खेती के लिए श्री गोविन्द राम से खरीदी गयी। इसमे वडी भूल यह हुई कि स्थान का चुनाव सोच-विचार करके नही किया गया था। रेलवे लाइन न होने से माल की ढुलाई मे वड़ी दिक्कतो का सामना करना पडा। कुछ कठिनाइयाँ चीनी मिल का अनुभव न होने के कारण भी उठानी पडी। मैनेजिंग एजेन्सी "मोहता मुखी कम्पनी लिमिटेड" नाम की थी जिसको दोनो के साझे मे कायम किया गया था। घाटा वहुत होने से मुखी गोविन्दराम ने अपना हाथ खीच

लिया। उसके सारे शेयर आप ने खरीद लिये और कम्पनी का नाम बदल कर "मोहता कम्पनी लिमिटेड" और गाँव का नाम भी बदल कर "मोहता नगर" कर दिया गया। श्री शिवरतन जी के उद्योग से कई वर्ष तक मिल का काम बहुत सफलतापूर्वक चला। रेल की लाईन भी बन गयी। गन्ने की खेती के लिए और जमीन खरीदी गयी। एक ओर हूरो के उत्पात बहुत बढ गये और दूसरी ओर सिन्ध को बम्बई से पृथक् करके स्वतन्त्र प्रान्त बना दिया गया। उस समय आप को यह स्पष्ट कल्पना हो गयी कि सिंध मे मुसलमानी राज्य कायम होकर पाकिस्तान बन जाएगा और हिन्दुओ का जीवन निर्वाह अथवा व्यापार व्यवसाय करना वैसा सुगम न रहेगा। इसलिए आप ने शिवरतन जी को वहाँ से अपना काम समेटने का परामर्श दिया। मिल और खेती की जमीन सब बेच दी गयी।

कराची छोडने के बाद भी व्यापार-व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र मे आप की सूझ-बूझ और भाई पुत्र आदि परिवार के अथक परिश्रम के कारण आपका यश और मोहतो की कराची वाली प्रतिष्ठा वैसी ही बनी हुई है। हरमन मोहता इन्डिया लिमिटेड का काम कराची से भी अधिक वृद्धि पर है और लोहे के इम्पोर्टर्स मे इस फर्म का नम्बर पहला है। इस फर्म का हेड आफिस बम्बई व शाखाएँ कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, अम्बाला, जयपुर, पूना, राजकोट और गान्धी ग्राम यानी कादला पोर्ट आदि कई स्थानो पर कायम हैं। देश के प्रमुख व्यवसायियो और उद्योगपतियो मे मोहतो का नाम वैसा ही चमक रहा है।
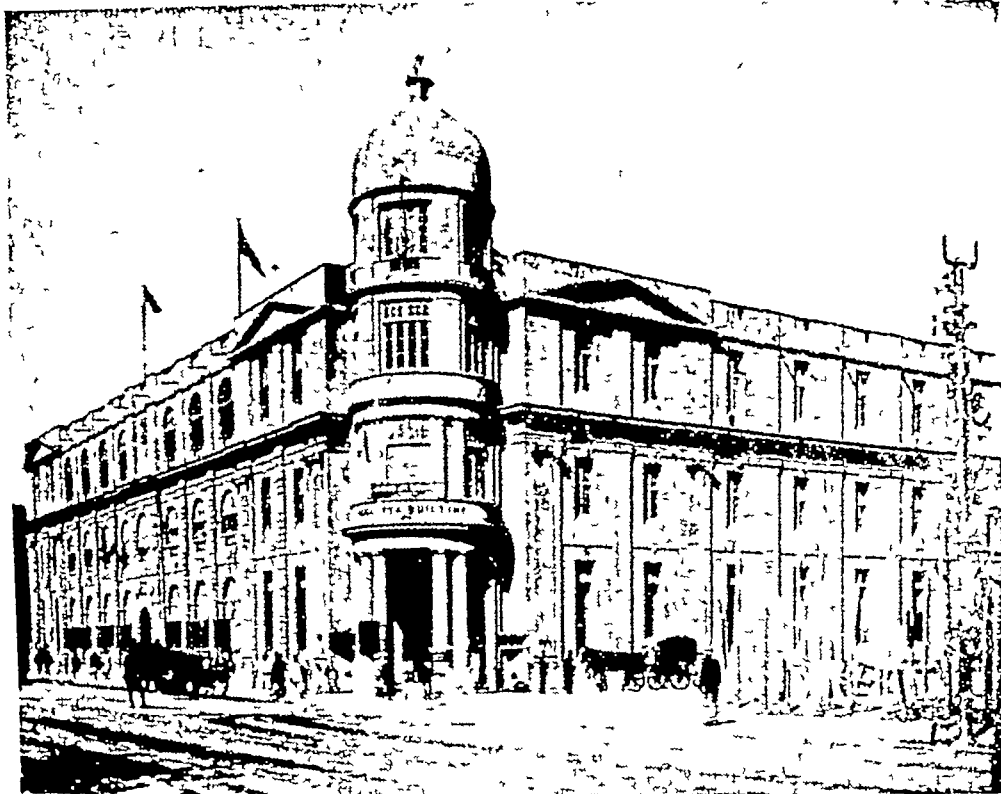
मोहता बिल्डिग मॅक्लियड रोड, कराची ।
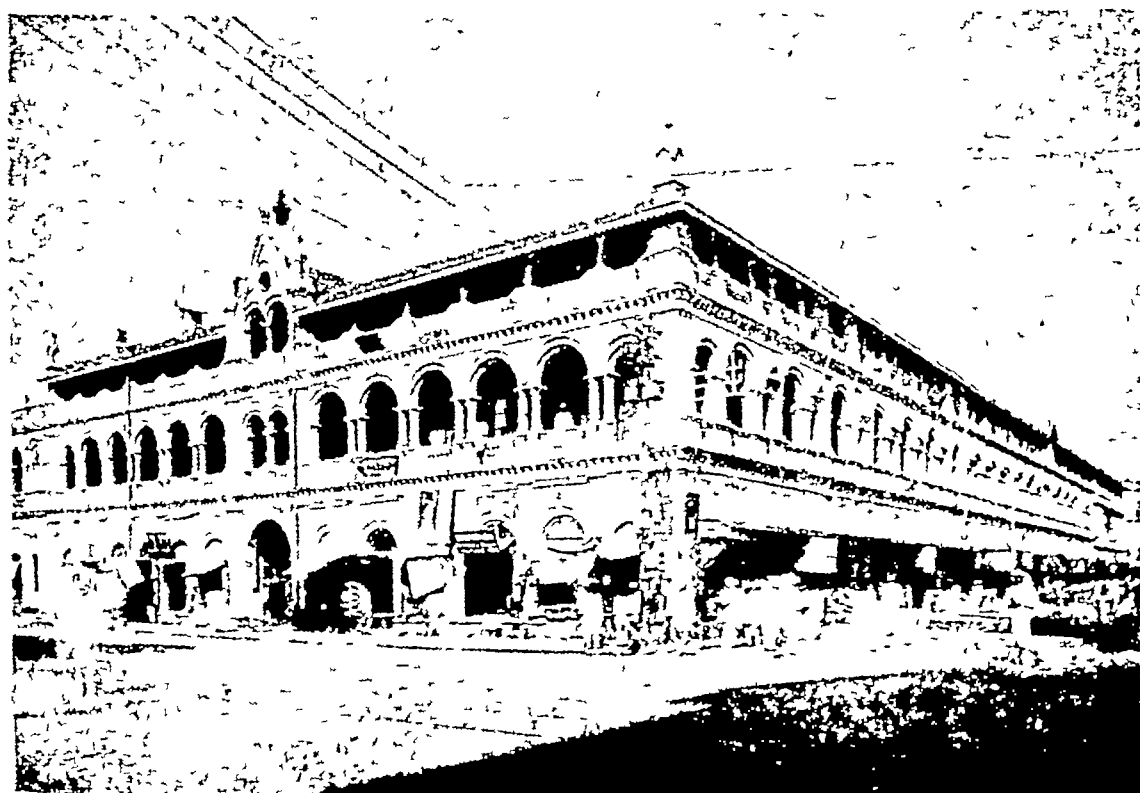
राव वहादुर गोवरधन दास मोती लाल मोहता
कपड़ा मार्केट कराची का वाहरी भाग ।

राव बहादुर गोवरधनदास मोतीलाल मोहता कपडा मारकेट, पालटन रोड, बम्बई—सन् १९५४

७

समाज सुधार और सेवामयी साधना

साधना आपके कर्मठ व क्रियाशील जीवन के लिए पर्यायवाची शब्द बन गया है। सामाजिक सुधार, साहित्य सृजन और सार्वजनिक सेवा आदि सभी कार्य आपने साधना के ही रूप मे सम्पन्न किये हैं। जन सेवा और लोक कल्याण की भावना पूर्वजो की देन है परन्तु आपने उसको आधुनिक रूप देकर बहुत व्यापक बना दिया। कभी मृतक भोज, बिरादरी भोज, ब्रह्मभोज और साधु सतो की सेवा आदि के कार्य भी समाज की ही सेवा समझे जाते थे। किन्तु आधुनिक काल के साथ उनका कोई मेल नही है। आपने जब यह अनुभव किया तब वश-परम्परागत लोकसेवा की भावना का रूप बदल दिया और उन कार्यो मे खर्च की जाने वाली विशाल धन राशि का विनियोग अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी कार्यो मे करना प्रारम्भ कर दिया। आपके घर अथवा परिवार वालो ने तथा आपके पिता जी ने भी आपके साथ सदैव अपनी सहमति प्रकट की और उन सब की अनुमति से आप लोक कल्याण के कार्यो मे अपने ढग से अग्रसर होते रहे परन्तु रूढिपथी धर्मान्ध जनता की ओर से आप को बडे से बडे विरोध, निन्दा, आलोचना तथा गर्हित से गर्हित आक्षेपो का भी सामना करना पडा। बीकानेर की साधारण जनता विशेषत पुष्करणा ब्राह्मण समाज और राजपूत ठाकुर बहुत ही पुराने विचारो के अनुदार, दकियानूसी और रूढिपथी थे। पुष्करणा ब्राह्मणो का प्रभाव सारी जनता पर छाया हुआ था और राजपूत ठाकुरो का शासन मे विशिष्ट स्थान था। स्वर्गीय महाराजा गगासिह जी तथा अन्य शासको पर भी उनका प्रभाव जमा हुआ था। सामान्य रूप से बीकानेर का वातावरण प्रतिक्रियावादी था। किसी भी नयी बात को शुरू करना बडा कठिन था। इसी कारण न तो जनता में अनुकूलता थी और न शासन में। दोनो की ओर से उपेक्षा का ही नही; किन्तु कडे विरोध का भी आपको सामना करना पडा। परन्तु आप मन में जो धार लेते थे उसको कार्य में परिणत करने मे किसी भी विरोध, निन्दा, आक्षेप अथवा आलोचना की परवाह नही करते थे। अपने सुनिश्चित मार्ग पर पूरी दृढता के साथ अग्रसर होते रहते थे। समाज सुधार और सार्वजनिक सेवा के दोनो ही क्षेत्रो मे आपने अलौकिक धैर्य, असीम दृढता और अटूट आत्म विश्वास का परिचय दिया। समाज सुधार और लोक-कल्याण की दोनो प्रवृत्तियाँ गाडी की पटरियो की तरह समानान्तर रूप से साथ-साथ चली और दोनो का निरन्तर विकास होता गया। बाहरी दृष्टि से समाज सुधार और समाज सेवा भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ समझी जाती हैं। आपके जीवन मे इन दोनो प्रवृत्तियो का समान रूप से विकास हुआ। दोनो को आपके जीवन के सतत प्रवाह के दो किनारे कहा जा सकता है। दोनो आपके लिए एक ही चित्र या सिक्के के दो बाजू है। आपके जीवन मे उनमे कोई अन्तर नही पाया जाता।

समाज सुधार की भावना पैदा होने के साथ ही आप मे समाज सेवा की प्रवृत्ति भी पैदा हुई। यह भी कहा जा सकता है कि समाज सेवा की भावना पैदा होने पर समाज सुधार की ओर आप प्रवृत्त हुए। गुण प्रकाशक सज्जनालय, मोहता मूलचन्द विद्यालय, भैरवरत्न मातृ पाठशाला, महिला मडल, वनिता आश्रम और जीताबाई मातृ सेवा सदन आदि की स्थापना तथा दुर्भिक्ष पीडितो की सेवा इत्यादि हमारे इस कथन के समर्थक हैं। होली पर डाडियो के खेल का पुनर्जीवन और परिष्कार भी इसी का सूचक है। महिलाओ के उद्धार और हरिजन सेवा के साथ भी यह सचाई जुडी हुई है। अकाल पीडितो की जो निरन्तर सहायता की गयी उसमे हरिजन सेवा तथा दलितो एव पीडितो के उद्धार की भावना विद्यमान थी। निष्क्रान्तो को बीकानेर मे आश्रय

देने मे भी हरिजनो की सेवा का मुख्य स्थान था। इस प्रकार आपका समस्त जीवन दोनो भावनाओ से ओतप्रोत रहा।

सवत् १९५८ मे जब गुण प्रकाशक सज्जनालय की स्थापना की गयी तव उसके पीछे विद्यमान मूलभूत भावना यही थी कि जनता मे सद्गुणो का विकास किया जाए, उसमे कुछ पढने लिखने की प्रवृत्ति पैदा की जाए और जो समय यो ही इधर उधर व्यर्थ की गप्पो और कामो मे नष्ट कर दिया जाता है उसका कुछ सदुपयोग किया जाए।

मोहता मूलचन्द विद्यालय और आदर्श समाज सुधार

सवत् १९६५ मे अपने छोटे भाई मूलचन्द मोहता की अकाल मृत्यु के बाद तीन धडा आदि कुछ न करके उसमे व्यय की जाने वाली पच्चीस हजार रुपये की धनराशि से उनकी स्मृति मे विद्यालय के स्थापित किये जाने की चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। यह महान कार्य भी दुमुखी था। एक ओर धर्मान्धताजन्य परपरागत रूढि का अन्त करके समाज सुधार के क्षेत्र मे एक वडा कदम उठाया गया तो दूसरी ओर शिक्षा प्रसार के द्वारा सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र मे कितना वडा काम किया गया? यह उल्लेखनीय है कि इस महान कार्य द्वारा आपने समाज सुधार और सार्वजनिक सेवा के दोनो क्षेत्रो मे जो पहल की वह सराहनीय पथ प्रदर्शक सिद्ध हुई। तीन धडे की जीमनवार ऐसी भयानक कुप्रथा थी जो समाज को घुन की तरह खा रही थी। धनी, श्रीमत, साहूकारो और राजघराने मे भी उसको वडप्पन की निशानी मानकर उस पर अनाप-शनाप खर्च किया जाता था और जिन ब्राह्मणो के लिए वह जीमनवार किया जाता था उनका वह घोर नैतिक व सामाजिक पतन करने वाली थी। श्रीमत लोग उसको अपना सामाजिक और धार्मिक कर्तव्य मानते थे, तो ब्राह्मण वर्ग उसको अपना धार्मिक अधिकार समझते थे। उस कर्तव्य से विमुख होकर समाज के गुरु माने गये वर्ग को उसके अधिकार से वचित करना साधारण साहस का काम नही था।

मोहता मूलचन्द विद्यालय के बीजारोपण के जो अकुर फूटे उन्होंने समाज सुधार और समाज सेवा के दोनो क्षेत्रो मे वट वृक्ष का रूप धारण कर लिया। दोनो क्षेत्रो मे उसकी जो शाखाए प्रशाखाएँ प्रस्फुटित हुई उनसे बीकानेर का रूप वदल गया। समाज सुधार और समाज सेवा के दोनो महान कार्यों का वह श्रीगणेश कैसा शुभ सिद्ध हुआ? उससे समाज सुधार के बडे बडे कार्यों के लिए मार्ग प्रशस्त बन गया और शिक्षा के क्षेत्र मे भी कितनी ही सार्वजनिक सस्थाएँ कायम हो गयी।

श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला

श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला भी श्री मोहता मूलचन्द विद्यालय का ही दूसरा रूप समझा जाना चाहिए। उसने जो कार्य पुरुषो की शिक्षा के लिए किया वही कार्य इस विद्यालय से महिलाओ की शिक्षा के क्षेत्र मे किया गया। तीन धडे की जीमनवार वन्द करके अपने अनुज श्री मूलचन्द जी की स्मृति मे जिस प्रकार उसकी स्थापना की गयी थी, ठीक उसी प्रकार अपनी पुत्री और धेवते की मृत्यु के बाद तीन धडे की जीमनवार न करके उनकी स्मृति मे इसकी स्थापना की गयी थी। अपने प्रियजनो की स्मृति इस रूप मे कायम करना भी समाज सुधार और समाज सेवा का वहुत वडा काम था।

कुप्रथा का सदा के लिए अत

आपके परिवार के युवको ने तीन धडे की जीमनवार की परम्परागत सामाजिक कुप्रथा के विरुद्ध सबसे

पहले कदम उठाया । श्री लक्ष्मीचन्द जी का परिवार काफी बडा था और उनको प्राय इस कुप्रथा के लिए विवश होना पडता था । इसलिए उनका मन भी बडा दुखी था और वे इसको बन्द करने के समर्थक थे । यद्यपि आपके छोटे भाई मूलचन्द जी की मृत्यु के बाद ही इसको बन्द करने का शुभ श्रीगणेश आपने कर दिया था, किन्तु सैंसोलाव के तालाब के झगडे के कारण जो परिस्थिति पैदा हुई उसमे ब्राह्मणो को और अधिक असन्तुष्ट करना उचित न समझ कर इस कुप्रथा के बन्द करने पर अधिक जोर नही दिया गया । शिवदास जी सवत् १९६७ के भादवें मे इतने बीमार हो गये कि उनके जीवन की कोई आशा न रही । सैंसोलाव के श्मशान मे दाह सस्कार करने पर राज्य ने रोक लगा दी थी । इसलिये स्पेशल ट्रेन का इतजाम करके उनको सपरिवार हरिद्वार ले जाया गया। वहाँ भादवा सुदी १५ को गगा के तट पर उनका स्वर्गवास हो गया । वहाँ से लौटकर उनके पीछे तीन घडे की जीमनवार करके दक्षिणा भी चुकाई गयी । १९६८ मे बुलाकीदास जी के देहान्त पर भी तीन घडे की जीमनवार करके दक्षिणा बाँटी गयी । अन्त मे इस कुप्रथा को बन्द करने का निश्चय किया गया । सवत् १९६९ मे इस कुप्रथा को बन्द करने के लिए एक वही मे प्रस्ताव लिख कर उस पर आपकी प्रेरणा से सब परिवार वालो ने हस्ताक्षर कर दिये । सब से पहला अवसर श्री शिवरतन जी मोहता की पहली पत्नी गिरधर लाल जी की माता के देहान्त का उपस्थित हुआ । उसकी तीन घडे की जीमनवार नही की गयी और दक्षिणा नही बाँटी गयी । कुछ ही समय बाद श्री लक्ष्मीचन्द जी का देहान्त हुआ । तब कुछ खलबली मची परन्तु परिवारके सब लोग अपने निश्चय पर दृढ रहे । उससे जो रकम बची उससे "अनाथ सहायक फंड" की स्थापना की गई । इस रकम के व्याजसे अनाथ स्त्रियो और बालको को सहायता दी जाने लगी । अधिकतर सहायता ब्राह्मणो को दी जाती थी । श्री लक्ष्मीचन्द जी के देहावसन के तेरहवे दिन इस फड की स्थापना की सूचना छपवाकर लोगो में बाँट दी गयी । इसमे उन को सूचना दी गयी कि वह काम केवल बचत की भावना से नही अपितु उस बचत का सदुपयोग समाज सेवा के लिए किया गया है । धीरे-धीरे आपके परिवार का अनुकरण करते हुए यह कुप्रथा सारे समाज मे से और राजघराने से भी उठ गयी । सारे ही नगर व समाज का इस दृष्टि से कायाकल्प हो गया ।

दुर्भिक्षो मे सेवा व सहायता का सतत क्रम

राजस्थान का अधिकांश भाग मरु प्रदेश है और उस मरु प्रदेश का बहुत बडा भाग जोधपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर मे फैला हुआ है । कृषि तो क्या पीने के पानी के लिए भी लोग और उनके पशु वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं । बडे-बड़े कुंडो मे वर्षा का पानी सचित करके बडे यत्नपूर्वक सभाल कर रखा जाता है और वर्षा ऋतु के बाद काम मे लाया जाता है । ऐसे अनेक कुंड बीकानेर और उसके आस-पास राज्य मे आपने बनवाये तथा अनेक गाँवो मे कुंओ और प्याऊ का भी प्रबन्ध किया । जिस वर्ष वर्षा पर्याप्त नही होती अथवा बिलकुल भी नही होती उस वर्ष राज्य मे दुर्भिक्ष-फैलकर चारो ओर हाहाकार मच जाता है । ऐसे विकट अवसरो पर संकटापन्न जनता की सेवा और सहायता करना आपके परिवार मे पुरानी परम्परा रही है । मोतीलाल जी ने एक तालाब रायसर और हिमतासर गाँवो के बीच मे बनवाया था । सवत् १९४८ मे दुर्भिक्ष पड़ने पर चारो भाइयो शिवदास जी, जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी और गोवर्धनदास जी ने मिलकर नाल की तलाई भूरोलाई की मिट्टी निकलवा कर आगोर तथा घाट बनवाया । इन सब कार्यों पर ५००० रुपये खर्च करके दुर्भिक्ष पीडित लोगो की सहायता की गयी । बहुत से गाय आदि पशुओ की जीवन की रक्षा की गयी । राज्य ने आप के कार्य की प्रशसा की ।

१९५३ और १९५६ के भीषण दुर्भिक्ष

संवत् १९५३ मे फिर दुर्भिक्ष पड़ा और गेहूँ बहुत मँहगा हो गया । देशावरों से जो गेहूँ आता था वह

कुछ ऊँचे दामो पर विकता था। बाजार मे मोतीलाल लक्ष्मीचन्द के नाम से एक दुकान खोली गयी। उसमें गुजरात डीसा की ओर से बाजरा, ज्वार और पजाब की ओर से गेहूँ, चने आदि मँगवा कर जनता के लिए उपलब्ध किये गये। धर्मशाला मे भी अनाज का भडार रखा गया। दुर्भिक्ष पीडितों को अनाज बाँटा गया और खीचडा बना कर खिलाया गया। सवत् १९५६ के दुर्भिक्ष मे अनाज बाँटकर व खीचडा खिलाकर उसी प्रकार सहायता की गयी। हजारों दुर्भिक्ष पीडित स्त्री-पुरुष मोहतो की हवेलियो की गलियो मे कतार बाँधकर बैठ जाते। उनको चने बाँटे जाते थे। परिवार के सारे युवक बडे उत्साह से दुर्भिक्ष पीडितो के सेवा कार्य मे भाग लिया करते थे। चनो से जब दुर्भिक्ष-पीडित बीमार रहने लगे तब धर्मशाला मे खीचडा पकाकर बाँटा जाने लगा। कपडे भी बाँटे जाते थे। गेहूँ का भाव १५ सेर से ८ सेर रह गया था। धर्मशाला मे अनाज बेचने का भी प्रबन्ध था। यद्यपि आठ सेर के भाव पर ही गेहूँ बिकता था परन्तु कुछ गरीबो पर दया करके उनको दस सेर का दे दिया गया। उन्होने सारे शहर मे फैला दिया कि मोतीलाल जी वाले १० सेर के भाव अनाज बेच रहे हैं। यह सुनकर आप सब बडे आश्चर्य मे पड गये कि १० सेर का भाव किसने कर दिया और सोचने लगे कि आगे क्या किया जाए? धर्मशाला मे २००० बोरे गेहूँ के रखे थे। परन्तु वे १० सेर के भाव मे कितने दिन चलते? सारी स्थिति पर विचार करके यही तय हुआ कि १० सेर के भाव अनाज बेचा जाए परन्तु एक व्यक्ति का एक रुपये से अधिक का न बेचा जाए और उसी को बेचा जाए जो स्वय अपने सिर पर उठा कर ले जाए। गुमाश्तो को उसी रात को गाडी से गेहूँ खरीदने देशावरो को भेज दिया गया। दूसरे दिन धर्मशाला मे इतनी भीड हो गयी कि चार-चार आदमी रुपया लेने वाले और अन्न तोलने वाले रखने पर भी सबको निपटा न सके। दूसरे दिन यह व्यवस्था की गयी कि शहर मे रुपया लेकर रुक्का दिया जाए और उस पर धर्मशाला से अनाज दिया जाए। एक महीने बराबर १० सेर का अनाज बेचा गया। बाद मे स्थिति सुधर जाने और १० सेर का भाव स्थिर हो जाने से अनाज बेचना बद कर दिया गया।

महाराजा ने आप लोगो के इस काम की बडी प्रशसा की और कहा कि राज्य मे दुर्भिक्ष सहायता का प्रबन्ध स्थायी रूप से किया जाना चाहिए। उसके लिए चन्दा लिखने की बात कही और अपने प्राइवेट सेक्रेटरी कूपर साहब को उस काम पर नियुक्त किया गया। आपने भी उसमे भाग लिया। उसके लिए बनायी गयी कमेटी के आप सदस्य नियुक्त किये गये। चन्दा देने के अलावा आप लोगो के यहाँ से वस्त्र आदि बाँटने का भी प्रबन्ध किया गया। सवत् १९५७ मे अच्छी वर्षा होने से दुर्भिक्ष मिट गया और महाराज ने दुर्भिक्ष मे सेवा और सहायता करने वालो का विशेष सम्मान किया। आपके यहाँ सबको चाँदी की छडी, चपरास, खास रुक्का और सरोपा दिया गया उन दिनो मे यह बहुत बडा सम्मान समझा जाता था।

सवत् १९७२ मे श्री कोलायत जी के तालाब की खुदाई का काम हाथ मे लेकर क्षेत्र के जीर्णोद्धार और अकाल पीडितो की सहायता का जो काम किया गया उसकी दुबारा चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ नही है। उससे भी आपकी लोक सेवा की उत्कट भावना का परिचय मिलता है और यह भावना उत्तरोत्तर बढती ही गयी। इसी साल धर्मशाला के पीछे के चौक में बहुत-सी गायो का पालन किया गया। दूसरे वर्ष वर्षा होने पर ये किसानो को मुफ्त बाँट दी गयी।

सम्वत् १९९५-९६

सवत् १९९५ मे बीकानेर मे फिर दुर्भिक्ष पडा। सवत् १९९६ मे उससे भी कही अधिक भयानक दुर्भिक्ष पडा। इन दुर्भिक्षो के अधिकतर शिकार गरीब किसान और हरिजन हुआ करते थे। किसानो की अपेक्षा हरिजनो की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन जाती थी। आपका हृदय उससे द्रवित हो जाता था। गाँवो के दुर्भिक्ष-

राणी बाजार बीकानेर मे मोहता जी द्वारा सचालित अकाल पीडितो का शिविर सन् १९३८-३९
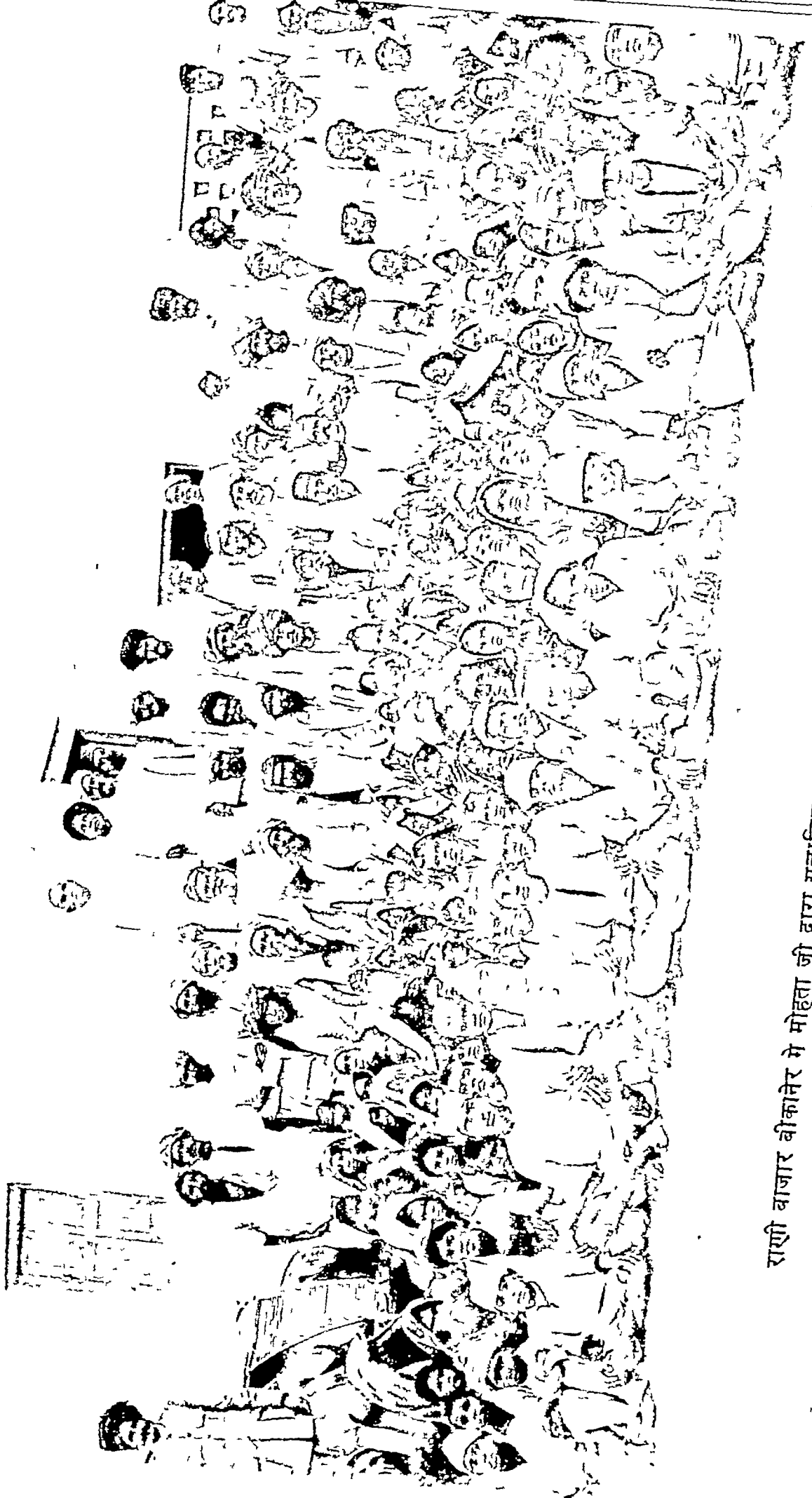
करते थे। उन रोटियो को ग्रापने उन लोगो की झोंपडियो मे जाकर अपनी आँखो से देखा। इन्दरायण के वीज कुछ विषैले होने के कारण लोगो मे पेचिश की शिकायत फैल गयी। आप ने वहाँ लोगो को अन्न बाँटा। इस गाँव के आस पास रूणियाँ के १२ गाँवो और नापासर तथा उसके आसपास के गाँवो की भी यही दशा थी। इस गाँव मे सत्सग करने के बाद गाँव वालो की दशा देखकर आप अत्यन्त द्रवित हो उठे। वापस बीकानेर लौटकर आप ने गाँवो मे अनाज वितरण कराने की व्यवस्था की। प्रेस प्रतिनिधियो को इन गाँवो की करुणापूर्ण स्थिति के सम्बन्ध मे अत्यन्त मार्मिक वक्तव्य दिया।

उस अपील को यहाँ अविकल रूप से देना आवश्यक प्रतीत होता है। इसमे आपकी भावना के साथ-साथ उन दिनो की अकाल-ग्रस्त स्थिति की पूरी जानकारी मिलती है। उसमे आपने नौरगदेसर गाँव का आँखो देखा वर्णन करते हुए कहा था कि "इस गाँव पर लगातार तीन साल से अकाल की क्रूर मार पडी हुई है। गाँव के उन वासो को हमने गौर से देखा जिनमे अधिकतर मेघवाल व नायक आदि गरीब हरिजन अकाल की पीडा के शिकार हो रहे हैं। नायको के वहाँ करीब ३० घर थे। इनमे से २७ घर वेकारी और भूख के मारे रोते विलखते गाँव छोडकर कही चले गये हैं। जो तीन चार घर बचे हैं उनमे केवल स्त्रियाँ और छोटे बच्चे हैं। मेघवालो के भी पाँच छ घर गाँव छोड कर चले गये हैं। जो लोग गाँव मे पडे हैं उनके पास पैसा नही है, खाने के लिये अनाज नही है, तन पर कपडो का अभाव है। हम ने सब से बडा दिल दहलाने वाला दृश्य तो यह देखा कि ये लोग खेजड की पत्तियाँ, छाल और तूंबे के बीज जैसी हानिकारक चीजो की रोटियाँ बनाकर खा रहे हैं। रोटियाँ हमने आँखो देखी हैं। इस प्रकार की रोटियाँ अगर पशुओ को भी खिलायी जाएँ तो वे भी नही खाएगे। लेकिन मनुष्य नामधारी इन अभागे प्राणियो को पशुओ से भी बदतर हालत मे अपनी प्राण-रक्षा के लिए सघर्ष करना पड रहा है। हमारी यह समझ मे नही आता कि राज्य के अधिकारी और राजनीतिक दलो के लिए वोट माँगने वाले सज्जन स्वतन्त्र भारत के इन नागरिको को इतना उपेक्षित क्यो समझते हैं कि वे जाकर इनकी सुध भी नही लेते। लोग जब गाँवो मे जाते हैं तो चौधरियो और पचो से मिलते हैं और वे लोग अपनी चौधर-सरपची के मद मे इन अभागे लोगो की दशा क्यो दिखाने लगे। मुझे बताया गया है कि गाँवो के चौधरी और पच लोग इन अभागे हरिजनो पर जागीरदारो की तरह ही अत्याचार करते हैं। जनतन्त्री शासन के इस जमाने मे भी चौधरी और सरपच लोग इनसे बेगार और मलबे आदि की लाग लेते हैं। सार्वजनिक कूओ पर पानी के लिए इनको चढने नही देते। चौधरियो और सरपचो के नाराज होने पर इनको पीने को पानी नही मिलता। खेती की जमीन पर इनका किसी प्रकार का अधिकार नही। वह चाहे जब छीनी जा सकती है। पकी फसल से भी इनको हाथ धोना पड जाता है। अकाल के सब से प्रथम और सब से अधिक शिकार ये लोग होते हैं।

इनकी तात्कालिक सहायता के रूप मे मैंने ता० २४ को सवेरे अपने प्रतिनिधि छगनलाल मोहता के साथ १५ मन बाजरी वितरण करने के लिए नौरगदेसर भेजी। जो वहाँ प्रति व्यक्ति चाहे बालक हो या बडा पाँच सेर के हिसाब से १२० व्यक्तियो को बाँट दी गयी।

इसके बाद गत वर्ष फिर इस डिवीजन मे अकाल पडा। अकाल मे इन लोगो की फिर सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय राजस्थान सरकार के उच्च अधिकारियो ने मुझसे अकाल निवारण के कार्य मे सहयोग देने का अनुरोध किया और यहाँ पर देवकुंड सागर, सिवबाडी, घडसीसर आदि तालाबो की मिट्टी खुदवाई गई जिसमे सरकारी मजदूरी के सिवाय प्रति व्यक्ति एक पाव अनाज और वस्त्र बिना मूल्य दिये गये और तालाबो पर काम करने वाले अकाल पीडितो के लिए सस्ते मूल्य मे अन्न प्राप्त करने की दुकानें खोली गयी। मुझे आशा थी कि इसके बाद आने वाले साल मे शायद वर्षा अच्छी हो जाएगी लेकिन दुर्भाग्य से गत वर्ष के मौसम मे भी
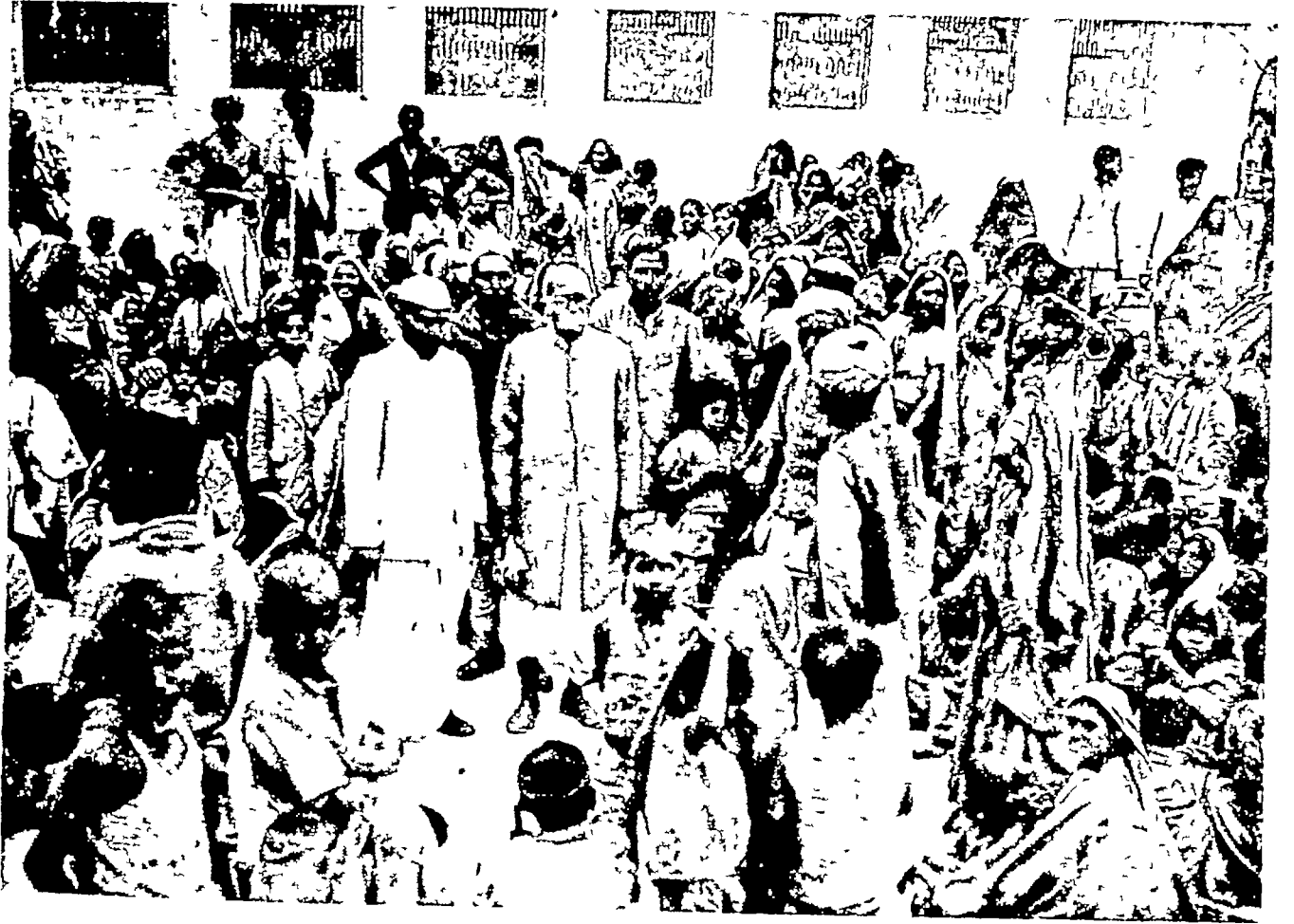
अकाल पीडितो को अन्न वस्त्र वितरित करते हुए मोहता जी व श्री पन्नालाल जी बारुपाल, एम० पी० ।

नौरग देसर गाँव मे अकाल के अवसर पर मोहता जी द्वारा अनाज
वाटा जा रहा है ।

प्रकृति ने इन गरीबो का साथ नही दिया और अनेक हिस्सो मे टिड्डी के कारण फिर अकाल पड गया। गत दिसम्बर ५२ से मेरे यहाँ सदर, मगरा, नोखा, नागोर, डूँगरगढ व सुजानगढ़ की तहसीलो के अनेक गाँवो से गरीब अकाल पीडित सहायता के लिए आने लगे। उपरोक्त तहसीलो के कई गाँवो की हालत नौरगदेसर जैसी या उससे भी अधिक खराब है। मैं इनको तब से रोजाना करीब ८ मन बाजरी और जवार बाँट रहा हूँ। ये लोग बडी तादाद मे अपने गाँव और घरबार छोडकर यहाँ आते हैं। कुछ दिन यहाँ रहते है और फिर कई लोग मजदूरी की तलाश मे नाली की तरफ निकल जाते हैं। जो जाते हैं उनको रास्ते मे खाने के लिए अन्न मेरे यहाँ से दिया जाता है। बहुत से इसलिए नही जाते कि नहरो की खुदाई के ठेकेदार इनसे मजदूरी करवा कर कुछ नही देते। खाने के लिए अन्न देते हैं जिसकी रकम इनके नावें लिखते है और फिर हिसाब करके इनकी तरफ उलटा लेना निकाल कर इनको अत्यन्त सकट देते है। इनकी नौजवान लडकियो का अपहरण कर लेते हैं।

उपर्युक्त तहसीलो के गाँवो मे से बहुत से मेघवाल बुनकर यहाँ सूत लेने के लिए आते हैं, उनको बिना रकम लिए कपडा बुनने के लिए सूत देता हूँ और जब वे कपडा बुनकर वापस लाते हैं तो १० पौड वजन के एक पेटी की बुनवाई ६ रु० देता हूँ। परन्तु इस काम मे भी कठिनाई यह हो रही है कि मिलकेमु का बले मे यह कपडा बाजार मे बिकता नही। मैं अपनी ओर से ४ रुपया पेटी एक पर नुकसान भुगतने को भी तैयार हूँ। परन्तु जब तक उसकी बिक्री का प्रबन्ध न हो तब तक कपडा इकट्ठा कहाँ तक किया जाए। अनेक सरकारी विभागो मे यद्यपि इन अकाल पीडितो के बने हुए झाडन, डोवटी और खेसले आदि खरीदे जा सकते है, परन्तु अब तक चेष्टा करने पर भी ऐसा सहयोग प्राप्त नही हुआ।

इसलिए मेरी विनम्र अपील है कि उच्च अधिकारी लाल फीता शाही की उपेक्षापूर्ण नीति को छोडकर अमूल्य मानव जीवन बचाने मे तत्पर हो। इस समय अकालग्रस्त गाँवो की सही हालत जानने, उसके उपाय सोचने और उसको ठीक करने के लिए सबके सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक ऐसे सकटपूर्ण मसलो पर हम सहयोग करना नही सीखेंगे तब तक लोकतन्त्र की शासन-व्यवस्था आगे आने वाली भयानक दुर्घटनाओ से नही बच सकेगी। मेरी सम्मत्ति मे देश मे अन्न और धन की कमी नही है। दोष, वितरण-व्यवस्था का है। एक तरफ अपार अन्न और धन राशि ऐसे लोगो के पास जमा है जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थो के लिए धार्मिक अन्ध विश्वासो, सामाजिक रूढियो और विलासितापूर्ण आडम्बरो मे देश के लिए हानिकारक ढंग से उसका अपव्यय करते है, वहाँ दूसरी तरफ देश की उत्पत्ति बढाने वाले गरीब और श्रमिक लोग क्रय-शक्ति के अभाव के कारण बे-मौत मरते हैं। मेरी समझ मे यह विषमता गीता मे प्रतिपादित समत्व योग की मान्यता के आधार पर अर्थ व्यवस्था का ढाँचा बनाने से मिट सकती है।"

अन्य अकालो की अपेक्षा इस अकाल की बुरी हालत यह थी कि उनमे तो प्राय अधिक गरीब जातियो के किसान सहायता प्राप्त करने के लिए शहरो मे पहुँच जाते थे परन्तु इसमे जाट, विश्नोई, बनिये और राजपूत जैसे ऊँची जाति के किसान अन्न के लिए दूसरो के मुहताज बन गये थे। अन्न खरीदने के लिए उनके पास पैसे का अत्यन्त अभाव था। ये लोग इस विपदावस्था मे भी मुफ्त सहायता लेना स्वाभिमान के विरुद्ध समझते थे। आपको इसका पता चला तो आपने अपने कार्यकर्ताओ को यह कह कर गाँवो मे भेजा कि उनको समझा बुझाकर अनाज व नकद सहायता उधार के रूप मे जितनी आवश्यक हो दे दी जाए और कह दिया जाए जब अच्छा जमाना आ जाए तब यह कर्ज सहूलियत से चुका देना।

राजधानी मे प्रतिक्रिया

दिल्ली के अखबारो ने इस अकाल-सम्बन्धी घटनाओ के समाचार प्रकाशित किये। गाँव के लोग वृक्ष

की छाल और इद्रायण के बीजो को पीसकर जो रोटियाँ खा रहे थे उसके नमूने श्री पन्नालाल बारुपाल संसद सदस्य अपने साथ ले गये। उन्होने ससद के अपने साथी सदस्यो और केन्द्रीय मन्त्रियो को वे रोटियाँ दिखायी। इसके अतिरिक्त बीकानेर से पार्सलो द्वारा भी ये रोटियाँ श्री गजाधर जी सोमाणी, श्री शारगधर दास, श्री ए० के० गोपालन और श्रीमती सुचेता कृपलानी आदि ससद के प्रमुख सदस्यो को भेजी गयी। ससद मे इस अकाल-समस्या पर श्री गजाधर जी सोमाणी ने अपने जोरदार भाषण मे विस्तार से प्रकाश डाला। सरकारी तथा विरोधी दोनो पक्ष के सदस्यो ने अकाल की स्थिति की गम्भीरता पर पर्याप्त सजगता और चिन्ता प्रदर्शित की। देश भर के समाचार पत्रो मे ससद मे हुए भाषणो तथा दुर्भिक्ष के समाचार प्रकाशित हुए। उनके कारण राजस्थान सरकार को अपने सहायता-कार्य आरम्भ करने पडे।

इस अकाल मे गाँव मे वितरण किये जाने वाले अनाज की माँग बहुत अधिक थी। गाँव का प्रमुख खाद्य बाजरा इस इलाके मे अकाल के कारण पैदा नही हुआ था और भरतपुर से वह सीमित मात्रा मे ही आ सकता था। खुले बाजार मे भी उसका मिलना दुर्लभ था। फिर भी अकाल पीडितो के पेट तो भरने ही थे इसलिए बाजरे की कमी की समस्या को किसी न किसी प्रकार हल किया गया। गजनेर और जोगिडा तालाब की खुदाई के काम मे राजस्थान सरकार ने हजारो मजदूरो को लगाया था। उनको भी सस्ते से सस्ता और कई लोगो को मुफ्त अनाज पहुँचाने की व्यवस्था की गई। तालावो के आस-पास खुले जगल मे रहने मे मजदूरो को बहुत कष्ट और कठिनाई का सामना करना पडता था। वहाँ उनके लिए सरकडे की झोपडियो के कैम्प बनवाये गये। उनके छोटे बच्चो की पढाई-लिखाई का प्रबन्ध किया गया। दुर्भिक्षो मे की गयी इस निरन्तर सेवा मे हरिजनो की जो सेवा और सहायता की गयी वह समाज-सुधार और समाज सेवा दोनो ही दृष्टियो से विशेष महत्वपूर्ण है।

कपडे का वितरण

सन १९४४-४५ मे देश मे कपडे के वितरण पर अत्यन्त कठोर सरकारी नियन्त्रण था। राशन कार्डों पर प्रति व्यक्ति को ८ से १२ गज तक कपडा केवल बीकानेर सरीखे शहरो मे मिला करता था। गाँव के निवासी इस वितरण-व्यवस्था के कारण कपडे के अभाव मे घोर कष्टमय जीवन बिता रहे थे। शहरो की तरह गाँव वालो के लिए राशनकार्ड बनते ही न थे। उनको अपनी ही किस्मत पर छोड दिया गया था। उनके कपडे की आवश्यकता की पूर्ति की समस्या शहर के कपडा व्यापारियो तथा सिविल सप्लाई के कर्मचारियो की मनमानी पर निर्भर थी। इससे रिश्वतखोरी और काला बाजार का जोर बढ़ गया। गाँव के गरीब तन ढकने मात्र कपडे के लिए तरसते रहते थे। कही-कही मृतको के लिए कफन तक नसीब न होता था और गाँवो की स्त्रियो के लिए कपडो के अभाव मे अपने झोपडो से बाहर निकलना सम्भव न रहा था। गरीब राजपूतो की स्त्रियाँ तो इस बेइज्जती को सहन करने की अपेक्षा आत्मघात कर लेना अच्छा समझती थी। आपको इन समाचारो से मर्मान्तिक वेदना हुई। उन दिनो बीकानेर राज्य के सिविल सप्लाई मिनिस्टर ठाकुर प्रतापसिंह जी थे। वे और महाराज शार्दूलसिंह जी आपका बहुत सम्मान करते थे। ठाकुर प्रतापसिंह जी को बुलाकर आप उन पर बहुत क्षुब्ध हुए और इस भयानक परिस्थिति को उनके सामने रखा। उन्होने केवल सरकारी महकमे के द्वारा इस समस्या का समाधान करने मे असमर्थता प्रगट की। आप से अनुरोध किया कि आप ही गाँव वालो को कपडा वितरण करने की व्यवस्था करें तो राज्य की व जनता की बहुत बडी सेवा होगी। आपने उस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। जगह-जगह डिपो खोलकर गाँव वालो के लिए पूरी सहूलियत करदी गयी। जो गाँव दूर पडते थे उनके निवासियो के लिए कपडा मोटर लारियो मे भरकर अत्यन्त विश्वस्त कार्यकर्ताओ के साथ भेजा जाता था। गाँव के लोगो की एक खास समस्या यह थी कि वहाँ अलग-अलग जाति की स्त्रियो के पहनावे के कपडो के रग, छपाई

बीकानेर मे श्री मोहता जी द्वारा सस्थापित वनिता आश्रम की महिलाएँ और अनाथालय के बच्चे ।

श्री मोहता जी द्वारा संस्थापित महारानी भटियाणी
जी वनिता आश्रम जोधपुर की महिलाएँ ।

महारानी भटियाणीजी वनिता आश्रम जोधपुर का भव्य भवन

व डिजाइन अलग-अलग होते थे और जो स्त्रियाँ जिस रंग व डिजाइन क कपडे पहनती थी यदि उन्हे उससे भिन्न प्रकार का कपडा दिया जाता तो वे उसे स्वीकार नही करती थी। ५० साल से ग्रामीणो की सेवा का कार्य करते रहने से आपको उनकी बोलचाल, रहन-सहन व रीति-रिवाज की पूरी जानकारी थी। उन लोगो के लिए उनकी आवश्यकतानुसार कपडो के रग व डिजाइन तैयार करवा कर वितरण करने की व्यवस्था की गयी। यह आयोजन इतना सफल हुआ कि गाँव वालो का वस्त्र-अकाल मिट गया। इस कार्य से भी दीन-हीन एव उपेक्षित हरिजनो का वडा उपकार हुआ। महाराज शार्दूलसिह जी व ठाकुर प्रतापसिह जी पर इसका इतना अधिक प्रभाव पडा कि वे उस समय से यह अनुभव करने लगे कि यदि आप की सेवाएँ राज्य के सिविल सप्लाई विभाग को प्राप्त होती रहे तो राज्य का वहुत लाभ हो और इसी आधार पर महाराज शार्दूलसिह जी ने आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी की सेवाएँ सिविल सप्लाई मिनिस्टर के रूप मे प्राप्त करने का आपसे अनुरोध किया और उन्होने उसको स्वीकार करके सप्लाई विभाग की जो सन्तोषजनक व्यवस्था की उसकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है।

महिलाओ व विधवाओ की सेवा और सुधार

हरिजनो के समान हिन्दू समाज मे महिलाओ विशेषत विधवाओ की भी हालत कुछ अच्छी नही है। राजस्थान तथा मारवाडी समाज मे उनको और भी अधिक यातनाओ का सामना करना पडता है। अपने ही घर मे किसी वात की कोई कमी न होने पर भी अपने छोटे भाई श्री मूलचन्द मोहता की पत्नी के युवावस्था मे ही विधवा हो जाने की आपके हृदय पर वडी गहरी चोट लगी थी। स० १९८५ मे कराची मे आपने महिलाओ की विशेषत. विधवाओ की सेवा करने के विचार से एक ट्रस्ट वनाया था। उसमे रामदेव चाल, सोमरसेट स्ट्रीट वाले दो मकान और एक लाख नकद देकर उसकी रजिस्ट्री करवायी गयी। कराची, वीकानेर, इन्दौर, इलाहावाद, जोधपुर और अजमेर मे वनिता आश्रम तथा अनाथ आश्रम खोले गये। उनमे वनिताओ के भरण, पोषण तथा शिक्षण की व्यवस्था के साथ-साथ योग्य विधवाओ के पुनर्विवाह का भी प्रवन्ध किया जाता था। वीकानेर मे कुछ ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी कि यहाँ का आश्रम एकाएक वन्द करना पड गया। दीवान सर मनुभाई मेहता तो काफी प्रगतिशील और उदार विचारो के थे। वे ऐसे कार्यों मे दिलचस्पी लेकर उनमे राज की ओर से सहयोग दिया करते थे करते थे। वीकानेर के आश्रम मे ओसवाल, माहेश्वरी, अग्रवाल तथा व्राह्मण वनिताओ के अनेक पुनर्विवाह किये गए। एक राजपूत राठोड घराने की विधवा का पुनर्विवाह पिथरासर के ठाकुर रूपसिह जी के सहयोग से लाल जी भाटी के साथ किया गया। उस पर राजपूत सरदारो मे वडा रोष व असन्तोष पैदा हो गया। महाजन के राजा श्री हरीसिह और महाराजा गगासिह जी के चचेरे भाई महाराज भैंरोसिह वहुत उत्तेजित हुए। वे महाराजा गगासिह जी के विशेष प्रेम-भाजन और विश्वास-पात्र थे। उन्होंने आप के विरुद्ध महाराजा के कान भर दिए। एक और विधवा विवाह पुष्करणा जाति की विधवा का वालकृष्ण पुरोहित के साथ किया गया। वह एक पच का लडका था। उस पर पुष्करणा समाज मे अत्यधिक उत्तेजना पैदा हुई। श्री महेशदास व्यास महाराजा का दरवारी था। वह वहुत अधिक चिढ गया। पुष्करणा व्राह्मणो और राजपूत सरदारो ने सयुक्त मोर्चा वनाकर महाराजा को आप के और वनिता आश्रम के विरुद्ध भडका दिया। आप ने श्री मनुभाई मेहता और लेडी डाक्टर शिवकामा की मार्फत महाराजा तक वस्तु-स्थिति पहुँचाने का प्रयत्न किया। उन दिनो मे सर मनुभाई दीवान थे और लेडी डाक्टर महाराजा की अत्यन्त विश्वास-पात्र थी। दोनो ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि वातावरण वहुत खराव है। महाराज पुराने विचारो के हैं और उनको वहुत असन्तुष्ट कर दिया गया है। इसलिए वनिता आश्रम यहाँ नही रखना चाहिये। इस पर आपने आश्रम वन्द कर दिया। सव लड़कियो और वालको को जोधपुर के आश्रम मे भेज दिया।

विरोध और विघ्न बाधा

सम्वत् १९९१ मे सर मनुभाई राज्य की दीवानगिरी छोड कर चले गए। उनकी जगह महाराज भैरोसिंह की नियुक्ति हुई। वे समाज सुधार के कट्टर विरोधी थे। उनके कारण आप की समाज सुधार की सारी प्रवृत्तियाँ रुक गयी और शहर मे सर्वत्र यह चर्चा फैल गई कि आप बीकानेर छोड कर जोधपुर वसने के लिये जा रहे हैं। यह बात जब महाराजा गगासिंह जी के कानो मे पहुँची तब उन्होंने पहले महाराज भैरोसिंह के मार्फत सन्देश भेजकर पुछवाया कि क्या आप वास्तव मे ही बीकानेर छोड रहे हैं ? उसके बाद गजनेर मे बुलाकर बडे सम्मान से अपने पास बिठाकर पूछा कि आप बीकानेर क्यो छोड रहे हैं ? आपने वनिता आश्रम क्यो बन्द कर दिया ? आप ने सब बातें सच-सच कह दी और महाराजा की नाराजगी का भी सारा किस्सा कह सुनाया। उन्होंने बात टालते हुए कहा कि मैं नाराज नही हूँ। मेरी नाराजगी की बात किसने कही ? आप ने महाराज भैरोसिंह और श्री रामरतन जी बागडी का नाम ले दिया। उन्होंने उनकी बात को बिलकुल झूठ बताया और कहा कि वनिता आश्रम फिर से कायम कीजिये। आपने विधवा विवाह को आवश्यक बताते हुए राज्य की सहायता के बिना उसको चलाने मे असमर्थता प्रकट की। वे राज्य की सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हो गए और कहा कि जो भी सहायता चाहिए लिखकर दीजिए। मैं एक कमेटी नियुक्त कर दूंगा। वह विचार करके सहायता की व्यवस्था कर देगी। महाराज ने कमेटी मे महाराज भैरोसिंह, महाराज मान्धातासिंह, ठाकुर शार्दूलसिंह, ठाकुर जनरल हरीसिंह सत्तासर वाले और हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस श्री अहसान उल हक के नाम कमेटी मे रखने को कहा। आपने मुसलमान अधिकारी को कमेटी मे रखने पर आपत्ति की, क्योकि हिन्दू विधवाओ के काम मे किसी मुसलमान को रखने के आप विरुद्ध थे। आप ने हाईकोर्ट के जज श्री नानावती का नाम सुझाया। इस पर महाराजा ने एहसान उल हक की बडी प्रशसा की और उसके लिये सहमत होने का आग्रह किया। आपने वनिताओ, विधवाओ और हरिजनो की सेवा और सहायता के सम्बन्ध मे अपने सारे विचार उनके सामने खोल कर रख दिये और हरिजनो पर होने वाले अत्याचारो का भी किस्सा उनको कह सुनाया।

महाराजा ने ऊपरी सहानुभूति दिखाई और सर मनुभाई मेहता के सिविल मैरेज कानून के प्रस्ताव से मतभेद प्रगट करते हुए कहा कि उसको कैसे सहन किया जा सकता है। उससे तो तलाक, वर्णसकर, वेश्याओ के सन्तान आदि की वृद्धि होगी और जागीरो पर अगरेज औरतो की सन्तान का अधिकार हो जायगा। यह सब कैसे सहन किया जा सकता है ?

वनिता आश्रम के सम्बन्ध मे नियुक्त की गई कमीटी की दो तीन बैठकें हुई। महाराज मान्धातासिंह और ठाकुर शार्दूलसिह आप के पक्ष मे तथा महाराज भैरोसिंह, ठाकुर हरीसिंह और मिया एहसान उल हक आप के विपक्ष मे रहे। पक्ष-विपक्ष की रिपोर्ट महाराजा के सम्मुख निर्णय के लिए पेश की गयी। उन्होंने कोई निर्णय नही दिया और बीकानेर मे दुबारा वनिता आश्रम कायम नही किया जा सका।

बीकानेर मे वनिता आश्रम बन्द होने के बाद जो अनाथ असाहाय विधवायें और वनितायें आती उनको आप अपने बगले मे रख लेते फिर उनकी इच्छानुसार या तो उनका पुनर्विवाह कर देते या जोधपुर के आश्रम मे भेज देते। इस तरह की वनिताओ को घर मे रखने से कभी-कभी हानि भी उठानी पडती। एक वनिता ने घर मे गहने-कपडे की चोरी कर ली थी। ऐसी सब हानियो को सहन किया जाता था।

कलकत्ता का माहेश्वरी विद्यालय और माहेश्वरी भवन

सम्वत् १९७२-७३ मे आपने कलकत्ता में रहते हुए वहाँ की सार्वजनिक प्रवृत्तियो मे विशेष भाग लेना शुरू कर दिया था। माहेश्वरी विद्यालय की स्थापना में आपने विशेष भाग लिया और ५००० रु० उसके

पढरपुर मे अ० भा० माहेश्वरी महासभा के अवसर पर स्वागत समिति के अध्यक्ष व मत्रियो के साथ कुर्सी पर बैठे हुए बाए से दूसरे उनके अध्यक्ष श्री रामगोपाल जी मोहता सन् १९२७ ।

कार्यालय वालो की ओर से मारवाडी समाज के सम्बन्ध मे जो आन्दोलन किया जाता है उसमे आपकी ओर से विशेष प्रोत्साहन और सहायता मिलती है। यदि यह बात सच है तो इस एसोसिएशन की दृष्टि मे आपका यह कार्य मारवाडी समाज का बहुत बडा अपकार करने वाला है। सम्भव है, आपका उद्देश्य समाज की भलाई करना ही हो। आज मिस मेयो की "मदर इडिया" की इतनी निन्दा क्यो हो रही है, इसलिए कि एक तो उसका उद्देश्य भारत सुधार करना नही, किन्तु अन्य देश वालो की दृष्टि मे भारतवासियो को अयोग्य प्रमाणित करना है— दूसरे, एक अमेरिकन महिला को क्या अधिकार है कि वह अपने देश की बुराइयो पर कोई प्रकाश न डाल केवल भारतवासियो के ऐबो को ससार के सम्मुख रखे। यही बात चाँद कार्यालय पर लागू हो सकती है। उसके हृदय मे मारवाडियो के प्रति इतना प्रेम कहाँ से उमड पडा कि भारत के अन्य समाजो और स्वय अपने समाज को जिसमे कुछ कम बुराइयाँ नही हैं छोडकर वह मारवाडियो के सुधार पर कमर बाँध कर खडा होगया है। यदि कोई मारवाडी सस्था समाज के दु खो से दु खी हो इस कार्य को हाथ में लेती तो इस सस्था को कोई आपत्ति नही थी, क्योकि वह समाज की बुराइयो को इस रूप मे रखती, जिसमे समाज का सुधार भी होता और वह अन्य समाजो द्वारा हास्यास्पद भी न बनता किन्तु एक अन्य समाज के पुरुष को किसी दूसरे समाज की भलाई-बुराई से क्या वास्ता ? उसे तो जिस प्रकार अधिक पैसा पैदा हो उसी प्रकार काम करना है। लदन रहस्य और पेरिस रहस्य पढने वालो का ध्यान यदि लदन और पेरिस के सुधार करने की ओर हो तो सम्भव है—मारवाडी अक पढने वाले गैर मारवाडियो का ध्यान भी मारवाडी समाज सुधारने की ओर हो, किन्तु उनके लिए तो किसी समाज को कुछ सच्चा और कुछ मनगढन्ती बुराइयो का चित्ताकर्षक रूप मे पढना एक मनोरजन की सामग्री होगी और उनके मन मे उस समाज के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न होंगे। इससे एक सब से बडी बात यह होगी कि जिस मारवाडी समाज के लोग भारत के कोने-कोने मे व्यापार के लिये फैले हुए हैं उनके प्रति अन्य समाज वालो के हृदय मे घृणा के भाव पैदा होंगे और जहाँ दो-दो चार-चार घर मारवाडियो के हैं वहाँ उनका शान्ति से रहना मुश्किल हो जायगा क्योकि उनका वहाँ रहना गैर मारवाडियो के प्रेम पर ही निर्भर है और जब वे मारवाडियो को पतित जाति समझने लगेंगे तो वे उनसे प्रेम क्यो करने लगे—वे तो उन्हे जितना शीघ्र होगा किसी न किसी बहाने निकालने की चेष्टा करेंगे।

आशा है आप उपर्युक्त कथन को गभीरता के साथ पढेगे और जिसमे समाज की भलाई समझेंगे उस कार्य को प्रोत्साहन देंगे। आप जैसे समाज हितैषी पुरुषो से इस एसौसियेशन को यह आशा कभी नही हो सकती कि जान बूझ पर आप समाज की बुराई के किसी कार्य मे सहयोग प्रदान करेंगे। आपने इस सम्बन्ध मे जो निश्चय किया हो उससे शीघ्र ही सूचित करने की कृपा करें।

भवदीय—

बैजनाथ देवडा, मन्त्री

मोहता जी का उत्तर

इस पत्र का मोहता जी ने बीकानेर से १८ अक्टूबर १९२९ को जो उत्तर दिया वह निम्न प्रकार है—

मान्यवर महोदय,

आपका ता० ३०-९-२९ ई० का पत्र कराची होकर यहाँ आया। मैं बाहर गया हुआ था इसलिए उत्तर देने मे विलम्ब हुआ, क्षमा करें।

मुझे खेद है कि मैं आप के इन सकुचित विचारो से सहमत नही हूँ कि हमारी वास्तविक त्रुटियो को स्वय हमारे सिवाय दूसरे किसी को प्रगट करने का क्या अधिकार है ? अधिकतर देखा जाता है कि अपनी त्रुटियाँ

आप को जैसी दीखनी चाहिए वैसी नही दीखती। दूसरो को अधिक स्पष्ट दीखती हैं और जो व्यक्ति या समाज दूसरो द्वारा दिखायी हुई अपनी त्रुटियो को दिखाने वाले से द्वेष न करके सुधारने का प्रयत्न करता है वही उन्नति करता है। किन्तु जो व्यक्ति या समाज दूसरो द्वारा दिखाई हुई त्रुटियो को सुधारने का तो यथेष्ट प्रवन्ध नही करता किन्तु दिखाने वाले से चिढ कर द्वेष करता है उसका और भी अधिक पतन होता है, यह मेरा निश्चय है। अपने दोप को छिपा कर अथवा उन पर लीपा-पोती करके वडप्पन के गर्व मे फूले रहना और दूसरो के गुणो की उपेक्षा करके उनमे दोष ढूंढने का प्रयत्न करना, इससे अधिक पतन का कोई दूसरा साधन नही हो सकता।

आप के इस कथन पर मुझे अधिक खेद होता है कि "यदि कोई मारवाडी सस्था इस कार्य को हाथ मे लेती तो इस सस्था को कोई आपत्ति नही थी। किन्तु एक अन्य समाज के पुरुष को किसी दूसरे समाज की भलाई-बुराई से क्या वास्ता है, ?" क्योकि जिस सस्था के अधिकतर सभासद सुधारक और राष्ट्रीय विचारो के समझे जाते हैं, जिनको हिन्दू समाज ही नही किन्तु भारतवासी मात्र को एक जानना चाहिये, उस मारवाडी ट्रेड्स एसोसियेशन की तरफ से मारवाडी समाज तथा अन्य समाज मे इतना भेद भाव उत्पन्न करने वाला आन्दोलन उठाया जाना शोभा नही देता, न मालूम विदेशी लोग इस पर क्या आलोचना करते होगे ? मेरी समझ मे तो हमारे दोप दिखाने वाले हमको इतना अयोग्य प्रमाणित नही करते जितना कि हम स्वय चिढकर उनसे द्वेष करने से करते हैं। हम अपनी कमजोरियो को निकाल बाहर करने से ही अपना गौरव कायम रख सकते है—किसी से चिढने या लडने-झगडने से नही।

मुझे उस समय वडी प्रसन्नता होगी जब कि मारवाडी समाज स्वय "चाँद" जैसा समाज मे क्रान्ति उत्पन्न करने वाला अपना एक अलग पत्र प्रकाशित करेगा जिसमे अपने समाज के दोषो पर निस्सकोच प्रकाश डालते हुए उनके क्रियात्मक सुधार का ठोस आन्दोलन हो।

मैं आप के इस निश्चय से सर्वथा असहमत हूँ कि "अबलाओ का इसाफ" एक घृणित और अश्लील पुस्तक है, और उसकी निन्दा हिन्दी ससार ने की है अथवा वह किसी दुर्भावना से प्रकाशित हुई है।

जब तक "चाँद" का "मारवाडी अक" प्रकाशित न हो जाय और मैं उसको देख न लूं—तब तक केवल अनुमान पर यह निश्चय कर लेना मैं उचित नही समझता कि वह किसी दुर्भावना से निकल रहा है। यहाँ पर मैं यह वात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यद्यपि चाँद सम्पादक सहगल जी के साथ मेरा बहुत स्नेह है और उनके अनेक गुणो का मैं आदर करता हूँ परन्तु कई वातो मे मेरा उनसे मतभेद भी है और "मारवाडी अक" निकालने का तो मैंने उनको स्पष्टतया निषेध किया था, इस भय से नही कि अपने समाज की त्रुटियाँ प्रगट होगी जिससे हमारी प्रतिष्ठा मे धक्का लगेगा या अन्य किसी प्रकार का नुकसान पहुचेगा, किन्तु इसलिए कि "मारवाडी समाज अपनी वर्तमान मनोवृत्ति मे इससे कुछ भी लाभ नही उठावेगा, व्यर्थ ही आपस की खीचा-तानी होगी—जिससे दोनो तरफ हानि होगी" परन्तु मेरी सम्मति सहगल जी के ध्यान मे नही बैठी और वे अपनी स्वेच्छा से "मारवाडी अक" निकाल रहे हैं।

मैं आप के एसोसियेशन को विश्वास दिलाता हूँ कि समाज की भलाई-बुराई का जितना ध्यान आप को है मुझे उससे कुछ भी कम नही है। मैं भी अन्त करण से समाज का हित चाहता हूँ—परन्तु वह हित वास्तविक होना चाहिए—केवल वाह्याडम्बर का नही।

भवदीय—

रामगोपाल मोहता

अबलाओं की पुकार

यहाँ अबलाओं की पुकार शीर्षक से लिखी गई मोहता जी की एक लावणी दी जा रही है, जिसमे नारी की असहाय अवस्था का सही चित्र उपस्थित किया गया है —

(लावणी)

सजन सुनो दे कान, धरम का जो दम भरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥टेर॥

अन्तरा

ब्रह्मा जी आदि काल में सृष्टी रची सारी, एक भुजा से हुआ पुरुष और दूजी से नारी ॥टेक॥
दोनों मिल कर गृहस्थ करो यह आज्ञा करी जारी, आप जगत के पिता हुए और हम भी महतारी।
हम बिना आपका कोई काम नहीं चलता, नारी को दुख होने से धर्म नहीं पलता।
जप तप व्रत तीरथ यज्ञ दान नहीं फलता।

धरमशास्त्र के हैं ये वचन, ध्यान इन पर भी धरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥१॥

कन्या का जब होय जनम तब दुखी आप होते, मन्द हमारे भाग यह कह कर मन ही मन रोते।
चीज निकम्मी जान हमें नफरत की नजर जोते, प्रारब्ध से बड़ी होत भायों का मल धोते॥
फिर आखिर ब्याहने की नौबत आती है, बिन देखे भाले वर को दी जाती है।
निर्दयी आपकी वज्जर सी छाती है॥

तुम अपने स्वारथ काज हमारा सब सुख हरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥२॥

चाहे वर बालक हो नादान मूरख होवे दुराचारी, बुड्ढा हो बीमार पहिले मौजूद भी हो नारी।
पशु दान देने में देखते पात्र सदाचारी, पर कुपात्र को दे देते हो कन्या बेचारी॥
हम बिना उजर उनके पीछे हो जातीं, बे जोड़ विवाह से ऊमर भर दुख पातीं।
सब सहतीं अत्याचार सदा गम खातीं॥

और हरदम करतीं टहल, आप फिर भी नहीं ठहरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥३॥

हो भले हमारे भाग आपसे पहले चली जावें, छोटी ऊमर में तो भी धन धन्य कहवावें,
नहीं सोच फिकर का काम तुरत दूजी नारी आवे, फटो पगरखी फैंक नई जूती जैसे लावे॥
जिनके घर में बेटे पोते पोती है, सब अग शिथिल आँखों की मन्द ज्योती है।
उनके लारे लग कन्याएँ रोती है॥

करो इस तरह के अनरथ आप नहीं ईश्वर से डरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥४॥

दैव योग से अगर आपके पीछे रह जाती, जन्म भ्रष्ट हो जाय जगत में नहीं कोई साथी।
आठ बरस से साठ बरस की कब ऊमर आती, बिना आग हर वक्त सिलगती ज्यों भट्ठी ताती॥
नहीं एक पलक भी सुख का दम भर सकती, नहीं बोल चाल हँस खुशी ख्याल कर सकती।
नहीं घर से बाहर एक कदम धर सकती॥

कर हम पर यह अन्याय, आप सुख से बिचरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥५॥

काया के जो धरम छोड़ सकता नहीं कोई; योगी यती सूरमा पण्डित चाहे जो होई।
ब्रह्मा विष्णु महेश ऋषि और मुनी हुए जोई, कुदरत के नियमों को जरा नहीं पलट सके वोई ॥
इन विषयों के वेगों को किसने मारा, मन की चचलता से अर्जुन भी हारा।
फिर साधारण अवलाओं का क्या चारा?

तब नाहक हमको दोष लगाने पर क्यों उतरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥६॥

इस हालत पर भी हमको तुम ही फुसलाते हो, हम चाहें वचने को सत्त तुम ही डिगवाते हो।
धर्म भ्रष्ट जवरन करते जव मौका पाते हो, फिर भी ठेकेदार धरम के तुम कहलाते हो ॥
छल छिद्र जाल कर, हमसे पाप करवाते, जव काम पड़े तव आप अलग हो जाते,।
टीका कलक का हमरे सिर लगवाते ॥

करो तुम ऐसे खोटे काम फिर भी शेखी में मरते हो।
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥७॥

नारी नर से हाथ जोड़ कर अरज करे स्वामी, बन्द करो सव जुलम खुशी होवे अन्तरयामी।
आपतकाल के धरम विचारो मेटो वदनामी, दोनों आंख एकसी देखो दूर करो खामी ॥
इस समय धर्म की वहुत हो रही हानी, हिन्दू जाति दव रही है चारों कानी ॥
हम अवलाओं की हो रही है हैरानी ॥

ऋषि मुनियों के सतान धर्म अपना क्यों विसरते हो ॥
नारी नर से कहे जुलम हम पर क्यों करते हो ॥८॥

"मारवाडी सम्मेलन" की अध्यक्षता

यह विरोध अधिक दिन नही चल सका। आपने जिस सुधारक भावना से पुस्तक लिखी और प्रकाशित करवाई थी, उसी से प्रेरित होकर आप "माहेश्वरी" तथा "चाँद" मे सामाजिक विषयो पर अपने विचारपूर्ण लेख समय-समय पर लिखते रहते थे। इसलिए आपकी भावना को समझने मे लोगो को अधिक समय नही लगा। सवत् १९९० मे जब आप कलकत्ता गए थे तब आप का विरोध करने वालो ने ही आपका विशेष सम्मान किया और सवत् २००१ मे दिल्ली मे हुए अखिल भारतीय मारवाडी सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन के आप सभापति चुने गए। इस अवसर पर आप का विशाल जलूस निकाला गया और विशेष रूप से आप का सम्मान किया गया।

मारवाडी सम्मेलन के कार्य-क्षेत्र मे समाज-सुधार का विषय सम्मिलित नही था। इसी कारण आपने एकाएक उसका सभापति होना स्वीकार नही किया था। वहुत आग्रह और विचार के वाद आपने इसलिए उसको स्वीकार किया कि उसमे विना किसी ऊँच-नीच के विचार के सभी मारवाडी अर्थात् मारवाड़ अथवा राजस्थान के निवासी सम्मिलित हो सकते थे। इसी कारण आप बीकानेर से अपने साथ जिन प्रतिनिधियो को लाये थे उनमे मेहतर जाति के पाचाराम, नागरमल तथा मेघवाल जाति के कुछ लोग भी सम्मिलित थे। सभा मण्डप मे ये सव के साथ मंच पर वैठे और इनके भाषण भी हुए। भोजन मे भी वे सव के साथ वैठते थे। देश के कोने-कोने से वडे-वडे मारवाडी सेठ-साहूकार दिल्ली आए थे। हरिजनो को अपने साथ उठने-वैठने और खाने आदि मे किसी ने कोई आपत्ति नही की। समाज सुधार की दिशा मे आप ने यह वहुत वडा कदम उठाया था। अध्यक्ष पद से दिया गया आप का भाषण भी अत्यन्त उग्र क्रान्तिकारी विचारो से ओत-प्रोत था। गीता के समत्व योग के भारतीय दृष्टिकोण से उसमे साम्यवाद की व्याख्या अत्यन्त रोचक, ओजस्वी और मर्मस्पर्शी भाषा मे की गई थी।

सम्मेलन के कार्य से निवट कर आप दिल्ली से हरद्वार गए और वहाँ दो मास रहे। आप के उस

प्रवास के दिनों मे वहाँ वयोवृद्ध श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी की अध्यक्षता मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उसमे आप सम्मिलित हुए और उसके लिए पधारे हुए हिन्दी के विद्वानो का आपने सत्कार व सम्मान किया। ज्वालापुर महाविद्यालय को कई एकड़ जमीन खरीदने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की। गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय, कन्या महाविद्यालय और सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के महावीर दल आदि का निरीक्षण करके उनको भी यथायोग्य आर्थिक सहायता प्रदान की।

सम्मेलन से त्याग-पत्र

अखिल भारतवर्षीय मारवाडी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से समाज सुधार के सम्बन्ध मे मतभेद होने के कारण आपने त्यागपत्र दे दिया। उसका कार्यालय कलकत्ता मे था। आप से विना परामर्श लिए सम्मेलन के मन्त्री ने केन्द्रीय धारा सभा मे उपस्थित किए गए डा० देशमुख के हिन्दू स्त्रियो के अधिकार सम्बन्धी विल का स्थानीय कमेटी की सम्मति से विरोध किया। महिलाओ के अधिकार के अन्यतम समर्थक होने के कारण आप उस विरोध से सहमत नही थे। त्याग-पत्र देने पर आप से अध्यक्ष बने रहने का बहुत अनुरोध किया गया, किन्तु आप ने यह कहकर उस अनुरोध को स्वीकार नही किया कि स्त्रियो के अधिकारो का विरोध करने वालो के साथ आप काम नही कर सकते।

कुछ विविध कार्य

धर्मशाला का निर्माण

आप के पूर्वजो ने बीकानेर मे स्टेशन के समीप जिस विशाल धर्मशाला, बावडी, कूए और मन्दिर आदि का निर्माण करवाया उसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। सवत् १९७९ मे लूणी मे इसलिए धर्मशाला वनवाई गयी कि राजस्थान के विविध स्थानो विशेषत बीकानेर से सिन्ध जाने वालो को वहाँ ट्रेन वदलने के कारण वडा कष्ट उठाना पडता था। उनके विश्राम व भोजन आदि के लिए वहाँ कोई व्यवस्था नही थी। उनको उस धर्मशाला से वडा आराम मिलने लगा।

जिमखाना

कराची मे आपने अनेक लोकोपकारो कार्यो मे सक्रिय भाग लिया, अनेक सार्वजनिक सस्थाएँ कायम की और उनके लिए आप के पिताजी ने और आपने कई बडे-बडे ट्रस्टो का निर्माण भी किया। उन ट्रस्टो के लिए अनेक विशाल भवनो की रजिस्ट्री करवा दी गई थी। कराची मे अगरेजो और मुसलमानो के खेल-कूद, आमोद-प्रमोद तथा मनोरजन के लिए अनेक क्लवें तथा जिमखाने आदि बने हुए थे। हिन्दुओ की कोई अपनी सस्था नहीं थी। अत वहाँ के हिन्दू नागरिको के अनुरोध पर आपके छोटे भाई श्री शिवरतन जी मोहता ने "श्री रामगोपाल गोवर्धन दास मोहता हिन्दू जिमखाना" के लिए एक विशाल भवन का निर्माण करवा दिया।

साहित्य भवन और विद्यालय

हिन्दी के प्रति आपके अनुराग की चर्चा यथास्थान की गई है। सिंध तथा कराची मे हिन्दी के लिए वैसी अनुकूलता नही थी। फिर भी आपने एक हिन्दी साहित्य भवन कायम करके वहाँ हिन्दी प्रचार तथा हिन्दी साहित्य के लिए एक केन्द्र कायम कर दिया। इसी प्रकार मारवाडी समाज के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था

श्री रामगोपाल हिन्दू जिमखाना, कराची ।

महिला मडल बीकानेर की एक सभा का दृश्य ।

न होने से उनकी वस्ती के केन्द्र मे उनके वालक-वालिकाओ की शिक्षा की सुविधा के लिए एक मारवाड़ी विद्यालय और एक मारवाडी कन्या पाठशाला स्थापित करवाई।

श्रीमती जीतावाई मातृ सेवा सदन

वीकानेर मे महिलाओ के लिए प्रसूति की कोई समुचित आधुनिक व्यवस्था नही थी, इसलिए प्रसव कालीन अनेक दुर्घटनाएँ होती थी। महिलाए सुव्यवस्था के अभाव मे प्रसूति सम्वन्धी रोगो से पीडित हो जाती थी, उनमे कई मर भी जाती थी। महिलाओ के इस कष्ट और अवोध शिशुओ की दुर्दशा आप सहन नही कर सके। इसलिए संवत् १९९७ मे आपने अपनी माता जी की पुण्य स्मृति मे श्रीमती जीतावाई मातृ सेवा सदन शहर के अपने विशाल भवन मे स्थापित किया। इसमे प्रसव के लिए सव प्रकार की आधुनिक सुविधाओ की व्यवस्था की गई। एक सुयोग्य नर्स और उपचारिकाएँ चौवीसो घण्टे निरन्तर वहाँ रहती हैं। इसमे १५ महिलाओ के लिए प्रसव का सुप्रवन्ध है। अनुमानत ६०० रु० मासिक खर्च आप अपने ट्रस्ट मे से देते हैं।

शरणार्थियो की सेवा

सन् १९४७ मे देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन होने पर पश्चिमी पजाव और सिन्ध से हजारो हिन्दू अपने परिवार के साथ खदेडे जाकर वीकानेर पहुँचे थे। कितने ही परिवार वहावलपुर के रास्ते पैदल चलकर वीकानेर आये थे। उन शरणार्थियो के लिए वीकानेर मे ऐसी कोई व्यवस्था नही थी। आपने कितने ही परिवारों को अपनी विशाल धर्मशाला तथा अन्य मकानों मे आश्रय दिया और उनके लिए वस्त्र एवं भोजन आदि का प्रवन्ध किया। अनेको को शनै. शनै· अपने और किराये के मकानो मे भी वसाया। कई वर्षो तक उनके लिए वस्त्र एव खान-पान की व्यवस्था जारी रखी गई। उनके वालक वालिकाओ की शिक्षा के लिए समुचित सहायता दी गई। ज्यो-ज्यो वे काम-काज मे लग कर आत्म निर्भर होते गए त्यो-त्यो उन्होने यह सहायता लेनी वन्द कर दी, परन्तु आपने किसी को निराश व निराश्रित नही रहने दिया। अनेक लोग आपकी सहायता के कारण अपने पैरो पर खड़े होकर अच्छे व्यापार-व्यवसाय मे लग गए। अनेक वालक सुशिक्षित होकर अच्छी नौकरियो मे लग गए। उनमे जो अपग थे अथवा जो अनाथ विधवाएँ थी उनको अव तक भी मासिक सहायता दी जाती है।

वहावलपुर से पैदल वीकानेर आने वालो मे हरिजनो की सख्या अधिक थी। उनको शुरू मे कोलायत जी मे रख कर उनके लिए वस्त्र व भोजन आदि का प्रवन्ध किया गया। वाद मे उनको गगानगर मे मुसलमानो द्वारा छोडी गई जमीनो पर आवाद करने मे सहायता दी गई। इस प्रकार कितने ही शरणार्थी परिवार आपकी सामयिक सहायता से उपकृत होकर स्वावलम्वी वनने मे समर्थ हुए। उनकी सेवा व सहायता करते हुए यह आप भूल ही गए कि आप और आपके कितने ही कुटुम्वी जन करोडो लाखो की जायदाद, व्यापार व्यवसाय तथा छोटे-वडे उद्योग-धन्धे छोड़ कर स्वय शरणार्थी वन कर वीकानेर आए थे। सवके दुख को अपना दुख मानकर आपने उसके निवारण का अत्यन्त यशस्वी एव सराहनीय काम किया।

महिला मंडल

महिलाओ के उत्थान के लिए उनको शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ महिलाओ की शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हुए आपने स्वतत्रता दिवस १५ अगस्त, १९४७ को महिला मंडल की स्थापना की और उसका सारा प्रवन्ध महिलाओ के ही हाथो मे रखा गया। आपकी सुशिक्षिता दोहिती श्रीमती रतन वाई दम्माणी "साहित्य रत्न" और श्रीमती गुलाव कुमारी जी शेखावत ने उसकी स्थापना मे विशेष भाग लिया है।

श्रीमती दम्माणी उसके प्रारम्भ से उसका सचालन बडी योग्यता से कर रही हैं। शहर के मध्य मे "श्रीमती जीताबाई मातृ सेवा सदन" के भवन से सटा हुआ अपना एक दूसरा विशाल भवन उसके लिए आपने दे दिया। इसमे महिलाओ की उपयोगी शिक्षा के साथ-साथ अनेक प्रकार के हस्त कौशल व दस्तकारी के काम सिखा कर उनको स्वावलम्वी बनाया जाता है। यह सस्था महिलाओ की प्रगति के लिए काम करने वाली प्रमुख सस्था है।

आपके पिछली आधी सदी के सार्वजनिक जीवन का सिंहावलोकन करने पर यह विना सकोच के कहा जा सकता है कि उसमे सार्वजनिक सेवा एव समाज सुधार की गगा, यमुना की सी दोनो धाराओ का सतत प्रवाह निरन्तर विद्यमान है। यही आपके जीवन की उत्कृष्ट विशेपता है। मानव जीवन के इस भारतीय आदर्श का कि वह सैंकडो हाथो से कमाये और हजारो हाथो से उसको लोकोपकार के कार्यों मे लगाये, आपने अपने जीवन मे सदा पालन किया है। आपने कभी भी अपनी इस उदार प्रकृति का सार्वजनिक प्रदर्शन नही किया। विज्ञापन और प्रकाशन से आप सदा ही कोसो दूर रहे हैं। साधना के रूप मे किये जाने वाली लोक सेवा और समाज सुधार का महान् कार्य आपके जीवन के महाव्रत रहे हैं। उनका पालन आपने निरन्तर धार्मिक अनुष्ठान की तरह किया है। सच तो यह है कि साम्प्रदायिक व धार्मिक कर्मकाड की अपेक्षा यही आपके लिए वास्तविक धर्म-कर्म है, जिसमे आप कभी भी चूकते नही।

साहित्य सृजन और वेदान्त की ओर झुकाव

धार्मिक गीतो और लावणियो की ओर आपका झुकाव बहुत छोटी अवस्था मे ही हो गया था। माता पिता की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण घर का वातावरण कुछ ऐसा था कि आप मे धार्मिक अभिरुचि पैदा करने के लिए विशेष प्रयत्न नही करना पडा। वह आप मे स्वाभाविक रूप से ही पैदा हो गई। माता जी से प्राप्त सस्कार और घर के निजी मन्दिर तथा उनमे होने वाले धार्मिक अनुष्ठान उसके लिए विशेष सहायक सिद्ध हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्वभावसिद्ध धार्मिक श्रद्धा तथा आस्तिक वृत्ति के साथ-साथ मुमुक्षु, भावना भी आप मे जन्मसिद्ध विद्यमान थी। पारिवारिक सस्कारो से प्राप्त रजोगुण के साथ सतोगुण की मात्रा भी कम नही थी। शका समाधान तो आप कुछ अधिक नही करते थे किन्तु सब बातो की गहराई मे जाकर उनको समझने का प्रयत्न आप अवश्य किया करते थे। हृदय की पवित्रता मस्तिष्क की जिज्ञासु भावना को प्रबल बनाने मे सहायक हुई। व्यर्थ का वितडावाद आपको पसन्द नही है। परन्तु मुमुक्षु दृष्टि भीतर ही भीतर अपना काम करती रही। उसका जो क्रमिक विकास हुआ उसकी सुनहरी रेखा आपके सारे जीवन मे व्याप्त है और वह निरन्तर चमकती ही गई है। उसके प्रकाश मे आप अपने जीवन का निर्माण करने मे लगे रहे।

श्री उत्तम नाथ जी महाराज का सत्सग

आपके पिता जी साधु-सतो और महात्माओ को भोजन के लिए बडी श्रद्धा से निमन्त्रित किया करते थे। आप उनसे भी कुछ न कुछ ग्रहण करने का प्रयत्न किया करते थे। परन्तु अधिकाश साधु केवल भोजन भट्ट होते थे और उनसे आपको सीखने के लिए कुछ भी नही मिलता था। इसलिए आपकी उन पर श्रद्धा नही जम सकी। आप उनको समाज के लिए भार मान कर देश को निरुद्यमी बनाने और उसका पतन करने वाले मानते थे। परन्तु श्री उत्तम नाथ जी बहुत ही त्यागी, सदाचारी, विद्वान् तथा स्वतत्र विचार के महात्मा थे। वेदान्त दर्शन के वे उच्चकोटि के मर्मज्ञ थे। वे जब आपके यहाँ भोजन करने आए तब उनसे आपकी बातचीत हुई। आपने उनसे अपनी मनोभावना प्रगट की। आप तब गीता का स्वाध्याय प्रारम्भ कर चुके थे और गीता पर लिखा गया लोकमान्य का "गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" भी आपने पढ लिया था। वेदान्त के निवृत्ति मार्ग पर आपकी श्रद्धा नही थी, इसलिए आपने श्री उत्तमनाथ जी के सम्मुख वेदान्त के निवृत्ति मार्ग के सम्बन्ध मे अपनी शकाएँ उपस्थित की। उन्होने कहा कि वास्तव मे वेदान्त का ठीक-ठीक रूप लोगो ने नही समझा है और वह निवृत्ति-परक और अवनति का कारण नही है। तुम मेरे सत्संग मे आकर गीता की कथा सुनो और अपनी शंकाओ का समाधान करो। तब तुम वेदान्त का वास्तविक रूप समझ सकोगे।" आपकी गोवरधन सागर बगीची मे जिसको कि "पोह" कहते थे वे टहरा करते थे। उनके सत्सग मे जाना आपने शुरू किया। वे गीता की निवृत्तिपरक टीकाओ के आधार पर कथा और वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त की विशेष व्याख्या किया करते थे। विशेष प्रसगो पर वे अनेक दृष्टान्त देकर और भजन गाकर विषय को बडा रोचक तथा आकर्षक बना दिया करते थे। धर्म व भक्ति के नाम पर प्रचलित पोल पाखड का बडी निर्भयता से खडन किया करते थे। सामाजिक कुरीतियो और भ्रष्टाचार की भी बडी कठोर आलोचना किया करते थे। उनके उपदेशो मे आपका आकर्षण व रुचि दिन पर दिन बढ़ती गई। वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त मे आपका विश्वास जम गया। आप यह मानने लग गए कि उसको

समझ कर उसके अनुकूल आचरण करने मे ही मनुष्य का सारा पुरुषार्थ निहित है। जीवन की सफलता का यह मर्म आपके हृदय और मस्तिष्क मे पूरी तरह बैठ गया।

स्वामी रामतीर्थ के भाषणो का अध्ययन

आपकी गोवरधन सागर की बगीची मे एक बार विहार के दो साधु ठहरे। उनके साथ आपकी चर्चा हुई। उन्होने "विचार सागर" की बहुत कटु आलोचना की। स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यान पढने का आपको परामर्श दिया। आपने लखनऊ से उनके व्याख्यानो के २८ भाग मगाकर देखे और "गीता रहस्य" भी एक बार फिर ध्यान से पढा। गीता पर लिखे गये अन्य निबन्धो और उसके भाष्य तथा टीकाओ की अपेक्षा इन पुस्तको की एक यह विशेषता है कि जहाँ दूसरो मे दया, सत्य, अहिंसा, क्षमा, सन्तोष, आर्जवता आदि नीति धर्मों को नित्य और शाश्वत माना गया है और हिंसा, काम, क्रोध, लोभ, छल, कपट आदि को सदा अधर्म माना गया है वहाँ इनमे इन सब के सदुपयोग करने और दुरुपयोग से बचने की विवेक दृष्टि आपको प्राप्त हुई जिसके आधार पर आप इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब उक्त नीति धर्मों से समाज की व्यवस्था बिगडती है तब यही अधर्म का रूप धारण कर लेते हैं और अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब हिंसा, काम, क्रोध, आदि अधर्म माने जाने वाले आचरणो का सदुपयोग समाज की सुव्यवस्था के लिये आवश्यक हो जाता है। तब यही धर्म का रूप धारण कर लेते हैं। वेदान्त के सिद्धान्त को जीवन के व्यवहार मे उपयोग करने का यह महत्व आपकी समझ मे आने लगा और उसमे आपका विश्वास एव श्रद्धा जमती चली गई। अपने अनुभव और विचार से आपका वह विश्वास और श्रद्धा सुदृढ होती गई।

"सात्विक जीवन" और "दैवी सम्पद्"

सवत् १९८३ मे आपने गीता के आधार पर "सात्विक जीवन" नाम की पहली पुस्तक लिखी। वह बहुत पसन्द की गई। उसमे गीता के कई श्लोको का सग्रह सरल हिन्दी के अर्थों के साथ दिया गया था और गीता द्वारा प्रतिपादित जीवन के सात्विक पहलू पर प्रकाश डाला गया था। सवत् १९८४ मे उसका दूसरा सस्करण प्रकाशित किया गया और १९८७ मे तीसरा और फिर चौथा सस्करण प्रकाशित हुआ। इसी विषय का कुछ अधिक विस्तार करते हुए सवत् १९८७ मे "दैवी सम्पद" नाम से आपने एक बडी पुस्तक लिखी। वह भी बहुत पसन्द की गई। समाचार पत्रो मे उसकी अत्यन्त उच्चकोटि की आलोचना हुई। लन्दन के "इडियन मैगे-जीन एण्ड रिव्यू" ने जुलाई सन् १९३१ के अक मे उसकी विस्तृत आलोचना करते हुए लिखा था कि "भारतीय इतिहास के इस युग परिवर्त्तन के अवसर पर, मि० मोहता ने, जो कि दर्शन-शास्त्र के एक उच्च कोटि के प्रकाण्ड पडित हैं, इस (पुस्तक) मे "गीता" के उच्च सिद्धान्तो की सुस्पष्ट व्याख्या करके तथा मानव सेवा मे आत्म-त्याग के महत्व पर जोर देकर, समाज सुधार तथा अन्तर्राष्ट्रीय भातृभाव के पुनीत कार्य की सेवा की है। उनका किया हुआ मनोगत भावो की गुत्थियो का विश्लेषण, इस बात का प्रमाण है कि वे मानव समाज के मर्मज्ञ हैं और वह (विश्लेषण) अर्वाचीन मनोविज्ञान की समस्याओ मे से एक को ठोस सहायता प्रदान करता है। पूर्व और पश्चिम दोनो के सुविज्ञ विचारवानो का झुकाव प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक समस्या के विषय मे अन्त-राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने की ओर हो रहा है और लेखक ने यह पर्याप्त रूप से स्पष्टतया प्रदर्शित कर दिया है कि सम्पूर्ण मानव कर्म किस तरह विश्व-कल्याणार्थ प्रेम से प्रेरित होकर किए जाने चाहिए। लोगो की इस धारणा की धज्जियाँ उडा दी गई हैं कि हिन्दू दर्शन शास्त्रो का अध्ययन केवल ध्यानावस्थित जीवन की ओर ही ले जाता है, और साथ ही साथ आत्मा की मुक्ति के लिए समाजसेवा मे आत्म-समर्पण करने के आदर्श पर

जोर दिया गया है। पुस्तक की मनोहरता, उसकी सुस्पष्ट और सुललित वर्णन शैली और सार्वजनिक भ्रातृभाव की भावना मे, जिसकी भारत की भावी उन्नति के लिए इस प्रकार आवश्यकता है, भरी हुई है। इतना ही नही किन्तु राजनीतिक समस्याओ की पूर्ति का भी प्रयत्न किया गया है—सकुचित राष्ट्रीयता के भाव से नही वरन् प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृ भाव के विस्तृत दृष्टिकोण से। ऐसी अत्युत्तम पुस्तक के लिए विश्व मे "प्रेम, सत्य एवं शान्ति-स्थापना" के कार्य मे सलग्न रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की ओर से मि० मोहता बधाई के पात्र हैं।"

भारत के प्राय समस्त समाचार पत्रो और पत्रिकाओ मे इस पुस्तक की इसी प्रकार की उच्चकोटि की समालोचना की गई थी। मद्रास के दैनिक "हिन्दू" मे पुस्तको की समालोचना को अधिक स्थान नही दिया जाता है, परन्तु इस पुस्तक की विस्तृत आलोचना करते हुए लिखा गया था कि "यदि भगवद्गीता के व्यवहार दर्शन का यह सदेश सही-सही समझ लिया जाय और व्यावहारिक समाज जीवन मे कार्य रूप मे परिणित कर लिया जाय तो उन नाना प्रकार के दोषो से, जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जातियो मे दीर्घ काल से प्रचलित हैं, सहज ही मे निस्तार हो सकता है। अकर्मण्यता मृत्यु है और क्रियाशीलता जीवन है, यही गीता का सन्देश है।"

लेखक की भाषा धारावाहिक और ओजपूर्ण है और सर्वत्र विषय का प्रतिपादन तर्क शैली का विकाश जितना प्रशसनीय है उतना ही विशुद्ध है।"

श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय ने "सस्ता साहित्य मण्डल" की ओर से उसको प्रकाशित करने की अनुमति आपसे प्राप्त की और उसके कई सस्करण उन्होने प्रकाशित किए। श्री उत्तमनाथ जी महाराज ने भी उन दोनो पुस्तको को बहुत पसन्द किया। फिर आपने उनसे "ईशावास्य, कठ और बृहदारण्यक उपनिषद पढ कर बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य का मैत्रेयी को उपदेश और मधुविद्या के भावो पर दो बहुत सुन्दर भजन रचकर उनको सुनाये जिनसे वह बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि "मेरा परिश्रम सफल हो गया।"* (ये भजन प्रेम भजनावली नामक

*** आत्म-प्रेम**

जग में प्यारे लगे सब अपने लिये।
अपने लिये, अपने आपके लिए, जग में प्यारे० ॥ टेर ॥

अन्तरा

पति पत्नी को पत्नी पति को, पिता पुत्र प्यारे अपने लिये।
मात सुता भगिनी और बन्धु, मित्र भी प्यारे लगते अपने लिए ॥१॥
न्यात जात और सगे सम्बन्धी, गुरु शिष्य प्यारे अपने लिए।
राजा रैयत ग्राम नगर और, देश भी प्यारा लगता अपने लिए ॥२॥
अन धन वैभव वस्त्र आभूषण, भूमि भवन प्यारे अपने लिए।
पशु पक्षी वन वृक्ष लता फल, नदी पहाड़ प्यारे अपने लिए ॥३॥
आश्रम वर्ण उपाधि बुद्धि बल, मान बड़ाई प्यारी अपने लिए।
आंख नाक मुख कान त्वचा मन, देह भी प्यारी लगती अपने लिए ॥४॥
वेद शास्त्र और धर्म कर्म सब, ईश्वर भी प्यारा लगता अपने लिए।
देवी देव स्वर्गादि लोक पुनि, मुक्ति भी प्यारी लगती अपने लिए ॥५॥
जो कोई जिसको अपना माने, उसको वह प्यारा लगता अपने लिए।
माने बेगाना जो कोई जिसको, वह नहीं प्यारा लगता अपने लिए ॥६॥
जितने पदारथ अपने माने, शेष बेगाने होते अपने लिए।
अपनी वस्तु जब होय बेगानी, फिर नहीं प्यारी लगती अपने लिए ॥७॥

"मैं इस प्राक्कथन को अपने मित्र पंडित कृष्णकान्त मालवीय को धन्यवाद देने के साथ समाप्त करना चाहता हूँ जिन्होंने लेखक का मुझ से परिचय करवाया और पंडित चिन्तामणि विद्याभूषण शास्त्री को भी मैं धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के कुछ मुख्य भाग मुझ को सुनाने और उनकी व्याख्या करने की कृपा की।"

संवत् १९९४ में उसको गीता का व्यवहार दर्शन नाम से पहली बार प्रकाशित किया गया था। वह ग्रन्थ लगभग ५५० पृष्ठों का है। बहुत से विद्वानों ने उसको पढ़कर बड़ी प्रशंसा की और प्रयाग के 'पायोनियर', लाहौर के 'ट्रीब्यून', मद्रास के 'हिन्दू' पूना के 'केसरी' बम्बई के 'बौम्बे क्रोनीकल' आदि देश के प्राय सभी पत्रों में इस पुस्तक की बहुत प्रशंसात्मक समालोचनाएँ प्रकाशित हुईं। १९९५ में दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। दोनों संस्करण क्रमश २५०० और ५००० प्रकाशित हुए। संवत् १९९६ में तीसरा संस्करण १०००० प्रतियों का प्रकाशित हुआ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ग्रन्थ के पहले दो संस्करण लोगों को बिना कीमत दिये थे, जिसका उल्लेख अणे जी ने अपने प्राक्कथन में किया है। तीसरे संस्करण में ग्रन्थ की नाममात्र कीमत एक रुपया रखी गई है।

"गीता विज्ञान"

गीता के इस व्यवहार दर्शन को सरल, सुगम और सुबोध बनाने के लिए आपने "गीता विज्ञान" नाम से एक और पुस्तक लिखी। युवकों और विद्यार्थियों के लिए रोचक बनाने के उद्देश्य से पिता-पुत्र के संवाद के रूप में उसको लिखा गया। उसका पहला संस्करण ८००० प्रतियों का और दूसरा १०००० प्रतियों का प्रकाशित किया गया। आपकी ये दोनों पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुई हैं और बिना किसी विज्ञापन तथा प्रचार के भी उनकी माँग देश के कोने-कोने से निरन्तर आती रहती है। दक्षिण में हिन्दी का प्रचार न होने पर भी वहाँ से इन पुस्तकों की विशेष माँग है। हिन्दू विश्वविद्यालय में "गीता का व्यवहार दर्शन" पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

गीता के इस व्यवहार दर्शन को आपने केवल लेखनी से ही नहीं लिखा किन्तु अपने जीवन को भी उसके अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया। उसके लिए आप अपनी गोवर्धन सागर बगीची में नियमित रूप से प्रतिदिन सत्संग, कथा एवं कीर्तन आदि करते हैं। यह पहले शहर में अपने पुराने मकान में होता था। अपने जीवन में व्यवहार दर्शन को उतारने का जो परिणाम हुआ उसकी चर्चा यथा प्रसंग की गई है।

"मान पद्य संग्रह"

संवत् १९९३ में जोधपुर के सूरदास साधु मोहन राम जी बीकानेर आए और वे आपके यहाँ ठहरे। वे महाराजा मानसिंह जी के व्यावहारिक वेदान्त के सम्बन्ध में बहुत से भजन गाया करते थे। वे आपके विचारों के सर्वथा अनुकूल थे और आपको बहुत पसन्द आए। श्री आत्माराम जी हर्ष उनको गाने के समय लिख लिया करते थे। उन भजनों का पहला संग्रह "मान पद्य संग्रह" अथवा "व्यावहारिक आत्मज्ञान" नाम से पहले भाग के रूप में संवत् १९९४ में आपने प्रकाशित करवाया, उसका दूसरा भाग संवत् १९९५ में और तीसरा भाग संवत् २००७ में प्रकाशित करवाया गया। प्रेम भजनावली के नाम से आपके वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप और समाज सुधार के सम्बन्ध में रचे गये भजन भी प्रकाशित किए गए। इन भजनों को भी लोगों ने बहुत पसन्द किया और उनसे समाज सुधार तथा वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप के प्रचार में बड़ी सहायता मिली। ये भजन बीकानेर के

लोगो मे बडे लोकप्रिय हैं।*

सवत् २००९ मे आपने "ईशावास्य उपनिषद्" का व्यावहारिक भाष्य लिखा और विभिन्न विपयो जैसे, ईश्वर, योग, धर्म, यज्ञ और भक्ति आदि के सम्बन्ध मे भी कुछ छोटे-छोटे निवन्ध लिखे। इनको प्रश्नोत्तर के रूप मे वहुत ही सरल और सुबोध शैली मे लिखा गया। श्री कृष्ण और गौतम वुद्ध मे विचारो की समता वताते हुए भी आपने एक सुन्दर निवन्ध लिखा है।

समाज सुधार सम्बन्धी साहित्य

वेदान्त सम्बन्धी इस उच्च साहित्य के अलावा भी आपने अन्य उपयागी एव सामयिक साहित्य का सृजन किया। वेदान्त की तरह समाज सुधार का विषय भी आपको अत्यन्त प्रिय है। समाज सुधार मे भी हरिजनो की सेवा और महिलाओ के उद्धार मे आपकी विशेष रुचि रही है। समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर आपने सवसे पहले कुछ लावणियाँ, गीत और भजन रचे। अपने मन्दिरो के कीर्तन और डाडियो के खेल मे उनका उपयोग सवसे पहले किया गया। धीरे-धीरे समाचार पत्रो मे भी लिखना शुरू किया। "माहेश्वरी" मे लिखे गए "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" लेख वहुत पसन्द किए गए। यह लेख माला पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित करके बाँटी गई। महिलाओ के सम्बन्ध मे "अवलाओ का इन्साफ" और "अवलाओ की पुकार" पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुईं।

सामयिक साहित्य

सामयिक राजनीतिक विषयो पर भी आपने अपने विचार समाचार पत्रो द्वारा प्रकट किए। "स्वतन्त्रता की तलाश" और "समय की माँग" नाम से आपने दो विचारपूर्ण सामयिक ग्रन्थ लिखे। "स्वतन्त्रता की तलाश" पुस्तिका सन् १९४५ ई० मे तव लिखी गयी थी जव लार्ड वेवल ने शिमला मे काग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियो के साथ उस ऐतिहासिक वार्ता का श्रीगणेश किया था, जिसका परिणाम अत मे १९४७ मे अग्रेजो के यहाँ से विदा होने और देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के रूप मे प्रगट हुआ था। आपके विचार महात्मा गाधी और काग्रेस के नेताओ से मेल नहीं खाते थे। "स्वतन्त्रता की तलाश" पुस्तक मे आपने उस समय की स्थिति का विशद विवेचन किया था और यह प्रगट किया था कि अधिकाश भारतवासियो मे वे गुण अभी पैदा नही हुए हैं जो

---

* **गीतासार**

मिल करो सर्वो से प्यार, मज़ा ये ही जिन्दगानी का ॥ **टेर** ॥

अन्तरा

वडे भाग मानुप देह पाई, राग द्वेष में अगर गँवाई। लख चौरासी वीच हाल होगा हैरानी का ॥ १ ॥
एक ही राम जगत सारी में, पशु पच्ची और नर नारी में। छोडो रस्ता वैर भाव और खैंचा तानी का ॥ २ ॥
दु खियों ऊपर दया जो रखता, सुखी जनों को मित्र समझता। मोद करे मन में सुन के यश हरिजन दानी का ॥ ३ ॥
खल दुष्टों से करे किनारा, सो होवे भगवत को प्यारा। समता वुद्धि रखे भला करता सव प्राणी का ॥ ४ ॥
वोले सत्य वचन प्रिय हित के, निर्मल सरल भाव हो चित के। हिंसा छल अभिमान करे नहीं काम गिलानी का ॥ ५ ॥
काम क्रोध के रहे न वश में, हर्ष शोक नहीं यश अपयश में। जीते ममता लोभ चिन्ह यह सच्चे ज्ञानी का ॥ ६ ॥
करतव समझ कर्म शुभ करना, अहकार को दम नहीं भरना। जग में रहो निसग सार भगवत की वानी का ॥ ७ ॥
हरदम ध्यान प्रभू का धरिये, सव कुछ उसके अर्पण करिये। दूर करे दु:ख द्वन्द पति लक्ष्मी महारानी का ॥ ८ ॥

स्वतन्त्रता की प्राप्ति-और उसको सभालने के लिए आवश्यक हैं। उसमे आपने जो स्वतन्त्र विचार प्रगट किए थे वे अब सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

इसी प्रकार सवत् २००७ मे आपने "समय की मांग" अथवा "कृष्ण की क्रान्ति" नाम से एक और सामयिक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसमे आपने वर्तमान राज्य व्यवस्था की असफलता की सम्भावना को प्रगट करते हुए गीता के आधार पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक चार प्रकार की क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था। वर्तमान मे प्रजातन्त्र को देश के लिए अनुपयुक्त बताते हुए आपने नेहरू जी जैसे "सर्वभूत हिते रता" अर्थात् सब के हित मे लगे रहने वाले महापुरुषो के नेतृत्व मे अधिनायक शासन पद्धति का समर्थन किया। साम्यवादी भावो के उत्पन्न होने की अनिवार्यता को भी आपने प्रगट किया।

समय-समय पर दिए गए आपके भाषण भी आपके ऐसे ही विचारो से ओत-प्रोत रहते थे। दिल्ली मे सवत् २००१ मे मारवाडी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए अपने भाषण मे आपने सामाजिक एव राजनैतिक क्रान्ति का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया था। अधिक मुनाफा पैदा करने के लोभ व लालच की आपने तीव्र निन्दा की थी और उसी की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप साम्यवाद की भावना का प्रबल होना बताया था।

कुछ सामयिक निबन्ध व लेख

समय-ससय पर आप समाचार पत्रो तथा छोटी-छोटी विज्ञप्तियो द्वारा भी सामयिक विषयो पर अपने क्रान्तिकारी विचार प्रगट करते रहते हैं। उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह लेख है जो पहले दिल्ली के हिन्दी दैनिक "नव भारत टाइम्स" मे प्रकाशित हुआ था और बाद मे जिसको हिन्दी अग्रेजी दोनो मे विज्ञप्तियो के रूप मे प्रकाशित किया गया था। इसमे धनिक वर्ग को एक कठोर किन्तु सामयिक चेतावनी दी गई थी। उस लेख मे आपने एक क्रान्तिकारी योजना उपस्थित की थी। वह दिल्ली के दैनिक "नव भारत टाइम्स" के १ मई और ४ मई १९५१ के अको मे "देश के सम्पत्तिवानो के हित का सुझाव" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। वर्तमान आर्थिक स्थिति के भीषण परिणामो से बचने के लिए उसमे जोरदार अपील की गई थी। सम्पत्तिवानो के नाम से वह इसलिए की गई कि आपकी दृष्टि मे उन घातक दुष्परिणामो मे उनका पहला बलिदान होना सुनिश्चित है। सम्पत्तिवान से आपका अभिप्राय केवल व्यवसायपतियो और उद्योगपतियो से ही नही था किन्तु वे सब लोग आपकी दृष्टि मे सम्पत्तिवान हैं जिनके पास अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति जमा है, भले ही वे व्यापारी, उद्योगपति, जमीदार, जागीरदार, पडा पुरोहित, साधु या महन्त, सरकारी कर्मचारी, डाक्टर, वकील, इजीनियर, शिक्षक, कलाकार, साहित्यकार, दलाल, ठेकेदार और श्रमिक आदि मे से कोई भी क्यो न हो?

आपने ऐसे समस्त लोगो से यह अपील की थी कि उनको अपनी सचित सम्पत्ति, चाहे वह किसी भी रूप मे क्यो न हो, सरकार को सौंप देनी चाहिए और सम्पत्ति अर्पित करने वालो को हिस्सेदार मानकर एक सार्व-जनिक धरोहर यानी "पब्लिक वैल्थ ट्रस्ट" कायम किया जाना चाहिए। इस प्रकार इस ट्रस्ट के कायम किए जाने से उससे होने वाले लाभो की आपने बहुत विस्तार से व्याख्या की थी और उसका सबसे बडा लाभ यह बताया था कि सम्पत्तिवालो को सम्पत्ति सँभालने की चिन्ता दूर होकर उनको सभावित सकट से भी सर्वथा मुक्ति मिल जाएगी। इस अपील अथवा चेतावनी का एक एक शब्द वेदना, अनुभूति तथा भविष्य के चिन्तन से लिखा गया था। वह आज भी वैसी ही महत्त्वपूर्ण है। यदि आज भी उसका पालन किया जा सके तो वर्तमान एव भविष्य की अनेक भयानक प्रतीत होने वाली समस्याएं सहज मे हल की जा सकती हैं। सरकार और सम्पत्तिवान दोनो उस पर समय रहते ध्यान दे सकें तो सारे देश और सम्पूर्ण जनता का बहुत बडा हित हो सकता है और साम्यवाद रूपी उस विपत्ति को भी टाला जा सकता है जिसमे धनवानो को अपना निश्चय विनाश दीख पडता

श्री स्वामी उत्तम नाथ जी महाराज—मोहता जी के परमपद प्राप्त गुरुजी

स्वतन्त्रता की प्राप्ति-और उसको सभालने के लिए आवश्यक हैं। उसमे आपने जो स्वतन्त्र विचार प्रगट किए थे वे अब सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

इसी प्रकार सवत् २००७ मे आपने "समय की माँग" अथवा "कृष्ण की क्रान्ति" नाम से एक और सामयिक ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसमे आपने वर्तमान राज्य व्यवस्था की असफलता की सम्भावना को प्रगट करते हुए गीता के आधार पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक चार प्रकार की क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था। वर्तमान मे प्रजातन्त्र को देश के लिए अनुपयुक्त बताते हुए आपने नेहरू जी जैसे "सर्वभूत हिते रता" अर्थात् सब के हित मे लगे रहने वाले महापुरुषो के नेतृत्व मे अधिनायक शासन पद्धति का समर्थन किया। साम्यवादी भावो के उत्पन्न होने की अनिवार्यता को भी आपने प्रगट किया।

समय-समय पर दिए गए आपके भाषण भी आपके ऐसे ही विचारो से ओत-प्रोत रहते थे। दिल्ली मे सवत् २००१ मे मारवाडी सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए अपने भाषण मे आपने सामाजिक एव राजनैतिक क्रान्ति का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया था। अधिक मुनाफा पैदा करने के लोभ व लालच की आपने तीव्र निन्दा की थी और उसी की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप साम्यवाद की भावना का प्रबल होना बताया था।

कुछ सामयिक निबन्ध व लेख

समय-ससय पर आप समाचार पत्रो तथा छोटी-छोटी विज्ञप्तियो द्वारा भी सामयिक विषयो पर अपने क्रान्तिकारी विचार प्रगट करते रहते हैं। उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह लेख है जो पहले दिल्ली के हिन्दी दैनिक "नव भारत टाइम्स" मे प्रकाशित हुआ था और बाद मे जिसको हिन्दी अग्रेजी दोनो मे विज्ञप्तियो के रूप मे प्रकाशित किया गया था। इसमे धनिक वर्ग को एक कठोर किन्तु सामयिक चेतावनी दी गई थी। उस लेख मे आपने एक क्रान्तिकारी योजना उपस्थित की थी। वह दिल्ली के दैनिक "नव भारत टाइम्स" के १ मई और ४ मई १९५१ के अको मे "देश के सम्पत्तिवानो के हित का सुझाव" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। वर्तमान आर्थिक स्थिति के भीषण परिणामो से बचने के लिए उसमे जोरदार अपील की गई थी। सम्पत्तिवानो के नाम से वह इसलिए की गई कि आपकी दृष्टि मे उन घातक दुष्परिणामो मे उनका पहला बलिदान होना सुनिश्चित है। सम्पत्तिवान से आपका अभिप्राय केवल व्यवसायपतियो और उद्योगपतियो से ही नही था किन्तु वे सब लोग आपकी दृष्टि मे सम्पत्तिवान हैं जिनके पास अपनी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति जमा है, भले ही वे व्यापारी, उद्योगपति, जमीदार, जागीरदार, पडा पुरोहित, साधु या महन्त, सरकारी कर्मचारी, डाक्टर, वकील, इजीनियर, शिक्षक, कलाकार, साहित्यकार, दलाल, ठेकेदार और श्रमिक आदि मे से कोई भी क्यो न हो?

आपने ऐसे समस्त लोगो से यह अपील की थी कि उनको अपनी सचित सम्पत्ति, चाहे वह किसी भी रूप मे क्यो न हो, सरकार को सौंप देनी चाहिए ओर सम्पत्ति अर्पित करने वालो को हिस्सेदार मानकर एक सार्व-जनिक धरोहर यानी "पब्लिक वैल्थ ट्रस्ट" कायम किया जाना चाहिए। इस प्रकार इस ट्रस्ट के कायम किए जाने से उससे होने वाले लाभो की आपने बहुत विस्तार से व्याख्या की थी और उसका सबसे बडा लाभ यह बताया था कि सम्पत्तिवालो को सम्पत्ति सँभालने की चिन्ता दूर होकर उनको सभावित सकट से भी सर्वथा मुक्ति मिल जाएगी। इस अपील अथवा चेतावनी का एक एक शब्द वेदना, अनुभूति तथा भविष्य के चिन्तन से लिखा गया था। वह आज भी वैसी ही महत्त्वपूर्ण है। यदि आज भी उसका पालन किया जा सके तो वर्तमान एव भविष्य की अनेक भयानक प्रतीत होने वाली समस्याएँ सहज मे हल की जा सकती हैं। सरकार और सम्पत्तिवान दोनो उस पर समय रहते ध्यान दे सकें तो सारे देश और सम्पूर्ण जनता का बहुत बडा हित हो सकता है और साम्यवाद रूपी उस विपत्ति को भी टाला जा सकता है जिसमे धनवानो को अपना निश्चय विनाश दीख पडता

श्री स्वामी उत्तम नाथ जी महाराज—मोहता जी के परमपद प्राप्त गुरुजी

है। पर यह एक अत्यन्त कडवी दवा है जिसको आसानी से गले के नीचे नही उतारा जा सकता।

बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व

आपकी साहित्य-सेवा और साहित्य-साधना का उचित सम्मान करने के लिए आपको सुजानगढ मे हुए बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का सभापति चुना गया था। आपने अपने भाषण मे साहित्य के क्षेत्र मे भी क्राति लाने की आवश्यकता का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया। वह भाषण बहुत ही प्रभावशाली था और उसकी सभी क्षेत्रो मे विशेष प्रशसा की गई थी। वह आज भी वैसा ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। वहाँ से लौटते हुए आप सरदार शहर गये। वहाँ आपने सेठिया औषधालय के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व किया। उसके अलावा वहाँ और रतनगढ मे भी सार्वजनिक सभाओ मे अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए।

गुरु उत्तमनाथ जी महाराज

आपको गीता के गम्भीर अध्ययन की ओर प्रवृत्त करके वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप को जानने के लिए प्रेरित करने वाले आपके गुरु उत्तमनाथ जी महाराज के सम्बन्ध मे यहाँ कुछ आवश्यक चर्चा करना अप्रासगिक नही होगा। उनके ही कृपा प्रसाद से आपको वेदान्त और गीता सम्बन्धी उच्चकोटि का गम्भीर साहित्य लिखने की प्रेरणा मिली और देश की सामयिक समस्याओ पर क्रान्तिकारी दृष्टि से विचार करने के लिए स्फूर्ति मिली। सवत् १९८५ मे आपको जोधपुर से समाचार मिला कि श्री उत्तमनाथ जी महाराज मकान से गिरकर बुरी तरह घायल हो गए हैं और चिकित्सा के लिए अस्पताल मे भरती किये गए है। आप उनको देखने और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था करने के लिए वहाँ पहुँच गए। नाक और मुँह की हड्डियो के साथ कुछ दाँत भी टूट गए थे। वे टूटी हुई हड्डियाँ उन्होने विना क्लोरोफार्म लिए आपरेशन करवा कर निकलवा ली और कुछ भी पीडा अनुभव नही की। दो तीन मास मे वे अच्छे हुए किन्तु मुँह मे नासूर की शिकायत रह गई थी। उसका पीप निकलकर पेट मे जाता था। उसके एक वर्ष बाद जोधपुर मे ही एक और दुर्घटना घट गई। जगल मे एक पागल सूअर ने उन पर हमला कर दिया और उनको काट खाया। घायल होने पर भी उन्होने सूअर को ऐसा पकडा कि वह अपने को छुडा नही सका। दूसरे लोग शोर सुनकर आए और उन्होने उस पागल सूअर को ठिकाने लगा दिया। इसकी चिकित्सा के लिए उनको कसौली भेजा गया। सूअर के काटने का उपचार तो हो गया किन्तु नासूर की शिकायत वैसी ही बनी रही। उससे जलोदर हो गया। इसी बीमारी के कारण सवत् १९८८ माघ सुदी १० को बीकानेर मे आपकी गोवरधन सागर बगीची मे उनका देहान्त हो गया। उनके गुरु नवल नाथ जी बहुत लोभी, क्रोधी और क्रूर प्रकृति के थे। उसके विरुद्ध उत्तमनाथ जी पूर्ण विरक्त और शान्त प्रकृति के थे जिससे उनके प्रति लोगो मे बहुत श्रद्धा थी। यह बात गुरु को सहन नही होती थी। नवल नाथ जी उत्तम नाथ जी द्वारा भेंटे लेकर धन संग्रह करना चाहते थे, यह काम वह नही कर सकते थे। नवल नाथ जी नाथ सम्प्रदाय का चिह्न कानो मे मुद्राएँ रखते थे और उत्तमनाथ जी ने कान फडा कर मुद्रा पहनना स्वीकार नही किया था। अन्य साम्प्रदायिक चिह्न भी वे धारण नही करते थे। परन्तु उनके समाधि भवन मे जो उनका चित्र रखा गया है उसमे उनके कानो मे चाँदी की मुद्रायें दिखाई गई हैं, यह सरासर धोखेबाजी है। इन और ऐसे कुछ कारणो से जीवन काल मे उनकी आपस मे नही बनती थी और नवल नाथ जी उनसे द्वेष रखते थे। श्री उत्तमनाथ जी महाराज मे आपकी श्रद्धा भक्ति आज भी वैसी ही बनी हुई है। "गीता व्यवहार दर्शन मे उनका चित्र प्रकाशित करके आपने उनके प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति व्यक्त की।

है। पर यह एक अत्यन्त कडवी दवा है जिसको आसानी से गले के नीचे नही उतारा जा सकता।

बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व

आपकी साहित्य-सेवा और साहित्य-साधना का उचित सम्मान करने के लिए आपको सुजानगढ मे हुए बीकानेर राज्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का सभापति चुना गया था। आपने अपने भाषण मे साहित्य के क्षेत्र मे भी क्राति लाने की आवश्यकता का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया। वह भाषण बहुत ही प्रभावशाली था और उसकी सभी क्षेत्रो मे विशेष प्रशसा की गई थी। वह आज भी वैसा ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। वहाँ से लौटते हुए आप सरदार शहर गये। वहाँ आपने सेठिया औषधालय के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व किया। उसके अलावा वहाँ और रतनगढ मे भी सार्वजनिक सभाओ मे अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए।

गुरु उत्तमनाथ जी महाराज

आपको गीता के गम्भीर अध्ययन की ओर प्रवृत्त करके वेदान्त के व्यावहारिक स्वरूप को जानने के लिए प्रेरित करने वाले आपके गुरु उत्तमनाथ जी महाराज के सम्बन्ध मे यहाँ कुछ आवश्यक चर्चा करना अप्रासगिक नही होगा। उनके ही कृपा प्रसाद से आपको वेदान्त और गीता सम्बन्धी उच्चकोटि का गम्भीर साहित्य लिखने की प्रेरणा मिली और देश की सामयिक समस्याओ पर क्रान्तिकारी दृष्टि से विचार करने के लिए स्फूर्ति मिली। सवत् १९८५ मे आपको जोधपुर से समाचार मिला कि श्री उत्तमनाथ जी महाराज मकान से गिरकर बुरी तरह घायल हो गए हैं और चिकित्सा के लिए अस्पताल मे भरती किये गए हैं। आप उनको देखने और चिकित्सा की समुचित व्यवस्था करने के लिए वहाँ पहुँच गए। नाक और मुँह की हड्डियो के साथ कुछ दाँत भी टूट गए थे। वे टूटी हुई हड्डियाँ उन्होने बिना क्लोरोफार्म लिए आपरेशन करवा कर निकलवा ली और कुछ भी पीडा अनुभव नही की। दो तीन मास मे वे अच्छे हुए किन्तु मुँह मे नासूर की शिकायत रह गई थी। उसका पीप निकलकर पेट मे जाता था। उसके एक वर्ष बाद जोधपुर मे ही एक और दुर्घटना घट गई। जगल मे एक पागल सूअर ने उन पर हमला कर दिया और उनको काट खाया। घायल होने पर भी उन्होने सूअर को ऐसा पकडा कि वह अपने को छुडा नही सका। दूसरे लोग शोर सुनकर आए और उन्होने उस पागल सूअर को ठिकाने लगा दिया। इसकी चिकित्सा के लिए उनको कसौली भेजा गया। सूअर के काटने का उपचार तो हो गया किन्तु नासूर की शिकायत वैसी ही बनी रही। उससे जलोदर हो गया। इसी बीमारी के कारण सवत् १९८८ माघ सुदी १० को बीकानेर मे आपकी गोवरधन सागर बगीची मे उनका देहान्त हो गया। उनके गुरु नवल नाथ जी बहुत लोभी, क्रोधी और क्रूर प्रकृति के थे। उसके विरुद्ध उत्तमनाथ जी पूर्ण विरक्त और शान्त प्रकृति के थे जिससे उनके प्रति लोगो मे बहुत श्रद्धा थी। यह बात गुरु को सहन नही होती थी। नवल नाथ जी उत्तम नाथ जी द्वारा भेंटे लेकर धन संग्रह करना चाहते थे, यह काम वह नही कर सकते थे। नवल नाथ जी नाथ सम्प्रदाय का चिह्न कानो मे मुद्राएँ रखते थे और उत्तमनाथ जी ने कान फडा कर मुद्रा पहनना स्वीकार नही किया था। अन्य साम्प्रदायिक चिह्न भी वे धारण नही करते थे। परन्तु उनके समाधि भवन मे जो उनका चित्र रखा गया है उसमे उनके कानो मे चाँदी की मुद्रायें दिखाई गई हैं, यह सरासर धोखेबाजी है। इन और ऐसे कुछ कारणो से जीवन काल मे उनकी आपस मे नही बनती थी और नवल नाथ जी उनमे द्वेष रखते थे। श्री उत्तमनाथ जी महाराज मे आपकी श्रद्धा भक्ति आज भी वैसी ही बनी हुई है। "गीता व्यवहार दर्शन मे उनका चित्र प्रकाशित करके आपने उनके प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति व्यक्त की।

साहित्य सृजन की प्रेरक भावना

आपके साहित्य सृजन के सम्बन्ध मे जितना भी विवेचन किया जाय कम है। साहित्य आप के लिए साधना का ही मुख्य विषय रहा है, किन्तु उस साधना के पीछे एक व्यापक भावना विद्यमान थी और वह आप के सम्पूर्ण साहित्य मे ओत-प्रोत है। उसको स्पष्ट करने के लिए यहाँ केवल एक उद्धरण दिया जा रहा है। "ईशावास्य उपनिषद" के व्यावहारिक भाष्य की भूमिका के अतिम पैरे मे आपने लिखा है कि "एक समय वह था कि हमारा भारतवर्ष बहुत उन्नत व सुख समृद्धि सम्पन्न एव शान्ति से परिपूर्ण था। उपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र आदि दर्शन शास्त्र इस देश की उन्नत अवस्था के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पर अपने मूल स्वभाव के अनुसार लोगो को एक ही स्थिति मे रहना पसन्द नही था, इसलिए सब की एकता के आत्मज्ञान को छोडकर पृथकता के भावो से, व्यक्तिगत स्वार्थों की खीचातानियाँ और भोगविलास, ऐश्वर्य, प्रमाद और आलस्य मे लोग आसक्त हो गए और स्वतन्त्र विचार-शक्ति का तिरस्कार करके अधविश्वासो और रूढियो के दास हो गए। तमोगुण की बहुत प्रबलता हो गई। बुद्धि का विपर्यास होकर समाज अनेक सम्प्रदायो, मतमतान्तरो और जाति पाति के भेदो मे विभक्त हो गया। सत् शास्त्रो के अर्थ का अनर्थ करके, स्वार्थी और हठधर्मी लोगो ने जनता को भ्रम मे डाल दिया। उपनिषद् और गीता आदि सत् शास्त्र, जो मनुष्यो को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान देकर, ससार के इस खेल मे अपना-अपना स्वाँग यथावत सम्पादन करने के लिए, आत्मज्ञान सहित सासारिक व्यवहार करने का सच्चा मार्ग दिखाने वाले, अनुपम ज्ञान भडार के ग्रन्थ हैं, उनके अर्थ की भी खीचातानी करके इतनी दुर्दशा कर दी, कि सन्यास मार्गीय टीकाकारो ने तो सासारिक व्यवहार सब छोडकर, घर गृहस्थ त्याग कर, सन्यास लेकर वन मे रहने का विधान उनमे बताया, और भक्तिमार्ग वालो ने केवल ईश्वर की उपासना और कर्मकाडो मे ही निरन्तर लगे रहने का अर्थ लगाया। कर्म, उपासना और ज्ञान, इन तीन काडो के सिवाय और कुछ नही बताया। सासारिक व्यवहार की सब ने उपेक्षा की, जिसके बिना जनता का और स्वय सन्यासियो, भक्तो और कर्मकाडियो का भी जीवन एक क्षण भी नही रह सकता। परिणाम यह हुआ कि इस देश की जनता किंकर्त्तव्यविमूढ हो गयी। देश का इतना घोरतम पतन हुआ कि विदेशी लोगो ने यहाँ आकर लोगो को पराधीन किया और सर्वस्व हरण कर लिया। देश के टुकडे हो गए। तिस पर भी पतन और विपत्तियो का अब तक कोई अन्त नही दीखता। पर जैसा कि मैं इस भूमिका के आरम्भ मे कह आया हूँ, इस खेल मे परिवर्तन का चक्कर निरन्तर चलता रहता है। लोग इस स्थिति मे अब पडे रहना नही चाहते, अपना सुधार करना चाहते हैं। अत इन ग्रन्थो का सच्चा व्यावहारिक अर्थ समझ कर उसके अनुसार अपना जीवन बनाने की भावना जागृत हुई दीखती है। इसी से उत्साहित होकर मैंने पहले "गीता का व्यवहार दर्शन" लिखकर उसमे उसके व्यावहारिक अर्थ का विस्तार से खुलासा किया, जिसको जनता ने बहुत पसन्द किया। उस सफलता को देखकर "ईशावास्य उपनिपद" का व्यावहारिक भाष्य लिखकर जनता जनार्दन की भेंट करता हूँ। आशा है इस से लोगो को अपने अध पतन की स्थिति को बदलकर, उन्नति के पथ पर चलने मे सहायता मिलेगी।"

ऐसे बहुत से उद्धरण आपकी रचनाओ मे से और भी उद्धृत किये जा सकते हैं।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि व्यावहारिक वेदान्त के सम्बन्ध मे आपके विचार कितने उदार, उदात्त और व्यापक हैं। राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद भी देश की सामाजिक हीनता और धार्मिक मूढता आपके हृदय मे कितनी गहरी वेदना और चिन्ता पैदा किए हुए है। आपने अपने इन विचारो को फैलाने के लिए अनेक बार अनेक योजनाएँ बनाईं किन्तु परिस्थितियो की विपमता के कारण उनको कभी तो मूर्त रूप नही दिया जा सका और कभी मूर्त रूप देने पर भी उनको फैलाया नही जा सका।

चहुँमुखी क्रान्ति का लक्ष्य

सन् १६३६ ई० मे आपने 'सूर्य' नाम से एक मासिक पत्र प्रकाशित करने की योजना बनाई थी, किन्तु युद्धजन्य परिस्थितियो और सरकारी नियन्त्रणो के कारण उसका प्रकाशन प्रारम्भ नही किया जा सका। इस पत्र का प्रकाशन आप चहुँमुखी क्रान्ति का सर्वसाधारण मे प्रसार करने के लिए करना चाहते थे।

उसके उद्देश्य पत्र मे "उद्धरेदात्मनात्मान" श्लोक को उद्धृत करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थिति का विवेचन करके अपने देश की अत्यन्त विषम स्थिति का उल्लेख किया गया था, उसमे कहा गया था कि "जो मनुष्य, समाज अथवा राष्ट्र स्वय अपनी उन्नति करने के लिए प्रयत्नशील नही होता, किन्तु दूसरो पर निर्भर रहता है, उसकी गिरावट होना अवश्यम्भावी है। प्रकृति के इस अटल नियम के अनुसार इस देशवासियों की भयकर गिरावट हो गई और प्रत्येक विषय मे ये दूसरो से पिछड गए। मानसिक और शारीरिक दुर्बलताओ ने इन्हें दबा लिया। मानसिक दुर्बलता के कारण यहाँ के लोगो ने अपने लिए अनेक प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बन्धन और परवशताएँ बना रखी है और जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त, सारी उमर इन बन्धनो मे ही बीत जाती है। इनसे निकल कर कभी स्वतन्त्र होने का विचार भी इनके दिमाग मे पैदा नही होता, धर्म भीरु होना भी श्रेष्ठ गुण समझ कर कल्पित और अदृष्ट कारणो से भय और वहम करते रहते है, जिससे सत्साहस और उत्साह से हाथ धो बैठे हैं।" देश की राजनीतिक पराधीनता का कारण इन्ही दोषो को बताते हुए लिखा गया था कि "जब तक हम स्वय अपने दुर्गुणो एवं निर्बलताओ को नही मिटा लेते, तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता कभी प्राप्त नही कर सकते।" इस प्रकार आत्म-निरीक्षण और आत्म-परीक्षण की भावना को प्रमुख रूप से अपनाते हुए पत्र की नीति के लिए निम्नलिखित दस सूत्री कार्य क्रम सम्मुख रखा गया था —

(१) इसका उद्देश्य मनुष्य (स्त्री-पुरुष) मात्र के हित के लिए स्वतन्त्र साहित्य प्रकाशित करना होगा। यद्यपि भारतवासियो की सर्वाङ्गीण उन्नति मे सहायक होना इसका प्रधान कर्तव्य होगा, परन्तु साथ ही अन्य लोगो के हित का ध्यान भी सदा रखा जायगा। व्यष्टि और समष्टि की एकता मानते हुए व्यष्टिहित समष्टि-हित के अन्तर्गत और समष्टिहित व्यष्टिहित पर निर्भर रहने के सिद्धान्त का सदा ध्यान रखा जायगा।

(२) अखिल विश्व के मूल मे एक ही तत्व या शक्ति होने के कारण सारे विश्व का एकत्वभाव सत्य और नित्य माना जायगा। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, प्रकृति, स्वभाव आदि नाम उस एक सत्य और नित्य तत्त्व अथवा शक्ति के ही समझे जायेंगे और जगत की भिन्नता के अनन्त बनावो को उस एक ही सत्य और नित्य तत्त्व अथवा शक्ति के अनेक परिवर्तनशील कल्पित बनाव होने के निश्चयपूर्वक सबके एकत्व-भाव को सच्चा और नाना प्रकार के बनावो और उनके सम्बन्ध के सारे व्यवहारो को सदा बदलते रहने वाले कल्पित भाव समझा जायगा।

(३) यह किसी विशेष धर्म, मजहब, सम्प्रदाय, पन्थ, मत, वाद या दल का अनुयायी न होगा, किन्तु जिसमे जो बात लोकहितकर प्रतीत होगी, उसका समर्थन करेगा और जिसमे जो बात लोकहित के विरुद्ध अथवा वर्तमान परिस्थिति के अनुपयुक्त प्रतीत होगी, उसको अवश्य ही दिखाने का प्रयत्न करेगा।

(४) देश भेद, काल भेद, जाति भेद, वर्ण भेद, व्यक्ति भेद, लिङ्ग भेद, सम्प्रदाय भेद आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना जिसमे जो गुण अथवा विशेषता होगी और जिसकी जो बात अच्छी अर्थात् लोक हितकर प्रतीत होगी, उसका यह समुचित आदर करेगा। जिसमे जो दोष अथवा त्रुटि होगी और जिसकी जो बात दोष-पूर्ण अर्थात् अहितकर प्रतीत होगी, उसका दोष एव त्रुटि दिखाने मे सङ्कोच नही करेगा।

(५) ससार के भूतकालीन और वर्तमान के महान् व्यक्तियो के प्रति यथायोग्य श्रद्धा और सम्मान

के भाव रखते हुए भी अन्धविश्वास किसी पर भी नही रखेगा और आवश्यकता होने पर उनकी उचित समालोचना करने मे पूर्ण स्वतन्त्र रहेगा।

(६) इसके लेख किन्ही विशेष विषयो में ही सीमाबद्ध एव परिमित नही रहेंगे, किन्तु जिस समय जो विषय जनता की भलाई अथवा बुराई मे सम्बन्ध रखेगा, उस पर आवश्यकतानुसार लिखने की सदा स्वतन्त्रता रहेगी।

(७) प्रत्येक विषय को "व्यावहारिकता" की तराजू पर तोलने का प्रयत्न किया जायगा और उसके सदुपयोग एव दुरुपयोग के आधार पर उसके अच्छे पहलू के साथ-साथ बुरे पहलू को भी दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

(८) प्रत्येक विषय मे बुद्धि से काम लेने के सिद्धान्त को महत्त्व दिया जायगा, परन्तु इसका यह तात्पर्य नही होगा कि जो बात किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियो की समझ मे आवेगी, वही प्रामाणिक मानी जावेगी, और जो बात किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियो की समझ मे नही आ सकेगी, वह सर्वथा अमान्य ठहराई जायगी, क्योकि बुद्धि का किसी ने ठेका नहीं लिया है। अपनी तरफ से जो बात प्रामाणिक कही जायगी वह केवल अपनी व्यक्तिगत सम्मति होगी।

(९) इसकी भाषा, शव्द-योजना, लेख-शैली आदि यथाशक्य सरल, शिष्ट, सयत और गम्भीर रखने का ध्यान रखा जायगा।

(१०) अपनी तरफ से व्यक्तिगत वाद-विवाद से सदा बचे रहने का यत्न किया जायगा।

इस लम्बे उद्धरण से मोहता जी की उदार, व्यापक और स्पष्ट नीति का कितना सुन्दर परिचय मिलता है। यह चतुर्मुखी क्रान्ति आपके समस्त जीवन मे ओत-प्रोत है जो कि आपके जीवन के समस्त व्यवहार मे पाई जाती है।

अपने विचारो से प्रचार के लिए कुछ न कुछ करने मे निरन्तर आप लगे रहते हैं। अपने विचारो के सम्बन्ध मे कभी कोई समझौता आपने अपने व्यक्तिगत जीवन के व्यवहार मे नही किया। यदि कुछ और नही कर सकते तो विरोधी परिस्थितियों से अपने को अलग रख कर अपने विचार पर दृढ बने रहते हैं। आपकी यह दृढ़ता आपके समस्त साहित्य मे ओतप्रोत हैं और वह सर्व साधारण के लिए अनुकरणीय एव वन्दनीय हैं।

समय की माँग

अर्थात् कृष्ण की क्रांति

चार तरह के बन्धनो से बँधी हुई जनता को गीता प्रतिपादित चतुर्मुखी क्रांति द्वारा मुक्त करने का सुझाव। जिसका प्रतिपादन मोहना जी ने अपनी पुस्तक "समय की मांग अर्थात् कृष्ण की क्रांति" नामक पुस्तक मे किया है। यह उसका भावपूर्ण मुख पृष्ठ है।

के भाव रखते हुए भी अन्धविश्वास किसी पर भी नही रखेगा और आवश्यकता होने पर उनकी उचित समालोचना करने मे पूर्ण स्वतन्त्र रहेगा ।

(६) इसके लेख किन्ही विशेष विषयो मे ही सीमाबद्ध एव परिमित नही रहेंगे, किन्तु जिस समय जो विषय जनता की भलाई अथवा बुराई मे सम्बन्ध रखेगा, उस पर आवश्यकतानुसार लिखने की सदा स्वतन्त्रता रहेगी ।

(७) प्रत्येक विषय को "व्यावहारिकता" की तराजू पर तोलने का प्रयत्न किया जायगा और उसके सदुपयोग एव दुरुपयोग के आधार पर उसके अच्छे पहलू के साथ-साथ बुरे पहलू को भी दिखाने का प्रयत्न किया जायगा ।

(८) प्रत्येक विषय मे बुद्धि से काम लेने के सिद्धान्त को महत्त्व दिया जायगा, परन्तु इसका यह तात्पर्य नही होगा कि जो बात किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियो की समझ मे आवेगी, वही प्रामाणिक मानी जावेगी, और जो बात किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियो की समझ मे नही आ सकेगी, वह सर्वथा अमान्य ठहराई जायगी, क्योकि बुद्धि का किसी ने ठेका नही लिया है । अपनी तरफ से जो बात प्रामाणिक कही जायगी वह केवल अपनी व्यक्तिगत सम्मति होगी ।

(९) इसकी भाषा, शब्द-योजना, लेख-शैली आदि यथाशक्य सरल, शिष्ट, सयत और गम्भीर रखने का ध्यान रखा जायगा ।

(१०) अपनी तरफ से व्यक्तिगत वाद-विवाद से सदा बचे रहने का यत्न किया जायगा ।

इस लम्बे उद्धरण से मोहता जी की उदार, व्यापक और स्पष्ट नीति का कितना सुन्दर परिचय मिलता है । यह चतुर्मुखी क्रान्ति आपके समस्त जीवन मे ओत-प्रोत है जो कि आपके जीवन के समस्त व्यवहार मे पाई जाती है ।

अपने विचारो से प्रचार के लिए कुछ न कुछ करने मे निरन्तर आप लगे रहते हैं । अपने विचारो के सम्बन्ध मे कभी कोई समझौता आपने अपने व्यक्तिगत जीवन के व्यवहार मे नही किया । यदि कुछ और नही कर सकते तो विरोधी परिस्थितियो से अपने को अलग रख कर अपने विचार पर दृढ बने रहते हैं । आपकी यह दृढता आपके समस्त साहित्य मे ओतप्रोत हैं और वह सर्व साधारण के लिए अनुकरणीय एव वन्दनीय हैं ।

श्री रामगोपाल जी मोहता ७२ वर्ष की आयु मे

१

चतुर्मुखी क्रांति की साधना

गीता मे श्री कृष्ण ने चतुर्मुखी क्रान्ति का प्रतिपादन अत्यन्त सुन्दर शब्दो मे किया है। गीता का स्वाध्याय करने वालो को निश्चित रूप से चतुर्मुखी क्रान्ति का वह स्वरूप अपने सम्मुख आदर्श के रूप मे सदैव उपस्थित रखना चाहिए और उसकी ओर अग्रसर होकर उसको सफल बनाने का प्रयत्न भी करना चाहिए। अन्यथा गीता का स्वाध्याय उपयोगी और लाभदायक नही हो सकता। उस चतुर्मुखी क्रान्ति का स्वरूप निम्न प्रकार है —

१—धार्मिक क्रान्ति

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"(भेदभाव मूलक) सब (जाति और कुल) धर्मों को सर्वथा त्याग कर, सबकी एकता स्वरूप मेरी शरण मे आ। मैं (सबका एकत्व भाव) तुझ को सब पापो से मुक्त कर दूंगा। तू (किसी प्रकार के पाप-पुण्य की कल्पना करके) शोक मत कर।"

२—सामाजिक क्रान्ति

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो निर्योग क्षेम आत्मवान॥

"वेदादि शास्त्र मनुष्य को तीनो गुणो का विषयी बनाने वाले हैं। हे अर्जुन, तू तीनो गुणो से ऊपर उठकर, द्वन्द्व से परे, नित्य सत्व मे स्थित, योग क्षेम की चिन्ता से रहित होकर आत्म-निर्भर हो।"

३—राजनीतिक क्रान्ति

क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्व य्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

("दुष्टो का दमन करने मे दया करने की) नपुंसकता मत कर। हे अर्जुन! यह तेरे योग्य नही है। हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को छोड़कर, हे परतप! तू उठ खड़ा हो।"

४—आर्थिक क्रान्ति

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

"अपने-अपने कर्तव्य कर्म करने रूपी इस चक्र को जो वर्ताव मे नही लाता उस इन्द्रिय आरामी (भोग विलासी) का जीना पाप रूप है। वह नाहक जीता है।"

गीता की इस चतुर्मुखी क्रान्ति को हृदयगम करके मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता ने उसकी साधना मे अपने को लगाने का निरन्तर प्रयत्न किया है। गीता के इन आप्त वचनो को अपनी अनुभूति का विषय बना

कर आप जिन परिणामो पर पहुँचे हैं वे सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य के विचारो का निर्माण मुख्यत दो साधनो से होता है, उनमे से एक है आप्त वचन और दूसरा है आत्मानुभूति। अनुभूति का स्थान आप्त वचन से कही अधिक ऊँचा है। क्योकि आप्त वचन अथवा आर्ष वचन से यदि कोई प्रेरणा एव प्रोत्साहन न मिला और उनका मथन न किया गया, तो उनसे कोई लाभ नही उठाया जा सकता। वे तव केवल एक भार रह जाते हैं और उनका भार उठाने वाले पर यह उक्ति चरितार्थ होती है कि "यथा खरश्चन्दन भारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।" वह उस भार को अनुभव करते हुए भी उसका सुख अनुभव नही कर सकता। आर्ष वचनो की अनुभूति की प्रयोगशाला मे आप्त वचनो की परीक्षा की जानी आवश्यक है और इस परीक्षा व समीक्षा से जिज्ञासु के हृदय मे जो भावनाएँ उद्दीप्त होकर विचार प्रगट होते हैं, वे ही मानव जीवन के लिए उपयोगी अथवा लाभदायक हो सकते हैं। इस प्रकार अपने विचारो का निर्माण करने वाले को ही मनीषी, मनस्वी, साधक अथवा तत्त्वदर्शी कहा जाता है और वह अपने साथियो के लिए भी पथ-प्रदर्शक वन सकता है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे केवल वे ही मनीषी, मनस्वी अथवा साधक नही हैं जो पद्मासन लगा-कर, आँखें मूंदकर और नाक पकडकर लम्बे-लम्बे साँस लेने शुरू कर देते हैं। वे फुटवाल के एक खिलाडी को कही अधिक बडा मनीषी, मनस्वी अथवा साधक मानते हैं, क्योकि उसमे उससे वह शक्ति पैदा होती है, जिससे वह गीता सरीखे आर्ष ग्रन्थो के आप्त वचनो का मर्म समझ सकता है। मानव के जीवन को इसी कारण प्रयोग-शाला कहा गया है कि वह प्रत्यक्ष व्यवहार एव स्वानुभूति की कसौटी पर हर वात की परीक्षा करने की सामर्थ्य रखता है। ऐसे मनीषी, मनस्वी अथवा साधक की तरह ही तत्त्वदर्शी वह है जो सक्रिय जीवन की प्रयोगशाला मे मानव व्यवहार के लिए आवश्यक तत्त्वो का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। केवल दर्शन शास्त्रो तथा अन्य ग्रन्थो को रट लेने वाले को तत्त्वदर्शी कहना वहुत बडी भूल है। उसके लिए चिन्तन और मन्थन पहली शर्तें हैं, जिनके विना अतर्ज्योति प्रज्ज्वलित नही की जा सकती।

मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन-परिचय और उनकी समत्व योग की साधना से पाठक यह भली प्रकार जान सकते हैं कि वे ऐसे ही साधक अथवा विचारक हैं। उन्होंने गीता मे प्रतिपादित श्री कृष्ण के आप्त वचनो को व्यवहार अथवा अनुभूति की कसौटी पर कसकर उनका जो प्रत्यक्ष दर्शन किया, वह उनके उत्तरोत्तर विकास मे सहायक सिद्ध हुआ और उसी के कारण उनके जीवन मे एक ऐसी चहुँमुखी क्रान्ति पैदा हुई कि उससे उनके विचार परिपक्व होकर उनमे मौलिकता पैदा हो गई और अपनी अनुभूति मे उनको मानव जीवन का यथार्थ दर्शन मिल गया। आज उनके परिपक्व मौलिक विचार और व्यावहारिक जीवन दर्शन दूसरो के लिए पथ-प्रदर्शक वन गए हैं।

धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र मे

मानव का जीवन-क्रम मुख्यत धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक विभागो मे वाँटा जा सकता है। इन चारो विभागो मे आमूल चूल क्रान्ति हुए विना मानव जीवन पूर्ण नही वन सकता और न वह पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है। आज के युग मे मानव की दुर्गति का एक वडा कारण यह है कि उसने हर गति को प्रगति मान लिया है। विवेक, वुद्धि, विचार अथवा दूसरो की अनुभूति से काम लेने की आवश्यकता उसको प्रतीत नही होती। अतर्ज्योति प्रज्ज्वलित नही होती और वाह्य ज्योति से भी वह काम नही ले सकता। परिणाम यह है कि "अधेनैव नीयमाना यथान्धा" की सी स्थिति हो रही है। सब अधकार मे भटक रहे हैं। ऐसी अवस्था मे मोहता जी के मौलिक विचार और व्यावहारिक जीवन का दर्शन दूसरो के लिए मार्ग-दर्शक बन सकते है। इसीलिए इस प्रकरण मे चारो क्रान्तियो के सम्वन्ध मे आपके विचारो का दिग्दर्शन करना आवश्यक समझा

गया है । यह जरूरी नही कि आपकी हर बात को बाबा वाक्य मानकर स्वीकार किया जाय । इस अंध परम्परा के आप कट्टर विरोधी हैं । किसी का पल्ला पकड कर चलना आप मानव का घोर अपमान मानते हैं । जब देखने के लिए उसको दो आँखें मिली हैं और सोच विचार के लिए उन आँखो के ऊपर मस्तिष्क मिला है तब वह उनसे काम क्यो न ले ? अपने हृदय मे जिज्ञासु भावना जगाकर और उसको अपना दीपक बनाकर हर व्यक्ति को अपने मार्ग की स्वय खोज करनी चाहिए,—यह है पहला पाठ, जो आपके जीवन से हम सबको ग्रहण करना चाहिए । आप जिस परिवार मे, जिस वातावरण मे और जिन परिस्थितियो मे पैदा हुए, पले, पोसे और बडे हुए, वे आपके लिए अनुकूल नही थी । अत्यन्त प्रतिकूल और विपरीत परिस्थितियो मे आपने अपना मार्ग खोजा, उसका निर्माण किया और पूरी दृढता के साथ उस पर अग्रसर हो गए । यही है सच्ची प्रगति, जिसका एक सुन्दर उदाहरण वयोवृद्ध मोहता जी का सक्रिय एव कर्मठ जीवन है। आपके घर का आज का चित्र उससे सर्वथा भिन्न है जब कि आप पैदा हुए थे और बीकानेर नगर के जीवन का चित्र भी तब से भिन्न है। इन दोनो के बदलने मे आपका जो शानदार हिस्सा है उससे कोई भी इनकार नही कर सकता । उसका पैदा होना सार्थक बताया गया है, जिसके जन्म से वश की उन्नति होती है और उदार चरित लोगो का वश या कुटुम्ब आत्मीय जनो तक सीमित न रह कर सारी वसुधा मे फैल जाता है । इसीलिए महापुरुष अपने निजी जीवन अथवा वश का ही नही किन्तु समस्त मानव समाज का कायाकल्प करने मे अपने को खपा देते है । मनस्वी श्री मोहता जी की गणना सहज से ऐसे महान् एव उदार व्यक्तियो मे की जा सकती है । दीपक यह नही देखता और यह नही जानता कि उसकी ज्योति कहाँ तक पहुँचती है, किन्तु यह घोर अधकार को एक चुनौती देकर उसके साथ सघर्ष करने मे जुट जाता है और अपने जीवन का उत्सर्ग कर डालता है । उसके इस उत्सर्ग के कारण ही ससार मे कुछ प्रकाश बना हुआ है । उदार चरित महापुरुष भी इस दीपक के समान दूसरो के पथ-प्रदर्शन के लिए अपना कर्तव्य पालन करते हुए आत्मोसर्ग कर डालते हैं । यह उत्सर्ग-परम्परा मानव के लिए अनन्त और अपार ज्योति बनी हुई है । स्वामी विवेकानन्द का यह कहना कितना सार्थक है कि महापुरुषो का जीवन उस बत्ती के समान है जो दोनो ओर से जलती है ।

राजनीति की अपेक्षा समाज सुधार की ओर आपका विशेष ध्यान था और समाज सुधार सम्बन्धी विषयो मे आप अधिक रुचि लेते थे । काग्रेस के साथ प्रतिवर्ष समाज सुधार सम्मेलन अथवा इडियन सोशियल रिफार्म कानफ्रेंस भी हुआ करती थी, उसमे हुए भाषणो और स्वीकृत प्रस्तावो की रिपोर्टे आप बडे चाव से पढा करते थे । समाज सुधार के लिए इस प्रकार आपमे जो भावना व प्रवृत्ति पैदा हुई उसका पहला लाभ माहेश्वरी समाज को मिला । उसमे फैली हुई सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के लिए आप कटिबद्ध हुए । अलीगढ से स्वर्गीय श्री भागीरथ दास जी भूतडा के सम्पादकत्व मे "माहेश्वरी" नाम का साप्ताहिक पत्र निकलता था । श्री भूतडा जी की प्रेरणा से आपने भी उसमे अपने समाज सुधार सम्बन्धी विचार प्रगट करने शुरू किए । सबसे पहले आप ने "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" शीर्षक से एक लेखमाला लिखी । उसमे आपने यह दिखाया कि व्यापारिक स्थिति के सुधार के लिए भी समाज सुधार की कितनी आवश्यकता है और उसके बिना माहेश्वरी समाज व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता मे दूसरो के सामने टिक नही सकता । उच्च शिक्षा के प्रचार, बाल विवाह, वृद्ध विवाह के बन्द करने, शादी गमी के अवसरो पर फिजूल खर्ची के रोकने, मृत्यु भोज के बन्द करने, दान की कुव्यवस्था मिटाकर उसका सदुपयोग करने, स्त्रियो की दयनीय दशा का अन्त करके उनको समाज के आधे अंग की जिम्मेवारी सम्भालने के योग्य बनाने, उनमे शिक्षा के प्रचार करने तथा पर्दा प्रथा के उन्मूलन करने आदि विषयो पर उचित सुझाव उस समय की परिस्थितियो के अनुसार आपने उस लेख-माला मे प्रगट किए थे । कलकत्ता की माहेश्वरी सभा ने उसको पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित करके समाज मे बँटवाया और समाज मे सामाजिक चेतना पैदा करने के लिए उस से विशेष सहायता मिली । यह उन दिनो की बात है, जबकि माहेश्वरी

तथा मारवाडी समाज मे समाज सुधार की चर्चा का केवल सूत्रपात हुआ था। बीकानेर नगर मे होली के अवसर पर डाडियो का जो खेल होता था उसके वीभत्स एव अश्लील रूप को दूर करके आपने उसको जो सामाजिक एव सार्वजनिक रूप दिया उससे भी समाज सुधार की प्रवृत्तियो को विशेष प्रेरणा मिली।

श्री शिवरतन जी के बडे सुपुत्र श्री गिरधर लालजी का बिडलाओ के यहाँ पिलानी मे तव विवाह सम्बन्ध किया गया, जब कोलवार प्रकरण को लेकर बिडलाओ तथा उनसे सम्वन्ध रखने वालो का माहेश्वरी समाज मे "डीडू माहेश्वरी पचायत" द्वारा सामाजिक बहिष्कार किया जा रहा था। आप पर भी श्री गिरधर लाल की सगाई छोडने के लिए जोर डाला गया। आप सहमत नही हुए। विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। समाज मे अनेक विवाह सम्वन्ध इस आन्दोलन के कारण टूट चुके थे और लडकियो का अपने मायके आना-जाना तक छूट गया था। एक दूसरे के यहाँ खान-पान आदि का सव व्यवहार भी बन्द हो गया था। बीकानेर और वीकानेर का माहेश्वरी समाज उस आन्दोलन के मुख्य केन्द्र थे। श्री शिवरतन जी की पोती राजकुमारी वाई का शुभ विवाह अग्रवालो मे कलकत्ता के श्री सर बद्रीदास जी गोयनका के पोते से हुआ है, जो कि माहेश्वरी अग्रवाल की दृष्टि से अतरजातीय विवाह है।

अपनी धर्मपत्नी के देहान्त के बाद आपने जिस साहस का परिचय दिया वह भी अपने ढग का एक ही उदाहरण है। विधवाओ के पुनरुद्धार को अपने जीवन का महान् व्रत बनाकर आपने उनके लिए जो कुछ किया उसकी चर्चा यहाँ दुवारा करने की आवश्यकता नही है। लाहौर के स्वर्गीय सर गगाराम जी की तरह वीकानेर और समस्त राजस्थान अथवा राजस्थानी समाज मे विधवा विवाह के पुरस्कर्ताओ मे आपका पहला स्थान है। लाखो रुपया आपने इस सत्कार्य के लिए खर्च किया और कितनी ही विधवाओ का उद्धार कर उनको सद्गृहस्थी बनाने का यश सम्पादन किया उसके लिए बीकानेर मे जनता तथा राज दोनो का विरोध सहन किया और समाज के वीभत्स लोकापवाद को भी हँसते हुए झेल लिया। विधवा विवाह को प्रोत्साहन देने वाली सस्थाओ और कार्य-कर्त्ताओ के लिए आपके घर के द्वार सदा खुले रहे और उनको मुक्त हस्त से सहायता करने मे आप कभी पीछे नही रहे।

बीकानेर के दीवान मोहतो के कुछ वशधर माहेश्वरी समाज मे नीचे समझे जाते थे और उसमे उनके सामाजिक सम्बन्व नही होते थे। कारण यह था कि उनके पूर्वज श्री बख्तावर सिंह जी बीकानेर के भूतपूर्व दीवान ने नाथी जी नाम की खत्री जाति की कन्या से विवाह सम्बन्ध कर लिया था। उनकी सन्तति नाथीजी वाले कहलाते थे और उनसे सम्बन्ध करने वाले समाज और बिरादरी मे हीन समझे जाते थे। स्वर्गीय श्री चतुर्भुज जी मोहता नाथी वालो की कन्या के विवाह योग्य हो जाने पर भी इसी कारण उसका कही विवाह नही होता था। चतुर्भुज जी का देहान्त हो गया था और उनके बच्चे छोटे-छोटे थे। आपके प्रयत्न करने पर एक माहेश्वरी युवक इस शर्त पर विवाह करने को सहमत हुआ कि आप स्वय उस कन्या के पिता के रूप मे चँवरी मे वैठें और आपके घर के सब बालक उसके साथ बैठकर सहभोज करें। आपने उसकी शर्त स्वीकार की और घर वालो को भी उसके लिए सहमत कर लिया। कन्या का सानन्द ससमारोह विवाह हो गया। माहेश्वरी समाज मे थोडी हलचल मची, किन्तु जल्दी ही शात हो गई। आपके इस सत्साहस से एक कन्या का ही नही, किन्तु समस्त नाथीवालो का भी उद्धार हो गया और उनके सामाजिक सम्बन्ध का रास्ता खुल गया।

समाज मे महिलाओ के समान ही हरिजनो की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय है। उनकी ओर भी आप का ध्यान गया और उनकी सेवा एव सहायता करने मे आप जुट गए। आप के कट्टर से कट्टर विरोधी भी आप की हरिजन सेवा की सराहना करते हैं। उनके लिए बीकानेर मे आपने "हरिजन हितकारिणी" सभा की स्थापना की। कराची मे उनके रहने योग्य अच्छे मकान न होने से "रामदेव चाल" नाम से उनके लिए अच्छे रहने के

खंड २

१. चतुर्मुखी क्रान्ति की साधना

२. आपका आदेश अपने अन्तकाल के सम्बन्ध में

३. साहित्य सृजन की क्रान्तिकारी दृष्टि

मकान वनवा दिये थे। उनकी आर्थिक दशा के सुधार के लिए "हरिजन वूट एण्ड शू कम्पनी" कायम की थी। इस कम्पनी की ओर से उनको आधुनिक ढग से चमडे का काम करने की शिक्षा देने और उनको काम-धन्धे मे लगाने का प्रवन्ध किया गया था। कोलायत जी मे उनके लिए रामदेव जी का मन्दिर वनवाया था। जिसमे सवर्ण हरिजन का कोई भेदभाव नही है। सव समान रूप से सम्मिलित होते हैं। इस मन्दिर का पुजारी हरिजन है। कोलायत जी मे कार्तिक मे मेला लगने पर हजारो हरिजन भाई यहाँ इकट्ठा होते हैं उस समय आप उनके वीच वैठकर सतसग करते है और उनको सामाजिक कुरीतियो एव रूढियो का परित्याग कर अपना सामाजिक उत्थान करने का उपदेश करते हैं। कितने ही हरिजनो ने फिजूल खर्ची वन्द करके सामाजिक कुरीतियो का परित्याग किया है और अपने सामाजिक जीवन का सुधार किया है।

उनकी शिक्षा मे आपने विशेष दिलचस्पी ली है। अनेक पाठशालाएँ आप के सहयोग से कायम की गई। अनेक हरिजन युवको ने आपकी सहायता से विशेष उन्नति की है। उनमे ससद सदस्य श्री पन्नालाल वारूपाल और राजस्थान विधान सभा के सदस्य श्री धर्मपाल पवार के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनो १९५२ के चुनावो के वाद १९५७ मे भी ससद की लोकसभा और राजस्थान की विधान सभा के सदस्य चुने गए है। श्री धर्मपाल के पुत्र ओमप्रकाश साँगरिया के किसान विद्यापीठ से मैट्रिक पास करके जव वीकानेर कालेज मे भरती होने आए तव कालेज के सवर्णो ने वडा विरोध किया और नगर मे भी विरोध मे तीव्र आन्दोलन शुरू हो गया। आप ने उसका पक्ष लिया और शिक्षा विभाग वालो को आप ने कहा कि शिक्षा प्राप्त करने का सवको समान अधिकार है। इसलिए उसको भरती करने से रोका नही जा सकता। मामला महाराजा शार्दूलसिंह जी के पास पहुँचा। धर्म के ठेकेदारो ने महारानी साहिवा को वरगला दिया और वे कैकेयी का सा हठ करके वैठ गई कि मेहतर का लडका कालेज मे भरती नही हो सकता। महाराजा वडे असमजस मे पड गए। महाराजा ने अन्त मे आप को वुलाया और आप से परिस्थिति को सम्भालने का अनुरोध किया। आप ने उनसे स्पष्ट कह दिया कि उसको किसी भी कारण से भरती होने से रोका नही जा सकता। समस्त प्रजा को समान अधिकार प्राप्त हैं। उनसे किसी को भी वचित नही किया जा सकता। महाराजा ने कहा कि मेरे यहाँ तो यह गृह-कलह मच गई है। आप किसी प्रकार उसको टालिये। आपने उनको यह मार्ग सुझाया कि उसको पचास रुपया महीना छात्रवृत्ति देकर लाहौर के डी० ए० वी० कालेज मे पढने के लिए भेज दीजिए। वे वैसा करने के लिए सहसा ही सहमत हो गए। अव वह शिक्षा प्राप्त करके वीकानेर मे पुलिस मे सव इस्पैक्टर के पद पर काम कर रहा है। अनेक हरिजन छात्रो को अपने पास से छात्रवृत्ति देकर आपने उनको उच्च शिक्षा प्राप्त करवाई और आज वे उच्च सरकारी पदो पर काम कर रहे हैं।

देहातो मे हरिजनो को पानी का विशेष कष्ट रहता है। उनकी इस असुविधा को दूर करने के लिए देहातो मे आपने वावडी और कुंड वनवाए। गरमी के दिनो मे अनेक स्थानो पर प्याऊ भी लगवाई जाती हैं। दुर्भिक्ष के दिनो मे अकाल पीडितो को जो सहायता दी जाती है उनमे इनका विशेष ध्यान रखा जाता है। इन सव कार्यो का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है।

दिल्ली के पत्र "जनसत्ता" अप्रैल १९५३ के अंक मे आप का एक लेख "दलितो का पुनरुत्थान कैसे हो?" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। उससे हरिजनो के प्रति आप की भावना और उनके पुनरुत्थान के लिए किये जाने वाले कार्यो के प्रति आप की सचाई, ईमानदारी एव निष्ठा का कुछ परिचय मिलता है। इसलिए उसका अधिकाश भाग यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। उसमे आपने दिखाऊ काम की वडी तीव्र आलोचना की थी। आप ने लिखा था कि गत् ४० वर्षों से दलितोद्धार मे सहयोग देना मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य रहा है। अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार मैंने भरसक कार्य किया। अंग्रेजी राज्य मे चलने वाले व्रह्मसमाज, आर्य

समाज आदि आन्दोलनो में मैंने दलितो के उत्थान की आशायें बांधी थी। गाधी जी के हरिजन प्रेम को देखकर स्वय हरिजनो को विश्वास होने लगा था कि स्वराज्य प्राप्ति के वाद हमारा दलितपन मिट जायगा। हमारे सविधान मे नागरिको के मौलिक अधिकारो की सूची और काग्रेस के जाति, वर्ग और सम्प्रदाय रहित वनाने के लिखित लक्ष्य को देख कोई भी विदेशी यह कह सकता है कि भारत मे किसी प्रकार की छूआछूत नही होगी। परन्तु अपने जीवन के दीर्घ और सक्रिय अनुभव को देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ कि भारत मे दलितो की स्थिति मे कोई वास्तविक प्रगति नही हुई। अछूतपन का कलक भारत की पवित्र चादर पर आज भी लगा हुआ है। दक्षिण अफ्रीका मे मलान सरकार की रगभेद-नीति के खिलाफ शोर मचाने वाले हम भारतीय इस कटु सत्य से इनकार नही कर सकते कि हमारा देश आज भी छूआ-छूत के कलक से ग्रसित है। विधान और कानूनो के सब्जवाग केवल भीतरी गन्दगी ढकने के ऊपरी आडम्बरपूर्ण आवरण ही सिद्ध हो रहे हैं। साधारण हिन्दू जनता जाति-पाति के बन्धनो मे जकडी हुई दलितवर्ग से घृणा करती है, अछूतपन की असली जड जन्म से जातिवाद मे है। स्वय दलितो के वर्गों मे भी जाति-पाति के बहुत भेद हैं जो आपस मे छूआछूत रखते हैं। जातिवाद का दृढ आधार ब्राह्मण जाति की जन्मजात सर्वोच्च श्रेष्ठता के प्रति अन्धविश्वास हैं। गत मास राष्ट्रपति ने ब्राह्मणो की चरण-वन्दना करके इसी बात को पुष्ट किया।

जब देश के मुख्य कर्णधारो की यह दशा है तब स्वभाव से ही अवसरवादी और पदलोलुप अफसरो का कहना ही क्या। अधिकतर सरकारी अफसर स्वय तो जाति भेद के कट्टर समर्थक हैं ही, तिस पर जव उन्हे ऊपर से नेताओ की कट्टरता और नीचे से रूढि चुस्त जनता का सहारा मिल जाता है तव सामाजिक सुधार के आकाक्षियो का और हरिजनो का तो राम ही रक्षक है। जब से भारतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई है, तब से सब प्रान्तो मे और खास करके "बी" और "सी" श्रेणी के राज्यो मे हरिजनो की जो उपेक्षा और तिरस्कार हो रहा है वह आज के युग मे लोकतन्त्र और मानव व्यक्ति के बुनियादी हकों पर विश्वास करने वालो को मानसिक दुःख पहुँचाने के लिए बडा कठोर आघात है।

सरकारी अफसरो और काग्रेसी नेताओ द्वारा बरती जाने वाली इस प्रकार की घृणित नीति का एक प्रत्यक्ष उदाहरण कुछ दिन पूर्व राजस्थान मे देखने को मिला है। गांधी जयन्ती पर राजस्थान सरकार ने जिला-अधिकारियो को लोक दिखाऊ आज्ञाएँ भेजी थी कि इस समारोह के अवसर पर एक दिन "हरिजन दिवस" मनाया जाय, क्योकि हरिजनो का उत्थान दिवगत राष्ट्रपिता महात्मा गाधी जी के कार्यक्रमो मे से एक प्रधान कार्यक्रम था। इस हरिजन दिवस के दिन राजस्थान के प्रसिद्ध शहरो व कस्बो के प्रसिद्ध देव-मन्दिरो मे काग्रेसी कार्यकर्ताओ के सहयोग और राज्य प्रबन्ध की सहायता से हरिजनो व सवर्णों को मिलकर सत्सग करने का आदेश दिया था। हरिजनो को सवर्णों के साथ आम कुओ व पानी के नलो से पानी भरवाने व चाय पार्टियो मे सहभोज करवाने का भी उसमे उल्लेख था। परन्तु उपरोक्त आदेश जिस लोक दिखावे की धोखा धडी के लिए दिया गया था वैसा ही उस पर अमल भी हुआ। उपरोक्त तीनो बातो मे से एक भी पार नही पडी। पडती भी कैसे? सरकारी अफसर और काग्रेसी नेता प्रतिक्रियावादियो को प्रसन्न रखने के लिए इसको असफल करने पर तुले थे। वेचारे गरीब हरिजनो के लिए वीकानेर जैसे कई स्थानो पर यह उल्टा अवनति का कारण हुआ। सवर्णो ने उनको धमकियाँ दी और अपमानित किया। इस दुर्घटना से घोर दुःखी होकर वीकानेर मे तो हरिजनो को एक नोटिस निकाल कर सरकार व काग्रेस को कहना पडा कि यदि आप से हमारी कुछ भलाई न हो सके तो न सही, इस प्रकार के ढोग करके हमारी हालत को और अधिक वद से वदतर बनाने की योजनाएँ नही करें तो बडी कृपा होगी। इस नोटिस के निवेदको मे भारतीय ससद के एक हरिजन सदस्य के भी हस्ताक्षर हैं।
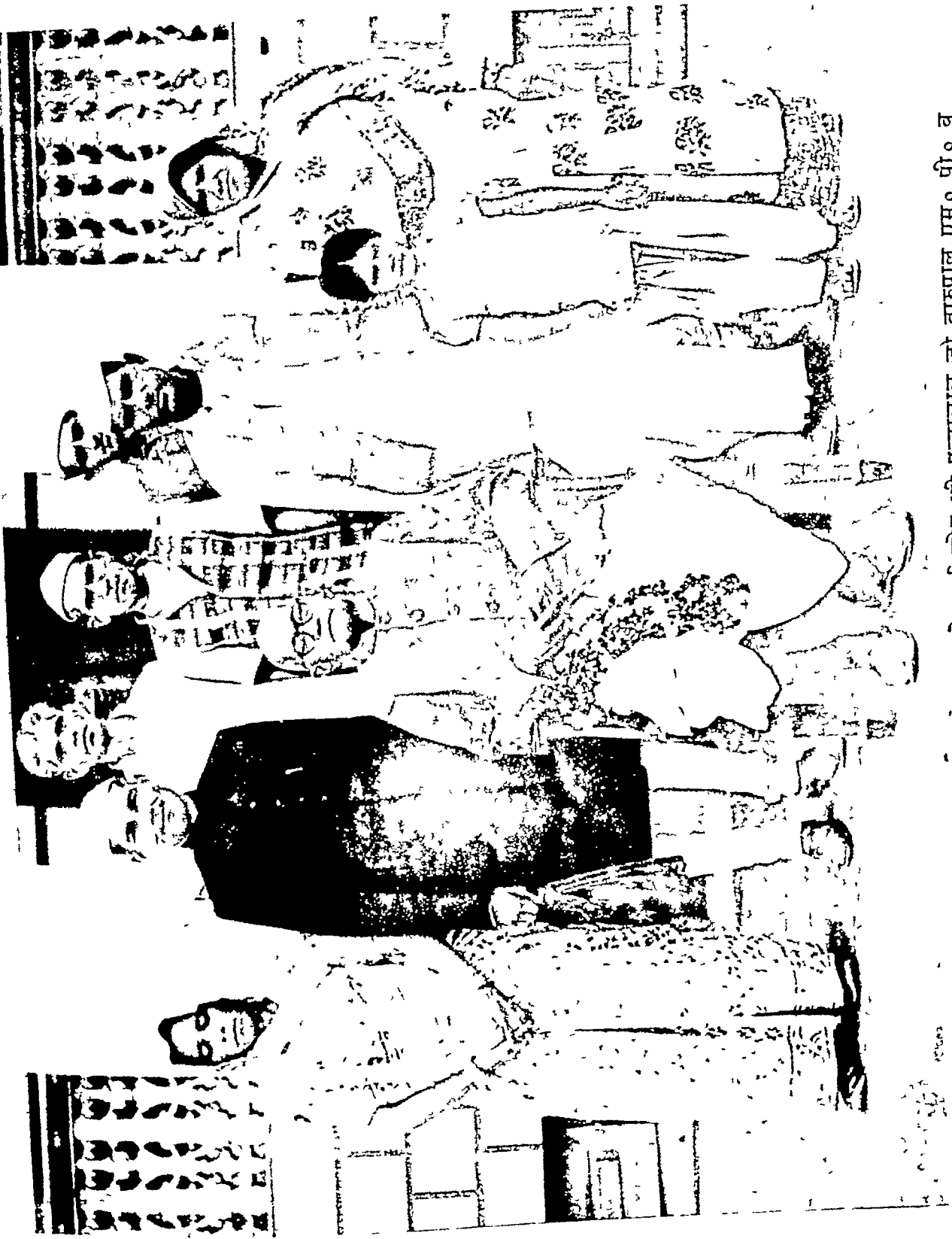
हरिजन ससद सदस्यो के बीच मोहता जी । आपके बाई ओर श्री पन्नालाल जो बारुपाल एम० पी० व श्रीमती पन्नालाल । दाई ओर श्री धर्मपाल जी पवार एम० एल० ए० व श्रीमती धर्मपाल खडे है ।

राजस्थान प्रदेश दलित वर्ग सघ के प्रथम अधिवेशन के उद्घाटन पर भाषण देते हुए केन्द्रीय मत्री श्री जगजीवन राम, बीच मे श्री मोहता जी तथा श्री जयनारायण व्यास आदि।

सरकार यदि ईमानदारी से देश के जातिभेद से उत्पन्न इस घनीभूत कलक अछूतपन को मिटाना चाहती है तो उसे—

(१) जाति-भेद और अछूतपन के वरताव के विरुद्ध कठोर कानून वना कर उसका पूरी तरह पालन करना चाहिए।

(२) जिन सरकारी अधिकारियो को जातिभेद मे विश्वास हो वे भारतीय सविधान के शत्रु करार कर दिये जायें और उन्हे सरकारी पदो पर कार्य करने के लिए अयोग्य करार कर देने के लिये पब्लिक सर्विस रूल्स मे सशोधन किये जावें।

(३) सरकारी और काग्रेस के सार्वजनिक आयोजनो मे होने वाले सहभोजो मे दलित वर्ग के लोगो के द्वारा पदार्थ परोसने का कार्य लिया जाय और इस वात की खास देखरेख रखी जाय कि सरकारी कर्मचारी इन समारोहो मे सक्रिय रूप मे शामिल होने मे आनाकानी तो नही करते। जो दोषी दीखें उन्हे सरकारी नौकरी और काग्रेस की सदस्यता से अलग किया जावे।

(४) जनता के जातिवाद व अछूतपन के खिलाफ चेतना फैलाने और विचार क्रान्ति उत्पन्न कराने वाली सस्थायें जैसे 'प्रगतिसघ' हरिद्वार और "जातपात तोडक मण्डल" आदि को भारत सेवक समाज के आवश्यक अग के रूप मे मान्यता दी जावे, क्योकि जातिवाद देश मे जव तक प्रचलित है तव तक दलितोद्धार नही हो सकता।

यदि उपरोक्त तरीको से काम लिया जावे तो दलितो का कुछ लाभ हो सकता है और लोकतन्त्र की वुनियाद भी कायम हो सकती है, परन्तु क्या कांग्रेस सरकार ऐसा करेगी ? यह वहुत वडा सवाल है। अव तक का अनुभव इसका जवाव हाँ मे नही देता, आखिरकार मरता क्या नही करता। अन्याय की पीडाओ से निराश अछूत भी इस गुलामी की अपेक्षा कम्यूनिज्म मे अपने त्राण की आशा रखने लगें तो क्या आश्चर्य है, सब्र की भी हद होती है।'

सामाजिक क्रांति का रूप

इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र मे सक्रिय कार्य करते हुए आपने जो अनुभूति प्राप्त की उससे आपके सामाजिक विचार ऐसे परिपक्व हो गये कि उनमे विचार क्रान्ति-पूर्ण मौलिकता पैदा हो गई। वहुमुखी क्रान्ति के ध्येय से आपने "प्रगति सघ" नाम से एक संस्था स्थापित की थी। उसके सम्वन्ध मे सामाजिक क्रान्ति का खुलासा आपने इस प्रकार किया था—"समाज और व्यक्ति आपस मे पूर्णतया सम्वन्वित हैं। व्यक्ति के विना समाज का आस्तित्व नही है और समाज के वगैर व्यक्ति का निर्वाह नही हो सकता। व्यक्तियो का योग ही समाज है। व्यक्ति समाज मे रहता है, काम करता है और उसके द्वारा अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। इसलिए व्यक्ति और समाज परस्पर मे अन्योन्याश्रित हैं अर्थात् व्यक्ति पर समाज निर्भर है और समाज पर व्यक्ति निर्भर है, एव परस्पर मे नाना प्रकार से विशेष रूप से सम्वन्धित हैं, जिस तरह माता-पिता का सन्तानो से सवन्ध भाई-भाई, वहनो-वहनो और भाई-वहनो का आपस का सम्वन्ध, स्त्री-पुरुष का सम्वन्ध, कुटुम्वियो का आपस का सम्वन्ध, भाई विरादरी का सम्वन्ध, मित्रो का पारस्परिक सम्वन्ध, शिक्षक-शिक्षित का सम्वन्ध, पड़ोसियो, मोहल्ले वासियो, नगर निवासियो और देशवासियो का आपस का सम्वन्ध इत्यादि।

इसके अतिरिक्त आज के वैज्ञानिक और यान्त्रिक युग मे तमाम दुनिया के मनुष्यो का एक दूसरे से निकट या दूर का, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्वन्ध स्थापित हो चुका है। इस प्रकार के सम्वन्धो से प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्यो का दायित्व वढा हुआ है और उसके अधिकार उसकी कर्तव्य परायणता पर निर्भर है। परन्तु हम अपने कर्तव्यो के दायित्व को यथोचित महत्व नही देते; किन्तु अधिकारो को अनुचित महत्त्व देते हैं, जिससे समाज

मे अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के कर्तव्य पालन करके समाज की आवश्यकतायें पूरी करने मे योग दे और समाज प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक हो, तभी समाज सुव्यवस्थित रह सकता है। इसलिए अपने कर्तव्यो का बुद्धि द्वारा अधिक से अधिक विवेक और विचार करके उन्हें अपनी योग्यतानुसार पूरे करते रहना चाहिए। हम लोग इस आधुनिक युग मे रहते हुए भी अन्धपरम्परा की व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, जातिगत और साम्प्रदायिक आधार पर सस्थापित अत्यन्त सकीर्ण प्राचीन रूढियो और मर्यादाओ से इतने जकडे हुए हैं कि अपने सामाजिक कर्तव्यो का यथावत् पालन नही कर सकते, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति और सारा समाज घोर सकट का शिकार हो रहा है। इसलिए युग की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए, सब की एकता और समता के सिद्धान्त के आधार पर सामाजिक न्याय की भावना से, हमको अपने सामाजिक कार्यों मे नीचे लिखे अनुसार क्रान्ति शीघ्र ही कर डालना चाहिए—

(१) वर्तमान युग मे सभी मनुष्य एक ही समाज के सदस्य हैं, इसलिए उनके खानपान, विवाह सम्बन्ध तथा व्यवसाय मे जातिपाँति के भेद सर्वथा खत्मकर दिये जाने चाहिए, पर आचरण की शुद्धता पर अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। समान रहन-सहन, खान-पान, समान विचार और आचरण वालो मे विवाह सम्बन्ध, जाति-पाँति के बन्धन तोडकर करना सुखदायक होता है।

(२) गीता की वर्ण-व्यवस्था केवल सामाजिक कार्य-विभाग यानी गुणो के अनुसार कामो का विभाग (Division of Labour) समाज के व्यक्तियो की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए है। वहाँ जन्म जात जाति-भेद का कोई उल्लेख नही है। अत जिस शरीर की जैसी योग्यता हो, उसको उसके अनुसार लोक सेवा के काम करते हुए भी सब को एक मनुष्य-जाति समझना चाहिए। जाति-भेद अप्राकृत है, क्योकि किसी भी जाति के पुरुष का किसी भी जाति की स्त्री से सहवास हो सकता है। यदि जाति भेद प्राकृतिक होता तो जिस तरह एक जाति के पशु के नर का दूसरी जाति के पशु की मादा से सहवास नही हो सकता, इसी तरह मनुष्यो मे भी होता। इसलिए जाति-पाँति के आधार पर किसी के अधिकारो मे अन्तर नही रहना चाहिए। (इस विषय का विशेष खुलासा गीता का व्यवहार-दर्शन अ, ५ श्लोक १८ के स्पष्टीकरण मे देखना चाहिए)।

(३) जाति-पाँति के आधार पर बने हुए सब रीति-रिवाजो और मर्यादाओ की जजीरें तोड फैंकना चाहिए। किसी भी रीति-रिवाज पर पावन्दी नही रखना चाहिए। जाति के पचो की सत्ता और अधिकार समूल मिटा देना चाहिए।

(४) बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, वेजोड-विवाह और बहुविवाह का विरोध करना और विधवा-विवाह का प्रचार करना चाहिए। वह प्रचार शास्त्रो के प्रमाणो के आधार पर नही, किन्तु युक्ति और विवेक के आधार पर करना चाहिए।

(५) विवाह सम्बन्ध, केवल स्त्री-पुरुष के सुखमय गृहस्थ जीवन के उद्देश्य से वर-कन्या की अनुमति से होना चाहिए। इसमे रुपये-पैसे, धन-सम्पत्ति, या पदार्थों आदि के लेन-देन, अथवा माता-पिता के स्वार्थ का ज़रा भी प्रसग नही रहना चाहिए। विवाह को किसी प्रकार का धार्मिक रूप नही देना चाहिए। किन्तु मनुष्यो और समाज की सुव्यवस्था के लिए एक सामाजिक कृत्य समझना चाहिए। विवाह का उद्देश्य स्त्री पुरुष के परस्पर के सहयोग से दोनो की सुख शान्ति पूर्वक जीवन यात्रा करने का है परन्तु वर्तमान मे हमारे समाज मे विवाह के इस पवित्र उद्देश्य की सर्वथा उपेक्षा करके विवाह को मुख्यतया मनुष्य के आर्थिक लाभ का साधन वना लिया है। कही पर धन के वदले कन्या वेची जाती है और कही पर धन (दहेज) के साथ कन्या ली जाती हैं। दोनो दशाओ मे कन्या का सौदा होता है और समाज मे वैमनस्यता तथा आर्थिक सकट उत्पन्न होता है। कन्या की विक्री जितनी अनर्थकारी है उससे अधिक दहेज प्रथा सत्यानाशी है। इन दोनो कुप्रथाओ को शीघ्र

मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। (स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम और कर्तव्य के विषय मे "गीता का व्यवहार दर्शन" अ, १२ मे दिये गए पति और पत्नी के कर्तव्यो का खुलासा लोगो को समझाना चाहिए)।

(६) विवाह के अवसर पर जो रीति-रिवाजो मे फिजूल खर्च किया जाता है, वह सब बन्द होना चाहिए। न कोई देव पूजन आदि धार्मिक कृत्य होना चाहिए। बालको के नामकरण, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत आदि, जो कई प्रकार के सस्कारो की व्यर्थ रूढियाँ प्रचलित हैं वे सब बन्द करवानी चाहिए।

(७) मृत्यु के समय जो बिरादरी और ब्राह्मणो को प्रेत-भोजन देने की कुप्रथा है, वह सर्वथा उठा देनी चाहिए।

(८) स्त्रियो के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकार पुरुषो के समान ही समझने चाहिए। कार्य-विभाग के लिए गृहस्थी स्त्रियो का मुख्य कर्तव्य अपने घर-गृहस्थी का काम करने और बच्चो के पालन-पोषण आदि करने का स्वाभाविक है, और पुरुष का मुख्य कर्तव्य अपनी स्त्री और बच्चो के पालन-पोषण के लिए कमाना और बाहरी कार्य करना स्वाभाविक है। परन्तु इस कार्य-विभाग के कारण हीनता व उच्चता का भेद उत्पन्न नही होना चाहिए, किन्तु गृहस्थ के दोनो अग बराबर समझे जाने चाहिए। जिन स्त्रियो के गृहस्थ नही हो वे अपने स्वावलम्बन के दूसरे काम भी कर सकती हैं। विशेष करके समाज की सेवा के कार्य मे तो स्त्रियो को पुरुषो के बराबर भाग लेना चाहिए। स्त्रियो को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार और उत्साह देना चाहिए। परदा अथवा घूंघट की कुप्रथा को फौरन सर्वथा मिटा देना चाहिए।

(९) वर्तमान समय मे साधारण जनता पुत्र-जन्म के अवसर पर हर्ष उत्सव मनाती है और कन्या के जन्म पर दुख और शोक करती है तथा कन्या के पालन-पोषण और शिक्षण आदि की सर्वथा उपेक्षा करती है। विवाह सम्बन्ध करने मे उसके भावी सुख-दुख का यथोचित विचार न करके पशुओ की तरह उसका दान किया जाता है। यह घोर अत्याचार और राक्षसीपन है। पुत्र-पुत्री का एक समान पालन-पोषण, शिक्षण आदि होने चाहिए। पुरुष स्त्रियो के गर्भ मे ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए कन्या का आदर पुत्र के समान ही होना चाहिए।

(१०) **शिक्षा**—अक्षर ज्ञान के साथ-साथ सदाचार, शिष्टाचार और नागरिकता की शिक्षा, स्त्री-पुरुष दोनो के लिए आवश्यक है। साथ ही साथ किसी न किसी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा भी अवश्य होनी चाहिए जिससे अपने शरीर और गृहस्थ के जीवन निर्वाह के लिए परावलम्बी न बनना पडे, किन्तु स्वावलम्बी हो जावे। शिक्षा के साथ शरीर स्वस्थ और सुदृढ बना रहे, यह प्रबन्ध भी अवश्य होना चाहिए। इस पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। युवक-युवतियो की सहशिक्षा (Co-education) हमारे देश की वर्तमान स्थिति के अनुकूल नही है। इसको उत्साह नही देना चाहिए।

हमारे देश की शिक्षा प्रणाली बहुत ही दोषपूर्ण है। वह मनुष्यो को सच्चा मनुष्य नही बनाती। स्वतत्र विचार करने योग्य तथा स्वावलम्बी नही बनाती, किन्तु अधिकतर किताबो के कीडे, परावलम्बी तथा उच्छृखल बना देती है। इसको बदलकर सच्ची, हितकर शिक्षा प्रणाली बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इस विषय मे दूसरे उन्नत देशो का आदर्श लेना चाहिए।

(११) आहार-विहार शरीर को स्वस्थ, पुष्ट, बलवान और दीर्घजीवी बनाने वाला होना चाहिए (इस विषय मे 'गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय ६ श्लोक १६-१७ और अध्याय १७ श्लोक ८ से १० मे लिखे हुए स्पष्टीकरण को देखना चाहिए)।

(१२) रहन-सहन और वेष-भूषा (पोशाक) अवसर के अनुसार, शरीर की रक्षा और अपने कार्य के उपयुक्त होने चाहिए। सफाई और शुद्धता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(१३) दूसरे सभ्य व्यक्तियो से मिलते समय शिष्टता, नम्रता और मधुरता का बर्ताव करना चाहिए।

(प्राचीन आर्य-सस्कृति के शिष्टाचार का वर्णन गीता के अध्याय १७ श्लोक १४ से १६ मे किया गया है। "व्यवहार दर्शन" मे उसका स्पष्टीकरण देखना चाहिए)।

(१४) शरीर को स्वस्थ और बलवान रखने का सदा ध्यान रखना चाहिए, क्योकि स्वस्थ और बलवान शरीर ही अपने कर्तव्य ठीक तौर से पालन करने योग्य होते हैं। उसी से विचार शक्ति भी बढती है। मादक और उत्तेजक पदार्थों के व्यसनो से बचना चाहिए।

(१५) **उत्सव**—जाति के जीवन का लक्षण है, इसलिए विशेष अवसरो पर उत्सव अवश्य मनाने चाहिए, जिसमे अच्छे वस्त्र, अच्छे भोजन, हर्ष, उत्साह, हास्य, विनोद, गाने, बजाने, नृत्य करने आदि के आयोजन सभ्यतापूर्ण हो परन्तु होली के अवसर पर अश्लील बोलने तथा रग गुलाल आदि डालने के जो असभ्य व्यवहार होते हैं, वे फौरन बन्द होने चाहिए। आज कल के फैशन के स्त्री-पुरुषो के सयोग के जो डास या बाल आदि होते है, उनका प्रचार समाज मे नही होने देना चाहिए।

(१६) मनोविनोद के साधन और खेल-तमाशे तथा व्यायाम के साधन, जहाँ तक बन सके, कम खर्चीले और जनता की नैतिक उन्नति और सुरुचि उत्पन्न करने मे सहायक होने वाले होने चाहिए। वर्तमान मे देश मे मनोविनोद का एक मुख्य साधन "सिनेमा" हो रहा है। परन्तु सिनेमा वाले अपने लाभ के लिए, इनमे प्राय ऐसे दृश्य दिखाते हैं, जिनसे जनता मे विलासिता और कामुकता बढती है, नैतिक पतन और कुव्यसनो मे कुप्रवृत्ति अधिक होती है। इस विषय मे क्रान्ति होने की आवश्यकता है। "सिनेमा" मे दृश्य ऐसे दिखाये जाने चाहिए, जिनसे शुद्ध विनोद हो, जनता का बौद्धिक और नैतिक विकास हो, विज्ञान और कला-कौशल का ज्ञान बढे, अज्ञान, अन्याय और दरिद्रता दूर करने की प्रेरणा प्राप्त होवे।

(१७) रेल-यात्रा, उत्सव, त्योहार और मेलो-तमाशो व बाजारो मे बहुत लोगो का जमघट होता है, जहाँ धक्कम-धक्का और लडाई-झगडे होते हैं। ऐसा न होना चाहिए। ऐसे अवसरो पर एक दूसरे के अधिकार और सुविधा का ध्यान रखते हुए, व्यवस्थित रूप से सभ्यता का बर्ताव करना चाहिए।

(१८) पडोसियो के साथ स्नेह का बर्ताव रखना चाहिए। उनके दुख-दर्द मे काम आना और यथाशक्य सहयोग देना चाहिए। अपने घर की गन्दगी व कूडा-करकट या गन्दा पानी आदि पडोस के घर, गलियो और सडक की तरफ नही फैंकना चाहिए। सफाई और स्वास्थ्य की आवश्यकता सब को रहती है, इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह फर्ज होना चाहिए कि वह केवल अपने ही घर की नही, किन्तु तमाम पासपडौस व मोहल्ले वालो के लिए भी सफाई, सुविधा व स्वास्थ्य का ध्यान रखे।

(१९) वर्तमान मे अधिकाश व्यक्तियो के सतति इतनी अधिक होती है कि उनका पालन पोषण और शिक्षण करने मे वे नितान्त ही असमर्थ रहते हैं, जिससे सतति निर्बल, रोगी, अल्पायु, मन्दबुद्धि और अशिक्षित रहने के अतिरिक्त उनके माता-पिता, उनके बोझ से दबे रहते हैं। देश मे भी ऐसे बोझ रूप अयोग्य लोगो की जन-सख्या इतनी बढ गई है कि उनके जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक पदार्थों की बहुत कमी हो गई है। इस लिए सतति-निग्रह की अत्यन्त आवश्यकता है। जहाँ तक बन सके निर्दोष उपायो से सतति-निग्रह के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। छोटी उम्र के विवाह भी सतति बढाने का एक मुख्य कारण हैं। यह तुरन्त बन्द होने चाहिए।

(२०) प्रत्येक स्त्री-पुरुष को चाहिए कि वे अपने बच्चो का स्नेह-पूर्वक पालन-पोषण और शिक्षण, अच्छी तरह से करावे और उन्हे हर प्रकार से शिष्ट और योग्य बनाने का प्रयत्न करें। सतान का कर्त्तव्य है कि वे अपने माता-पिता का आदर-सम्मान करें और वृद्धावस्था मे उनका भरण-पोषण और सेवा-सुश्रूषा करें। पुत्र के विवाह का दायित्व माता-पिता पर नही होना चाहिए। परन्तु हमारे देश के वातावरण पर ध्यान रखते हुए,

पुत्री के विवाह का दायित्व माता-पिता पर रहना आवश्यक है। सयुक्त परिवार की प्रथा एक निश्चित सीमा तक, माता-पिता की वृद्धावस्था मे सुरक्षा और वालक-वालिकाओ के पालन-पोषण, शिक्षा, विवाह और उन्हे सदाचारी वनाये रखने के लिए आवश्यक है। परन्तु एक ही परिवार मे एक से अधिक भाई, विवाहित और स्वतत्र आजीविका अर्जन करने योग्य होने पर, उनका परिवार पृथक्-पृथक् होकर रहना सुविधाजनक होता है। एक सयुक्त परिवार मे एक दम्पति, उनके माता-पिता और उनकी अविवाहित अथवा आजीविका रहित सन्तान और भाई-वहन ही रहने चाहिए। एक ही परिवार मे रहने वाले कमजोर स्थिति वाले कुटुम्वियो की सहायता, अच्छी स्थिति वालो को करना अपना फर्ज समझना चाहिए। परिवार के पृथक् होने पर भी कुटुम्बियो को एक दूसरे की सहायता और सुख-दुख मे काम आना चाहिए।

(२१) अनाथ वालको और स्त्रियो की सुरक्षा के लिए समुचित प्रवन्ध करने मे सहायक होना चाहिए। पर वर्तमान मे अनाथालयो और विधवाश्रमो के नाम पर जो धूर्त लोग जनता को ठगते हैं और दुराचार करते हैं, उनका भण्डाफोड करके अवश्य लोगो को वचाना चाहिए।"

धार्मिक क्रान्ति का रूप

वर्तमान समाज के जीवन मे सामाजिक एव धार्मिक विषयो मे अन्तर कर सकना वहुत कठिन है क्योकि दोनो ही विषय एक दूसरे के साथ दूध पानी की तरह मिला दिए गये है। कदाचित ही कोई सामाजिक विषय ऐसा होगा, जिसको धार्मिक अध विश्वासो एव वन्धनो मे जकड नही दिया गया है। इसी कारण धर्म के नाम से समाज मे कितनी ही रूढियाँ तथा अध परम्पराएँ जारी कर दी गई हैं। उनमे मनुष्य के जीवन को जन्म से भी पहले से और मृत्यु के वाद भी जकड दिया गया है। उनसे तिलमात्र भी अलग होने पर उसके पतित होने की व्यवस्था समाजपतियो और धर्मपतियो द्वारा दे दी जाती हैं। लोकाचार का सम्वन्ध सामाजिक जीवन के साथ होते हुए भी उसको शास्त्राचार के समान धर्म के साथ वाँध दिया गया है। धर्म, धर्मशास्त्रो और धर्म गुरुओ के नाम से जो कुछ भी कह दिया जाता है उसको आँखे मूंदकर स्वीकार करने के सिवाय दूसरी कोई गति नही है।

तीस वर्ष की आयु तक आपके जीवन और धार्मिक विचारो का पुराना ही क्रम वना रहा। उसके वाद वह जिज्ञासु एव मुमुक्षु भावना जागृत होनी शुरू हुई जिसके सस्कार वीज रूप मे आप मे विद्यमान थे, किन्तु प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियो मे उनका पनप सकना सम्भव नही था। शनै शनै उन्होने पनपना शुरू किया। कई घटनाएँ ऐसी घट गईं, जिनके कारण अन्त करण की अध श्रद्धा और अधभावना को वडी ठेस लगी। ज्योतिपियो, पडितो, धर्माचार्यों और साधुओ के पोल पाखण्ड व अनाचार का प्रत्यक्ष परिचय आपको मिलने लगा और उनके प्रति घृणा पैदा होनी प्रारम्भ हो गई। गृह नक्षत्रो के फलादेशो के मिथ्यापन की जानकारी भी आपको प्रत्यक्ष अनुभव होने लगी और आपने मुहूर्त निकलवाना वन्द कर दिया। जन्म-पत्री से प्रतिवर्ष वर्षफल निकलवाने की पारिवारिक परम्परा का आपने परित्याग कर दिया और फलादेश वतानेवाले ज्योतिपियो, निद्धो तथा हस्तरेखा देखने वालो पर से आप का विश्वास उठ गया। किराये के जाप कराने व पूजा-पाठ की वरनी विठाने सर्वथा वन्द कर दिए। सामयिक साहित्य के अध्ययन से आन्तरिक जिज्ञासा एव मुमुक्षु भावना को वल मिला और अध विश्वास व अध धारणाएँ दूर होती चली गईं। समाज सुधार सम्वन्धी कार्यो की ओर प्रवृत्ति होने पर यह जानने समझने मे अधिक समय नही लगा कि हमारा सारा सामाजिक जीवन धार्मिक रूढियो, अध परम्पराओ और धार्मिक अध विश्वासो मे जकडा हुआ है। उनको दूर किए विना समाज सुधार का कोई भी कार्य सफल नही हो सकता और सामाजिक जीवन मे कोई भी परिवर्तन किया नही जा सकता। सामाजिक क्रान्ति के लिए धार्मिक

क्रान्ति अनिवार्य है और उसके लिए ब्राह्मणो के चगुल से समाज को छुटकारा दिलवाना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए आपने ब्राह्मणो की अंध पूजा तथा धार्मिक अंध भाव से किए जानेवाले सत्कार के विरुद्ध आवाज उठाई। यह काम बहुत टेढा था, किन्तु तीव्र क्रिया की जैसी तीव्रतम प्रतिक्रिया होती है, वैसी ही आपके धार्मिक जीवन मे भी हुई। कभी आप "सत्यार्थ प्रकाश" को स्पर्श तक करने के विरुद्ध थे। बाद मे आपने उसको पढा और उसके बहुत से विचार आपको जँच गए। आर्यसमाज के प्रति घृणा दूर हो गई।

आपके जीवन मे इस प्रकार परिवर्तन का जो क्रम प्रारम्भ हुआ उसको स्वामीजी उत्तमनाथ जी महाराज की सत्सगति से विशेष प्रेरणा मिली। आपने जब उनसे वेदान्त का अध्ययन किया और उपनिषद तथा भगवद्गीता आदि ग्रन्थो का स्वाध्याय किया तब भीतर की मुमुक्षु दृष्टि खुल गई और बाहरी धार्मिक झंझट मिथ्या प्रतीत होने लगे। देवी देवताओ पर से विश्वास उठ गया और ईश्वर के सम्बन्ध मे की गई नाना प्रकार की कल्पनाओ पर से आपकी श्रद्धा मिट गई। आपने जगत से और अपने से भिन्न किसी व्यक्ति-ईश्वर के अस्तित्व को मानना छोड दिया। यह विश्वास आपका दृढ हो गया कि जब तक समाज और देश मे व्यक्ति ईश्वर की मान्यता बनी रहेगी तब तक उसको सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त नही होगी, अपितु मानसिक एव बौद्धिक गुलामी के बने रहने के कारण देश और समाज का वास्तविक कल्याण नही होगा।

समाज मे ईश्वर के सम्बन्ध मे विद्यमान अथवा प्रचलित धारणाओ के आप कट्टर विरोधी बन गए। मानव समाज मे जो भयानक धार्मिक अनर्थ एव सामाजिक अत्याचार हो रहे हैं उन सबका मूल कारण आपकी दृष्टि मे व्यक्ति-ईश्वर की मान्यता है। व्यक्ति-ईश्वर की मान्यता के ही कारण अनेक उसको भक्तवत्सल, करुणा-सागर और कृपासिंधु आदि कह कर उसकी चापलूसी करके उसके द्वारा अपने पापो से छुटकारा पाने की दिल जमई कर लेते हैं। फिर कुकर्म करने का मानो उन्हें परवाना मिल जाता है और निर्भय होकर वे कुकर्म करने मे लग जाते हैं। कई उसको भोग प्रसाद, भेंट पूजा आदि की रिश्वतो से राजी करके अपने मनोरथ पूरा करने मे विश्वास रखते हैं। देवी देवताओ तथा मन्दिरो की मान्यताओ के कारण समाज मे कितना प्रपच व पाखण्ड फैला हुआ है। जिनका ईश्वर भोग प्रसाद भेंट-पूजा आदि की रिश्वत लेकर उनकी सारी कामनाओ की पूर्ति कर देता है भला वे दूसरो से रिश्वत लेकर उनकी कामनाओ की पूर्ति क्यो न करें ? कई लोग अपने ईश्वर को ही सब कुछ करने कराने वाला मानकर अपने को उसका चलाया हुआ औजार बताकर अपने कर्तव्यो तथा जिम्मेवारियो से विमुख हो जाते हैं। अपने आप पर भरोसा न रख कर पुरुषार्थ हीन, निरुद्यमी तथा परावलम्बी बने रहते हैं। विभिन्न सम्प्रदायो के लोग अपने ईश्वर को दूसरे सम्प्रदाय वालो के ईश्वर से विलक्षण मानकर और उसको सन्तुष्ट करने के लिए साम्प्रदायिक उपासना तथा कर्मकाड के विधि-विधानो को एक-दूसरे के विरुद्ध मानकर आपस मे लडने-झगडने तथा खून-खराबी करने मे भी पीछे नही रहते। ससार के इतिहास मे साम्प्रदायिक लडाई झगडो मे जितनी खून की नदियाँ बही हैं उतनी शायद दूसरे कारणो से नही बही होगी। आज भी समाज मे जो भ्रष्टाचार, अनाचार, अकर्मण्यता, ईर्ष्या-द्वेष, कलह एव वैमनस्य पाया जाता है, उसका मूल कारण आपकी दृष्टि मे व्यक्ति-ईश्वर की भिन्न-भिन्न विरोधी कल्पनाएँ हैं।

आपकी दृष्टि मे इससे सबसे बडा अनर्थ यह हुआ है कि मनुष्य ने अपनी बुद्धि से काम लेना छोड दिया है। व्यक्ति-ईश्वर की कल्पना बुद्धि, विचार अथवा तर्क की कसौटी पर पूरी नही उतरती और न वे गुण पूरे उतरते हैं जो उस कल्पित ईश्वर मे बताए जाते हैं। वह केवल मिथ्या भावना की कपोल कल्पना है। इसलिए उसको मानने वाला भावना प्रधान बन कर बुद्धि, विवेक अथवा विचार से काम लेना छोड देता है और अन्ध-विश्वासी, विचारहीन एव भावुक बन जाता है। मनुष्य मे यही तो विशेषता है कि वह अपनी बुद्धि से काम ले सकता है। उससे काम लेना छोडकर और भावनामय बन कर वह अपनी मनुष्यता को खो बैठता है। यह अवश्य

है कि साधारण मनुष्य अपनी बुद्धि से सूक्ष्म तत्त्वो का विवेचन करके उनकी गहराई मे नही पहुँच सकता। इस-लिए आपका मत यह है कि जिन मनुष्यो की बुद्धि का पर्याप्त विकास हो जाता है और जो अपनी बुद्धि के सहारे तत्त्वदर्शी वन जाते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे साधारण जनो को अपनी बुद्धि से काम लेकर कुछ विचार करने के लिए प्रेरित करें। और उनको अन्धी भावना से मुक्त करके बुद्धिवादी बनाने का प्रयत्न करें। भावना का सदुपयोग करना सर्व-साधारण को सिखाना चाहिए। ऐसा नही है कि आप ईश्वर के अस्तित्व को बिलकुल भी नही मानते, अपितु ईश्वर के अस्तित्व की भावना को आप अच्छी, लाभदायक और आवश्यक भी मानते हैं। परन्तु ईश्वर को व्यक्ति विशेप तक परिमित रख कर उसको विशेप गुणो वाला न मान कर सारे विश्व मे व्यापक, सबमे एक समान और आत्मा रूप मे सब मे विद्यमान मानते हैं। इसी भावना को जन-जन मे जागृत करके ईश्वर को सबके भीतर और मनुष्यो को उसके ही अनेक रूप समझ कर सबके साथ प्रेमपूर्ण, सहृदय व्यवहार करना ही आपकी दृष्टि मे सच्ची ईश्वर-भक्ति है। सबके हित के लिए अपनी-अपनी योग्यतानुसार कर्तव्य कर्म करना ही आपके विचार से वास्तविक धार्मिक कर्मकाड है और उसी की शिक्षा-दीक्षा सबको दी जानी चाहिए। इसी प्रकार साधारण जनता की भावना का सदुपयोग करके सच्ची एकता स्थापित करके समाज का कल्याण व उपकार किया जा सकता है। एक ओर ईश्वर को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान मानते हुए दूसरी ओर विशेप गुणो वाले व्यक्ति विशेप के रूप मे परिमित मानना या सीमित समझना परस्पर विरोधी भावना है। मनुष्यो की तरह ही ईश्वर को ससार से अलग किसी विशेप गुण-सम्पन्न, किसी विशेप व्यक्ति मे अथवा किसी विशेप स्थान मे प्रतिष्ठित मानना उसके ईश्वरत्व का अन्त करना है और यह सद्भावना नही, किन्तु दुर्भावना है। यह ईश्वर की पूजा या भक्ति नही, किन्तु तिरस्कार एव अपमान है। यह तर्क और इस प्रकार विचार करने की प्रवृत्ति साधारण जनता मे उत्पन्न करना आप अत्यन्त आवश्यक मानते है। यद्यपि वश परम्परा से दीर्घकाल से जड पकड़े हुए और दिल व दिमाग मे जमे हुए अधविश्वास तथा अध भावना के सस्कार एकाएक मिट नही सकते और उनके लिए दीर्घकालीन प्रचार एव प्रयत्न की आवश्यकता है, परन्तु आपका यह दृढ मत है कि धार्मिक जडता एव अधकार से जनता को मुक्त करने के सिवाय इसके दूसरा कोई मार्ग नही है— "नान्य पथा विद्यते अयनाय।" सक्षेप मे आपके विचारो को आपके ही इन शब्दो मे कहा जा सकता है कि स्वराज्य-आन्दोलन के दिनो मे सारे देशवासियो की एकता की प्रतीक रूप मे भावनामयी भारतमाता की कल्पना करके देश के समस्त लोगो को उसकी उपासना मे जैसे लगा दिया गया था और देश की स्वतन्त्रता के लिए जैसे सब लोग अपनी योग्यता एव सामर्थ्य के अनुसार अपने कर्तव्य पालन मे बडे उत्साह के साथ लग गये थे ठीक वैसे ही उस आदर्श के अनुसार सारे देश के कल्याण के लिए सारे देशवासियो की एकता के प्रतीक भावमय प्रत्यक्ष ईश्वर की, सबके साथ प्रेमपूर्ण सहृदय व्यवहार करने की उपासना और सबकी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपनी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार कर्तव्य पालन के कर्मकाड मे सबको लगाया जा सकता है।" यही आपके मत के अनुसार सच्चा धर्माचरण और ईश्वर की भक्ति व पूजा है।

साधारण जन शास्त्रो पर अधिक विश्वास रखते हैं इसलिए शास्त्रो के सम्बन्ध मे भी जनता को ठीक-ठीक जानकारी देकर नाना प्रकार के पोथी पत्रे के जजाल से उसको छुटकारा दिलाना चाहिए। इसी दृष्टि से आपने "गीता का व्यवहार दर्शन", "गीता विज्ञान", "सात्विक जीवन" तथा "दैवी सम्पद" ग्रन्थो का निर्माण किया और "ईशावास्योपनिपद की व्यावहारिक व्याख्या" अत्यन्त सरल, सुबोध एव सुगम शैली मे की। साधारण ज्ञान रखने वाला भी इनका अध्ययन अथवा स्वाध्याय बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। ईश्वर, धर्म, भक्ति, यज्ञ तथा योग आदि विपयो पर आपने छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ मनोरजक शैली और सरल भाषा मे लिखी हैं। फिर भी आपके विचार से "ईशावास्योपनिपद" के पहले दो मत्रो की व्याख्या तथा श्री भगवद्गीता के तीसरे अध्याय

का यज्ञ प्रकरण और पिछले अध्यायो के उपासना प्रकरण का स्पष्टीकरण जनता के सम्मुख विशेष रूप से किया जाना चाहिए। अन्य शास्त्रो से भी इनके समर्थक वचनो का सग्रह करके सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया जा सकता है। सर्वसाधारण की भ्रान्तिमूलक भावनाएँ और मिथ्या धारणाएँ अवश्य ही दूर की जानी चाहिए। आप पिछले अनेक वर्षों से, लगभग ३०-३२ वर्षों से इस प्रयत्न मे निरन्तर लगे हुए हैं।

आपने स्वय अपने धार्मिक विचारो को इन शब्दो मे लिखा है कि, "मेरे धार्मिक विचारो मे शनै - शनै क्रान्ति उत्पन्न होकर अन्त मे मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि साम्प्रदायिक अन्ध विश्वासो और कट्टरता की खीचतान का मूल कारण जगत से अलग किसी अप्रत्यक्ष व्यक्ति-ईश्वर या अन्य किसी अप्रत्यक्ष शक्ति की मान्यता है। यह न तो वास्तविक धर्म है और न आस्तिकता अथवा आध्यात्मिकता ही है। सच्चा धर्म अथवा आध्यात्मिकता जगत को ही जगदीश्वर रूप समझकर सबके साथ प्रेम करने और समाज के प्रति अपने कर्तव्य पालन करने मे है। इसी धर्म और आध्यात्मिकता की इस समय आवश्यकता है। दूसरे सम्प्रदायो व धर्मों के ग्रन्थो की मुझे जानकारी नही है परन्तु मुझे विश्वास है कि उनमे भी धर्म के इसी रूप का निरूपण किया हुआ अवश्य मिलेगा और हमको क्षीर-नीर मे विवेक करके वास्तविक धर्म को ग्रहण करने मे सकोच नही करना चाहिए। किसी भी प्रकार का हठ व दुराग्रह नही होना चाहिए"।

अपने इन परिपक्व धार्मिक विचारो का सर्वसाधारण मे प्रचार करने के लिए आपने समय-समय पर जो अनेक प्रयत्न किए उनमे "प्रगति सघ" का उल्लेख करना आवश्यक है। उसमे आपने धार्मिक क्रान्ति का खुलासा करते हुए जिन बातो का उल्लेख किया है आप उनके अनुसार व्यक्ति एव समाज के धार्मिक जीवन को ढालना आवश्यक मानते हैं। इसमे आपने उन उपायो का उल्लेख भी किया है जिनका अवलम्बन करके धार्मिक क्रान्ति की प्रक्रिया को सफल बनाया जा सकता है। आपने लिखा है कि "हमारे देश मे अगणित मन्दिर, मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे, समाधिस्थल, मठ, आश्रम, विहार और तीर्थ आदि सस्थाओ की भरमार है। साधु, सन्यासी, यति, सन्त, महन्त, भक्त, मठाधीश, पडे, पुरोहित, भिक्षु, भिक्षुणियें, आचार्य, महात्मा पथी, मुल्ले और मौलवियो की एकत्रित सख्या लाखो करोडो तक पहुँचती है। इन लोगो द्वारा प्रतिदिन बहुत बडी मात्रा मे विभिन्न प्रकार की सम्प्रदायो का साहित्य पुस्तको और पत्रिकाओ के रूप मे प्रकाशित हो रहा है।

हमारे साम्प्रदायिक व राजनैतिक नेता व समाचार पत्रो के सम्पादक उच्च स्वर से चिल्ला कर कह रहे हैं कि 'हमारा देश धर्म-प्रधान है। हमारी सभ्यता अध्यात्ममूलक है। हमारी सस्कृति सत्य और अहिंसात्मक है। हमारे जीवन का अतिम लक्ष्य नजात, मोक्ष, निर्वाण अथवा भगवद्-प्राप्ति है। हमारी लक्ष्य पूर्ति के साधन त्याग, वैराग्य, सेवा, पूजा, जप, तप, ध्यान, व्रत, उपवास, प्रार्थना और भक्ति आदि हैं'।

उपरोक्त सब होते हुए भी हमारे यहाँ घोर अज्ञान मूढता और अन्धविश्वास एव दु खो की भरमार है। दरिद्रता, दीनता, हीनता, रोग और दुबलता है। आत्मविश्वास का अभाव है। आत्म-प्रवचना अर्थात् अपने आप को धोखा दिया जाता है। छल, कपट और दम्भ है। अछूतपन, भ्रूणहत्या, स्त्रीहत्या, बालहत्या, अत्याचार, उत्पीडन और शोषण है। काला बाजार व रिश्वतखोरी है। जीवन के लिए नितान्त आवश्यक-श्रम, शक्ति और धन तथा मूल्यवान पदार्थों का अपव्यय हो रहा है। हमारी दृष्टि घोर व्यक्ति-मूलक, लौकिक और पारलौकिक स्वार्थ-सिद्धि की रहती है। राष्ट्र, समाज और ससार के प्रति हमारा दृष्टिकोण बहुत सकीर्ण, उदासीन और उत्तरदायित्वहीन है। हम स्वय ये बुराइएँ करते हैं, दूसरो के द्वारा अनजान होकर होने देते है या जानते हुए भी करवाते हैं। हमारी जानकारी मे कोई व्यक्ति या वर्ग उपरोक्त अन्याय करता है तो हम उसे बुरा नही समझते, उसका प्रतिकार करने की चेष्टा नही करते। उसके खिलाफ आवाज़ नही उठाते, उसके विरुद्ध सघर्ष नही करते। क्यो ? इसीलिए कि हमारी सारी समाज-व्यवस्था केवल व्यक्तिगत स्वार्थपरता की नीव पर खडी हुई है। हमारी

व्यक्तिगत स्वार्थपरता हमारे धार्मिक, साम्प्रदायिक और मिथ्या दार्शनिक अंधविश्वासो पर स्थापित है और हमारे मिथ्या विश्वासो की जड, अदृष्ट शक्तियो की असत्य और कपोल कल्पित मान्यताओ पर दृढता से जमी हुई है। यही कारण है कि हम असत्य को सत्य, अन्याय को न्याय, कर्तव्य को अकर्तव्य, अच्छाई को बुराई और बुराई को अच्छाई वताने का दु साहस करते हैं। इस समय हमको आवश्यकता धर्म, सम्प्रदाय और सूखी आध्यात्मिकता के अफीम की नही है। प्राचीन-शास्त्र, धर्मग्रन्थ, सन्त, भक्त, साधु, महात्मा, त्यागी, वैरागी, आचार्य, गुरु, पुरोहित, मुल्ले, मौलवी आदि हमारी समस्याएँ हल नही कर सकते। अगर कर सकते होते तो हजारो वर्ष पूर्व ही हमारा देश भूमि का स्वर्ग होगया होता। हमने सैकडो हजारो वर्षों तक गहरी श्रद्धा और भावुकता-पूर्वक यज्ञ किए, दान दिए, प्रार्थना और तप किए, भक्ति, जाप, पूजा, पाठ, यन्त्र, मन्त्र, और तन्त्रो की साधना की। श्मशान जगाये, अनुष्ठान किये, गृह, नक्षत्र, राशि, देवी, देवता, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, गधर्व आदि के पीछे पडे। योग साधे, समाधिये लगाईं, परन्तु राज, समाज और अर्थ (धन) के क्षेत्र मे होने वाला अन्याय, अत्याचार और शोषण वन्द नही हुआ वल्कि और अधिक वढता ही गया। हजारो वर्षो के वाद आज हमको होश आया है। हम समझने लगे हैं कि हमारा दुख हमारे धार्मिक और सामाजिक अन्याय का फल है। हमारा सामाजिक अन्याय हमारे धार्मिक और साम्प्रदायिक मूढ विश्वासो पर आश्रित है। इसलिए यदि हम सुख, शान्ति, एकता, और शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो हमे अपनी अन्यायमूलक धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओ का मूलोच्छेदन करने के लिए, उन मूढ विश्वासो का विध्वस करना पडेगा जिनकी वुनियाद पर ये अन्यायपूर्ण व्यवस्थाएँ खडी हुई हैं। जव तक हम इस कार्य मे सफल नही हो जाते, देश मे सत्य और न्याय की भावना प्रतिष्ठित नही होगी। सत्य और न्याय की चेतना रहित कोरी भावुकता के सहारे हम अपना और जनता का उद्धार नही कर सकते। जनता जव तक अपने माने हुए व्यक्ति-ईश्वर, देवी देवता, भाग्य और गृहो के चक्कर मे पडी रहेगी तव तक यह अन्याय के प्रति क्रान्ति नही कर सकती। इसलिए विचार-क्रान्ति हमारी सर्वोपरि आवश्यकता है। यही धार्मिक क्रान्ति है। और वह इस तरह होनी चाहिए —

(१) सव शरीरो और सारे विश्व मे एक ही सूक्ष्म-तत्त्व या शक्ति या सत्ता सर्वव्यापक है। यह एकता ही सारे ससार का आधार है और यह सव की एकता का भाव ही ईश्वर या भगवान या परमात्मा है। इस सव की एकता के भाव के अतिरिक्त कोई अलग व्यक्ति ईश्वर या भगवान नही है। अपने से और ससार से अलग किसी व्यवित ईश्वर का मानना सारे अन्धविश्वासो का मूल कारण है। इसलिए अलग व्यक्ति ईश्वर की मान्यता समूल मिटा देनी चाहिए।

(२) सव मनुष्य ससार मे उत्पन्न होते हैं, ससार मे जीवित रहते हैं और ससार मे ही कर्म करते है, अत ससार के साथ उनकी एकता है। इसलिए ससार के सुख-दुख, हानि-लाभ शामिल है। किसी भी मनुष्य का यह सोचना कि "मेरा हित और सुख ससार के हित और सुख से अलग और विरुद्ध है, इसलिए ससार की चाहे हानि हो या लाभ, मुझे केवल व्यक्तिगत हित, सुख, कल्याण, मोक्ष, या निर्वाण के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए" सव से वडी भूल और पापाचार है। इस प्रकार की घोर व्यक्तिगत स्वार्थपरता के अधविश्वास का शिकार होने वाला मनुष्य ही स्वर्ग और वैकुण्ठ के भोगो का लोभी वनकर, कर्मकाण्ड और उपासना के पाखण्डपूर्ण गर्त मे पडता है और यही कोरी व्यक्तिगत स्वार्थमूलक मिथ्या भावना समस्त अन्याय करवाती है। इस झूठी भावना को वदल कर सव के साथ अपनी एकता का भाव दृढ करना चाहिए और स्वर्ग, वैकुण्ठ और मोक्ष आदि के मिथ्या विश्वासो को मन से विल्कुल निकाल देना चाहिए।

(३) ऐसे अधविश्वासी व्यक्ति ही पुरुषार्थहीन, डरपोक, दुर्वलचित्त, और आत्मविश्वास रहित होकर, केवल मात्र अपने भोग और मोक्ष की मृगतृष्णा मे पड कर देवी, देवता, भूत, प्रेत, आदि अदृश्य शक्तियो

के ठेकेदारो के अनेक प्रकार के छलो के शिकार होते हैं और ग्रह नक्षत्रो के शुभाशुभ फल की भविष्य-चिन्ता मे घुलते हुए जप, तप, पूजा, पाठ के झूठे ढकोसलो की ठगाई मे आते हैं। इन लोगो को इस जाल से निकालना चाहिए।

(४) ये लोग सामाजिक सहयोग और पुरुषार्थ के प्रत्यक्ष महत्व को न समझने के कारण प्रारब्धवाद के चक्कर मे पडकर उद्यम-हीन हो जाते हैं। अत प्रारब्धवाद का खण्डन करके पुरुषार्थ के प्रत्यक्ष लाभ और महत्व को सब को समझाना चाहिए।

(५) इस सच्चे रहस्य को जनता को अच्छी तरह समझाना चाहिए कि ससार का हित करना ही पुण्य है और केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की दृष्टि ही सब से बडा पाप है।

(६) जनता मे यह प्रचार करना चाहिए कि लोकहित करना निष्काम-कर्म है और लोकहित की उपेक्षा करके अपनी पृथक् स्वार्थ-सिद्धि के लिए किये जाने वाले शारीरिक व मानसिक, तमाम कर्म सकाम व घोर पापमूलक हैं।

(७) जनता को यह बताना चाहिए कि पारलौकिक स्वार्थ-सिद्धि के अधविश्वास मे आज के अत्यन्त आवश्यक और दुर्लभ अन्न, घी आदि बहुमूल्य पदार्थों को आग मे जलाकर होम करना 'यज्ञ' नही है किन्तु अपनी स्वाभाविक योग्यता के काम करके सब के साथ सहयोग-पूर्वक सामाजिक आवश्यकताओ के पदार्थ उत्पन्न करना ही सच्चा "यज्ञ" है। (इस विषय मे गीता का व्यवहार दर्शन अ०, ३ श्लोक ९ से १६ तक का स्पष्टीकरण देखिए)।

(८) लोगो को यह समझाना चाहिए कि पडे-पुजारी, गुरु-पुरोहितो, साधु-सत, फकीरो और पेशेवर भिखारियो को, अपने व्यक्तिगत लोक परलोक की स्वार्थसिद्धि व मान-प्रतिष्ठा के लिए दिया जाने वाला दान सच्चा दान नही है। किन्तु समाज के जिन व्यक्तियो के परिश्रम से भोग्य पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं उनकी, तथा जो लोग लोक-सेवा के किसी भी काम मे लगे हुए हो उनकी यथार्थ आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे सहयोग देना तथा सहायक होना और लोगो को धार्मिक अधविश्वासो व सामाजिक रूढियो की गुलामी से छुटकारा दिलाना ही सच्चा दान है। (गीता का व्यवहार दर्शन अ०, १७ श्लोक २० से २१ तक का स्पष्टीकरण देखिए)।

(९) मन की एकाग्रता, बुद्धि के द्वारा व्यवस्थित रूप से विचार करने से होती है और उससे ही बुद्धि का विकास भी होता है। आँखें मूँदकर किसी रूप या मूर्ति या निराकार का ध्यान करने, किसी नाम का जाप करने या प्राणयाम आदि योग की क्रियाओ और प्रार्थनाओ से मन एकाग्र नहीं होता, उल्टे अपनी ही व्यक्तिगत भोग-वासनाओ से उत्पन्न होने वाले दिन के सपने दीखते हैं। (इस विषय मे गीता का व्यवहार दर्शन अ० १८ श्लोक ५७ का अर्थ व स्पष्टीकरण लोगो को समझना चाहिए)।

(१०) लोगो को यह बताना चाहिए कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सबके स्वार्थों मे जोड देना ही त्याग है। अपने कर्तव्य कर्मो को छोड देना वास्तविक त्याग नही है। गृहस्थ को छोड कर सन्यास का स्वाँग धारण कर लेना सन्यास नही है, किंतु छोटे से कुटुम्व के बदले विश्व को अपना कुटुम्व समझ कर सब के हित मे लग जाना ही सच्चा सन्यास है। यह चाहे गृहस्थ के स्वाँग मे हो या सन्यासी के। (गीता का व्यवहार दर्शन अ० ५ श्लोक १ से १६ व अध्याय १८ श्लोक १ से १२ तक का अर्थ व स्पष्टीकरण देखिए)।

(११) इस जीवन मे सारी आयु दुख, दरिद्रता, दीनता, हीनता, शारीरिक और मानसिक कष्टो एव अनेक प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बन्धनो मे विता देना और मरने के वाद स्वर्ग, वैकुण्ठ या मोक्ष या निर्वाण-प्राप्ति की आशा रखना विल्कुल मिथ्या भ्रम है और अपने आप को धोखा देने की आत्म-हत्या है। किन्तु साम्यभाव के वरताव द्वारा इसी जीवन मे सव प्रकार के सुख, शान्ति, स्वतन्त्रता और अपने ही प्रयत्न से सव प्रकार के वन्धनो से छुटकारा प्राप्त करना ही सच्चा स्वर्ग या मोक्ष या निर्वाण है। (यह तत्त्व गीता का

व्यवहार दर्शन अध्याय ५ श्लोक १८-१९ के अर्थ और स्पष्टीकरण के आधार पर समझना और लोगो को समझाना चाहिए) ।

(१२) सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए, यथायोग्य साम्यभाव का बरताव करने से ही देश मे पूर्ण सुख, शान्ति और समृद्धि बनी रह सकती है और इसी से सब व्यक्तियो को भी सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त हो सकती है । अत इस साम्यभाव के सिद्धान्त का प्रचार अच्छी तरह करना चाहिए । (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय ६ श्लोक २९ से ३२ तक का अर्थ और स्पष्टीकरण देखना चाहिए) ।

(१३) मछलियो को आटे की गोलियाँ फैंकना, नदियो मे दूध बहाना, चीटियो को सत्तू फैंकना, बन्दरो, कौवो, चीलो, कुत्तो आदि को अन्न खिलाना आदि, खाद्य पदार्थो की बरबादी से समाज के लिए आवश्यक खाद्य पदार्थो मे कमी आती है इसलिए ये बडे अन्याय हैं । इन पदार्थो के अभाव में मनुष्य भूखो मरते हैं और इस भुखमरी की हत्या के दोषी, उपरोक्त दुष्कर्म करने वाले होते हैं । यही हाल देवताओ की मूर्तियो के आगे ढेर के ढेर अन्न का भोग-प्रसाद लगाने का है । इन्हें बन्द करवाना चाहिए ।

(१४) तीर्थ यात्रा—करने से या नदियो मे नहाने से पुण्य नहीं होता । तीर्थ यात्रा और मन्दिरो की उपयोगिता का रहस्य "गीता-विज्ञान" के पाठ १८ के अनुसार लोगो को समझाना चाहिए ।

(१५) तप—वह है जो गीता के १७वें अध्याय मे श्लोक १४ से १६ तक मे कहा गया है । उनके स्पष्टीकरण के अनुसार शिष्टाचार ही तप हैं । शरीर को कष्ट देने वाले तपो का गीता के आधार पर ही खण्डन करना चाहिए । (अध्याय १७ श्लोक ५-६ और १९ के स्पष्टीकरण देखिए) ।

(१६) धर्म—की व्याख्या जो "समय की माँग" मे की गई है वह अच्छी तरह लोगो को समझाना चाहिए ।

(१७) अहिंसा, सत्य, क्षमा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि, जो साधारण धर्म या नीति के नियम माने जाते हैं, उनका आचरण भी सब की एकता के भाव से किया जाता है, तब ही लाभकारी होता है । पर यदि व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के लिए किया जाता है तो उसका दुरुपयोग होकर समाज के लिए हानिकर होता है । (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय १२ और १६ मे इनके दुरुपयोग और सदुपयोग की व्याख्या लोगो को समझाना चाहिए) ।

(१८) लोगो को यह समझाना चहिए कि चौके-चूल्हे की छूआछूत अधर्म पर आश्रित है । इसकी जड मे व्यक्ति विशेष की जन्मजात कुलीनता और श्रेष्ठता का घमण्ड है । यद्यपि सफाई और शुद्धता स्वास्थ्य के लिए अच्छे हैं, पर चौके-चूल्हे की और ऊँच-नीच जाति की छूत-छात से उसका कोई वास्ता नही है । इससे घोर अनर्थ और पतन होता है ।

(१९) मरे हुए रिश्तेदारो के पीछे जो प्रेत कर्म यानी श्राद्ध-तर्पण और ब्राह्मण भोजन आदि किए जाते हैं, वे बन्द कराना चाहिए । (गीता का व्यवहार दर्शन अध्याय १७ श्लोक ४ का स्पष्टीकरण देखिए) ।

(२०) धर्म के नाम पर होने वाली भीख माँगने की वृत्ति को बन्द कराना चाहिए ।

निस्सन्देह ये विचार और ये उपाय अत्यन्त उग्र कहे जा सकते हैं, किन्तु गहरी जमी हुई सामाजिक एव धार्मिक जडता व मूढता को साधारण उपायो से दूर नही किया जा सकता । श्रीकृष्ण के समय से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एव राजनीतिक क्रान्ति का चतुर्मुखी चक्र अनवरत रूप से चल रहा है, किन्तु जनता की भावनाएँ तथा धारणाएँ इतनी जड व बद्धमूल हैं कि उनको दूर करना आसान नही है । इसीलिए तीव्र उपायो का अपनाया जाना आवश्यक एव अनिवार्य हो गया है और उन्ही का प्रतिपादन आपने किया है ।

व्यक्ति जिन विचारो को अपने जीवन मे उतार नहीं सकता उनका दूसरो पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । मोहता जी ने अपने जीवन को अपने सामाजिक एव धार्मिक विचारो के अनुसार ढालने का प्राणपण से

प्रयत्न किया है और उसके लिए अधिक से अधिक धैर्य, साहस एव सहिष्णुता से काम लिया है। घरवालो को अपने अनुकूल बनाने मे आपको उतनी कठिनाई का सामना नही करना पडा जितना कि पुरातन पथी लोगो की ओर से किए गए लोकापवाद का सामना आपने धैर्यपूर्वक किया है। आपके सुदृढ विचारो का पता उन आदेशो से भी लगता है जो आपने अपने देहावसान तथा अन्तिम क्रिया के सम्बन्ध मे अपने सम्बन्धियो तथा इष्ट मित्रो को दिए हैं। वे आपने एक विशेष आदेश पत्र पर लिखकर रख दिए हैं। अपने इस जीवन मे क्या, मृत्यु के बाद भी आपको किसी भी प्रकार की सामाजिक रूढि तथा धार्मिक अध परम्परा का किया जाना स्वीकार नही है। मृत्यु के उपरान्त प्राय सम्बन्धी लोग मृतात्मा के प्रति भावावेश तथा उसको शान्ति एव सद्गति प्राप्त कराने की सद्भावना आदि मे प्रेरित होकर अनेक प्रकार के सामाजिक एव धार्मिक अनुष्ठान करना अपना कर्तव्य समझते हैं परन्तु आपने ऐसे किसी भी अनुष्ठान के न करने का आदेश दिया है। उस आदेश को इसी प्रकरण मे अन्यत्र प्रकाशित करना हमने आवश्यक समझा है। उससे आपकी उत्कृष्ट सामाजिक एव धार्मिक क्रान्तिकारी भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है।

औसर निषेध

इसी प्रसग मे "औसर निषेध" शीर्षक से लिखा गया आपका गीत दिया जा रहा है, मृत्यु-भोज के रूप मे औसर की सामाजिक परम्परा अत्यन्त हृदयहीन है। इसको आपने अपने घर से बिलकुल मिटा दिया है, वह गीत निम्नलिखित है —

औसर मे हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥टेर॥

अन्तरा

जब कोई प्यारा मर जावे, घर के सब रोवें चिल्लावें, औरत बच्चे सब रुल जावें, भाई बन्धु माल उड़ावें।
मन में तरस जरा नहीं लावें, कैसी है निर्दयताई, औसर से हो रहे जुल्म अपार औसर छोड़ो सब भाई ॥१॥

जिस भाई को निर्धन पावें, उसके घर जेवर बिकवावें, बोहरा से करजा दिलवावें, जो कुछ हो गिरवी रखवावें।
दुखियों को बेमौत मरावें, भाई है या कसाई, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥२॥

जो भाई करदे इनकार, उसको सब करते लाचार, गाली दे तानों की मार, पच करें न्याती से बार।
कितना है यह अत्याचार, इधर कुआ और उधर खाई, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥३॥

मरने ऊपर माल उड़ावें, साक्षात राक्षस बन जावें, नोच-नोच दुखियों को खावें, मन में ग्लानी कुछ नहि आवे।
गीध काग घघू शरमावें, मनुष्य जूण कैसे पाई, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥४॥

बने धरम के ठेकेदार, ऐसे करते अत्याचार, पाप पुण्य का नहीं विचार, अन्त पड़े जब जमकी मार।
नहीं कोई मिले छुड़ावन हार, क्यों करते यह दुखदाई, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥५॥

कहे 'गोपाल' सबी समझाय, छोड़ो मित्रो यह अन्याय, मत लेवो दुखियों की हाय, इससे देश रसातल जाय।
बारी बारी सब दुख पाँय, अब तो कर लो सुनवाई, औसर से हो रहे जुल्म अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥६॥

राजनीतिक विचार

आपके राजनीतिक विचारो के साथ क्रान्ति शब्द का प्रयोग करने मे थोडा सकोच इसलिए होता है कि आपने कभी भी उग्र राजनीति अथवा राजनीतिक दलबन्दी मे कोई भाग नही लिया। आप सक्रिय राजनीति से प्राय अलग ही रहे हैं। वह आपके जीवन का मुख्य विषय नही रहा। फिर भी राजनीति के सम्बन्ध मे आपने कुछ चिन्तन और मनन किया है। उसके परिणामस्वरूप आपकी विराजनीतिक धारधारा सर्वथा स्वतन्त्र रही।

समाज को पूरी तरह अहिंसक नही बनाया जा सकता। स्वर्गीय श्रीकृष्णदास जी जाजू आपके परम स्नेही थे। उनके साथ "माहेश्वरी" पत्र मे इस बारे मे कुछ विवाद भी चला और आपके तथा जाजू जी के कई लेख भी उसमे प्रकाशित हुए। महात्मा जी की मुस्लिमपरस्त नीति आपको विल्कुल पसन्द नही थी। अली बन्धुओ को प्रमुखता देना, खिलाफत के लिए आन्दोलन करना व चन्दा जमा करना, श्री जिन्ना को कोरा चैक देना और बम्बई मे उसके साथ सुलह करने के लिए गाधी जी का उसके घर जाना आदि आपको कभी पसन्द नही आया। पाकिस्तान के निर्माण और हिन्दुओ पर घोर सकट आने की स्पष्ट कल्पना आप कई वर्ष पहले कर चुके थे। अपने इन विचारो को आपने कभी छिपाया नही। समय-समय पर नेताओ के साथ चर्चा होने पर उनको प्रकट करने मे आप सकोच नही करते थे और समाचार पत्रो मे भी उनके सम्बन्ध मे समय-समय पर लिखते रहते थे। भाई परमानन्द जी, श्री सतराम जी बी० ए० तथा लाला लाजपतराय जी आदि के साथ आपकी इस बारे मे जो चर्चा हुई वह उल्लेखनीय है। श्री सतराम जी ने अपने पत्र "युगान्तर" मे आपके उन सब विचारो को प्रकाशित किया था। उस पर एक काग्रेसी महिला ने बडा रोष प्रकट किया था और आपने उसका विस्तृत उत्तर लिख कर "युगान्तर" मे ही प्रकाशित करवाया था। महात्मा गाधी कराची पधारने पर आपके 'मोहता पैलेस" मे १५ दिन ठहरे थे। तब आपने उनसे भी इस सम्बन्ध मे चर्चा करके अपने विचार प्रकट किए थे।

अन्त मे देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन होकर पाकिस्तान का निर्माण हो जाने के बाद मुसलमानो तथा पाकिस्तान के प्रति अपनाई गई नीति से भी आप सहमत नही थे। मुसलमानो को स्वदेश मे रखने का आग्रह और उनको वापस बुलाकर यहाँ बसाने की नीति आपकी दृष्टि मे दूरदर्शितापूर्ण नही थी। १९४५ मे लार्ड वेवल द्वारा बुलाये गये शिमला सम्मेलन और उसके बाद भी हिन्दु-मुसलमानो मे समझौता कराने के प्रयत्नो के सफल न होने को आप हिन्दुओ की दृष्टि से उचित मानते थे, क्योकि उसमे भय यह था कि जो भी कोई समझौता होता उसमे हिन्दू घाटे मे रहते और मुसलमानो का हाथ ऊपर रहता। जब कोई समझौता न हो सका और मुसलमानो की जिद्द के कारण काग्रेस को देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के लिए सहमत होना पडा और अग्रेजो के प्रति विरोधभाव की नीति का परित्याग कर सहयोग की नीति से काम लिया गया तब आपको बडा सन्तोष हुआ। घटनाओ के क्रम को देखते हुए वैसा होना आपकी दृष्टि मे अनिवार्य था। सहयोग की इस नीति का आपकी दृष्टि मे यह शुभ परिणाम हुआ कि मुसलमानो की अनेक अनुचित माँगें स्वीकार नही की गई और स्वदेश का बहुत बडा भाग काग्रेस के हाथो मे रह गया। एक विशाल शक्तिशाली हिन्दू बहुल राज्य का आविर्भाव हो गया। देश के स्वतन्त्र होने के बाद पडित जवाहरलाल जी नेहरू तथा अन्य नेताओ ने अत्यन्त दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए लार्ड माऊण्टबेटन को "स्वतन्त्र भारत" का पहला गवर्नर जनरल बनाए रखने का जो निश्चय किया वह आपको सर्वथा उचित प्रतीत हुआ।

उन्ही दिनो मे १९४५ मे आपने "स्वतन्त्रता की तलाश" नाम से एक छोटी सी पुस्तिका लिखी थी। इसमे आपने गीता की दार्शनिक दृष्टि से स्वतन्त्रता का विवेचन करते हुए यह बताया था कि सच्ची स्वतन्त्रता का रूप क्या है ? सबकी एकता अर्थात् एक में अनेक और अनेको मे एक के वेदान्त के सिद्धान्त को अपनाए बिना सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त नही हो सकती। जबतक कि व्यक्तिगत पृथक स्वार्थों की खीचातानी बनी रहेगी और धार्मिक अन्ध विश्वासो तथा सामाजिक रूढ़ियो की मानसिक गुलामी जारी रहेगी तब तक सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग नही किया जा सकता। अपने को स्वतन्त्र मानने वाले राष्ट्रो मे भी इस सच्ची स्वतन्त्रता का अभ्युदय अभी नही हुआ है। और वे भी अधिकतर व्यक्तिगत स्वार्थो के सघर्ष मे उलझे हुए हैं तथा मजहबी एव सामाजिक गुलामी मे फसे हुए हैं। हमारे देशवासियो को पूर्ण स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त करने के लिए सब प्रकार की धार्मिक, सामाजिक एव मानसिक गुलामी से छुटकारा पाना आवश्यक है। यदि ऐसा न किया जा सका, तो

सदियो बाद प्राप्त की गई राजनीतिक स्वतन्त्रता स्थायी नही बन सकेगी ।

देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद लार्ड माउण्टबेटन को भी यहाँ से विदा करके जब श्री जवाहरलाल जी नेहरू अपने स्वतन्त्र विचारानुसार देश का राजनीतिक नेतृत्व और शासन संचालन करने लगे, तब उनके अद्भुत कार्य कौशल, अदम्य साहस, गम्भीर विचारशैली और दूरदर्शितापूर्ण निर्णयो से आप बहुत अधिक प्रभावित हुए। आप उनके अन्यतम प्रशसक एव समर्थक बन गए। आपने उस समय लिखा था कि "अनेको मे एक और एक मे अनेक के वेदान्त के सिद्धान्त को मानते हुए सब मे एकता, समता और बन्धुभाव की भावना से राज्य शासन के सचालन करने तथा "सर्वभूत हिते रता" के गीता के आदर्श का व्यावहारिक रूप से पालन करके सबके यथार्थ हित के प्रयत्न मे निरन्तर लगे रहने की उनकी अलौकिक नीतिमत्ता को देखकर मैं उनको एक विशेष विभूति सम्पन्न महापुरुष मानने लग गया और अनेक बातो मे भगवान कृष्ण से उनका मिलान करने लगा। उनकी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल मे सम्मिलित रहने की नीति मुझे बहुत पसद आई। मेरी दृष्टि मे उन्होंने यह निर्णय भावुकता से ऊपर उठकर बुद्धि, विवेक और दूरदर्शिता से किया। मेरी मान्यता यह है कि नेहरू जी के अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व के प्रभाव से ही इस देश की साम्प्रदायिक और सामाजिक बन्धनो से जकडी हुई स्वराज्य के अयोग्य जनता के लिए जनसत्तात्मक राज्य की व्यवस्था हो सकी है और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एव नेतृत्व से ही सम्भवत समय पाकर भारत की जनता इस स्वराज्य को स्थायी बनाने के योग्य हो सकेगी। साम्प्रदायिक और जाति-पाँति के भेद और आर्थिक विषमता मिटाने के नेहरू जी के विचार व समय-समय पर दिए जानेवाले वक्तव्य मुझे बहुत सुहाते रहे हैं। वे मेरे मत के सर्वथा अनुकूल है।"

उन दिनो मे "देश के विभाजन का सदुपयोग" शीर्षक से आपके कुछ लेख दिल्ली के दैनिक "अमर भारत" मे प्रकाशित हुए थे। "समय की माग" नाम से एक पुस्तक भी आपने उन दिनो मे प्रकाशित की थी। उसमे आपने धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक दृष्टि से क्रान्ति के चतुर्मुखी स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया था और बताया था कि इस समय उसी क्रान्ति की आवश्यकता है। उस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर गीता को हाथ मे लिए हुए भगवान श्रीकृष्ण और श्री जवाहरलाल जी नेहरू का चित्र देकर चतुर्मुखी क्रान्ति के विषय मे गीता के वे चार श्लोक उद्धृत किए गए थे जिनका उल्लेख इस प्रकरण के प्रारम्भ मे किया गया है। पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए आप चतुर्मुखी क्रान्ति को परम आवश्यक मानते हैं। इसके सम्बन्ध मे आपने अनेक लेख व पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की। आपने "प्रगति सघ" की स्थापना इस चतुर्मुखी क्रान्ति के आदर्श को सम्मुख रख कर की थी। ऐसी चतुर्मुखी क्रातिकारी सस्था के लिए सर्वसाधारण का यथेच्छ सहयोग मिल सकना अत्यन्त दुस्साध्य था। देश की सर्वोपरि राष्ट्रीय महासभा काग्रेस ने जब से समाज गठन के लिए समाजवादी व्यवस्था के आदर्श को स्वीकार किया तब से नेहरू जी जात-पात की सामाजिक ऊँच-नीच की रूढिगत भावना तथा धार्मिक अध विश्वासो को दूर करने पर कितना जोर दे रहे हैं, परन्तु गत आम चुनावो से यह पता चल गया है कि काग्रेस जन भी उनके इस आदर्श से बहुत दूर हैं और सामान्य देशवासियो की तरह वे भी जन्मगत जात-पात की सामाजिक एव धार्मिक सकीर्णता मे फँसे हुए है। प्रार्थना समाज, ब्रह्म समाज और आर्यसमाज की स्थापना जात-पांत, छूतछात तथा ऐसी ही अन्य बुराइयो को जडमूल से नष्ट करने के लिए की गई थी, किन्तु उनको भी अपने उस कार्य मे पूरी सफलता नही मिली। युग युग से और जन्म जन्मान्तर से चिपटी हुई सामाजिक एव धार्मिक बुराइयो की गदगी को दूर करने के लिए सिवाय इस चतुर्मुखी क्रान्ति के दूसरा कोई उपाय नही है। इस क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन आप पिछले पचास वर्षों से निरन्तर करते आ रहे हैं।

समस्त राष्ट्रवासियो मे एकता, समता तथा बन्धुभाव पैदा करने के जिन आदर्शों का उल्लेख सविधान की प्रस्तावना मे किया गया है, उनके लिए आपकी दृष्टि मे न्याय, शिक्षा और चिकित्सा का बिना किसी भेदभाव

एवं अपवाद के सब के लिए सुलभ करना अनिवार्य है। साधनहीन गरीब जनता अर्थाभाव के कारण न तो समुचित न्याय प्राप्त कर सकती है, न अपने बालको को शिक्षित कर सकती है और न अच्छी चिकित्सा का लाभ उठा सकती है। समुचित न्याय प्राप्ति न होने से भ्रष्टाचार एव अन्याय को बढावा मिलता है, शिक्षा के अभाव मे अज्ञान का अन्धकार चारो ओर बना रहता है और चिचित्सा के अभाव मे बीमारियो का प्रकोप चारो ओर फैल कर लोग अकाल मे काल का ग्रास बनते रहते हैं। जिस समाज व देश मे अन्याय, अज्ञान और अकाल मृत्यु का बोल-बाला हो वह प्रगति या उन्नति कैसे कर सकता है ?

महाराजा शार्दूलसिहजी ने राज्य मे सिविल सप्लाई की विगडती हुई स्थिति पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन किया था। उसमे आप को भी निमन्त्रित किया गया था। आपने राज्य की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए महाराजा को लक्ष्य करते हुए कहा था कि "आप के राज्य मे अन्न के रहते हुए भी प्रजा भूखो मरेगी और कपडा होते हुए भी लोग नगे फिरेंगे। लोगो को यह सन्देह है कि आप के मिनिस्टर लोग ही इस तरह की अव्यवस्था उत्पन्न करने के लिए जिम्मेवार हैं।" सम्मेलन मे सब मन्त्री भी उपस्थित थे।

श्री मानवेन्द्रनाथ राय जो "एम० एन० रौय" के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं अपने देश के महान् क्रान्तिकारी विचारक थे। वे कट्टर साम्यवादी थे। अनेक वर्ष विदेशो मे बिताने के बाद वे छद्म वेश मे स्वदेश लौटे थे और अग्रेज सरकार की गुप्तचर पुलिस छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। उनके आर्थिक व राज-नीतिक विचार अत्यन्त सुलझे हुए, परिपक्व और पूर्णत क्रान्तिकारी थे। उन्होने देश के आर्थिक विकास और राजनीतिक गठन के लिए जो योजनाएँ प्रस्तुत की थी वे सर्वथा मौलिक थी और मौलिक होने के ही कारण उनमे वर्तमान ढाँचे को आमूल-चूल बदल देने की क्षमता थी। कभी हमारे प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू भी उनकी अद्भुत प्रतिभा से बहुत प्रभावित थे। "मेरी कहानी" मे नेहरू जी ने मास्को मे उनके साथ हुई पहली मुलाकात का जो उल्लेख किया है उससे उनके क्रान्तिकारी स्वरूप तथा प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। मोहता जी उनसे देहरादून मे मिले थे और उनके साथ आप का घनिष्ठ सम्बन्ध कायम होगया था। श्रीमती एलेन राय ने अपने सस्मरण मे आप दोनो के पारस्परिक सम्बन्ध पर अच्छा प्रकाश डाला है।

इस विस्तृत विवेचन से आपकी राजनीतिक विचार-धारा के साथ-साथ राजनीतिक जीवन का भी कुछ स्पष्ट परिचय मिल जाता है। आपने अपने सक्रिय जीवन मे राजनीति को अपना मुख्य विषय कभी नही बनाया। परन्तु एक विचारक के नाते राजनीतिक विषयो और देश की राजनीतिक स्थिति पर चिन्तन, मनन, एव विचार करने से आप दूर नही रहे। समय-समय पर अपने विचारो को आपने अत्यन्त निर्भीकता के साथ प्रकट करने मे सकोच नही किया। आपका यह दृढ मत रहा है कि सामाजिक एव धार्मिक क्रान्ति के बिना राज-नीतिक क्रान्ति का सफल होना सम्भव नही है और इन क्रान्तियो से जनता के जीवन मे आमूल-चूल परिवर्तन हुए विना न तो प्राप्त हुई स्वतन्त्रता सुरक्षित रह सकती है और न आम जनता उससे कुछ स्थायी लाभ उठा सकती है।

आर्थिक क्रान्ति

एक अत्यन्त श्रीमन्त, सम्पन्न व समृद्ध घर मे और अपने परिश्रम एव अध्यवसाय से लखपति की हैसियत प्राप्त करने वाले पिता की गोद मे जन्म लेने के बाद करोडपति बन जाने पर भी आर्थिक क्रान्ति मे आपका जो विश्वास, निष्ठा एव आस्था है, वह अत्यन्त विस्मयजनक है। उसी के कारण कुछ क्षेत्रो मे आप के सम्बन्ध मे आप के साम्यवादी होने की धारणा पैदा कर दी गई। आपने भौतिक दृष्टि से साम्यवादी विचार-धारा को नही अपनाया, परन्तु गीता के आध्यात्मिक समत्व योग के आधार पर आर्थिक क्रान्ति करके सब को

समान अधिकार प्राप्त करवाने मे आप की दृढ आस्था है। स्वर्गीय लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल आप के आर्थिक क्रान्ति के कार्यक्रम के सम्बन्ध मे यह कह दिया करते थे कि आप की वात क्या की जाय, आप तो साम्य-वादी हैं। इसमे सन्देह नही कि साम्यवादी न होते हुए भी आपकी विचार-धारा साम्यवादियों से कई अशो मे मिलती-जुलती है। "ज्ञान विज्ञान मण्डल" और "प्रगति सघ" दोनो सस्थाओ का काम इसी कारण अग्रसर न हो सका कि उनके सम्बन्ध मे प्रकाशित किए गए साहित्य मे आपने अपने जिन विचारो का उल्लेख किया था उनमे आर्थिक क्रान्ति का रूप साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था से भी कुछ आगे वढा हुआ था। क्योकि गीता के समत्व योग का आधार सव की मौलिक एकता का सिद्धान्त है और भौतिक साम्यवाद अनेकता के आधार पर अवलम्वित है। देश के सम्पत्तिवानो को आप द्वारा दी गई चेतावनी मे भी साम्यवादी विचारधारा की झलक स्पष्ट रूप ने विद्यमान थी। यही कारण है कि आपकी आर्थिक विचारधारा देश के वर्तमान सम्पत्तिवानो, पूँजीपतियो अथवा उद्योगपतियो और राजनीतिज्ञो को भी पसन्द नही है। लेकिन धीरे-धीरे देश आप के ही विचारो की ओर अग्रसर हो रहा है। जिस प्रकार सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्र मे आपके विचारो के अनुकूल चहुँमुखी सामा-जिक एव धार्मिक क्रान्ति का प्रतिपादन किया जाने लगा है और हमारे महान नेता श्री जवाहरलाल नेहरू भी प्राय: अपने प्रत्येक भाषण मे जाति-पाँति और साम्प्रदायिकता के उन्मूलन पर जोर देने लगे हैं, ठीक वैसे ही वह दिन भी दूर नही है जव समाजवादी अर्थव्यवस्था को मूर्तरूप देने के लिए आप द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विचारो एव आर्थिक क्रान्ति का ठीक-ठीक मूल्याकन किया जा सकेगा।

प्रगति सघ के कार्य-क्रम मे आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए आप ने उसके लिए कुछ सक्रिय उपाय भी सुझाए। आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन आप ने निम्न शब्दो मे किया है :—

(१) एकत्रित की हुई धन-सम्पत्ति पर किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार नही है किन्तु वह सार्वजनिक सम्पत्ति है, क्योकि वह किसी के अकेले के उद्योग और श्रम से उत्पन्न नही हुई, किन्तु सव के सहयोग से उत्पन्न हुई है, इसलिए उस एकत्र सम्पत्ति से सव को लाभ पहुँचाना चाहिए और सवकी आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। चाहे वह सम्पत्ति उद्योगपतियो, पूँजीपतियो व व्यापारियो के पास हो, या राजो-महाराजो, जागीरदारो, जमीनदारो, महतो, मठाधीशो, गुरु, पुरोहितो, आचार्यो, पण्डे-पुजारियो या वकील, डाक्टरो, वैज्ञानिको, इजीनीयरो, सरकारी अफसरो, ठेकेदारो, एक्टरो आदि के पास हो। वह एक सार्वजनिक धरोहर के अन्दर आ जानी चाहिए, जैसा कि "समय की माँग" और "देश का आर्थिक सकट और उसको मिटाने का उपाय" नामक प्रकाशनो मे वताया गया है। इस ट्रस्ट से पूँजी सार्वजनिक कामो मे लगाई जानी चाहिए व इससे सार्वजनिक उपभोग के पदार्थों के उत्पादन का कार्य करना चाहिए।

(२) सारे उद्योग-धन्धे और व्यवसाय-व्यापार जनता की आवश्यकताएँ पूरी करने के उद्देश्य से होने चाहिए, केवल व्यक्तिगत लाभ के उद्देश्य से नही होने चाहिए।

(३) शेयरो के सट्टे के स्टाक एक्सचेंज और माल के सट्टे के एक्सचेंज सव वन्द होने चाहिए, क्योकि इनसे जनता की कोई आवश्यकता पूरी नही होती किन्तु व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए जनता का शोषण किया जाता है।

(४) वर्तमान समय मे घुडदौड, लाटरी और वडे-वडे क्लवो मे व्रिज, फ्लैश आदि ताश के खेल चलते हैं। ये सव सरकारी तौर पर लाइसेंस द्वारा प्राप्त अधिकार की ओट मे होते हैं और इन पर वडी भारी रकमो को दाँव पर लगाया जाता है। यह खुला जुआ है और इसमे करोडो रुपयो की वरवादी होती है। सरकार पर दवाव देकर इनको कानून द्वारा वन्द करवाना चाहिए।

(५) रुई के फीचरो के अक—फरको व वर्षा आदि के सट्टे गैर कानूनी होते हुए भी शासन की ढिलाई के कारण अनेक स्थानो पर चल रहे हैं और इनसे असख्य गरीव नागरिक, मजदूर, कारीगर अपने गाढे पसीने की कमाई वरवाद करके घोर दुर्दशा को प्राप्त हो रहे हैं। सरकार व पुलिस के द्वारा इन्हें वन्द करवाना चाहिए।

(६) जुए के अड्डे बहुत बडे बुराई के घर होते हैं। हमारे देश मे यह दुर्व्यसन हजारो वर्षो से प्रचलित है। युधिष्ठर और नल जैसे धर्मात्मा राजा भी इस दुर्गुण के कारण वरवाद हो गये। सब देशो की सभ्य सरकारो ने जुए का खेल गैरकानूनी करार दिया हुआ है। राज्य और पुलिस के द्वारा इन्हें वन्द करवाना चाहिए।

(७) सबको यथायोग्य उत्पादक श्रम करते रहना चाहिए। निकम्मा रहकर जीवन व्यतीत करने का किसी को अधिकार नही है। ("समय की माँग" मे "आर्थिक क्रान्ति" का पाठ इसके खुलासा के लिए देखना चाहिए)।

(८) सबको अपने काम की योग्यता के अनुसार वेतन मिलना चाहिए और सबको पूरा परिश्रम करके मनोयोग, फुर्ती और तत्परता से काम करना चाहिए। थोडा काम करके अधिक लाभ या वेतन लेने का अधिकार किसी को नही है।

(९) समय और श्रम, धन उत्पादन के मुख्य साधन हैं। इसलिए समय और शक्ति का अपव्यय नही करना चाहिए। धार्मिक कर्मकाण्डो, ईश्वरोपासना, भजन, ध्यान, जप, तप, पूजा, पाठ, सामाजिक रीति-रिवाजो, ऐश-आराम और नशे आदि कुव्यसनो मे तथा आलस्य मे पडे रहकर या लडाई-झगडो मे समय और शक्ति का अपव्यय किसी को न करना चाहिए।

(१०) धार्मिक कर्मकाण्डो और उपासना तथा दान-पुण्य आदि मे और सामाजिक रीति-रिवाजो तथा विरादरी या ब्राह्मण-भोजन आदि मे पदार्थो और धन की वरबादी सब वन्द कर दी जानी चाहिए, क्योकि इनसे जनता की आवश्यकताओ की कुछ भी पूर्ति नही होती किन्तु केवल व्यक्तिगत कल्याण व मान वडाई के लिए ये काम किये जाते हैं।

(११) वर्तमान मे हमारे देश मे एक ओर तो घोर गरीबी, दरिद्रता और वेकारी वढ रही है। विदेशी-व्यापार का सतुलन विगड रहा है। यहाँ से जितने मूल्य की वस्तुएँ-विदेशो को भेजी जाती हैं, उससे अधिक मूल्य की वस्तुएँ विदेशो से यहाँ मँगवाई जा रही है और देश इससे दिवालियापन की ओर अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार वाहर से आने वाली वस्तुओ मे, करोडो रुपयो के मूल्य की विलासिता की वस्तुएँ—लिपस्टिक, फैशनेवल पाउडर, क्रीम (चहरे पर लगाने की मल्लम), सिगार, सिगरेटें, सुगन्धित तेल, सैंट, दत मजन, विलायती शराव, विदेशी रेशमी, ऊनी व अन्य वस्त्र, वहुमूल्य फाऊन्टनपैन, सजावट का सामान (फरनीचर) और २०-२५-४० हजार तक के भारी मूल्य की मोटरगाडियां और फिल्मी सामान शामिल हैं। अंग्रेजो से राजनैतिक अधिकार लेने से पूर्व जो स्वदेशी वस्तुओ के प्रति प्रेम व प्रचार की भावना हम लोगो मे थी, वह अधिकार प्राप्ति के वाद नष्ट हो कर उल्टा विदेशी व विलासिता की वस्तुओ का प्रचार और खपत वहुत जोरो से वढ रही है। इससे देश का आर्थिक सर्वनाश हो जायेगा इसलिए इन्हें फौरन वन्द करने-कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

(१२) कलकत्ता, वम्बई व दिल्ली जैसे शहरो मे, वडे-वडे सरकारी अफसरो, इजीनियरो, ठेकेदारो, वकील-वैरिस्टरो, वैंकर्स व व्यापारियो के पास, उचित व अनुचित सब प्रकार की आय के अत्यधिक साधनो से होने वाली सम्पन्नता के कारण, उनके द्वारा होटलो, रेस्टोरा, क्लवो और मसूरी, नैनीताल आदि पहाडी विलास-स्थलो

(हिल स्टेशनो) पर अत्यन्त खर्चीले, विनाशकारी, विलासितापूर्ण काकटेल पार्टियाँ, डान्स, वाल आदि आडम्बरो के आयोजन होते रहते हैं, जिनके देखा-देखी अन्य देशवासियो पर भी उनके अनुकरण व सगति का प्रभाव पडता है। जिससे जनता के गाढे पसीने की कमाई का घोर अपव्यय होकर अनैतिकता और दुराचारो मे वृद्धि होती है। इसके विरुद्ध जोरो से प्रचार करके इन्हें वन्द करवाना चाहिए।

(१३) आर्थिक क्रान्ति के सम्वन्ध मे रूस और चीन की अर्थ व्यवस्था का अध्ययन करना चाहिए और उनकी जो व्यवस्थाये इस देश के अनुकूल हो, उन्हें अपनाना चाहिए।

इन उपायो के सम्वन्ध मे कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होना चाहिए कि आपके हृदय मे देश की गरीवी के लिए जो दर्द, पीड़ा अथवा तडपन है, उनका स्पष्ट आभास इनसे मिल जाता है।

यद्यपि आप चर्खा नही चलाते और हाथ से कते सूत की ही खादी नही पहनते, परन्तु आपको गृह-उद्योग से वहुत प्रेम है और उसके लिए सहायता देते रहते हैं। जहाँ तक वनता है देश की वनी हुई चीजें वरतने का ध्यान रखते हैं। मिल के सूत के हाथ करघे से वने हुए कपडे आपको वहुत पसन्द हैं और इस उद्योग को प्रोत्साहन देते रहते हैं। स्वर्गीय महाराजा गगासिह जी के शासन काल मे राज्य ने जव खादी-भण्डार वन्द कर दिया था तव आपने उसके स्थान मे वीकानेर वस्त्र-भण्डार खोल कर हाथ करघे के उद्योग को प्रश्रय दिया था। यद्यपि उसमे हानि उठानी पडी थी। गाँवो के गरीव वुनकरो को मिल का सूत देकर कपडा वनवाने का उद्योग चलाते ही रहते हैं। और भी कई प्रकार के गृह-उद्योगो को आप सहायता देते रहते हैं। गाडिये लोहारो और सरकडे के खारी, छाजले वनाने वाले नायको तथा चमडे का काम करने वाले चमारो और ऊन के कम्वल वनाने वाले मेघवालो को विशेप रूप से सहायता देते है। चित्रकला मे भी आपकी रुचि है। परन्तु आप राजा रवि वर्मा के चित्रो जैसे भावपूर्ण, सुडौल और सुरुचिपूर्ण चित्र पसन्द करते है, आजकल के वेडौल चित्र आपको पसन्द नही हैं।

देश के सर्वागीण जीवन का जिस सूक्ष्मता से अध्ययन करके आपने धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन मे फैली हुई फिजूलखर्ची तथा विलासिता की प्रवृत्ति पर रोक लगाने का जो अनुरोध किया है उसकी आवश्यकता को हमारे राजनीतिक नेता भी अव स्वीकार करने लगे हैं। परन्तु उनकी दृष्टि जनता के आर्थिक जीवन मे आमूल चूल परिवर्तन करने की अपेक्षा केवल पचवर्षीय योजनाओ के लिए धन एव साधन सग्रह करने तक ही सीमित है। आम जनता के जीवन को साधनामय वनाये विना आर्थिक क्रान्ति का क्रम सफल नही हो सकता। इसके लिए आपने जो साधन वताये हैं उनकी यो ही उपेक्षा नही कि जानी चाहिए। यह आवश्यक नही कि हर कोई आपके विचारो से शत-प्रतिशत सहमत हो अथवा उनको स्वीकार करे, परन्तु उनमे निहित चतुर्मुखी क्रान्ति की आवश्यकता से सहज मे असहमत नही हुआ जा सकता। प्रस्तुत प्रकरण मे आपके विचारो के अनुसार चतुर्मुखी क्रान्ति के स्वरूप, उसकी आवश्यकता और उसके साधनो के प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया गया है। इससे सहृदय पाठको को आपकी विचारधारा के जानने का लाभ मिल सकेगा और वे भी चतुर्मुखी क्रान्ति की साधना के पथ पर अग्रसर होकर देश की इस समय की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति करने मे कुछ सहायक हो सकेंगे।

हमारे महान् नेताओ ने भी इस चतुर्मुखी क्रान्ति के महत्व को स्वीकार कर लिया है। जनता के किसी भी दृष्टि से दकियानूसी वने रहने पर राष्ट्र निर्माण के महान् कार्य मे सफल नही हुआ जा सकता और समाजवादी आदर्श के अनुसार सामाजिक व्यवस्था कायम नही की जा सकती। गीता के समत्व योग का लक्ष्य भी समाज मे समानता का प्रस्थापित करना है। यह समता जीवन मे सम्पूर्ण रूप से स्थापित की जानी चाहिए और

वह चतुर्मुखी क्रान्ति के विना नही की जा सकती । इस दृष्टि से आपके विचार, सुझाव तथा आप द्वारा प्रतिपादित कार्यक्रम निश्चय ही पथ-प्रदर्शक वन सकते हैं और उनमे गीता के "सर्वभूत हिते रता" के महान् आदर्श को सहज मे पूरा किया जा सकता है ।*

ठेकेदारी

मोहता जी द्वारा रचित यह गीत इस प्रसग के सर्वथा अनुकूल है ।

*सुख पूरित भारत को गारत करवा दिया ठेकेदारों ने । सव लोगों को अपना आपा भुलवा दिया ठेकेदारों ने ।।टेर।।

अन्तरा

कई ठेकेदार स्वयम् वनके, धन धर्म जाति और शासन के । जनता के सव अधिकारों को छिनवा दिया ठेकेदारों ने ।।१।।
रच धर्म नेम के फाँसों को, भक्ति के अन्ध-विश्वासों को । जीवन को जकड़ गुलामी में बँधवा दिया ठेकेदारों ने ।।२।।
सव पुरुपारथ का नाश किया, बुद्धि वल का भी ह्रास किया । और आतम शक्ति पर परदा डलवा दिया ठेकेदारों ने ।।३।।
स्वारथ की आग लगी भारी, जल गई प्रेम की फुलवारी । समता सम्पत का शिव मन्दिर तुड़वा दिया ठेकेदारों ने ।।४।।
भूतों प्रेतों और पीरों को, पाखण्डी सन्त फकीरों को । गुरु पच उठाईगीरों को पुजवा दिया ठेकेदारों ने ।।५।।
औसर के अत्याचारों से, ब्रादरी की जीमनवारों से । मुरदों के पीछे जिन्दों को मरवा दिया ठेकेदारों ने ।।६।।
कन्या विकती कहीं वर विकते, नारी विकती कहिं नर विकते । तोफान कुरीति कुचालों का चलवा दिया ठेकेदारों ने ।।७।।
व्याह देते अबोध वालों को, भारत के लाली लालों को । गुड्डे गुड़ियों का व्याह खूब रचवा दिया ठेकेदारों ने ।।८।।
छोटी वच्ची को हत्यारे, वूढ़े वनड़े के कर लारे । दादे पोती का गठजोड़ा जुड़वा दिया ठेकेदारों ने ।।९।।
कहि विधवाएँ आहें भरतीं, सधवाएँ दु:खी वे जोड़ पति । नारी जीवन को मिट्टी में मिलवा दिया ठेकेदारों ने ।।१०।।
कहि भ्रूण हत्या कहि शिशु हत्या, नारी हत्या कहि पशु हत्या । इस सत्यागर को हत्याघर, वनवा दिया ठेकेदारों ने ।।११।।
"गोपाल" सुमति दे वीरों को, तोड़ो इन विकट जजीरों को । जिनसे इस उत्तम जाति को गिरवा दिया ठेकेदारों ने ।।१२।।

२

आपका आदेश अपने अन्तकाल के सम्बन्ध में

"मेरे देहान्त के समय जो कुटुम्बी लोग या मेरी सेवा करने वाले मेरे पास हो उनको मेरे हृदय के निश्चित आदेश देता हूँ कि जब मेरे शरीर का अन्त निकट प्रतीत हो, कोई असाध्य रोग होकर बेहोशी, सन्निपात आदि की दशा हो जाय, जबान रुक जाय, बोलना बन्द हो जाय, मैं अपने मन के भाव प्रकट न कर सकूँ, उस दशा मे कोई औषध दवा न दी जाय न कोई इन्जेक्शन लगाया जाय। खाने पीने के लिए भी कुछ देने की चेष्टा न की जाय, क्योकि ऐसा करने से अन्त समय मे अशाति होती है। शान्तिपूर्वक प्राण बिस्तरे ही मे निकलने दिया जाय। यदि हो सके तो प्राण जल्दी निकलने का कोई उपाय किया जाय, इसमे किसी को कोई दोष नही लगेगा। जब प्राण साफ निकल जाय तब उसके आध घण्टे बाद लाश को खाट से उठा कर जमीन पर रखदी जाय और उसे शुद्ध जल से धोकर उस पर सफेद सूती कपडा ढक दिया जाय। फिर सीढी पर रखकर किसी नजदीक के श्मशान मे ले जाकर पीपल अथवा और किसी प्रकार की लकडी मे दाह कर दिया जाय। जब चिता ठण्डी हो जाय तब अस्थियो सहित भस्मी को खड्डा खोद कर उसमे बूर दी जाय अथवा कोई नदी या समुद्र पास ही हो तो उसमे बहा दी जाय। बस इसके सिवाय कोई क्रिया कर्म, पिण्डदान आदि कुछ भी न कराया जाय। अन्त समय मे गीता सुनाने या सन्यास दिलाने आदि का जो ढोग करने की रिवाज है, गगाजल, रेणुका, तुलसी की लकडी, बागा आदि लाश पर रखे जाते हैं और दान-पुण्य किये जाते है वे कुछ भी न किए जायँ। जो लोग वहाँ उपस्थित हो वे ओकार का उच्चारण करें तो अच्छा है। गीता तो मेरे हृदय मे रमी हुई है और सन्यास वास्तव मे मन से होता है सो मेरे मन मे पूर्ण वैराग्य है। स्वाग का सन्यास सच्चा सन्यास नही होता। मेरे पीछे कोई पारलौकिक कृत्य, प्रेतकर्म, ब्राह्मण-भोजन, धर्मपुण्य आदि कुछ भी न किये जायँ क्योकि मेरे मन मे किसी प्रकार की ममता, कामना और वासना शेष नही रही है, इसलिए देहान्त के बाद मैं पूर्ण शान्ति के परम-निर्वाण पद को प्राप्त होऊँगा यह मुझे दृढ निश्चय है। अत इस आशका से कि मेरी आगे दुर्गति होगी इसलिए मेरे देहान्त के बाद उक्त आडम्बर करना, यह मेरे साथ द्वेष और शत्रुता करना होगा। देहान्त के बाद यहाँ के लोगो के किए हुए किसी भी काम से मेरा कोई सम्पर्क नही रहेगा, न मुझे इस लोक की किसी प्रकार की सहायता की कोई आवश्यकता रहेगी, इसलिए मेरे विषय मे किसी तरह का शोक या चिन्ता करने की मेरे प्रति दुर्भावना न रखें।

"मृत्यु के बाद दस दिनो तक साथा या बैठक रखने की जो रिवाज है वह बिल्कुल न रखी जावे किन्तु शरीर का दाह करने के बाद सब कोई अपने-अपने कामो मे लग जावे। जो लोग समवेदना दिखाने के लिए आवें उनको शिष्टाचार-युक्त धन्यवाद देकर मेरे भावो को समझा देना चाहिए। मेरे देहान्त पर किसी प्रकार का शोक नही रखा जाय क्योकि मेरा देहान्त कोई शोक या हर्ष का कारण नही है। मैंने अपने इतने लम्बे जीवन मे जो कुछ करने योग्य था सब कर लिया, किसी बात की मन मे नही रखी। जन्मना और मरना तो स्वाभाविक है, इस विषय मे शोक और चिन्ता किस बात की।

"मेरे पीछे कोई स्मारक स्थापित करने की आवश्यकता नही है। मेरे कृत्य और मेरी बनाई हुई पुस्तकें मेरे प्रचुर स्मारक हैं। यदि कोई मेरा स्मारक रखना चाहे तो मेरे बताए हुए मार्ग पर चले और मेरी पुस्तको का अध्ययन करके उनके अनुसार आचरण करे और उनका प्रचार करे।

"मेरे उपरोक्त आदेश दूसरे लोगो को भी यथाशक्य बता दिये जाय। आम तौर से लोग अपने मरे हुए सम्बन्धियो की दुर्गति होने, यमराज के पास जाने, प्रेतगति प्राप्त करने आदि की दुर्भावना करके उनके लिए पितृकर्म और पारलौकिक कृत्य अनेक तरह के करते हैं। ये सब बातें मृत सम्बन्धियो के प्रति द्वेष और शत्रुता करना है। मृत सम्बन्धियो के लिए यहाँ से किसी प्रकार की सहायता पहुँचाने का विश्वास बिल्कुल मिथ्या है। प्रत्येक व्यक्ति अपने किए हुए कर्मों का फल अनिवार्य रूप से भोगता है। इसको कोई भी किसी भी पितृकर्म या दान-पुण्य आदि करके उसका फल भेजकर अन्यथा नही कर सकता। मरे हुए सम्बन्धियो को सहायता पहुचाने के लिए कुछ भी करना बिल्कुल मूर्खता है और यह विश्वास तामसी अन्ध विश्वास है। गीता मे कहा है कि "प्रेतान्भूत गणाश्चान्ये यजन्ते तामसा जना" (अ० १७ श्लोक ४) अर्थात् मरे हुए लोगो और भौतिक पदार्थों का यजन पूजन तमोगुणी लोग करते हैं। ये आदेश मैंने शरीर की स्वस्थता और मन की पूर्ण शान्त दशा मे लिखे हैं।"

—रामगोपाल मोहता

ईश्वर के नाम पर

इसका यह अभिप्राय नही है कि सब काम-काज अर्थात् सासारिक व्यवहार छोड कर तथा ईश्वर को जगत से भिन्न कोई विशिष्ट व्यक्ति या शक्ति मानकर दीनता और दासता से दिन रात उसके भजन स्मरण मे लगा रहे और परावलम्बी बन जाय।

भारतवासी ईश्वर को सबसे अलग आसमान मे अथवा दूसरे लोको मे बैठा हुआ एक व्यक्ति मानकर उसे दूर से बुलाते हैं और उससे अपनी नाना प्रकार की व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि करना चाहते हैं तथा उसे किसी विशेष स्थान मे बन्द करके अपने ताले के भीतर रखना चाहते हैं और जगत को उससे भिन्न मानकर एक दूसरे से घृणा तिरस्कार और द्वेष करना धर्म समझते हैं।

भगवान् कहते हैं कि "मैं सबका आत्मा सबके अन्दर ही हूँ", परन्तु भारतवासी उसके विरुद्ध उसे कही बर्फ के लदे हुए पहाडो की चोटियो पर, अथवा पर्वतो की गुफाओ मे अथवा जगलो एव नदी, नालो, समुद्रो मे अपने ग्रामो एव नगरो की तग गलियो मे तथा मन्दिरो-मठो मे ढूंढते फिरते हैं।

सुधारक—बहिष्कार से विचलित न हो

यदि हमारा कोई बहिष्कार करे तो हमको जरा भी विचलित नही होना चाहिए, क्योकि ससार मे जितने सुधारक हुए हैं, जितने लोक सेवा के सच्चे कार्यकर्त्ता हुए हैं, अज्ञ लोगो ने उन सबका एक बार बहिष्कार किया, परन्तु पीछे जाकर उसी जनता ने उनके सुधारो, उनकी सेवाओ को अपने मस्तक पर उठाकर उनका सम्मान किया।

बहिष्कार के डर से, जन साधारण की सम्मति बिना, सुधार के कामो को दबाए रखना आत्मिक निर्बलता है। इस कमजोरी को दूर करना चाहिए।

स्वय आगे बढ कर पथ-प्रदर्शक बनो, फिर लोग पीछे-पीछे स्वय चले आवेंगे।

समाज की उन्नति यदि किसी ने की है तो बहुजन समाज के आगे चलने वालो ने की है, उनके पीछे चलने वालो ने कभी नही की।

(मोहता जी के विचार)

३

साहित्य सृजन की क्रान्तिकारी दृष्टि

[लेखक श्री अक्षय चन्द्र जी शर्मा, आचार्य भारतीय विद्या मन्दिर, बीकानेर]

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।। —गीता १७-१५

मोहता जी की साहित्य-सर्जना प्रधानत प्रज्ञा प्रेरित है परतु अनुभूति से शून्य नही है। उसमे वाङ्मय का तप है। उनके वाक्य 'सत्य' से भास्वर है, 'हित' से अनुप्राणित हैं उनमे "स्वाध्यायाभ्यसन" है, पर, वे प्राय 'प्रिय' [सुन्दरम्] नहीं और यत्र-तत्र 'अनुद्वेगकर' भी नही। फिर भी, उनमे प्रभाव डालने की शक्ति है। वे निर्मल और निभ्रान्त हैं, स्वच्छ और स्फूर्तिदायक हैं तथा स्पष्ट और सरल है। मोहता जी के लिये साहित्य स्वय साध्य नही है—वह वाहन व साधन मात्र है। लेखक ने शब्दो को सिक्को की तरह काम मे लिया है—कही व्यर्थता नही आने दी। अर्थशास्त्र की शब्दावली मे प्रत्येक शब्द का 'अधिकतम उपयोग' लिया गया हैं। वाणी का यह सयय मोहता जी की कृतियो का प्राण है। सन्तो की भाषा जैसी सरल, सीधी और अनलकृत है—उसी का अनुसरण मोहता जी की रचनाओ मे है। लेखक ने लिखने के लिये कुछ भी नही लिखा— लिखा इसलिये है कि लेखक कुछ कहना चाहता है, कुछ देना चाहता है—इसी अन्त प्रेरणा से मोहता जी ने लेखनी उठाई है।

प्रज्ञावाद के प्रहरी

मोहता जी व्यवसायी हैं, दानी है, समाज सुधारक हैं, स्वतन्त्र चिन्तक हैं, सात्विक कार्यकर्त्ता हैं, साधक हैं, मूक दलित वर्ग के मर्म भेदी स्वर है, गीता के भाष्यकार हैं, रूढियो की लौह शृ खलाओ को तोडने वाले विद्रोही है और सब से बढकर 'प्रज्ञावाद' के सजग प्रहरी है। सेठ जी का व्यक्तित्व गगा के समान शत सहस्र धाराओ मे फूटकर बहा है, जिसका उद्गम एक है, जिसकी दिशा एक है, जिसका गन्तव्य एक है।

मोहता जी के अनेक रूपो मे, ऊपरी अनेक भेदो की तह मे एक अभेद रूप है—वह है उनका प्रज्ञावाद, उनकी बौद्धिक जागरूकता। बुद्धियोग उनके व्यक्तित्व व कृतित्व का अभिन्न अग है। इसी प्रज्ञा ने उनको विद्रोही बनाया—उन्होने दृढता, तेजस्विता, ओजस्विता और निर्भयता के साथ धार्मिक अन्ध विश्वासो और सामाजिक रूढियो का विरोध किया—खुलकर विरोध किया—सतत विरोध किया।

एक ओर पुरातन पन्थियो की भर्त्सना। दूसरी ओर सुधारक दल का अभिनन्दन—पर, सेठ जी दोनो के बीच अडिग-निर्वात दीपशिखा की तरह निष्कम्प और अचचल। यही समत्वयोग की साधना है, यह साधना आध्यात्मिक उतनी नही है, जितनी पैतृक। जिस वणिक् वर्ग मे सेठ जी ने जन्म ग्रहण किया—उस वर्ग की सस्कृति बाजार की सस्कृति है—जिसका लक्ष्य है—सबके बीच मे से बचते हुए अपना मार्ग निकालना तथा लक्ष्य को दृष्टि से ओझल न होने देना। बाजार की सस्कृति—'काम निकालू' संस्कृति समझी जाती है—यही वणिक् धर्म है और यही सुधरी शब्दावली मे 'व्यावहारिक दर्शन' है। यद्यपि मोहता जी का ज्ञानी इस व्यवहार को कल्पित ही मानता है—

"हम लोग भी तो कल्पित जगत् मे कल्पित व्यवहारो की कल्पना ही कर सकते हैं।" (गीता का व्यवहार दर्शन, पृष्ठ ८६)।

इस प्रकार मोहता जी ने अपने वशानुप्राप्त इस रिक्थ को सवार कर, सभाल कर और सँजो कर रखा—और उसी का उपयोग उनके कार्यो, कृतियो और रचनाओ मे है।

दीन दलितो के वे आशा केन्द्र हैं, वे दानी हैं, उनकी दानशीलता भी प्रज्ञा-प्रेरित है। वे करुणा विगलित होकर कभी कुछ नही देते, सोचकर, समझकर दूरगामी प्रभाव देख कर देते हैं। देश, काल व पात्र का विचार कर देते हैं। विधवाओ, हरिजनो, समाज सुधार के कार्यो और रुग्णो के लिये उनकी थैली खुली है। थैली का मुंह खोलने के पहले अपने विवेक को सतत जाग्रत रखते हैं।

आग्ल कवि गोल्डस्मिथ ने अपने 'ऊजड ग्राम' नामक करुण-काव्य मे एक ग्राम-पादरी का चित्रण करते हुए लिखा है कि वह करुणा से अभिभूत होकर देता है, वह यह नही देखता कि लेने वाला पात्र है या कुपात्र। पर, मोहता जी—जो गीता के अनुरागी और प्रचारक हैं—वे तो गीता के प्रज्ञावाद के पुजारी हैं। गीता के अनुसार वे सात्विक दानी कहे जा सकते हैं—जहाँ देश, काल व पात्र का सम्यक् विवेक है—

दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विकम् स्मृतम्॥ —गीता १७-२०

मोहता जी 'दूर दृक्' हैं—जिसे जन-भाषा मे 'आगिल बुद्धि' कहा गया है। महाकवि कालिदास ने ठीक ही लिखा है कि सन्तजन अपने विवेक की कसौटी पर कस कर ही किसी बात की महत्ता व गुरुता स्वीकार करते हैं—मूढ जन पर प्रत्यक्ष बुद्धि होते हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्।
सन्त परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते, मूढ़ पर प्रत्ययनेय बुद्धि.॥

श्री मोहता जी सत्य के साधक हैं, उनमे तथ्यसन्धानकारी बुद्धि है। गीता मे जिस निर्भ्रान्ति बुद्धि को 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' कहा गया है उसी को जीवन सबल बना कर मोहता जी के समग्र कार्य-कलाप गतिशील हैं।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहु शाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥ —गीता २-४१

आपने अपने ग्रन्थ "गीता का व्यवहार दर्शन" मे स्थान-स्थान पर बुद्धिवाद की महत्ता का बखान किय है। मोहता जी के शब्दो मे—

'गीता के उपदेशो मे सर्वत्र बुद्धियोग ही को महत्व दिया गया है, क्योकि ससार के व्यवहार करने मे बुद्धि की प्रधानता रहनी चाहिये और वह बुद्धि जब साम्यभाव मे जुडी हुई अर्थात् आत्मनिष्ठ हो, तभी ससार के व्यवहार पूर्णतया ठीक-ठीक हो सकते हैं—यही गीता का सिद्धान्त है।"

यही बुद्धि योग मोहता जी की साहित्य सर्जना का प्रेरणा-स्रोत है जो लोक सग्रह की पावन भावना से प्रवाहित होकर श्रेयाभिमुख है।

साहित्य-सर्जना की पूर्व पीठिका

मोहता जी के विचार निर्माण मे सन्तो की वाणी का गहरा प्रभाव है। कबीर आदि निर्गुण पन्थी सन्त धर्म के आडम्बरो विरोधी थे, अन्ध विश्वासो व वहमो को उखाडने वाले थे—पण्डितो, मुल्लो मौलवियो—सभी को उन्होंने फटकारा। मोहता जी ने भी पडो, पुजारियो, महन्तो मठाधीशो की खूब खबर ली है। मृतक भोज का जोरदार विरोध किया है। समाज-सुधार की पुरजोर आवाज बुलन्द की है। श्रद्धान्धता की जड पर प्रहार किया है। आत्मा की एकता व अखण्डता की कसौटी भी मोहता जी पा सके हैं—जिसके कारण ससार

के नानाविध व्यवहारो के बीच तह मे व्याप्त अद्वैत की अनुभूति कर सके है। चिन्तन क्षेत्र मे अद्वैतवाद मोहता जी का जीवन साथी रहा—पर, वह कबीर आदि की तरह भावना का क्षेत्र न पा सका—जिसके कारण मोहता जी की कृतियाँ सन्त साहित्य की तरह मर्म भिद् न हो सकी। सन्तो ने ससार को मिथ्या व असत्य माना—मोहता जी ने उसकी व्यावहारिक सत्ता स्वीकार की—तभी गीता उनके लिए विरक्ति का साधन न बनकर जगत् प्रपच के बीच भी उपयोगी बन सकी। ससार के लिये गीता को दीपक बनाकर मोहता जी ने रखा है जिसका प्रकाश व्यष्टि समष्टि सभी पाकर कृत कार्य हो सकते हैं।

सन्तो ने नारी को माया का प्रतीक माना—पर, मोहता जी के लिये दु खिनी पीडिता नारी भगवान का ही रूप बनकर आई। अबला कहलाने वाली नारी की व्यथा-कथा मोहता जी के द्वारा प्रभावशाली ढग से कही गई। सन्तो ने 'जाति पाति पूछै नही कोई, हरि का भजै सो हरि का होई' कहकर शूद्रो को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। मोहता जी ने भी दलित-जातियो के पक्ष-समर्थन मे और उनको उठाने व आगे बढाने मे सब प्रकार तन, मन, धन से सहयोग दिया।

यह स्पष्ट है कि श्री मोहता जी के व्यक्तित्व व विचार निर्माण मे निर्गुण सन्त वाणी का प्रभाव है। पर, उस प्रभाव ग्रहण मे अन्ध धार्मिकता नही, जड साम्प्रदायिकता नही, एक विवेकी की मौलिकता है, एक कुशल व्यापारी का हानि-लाभ, घाटा-नफा सोच कर उठाया गया कदम है।

सन्त-साहित्य के अतिरिक्त श्री मोहता जी ने अपने जीवन को गीतामय बना दिया है। गीता उनके जीवन का आदर्श है, उनके चिन्तन व सृजन का मूल उत्स है— वह एक ऐसी दिव्यौषधि है—जो सारी बीमारियो पर अमोघ प्रभाव डाल सकती है। आपकी मान्यता है कि गीता हमारी सारी समस्याओ को सुलझाने का साधन है, वह हमारे जीवन का विशाल मार्ग है—ससार की सुख-शान्ति व तुष्टि-पुष्टि का यही उपाय है। अद्वैत, व्यष्टि समष्टि की एकता, आमौपम्य दृष्टि—इसी आधार पर मोहता जी ने जीवन के सभी क्षेत्रो को जाँचा और परखा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहन राय आदि समाज सुधारको के आन्दोलनो का भी सेठ जी के व्यक्तित्व निर्माण मे प्रमुख भाग रहा है। सेठ जी के हृदय मे भी समाज सुधार की आग है, अन्ध विश्वासो के प्रति खीझ है, महन्तो, मठधारियो व पचो के प्रति आक्रोश है—यह समाज सुधारक का रूप सेठ जी का इतना जाग्रत्, सबल और प्रधान है कि उनके जीवन पर और उनकी कृतियो पर निविड भाव से छाया हुआ है।

सेठ जी पर यदि सब से कम प्रभाव पडा है तो राष्ट्रीय आन्दोलनो का सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सत्याग्रह के रूप मे समग्र भारतीय जनता विश्व वन्द्य बापू के नेतृत्व मे किस प्रकार उद्बुद्ध होकर जीवन के विकास मार्ग पर आगे बढ रही थी—घने अँधेरे को चीर कर स्वातत्र्य सूर्य का प्रकाश भारतीय क्षितिज को किस प्रकार उद्भासित कर रहा था—उस की अनुभूति सेठ जी की कृतियो मे नही है। उस महान् प्रयोग का मूल्याकान श्री मोहता जी न कर पाये।

लोकमान्य तिलक ने "गीता रहस्य" को, यद्यपि विनम्रता वश सन्त तुकाराम के एक 'अभग' का भाव लेकर सन्तो की उच्छिष्ट उक्ति मात्र माना है, पर यह निर्विवाद है कि तिलक ने प्रस्थानत्रयी के भाष्यकार बडे-बडे मनीषि आचार्यो से भिन्न पथ का अनुसरण कर, प्रारब्ध को मानने के कारण निष्क्रिय भारत के लोक-जीवन मे कर्मण्य-भावना का पुण्य सचार किया—इसीलिये इसे 'कर्मयोग शास्त्र' की सज्ञा दी गई। सेठ जी ने तिलक द्वारा प्रदर्शित नूतन पथ से लाभ उठाकर गीता के सन्देश को जन साधारण तक पहुचाने का व्यावहारिक मार्ग अपनाया। इस बात की निम्न शब्दो मे स्पष्ट स्वीकृति है—

"तुमने लोकमान्य बाल गगाधर तिलक कृत "गीता रहस्य" और कर्म योग शास्त्र नही देखा होगा। यदि

उसे देखते तो इस विषय का विवेचन अच्छी तरह ध्यान मे आ जाता और उससे भी अधिक विस्तृत और सरल विवेचन श्री राम गोपाल मोहता लिखित 'गीता का व्यवहार दर्शन' ग्रन्थ मे किया गया है।"—गीता विज्ञान, पृष्ठ ६७।

इस प्रकार सन्त वाणी, गीता, सुधारको की क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, तिलक का गीता रहस्य आदि विविध प्रभावो से श्री मोहता जी की विचार-धारा पुष्ट बनी है—जिसमे निजी अनुभव, सूझ-बूझ और विवेक का योग रहा है।

कृतियो का वर्गीकरण और परिचय

मोहता जी ने जो कुछ लिखा है, वह बहुत अधिक न हो कर बहुत कम भी नही है। लेखो, प्रचार पुस्तिकाओ, सम्पादित ग्रन्थो, मौलिक कृतियो, अध्यक्षीय भाषणो आदि के द्वारा सेठ जी ने अपने विचार जनता जनार्दन के सामने रखे हैं। विचार-प्रचार मे मिशनरी उमग से काम लिया है। अपनी बात अनेक बार कही गई है। मोहता जी के विचारो मे स्पष्टता है। राजनीति, व्यापार, अर्थशास्त्र, समाज-सुधार, उत्सव-त्यौहार, साहित्य—सभी पर सेठ जी ने अपने विचार प्रकट किये हैं। विचारो मे नूतन पथ का अनुगमन है। विज्ञान के प्रकाश मे, विवेक की तुला पर तोल कर, सावधानी के साथ विचारो को प्रकट किया गया है।

मोहता जी की कृतियो का निम्न प्रकार मे वर्गीकरण किया जा सकता है—यह वर्गीकरण केवल व्यवहारिक मात्र है—काम चलाऊ है।

(१) गीता सम्बन्धी रचनाएँ
- [अ] सात्विक जीवन
- [आ] दैवी सम्पद्
- [इ] गीता का व्यवहार दर्शन
- [ई] गीता विज्ञान
- [उ] समय की माँग अर्थात् कृष्ण की क्रान्ति
- [ऊ] ईशावास्य उपनिषद् (व्यवहारिक भाष्य सहित)

(२) सग्रह व सम्पादन
- [अ] मान पद्य सग्रह अथवा व्यवहारिक आत्मज्ञान [पहला भाग]
- [आ] ,, ,, [दूसरा भाग]
- [इ] ,, ,, [तीसरा भाग]

(३) नारी सम्बन्धी रचना
- अबलाओ का इन्साफ [छद्म नाम—श्रीमती स्फुर्ना देवी]

(४) लोक साहित्य का सग्रह, सम्पादन व सृजन
- [अ] बीकानेरी गीत सग्रह
- [आ] डाण्डियो का खेल
- [इ] प्रेम भजनावली

(५) अध्यक्षीय भाषण—
- [अ] अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा
  अष्टम अधिवेशन, पढरपुर, १९२६ ई०
- [आ] तृतीय बीकानेर साहित्य सम्मेलन, सुजानगढ, १९४०

[इ] अखिल भारतीय मारवाडी सम्मेलन,
पाँचवाँ अधिवेशन, दिल्ली, १९४९

(६) विशिष्ट लेख व पुस्तिकाएँ प्रकीर्णक

[अ] युद्ध और भीतरी व्यापार
[आ] स्वतन्त्रता की तलाश
[इ] देश का आर्थिक सकट और उसके मिटाने का उपाय
[ई] दीपोत्सव
[उ] धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का खुलासा
[ऊ] ए सजेसन टु दी रिच [अग्रेजी]
[ए] दोपी कौन ?
[ऐ] श्री महालक्ष्मी का सच्चा पूजन !
[ओ] दलितो का पुनरुत्थान कैसे हो ?

इस वर्गीकरण मे मोहता जी के प्राय. समस्त साहित्य का आकलन कर दिया गया है। इस वर्गीकरण को भी मुख्यत दो हिस्सो मे बाँटा जा सकता है —

एक स्थायी साहित्य और दूसरा सामयिक साहित्य। सामयिक साहित्य की विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नही है; क्योकि उसमे मोहता जी ने सामयिक समस्याओ पर अपने विचार प्रकट किए हैं। वे गीता की तरह स्थायी नहीं है और वर्त्तमान स्थितियो के बदल जाने के बाद उनका कोई विशेष महत्त्व अथवा उपयोग भी नही है। यहाँ केवल स्थायी साहित्य की ही चर्चा करनी अपेक्षित है।

गीता सम्बन्धी रचनाएँ

(अ) **सात्विक जीवन**—यह गीता पर आधृत है। मनुष्य जन्म को किस प्रकार सुखी, सम्पन्न, समृद्ध बनाया जा सकता है—इसी का व्यवहार-मार्ग इस पुस्तक मे है। मोहता जी सचमुच इस बात के लिये सादर याद किये जायगे कि उन्होने गीता के पुण्य प्रसाद को घर-घर पहुँचाने का प्रयास किया। 'सात्विक जीवन'—एक प्रेरणाप्रद पुस्तक है। चरित्र निर्माण मे ऐसी पुस्तको का विशेष महत्व है। लेखक ने मानव के कर्त्तव्यों का विशद विवेचन किया है। लेखक का दावा है कि जो मनुष्य गीतानुसार व्यवहार करता है, उसे सासारिक बन्धनो से मुक्त होने और परम पद की प्राप्ति करने मे देर नही लगती। यह काम बहुत कठिन भी नही, किन्तु सुसाध्य है।

सारी पुस्तक सात कर्तव्यो मे विभक्त है। इन सातो कर्तव्यो का विधिवत् पालन करने से व्यष्टि और समष्टि सभी सुखी हो सकते है। कर्त्तव्यो को भोजन, व्यायाम से लेकर मन-वाणी की तप साधना को पार कर कुटुम्ब, समाज, ग्राम, नगर, देश, मानव मात्र ही नही अखिल विश्व तक फैला दिया गया है। यही भारत की उदार सस्कृति का सार है। विकास-क्रम के ये सोपान जीवन को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर और उज्ज्वलतम बनाने वाले हैं। यह पुस्तक मानव मात्र के लिये पठनीय है। केवल पठनीय ही नही, इस पुस्तक का एक-एक वाक्य हृदयगम करने योग्य है। इस पुस्तक का सन्देश है—विश्व के हित के लिये कर्म करना ही सच्चा कर्म योग है।

[आ] **दैवी सम्पत्**—मोहता जी की यह महत्वपूर्ण कृति है। गीता के १६ अध्याय मे दैवी सम्पत् और आसुरी सम्पत् का उल्लेख है, उसी पृष्ठभूमि पर इस कृति का निर्माण हुआ है। मोहता जी ने 'दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता' के अनुसार मोक्ष और बन्धन का सच्चा स्वरूप निरूपित किया है।

यह पुस्तक चार प्रकरणो मे विभक्त है। प्रथम प्रकरण—लेखक ने बताया है कि पराधीनता ही

'बन्ध' है—यह पराधीनता राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि अनेक प्रकार की हो सकती हैं। स्वाधीनता या मोक्ष लेखक की दृष्टि मे पर्याय मात्र हैं। द्वितीय प्रकरण—इसमे मानव समाज के आत्मविकास की पाँच प्रधान श्रेणियो का वर्णन है। इस प्रकरण मे लेखक ने देश की सामाजिक पतन की दशा का विशद वर्णन किया है। तृतीय प्रकरण—लेखक ने इसमे सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणो के लक्षणो पर प्रकाश डाला है और बताया है कि इस कर्मशील ससार मे तीनो गुणो का सम्मिश्रण पाया जाता है। सात्विक गुणो को अधिक से अधिक प्राप्त करने से यह ससार सुखी हो सकता है—इसका खुलासा इस प्रकरण मे है। अन्तिम प्रकरण मे लेखक ने सारी युक्तियो का सार सचयन करते हुए बताया कि व्यष्टि, समाज व राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए दैवी सम्पत् की आवश्यकता है।

आज जब कि विश्व मे आसुरी भावो का बोलबाला है। दर्पित राष्ट्रो के अधिनायक आज भी गीता के इन श्लोको को दभ भरी वाणी मे चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं—

इदमद्य मया लब्धमिम प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौ मया हत शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमह भोगी सिद्धोऽह बलवान्सुखी ॥ —गीता १६–१३, १४.

इस भयकर समस्या का एक मात्र हल यही है कि जन जन के मन मे दैवी सम्पत् की पुन प्रतिष्ठा हो। द्वेष, दर्प और दभ की ज्वाला से जलते मानव हृदयो मे यदि अभय, सत्व शुद्धि, तप, आर्जव, अहिंसा, सत्य अक्रोध आदि दैवी सम्पत् रूपी सुर सरिता की शीतल वारि धारा प्रवाहित की जा सके तो मानव जाति फूलो की तरह खिल उठेगी। मोहता जी ने सरल व सुस्पष्ट शैली मे सारी बातें रखी हैं। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इन उदात्त मानवीय भावनाओ को हृदयगम करके अपने जीवन को ही नही, मानव जाति की हित साधना मे भी योग देकर समष्टि-जीवन को भी धन्य बना सकता है।

[इ] **गीता का व्यवहार दर्शन**—मोहता जी की यह जीवन व्यापी साधना है। मोहता जी ने जो कुछ सीखा, अनुभव किया उसको इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ मे सुरक्षित कर दिया है। मोहता जी का 'व्यवहार दर्शन' उनकी कृतियो का सर्वोच्च शिखर है—उत्तुंग, मुक्त और गरिमामय शिखर। यह ग्रन्थ लिखकर मोहता जी ने सचमुच अपने जीवन को धन्य कर लिया है। भविष्य को कौन जाने—पर, ऐसा लगता है कि सुदूर भविष्य मे दानी मोहता जी भुला दिये जावेंगे, उनका सुधारक रूप ससार के समाज सुधार के इतिहास मे एक धुंधली रेखा मात्र बनकर रह जायगा—उनकी सत्सग मण्डली बिखर जायगी। दूसरे छोटे मोटे लेख विस्मृति के अतल गह्वर मे फेंक दिये जायगे, फिर भी काल के क्रूर दण्ड प्रहार से अपने को बचाकर रखने की योग्यता केवल मात्र इसी ग्रन्थ मे है। मोहता जी का यह सच्चा रूप है, जो आगे भी चमकता रहेगा। 'गीता का व्यवहार दर्शन' लिख कर—बडे-बडे आचार्यों, पडितो, सन्तो, साधको, कर्मयोगियो, भक्तो की दीर्घ परम्परा के बीच—इस भीड-भाड मे से मोहता जी ने अपना अलग मार्ग निकाल कर एक कोने मे अपने को खडा कर लिया है। हजारो वर्षो से गीता पर जो कुछ लिखा गया है उससे भिन्न मार्ग अपना कर मोहता जी ने भाष्यकारो के हस्ताक्षरो की पक्ति मे लोक मान्य के समान अपने भी नये हस्ताक्षर कर दिये हैं—गीता के भाष्यो के इतिहास मे अपने लिये भी एक स्थान सुरक्षित कर लिया है। यह साहस अद्भुत है, यह कर्म कौशल्य का सुन्दर निदर्शन है, यह एक व्यवसायी की सफल सूझ-बूझ है, यह प्रतिभा का नूतन मार्ग है। सचमुच प्रतिभा क्षुण्ण मार्ग पर नही चलती, वह अपने लिए नूतन पथ-सन्धान कर लेती है। मोहता जी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

व्यवहार दर्शन मे नि सन्देह भगवान शकराचार्य, महाप्रभु वल्लभाचार्य एव रामानुजाचार्य जैसी पाण्डित्य

पूर्ण शास्त्रीय स्थापना नही, ज्ञानदेव महाराज जैसी भक्ति परिप्लुत अनुभूति व द्रवणशीलता नही, लोकमान्य तिलक जैसी अतल स्पर्शी मेधा व चतुर्दिक व्याप्त दृष्टि नही, गाँधी जैसी अनासक्ति नही, सन्त विनोवा जैसी क्रान्तिदर्शिता नही—फिर भी व्यवहार दर्शन मे कुछ ऐसी वात है, जो दूसरो मे नही है—वह है उसकी दुनियाई भाषा मे सरलता, स्पष्टता। मोहता जी ने इसी जीवन के बीच, इसी ससार के बीच, इसी भोग राग के वीच—गीता का ज्ञान-दीप सजो कर रख दिया है। आपका व्यवहार दर्शन पढने से वाद ऐसा लगता है गीता हम से दूर नही, वह हमारे जीवन के चारो ओर है—वह इस अँधेरे मे हमे भिडकती नही, फटकारती नही, माँ के रूप में हमारे दोषो को दुलरा कर प्यार से आगे वढने को कहती है। यह व्यवहार दृष्टि मोहता जी की विशेषता है। जिसके कारण जन-साधारण अपने जीवन को गीतामय वना सकता है। सारे ग्रथ मे मोहता जी का सुधारक खामोश नही है, हमे शिकायत है वह ज्यादा वाचाल है, प्रगल्भ है, वावदूक है—काश, थोडा चुप रहता! हर समय विधवा विवाह की विकालत, मृत्यु-भोज का खण्डन, महन्तो, मठाधीशो को फटकार, पचो को ललकार पीडित नारी की व्यथा-कथा, दलितवर्ग का हाहाकार, सामाजिक व धार्मिक अन्धविश्वासो पर उनका सुधारक—बरावर गदा प्रहार करता रहता है। यह ग्रथ मनुष्य को यह सिखाता है—जीवन एक कला है, उसे सुन्दरता से जिया जा सकता है—उसे भार मुक्त किया जा सकता है। वात को स्पष्ट करने के लिए विज्ञान का भी यत्र-तत्र सहारा लिया गया है। लेखक का लक्ष्य यह रहा है कि यह जीवन उदात्त व सर्वाङ्ग रूप से समुन्नत व सरल वने। इस लक्ष्य को लेखक ने कभी ओझल नही होने दिया।

राजा भागीरथ ने जिस प्रकार हिमालय के शिखरो पर ही खो जाने वाली गगा को लाने मे निरन्तर श्रम कर भारत भूमि को उर्वर वनाया—सेठ जी ने भी उसी प्रकार पाडित्य के जटाजूट मे रमने वाली गीता गगा को व्यवहार की धरती पर उतारने मे भगीरथ प्रयत्न किया है—जिससे लोक मानस सात्विक भावो की अनन्त लहरो से लहरा सके। इस प्रयत्न मे मोहताजी को सफलता मिली है, जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ है।

मोहता जी की मान्यता है "गीता पर जितनी टीकाएँ है, वे प्राय: किसी न किसी प्रकार की साम्प्रदायिक अथवा धार्मिक (मजहवी) अथवा मत मतान्तर की भावना को लिए हुए हैं। जब कि मोहताजी ने सिद्ध किया है वे गीता व्यावहारिक वेदान्त का कर्तव्य शास्त्र है और इसमे **सर्व भूतात्मैक्य साम्य भाव** से जगत के व्यवहार का प्रतिपादन है।

लेखक ने एक सदेश दिया है वह यह कि—जहाँ सब की एकता के साम्य भाव की पूर्णता स्वरूप महायोगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण है और जहा युक्ति सहित शक्ति सहित अर्जुन है, दूसरे शब्दो मे जहाँ सवकी एकता के साम्य भाव हैं और जहाँ विद्या, वुद्धि और वल हैं, वहाँ ही निश्चय पूर्वक राजलक्ष्मी रहती है, वही सव प्रकार की शोभा और कीर्ति है, वही विजय है, वही वैभव और ऐश्वर्य है वही अटल नीति है। जहाँ एकता नही, तथा विद्या, वुद्धि और वल नही, वहाँ दरिद्रता, अकीर्ति, पराजय, दासता और मूर्खता का अविचल साम्राज्य रहता है।" हमारा स्वतंत्र राष्ट्र भी इस महान् व क्रान्तिकारी सन्देश के बल पर अपना सर्वाङ्गीण विकास कर सकता है।

(ई) **गीता विज्ञान**—इस पुस्तक मे गीता के अनुसार सासारिक व्यवहार का पिता-पुत्र के सवाद रूप मे सक्षिप्त खुलासा किया गया है। यह सवाद पिता पुत्र का नही—असल मे सक्रमण काल की दो पीढियो का है—जिनकी भाषा अलग, दृष्टिकोण अलग, मान्यता अलग, लक्ष्य अलग—उस समय गीता उनमे किस प्रकार एकता और समन्वय भाव की सिद्धि कर सकती है—यही लेखक का विवेच्य विषय है। गीता के सम्वन्ध मे जो गलत व मिथ्या धारणा की धुन्ध जम गई है उसे भी झाड वुहार कर, माज कर साफ करने की कोशिश की गई है। गीता मे वर्जित त्याग क्या है—इसका इससे सरल व शुभ्र रूप और कहाँ मिलेगा। "त्याग और ग्रहण अकेले-अकेले नही रहते। इसलिए व्यक्तित्व के भाव को त्यागने का अर्थ यह होता है कि अपने को दूसरो से अलग न मानने

के निश्चय को ग्रहण किया जाय, अर्थात् अपने आपको सब के साथ जोड़ दिया जाय। **एक छोटे से व्यक्तित्व के तुच्छ भाव को छुड़ाकर अखिल विश्व के साथ एकता के महान भाव की प्राप्ति करना—यही गीता का त्याग है।'** इसी प्रकार राग, विराग, यज्ञ, कर्म, ईश्वर आदि के जो रूढ़ अर्थ हैं उनमे नवीन अर्थोन्मेष किया गया है—यह मोहता जी के मौलिक चिन्तन का प्रकाश है—जिनसे कितनी ही पुरानी जड बातें नवीन शक्ति से प्रोद्भासित हो उठी हैं। यहाँ दार्शनिक मोहता जी अपनी मौलिक चिन्तना के साथ सुसज्जित हैं। यह पुस्तक आज के नवयुवको को गीता की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से लिखी गई है। सभी जगह तर्क पुष्ट विचार-सरणि, विवेक बुद्धि के प्रकाश मे जगमगा रही है। नास्तिक व भ्रान्त व्यक्ति भी इस पुस्तक को पढने के बाद गीता के माहात्म्य की अनुभूति कर सकता है, लेखक की यह सफलता सचमुच स्पृहणीय है।

प्रकीर्णक—विशिष्ट लेख व पुस्तिकाएँ

मोहता जी के अन्य साहित्य को भी देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पिटे-पिटाये रास्ते पर नही चलते, बासी, पुराने व सडे-गले विचारो के स्थान पर कुछ नया चिन्तन लाते हैं—इससे उनके विचार चाहे सब को ग्राह्य न हो—पर, उनकी स्फूर्ति, ताजगी व नवीनता एक बार सबको झकझोर देती है। लिखने का ढग सीधा व सबल है—बाण की तरह सीधा वार करता है।

श्री मोहता जी एक कुशल व्यवसायी हैं। भारत मे जो उद्योग विकास का इतिहास है, उसमे श्री मोहता जी का एक विशिष्ट स्थान है। सुधारक विचार क्रान्ति मे श्री मोहता जी को राजस्थान मे ही नही भारतवर्ष मे भी सम्मान योग्य स्थान प्राप्त है।

दार्शनिक साहित्य के क्षेत्र मे मोहता जी ने गीता को अपना प्रेरक ग्रन्थ बना कर महान् देन दी है। 'गीता का व्यवहार दर्शन" लिख कर श्री मोहताजी ने भारतीय दार्शनिक साहित्य के सहस्र शताब्दियो से प्रवाहित होने वाले ज्ञान गगा के एक उपेक्षित किनारे पर अपना घाट बना लिया है—जहाँ भविष्य मे मुमुक्षु जन यदा कदा विश्राम कर गीता के मधुर, व्यवहार-प्रसन्न शान्तिस्वरूप को देखकर अपने जीवन को ऊँचा उठाने का उद्योग करेंगे। श्री मोहता जी की यह उपलब्धि महान् है, गरिमामय और स्पृहणीय है। यह नवीनता उनकी उस क्रान्तिकारी दृष्टि का सत्य, शिव, सुन्दरम् परिणाम है, जो उनके समस्त साहित्य सृजन मे और व्यावहारिक जीवन मे भी ओत-प्रोत है।

खंड ३

१ श्री माधव श्रीहरि अणे
२ उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन
३ श्री जगजीवनराम
४ श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन
५ श्रीमती एलन राय
६ आचार्य पं० नरदेव शास्त्री
७. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
८. स्वामी जौन धर्मतीर्थ
९ आयुर्वेदाचार्य श्री शिव शर्मा

१० आचार्य चतुरसेन शास्त्री
११ श्री मन्मथनाथ गुप्त
१२ श्री सन्तराम बी० ए०
१३ श्री अक्षय कुमार जैन
१४ श्री मुकुटबिहारीलाल वर्मा
१५ सेठ घनश्यामदास बिड़ला
१६ श्री ब्रिजलाल बियाणी
१७ सेठ गजाधर सोमाणी
१८ श्री सीताराम सेकसरिया
१९ स्वामी केशवानन्द एम० पी०
२० श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका एम० पी
२१ श्री भागीरथ कानोडिया
२२ सेठ लक्ष्मीनारायण गाडोदिया
२३ रा० ब० सेठ शिवरतन मोहता
२४ श्री पन्नालाल बारूपाल एम० पी०
२५ श्री बालकृष्ण मोहता
२६ श्री कन्हैयालाल सेठिया
२७ श्री वृजवल्लभदास मूधड़ा
२८ श्री कन्हैयालाल कलयत्री
२९ श्री जयनारायण व्यास
३० श्री गोकुलभाई भट्ट
३१ डा० जुगलसिंह खीची एम०ए०, पी०एच०डी०, बार एटला
३२ श्रीमती जानकी देवी बजाज
३३ श्रीमती गंगादेवी मोहता
३४ श्रीमती रतनदेवी दम्माणी
३५ श्रीमती कौशल्यादेवी मोहता

अनेक राजनेताओं, पत्रकारों, लेखकों, श्रीमंत सेठ-साहुकारों, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और मोहता जी के परिजनों तथा संगी-साथियों के रोचक, उपयोगी और महत्वपूर्ण संस्मरण इस प्रकरण में दिए गए हैं। उसमें मोहता जी के साधनामय जीवन की अनेक सुन्दर झाँकियाँ देखी जा सकती हैं।

१

जनक का क्रियाशील जीवन

लगभग पच्चीस वर्ष व्यतीत हुए जब मैं अपने अभिन्न मित्र और सहयोगी स्वर्गीय श्री कृष्णकान्त मालवीय जी के द्वारा श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्पर्क मे आया था। उन्होने मुझ से मोहता जी की सुप्रसिद्ध पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" पर कुछ शब्द लिखने को कहा था।

उसके वाद मैंने मोहता जी की गीता पर लिखी कुछ और पुस्तकें तथा दार्शनिक विषयो पर लिखे उनके कुछ निवन्ध पढे। उनका प्रभाव मुझ पर यह पडा कि उनके ग्रन्थ और लेख भगवद्गीता के उपदेशो के गम्भीर चिन्तन और श्रद्धायुक्त अध्ययन के परिणाम हैं। उस व्यक्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक है जो कि व्यावहारिक दृष्टिकोण से अपने जीवन मे इस ससार के ईश्वरीय प्रयोजन को पूर्ण श्रद्धा से सम्पन्न करते हुए उसके जगतव्यापी स्वरूप का विश्लेषण करना चाहता है और जो अपनी अन्तरात्मा मे इस ससार मे अपने जीवन के मिशन के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं। राजा जनक के सम्बन्ध मे गीता मे जो कुछ कहा गया है उसके महत्व को मोहता जी के क्रियाशील जीवन से पूरी तरह समझा जा सकता है। "कर्मण्यैव हि ससिद्धि मास्थिता जनकादय।"

मोहता जी कर्तव्यपालन के उस पुनीत पथ के श्रद्धालु पथिक हैं जो कि सिद्धि की प्राप्ति के लक्ष्य पर पहुँचाने वाला है।

माधव श्री हरि अणे

(लोकमान्य तिलक की चातुर्यपूर्ण राजनीति के उत्तराधिकारी, वरार—मध्यप्रान्त के वयोवृद्ध नेता, हिन्दू महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष, वाइसराय की परिषद के भूतपूर्व सदस्य, स्वतन्त्र भारत मे विहार के भूतपूर्व राज्यपाल और वैदिक एवं संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड पंडित। आपने ही मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के "गीता का व्यवहार दर्शन" ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण उपोद्घात लिखा है।)

२

साधना और सेवा का जीवन

मुझे यह जानकर वडी प्रसन्नता हुई कि श्री रामगोपाल जी मोहता अपने जीवन के इक्यासीवें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। यह शुभ लक्षण हैं कि व्यापारी लोग भी सास्कृतिक कार्यों मे अभिरुचि रखते है और वे

उसके मौलिक सिद्धान्तो के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। श्री रामगोपाल जी का सम्पूर्ण जीवन साधनामय एव सेवामय रहा है और उनके रचित ग्रन्थ बहुत दिलचस्पी के साथ पढे जाते हैं।

एस० राधाकृष्णन
उप-राष्ट्रपति

(अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दार्शनिक, विचारक और शिक्षाशास्त्री, पौर्वात्य और पाश्चात्य शास्त्रो के सुप्रसिद्ध ज्ञाता।)

●

३

निर्लिप्त मोहता जी

मोहता जी एक निर्लिप्त योगी हैं। ससार और समाज तजकर योगी होना तो उतना कठिन नही पर समाज मे रहकर गार्हस्थ जीवन व्यतीत करते हुए सासारिक प्रवृत्तियो से निर्लिप्त रहना वास्तव मे कठिन साधना का फल है। मोहताजी जनक जैसे विदेह हैं। समाज-सेवा ही उनका एकमात्र धर्म है।

जगजीवनराम

(केन्द्रीय मन्त्रिमडल के सुयोग्य सदस्य, वर्तमान रेलवे मन्त्री, दलित व शोषित वर्ग के आशादीप और काग्रेस के प्रभावशाली नेता।)

●

४

एक आदर्श की पूर्त्ति

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री रामगोपाल जी मोहता की इक्यासवी वर्षगांठ के उपलक्ष्य मे उनको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन किया जा रहा है। समाज-सुधार, धर्म, उदारता तथा साहित्य के क्षेत्र मे श्री मोहता जी द्वारा किए गये कार्यों का यह ग्रन्थ निदर्शन करेगा और उनके जीवन के विभिन्न पहलुओ को मनोरजक विस्तार के साथ जनता के सामने प्रस्तुत करेगा। मुझे पूरी आशा है कि यह ग्रन्थ एक बडे आदर्श की पूर्त्ति करेगा क्योकि यह उन लोगो के लिए मार्ग-दर्शक होगा जो दूसरो के जीवन के अनुभवो को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं।

मैं इस अवसर पर श्री मोहता जी की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

सरदार स्वर्णसिह
केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण मत्री

५

प्रेरक जीवन

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री रामगोपाल जी मोहता की इक्यासिवी वर्ष गांठ के शुभ अवसर पर अभिनन्दन समिति की ओर से "एक आदर्श समत्व योगी" के नाम से एक विशेष अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशित करने का आयोजन किया जा रहा है। श्री मोहता का जीवन त्याग और आदर्श का जीवन रहा है। विभिन्न रूप से जन-सेवा एव साहित्य सेवा उनके इस दीर्घ जीवन का ध्येय रहा है। जिसको भी श्री रामगोपाल जी मोहता से साक्षात्कार का शुभ अवसर मिला है वह उनके उदार चरित्र, सरल जीवन एव वृहद ज्ञान से प्रभावित हुए बिना नही रह सका। जिन सिद्धान्तो एव आदर्शों का उन्होने निरन्तर अपने जीवन के दैनिक व्यवहार मे पालन किया है, उनसे आज से नवयुवको को प्रेरणा मिल सकती है। इस शुभ अवसर पर मैं भी अपनी शुभ कामनाएँ प्रेषित करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आदरणीय श्री मोहता जी को चिरायु करें जिससे कि हम सब और भी अधिक उनके ज्ञान एव अनुभव से लाभ प्राप्त कर सकें।

मोहनलाल सुखाडिया
मुख्य मत्री—राजस्थान

०

६

Source of Inspiration

Humanity is passing through a crisis of spirit The bewildering success of scientific technology raises on the one hand a hope of complete conquest of the universe and on the other a fear of total annihilation The world is in the throttling grip of greed and avarice, turmoil and trouble There is a clash of ideals and ideologies and groups of people are in an armed poise against one another. Nations and individuals are in a state of high nervous tension and peace has vanished from the world Against such a background the lives of persons like Shri Ramgopalji Mohta are like bacons leading others to the heaven of peace In Shri Mohta we see a rare combination of business acumen, erudition, spirit of social service and profound religiosity. He has based his life on the ancient wisdom of India but is resilient enough to take in the impact of materialism to his best advantage. The "Iron King" of Karachi has not a heart of steel The milk of human kindness flows profusely from it As a successful businessman, he has amassed great wealth but all his acquisitions he is utilising in the service of humanity. To him property is not private. He holds it in trust for the downtrodden and the needy.

८

एम० एन० राय और मोहता जी

१९४३ की गर्मियो मे देहरादून मे हमारे घर एक अजनबी दर्शक आया। अनेक कारणो से उसका आना कुछ अजनबी सा लगा। कोई बिरला ही नया आदमी बिना सूचना दिये हमारे यहाँ आता था। जब हम अपने काम मे लगे नही होते थे तब हम अपने इस दूरस्थ मकान मे बडा एकान्त और शान्त जीवन विताया करते थे। दिन मे जब एम० एन० राय काम पर लगे होते थे तब भी हमारे मित्र प्राय नही आया करते थे। मैंने अपनी यह आदत बना ली थी कि मैं आने वालो को रोकने के लिए बरामदे मे बैठकर काम किया करती थी ताकि काम मे या आराम मे कोई विघ्न न पडे। परन्तु १९४३ की गर्मी के शुरू दिनो मे आने वाला यह दर्शक एक और कारण से भी अजनबी प्रतीत हुआ। वह वृद्ध सज्जन पुराने ढग का था और पुराना लिबास पहने हुए था। वह हमारी रेडीकल डेमोक्रेटिक पार्टी के युवक सदस्यो से बिलकुल भिन्न था और उन स्थानीय काग्रेसियो से भी मेल नही खाता था जो राजनैतिक मत-भेद रखते हुए भी व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठा के कारण प्राय मिलने के लिए आ जाया करते थे।

वह अजनबी दर्शक सेठ रामगोपाल मोहता थे। वे गर्मी की ऋतु हरिद्वार मे बिता रहे थे और किसी डाक्टरी सलाह-मशवरे के लिए वे कुछ दिनो के लिए देहरादून आये थे। यह और भी अधिक विस्मयजनक था कि वे एम० एन० राय से मिलना चाहते थे। हमने सोचा कि वे भी उनमे से एक होगे, जो कि यहाँ आकर बडी दुखी आवाज मे यह पूछा करते है कि जब सारे नेता जेलो मे बन्द हैं तब आप युद्ध का समर्थन क्यो करते हैं और आप महात्मा गाधी की आलोचना क्यो करते हैं? ऐसे ही अन्य प्रश्न भी वे पूछा करते थे। उनके उन प्रश्नो का उत्तर तत्कालीन इतिहास और दर्शन शास्त्र का विस्तार से विवेचन किये बिना नही दिया जा सकता था उनके लिए एकमत पर पहुँचने का कोई समान धरातल साधारणतया नही होता था और जिनका सन्तोषजनक समाधान उस शिष्टाचारपूर्ण मामूली मुलाकात मे नहीं किया जा सकता था।

हमारे लिए वह कितना सुखद आश्चर्य था कि हमने देखा कि पुरातन पन्थी दीख पडने वाले सेठ जी न केवल एम० एन० राय की विचारधारा और कार्यकलाप से पूरी तरह परिचित थे अपितु अधिकाश मे उनसे सहमत भी थे। उन्होंने उनके साथ अपनी पूर्ण सहमति प्रगट करते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशसा भी की। हमने उनको केवल चित्ताकर्षक और मौलिक विचारक ही नही पाया, अपितु उनको अत्यन्त प्रिय व स्नेही भी अनुभव किया। आपस के पहले ही वार्तालाप तथा विचार-विनिमय के बाद सेठ जी ने कहा कि आपका यह स्थान बहुत ही सुन्दर है। हमने उनके साथ बगीचे के चारो ओर एक चक्कर लगाया और मैंने उनके लिए कुछ दुर्लभ फूल इकट्ठे किये। मुझे यह देखकर बडी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने उन फूलो को वहाँ ही फेंक नही दिया अथवा वहाँ ही छोड भी नही दिया जैसा कि उन नाजुक और सुन्दर चीजो के प्रति असावधान लोग प्राय किया करते हैं परन्तु वे, बडी सावधानी से उनको अपने साथ ले गये।

उनके जाने के बाद एम० एन० राय ने मुझे बताया कि वे सेठ जी से कैसे प्रभावित हुए थे। भारतीय दर्शन शास्त्र तथा अन्य शास्त्रो के सम्बन्ध मे उनका अध्ययन और गम्भीर ज्ञान उनकी श्रेणी के तथा उनकी सी परिस्थितियो मे रहने वाले के लिए असाधारण बात थी। उन्होंने कहा कि अत्यन्त साहसी चरित्र और मौलिक आलोचनात्मक विचार रखने वाला ही मानसिक और सामाजिक रूढ़ियो तथा परम्पराओ से उनकी तरह ऊपर उठ सकता है।

अगले सात-आठ वर्षो मे दोनो मे मैत्री का सम्बन्ध कायम हो गया। वे अनेक मामलो मे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे और यदि उनकी विचारधारा मे कुछ मुद्दे ऐसे भी थे जिन पर वे एकमत नही हो सकते थे, फिर भी उनके कारण उनमे आपस का सम्मान और सम्बन्ध कम नही हो सका। उसके कारण उन वर्षो मे सेठ जी से प्राप्त होने वाली अत्यन्त उदार सहायता भी वन्द नही हो सकी। उनकी वह सहायता सदा ही दुर्लभ कृपा एव शालीनता से प्राप्त होती थी। सेठ जी ने वह केवल इसलिए ही प्रदान नही की कि वे एक विद्वान् थे; परन्तु वे एक सफल व्यवसायी भी थे। वे वहुधा हमको हमारी पुस्तको, समाचार पत्रो के प्रकाशन आदि के वारे मे परामर्श भी देते रहते थे। यह हमारा ही दुर्भाग्य था कि हम उनके सत्परामर्श पर भी अपने सामाजिक व राजनैतिक कार्यो सम्बन्धी प्रकाशनो को कभी भी पैसा कमाने के लिए व्यापाराना ढग पर नही चला सके। हम जो कुछ भी कर सके, वह इतना ही था कि अपने आन्दोलन के प्रति श्रद्धा भक्ति रखने वालो को धन्यवाद दें कि उन कामो को हम जारी रख सके और हम पर किसी प्रकार का कोई ऋण नही हुआ। हमारे सब साधन और व्यक्तिगत सहयोग हमारे कार्य को आर्थिक सहायता पहुँचाते रहे।

मुझे एकबार फिर सेठ जी की देहरादून की पहली यात्रा का स्मरण होता है। उनके जाने के वाद हमे अपनी टेवल पर एक वन्द लिफाफा मिला, जिसमे वड़े-वडे वैंक नोटो के रूप मे एक वडी भेंट प्रदान की गई थी और उसके लिए एक भी शब्द नही कहा गया था। एम० एन० राय ने गद्गद् होकर सेठ जी को धन्यवाद देते हुए अपने पहले ही पत्र मे लिखा था कि, "यह वास्तव मे ही आपकी वडी कृपा थी कि आपने यह सहायता ऐसे समय प्रदान की, जवकि उसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। यह ठीक ऐसे अवसर पर प्रदान की गई, जव कि यहाँ ऐसी युवा महिलाओ का अध्ययन कैम्प चल रहा था, जो कि सार्वजनिक कार्यो मे हिस्सा लेने को वहुत उत्सुक थी। उनमे से ४० के लगभग विविध प्रान्तो से आई थी। और वे यह सोचकर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर लौटी कि वे देश की भलाई का कुछ कार्य करने के योग्य वन गई है। जीवन निर्वाह की मँहगाई के इन दिनो मे ऐसे कैम्प का चलाना हमारे साधारण साधनो के लिए एक वहुत वडा भार था। इसलिए आपकी यह सहायता हमारे लिए ईश्वर-प्रदत्त ही थी। आप जानते ही हैं कि ईश्वर मे मेरा विश्वास नही है, परन्तु सज्जनता अथवा भलाई सम्भवत. ईश्वर से भी अधिक वडी है और मैं जानता हूँ कि सज्जनता की सराहना और आराधना किस प्रकार की जाती है।"

इन अन्तिम पक्तियो मे एम० एन० राय और सेठ रामगोपाल जी मोहता दोनो का ही चरित्र अकित हो जाता है।

श्रीमती एलन राय

स्वर्गीय श्री राय और मोहता जी का पत्र व्यवहार

स्वर्गीय श्री मानवेन्द्रनाथ राय हमारे देश के प्रथम कोटि के क्रान्तिकारी विचारक, दार्शनिक और अर्थशास्त्री थे। विदेशो मे रहकर उन्होने क्रान्तिकारी विचारधारा का गहरा अध्ययन किया था। श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "मेरी कहानी" मे श्री राय के साथ मास्को मे हुई मुलाकात का उल्लेख किया है और लिखा है कि उनके वुद्धि वैभव का मुझ पर अच्छा असर पड़ा। वे प्रमुख कम्युनिस्ट थे और कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के पहले भारतीय सदस्य थे। व चोरी मे भारत आए थे। कानपुर मे उनको गिरफ्तार किया गया और मेरठ मे चलाये गये पडयत्र के सुप्रसिद्ध मुकदमे में वे प्रमुख अभियुक्त थे। उसमे उनको कम्युनिस्ट विचार धारा फैलाने के लिए पड़यत्र करने के अपराध मे लम्वी सजा दी गई। मोहता जी के साथ उनका जो घनिष्ठ

सम्पर्क था उसका कुछ परिचय उनके पत्र-व्यवहार से मिलता है। कुछ पत्रो का हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।

श्री राय का पत्र

देहरादून—१३ जुलाई, १९४३

प्रिय सेठ जी,

आपकी जिस उदारता के लिए मैं धन्यवाद भेज रहा हूँ उसमे इस कारण से देर हो गई कि मैं हरद्वार के उस स्थान का पता नही जानता था जहाँ आप दूसरा मास बिताने वाले थे। वास्तव मे यह आपकी वडी उदारता थी कि आपने ठीक उस समय सहायता पहुँचाई जबकि उसकी आवश्यकता थी। यह ठीक उस समय प्राप्त हुई जबकि सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करने की इच्छा रखने वाली महिलाओ के प्रशिक्षण शिविर के अन्तिम दिन थे।

उनमे से लगभग ४० तो विभिन्न प्रान्तो से आई थी और वे यह समझकर पूर्ण सन्तोष के साथ यहाँ से विदा हुई हैं कि उन्होंने अपने को कुछ देश सेवा करने के लिए योग्य बना लिया है। आजकल के मँहगाई के दिनो मे इस प्रकार का शिविर चलाना हम लोगो के साधारण साधनो के लिए वहुत वडा भार था। इसलिए आपकी सहायता ईश्वर-प्रदत्त थी।

आप जानते हैं कि मैं ईश्वर मे विश्वास नही करता लेकिन इतना मानता हूँ कि सज्जनता सम्भवत ईश्वर से भी वडी है और मैं जानता हूँ कि किस प्रकार सज्जनता की सराहना और पूजा की जानी चाहिए। मुझे आशा है कि आपने इस स्थान पर आना सर्वथा निरर्थक नही समझा होगा और भविष्य मे भी मुझ से सम्पर्क वनाये रखने का कष्ट स्वीकार करेंगे।

आपका

एम० एन० राय

श्री मोहता जी का उत्तर

वीकानेर जुलाई २०, १९४३

प्रिय श्री राय,

आपका दिनाक १३ का पत्र पाकर वडी प्रसन्नता हुई। मैं नही समझता कि मैंने आपकी कोई सहायता की है। यह उस हार्दिक सहानुभूति का केवल एक सकेत था जो कि देश सेवा के लिए मैं अनुभव करता हूँ और जिसमे आप प्राणपण से जुटे हुए हैं।

आप समानता और पारस्परिक सहयोग के जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते है मैं उनसे पूर्ण सहमत हूँ और मैं उनका अपने ढग से प्रचार और प्रसार करता हूँ। मुझे बहुत प्रसन्नता होगी यदि आप समय-समय पर अपने मिशन की प्रगति के विपय मे मुझे सूचित करते रहेगे।

आपका

रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

जनवरी ३०, सन् १६४४

प्रिय महोदय,

आपके २५ ता० के पत्र के लिए मैं अनुगृहीत हूँ जो कि मुझे यहाँ भेजा गया है। दिल्ली मे हम अपने कार्य के लिए जो व्यर्थ मे कर रहे हैं उसके सम्बन्ध मे आपके तर्कपूर्ण विचारो को जानकर बडी प्रसन्नता हुई। मुझे आश्चर्य है कि क्या आप उनको प्रकाशित करने की अनुमति दे सकेंगे ? यदि आप ऐसा कर सके तो कृपया वैंगार्ड आफिस (३० फैज बाजार, दिल्ली) को सूचना भेज दे। वस्तुत यह मेरे लिए बडा हर्ष का विषय है कि आप हम लोगो के कार्यों मे इतनी रुचि लेते है और उसकी सफलता की कामना करते है। समाचार पत्रो मे हमारे सम्बन्ध मे प्रकाशन के बहिष्कार के कारण जनता को हम लोगो की गतिविधि की बहुत ही कम जानकारी मिल पाती है। हम अपनी आशा से भा अधिक गति से आगे बढ रहे है। हम "वैंगार्ड" के आभारी हैं कि उसके कारण हमारे मित्रो और शुभचिन्तको को हमारी गतिविधि की जानकारी मिल सकती है। वह हमारे प्रचार व प्रकाशन का एक मात्र साधन है इसलिए हम उसको एक पहली श्रेणी का समाचार पत्र बनाने के लिए इच्छुक हैं। अकल्पित कठिनाइयो के बावजूद भी हम उसको लगभग दो वर्ष से चलाते आ रहे हैं। लेकिन अपना स्वय का प्रेस न होना हमारे लिए एक बहुत बडी बाधा है। इससे केवल आर्थिक कठिनाइयाँ ही नही उत्पन्न होती अपितु पत्र भी समय पर प्रकाशित नही हो पाता। हमारे वे सब प्रयत्न विफल हो जाते है जो हम पत्र के प्रचार को बढाने के लिए करते हैं। हम उसके मुद्रण की व्यवस्था को अधिक सतोषजनक बनाने के लिए उत्सुक हैं। हम इस स्थिति मे नही हैं कि अपना निजी प्रेस कायम कर सकें। सम्भवत आपको मालूम नही है कि हमने केवल कुछ सौ रुपयो से इस पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इसका निर्माण पूर्ण रूप से स्वेच्छापूर्ण मेहनत से किया गया है और अब यह एक स्वावलम्वी पत्र है।

क्या आप इस सम्बन्ध मे हमारी कुछ सहायता करने के लिए विचार कर सकेंगे ? हम आपसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नही चाहते। क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो दिल्ली मे प्रेस लगाने को तैयार हो सके और हमारे पत्र की छपाई को प्राथमिकता दे सके। इसके अलावा हम उसको अपना सभी छपाई का काम दे देंगे जो कि बहुत अधिक है।

साराश यह है कि हमारी छपाई के काम के सहारे प्रेस को मुनाफे का धन्धा बनाया जा सकता है। अभी इसमे ५० हजार से अधिक पूंजी लगाने की आवश्यकता नही होगी। यदि आप इस सम्बन्ध मे कुछ करने का विचार रखते हो तो हमारे जनरल सेक्रेटरी श्री भी० वी० कार्निक एडवोकेट, ३०-फैजरोड, दिल्ली से पूरी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मुझे आशा है कि आप समय समय पर मुझे पत्र देते रहेंगे।

आपका,
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

वीकानेर १८ फरवरी, १९४४

प्रिय महोदय,

इसी ३० तारीख का आपका पत्र मुझे प्राप्त हुआ। मेरे मित्र श्री बालकृष्ण मोहता दिल्ली से वापस लौट आए हैं। उनको महायज्ञ के नाम से किये जाने वाले फिजूल खर्च के विरुद्ध आन्दोलन करने मे "वैंगार्ड" से

बडी सहायता मिली है। उनका आन्दोलन मेरे विचारो के सर्वथा अनुकूल था। इस सम्वन्ध मे आपने जो सहायता की, उसके लिए मेरा धन्यवाद आप स्वीकार करें। मैं जानता हूँ कि अपना निजी प्रेस न होने के कारण आपको साहित्य और "वैंगार्ड" के छापने मे किन कठिनाइयो का सामना करना पडता होगा। मेरा सुझाव है कि वैंगार्ड तथा अन्य साहित्य के मुद्रण के लिए एक प्रेस लगाने को एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना की जानी चाहिए और उसकी पूंजी एक लाख रुपये रखी जाय। इस पूंजी का आधा पेशगी वसूल कर लिया जाय। मैं समझता हूँ कि इसके हिस्से जल्दी ही बिक जायेंगे। मैं १०,००० के हिस्से लेने को तैयार हूँ।

इस सुझाव पर विचार करने की कृपा करें और मुझे सूचना दें कि आपको मेरा यह सुझाव पसन्द है कि नहीं।

आपका,
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

देहरादून २२ फरवरी, १९४४

प्रिय महोदय,

मुझे अपने पत्र का उत्तर पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि आप हमारे काम मे वहुत दिलचस्पी ले रहे हैं। आपका सुझाव हमारी बहुत सी कठिनाइयो को दूर कर सकता है। लेकिन हम लोग व्यापारी नही हैं। एक लिमिटेड कम्पनी की स्थापना, और विशेषत उसके लिए धन जुटाना हमारे जैसे नौसिखुओ का काम नही है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि आपका सुझाव व्यवहार मे तभी आयेगा जब कि आप इस लिमिटेड कम्पनी को अपना ही समझकर स्थापित करने का कष्ट स्वीकार करेंगे। यदि आप किन्ही अन्य कार्यों मे लगे हुए हो तो अपना कोई आदमी नियुक्त करने की कृपा करें, जो आपके मार्ग-दर्शन मे इस काम को पूरा कर सके।

मुझे आशा है कि आप इस विषय पर उचित ध्यान देंगे और अपनी सुविधानुसार उत्साहवर्धक उत्तर देने की कृपा करेंगे।

आपका,
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

बीकानेर २८ मार्च, १९४४

प्रिय साथी राय,

मुझे अभी आपका दिनाक १४ का पत्र प्राप्त हुआ। मैंने "वैंगार्ड" मे और "इनडिपेंडेंट इण्डिया" मे "आर्थिक विकास की जन योजना" को देखा है। मुझे यह बहुत पसन्द आई और विचारपूर्ण भी प्रतीत हुई। मैं आपके इस विचार से भी पूरी तरह सहमत हूँ कि प्रेस की स्थापना के लिए हमे युद्ध की समाप्ति की प्रतीक्षा करनी चाहिए। मुझे पता चला है कि लखनऊ का नेशनल हेराल्ड प्रेस या तो बिकने वाला है, या उसे ठेके पर लिया जा सकता है। यदि उचित शर्तों पर उसे ठेके पर लिया जा सकता है तो उसके लिए पत्र व्यवहार करना ठीक होगा। मुझे वताया गया है कि प्रेस "अपटूडेट" और पूर्ण है। आपके विचार के लिए यह एक सुझाव है।

जोधपुर जाते समय रास्ते मे श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी से यहाँ बातचीत हुई थी और उनसे मिलकर

मुझे वास्तव मे वड़ी प्रसन्नता हुई। उनके शास्त्रज्ञान और उसको आजकल की प्रगति के लिए काम मे लाने के उनके अनुभव से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। अपने उद्धार के लिए हमे ऐसे पडितो की विशेष आवश्यकता है। जिस कार्य और उद्देश्य का आप प्रतिपादन कर रहे हैं उसके लिए तथा प्राचीनतम इतिहास से लाभ उठाने के लिए वे सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

मैं सौ-सौ रुपयो के दस करेन्सी नोटो के आधे हिस्से इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ। शेष आधे हिस्से इस पत्र की प्राप्ति की मुझे सूचना मिलने के वाद भेजे जायेंगे। अपने कार्य को आगे वढाने के लिए आप जैसा उचित समझें वैसा इन एक हजार रुपयो का उपयोग कर सकते हैं।

विनम्र आभार के साथ।

आपका
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

देहरादून अप्रैल २, १९४४

प्रिय सेठ जी,

आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। मुझे यह जानकर वडी प्रसन्नता हुई कि श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी के विचारो को आपने बहुत पसन्द किया। नेशनल हेराल्ड प्रेस की स्थिति को जानने के लिए मैं लखनऊ पत्र लिखवा रहा हूँ। यह एक रोटरी मशीन है और मुझे डर है कि कही यह कीमती न हो। इसको किराये पर लेना भी बहुत मँहगा होगा। जैसे ही हमारे पास पूरी जानकारी आयेगी मैं आपको उसकी सूचना दूँगा।

आपकी सहायता के लिए मैं आपका आभारी हूँ। मेरे दिल्ली के पते पर नोटो के शेष आधे हिस्से भी भिजवा देने की कृपा करें।

मुझे आपको यह बताने की आवश्यकता नही है कि यह आपकी सहायता कितनी कीमती है, विशेष रूप से उस आन्दोलन के लिए जो कि हम अपनी आर्थिक विकास की योजना को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रारम्भ करने वाले हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने इसे पसन्द किया है।

आपका
एम० एन० राय

वीच मे कुछ वर्षों तक आपसी पत्र व्यवहार का यह सिलसिला वन्द रहा। फिर दुबारा जो पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हुआ उसमें से भी कुछ महत्वपूर्ण पत्र यहाँ दिये जा रहे हैं।

श्री राय का पत्र

१३, मोहिनी रोड
देहरादून
२ अक्तूबर, १९५०

आदरणीय सेठ जी,

आपकी नई पुस्तक की पहुँच की सूचना देने के लिए मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। उसके लिए आप मेरा धन्यवाद स्वीकार करेंगे।

यह देखकर कि आपने मुझे नही भुलाया, मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया और मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई।

श्री राय का पत्र

१३, मोहनी रोड
देहरादून
१० दिसम्बर, १९५०

आदरणीय सेठ जी,

मैंने बीमारी के कारण शरद ऋतु मे बीकानेर और जोधपुर की यात्रा स्थगित कर दी है। मुझे पता चला है कि छगनलाल जी अभी दिल्ली मे है और कुछ समय तक बीकानेर नही जा सकेंगे। उनकी सलाह भी यह है कि फरवरी के अन्त या मार्च के शुरू के लिए मुझे अपनी यात्रा स्थगित रखनी चाहिए।

"वैगार्ड" के भूतपूर्व और "थाट" के वर्तमान सम्पादक श्री रामसिंह भाई से मुझे पता चला है कि आप दिल्ली आने वाले हैं। मैं आपसे तुरन्त नही मिल सकूंगा इसलिए मैंने उनको अपनी ओर से आपसे मिलने के लिए कहा है। वे आपके सामने मेरी ओर से विचार के लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत करेंगे, जिससे कि आप अपना कुछ निर्णय फरवरी के अन्त तक कर सकें, जबकि मैं आपसे बीकानेर मे मिलूंगा।

आपको मालूम है कि मैंने राजनीति से पूरी तरह हाथ खीच लिया है और उसके कारण भी सार्वजनिक रूप से प्रगट कर दिए हैं। अनुभव से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मेरा वर्षों पुराना अभिमत बिलकुल ठीक है कि राजनीतिक गतिविधि और आर्थिक पुनर्निर्माण से पहले वर्षों तक देश मे सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्र मे काम किया जाना कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। सच्चे अर्थों मे स्वतत्र और प्रजातत्री समाज की नीव रखी जानी अभी बाकी है। मैं अपना शेष जीवन इसी काम मे लगाना चाहता हूँ।

कुछ मित्रो की सहायता से मैंने यह काम कुछ वर्ष पहले अपनी शक्ति अनुसार सामान्य रूप मे शुरू कर दिया था। हमारा पहला लक्ष्य यह है कि कुछ निस्वार्थ विचारको का पहले एक दल तैयार किया जाय जो कि जनता तक सांस्कृतिक और बौद्धिक स्वतत्रता का सदेश पहुँचाने का काम कर सकेगा। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि हमारा काम जनता को शिक्षित करने वालो को प्रशिक्षित करना है।

मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे प्रारम्भ से ही कम-से-कम आवश्यक धन के अभाव की भारी कठिनाई का सामना करना पड रहा है। अब यह स्थिति आ गई है कि मुझे इस काम को छोडने के लिए बाध्य होना पडेगा अन्यथा मुझे कुछ उदार और प्रगतिशील धनवानो का इस कार्य के लिए सरक्षण प्राप्त करना होगा। इसलिए मैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अन्तिम प्रयत्न के रूप मे राजस्थान की यात्रा करना चाहता हूँ।

मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही कि मेरे विचारो के साथ आपकी सहानुभूति है, भले ही कुछ मामलो मे आपका मुझसे मतभेद हो। हर हालत मे मैं आप पर निर्भर रहने का साहस कर सकता हूँ और आपको यह अवश्य ही देखना चाहिए कि मुझे अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे निराशा का सामना करके उनको व्यर्थ मे न गँवाना पडे। मैं आप से इस बात मे पूरी तरह सहमत हूँ कि सांस्कृतिक और बौद्धिक पुनर्जागरण के लिए प्रेरणा प्राप्त की जानी चाहिए और वह भारत के इतिहास से प्राप्त की जा सकती है। आपके ध्यान मे यह आया होगा कि भारतीय इतिहास के अनुसधान का कार्य हमारी संस्था के कार्यक्रम मे मुख्य स्थान रखता है। मैं भारत के सांस्कृतिक और दार्शनिक विकास का इतिहास लिख रहा हूँ। परन्तु यह आपको मालूम नही होगा कि सप्ताह के अधिक दिन मुझे अपनी आजीविका के निर्वाह मात्र के लिए पैसा जुटाने को अनेक पत्रों के लिए लेख लिखने मे लगा देने पडते हैं इसी कारण मैं कुछ प्रगति नही कर सकता हूँ।

मेरे पास सिवाय इसके दूसरा कोई रास्ता नही है कि मैं आपके उदार सरक्षण के लिए आपसे अपील करूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आप इस सस्था के कार्य मे कुछ सजीव दिलचस्पी ले सकेंगे, तो राजस्थान

के ऐसे अनेक धनीमानी सेठ साहूकार हमारी सहायता कर सकेंगे जो ऐसे साहसपूर्ण कार्यों मे प्राय सहयोग देते रहते हैं। इस विश्वास से मैं फरवरी के अन्त मे बीकानेर आऊँगा।

शुभ कामनाओ और विशेष सम्मान सहित ।

आपका,
एम० एन० राय

मोहता जी का उत्तर

मोहता भवन
बीकानेर
१८ दिसम्बर, १९५०

प्रिय श्री राय,

आप के २० अक्तूबर और १० दिसम्बर के दिल्ली के पते पर लिखे गए पत्र यथा समय प्राप्त हो गए। मुझे यह जान कर दुख हुआ कि आप ने अस्वस्थता के कारण राजस्थान की अपनी प्रस्तावित यात्रा फरवरी के अन्त या मार्च के शुरू के लिए स्थगित कर दी है। मुझे यहाँ आप से मिलकर बडी प्रसन्नता होती। मुझे आप को यह सलाह देनी आवश्यक प्रतीत होती है कि आप इस प्रदेश मे आकर अपने कीमती समय, शक्ति और धन को व्यर्थ मे खर्च न करें। मैं यह अनुभव करता हूँ कि जिस उद्देश्य से आप यहाँ आयेंगे, वह पूरा नही होगा, मुझे यहाँ ऐसे अधिक आदमी दीख नही पडते, जो आप द्वारा प्रतिपादित ऊँचे विचारो और गम्भीर एव गहन दर्शन शास्त्र को समझ सकें और उनकी सराहना कर सकें। धनी लोगो मे ऐसो का और भी अधिक अभाव है। वे अधिकतर अशिक्षित और अत्यन्त स्वार्थी हैं। वे आप से मिलना भी नही चाहेगे। वे जात पाँत मे उलझे हुए, अपनी सम्पत्ति मे मदान्ध, धार्मिक अध विश्वासो और पुरातन कट्टरता मे फँसे हुए हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, यदि स्वास्थ्य अनुकूल रहा तो मैं गरमियो या बरसात के दिनो मे देहरादून आकर आप से मिलूंगा और वात चीत करके यह तय करूँगा कि मैं आपके शुभ कार्य मे क्या सहयोग दे सकता हूँ ?

मेरा अगरेजी का ज्ञान बहुत मामूली है इसलिए मैं आप के ऊचे पाँडित्य पूर्ण लेखो को उनके प्राविधिक शब्दो और परिभाषाओ के कारण समझने मे असमर्थ हूँ। परन्तु आप की सस्था के साहित्य से मैं यह जान सका हूँ कि आप व्यावहारिक वेदान्त की पुरानी विचारधारा के बहुत नजदीक पहुँचते जा रहे हैं। आप सरीखे विद्वानो और स्वतन्त्र विचारको को अत में उसको अपनाना ही चाहिए। मुझे यह भी विश्वास है कि आप का अनुसधान कार्य जैसे प्रगति करेगा, वैसे आप इसके अधिक नजदीक आते जायेंगे। आप यह अनुभव करेंगे कि आप लोगो की जिस सास्कृतिक, और बौद्धिक, उनसे भी अधिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील हैं उसको उपनिषदो और गीता से प्रचुर मात्रा मे प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते कि उनका अध्ययन मेरी टीका और व्याख्या के प्रकाश मे किया जा सके। मैंने अपनी पुस्तको "गीता का व्यवहार दर्शन" और "समय की माँग" मे जो कि हिन्दी मे प्रकाशित हुई हैं, इन विचारो को बहुत ही स्पष्ट रूप मे प्रगट किया है। यह बडी कठिनाई है कि आप हिन्दी नही जानते अन्यथा मेरी पुस्तकें पढकर उस पर विश्वास कर सकते जो मैंने लिखा है। यह दुर्भाग्य है कि बडे-बडे विद्वानो, पडितो और राजनीतिज्ञो की व्याख्याएँ धर्मान्धता, रहस्यवाद, अध विश्वास, पुरातन पथी कर्मकाड, मिथ्या धारणा और अध भावना के आधार पर लिखी गई हैं। वे मानव समाज के लिए प्रतिगामी हैं और इस देश के शिक्षित व अशिक्षित सभी की स्वतन्त्र विचार शक्ति को उन्होंने कुण्ठित कर दिया है।

जैसा कि आप को मालूम है सर्वसाधारण हिन्दू समाज का वहुमत और विशिष्ट वर्ग भी गीता का अंध भक्त है। वह उसके उपदेशो का यथार्थ मर्म नही जानता। उपनिषदो के लिए भी उसमे वडा सम्मान है। स्थिति यह है कि सव धार्मिक और साम्प्रदायिक नेता अपनी साम्प्रदायिक कपोल कल्पनाओ को जनता मे लोकप्रिय वनाने के लिए गीता और उपनिषदो को प्रमाण के रूप मे उपस्थित करते हैं। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि जिन शिक्षितो को आप प्रशिक्षण देना चाहते हैं उनको स्वयं इन प्राचीन महान ग्रन्थो के व्यावहारिक दर्शन के वास्तविक मर्म को भली प्रकार समझ लेना चाहिए और मिलावटी, नकली, जाली तथा स्वार्थपूर्ण व्याख्याओ को उन्हे अलग रख देना चाहिए। इसी प्रकार वे आप के विचार के अनुसार जनता को सास्कृतिक, वौद्धिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का पाठ पढा सकेंगे और उनके अंधकार को दूर करके उनको प्रकाश दिखा सकेंगे। मेरे विचार से इस प्रकार आप को अधिक आसानी से सफलता मिल सकेगी। जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है इस देश के लोग अपनी स्वतन्त्र विचार की शक्ति खो चुके हैं और अंधविश्वास के गुलाम वन चुके है। उनके इस अंध विश्वास से लाभ उठाकर उनको उससे मुक्त किया जाना चाहिए। मैं यह साहस-पूर्वक कह सकता हूँ कि देश में फैली हुई इस पक्षाघात की वीमारी का यह सरल और निश्चित इलाज है।

मेरा विश्वास है कि आप उस वीमारी से सर्वथा निरोग होंगे, जिसका उल्लेख आपने अपने पत्र मे किया है।

शुभ कामनाओ के साथ।

आपका
रामगोपाल मोहता

श्री राय का पत्र

कलकत्ता
२५ जनवरी, १९५१

आदरणीय सेठ जी,

मेरे पत्र के उत्तर मे आपका पत्र मुझे दिसम्बर के मध्य मे वम्वई मे मिला। तव से मैं निरन्तर भ्रमण मे हूँ। मुझे आप के विचारो और सुझावो का उत्तर देने मे जो अनिवार्य देरी हुई उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मैंने उन पर वहुत गम्भीर विचार किया है और उनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आपकी अंगरेजी निर्दोष है। मुझे दुख है कि मैं आप के साथ हिन्दी मे पत्र व्यवहार करने मे असमर्थ हूँ। फिर भी मैं आप की रचनाएँ तथा अन्य उपयोगी रचनाएँ भी पढ़ सकता हूँ। यदि मैं अगरेजी मे लिखना पसन्द करता हूँ तो उसका कारण यह है कि उसमें लिखी गई पुस्तकें उन लोगो तक पहुँचती हैं जिनको हमे पहले अपील करनी चाहिए, भले ही वे थोडे हैं परन्तु वे सुशिक्षित और प्रगतिशील हैं। कुछ समय वाद हिन्दी देश की सार्वभौम भाषा वन सकती है, परन्तु मुझे तो दक्षिण और वंगाल के लोगो मे भी इस समय अपने विचारो का प्रचार करना है और वह तभी हो सकता है जव कि मैं उन्हे अगरेजी मे प्रगट करूँ। हिन्दी क्षेत्रो मे भी जो मेरे विचारो को जानना चाहते हैं वे आसानी से अगरेजी मे उनको पढ सकते हैं।

मैं इससे पूरी तरह सहमत हूँ कि आम जनता के लिए उसकी भाषा का ही प्रयोग किया जाना चाहिए, परन्तु भारत के सारे लोग एक ही भाषा नही वोलते और किसी के लिए भी भारत की समस्त भाषाओ मे वोलना और लिखना सम्भव नही है। इस कठिनाई मे यही मार्ग है कि उस भाषा का सहारा लिया जाय,

जिसको सारे देश के शिक्षित और प्रगतिशील लोग समझ सकते हैं। एक बार वे किसी बात को समझ गए तो वे आम जनता के साथ उसकी मातृभाषा मे बात कर सकेंगे।

कोई भी भारत की समस्त भाषाओ मे नही लिख सकता। मुझे बडी खुशी होगी यदि मेरी पुस्तकें समस्त भारतीय भाषाओ मे प्रकाशित की जा सकें। यह आर्थिक साधनो पर निर्भर है जिनका मेरे पास अभाव है। मैं यह सोचने का साहस कर सकता हूँ कि जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, आप मेरी सहायता करेंगे। यदि कुछ सहायता प्राप्त हो सके तो मेरे प्रकाशक मेरी पुस्तको का हिन्दी अनुवाद और आप की बहुमूल्य पुस्तको सरीखे अन्य हिन्दी साहित्य का भी प्रकाशन कर सकते है।

आप ने प्राचीन भारत के बुद्धिवादी विचारो पर जो जोर दिया है, उसके सम्बन्ध मे मैं अपनी सस्था के उद्देश्यो तथा नियमावली की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वे ये हैं —भारतीय इतिहास का अनुसधान करना, प्रेरणा के स्रोतो का पता लगाना और वर्तमान स्थिति मे सुधार कर उसका पुनर्निर्माण करना। हम यह सब काम सामान्य रूप मे कर रहे हैं। यदि आवश्यक साधन सामग्री प्रचुर मात्रा मे प्राप्त हो सके तो हम उसको कुछ अधिक रूप मे कर सकते हैं। मैं यह साहस और आशा रखता हूँ कि आप के सहयोग से ऐसे कुछ धनी लोगो का सरक्षण प्राप्त हो सकेगा जो कि रचनात्मक कार्यों मे अपना सहयोग देते रहते हैं। मुझे बताया गया है कि जयपुर के सेठ सोहनलाल जी को आप की मार्फत इस कार्य के लिए तैयार किया जा सकता है। ऐसे कुछ दूसरे लोग भी हो सकते हैं।

इसलिए मैं फरवरी के अत मे राजस्थान की यात्रा का विचार त्यागना नही चाहता। आप पर अपनी सस्था के लिए कुछ धन जमा करने को मैं निर्भर हूँ। हमारी तुरन्त आवश्यकता २ लाख रुपये की है। इससे हम अपनी सस्था का विस्तार करके कुछ विद्वानो और शिक्षको के निवास की व्यवस्था कर सकेंगे।

मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आप आगामी ग्रीष्म मे देहरादून पधारेंगे। परन्तु हम बीकानेर मे पहले ही मिल सकेंगे, जैसा कि मैं चाहता हूँ। मैं इस समय आप के सामने आपके विचार के लिए हिन्दी पुस्तको के प्रकाशन के सम्बन्ध मे एक योजना प्रस्तुत करूँगा। हमारी प्रकाशन सस्था एक निजी लिमिटेड सस्था है। इस समय मेरी जो रायल्टी मुझे दी नही जा सकी है उस रकम के हिस्सो के कारण सस्था के अधिकाश हिस्से मेरे नाम पर हैं। प्रारम्भिक पूजी कुछ मित्रो ने आपस मे जुटा दी थी। कम्पनी पर किसी प्रकार का कोई देना नही है इसलिए उसके काम काज को फैलाने का असीम क्षेत्र विद्यमान है। परन्तु उसके लिए कुछ चालू पूँजी की आवश्यकता है। यदि आप चाहे तो आप कम्पनी का नियन्त्रण अपने हाथो मे ले सकते हैं और उसके बिना बेचे हुए हिस्से अपने नाम कर सकते हैं। अधिकृत पूँजी १ लाख है। ४० हजार के हिस्से बिक चुके हैं। ३० हजार के हिस्से मेरी रायल्टी के बदले के हैं। दूसरे लिफाफे मे कम्पनी की नियमावली और लेखे जोखे के कागज भेजे जा रहे हैं। मुझे आशा है कि आप मेरे इस सुझाव पर मेरे बीकानेर पहुँचने तक विचार कर लेंगे।

शुभ कामनाओ और अत्यन्त सम्मान के साथ।

आपका
एम० एन० राय

९

मोहता जी की मन्थन शक्ति

मुझे अब स्मरण नही कि मैंने श्री मोहताजी को कहाँ देखा और कब देखा, पर कही देखा है अवश्य कदाचित् ज्वालापुर महाविद्यालय मे। मैं अब ७८ वर्ष का हो गया हूँ और दो एक वर्ष मे ८० के पेट मे चला जाऊँगा इसलिए इतनी पुरानी बात आज याद नही आ रही है। पुरानी स्मृतियो पर नई स्मृतियो का ढेर पडा हुआ है। ऊपर की स्मृतियो का ढेर निकलने पर ही पुरानी स्मृतियाँ जाग सकती है।

मुझे स्मरण आ रहा है कि बहुत वर्ष पूर्व मोहता जी की ओर से महाविद्यालय को कोई दान मिला था, शायद भूमि मिली थी। तब तो महाविद्यालय बहुत छोटा था, उसका इतना विस्तार नही था—अब तो बडा विस्तार है। शायद उस समय का वह दान है। परन्तु दान की वजह से मैं मोहता जी को इतना नही जानता जितना कि उनको उनकी व्यावहारिक गीता के कारण जानता हूँ—बहुत वर्ष हो गए मोहता जी ने अपनी गीता, मेरे पास आदरार्थ भेजी थी अथवा किसी ने मुझे लाकर दी थी मैं कह नही सकता—उस गीता को मैं दो-तीन बार देख गया था अवश्य। उन्होने गीता के तत्वज्ञान को व्यवहार के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है अवश्य—और मुझे आश्चर्य हुआ कि यह लक्ष्मीपुत्र गीता पर लिखने बैठा है और व्यावहारिक मार्ग का दिग्दर्शन करा रहा है, देखें क्या कहता है, कैसे व्यवहार से मेल बैठाता है—मैंने स्वयं **गीताविमर्श** लिखा था जेल मे। उस समय मुझे गीता-सम्बन्धी बीसियो टिप्पणियो, भाष्यो को देखने का अवसर मिला था—इसलिए मैं उत्सुकतापूर्वक उनकी गीता को देख गया—और मुझे प्रतीत हुआ कि मोहता जी ने अपने ढग से उस पर अच्छा प्रकाश डाला है—मुझे यह अब स्मरण नही है कि मुझे उनकी कौन-सी विवेचना अच्छी लगी और कौनसी नही रुची। अब उनकी पुस्तक मेरे सामने नही है। इस समय मैं पर्वत पर हूँ। इसलिए मैं स्पष्ट रूप मे भेद-अभेद कुछ न लिख सकूंगा। मैं कोई मोहता जी का मित्र नही हूँ जो गुण ही गुण देखता जाऊँ—और शत्रु तो हूँ ही नही जो दोषान्वेषण अथवा छिद्रान्वेषण करूँ। मैं तो एक मध्यममार्गी समालोचक हूँ और इसीलिए लिखता हूँ कि मोहता जी ने जो कुछ लिखा है उसमे उनका बुद्धि कौशल स्पष्ट दिखलाई पड रहा है।

गीता के विषय मे विद्वानो ने इतना मन्थन किया है, इसके इतने भाष्य और इतनी टिप्पणियाँ छपी है कि पूछिये नही—अब भी लोग लिखे जा रहे है और सम्भव है यह क्रम प्रलय तक चलेगा, चलता रहेगा।

मुझे स्मरण आ रहा है कि उदयपुर के पानी महल मे मैंने एक ऐसा चित्र देखा था कि जिसके सामने खडे होने से वह ऊँट प्रतीत होता था। एक कोने मे बायी ओर खडे होने से वह व्याघ्र प्रतीत होता था, दायी ओर कोने से वह सिंह-सा दिखलाई पडता था। कारीगर की कुशाग्रबुद्धि और कुशलता का एक सुन्दर अनुपम नमूना था वह।

इसी प्रकार गीता को जिस किसी ने, जिस किसी स्थान से खडे होकर, जिस किसी दृष्टि से देखा उसको कुछ न कुछ विचित्र दिखलायी पडा और अब भी दिखलाई पड रहा है। गीता मे ध्यान योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि का दिग्दर्शन है पर **मुख्ययोग क्या है** यही पर मतिविभ्रम रहता है।

कहने की अपनी-अपनी शैली ही तो है। लेखक, वक्ता अथवा ग्रन्थकार सब विषयो पर लिखता हुआ भी अपने ग्रथ मे, लेख मे, भाषण मे किसी एक विशिष्ट बात पर जोर देता ही है—इस दृष्टि से देखा जाय तो भगवान् कृष्ण का उद्देश्य केवल यह था कि युद्ध क्षेत्र मे शस्त्र सन्यास करके निरीह, निश्चेष्ट होकर रथ के कोने मे बैठने वाले अर्जुन को अपने **स्वभावनियत कर्म** अर्थात् युद्ध मे प्रवृत्त किया जाय। इसीलिए उनको

कर्म, अकर्म, विकर्म का तत्व बतलाना पडा—इसीलिए **स्वभावनियत कर्म** पर जोर देना पडा। और सब विषयो पर—निगूढ विषयो पर प्रकाश डालते हुए भी शास्त्र और व्यवहार अथवा आचार-विचार व्यवहार का दिग्दर्शन कराया गया। दो ही तो मार्ग हैं मुख्य ध्यानयोग और कर्मयोग। दोनो का फल भी तो एक ही है मोक्ष। व्यवहार दृष्ट्या सब को अपने नियत स्वभावानुसार कर्म करते रहना चाहिए। **ध्यानयोग** तो ससार को छोडकर "ब्रह्मार्पण ब्रह्म हवि." करने का मार्ग है। **कर्मयोग** तो कर्म करने का मार्ग है, ससार का। **एक मध्यम मार्ग है** जिस पर आरूढ रहने से ध्यानयोग का सा फल अर्थात् मोक्ष मिलता है। अर्थात सच्चा कर्म योग वह है जिसमे मनुष्य फलाकाक्षा छोडकर कर्तव्य बुद्धि से कर्म करता रहे। फल की वासना रक्खी और कर्म करता गया तो वह ससारी साधारण पुरुष हुआ। मुझे विदित नही कि श्री मोहता जी ने ऐसी साधना साधी है कि नही। यदि उन्होंने स्थितप्रज्ञता को साध और प्राप्त कर लिया तो मैं नि सदेह कहूँगा कि मोहता जी कर्मयोगी की कोटि मे आ जाते हैं अथवा उनको उस कोटि मे रक्खा जा सकेगा।

पर प्रश्न यह है कि पहिचाने कौन ? "अहिरेव विजानाति, अहेरेव पदक्रमम्", साँप के पद-चिह्नो को साँप ही पहिचान सकता है। स्थितिप्रज्ञता का जिसको थोडा बहुत आभास मिला हैं वही स्थितिप्रज्ञ को पहिचान सकता है। श्री मोहता जी ने गीता की व्यावहारिकता पर बडा बल दिया है—उनकी मन्थन-शक्ति ने बडा काम किया है। आश्चर्य तो यह है कि लक्ष्मी की आराधना मे सर्वात्मना सलग्न इस पुरुष की बुद्धि कुण्ठित क्यो न हुई ? वह विवेकिनी (बुद्धि) अप्रतिहत क्यो रह सकी यह भी आश्चर्य है।

मोहता जी के अभिनन्दन करने के हेतु जो मोहता अभिनन्दन समिति बनी है—वह एक ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रही है, उसमे उनके स्वभाव और चरित्र का चित्रण होगा जिससे उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पडेगा—पर कठिनता यह है कि जब किसी लक्ष्मी पुत्र की प्रशसा करने के लिए कोई उद्यत हो जाता है तो ससार उसका कुछ और ही अर्थ लगाता है। हम तो मोहता जी की कद्र उनकी मानसिक स्थिति के कारण करते हैं जो कि "समबुद्धिर्विशिष्यते" की ओर जा रही है। समबुद्धि वाले व्यक्ति के लिए लक्ष्मी, चचला अथवा चपला, तृणवत् है—लक्ष्मी के जोर पर कोई स्थितप्रज्ञ नही कहा जा सकता। वह स्थितप्रज्ञ तभी बनेगा जब कि—पूर्वजन्म के सस्कार उसको बल देंगे। इस जन्म मे भी जो अभ्यास करता रहेगा सुख दु ख से ऊपर उठने का अथवा ईश्वर जिस पर कृपा करेंगे। लोकमान्य तिलक कहा करते थे कि जीवन मे उन्होंने ४३ बार गीता का अनुशीलन किया है तब जाकर स्थितप्रज्ञता की कुछ झलक देखने को मिली। महात्मा गाँधी जीवन भर समबुद्धि बनने का अभ्यास करते रहे—हमारे पुरातन पूर्वज भी या तो ध्यानयोग से तरे अथवा समबुद्धि स्थितप्रज्ञ बनकर तरे।

हमे अपने पूर्वजो के मार्ग पर ही चलते रहना चाहिए। चाहिए सब कुछ। विवाद **चाहिए** पर नही, प्रश्न है कि कितने चलते हैं, कितने सफल होते है और किस अश तक सफल होते हैं ?

नरदेव शास्त्री

(वयोवृद्ध आचार्य प० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ वैदिक साहित्य और दर्शन शास्त्रों के प्रकाड पडित हैं। गुरुकुलमहाविद्यालय ज्वालापुर के सस्थापक और कुलपति हैं। एक मूक साधक की तरह आप ने महाविद्यालय के लिए गभीर साधना अथवा तपस्या की है और सस्था का वर्तमान रूप उसका शुभ परिणाम है। काग्रेस के आप अन्यतम नेता रहे हैं। विचारों मे लोकमान्य तिलक के अनुयायी हैं। महात्मा गांधी का भी आप ने विश्वास पूर्वक साथ दिया। दक्षिण हैदराबाद (निजाम राज्य) के मराठा प्रदेश मे जन्म लेकर भी आप उत्तर भारत मे बस गये और यहीं के बन गये। आप सुप्रसिद्ध स्वतन्त्र विचारक और दृढ़ राष्ट्रवादी आर्य समाजी नेताओं मे अग्रणी हैं। उत्तर प्रदेश की विधान परिषद के आप सदस्य रहे हैं।)

१०

प्रगतिशील मोहता जी

यो तो पहले सन् १६२४ मे जव मैं कराची प्रचार के लिए गया था तो वहाँ पर सेठ रामगोपाल जी मोहता अपना लोहे का व्यापार चला रहे थे। लेकिन पब्लिक कामो मे उनकी उस समय भी वडी रुचि थी। नगर मे मेरे कई व्याख्यान हुए और मेरी उनसे वरावर भेंट होती रही। वे दिन थे मेरे पोलिटिकल जीवन के और मैं देश की स्वाधीनता का दृष्टिकोण रखकर सव प्रकार के विपयो पर व्याख्यान देता था। हिन्दी प्रचार का कार्य मुख्यतया उस समय मैं किया करता था और लोगो को यह समझाता था कि एक लिपि हुए विना यह विशाल देश सगठित नही हो सकता। सेठ जी उन दिनो "आयरन किंग" (लोहे के राजा) कहलाते थे और नगर मे उनका वडा प्रभाव था। अपने यहाँ वुलाकर उन्होंने मेरा आदर-सत्कार किया था। वे दिन मुझे भूल भुला गये। नेत्रो के कष्ट के कारण मैं पब्लिक जीवन से ज़रा दूर हटता गया, तो भी राजनीतिक क्षेत्र मे जो मेरी अभिरुचि थी, वह वरावर वनी रही, और देश के वडे नेताओ के साथ मेरा वरावर सम्पर्क रहा। मैं धनी पुरुपो के द्वार पर जाया नही करता और स्वावलम्वी सन्यासी होने के नाते अपने खर्च के लिए मैं पैसा कमा लेता हूँ। इसी कारण सेठ जी से मेरा किसी प्रकार का सवध नही रहा था।

सन् १६५४ मे मैं जव ईस्ट पटेल नगर नई दिल्ली गया तो सेठ जी मेरे स्थान पर मुझे ढूंढते हुए आ निकले, और मेरी पुस्तको का एक सैट खरीद लिया। थोड़ी सी वातचीत मे मैंने भाँप लिया कि कराची के वे प्रसिद्ध लोहे के व्यापारी अभी तक सेवा के कार्यो मे दिलचस्पी लेते हैं, इस कारण जव मैं ज्वालापुर अपने निकेतन मे आ गया तो उनके विषय मे अपने प्रेमियो से पूछताछ करनी आरम्भ की। मुझे पता लगा कि सेठ रामगोपाल जी मोहता यद्यपि धनी व्यक्ति हैं, किन्तु हैं वडे प्रगतिशील और वे पुरानी दकिया नूसी रूढियो को पसन्द नही करते। रूढ़िपन्थी वीकानेर के दकियानूसी मारवाडी समाज के एक सेठ मे आधुनिक प्रगतिशीलता आ जाये, यह मेरे लिए वडे अचम्भे की वात थी, इस कारण मैं उनके विपय मे अधिक जानने के लिए उत्सुक हो उठा।

इसी वीच मे मेरे कानो मे यह खवर पहुँची कि हमारे कुछ साहित्य-प्रेमी सज्जन सेठ जी को अभि-नन्दन भेंट करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। मैं इस प्रकार की योजनाओ मे कुछ अधिक रुचि नही रखता हूँ। किन्तु जव मेरे पास मेरे अत्यन्त प्रेमी प० सत्यदेव विद्यालकार का पत्र इस विषय का पहुँचा और उन्होंने मुझ से आग्रह किया कि मैं उस अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए दो लेख लिखूँ—एक तो "सेठ जी के सम्वन्ध मे" और दूसरा "विचार-क्रान्ति का रूप" विषय पर—तो मेरी अभिरुचि जाग उठी। क्रान्ति के विषय मे मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ। आजकल मेरे मन मे भीषण क्रान्ति की लहरें उथल-पुथल मचा रही हैं। मैं सोचता था कि अपने अन्दर की ज्वाला को मैं देशवासियो के सामने किस प्रकार प्रकट करूँ। मेरे हाथ मे कोई पत्रिका नही—और न है कोई समाचार पत्र, इस कारण मन मसोस कर वैठ रहा था।

जुलाई १६५७ की २३वी तारीख को एक सज्जन मुझ से भेंट करने आये। पूछने पर पता लगा कि वे सेठ रामगोपाल जी मोहता के पास कार्य करते हैं। वातचीत के वाद उन्होंने मुझे सेठ जी के यहाँ भोजन का निमन्त्रण दिया, जिसे मैंने ईश्वर का भेजा हुआ समझा, क्योकि सेठ जी से साक्षात्कार करने की मेरी प्रवल इच्छा हो रही थी। २५ जुलाई को सवेरे साढे आठ वजे मैं उन सज्जन के साथ सेठ जी की मोटर मे सवार होकर भाटिया भवन की ओर चला। हरिद्वार मे जितने मनमोहक सुन्दर भवन वने हुए हैं, वे प्राय. गगा ज़ी के किनारे

हैं। सेठ जी जहाँ ठहरे हुए थे वह बिल्कुल भागीरथी के तट पर था, इस कारण मुझे कई-सीढ़ियाँ उतर कर उनके पास पहुँचना पडा। सेठ जी ने बडे आदर से मुझे आसन पर बिठलाया और भोजन की तैयारी हो गई। भोजनोपरान्त हमारा वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। मैं एक जबरदस्त आस्तिक व्यक्ति हूँ, जिसकी ईश्वर पर असीम श्रद्धा है। प्राय लोग बडे-बडे धार्मिक ग्रन्थो को पढकर सिद्धात स्वीकार किया करते हैं और उन्हे अपने धर्म का अग बना लेते हैं। मुसलमान समाज मे पैदा हुआ व्यक्ति कुरान के सिद्धान्तो को जन्म से ही स्वीकार कर लेगा, इसी प्रकार एक ईसाई माँ-बाप के घर मे पैदा हुआ व्यक्ति अजील को ईश्वरकृत मानने लग जाता है, ऐसे ही सनातन धर्मी, सिख, जैनी, और शैव आदि उन समाजो मे जन्म लेने के कारण उन सिद्धान्तो के अनुयायी बन जाते हैं, लेकिन मैं उनसे भिन्न व्यक्ति हूँ। मैं ईश्वर को इसलिए नही मानता कि वेद इसकी चर्चा करते हैं अथवा उपनिषदे उसका बखान करती हैं या गीता या रामायण ने उसका गुण वर्णन किया है—नही, नही। मेरा जीवन तो मेरे व्यक्तिगत अनुभवो पर खडा है और मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर उस सृष्टि-कर्ता मे विश्वास रखता हूँ।

१६वी शताब्दी मे प्रगतिशील व्यक्ति का लक्षण यह होता कि वह ईश्वर को नही मानता था। १६वी शताब्दी के बडे-बडे क्रान्तिकारी वे लोग हुए जिन्होने ईश्वर के अस्तित्व को मानने से इनकार कर दिया। राबर्ट इगरसोल, टौमस पेन, वाल्टेयर और रूसो आदि ऐसे ही व्यक्ति थे। वह युग था अजील के विरोधियो का, किन्तु आज ईसा की २०वी शताब्दी मे, पाश्चात्य जाति के गम्भीर विचारक सृष्टिकर्ता के अस्तित्व को स्वीकार करने लगे हैं। परन्तु भारतवर्ष चूँकि सन् १९४७ के अगस्त मास मे स्वाधीन हुआ है इसलिए यहाँ की प्रगतिशीलता अभी तक १६वी शताब्दी का द्वार खटखटा रही है। हमारे प्रगतिशील विचारक यह समझते हैं कि वे यदि ईश्वर को मानने लग जायेंगे तो उनकी प्रगतिशीलता खतम हो जायगी।

भोजनोपरान्त हमारी चर्चा प्रारम्भ हुई। जब मैंने अपना ईश्वर पर ऐसा दृढ विश्वास बतलाया तो सेठ जी आश्चर्य चकित होकर पूछने लगे कि इसका प्रमाण क्या है? इस प्रकार का वार्तालाप मेरे साथ नास्तिक नवयुवको का बराबर होता रहता है, वे कहा करते हैं कि सृष्टि का कर्ता कोई नही—यह दुनिया तो आप ही आप बन गई है—जर्मनी मे एक बार इसी प्रकार की चर्चा हो गई थी तो मैंने माइकिल एजिलो के सुन्दर चित्र की ओर इशारा करके यह कहा था कि यह तैल चित्र भी आप ही आप बन गया है। उस समय वे नवयुवक विस्मित हो उठे थे और कहने लगे—भला यह तैल चित्र आप ही आप कैसे बन सकता है, तब मैंने मुस्करा कर उनसे कहा था कि जब यह तैल चित्र आप ही आप नही बन सकता तो जो दिव्य चित्र आप को आधी रात के समय आकाश का मैं दिखलाता हूँ, जब असख्य तारे और दूध धारा अपनी रमणीय छवि दिखलाते हुए रात्रि का सौन्दर्य बढाते हैं तो वह चित्र आप ही आप कैसे बन सकता है? मैंने सेठ जी को समझाया कि हमे अधिकार है यह कहने का कि हम उसके विषय मे अभी तक कुछ नही जानते किन्तु जिन लोगो ने जाना है, उनसे सीखने का प्रयत्न तो करना चाहिए, मैं अपने ७९ वर्षो के अनुभव से यह कह सकता हूँ कि जब-जब मैंने ईश्वर का दरवाजा खटखटाया है, उसने मुझे कभी निराश नही किया है। सेठ जी ने पूछा कि क्या उसका कोई आकार है? आप तो साकार पुरुष की बातें करते हैं और हम निराकार को समझना चाहते हैं। तब मैंने हँसकर कहा—सेठ जी बच्चे को जब वर्णमाला पढाई जाती है तो उन अक्षरो का फर्जी आकार समझाने के लिए बनाना पडता है और उसे भली प्रकार प्रगट करने के लिए एक सात्विक चित्र घडना पडता है।

इस प्रकार हमारी बडी मजेदार बातें भिन्न-भिन्न विषयो पर हुईं। मैंने जान लिया कि सेठ मोहता जो पुराने दकियानूसी विचारो से निकल चुके हैं और वे सच्ची प्रगतिशीलता का द्वार खट-खटा रहे हैं। सत्य ज्ञान को आगे बढाने के लिए वे सब प्रकार का आर्थिक बलिदान करने को उद्यत हैं और निरन्तर उन लोगो की मदद

करते रहते हैं जो मानव जाति को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाते हैं, अपना कमाया हुआ धन बडी प्रसन्नता से देश मे—प्रगतिशीलता को फैलाने के लिए खर्च करने को उद्यत हैं, परन्तु खेदजनक बात यही है कि ईमानदारी से क्रान्ति चाहने वाले और समाज को उन्नत-पथ पर ले जाने वाले सच्चरित्र व्यक्ति नही मिलते। पैसे की टोह मे घूमने वाले लोग क्रान्ति और प्रगतिशीलता का स्वाग रच कर धनीमानी लोगो को ठगते फिरते हैं। उस विचार-क्रान्ति का असली रूप क्या है और वह किस प्रकार मानव-मस्तिष्क मे जन्म लेती है, अपने दूसरे लेख में हम इस अत्यन्त उपयोगी विषय पर अपनी सम्मति पाठको को बतलायेंगे।

सेठ जी से विदा लेकर मैं उसी सज्जन के साथ मोटर मे अपने स्थान पर लौट आया और मैंने जान लिया कि आज अपने देश के एक सत्पुरुष धनी व्यक्ति से मेरी भेंट हो गई।

सत्यदेव परिव्राजक

(स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक देश के उन विचारशील, वयोवृद्ध सज्जनों में से हैं, जिन्होने धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियो तथा भावनाओं के विरुद्ध आज से लगभग आधी सदी पहले बिगुल बजाया था। आज समाजवादी व्यवस्था के लिए जिन विचारो की चर्चा की जाती है, स्वामी जी उनकी चर्चा अपने व्याख्यानों, लेखो तथा पुस्तको द्वारा कब से कर रहे हैं? अपने देश में ऐसे लोग बहुत कम हैं जिन्होने विश्व के परिभ्रमण से आप के समान ज्ञान व अनुभव प्राप्त किया है। अपने क्रान्तिकारी और बुद्धिवादी विचारो का प्रचार करने के लिए आपने ज्वालापुर में "सत्य ज्ञान निकेतन" आश्रम की स्थापना की है और आंखो की ज्योति को खोकर भी अन्तर्ज्योति के बल पर उपयोगी साहित्य का निर्माण कर अपने क्रान्तिकारी विचार निरन्तर जनता के सम्मुख रखते रहते हैं।)

११

अनिवार्य आवश्यकता

जीवन एक शाश्वत गति है, वह कभी स्थिर नही होता। निर्माण के लिए यह विनाश करता है। आज जो कुछ निर्माण हो रहा है वह शीघ्र ही पुनर्निर्माण के गर्भ मे चला जाता है। सच यह है कि वास्तव मे न तो वह नष्ट होता है और न पैदा होता है। ये दोनो शब्द आपस मे जो सम्बन्ध रखते हैं उसी की दृष्टि से इन दोनो शब्दो का प्रयोग किया जाता है। पुरानी वस्तु कभी भी पूरी तरह समाप्त या नष्ट नही होती। वह नष्ट इसलिए नही होती कि उसके तत्व से ही नूतन का निर्माण होता है। वह उत्पन्न भी नही होता क्योकि नूतन पुरातन का ही फल है और उन कारणो का परिणाम है जो पहले से ही विद्यमान थे। वह केवल या उसका निकट भविष्य मे प्रकट होने वाला मूर्त्तरूप है।

मौलिक बीज का बाहरी विकास

मानव की शान्ति का प्रयोजन परिवर्तन-शून्यता अथवा गति-शून्यता मे नही है। ऐसी शान्ति असभव है। सतत् परिवर्तन शक्ति जीवन का भाग है और उसे उसके साथ अवश्य विकसित होना चाहिए। इस सत्य को स्वीकार न करना ही सघर्ष और कष्ट-क्लेश का मूल कारण है। अविवेकी पुरुष उसी से चिपक जाते हैं जिसे वे अपरिर्वतित समझते हैं और इसीलिए वे प्राचीनता को ससम्मान तिलाजलि देने से इनकार करते हैं तथा अवश्य-म्भावी नूतन का स्वागत करने के लिए हाथ नही बढाते हैं। इस प्रकार के लोग सदा सघर्पों से घिरे रहते हैं। उनके लिए जीवन एक कलह है।

परन्तु ऐसे व्यक्ति विरले ही कही मिलते हैं, जो इस विश्वास के साथ शान्त और प्रसन्न रहते हैं कि जीवन का निर्दोष स्रोत निरन्तर आगे की ओर बहता रहता है और वे अपने को उसकी निर्दोप-गति मे तन्मय कर देते हैं, अथवा उसकी धाराओ के साथ तैरने का सुप्त प्रयास करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रारव्ध की तीव्र धारा के साथ वहने मे भयभीत नही होते मानो कि उनको अपना कुछ नष्ट होने का भय नही है तथा वे सर्वथा सुरक्षित हैं। ऐसो मे से एक श्री रामगोपाल जी मोहता प्रतीत होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि मोहता जी अपने चारो ओर सहयोगात्मक अभिव्यक्ति की भावना से देखते हैं। केवल वही व्यक्ति ऐसा कर सकता है जिसमे समत्वयोग की साधना से प्राप्त की गई शान्ति हो। उन्होंने जीवन के लिए ऐसा व्यवहार खोज निकाला है जो प्राचीन के प्रभाव से भयभीत नही है और न नवीन के आगमन से आशकित है। सामान्य विशाल वास्तविकता मे दोनो का समन्वय होता है। भारत को आज ऐसे व्यक्तियो की पहले की अपेक्षा कही अधिक आवश्यकता है। भारत आज जैसे पूरी तरह परिवर्तन के भँवर मे फँसा हुआ है। ऐसे पहले कभी नही फँसा था। उसका शरीर, मन और आत्मा सभी कुछ पुर्ननिर्माण के भीषण कष्ट को सहन कर रहे हैं। विचार और कार्य के सम्बन्ध मे इस प्रकार पैदा होने वाले सामान्य विभ्रम को पूरी तरह दूर नही किया जा सकता लेकिन मोहता जी सरीखी आत्माएँ नित नूतन सहानुभूति के साथ केवल व्यक्तियो को ही नही अपितु उन सभी एक दूसरे से विभिन्न विचारो और सिद्धान्तो को भी विनाश से बचा सकते हैं, जो कि भारत की महानता को भी खतरा पैदा कर रहे हैं।

भारत का इतिहास दुर्भाग्य पूर्ण आघातो से भरा पडा है। यहाँ सुधार, प्रगति, स्वतन्त्रता और धार्मिक तथा आध्यात्मिक आन्दोलनो का बार-बार दुरुपयोग किया गया है और निहित स्वार्थ रखने वाले राजाओ, पुरोहितों तथा पचो ने उनको बुरी तरह कुचला है। इस दुखी देश के लाखो दलित लोगो मे जिन राष्ट्रीय सुधारो से सुख-सुविधा की आशा जागृत हुई उनसे उन्हें निरन्तर निराशा प्राप्त हुई है। हम यह नही कह सकते कि वर्तमान सकट का परिणाम भी ऐसा ही न होगा। भारत जाति प्रथा, पुरोहित पूजा की रूढियो और अधविश्वासो की बेडियो को तोडना चाहता है और विषमता के घावो को भरकर वह अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे स्वतन्त्रता, समता-समानता और बन्धुभावना से प्रकाश मे अग्रसर होना चाहता है। उसके द्वारा उसको सर्वोदय का सन्देश मुक्त-जीवन के उद्देश्य से दिया था। परन्तु उसकी उन शक्तियो ने हत्या कर डाली जो सदियो से राष्ट्र की स्व-तन्त्रता की भावना को निराशा मे परिणत करती आई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के भाग्य को अब उसके जिन शिष्यो द्वारा सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है उनका अपने गुरु की शिक्षाओ मे विश्वास कुछ कम हो गया है। नव-निर्माण के कार्यों मे परस्पर विरोधी योजनाएँ और सिद्धान्त एक दूसरे से होड करते दीख पडते हैं। उनसे लोगो के जीवन मे नैतिक विप्लव पैदा होता है, क्योकि उनकी असहाय अवस्था मे उसको निरतर एक के बाद दूसरे परीक्षणो और साहसिक कार्यों मे लगाया जाता है और शाश्वत मानव मूल्याकन करने मे प्राय भूल कर दी जाती है। इस प्रकार स्त्री और पुरुष दलगत राजनीति की शतरज के प्राणशून्य मुहरे बना दिये

गये हैं। उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ भौतिक उत्थान को येन-केन-प्रकारेण अच्छे या बुरे साधनो से प्राप्त करने के लिए अतृप्त तृष्णा मे वदल दी गई हैं।

इस देश के पुराने दुर्गुण और कमजोरियाँ जो गुलामी की लम्बी अवधि मे सुसुप्त सी हो गई थी वे फिर अवसर पाकर जागृत हो गई हैं और सच्ची भक्ति प्राप्त कराने वाली शक्तियो पर हावी हो रही हैं। देश की एकता और सघ-शक्ति जिसको धैर्यपूर्वक पालपोसकर स्वस्थ और शक्तिशाली भारत को ऐसी भयानक स्थिति मे केवल ऐसी योजना और विचार धारा ही उसके अपने जीवन यात्रा के सकटाकीर्ण मार्ग मे अग्रसर कर सकती है, जो क्रान्तिपूर्ण होते हुए भी शान्त हो, राष्ट्रीय होते हुए भी सार्वभौम हो और व्यावहारिक दृष्टि से भौतिक तथा उसका मूलभूत आधार नैतिक हो। उसको ऐसे नेताओ और अनुयायियो, गुरुओ और शिष्यो, तथा शासको और राजनीतिज्ञो की आवश्यकता है जो समत्व और सर्वोदय की भावना से प्रेरित होकर कार्य करें।

साहस हो या न हो परन्तु हमको सर्वोदय व समत्व की भावना की सुरक्षा के लिए तथा जीवन का उत्थान करने वाले नैतिक अभ्युदय के लिए दृढतापूर्वक कुछ न कुछ अवश्य करना ही होगा। भारत स्वय एक ससार है। एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण ही उसके लोगो को सगठित कर सकता है और उसकी समस्याओ को हल कर सकता है। परन्तु मुझे ऐसी आशा करने का साहस नही होता है कि मनुष्य को गुलाम वना देने वाले पूँजी और मशीन रूपी राक्षसो के भयानक आक्रमणो से इस भावना की रक्षा हो सकेगी। राष्ट्रीय जीवन के समस्त प्रतिक्रियावादी और भ्रष्टाचारी तत्व नवोदित स्वातन्त्र्य रूप को ढकने की कोशिश कर रहे हैं। किसी भी प्रकार की सकीर्णता देश की एकता और स्वतन्त्रता के नाश का कारण बन सकती है।

सर्वोदय की विचार धारा को लोकप्रिय बनाने और उसको देश के राष्ट्रीय जीवन मे स्फूर्ति का सचार करने वाली अदम्य शक्ति बनाने के लिए एक राष्ट्रीय आदोलन इस समय की हमारी सवसे वडी आवश्यकता है।

सेठ जी सरीखे व्यक्ति यदि अपने विचार और साधनो को इस महान कार्य मे लगा सकें तो वह भारत के निर्माण के लिए एक महान्, शक्तिशाली और महत्वपूर्ण अद्भुत देन होगी। हमको देश के नैतिक पुर्ननिर्माण के लिए भी कुछ पचवर्षीय योजनाओ की आवश्यकता है।

स्वामी जौन धर्मतीर्थ

(स्वतन्त्र प्रगतिशील विचारक, सिद्धहस्त लेखक, धार्मिक एव सामाजिक क्रान्ति के पोषक और क्राति-कारी विचारों से पूर्ण अनेक ग्रन्थो के प्रभावशाली निर्माता।)

१२

मोहता जी का सक्रिय देश-प्रेम

देश-विभाजन के समय १९४७ मे, बल्कि उससे एक डेढ वर्ष पहले ही, पजाब और उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश मे, साम्प्रदायिक हत्याकाड, बलात्कार और अग्निकाड ने जो भयकर रूप धारण किया, वह भारत के किसी अन्य भाग मे, यहाँ तक कि पूर्वी बगाल मे भी, जहाँ से लाखो हिन्दू अपनी जन्म भूमि और पूर्वजो की एकत्रित की हुई असीम सम्पत्ति को छोड कर खाली हाथ भाग आए, आशिक रूप मे भी दृष्टिगोचर नही हुआ।

विभाजन से एक वर्ष पूर्व लगभग एक लाख सिख रावलपिण्डी आदि उत्तर पश्चिमी पजाब तथा सीमान्त प्रदेश के नगरो और ग्रामो को छोड कर भाग आए थे और वे दक्षिण-पूर्वी पजाब तथा पटियाला, नाभा, फरीदकोट, नालागढ आदि पजाब की रियासतो मे तथा भारत के अन्य भागो मे जा बसे थे। ये लोग अपनी सम्पत्ति साथ नही ला सके थे। कुछ की तो स्त्रियाँ भी वही छीन ली गई थी। शासक अग्रेज थे। उनकी सहानुभूति मुस्लिम लीग के साथ थी। उन्होने हवाई जहाजो से वहाँ के दगे के चित्र लिए, भागते हुए सिखो के और उनका पीछा करते हुए गुण्डो के। इनमे से एक चित्र लाहौर के एग्लो-इण्डियन दैनिक "सिविल एण्ड मिलिटरी गजट" (Civil & Military Gazatte) मे छपा भी। परन्तु जिन वायुयानो द्वारा केवल एक अग्रेजी महिला उठा ले जाने पर बमो द्वारा पठानो के गाँव के गाँव स्वाहा कर दिए गये थे उनसे हजारो सिख स्त्रियो के अपहरण के समय केवल चित्र उतारने का ही काम लिया गया। उस समय पजाब के एक योग्य नवयुवक श्री प्रबोध चन्द ने (Rape of Rawalpindi) रावलपिंडी का बलात्कार नामक एक पुस्तक भी लिखी थी जिसमे इन अत्याचारो के वास्तविक छायाचित्र भी प्रकाशित किए गए थे। वह पुस्तक सरकार ने जब्त कर ली थी।

अस्तु। यह तो केवल इतना दिखाने के लिए लिखा गया कि हत्या और बलात्कार विभाजन के समय की तात्कालिक घटनाएँ नही थी। किन्तु यह एक पूर्व निश्चित, सुसगठित और सुनिर्दिष्ट योजना थी जो दो वर्ष पहले कुछ विदेशी शासको और स्थानिक लीगियो के बीच गठ चुकी थी। यह सत्य है कि लार्ड माउट बैटन आदि का इसमे हाथ नही था, परन्तु लीगी नेता ऊपर से नीचे तक इससे पूर्वपरिचित थे।

हम लोग उस समय लाहौर मे ही रहते थे। उत्तर-पश्चिम भारत से पीडित शरणार्थियो की तरगो की तरगें अत्यन्त दयनीय दशा मे लाहौर मे आ रही थी और उनके लिए स्थान-स्थान पर कैम्प खोले जा रहे थे। उस समय किसी को यह स्वप्न मे भी ध्यान नही था कि एक वर्ष के अनन्तर लाहौर-निवासियो की भी वही दशा होगी और हम लोगो को इससे भी हीन दशा मे भागना पडेगा।

लाहौर मे जब इस काड ने अपना पूर्ण रूप धारण किया तब इसका चित्र निम्न प्रकार था —

पूर्ण नगर पर कर्फ्यू लगा दिया गया था जो ६, ७ दिन मे एक बार राशन इकट्ठा करने के लिए एक-दो घटे के लिए हटाया जाता था। यह कर्फ्यू कोई साल-भर लगा भी रहा। सडकें दिन-रात खाली पडी रहती थी। रात को कुत्तो के रोने की आवाज ही कान मे पडती थी। रात के सन्नाटे मे यह भय, ताप और पीडा से भरा क्रन्दन बहुत कटु और अपशकुनपूर्ण प्रतीत होता था। कभी-कभी किसी फौज या पुलिस की कार सडक पर से निकल जाती थी। अन्य कोई शब्द कदाचित् ही सुनाई देता था। दूसरे शब्द थे कही से क्रन्दन और हाहाकार, कही से गोली चलने की आवाज—कही गुण्डो का हल्ला—परन्तु ये शब्द पिछले दिनो मे ही बढे।

कर्फ्यू पास (बाहर निकलने के आज्ञा-पत्र) प्राय लीगियो को ही मिले हुए थे। अतएव जहाँ एक ओर लीग से इतर मिनिस्टर भी रात को बाहर नही निकल सकते थे वहाँ कई गुण्डो के झुण्ड के झुण्ड रातो को

स्वतन्त्र और अनियन्त्रित घूमते फिरते थे । उनके पास ताश के पत्तो की तरह कर्फ्यू पासो के थब्बे के थब्बे होते थे । परन्तु उनकी कोई पडताल नही होती थी ।

उन्हें किसी प्रकार की रोक टोक नही थी । रात्रि को हिन्दुओ और सिक्खो के घरो मे आग लगाने की ड्यूटी इन्ही के सुपुर्द थी ।

इस समय टेलीफोन के दफ्तर मे, बिजली घर मे, म्यूनिसिपैलिटी मे, पुलिस और फौज मे प्राय: मुसलमान भाई ही कार्य कर रहे थे । सिख तो बहुत से मार दिए गए थे और शेष भाग गए थे । हिन्दू कही-कही किसी मुसलमान मित्र की कृपा से, कही रुपया खिला कर, कही भाग्य से ही थोडे बहुत बचे हुए थे ।

अग्रेज अधिकारियो और लीगियो का यह निश्चय था कि प्रत्येक हिन्दू और सिख को भयभीत करके पाकिस्तान से निकाल दिया जाए और जो न निकले उसे समाप्त कर दिया जाए ।

आक्रमण के पूर्वक्रम की रूपरेखा स्पष्ट थी । जिस मुहल्ले मे रात्रि को आग लगानी और लूटमार करनी होती थी उसके टेलीफोन दिन मे ही "बिगड" जाते थे, फिर पानी के नलके बन्द हो जाते थे, फिर बिजली कट जाती थी ।

जब जब हमारे मुहल्ले पर हल्ला बोला गया उसी दिन उससे पहले मेरे टेलीफोन की करण्ट बन्द हुई, १५ मिनट बाद म्यूनिसिपल नलों से पानी आना बन्द हुआ, फिर पखे और बत्तियो की करंट भी कट गई । टेलीफोन के अभाव मे बाहर के ससार से सम्पर्क कट जाता था । पानी के अभाव मे आग नही बुझाई जा सकती थी । बिजली के अभाव मे मोटरो वाले ट्यूबवेलो से भी पानी नही ले सकते थे । तब रात को जो पुलिस और फौज की लारियाँ जनता की "रक्षा" के लिए छोडी हुई समझी जाती थी उन्हें सडक पर खडा करके उनके ही टैंको मे से आग लगाने के लिए पिचकारियो से पेट्रोल निकाला जाता था । यह पेट्रोल उन पास होल्डरों के झुण्डो को मिलता था जो कर्फ्यू पास लिए शहर मे इसी काम के लिये घूमते थे । इस पेट्रोल से ही घरों को आग लगाई जाती थी । कोई बाहर निकलता उस पर पुलिस या फौज गोली चलाती थी । सिख तो सडको पर चूहो की तरह मरे पडे होते थे । उनके लिए कोई न्याय और रक्षा का उपाय नही था । कई लोग जो ऊपर बरामदे में निकल कर नीचे देखने लगे कि उनके घर को आग लगी है या किसी दूसरे के घर को, वे अपने मकानों पर खड़े हुए ही "रक्षक" पुलिस की गोली का शिकार हो गए । इस प्रकार की कायरतापूर्ण हत्याओ मे लाहौर के मजिस्ट्रेटो तक ने भाग लिया ।

मैं गाधी स्क्वेयर नामक हिन्दुओ के समृद्धिशाली मुहल्ले में रहता था । शहर का यह भाग कई कारणो से अन्य स्थानो की अपेक्षा अधिक सुरक्षित था । चारो ओर लोहे के बडे दृढ द्वार थे जो बन्द रहते थे । पाँच-पाँच सौ गैलन के पाँच फौजी केन्वेस टैंक हर समय पानी से भरे रहते थे । मुहल्ले के निवासी सब के सब हिन्दू या सिख ही थे । उन्होंने एक आग बुझाने का १२ हॉर्स पावर का इजन भी खरीद लिया था और अपना फायर ब्रिगेड स्वय तैयार कर लिया था । मेरे तथा कुछ अन्य मित्रो के घरो मे म्युनिसिपल नलको के अतिरिक्त मोटर ट्यूब वेल भी लगे थे । हम सब ने उनमे दूसरी ट्यूब (नाली) उतरवाकर उन्हे हैंड पम्पो मे भी परिणत करा लिया था जिससे बिजली की करण्ट कट जाने पर हाथ से पानी निकाला जा सके । आत्म-रक्षा के लिए सब मुहल्लेदारो ने अपना-अपना काम बाँटा हुआ था ।

इस मुहल्ले के अधिकांश घर नगर के अन्य कम सुरक्षित मुहल्लो से आने वाले जख्मियों के लिए नि.शुल्क आतुरालयो मे आशिक रूप मे परिणत हो गए थे । इसे अधिक सुरक्षित स्थान समझा जाता था ।

शहर के भीतर एक स्थान मुहल्ला सरीन के नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ बहुत से हिन्दू रहते थे । परन्तु

इसके चारों ओर मुस्लिम मुहल्ले थे। यहाँ बहुत घर जलाए गए और बहुत हिन्दू मारे गए। जो बचे वे खाली हाथ और कई तो एक आध कपडा ही तन पर लेकर निकले।

इन दिनो जहाँ निहत्थे हिन्दुओ को कायरतापूर्ण राक्षसी मार काट का शिकार होना पड रहा था वहा अद्भुत वीरता और निस्वार्थता की कई सजीव घटनाएँ भी देखने मे आईं।

एक दिन इसी मुहल्ला सरीन से ११ ज़ख्मी गाधी स्क्वेयर मे लाए गए। इनमे एक दशवर्षीय बालक भी था जिसके हाथो, टागो और शरीर पर कई व्रण थे। ७ छर्रे तो मेरे सामने हाथो मे से सर्जन ने निकाले। जब ज़ख्मो पर औषध लगा कर पट्टी बाँध दी गई तो बालक से पूछा गया कि वह कहाँ जाना चाहता है। उसने तुरन्त उत्तर दिया "मुझे ठीक करके वापिस मुहल्ला सरीन मे भेज दीजिए। मैं अपने शेष भाइयो की रक्षा के लिए पुन वही जाकर लडना चाहता हूँ।"

इसी समूह मे एक अन्य युवक भी था जिसने अपना नाम "डी० एन०" बताया। इसकी जाँघ मे एक बडा व्रण था, जहाँ से स्वय ही चाकू से चीर कर उसने गोली निकाल ली थी। इसकी कथा अद्भुत है और इसी की जीवन रक्षा के सम्बन्ध मे मैं सेठ रामगोपाल जी मोहता द्वारा दी गई निर्भीक और उदार सहायता का वर्णन करना चाहता हूँ।

मैं सर्जन के साथ जब इस युवक की शय्या पर पहुँचा तो यह एक हिन्दू लक्षाधीश व्यापारी के घर मे रक्त से लथपथ पडा था और बहुत क्षीण हो गया था। सर्जन ने वेदनाशामक इजेक्शन देकर अस्थायी उपचार कर दिया और दूसरे दिन तक विश्राम देने के लिए कहा। कुछ शक्ति आई तो उसने अपनी कथा सुनाई।

वह मुहल्ला सरीन मे कुछ मित्रो की सहायता के लिए गया था जब कि मकान को एक ओर से आग लगा दी गई। कई घण्टे तक वह लोग उस मकान से बाहर न निकले—जो एक दो निकले उनकी हत्या कर दी गई। एक पुलिस का सिपाही ब्रेनगन अथवा स्टेनगन लिए खडा था। जो भी बाहर निकलता था उसे ही गोली मार देता था। "डी० एन०" अपने मकान की छत पर से ऊपर ही एक दूसरे मकान की छत पर कूदा और इस दूसरे मकान मे जाकर इसकी एक खिडकी मे से उस सिपाही के कधो पर कूद पडा। सिपाही बुरी तरह नीचे गिरा। उसके दो नही तो एक कधा तो जरूर टूट गया होगा। बन्दूक उसके हाथ से गिर पडी। "डी० एन०" ने बन्दूक उठाकर पहली गोली से तो उस सिपाही को ही मार दिया। उसकी गोलियो की पेटी भी इसने निकाल ली। उसका कहना था कि जीवित बचकर भागने के लिए उसे २० से ऊपर सिपाहियो और गुण्डो की हत्या करनी पडी। फिर बन्दूक फेंक कर और एक गोली जो किसी अन्य व्यक्ति की बन्दूक या पिस्तौल से उसकी जाँघ मे लगी थी उसे स्वय निकालकर वह मुहल्ला सरीन की गलियो से निकल कर बाहर सडक पर पहुँच गया जहाँ सौभाग्य से फौज के डोगरे सिपाहियो की एक टुकडी ने उसे एक कार मे बिठा कर हिन्दू मुहल्ले मे पहुँचा दिया। उसने यह भी कहा कि पुलिस उसकी खोज अवश्य कर रही होगी अतएव उसे किसी सुरक्षित स्थान मे पहुँचा दिया जाए।

लाहौर के एक बडे व्यापारी के एक खाली बगले मे शहर से बाहर उसे अविलब पहुँचा दिया गया। उसकी वीरता की चर्चा जो हिन्दू लाहौर मे बचे हुए थे उनके कानो तक पहुँची तो उसकी सहायता के लिए फल, दूध, अन्न, रुपया चारो ओर से बरसने लगा। यहाँ तक कि एक सज्जन ने तो कही से बम्बई के हापुस आम भी भेज दिए।

जिस बगले मे उसे ले जाया गया वहाँ सर्जन ने आकर पुन उसकी मरहम पट्टी की। परन्तु वहाँ भी रक्त इतना बह गया कि वहाँ का मुस्लिम माली लाल पानी बाहर बहता देख कर अन्दर आ गया। उसे आराम से लेटे हुए देख कर वह बोला, "बाबू जी, आप की तो बहुत खातिर हो रही है। हमारे मुसलमान भाई तो

हिन्दुओ द्वारा फेंके गए वमो से जख्मी होकर मस्जिदो मे पडे सड रहे हैं। उनकी तो ऐसी खातिर कोई नही करता।"

मुझे कर्फ्यू पास मिला हुआ था। कई मुस्लिम उच्चाधिकारी मेरे रोगी थे। मुझे प्रतिदिन मुस्लिम मुहल्लो मे जाना पडता था। तो भी आत्मरक्षा के लिए मैंने खाकी फौजी कपड़े पहनने आरम्भ कर दिए थे और अग्रेजी खाकी टोप ही मैं हर समय लगाए रखता था। इससे गुण्डो का ध्यान मेरी ओर कम जाता था और मैं खासा वेरोक टोक घूमता रहता था। जव उस लडके का भोजन लेकर गया तो उसने मुझ से कहा कि माली ऐसी वातें करके गया है और उसके अनन्तर कुछ लोगो को साथ लाकर दिखा भी गया कि हिन्दू ज़ख्मी की कैसी खातिर होती है। पुलिस पहले ही खोज मे है वहाँ से किसी दूसरी जगह चला जाए तो अच्छा हो।

इवर वगले के मालिक के किसी ईर्ष्यालु और निकट सम्वन्धी ने पाकिस्तान सरकार का अधिक शुभ-चिंतक और प्रिय वनने के लिए पुलिस को यह सूचना दे दी कि उनके वगले में कोई वडा अपराधी रखा हुआ है। अस्तु यह तो हिन्दुओ का पुराना रोग है।

वगले के मालिक ने पुलिस को हजारो रुपए अपनी रक्षा के लिए रिश्वत मे दिए हुए थे। किसी मित्र ने वहाँ से टेलीफोन कर दिया कि उनके वगले पर पुलिस आएगी। वह भागे हुए मेरे पास आए और कहने लगे "तुम ने तो मुझे वहुत वुरी तरह फँसा दिया।" मैंने उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि 'पुलिस आए तो आप कह दें कि यह वगला ज़ख्मियो की सेवा के लिए आप से गाधी स्क्वेयर वालो ने ले लिया है। वे ही सव प्रश्नो के उत्तर दे सकेंगे।"

जव तक पुलिस उन से मिली तव तक "डी० एन०" को वहाँ से निकाल कर एक अन्य व्यापारी के निजी निवासस्थान मे पहुँचा दिया गया जो पुलिस को रिश्वत देकर प्रसन्न रखने के लिए लाहौर मे प्रसिद्ध था। इस पर कभी भी किसी को सदेह नही हो सकता था और पहले वगले को गाधी स्क्वेयर के सभी जख्मी ले जाकर भर दिया गया। उपचार आहार का सव प्रवन्ध वही कर दिया गया। पुलिस जव तक वहाँ पहुँची तो वहाँ ३५ से ऊपर ज़ख्मी पडे थे। वह सव की अच्छी प्रकार जाँच-पडताल करके चली गई। उन्होने यही समझा कि या तो वह व्यक्ति वहाँ आया ही नही या उन जख्मियो मे मिलकर निकल गया जो विना अच्छे हुए ही अपने-अपने घरो को अथवा लाहौर से वाहर जा रहे थे।

यह इस युवक का अन्तिम स्थान था। यहाँ पर ११, १२ दिन उसका उपचार हुआ। उसका व्रण अच्छा हुआ और उसको लाहौर से वाहर निकालने की समस्या उपस्थित हुई। उसे कहाँ किस के पास पहुँचाया जाए ?

मैं ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के समर्थ व्यक्तियो के नाम एक-एक करके सोचे कि किस से सहायता माँगी जाए। मेरा ध्यान एक ही व्यक्ति—वीकानेर के श्री रामगोपाल जी मोहता की ओर गया। इसी से अनुमान हो सकता है कि मेरे हृदय मे उनके प्रति क्या भाव हैं। मैं एक-दो वार पहले भी वीकानेर मे उनके दर्शन कर चुका था। उनके सौजन्य, उदारता, आध्यात्मिक दृष्टिकोण और राष्ट्र-प्रेम से मैं परिचित हो चुका था। मुझे निश्चय या कि वहाँ से निराशा न होगी। एक वीकानेर-निवासी लाहौर छोड कर घर भाग रहा था। उसने वीकानेर जाकर सेठ जी से सम्पूर्ण कथा कही। मुझे वीकानेर से तार आ गया —

"Your fees acceptable, come with my man by first plane." (आप की फीस स्वीकार है। मेरे आदमी के साथ पहले वायुयान से आ जाइए)।

अर्थ स्पष्ट था। मैं वीकानेर, जोधपुर अपने रोगी देखने वायुयान द्वारा पहले भी गया था। इस तार पर किसी को सदेह नही हो सकता था। साथ मे दूसरे व्यक्ति को अपने आदमी के रूप मे लाने को लिखकर वडी

ही बुद्धिमत्ता से सपूर्ण परिस्थिति स्पष्ट कर दी गई थी। उनकी उदारता और बुद्धिमत्ता का यह एक सजीव उदाहरण था। मैं ने अपने और जगन्नाथ के मिथ्या नाम से दो सीटें बुक करली और लगड़ाते हुए "जगन्नाथ" को कार मे बिठाकर हवाई अड्डे की ओर चला। सदेह न हो इसलिए अपना गाल्फ बैग (Golf Bag) साथ रखा। रास्ते में लाहौर का प्रसिद्ध अग्रेज दर्जी हैम्पटन मिला। वह और एक पुलिस का एग्लो-इण्डियन अफसर प्रात काल की घोडे की सवारी के लिए जा रहे थे। उसने यह समझ कर कि जब शहर जल रहा है मैं गॉल्फ खेलने जा रहा हूँ, ताना मार कर कहा "Nero going to fiddle while Rome is burning" मैंने Good morning कही और गाडी चला दी। हवाई अड्डे पर पहुँचे तो दिल धक-धक कर रहा था। नकली जगन्नाथ की लगडी चाल बहुत खतरनाक चीज़ थी। उसकी जांघ का व्रण पूरा नही भरा था। चलने मे जो कष्ट उसे होता था वह उसके चेहरे पर आ जाता था और लोगो का ध्यान उस पर जाता था।

हवाई अड्डे पर उसका वज़न कराया और फिर उसे यात्रियो के बैठने के कमरे मे एक कुर्सी पर बिठा दिया। एक दो पुलिस के सिपाही दो-चार बार उस कमरे के आगे से निकले। परन्तु कोई सदेह किसी को नही हुआ। आवाज़ पडी कि यात्री वायुयान मे सवार हो जाएँ। ईश्वर का नाम लेते हुए हवाई जहाज़ तक उसे ले जाकर उसकी सीढ़ी चढ़ा कर अन्दर उसे कुर्सी पर बिठाया ही था कि पुन स्टीवर्ड ने आवाज़ दी कि सब यात्री हवाई जहाज़ से उतर कर वापिस लाउज मे जा बैठें। यह आज्ञा सुनते ही हमारे सांस तो अन्दर के अन्दर और बाहर के बाहर रह गए। तो भी जितनी स्वाभाविकता सभव थी उतनी ही स्वाभाविकता के साथ पुन हवाई जहाज़ से उतर कर अड्डे मे जा बैठे। वहाँ जा कर पता चला कि जहाज़ मे ही कोई खराबी है जिसे ठीक करने मे एक घण्टा लगेगा। इस बीच मे पुलिस की एक टुकडी फिर आई। उसे देखते ही "डी० एन०" को गुसलखाने मे भेज दिया गया। निश्चय ही वह पुलिस किसी दूसरे कार्य के लिए आई थी और अपनी जाँच-पडताल करके आध घण्टे मे वापिस चली गई। उसके जाने के पश्चात् फिर वह नवयुवक बाहर आ बैठा। १॥ घण्टे के पश्चात् हवाई जहाज़ ठीक हो गया है ऐसा घोषित किया गया। पुन हम लोग जहाज़ मे गए। जब तक वह जहाज़ आकाश मे नही चढ़ गया हमारी जान सूखती ही रही। परन्तु एक बार जहाज़ उड गया तो निश्चय ही था कि उस युवक की प्राण-रक्षा हो गई।

वायुयान बीकानेर उतरा। वहाँ पर सेठ रामगोपाल जी मोहता का आदमी स्वागत के लिए उपस्थित था। तीन-चार घण्टे बाद यही विमान जोधपुर होकर वापिस आता था—इसी से मुझे वापिस लाहौर जाना था। मैंने निश्चय किया कि मैं बीकानेर नगर तक हो आऊँ और सेठ जी के दर्शन करके उन्हे इस उदार उपकार के लिए धन्यवाद भी दे आऊँ। अतएव मैं साथ ही उनके बगले पर चला गया। श्री रामगोपाल जी ने "डी० एन०" के निवास आदि का उत्तम प्रबन्ध किया हुआ था। उसे तो उन्होंने सभाल ही लिया परन्तु मुझे बिना कुछ उपकार-कर्त्ता की भावना प्रकट किए सरलता से कहा कि इस युवक की चिंता तो अब छोड दो परन्तु अन्य कोई कर्त्तव्य हमारे योग्य हो वह हमे निस्सकोच होकर बताओ। मैं यह कह सकता हूँ कि जो सतोष इनसे बातचीत करके उस दिन हुआ उसका स्मरण आज तक शेष है। वहाँ वह अन्य अनेक शरणार्थियो की सेवा उदार हृदय से कर रहे थे। अनेक प्रकार के दान, निराश्रय स्त्री-पुरुषो के लिए विद्या और अर्थदायी कलाओ का शिक्षण, पीडितो को द्रव्य, भोजन, वस्त्र द्वारा सहायता देना, देश तथा राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा आध्यात्मिक समस्याओ का उच्चस्तरीय चिंतन इत्यादि अनेक शुभकार्यों मे इनकी लगन और क्रिया शक्ति देखकर मुझे बहुत उत्साह और आनन्द प्राप्त हुआ। हृदय से इन्हें आशीर्वाद और धन्यवाद देता हुआ मैं हवाई अड्डे को लौटा। सायकाल वही वायुयान मुझे वापिस लाहौर ले आया।

कई मास पश्चात् जब वह युवक मुझे मिला तो ज्ञात हुआ कि उसे सेठ जी ने बीकानेर मे बहुत देर तक आतिथ्य प्रदान किया और आतिथ्य भी राजकीय स्तर पर। वह उनके अनुरूप ही था।

शिव शर्मा

(वैद्य-रत्न, आयुर्वेदाचार्य पंडित शिव शर्मा जी देशव्यापी ख्याति-प्राप्त वैद्यों मे अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र को पश्चिमी चिकित्सा शास्त्र की तुलना मे आपने विशेष गौरव प्राप्त करने का निरन्तर सफल प्रयत्न किया है। अनेक बार आपने अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का अध्यक्ष पद सुशोभित किया है। आप सुयोग्य लेखक, प्रभावशाली वक्ता और स्वतन्त्र विचारक हैं।)

•

१३

तत्त्वदर्शी मोहता जी

श्री रामगोपाल जी मोहता के निकट एक वर्ष तक रहने का मुझे अवसर मिला। मैंने उनके सत्सग मे भाग लिया, सगीत मे योग दिया, साथ घूमा, पढने-लिखने की उनकी प्रवृत्तियो मे सहयोग दिया और उनके दान का लेखा-जोखा भी कुछ रखा तथा उनके स्वभाव का भी कुछ हिसाव रखा। बीकानेर से अलग होने के बाद भी जब कभी जाता हूँ, उनसे मिलता हूँ, उनके यहाँ ठहर भी जाता हूँ, नही तो एक आध बार भोजन मे तो सम्मिलित हो ही जाता हूँ।

श्री मोहता जी रूखे सूखे, कम बोलने वाले और अन्यमनस्क से लगते हैं, पर इस चुप्पी के पीछे मैंने विचारशीलता, उदारता और सहृदयता का अपार समुद्र पाया। उनकी श्रद्धा गीता के तत्त्वज्ञान मे और उनकी सहायता की वृत्ति पद-दलित, उपेक्षित एव शोषित वर्गों की सेवा की रही है तथा उनका जीवन निरा सार्वजनिक जीवन रहा है। "सात्विक जीवन" के वे उपासक रहे हैं, पर उनकी इस उपासना का आधार गीता ही के उपदेश वाक्य हैं। मोक्ष देने वाली "दैवी सम्पद्" के लिये वे प्रयत्नशील रहे हैं, पर उसका आधार भी गीता का तत्त्व ज्ञान ही रहा है। उनकी पुस्तको और रचनाओ मे गीता की अनासक्ति और कर्म-योग की उपासना की छाप रहती है। कहने को वे लेखक कहे जा सकते हैं, परन्तु लेखक से अधिक वे विचारक हैं, विचारक से अधिक उपासक और उपासक से अधिक तत्त्व ज्ञान की खोज करने वाले।

मोहता जी का सात्विक जीवन, सत्सग प्रेम और दान वृत्ति उनके पास कही साधुओ को खीच लाती थी। उनमे बहुत से नकली साधु भी होते थे जिनकी वे सहायता नही कर पाते थे। एक ऐसे साधु अपनी माँग को पूरा होते न देखकर नाराज होकर चले गए। जाते समय बोले, "अरे वाहरे मोथा" मोथा शब्द मूर्ख के लिए काम मे लाया जाता है। मोहता जी ने कहा "आप की दृष्टि मे "मोथा" होने से मुझे सतोष है।"

मोहता जी मोहतो के चौक मे अपनी हवेली मे रहते थे पर प्रात. काल रत्न विहारी जी के मन्दिर के पास वाली कोठी तक पैदल-पैदल जाने की वान डालने लगे। कोठी काफी दूर है। जो लोग इन्हे पैदल जाते देखते थे वे कभी हँसते थे तो कभी मुँह पर यहाँ तक कह देते थे कि मोहतों के घर मे भूख आ गई है क्या ? वे

हँस देते, पर पैदल चलने की आदन उन्होने नही छोडी। वे उन सेठो की हवा खोरी को नापसन्द करते थे जो खुली घोडा-गाडियो मे बैठकर घूम आते। उनका कहना था कि यह तो घोडो के लिये हवा खोरी है।

विधवाओ को काम दिलाने और विवाह की इच्छा रखने वाली विधवाओ के विवाह कार्य मे वे हमेशा मुक्तहस्त सहायता करते रहे हैं, हरिजनो की शिक्षा और सेवा मे उनका सदा हाथ खुला रहा है एव देश मे जब कभी आपत्ति आई है उनकी थैली खुली पाई गई है।

शिक्षा और साहित्य के प्रसार मे उनका सदा योग रहा है। और इन सब बातो के पीछे उनकी एक ही भावना रही है, देश का जीवन सादा और सात्विक हो, देश के पिछडे वर्ग आगे बढें और दूसरे वर्गो की बराबरी मे आवें।

जयनारायण व्यास

(राजस्थान के राजनीतिक जीवन के निर्माताओं मे व्यास जी का प्रमुख स्थान है और एक-चौथाई से भी अधिक लम्बे समय का उनका सार्वजनिक सेवा का अत्यन्त शानदार लेखा जोखा है। वे देशी राज्यों की मूक जनता की आशा, प्रकाश और आकाक्षाओं के प्रतीक रहे हैं। उसके लिए उन्होंने बडे से बडा कष्ट और लम्बी-लम्बी कठोर जेल-यातनाएँ भोगी हैं। अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद् के वे वर्षो कर्मठ मन्त्री रहे हैं। उनकी सगठन-शक्ति का लोहा माना जाता है। वे सम्पादक, पत्रकार, लेखक, कवि, विचारक और अथक काम करने वाले हैं। उनकी कविताओं में जीवन के अमर सदेश की पुट और लोह लेखनी मे मुर्दों को मी जिलाने की शक्ति विद्यमान है, परन्तु उनके ये सब रूप राजनीतिक सघर्ष की घटा मे छिपे रहे और वे अपने वास्तविक रूप में, सिवाय राजनीतिक योद्धा के, प्रगट नहीं हो सके। जोधपुर राज्य मे लोकप्रिय शासन कायम होने पर वे मुख्य मन्त्री बनाए गए। बाद मे राजस्थान के भी मुख्य मत्री रहे। इस समय ससद के सदस्य हैं और राजभाषा आयोग के भी सदस्य हैं।)

१४

चेहरे चेहरे पर रामगोपाल

जब जब मैं बीकानेर जाता हूँ तब तब कुछ व्यक्तियो से मिलने का लोभ रहता है। उन व्यक्तियो मे से एक और सर्व प्रथम हैं पूज्य रामगोपाल जी मोहता। उनके नाम और काम से मैं थोडा बहुत परिचित था, लेकिन एक बार सन् १९५५ मे बीकानेर के मेरे दौरे के दौरान मे बीकानेर शहर की एक हरिजन बस्ती मे एक समारोह मे शामिल होने का सौभाग्य मिला। पूज्य श्री रामगोपाल जी का आग्रह भी था।

समारोह मे अपूर्व उत्साह था। इतना ही नही परन्तु स्वाभाविक आनन्द नजर आता था। इसका कारण मैं ढूंढने लगा तो मालूम हुआ कि उनके बीच मे उनके बाबा मौजूद थे, जिन्होंने अपनी शक्ति पिछडे हुओ को जागृत करने मे, आगे लाने मे, लगाई है। इस बाबा के विचार "सनातनी" नही परन्तु प्रगतिशील याने मानवधर्म से प्रेरित हैं। उनका उस दिन का भाषण सिद्धान्त व व्यवहार मे मेल लाने वाला था, इतना ही नहीं परन्तु समस्त ससार मे व्यक्ति का क्या स्थान, मान और प्रमाण है उसका निर्देश करनेवाला था। मानव

मूल्यों का गणित वे सिखा रहे थे। उनके शब्दो मे आडंबर नही था, उनकी वाणी मे कृत्रिमता नही थी, उनके भावो मे सदिग्धता नही थी। उनके विचारो मे विशदता थी, उद्गारो मे प्रेरणा, अनुकम्पा व अनुभूति थी। एक सिद्ध पुरुष की साधुवाणी सुनने को मिली। लेकिन उस सभा मे मैंने एक और दर्शन पाया। वहाँ बैठे आवाल वृद्ध के चेहरे-चेहरे पर रामगोपाल अंकित था। वे अपने वावा को अपने बीच मे पाकर अत्यधिक आनन्द विभोर थे। उनके मन पर रामगोपाल जी उनके सर्वस्व अकित थे। उनके उपदेशो का अनुसरण करने को वे तत्पर थे। उन्होने अपने इस वावा के कहने पर अनेक बुराइयाँ छोड दी थी। जीवन-परिवर्तन के मार्ग पर वे लग गये थे। ऐसे गुरु की उपस्थिति मे समारोह का होना अपूर्व प्रसग था। मेरे लिये वह एक पुण्यदर्शन था।

जिनके कार्य का परिणाम इतनी तह तक पहुँच गया है वे अपने राजस्थान के ही नही परन्तु भारतवर्ष के छिपे हुये रत्नो मे से शात मुद्रा वाले, तपपूत कर्मयोगी रामगोपाल जी मोहता हैं। स्व० पूज्य श्री कृष्णदास जी जाजू जव बीकानेर भूदान प्रवास मे पधारते थे तब मनस्वी रामगोपाल जी के यहाँ ही ठहरते थे। उनके बीच मे विचारविमर्श होता था। मुझे भी सुनने का सौभाग्य मिलता था और इस तरह वे मुझे अपनी तरफ खीचते जाते थे। मेरा पूज्यभाव दिन पर दिन इस प्रकार बढता गया।

रामगोपाल जी की व्यवहार शुद्धि के कारण ही स्व० जाजू जी की मान-वृद्धि उनके प्रति बढती रहती थी। रामगोपाल जी की जीवनी एक आदर्शपुरुष की दीपमाला है। वे आज भी अपनी इस बढती जाती उम्र मे शुद्ध विचार और आचार का पालन करने वाले योगी हैं, गीताधर्म को चरितार्थ करने वाले सन्यासी हैं।

समाजसेवा की प्रतिमारूप पूज्य रामगोपाल जी के लिये शत जीव शरद यह शब्द सहज ही निकलते हैं क्योकि ऐसे साम्ययोग के उपासक इस ससार मे ज्यादा साल तक जिन्दा रहे उतना ही विशेष लाभ समाज को मिलेगा।

जिनका का काम कोने-कोने मे बोलता है, जिनका नाम हर जवान पर है वे यशस्वी हैं। वे दीर्घायु हो, शतायु हो, चिरायु हो।

गोकुल भाई भट्ट

(वयोवृद्ध श्री गोकुल भाई भट्ट राजस्थान के उन कर्मठ नेताओं में से हैं, जिन्होंने गांधीजी द्वारा प्रदर्शित रचनात्मक कार्यों को अपना जीवन व्रत बनाया हुआ है। पहले सिरोही प्रजा परिषद् के और बाद मे वर्षो राजस्थान प्रदेश कांग्रेस के भी आप प्रमुख रहे। राजस्थान की जन-जागृति मे आप का मुख्य हाथ रहा। इन दिनों में आप भूदान के कार्य मे संलग्न हैं। आप की कतृत्व शक्ति और सेवा भावना अनुकरणीय व सराहनीय हैं।)

●

१५

A Great Yogi

It is a very gladdening news that you propose to write a biography of Revered Old Manaswi Ram Gopalji Mohata under the title "Ek Adarsha Samatva Yogi" and to dedicate the book to him in memory of his services to humanity and great love for

Sahitya, Ayurved, Geeta, Godly devotion, classical music and above all for his unparalleled generosity, or called a great Philanthropist

I have always felt myself a very lucky fellow whenever I have had occasions to come in contact with him so much so that sometimes in the heart of my hearts I feel to be in company with him throughout my life as there is much for me to learn from him about this mundane world But, alas, it is not my lot

Atonce I am one with you in your object to dedicate the above Book to him at this most opportune time

I pray God to give long life to this great Yogi

Narayan Rao Vyas
(Reknowned musician)

एक महान् योगी

यह मेरे लिए बडा हर्षप्रद समाचार है कि आप "एक आदर्श समत्वयोगी" के नाम से श्रद्धास्पद, वयोवृद्ध, मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता की जीवनी प्रकाशित कर रहे हैं। मानव समाज के प्रति उनकी सेवाओ, साहित्य, आयुर्वेद, गीता, साधनामय जीवन तथा शास्त्रीय सगीत के प्रति उनके अगाध अनुराग और सर्वोपरि उनकी अनुपम उदारता के प्रति जिसके कारण उनको महान दानवीर कहा गया, इस ग्रन्थ को आप ठीक ही अर्पित कर रहे हैं।

मुझे जब भी कभी उनके सम्पर्क मे आने का सुअवसर प्राप्त हुआ, मैंने अपने को अत्यन्त भाग्यशाली अनुभव किया। यहाँ तक कि मैं अपने अतस्तल मे यह अनुभव करता हूँ कि मेरा जीवन निरन्तर उनके सम्पर्क मे बना रहे, क्योकि इस व्यावहारिक दुनिया के बारे मे मैं उनसे बहुत कुछ सीख सकता हूँ। किन्तु मुझे दु ख है कि मेरे भाग्य मे ऐसा नही लिखा है।

आप के उनको इस ग्रन्थ के समर्पित किए जाने के उद्देश्य से मैं सर्वथा सहमत हूँ, जिसके लिए यह सर्वथा उपयुक्त अवसर है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह महान् योगी दीर्घजीवी हो।

नारायण राव व्यास
(भारत के प्रख्यात सगीतज्ञ)

१६

तत्वज्ञानी विदेहजनक

नवम्बर सन् १६२६ मे मैंने इलाहावाद के "चाँद" के "मारवाडी विशेपाक" का सम्पादन किया। उस समय पत्र के स्थायी सम्पादक श्री सहगल ने जो सचित मैंटर भेजा, उसमे कुछ ऐसे प्रभावशाली और क्रातिकारी लेख थे जिनकी मैं आशा नही कर सकता था। लेखो पर छद्म नाम था। छद्म नामो का सदुपयोग मैं इससे प्रथम इसी पत्र मे "फाँसी" विशेपाक मे कर चुका था। स्वनामधन्य क्रातिकारी श्री भगतसिह ने मेरे अनुरोध से उस अश के लिए पूरी शताब्दीके राजनैतिक प्राणदण्ड पाए हुए हुतात्माओ का सचित्र विवरण सग्रह करके भेजा था। यह सग्रह उन्होने बडे यत्न और असाधारण कठिनाइयो मे किया था। सारे पजाब और दिल्ली की पुलिस उनकी तलाश मे थी। काल कोठरी और फाँसी की रस्सी उनका इन्तजार कर रही थी। वे रात को मेरे गुसलखाने मे वैठकर मैटर तैयार करते और सुबह चार बजे की गाडी मे सहारनपुर चल देते थे। वाहर घर-घर घूम कर चित्र और चरित्र उनके साथी एकत्र कर रहे थे। यह सब कोई सत्तर पृष्ठ का अप्रतिम मैंटर उन्होंने मुझे दिया था जो आगे सैंकडो ग्रथ कर्ताओ के लिए सहारा वन गया। उसे मैंने ३०-४० टुकडो मे काटकर काल्पनिक नामो से छापा था। जव भगतसिह गिरफ्तार हो गए, और सरकार की नजर "फासी अक" पर पडी, तव उन लेखो के मूल लेखक का सही नाम पता जानने के लिए—पजाब की पुलिस ने मुझे कितना दिक किया था, अव उसकी चर्चा करना व्यर्थ समझता हूँ।

"चाँद" का "मारवाडी अक" फासी अक की भाँति राजनैतिक अक न था पर उसका प्रभाव-मूल्य फाँसी अक से कम न था। कारण इस काल मे सामाजिक क्रान्ति की तीव्रता भी राजनैतिक तीव्रता से कम न थी। भारतीय समाज उस समय केवल अग्रेजो के लोह पजे से ही छुटकारा पाने को ही नही छटपटा रहा था, वह तो अपनी दिमागी गुलामी और रूढियो के वन्धन की भी असहाय पीडा सहन कर रहा था।

समूचे भारत मे उस समय राजस्थान सवसे पिछडा हुआ था। शताब्दियो तक मार काट, अशान्ति और सघर्ष के जीवन ने उसे निष्प्राण, निस्तेज कर डाला था। वह सो रहा था, अथवा वेहोश पडा था। कदाचित जन्म जात साहित्यिक व्यक्ति होने के कारण मैं न तव न अब किसी राजनैतिक आग मे कूदा—न समाज क्रान्ति का ही अग्रदूत था। परन्तु मेरी सम्पूर्ण निष्ठा और सत्ता मेरी कलम की नोक पर आ जूझी। मैं न वदहोश था—न वेखवर। दुनिया को करवट लेते मैं देख और समझ रहा था। इसलिए अपने साहित्य सेवा के उन दिनो मे मैं न कल्पना का सहारा लेता था, न रसोत्कर्प की परवाह करता था। मैं तो आग खाता था और आग ही उगलता था। उस आग से कहाँ कौन जलता है—इसे देखने की मुझे फुर्सत नही थी। मैं स्वय जल रहा था—तो दूसरो के जलने पर मैं कैसे तरस कर सकता था ? मैं भारत के एक भी व्यक्ति की दासता सहन करने को तैयार न था। न राजनैतिक न सामाजिक। दोनो मे मैं अन्तर नही मानता था। इसलिए विरोध चाहे राजनैतिक हो चाहे सामाजिक मेरी कलम आग उगलने और विषवमन करने मे धीमी नही होती थी। इसी से मैंने "चाँद" के 'फाँसी अक' के वाद 'मारवाडी अक' की योजना वनाई थी, मारवाड मे रह चुका था। मेरी प्रथम पत्नी का लगभग समूचा वालकाल उसी प्रदेश मे व्यतीत हुआ था, और द्वितीया जन्मजात मारवाड की कन्या थी। इसलिए मुझे अति निकट से मारवाड की आत्मा का, उसके क्रन्दन का, उसकी रूढिवादिता का अनुभव प्राप्त था और इस अवसर को पाते ही मैंने दुधारी काट ली। वख्शा किसी को नही। वज्र दृष्टि और वज्र मुष्टि यही दो मेरे हथियार थे और वज्रवाणी मेरा शृगार। इसी से जव मारवाडी अक को मैंने

हाथ मे लिया तो मैंने समस्त मारवाडी समाज को एक सन्देश प्रेषित किया था—जो आज भी वैसा ही ज्वाला-मुखी के प्रवाह की भाँति अग्नि समुद्र है—जैसा कि अब से तीस बरस पहले था—मैंने लिखा था—

भाइयो !

बम्बई कलकत्ता के वैभव पर मत इतराओ। गगन-चुम्बी अट्टालिकाओ और लकदक् मोटरो पर गर्व मत करो। इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा नही बढ सकती।

आओ, अपनी करोडो की सम्पत्ति लेकर देश को लौट आओ। मारवाड उजाड, सुनसान, मुर्दा, श्मशानवत् पडा है, उसे आबाद करो, उसमे कला कौशल, व्यापार और उद्योग की वेगवती गगा बहा दो, तुम्हारे हाथ मे करोडो की सम्पत्ति है। व्यापार की क्षमता और योग्यता है, ईश्वरदत्त मुस्तैदी, धैर्य और सहिष्णुता है। उसे इस पुण्य भूमि मे बखेर दो। मारवाड सोता है उसे जागृत करो, उसमे महालक्ष्मी की प्रतिष्ठा करो, उसके शासन मे योग्य नागरिक की तरह अधिकार प्राप्त करो। तुम कलकत्ता बम्बई मे जस्टिस आफ दी पीस हो—पर तुम्हारी जन्मभूमि ठिकानेदारी की स्वेच्छाचारिता की गुलाम बन रही है। बीसवी शताब्दी की कोई जाति इसे सहन नही कर सकती। उठो, ऐसा करो, जिससे भारतवर्ष का त्राता मारवाड, हिन्दुत्व का रक्षक मारवाड, पृथ्वी की महाजातियो का पवित्र मारवाड, निकट भविष्य मे आने वाले स्वाधीन भारत के नवीन युग मे अपनी जन्म सिद्ध प्रतिष्ठा और स्थान का अधिकारी हो।

माताओ और दादियो !

तुम हमारे रास्ते से हट जाओ। हमे कदम-कदम पर नामर्द और हास्यास्पद मूर्ख मत बनाओ। हम अपने भाग्य से युद्ध करने चले हैं, हम रूढियो को कुचल कर युगधर्म का अनुसरण करेंगे। "मेरे जीते जी ऐसा न होने पावेगा" ऐसा निकम्मा रोडा हमारे मार्ग मे मत अडाओ। हमे दौडने दो, वह देखो, वह भयानक प्रवाह प्राचीन महासत्ताओ को कुचलता हुआ "उठो और जियो" की तूफानी गर्जना करता हुआ बढा चला आ रहा है तुम झूठे मोह वश हमे रूढियो के हलचल मे फाँस रखोगी तो तुम्हारे यशस्वी वश का बीज नाश हो जावेगा।

बहनो !

तुम अपने उन्मतमना, जागृत पतियो की सहधर्मिणी बनो। पैर की जूती बनने के दिन गए। इस बेहूदे घूँघट को और भद्दे घाघरे को लात मार कर फैंक दो। हाय ! कैसे तुम खुशी से कैदी की तरह दिन काटती हो ? क्या तुम्हे याद है कि तुम्हारी माताओ और दादियो ने स्वाधीनता के नाम पर धधकती चिता पर अपने स्वर्ण शरीर को राख कर दिया था। तुम उस प्राचीन गौरव के नाम पर महाशक्ति का अवतार बनो। घूँघट को फाड डालो, मत डरो कि कोई तुम्हें कुदृष्टि से देखेगा। सिंहनी पर गीदड दृष्टि नही डाल सकते। सूर्य की ओर देखने वाले की आँखें चौंधिया जाती हैं। तुम सूर्य के समान तेजस्विनी और सिंहनी के समान साहसी बनो। परिश्रम, त्याग, सादगी, विद्या, विवेक और पवित्रता की तस्वीर बनो। तुम्हारे नाम पर वह घर, खानदान धन्य हो जाय जिसमे तुम जन्मी हो और जिसमे तुम सौभाग्य की चुनरी ओढकर गृह-लक्ष्मी बन कर गई हो। अपने पतियो को धर्मात्मा और त्यागी बनाओ। अपने पुत्रो को वीर और साहसी बनाओ। तुम मारवाड की देवी, मारवाड की आबरू, मारवाड की बहू, मारवाड की जीवनधन और मारवाड की प्राण हो। ऐसा कोई काम न करो जिससे मारवाड को लज्जित होना पडे। भारी-भारी गहने पहनने का बेहूदा मोह त्याग दो। एक कटार सदा पास रखो, बेखटके घर के बाहर, बन्धुबान्धवो के यहाँ जाओ। जो नीच जरा भी तुम्हारे अप-मान का साहस करे, कटार से काम लो। भारतवर्ष देखे कि मारवाड की सिंहनी कैसी होती है। विषय-वासना की गुलाम मत बनो, पतियो की अनुचित आज्ञा मत मानो। पति मे व्यभिचार, मद्यपान, जुआ की बुरी आदतें

हो तो उसे बलपूर्वक ठीक करो। तुम उसकी जगह उसी तरह स्वामिनी हो जैसे वह तुम्हारा है। धर्मात्मा सच्चरित्र पति की तन, मन से सेवा करो।

वेटियो !

विद्या तुम्हारा शृंगार है। जितना पढ-लिख सको, पढो लिखो, घमण्ड मत करो। घर के छोटे-वडे सभी काम, अपने हाथो से करने का अभ्यास करो, दिन मे कभी न सोओ। नौकर को कभी मुँह मत लगाओ। ऐसे शब्द वोलो, जैसे फूल झडते हैं। माता-पिता, भाई सभी की मन से सेवा करो। गुडिया मत खेलो। हठ मत करो, गन्दी मत रहो। कम वोलो, अधिक सोचो।

युवको !

बुजुर्गों की उन आज्ञाओ को मानने से इन्कार कर दो जो अधर्म सम्मत हो। तुम अपने को योद्धा समझो। साहस, वीरता, त्याग और सेवा नस-नस मे भर लो। पेट की चिन्ता मे न पडो, पेट तो कौवे और कुत्ते भी भर लेते हैं। तुमने क्या नही सुना —'नरा मारवाड'—अर्थात् मारवाड के मर्द प्रसिद्ध हैं। तुम वही मर्द हो। अगर तुम्हारे रहते पृथ्वी पर मारवाडी पगडी का अपमान हुआ, तो तुम्हारा जीवन धिक्कार है। जाओ सीधे विलायत पर धावा वोल दो। देखो जीवित जातियो के वच्चे किस तरह पृथ्वी पर लात मार कर आगे वढ़ा करते हैं। नही नही कला कौशल सीखो और अपने प्यारे मारवाड मे आकर जीवन की फूंक फूंक दो। ऐसे वनो कि मारवाड की आन शान भारत मे सवसे वडी-चढी हो जाय।

पाखण्डियो !

मारवाड से अपना शनैश्चर हटा लो। उसे पोथी-पत्रे, ग्रहदशा और झूठे वहमो मे मत फँसाओ। उसे सच्चे रास्ते पर आने दो—अपने पेट के लिए देश का नाश मत करो। देश मे उजाला होने दो। तुम पाखण्ड छोड दो—ठोस योग्यता प्राप्त करो। सच्चा आत्म सम्मान मन मे रखो। पापी पेट के लिए पाप मत करो—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेगा।

परन्तु यह तो हुई मेरी वात। किन्तु जव मेरे सम्मुख वे लेख छद्म नाम से आये तो मैं चौंका। कौन है यह दुधारी वाँध कर मेरी प्रतिस्पर्धा करने वाला ? मैंने इस सम्वन्ध मे "चाँद" के स्वामी श्री सहगल को लिख कर पूछा—उत्तर मे उन्होंने लिखा, वह नाम प्रकट नही किया जा सकता है। अत छद्म नाम से आप भी सन्तुष्ट रहो। भला यह भी कभी सम्भव हो सकता था। उन दिनो गुस्सा मेरी नाक पर रखा रहता था—खट से मैंने कलम फेंक दी और सहगल को तार दे दिया कि जव तक वह नाम मेरे आगे नही प्रकट होता मैं इस अक के सम्पादन से इन्कार करता हूँ। यह इकार साधारण वात न थी। इसके पारिश्रमिक के पैसे लेकर खा पी चुका था। उन्हें लौटाना सम्भव न था। उन दिनो निर्वाह लस्टम-पस्टम ही होता था। सदा ही से मैं व्यवसाय मे असावधान रहा हूँ। फिर उस समय तो मेरा सारा तारुण्य इस क्रांति के द्वार पर मेरी कलम की नोक द्वारा विखर कर भारत खण्ड मे फैल रहा था। पर उससे क्या ? किसी भी कठिनाई के आगे घवराना या अयुक्त के आगे झुकना तो मेरी परम्परा मे था ही नही। इस घटना से कुछ ही प्रथम मैं पजाव यूनिवर्सिटी की नौकरी पर लात मारकर भाग आया था एक जरा सी वात पर। वह वात भी सुन लीजिए—डी० ए० वी० कालेज मे मैं आयुर्वेद का सीनियर लेक्चरर नियुक्त हुआ। प्रिंसिपल थे लाला साईंदास जी। किसी एक अवसर पर नैमित्तिक परीक्षा थी। पर्चे स्वय लाला जी को वाँटने थे। उन्हें नियत समय से पद्रह मिनट विलम्व हो गया और मैंने कस कर एक नोट प्रिंसिपल को लिखा—जव वे आये तो क्रोध से अधीर हो रहे थे। अपने अधीनस्थ की यह धृष्टता भला वे कैसे सह सकते थे। किन्तु मुझ से कहा सिर्फ इतना ही—कि आप अपना काम देखा कीजिए—प्रिंसिपल के काम मे दखल मत दीजिए। उसे और भी वहुत काम होते है। जिनके सम्वन्ध मे आप कुछ नही जानने। वात कुछ ऐसी अनु-

चित भी न थी। पर मुझे तो वह सहन न हुई मैंने आहिस्ता से कहा—"आप मुझे क्षमा कीजिए लाला जी, मैं यह बात बिलकुल ही भूल गया कि आप मेरे अफसर और मैं आपका मातहत हूँ—मुझे भय है कि मैं फिर भूल जाऊँगा क्योकि किसी की मातहती मे काम करने का मैं अभ्यस्त नही हूँ। अत कल से आप दूसरा प्रबन्ध कर लीजिए। आज मैं आपकी सेवा मे हूँ। इस्तीफा सेवा मैं पहुँच जायेगा।" और मैं उसी दिन चला आया—वह आरामदेह और प्रतिष्ठित नौकरी छोडकर दर-दर पेट के लिए भटकने के लिए।

सो भला श्री सहगल का वह जवाब मैं कैसे सह सकता था। पर सहगल कच्चे खिलाडी न थे। उन्होंने तार देकर मुझे बुलाया और सारी हकीकत समझा कर वह गुप्तनाम भी बता दिया। नाम सुन कर मे सन्न रह गया। बहुत देर तक गुमसुम बैठा रहा। मैं सोच भी न सकता था कि एक जन्मजात मारवाडी व्यक्ति, जन्मजात श्रीमन्त करोडपति, लक्ष्मी का वरद् पुत्र, अन्धविश्वासो-रूढ़ियो मे अपनी आयु व्यतीत किया हुआ प्रौढ आयु का पुरुष भी रूढिवाद के विरुद्ध इतनी आग हृदय मे सुलगाये बैठा है। ऐसी तीखी उसकी कलम की नोक है। बहीखाते लिखने वाली कलम मे इतनी तीखी ज्वाला तो मैंने पहली बार ही देखी।

परन्तु इससे मुझे बडा सहारा मिला। मेरा बडा भारी सकोच दूर हो गया। मैं सोच रहा था—कही मुझे लोग यह न कहें कि यह स्वय मारवाडी नही है। अत मारवाडी समाज पर द्वेष और घृणा से कीचड उछालता है। अब तो मेरे कन्धे से कन्धा मिला कर दुधारी चलाने वाला एक समर्थ पुरुष मिल गया था—जो मुझ से अधिक प्रौढ था। मुझ से अधिक मारवाड की दुरावस्था से चिन्तित और दुखी था। मुझ से अधिक मारवाड को मुक्त और उद्ग्रीव देखने को उत्सुक था। और वह मेरी तरह मारवाड के लिए पराया आदमी—कोरा छिद्रान्वेशी न था—मारवाड का लाल था। साधारण लाल नही—मारवाड के अपने काल मे धुरीण पुरुषो का अग्रगण्य-अग्रज, समर्थ और उत्तरदायित्वो से सम्पन्न वह व्यक्ति था सेठ रामगोपाल मोहता।

यह नाम मेरे लिए बिल्कुल ही अपरिचित न था। परन्तु मैं उन्हें भारत के चोटी के व्यापारी के रूप मे ही जानता था। उनके लेखो को मैंने सजो कर—विरोधो का विप्लव एक ओर धकेल कर उस अक मे छापा और फिर इसके बाद एक दिन मैंने उनके दर्शनार्थ—बीकानेर की यात्रा की। इस यात्रा मे तीन दिन मेरा उनसे सहवास रहा। मैंने देखा—व्यर्थ इस सत्पुरुष को 'सेठ' के नाम से दूषित किया जा रहा है। सेठ जैसी तो उस पुरुष मे कोई बात ही न थी। छोटे से एक दालान मे एक ओर तख्त दूसरी ओर चटाई। उस पर खद्दर का अति साधारण—कहना चाहिए अपर्याप्त परिधान पहने एक तपस्वी मूर्ति बैठी जो मुझे देखते ही उठ खडी हुई। एक मन्द मुस्कान होठो पर, सहज-सरल-तरल वाणी कण्ठ मे—और तीव्र जिज्ञासा नेत्रो मे।

बात बहुत कम हुई। जैसे हम दोनो ही एक दूसरे के निकट होते ही तृप्त हो गए। कौन किस बात की जिज्ञासा करे। बात कुछ हुई भी तो आतिथ्य का आग्रह। अकुल उद्वेग। मैंने उसी क्षण उस सन्त पुरुष के आगे अपने को छोटा अनुभव किया। प्रदर्शन न करने पर भी मैंने अपनी मूक श्रद्धाजलि अर्पण की। जब लौटा तो ऐसा प्रतीत हो रहा था—तीर्थ-यात्रा से लौट रहा हूँ देवता के दर्शनो से कृत-कृत्य हो कर।

फिर तो मैत्री-सम्बन्ध दृढ होता चला गया। मुलाकातें अवश्य कम हुईं। पर उस एक ही प्रथम दर्शन ने जो एक आध्यात्मिक एकता का बीज वपन किया था उसके अकुर फूटे, शाखा प्रशाखाएँ निकली और हम दोनो को परस्पर लपेटती ही चली गईं।

परन्तु दो व्यक्तियो की यह आध्यात्मिक एकता थी बडी विचित्र। एक ओर वय मे ज्येष्ठ, चरित्र मे श्रेष्ठ, आचरण मे सन्त और ज्ञान मे श्रद्धा और आस्तिकता से ओतप्रोत निष्ठावान—ईश्वर भक्त, रूढिमुक्त, हिन्दुधर्म पर अचल मूर्ति सेठ रामगोपाल मोहता, और दूसरी ओर तर्क और अध्ययन मे आचूड मग्न, विचार-सत्ता और तथ्यो के आधार पर नित नई स्थापनाओ पर कदम बढाता हुआ साहित्यकार—जिसका न कोई अपना

देश, न धर्म, न जाति न समाज, न राष्ट्र और न इस सब के प्रति उसका कोई कर्त्तव्य शेष। जो केवल मानव तत्व का पुजारी मनुष्य की दुनिया की सब से बडी इकाई मानकर कलम की नोक से सब आवेग, सब सताप सब बधनो को त्याग—केवल मानव मूर्त्ति के शृगार मे कोमल, भावुक, रसस्रोत मे डूबता उतराता जीवन और उसके रहस्यो के रेखा चित्र बनाता जा रहा था। जिसने मानव तत्व की श्रेष्ठता का विचार कर उसके ऊपर ईश्वर तत्व से इनकार कर दिया। श्रद्धा और तर्क दोनो का सहारा त्याग केवल भावना को मूर्त करने मे जी-जान से लगा हुआ था। कैसे उस सिद्ध-सत पुरुष से आध्यात्मिक एकता प्राप्त कर सका।" इसमे एक रहस्य था। मनोवैज्ञानिक रहस्य। जो शुष्क प्रेम और शुष्क निष्ठा पर आधारित था।

दो और अविस्मरणीय मुलाकातें हुईं। सेठजी के कोई एक आत्मीय शायद रतनगढ मे जलोदर रोग से पीडित थे। उन्ही की चिकित्सा से मुझे बुलाया था। रोगी की दशा आशातीत थी। मैंने एक घण्टे तक रोग और रोगी की छानबीन की। बीकानेर और रतनगढ के कई नामाकित चिकित्सक भी उपस्थित थे। अन्त मे जैसी कि मेरी आदत थी, मन का भाव छिपा कर कुछ हास्य मुद्रा मे मैं कुर्सी पर से उठ खडा हुआ और उनके निजी चिकित्सक को चिकित्सा सम्बन्धी बातें समझाने लगा। परन्तु रोगी ने मेरे अन्तस्तल मे बैठकर सत्य को जान लिया था। जब तक मैं उसकी परीक्षा करता रहा, वह स्तब्ध चुपचाप पडा मेरी ओर ताकता रहा, जब मैं चिकित्सा और औषध सम्बन्धी आदेश दे रहा था उसने अनुरोध किया ज़रा बैठ जाइए और आग्रह किया कि उसे काशी पहुँचा दिया जाय।

रोगी अब एक सप्ताह से अधिक जीवित नही रह सकता था तथा यात्रा मे जीवन का अकस्मात् खतरा था—मैंने बहुत कहा पर उसका आग्रह अचल था। मुझे स्वीकृति देनी पडी। वह सन्तुष्ट हुआ। उस समय उसके मुख मण्डल पर जो दीप्ति आई उसे मैं आज भी नही भूला हूँ।

उसने दिन भर अपनी सम्पत्ति के बटवारे मे खत्म किया। आत्मीयो को स्वल्प धन दिया। लगभग सम्पूर्ण धन दान दे दिया। बहुत ब्राह्मण उसके घरो मे किराए पर थे। जो जिस घर मे था वह उसे ही दे दिया। इसके अतिरिक्त एक बडी राशि सेठ रामगोपाल मोहता को सुपुर्द कर दी कि वे जैसा ठीक समझें लोकहित मे खर्च कर दें। मैं सब कुछ देखकर हैरान था। आत्मा की इतनी पवित्रता और मृत्यु की ऐसी शानदार तैयारियाँ तो महाज्ञानी-वीतरागो मे भी दुर्लभ होती हैं। उसके आग्रह पर मैंने उसे काशी पहुचाया। आशा थी यह लक्षाधिपति किसी शानदार कोठी मे यहाँ रहेगा, पर जब उसने धर्मशाला की एक कोठरी मे भूमि पर बिछौना किया तो मेरे नेत्र बरबस गीले हो गए। उसके धैर्य और तप को देखकर नही। उस सन्त की याद करके—कि जिसकी शिक्षा, सान्निध्य और उपदेश से यह धनिक वणिक ऐसा श्रद्धावान बना। वहाँ पहुँचकर उसने स्नान-भोजन से निवृत्त होते ही मुझे बुलाया। कौडी पाई मेरी फीस मेरे आगे धरी और जबरदस्ती विदा कर दिया। मैंने बहुत कहा कि मैं इस हालत मे आपको छोडकर नही जाऊँगा, फीस भी नही लूंगा। और अन्त तक जो कुछ कर सकूंगा, करूंगा। पर उसने एक न सुनी। मुझे बद्धाजलि हो विदा किया। कृतज्ञता के फूल मेरी राह मे बखेर कर। और उसके तीन दिन बाद उसने जीवन-लीला समाप्त की।

दूसरी घटना शायद सुजानगढ़ की है। कोई एक साहित्य समारोह था—जिसमे मुझे भी बुलाया गया था। ठहरने के स्थान पर जाकर देखा—सेठजी भी आए हुए हैं। उन्हें भी मेरे पहुचने की खबर लगी तो बाहर निकल आए। अपने साथ ही ठहरने का आग्रह किया। वह सन्त—वही रहन-सहन—वही जीवन। पर यहाँ मैंने उनके जीवन का एक और अध्याय पढा। सन्ध्या समय बोले, एक स्थान पर चलना है। कष्ट नहीं तो चलिए। भला सन्त समागम मे कष्ट कैसा? हम चले पैदल। गली की धूल उडाते हुए। साथ मे १०–२० जन-

श्रौर। पहुँचे भगियो की बस्ती मे, जहाँ दो कुर्सियाँ थी हमारे लिए, शेष जन धरती पर धूल मे बैठे थे। बालक, बूढे, युवा, स्त्रियाँ श्रौर पुरुष सब। कोई दो सौ व्यक्ति।

बैठते ही सेठ जी ने कहा तुम मे से जो गाना जानते हो वे श्रागे श्रा बैठें। एक प्रसन्नतापूर्ण उत्सुकता की लहर सब के मुख मण्डल पर दौड गई। कुछ युवक, बालक श्रौर स्त्रियाँ श्रागे खसक श्राए। सेठजी ने कहा कोई भजन किसी को याद हो तो गाए। पर शायद सकोचवश कोई न बोला। सेठजी ने कहा, श्रच्छा मैं गाता हूँ, तुम सब मेरे साथ गाश्रो। श्रौर मुझे श्राश्चर्य सागर मे डुबोते हुए सेठजी ने गाना प्रारम्भ किया। क्षण भर बाद ही श्राबाल-वृद्ध का सयुक्त स्वर उनका श्रनुकरण करने लगा। दो तीन भजन गाए। फिर तो इन हरिजनो ने भी खूब उत्साह से गाया। स्त्रियो ने भी भजन गाए। सेठजी ने मुझसे कहा कि कुछ बोलूं। पर मेरी वाणी जड थी। मैं ऐसा श्रनुभव कर रहा था—जैसे सेठजी श्रौर वे सब एकरस थे। केवल मैं एक बाहरी पुरुष था। तभी मैंने देखा कि मनुष्य का सच्चा पुजारी तो यही सेठ है। मैं तो झूठा ही दम्भ करता हूँ। उस समय सेठजी की श्रपेक्षा मैं श्रपने को श्रतिशय नगण्य समझ रहा था। मुझे वह दृश्य चमत्कारी सा दीख रहा था। मैंने सेठ जमनालाल बजाज के साथ रहकर भी हरिजन सेवा के दृश्य देखे थे। पर एक क्षण के लिए भी मैंने ऐसा नही श्रनुभव किया कि सेठ जमनालाल श्रौर वे एक हैं। सर्वत्र एक उद्धारक के रूप मे हम लोग साथ रहे। पर यहाँ तो सेठ रामगोपाल उनके उद्धारक नही—उन्ही के एक परिजन से उनमे खो गए थे श्रौर मैं श्रकेला श्रसहाय सा रह गया था।

भजन के बाद बातचीत हुई। बातचीत ही थी वह। उपदेश न था। बातचीत की भाषा उन्ही लोगो की भाषा थी। बात ही बात मे एक बात यह निकली कि श्रछूतो को जल का भारी कष्ट है। उनके लिए उनका श्रपना कोई कुँश्रा नही है। सवर्ण उन्हें कुश्रो पर चढने नही देते हैं। सेठजी ने सुना—चुप हो गए। पर बाद में सुना—लगभग दो हजार रुपया लगा कर उनके लिए पक्का कुश्राँ बनवा दिया।

नही जानता, ऐसे-ऐसे कितने सत्कर्म इस महा वीतराग-सन्त कर्म पुरुष ने किए हैं। इसका लेखा जोखा तो उसके पास भी न होगा।

श्रन्तिम मुलाकात उस दिन हुई दिल्ली मे। भाई सत्यदेव विद्यालकार ने कहा—सेठजी दिल्ली श्राए हैं। मुद्दत से नही देखा था। मिलने की इच्छा प्रकट की—जाकर देखा—वह तप पूत शरीर काफी जर्जर हो गया है। पर एक प्रकार का तेज इस समय भी उस शरीर मे फूट रहा था। सादा कुरता, धोती पहने पलग पर बैठे थे। रुग्ण थे। देखा तो सदा कि भाँति उठ खडे हुए—छोटे भाई राव बहादुर शिवरतन मोहता भी श्रा बैठे। कराची की तबाही मे उन पर कैसी बीती उसका हाल शिवरतन जी सुनाने लगे। दृष्टि उनकी खोई-खोई सी, सरल बालक की भाँति निरीह वाणी थी। सुनकर दिल मे दर्द होने लगा। श्रकथ कहानी। कैसे वह श्रपने श्रप्रतिम 'महल' से निकाले गए, लूटे गए, उन पर जोर जुल्म हुए। सुनाते जा रहे थे—एक विवशता उनके स्वर मे थी। सब सुन कर मैंने एक एक प्रश्न किया—कैसे श्रापने इतना सहन किया श्रौर इस समय भी प्रसन्न हैं। तो उसी शान्त स्वर मे कहा 'भाई जी की बदौलत। इनका ज्ञानदान मेरा श्रवलम्ब रहा—बहुत मर गए—बहुत पागल हो गए। मुझे तो लाखो नही करोडो का विसर्जन करना पडा। भाई जी का व्यवहार दर्शन यदि मेरी श्रात्मा को प्रकाश न दिखाता तो—हम जीते वहाँ से श्राते ही नही। श्राज भी वही ज्ञान हमे सन्तुष्ट श्रौर सुखी कर रहा है। मेरी श्राँखें गीली हो रही थी श्रौर मैं शिवरतन जी की श्रोर श्राँख भर कर देख भी नही सकता था। मैंने उस श्रेष्ठ सन्त को मन ही मन प्रणाम किया जिसे गलती से लोग 'सेठ' के नाम से पुकारते हैं श्रौर चला श्राया। यह वासना मन मे दृढवद्ध करके—कि यह पुरुष—श्राज का विदेह जनक श्रात्मज्ञानी है, श्रथवा उसका प्रत्यक्ष श्रवतार है।

परम सन्त सेठ रामगोपाल मोहता अब अस्सी को पार कर रहे हैं। मैं कामना करता हूँ कि वे अपना सौवाँ वसन्त देखें—और तब तक मैं भी जीवित रहूँ—और उनके सौवें वसन्त का उत्सव मेरे ही हाथों सम्पन्न हो।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

(आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री साहित्य जगत में अपने ही तेज से देदीप्यमान सूर्य के समान हैं। कुशल और सुप्रतिष्ठित वैद्य के रूप मे वे लक्ष्मीपति बन सकते थे; परन्तु उन्होने कामधेनु वैद्यक को ठुकरा कर साहित्यिक का गरीबी बाना स्वेच्छा से स्वीकार किया और गरीब रहकर भी हिन्दी साहित्य के भण्डार को अनूठे रत्नो से भर दिया। आपने लगभग ६० ग्रन्थ हिन्दी को प्रदान किए हैं। आप लौह लेखनी के धनी, शब्दो के कुबेर, भाषा के अनूठे शिल्पी, कल्पना के चतुर चितेरे, अपनी शैली के स्वयं जनक और मौलिक रचनाओ की सृष्टि के अद्भुत विधाता हैं। आप अपने साहित्यिक जीवन की गरीबी मे वैसे ही मस्त हैं जैसे कोई धन कुबेर अपने वैभव मे भी मस्त नहीं रह सकता।)

•

१७

मोहता जी

सेठ रामगोपाल एक लेखक भी हैं। इस नाते मैं उनकी पुस्तकें देख गया और ज्यो-ज्यो मैं उन पुस्तको को पढता गया और साथ ही अपने मन मे यह याद रखता रहा कि इस समय सेठजी की उम्र ८१ वर्ष की है, तो यह विचार मेरे मनमे अनायास ही आया कि इस उम्र के लोगो मे सेठजी अवश्य ही बहुत प्रगतिशील विचार के व्यक्ति हैं।

उनकी पुस्तको के हर पृष्ठ पर उनके स्वतन्त्र चिन्तन का परिचय प्राप्त होता है। वे धर्मों से बहुत चिढे हुए हैं। वे हरिद्वार से आए ही थे, जबकि मैं उनसे पहली बार मिला। वे हरिद्वार धार्मिक दृष्टि से नही बल्कि आबोहवा की दृष्टि से जाया करते हैं। पर वहाँ के साधुओ और धर्म-ध्वजियो के हथकंडो को देखकर वे बहुत दुखी थे। वे इस निश्चय पर आज नही बल्कि २०-२५ साल पहले ही पहुँच चुके थे कि इस तरह के साम्प्रदायिक धर्मों से काम नही चलने का। कहना न होगा कि ये विचार बहुत क्रान्तिकारी हैं। उनकी पुस्तको मे मैंने सर्वत्र इसी प्रकार के विचार देखे।

वे यह स्पष्ट कह रहे थे कि धर्म-ध्वजियो के पास करोडो की सम्पत्ति जमा है और यह सम्पत्ति देश के किसी भी काम नही आ रही है बल्कि इससे कुछ ऐसे लोगो का पालन हो रहा है जो देश की कोई भी सेवा नही करते। वे कहते थे कि यदि इस धन का उपयोग पचवर्षीय योजनाओ को सफल बनाने मे किया जाए तो हमे किसी विदेशी शक्ति का मुँह न देखना पडे। आज हजारो आदमी यही बात सोच रहे हैं। पर पता नही क्यो यह बात कार्य रूप मे परिणत नही हो पा रही है। क्या यह विचार कभी कार्य रूप मे परिणत हो पाएगा ?

मुझे यह जानकर बहुत ही खुशी हुई कि वर्षो से सेठजी का परिचय सुप्रसिद्ध लेखक, विचारक और क्रान्ति के उपासक श्री एम० एन० राय से था और सेठजी जब-तब उनकी सहायता किया करते थे। यह तो स्पष्ट

ही है कि श्री एम० एन० राय के साथ उनके सारे विचार नही मिलते थे। फिर भी उनमे यह उदारता थी कि वे उनके बडप्पन को अच्छी तरह समझते थे और मतभेद रखते हुए भी उन्हे यथासाध्य सहायता करते थे। मनुष्य के चरित्र मे मैं इस गुण को बहुत बडा मानता हूँ कि वह अपने से विभिन्न मत रखने वाले लोगो के बडप्पन को भी समझ ले। बहुत कम लोग ऐसा कर पाते हैं। सच तो यह है कि बहुत बडे-बडे लोग जो दूसरे अर्थों मे बहुत बडे थे, वे भी इस मामले मे बहुत चूक जाते थे। महात्माजी अहिंसा के पुजारी और प्रतिपादक थे, वे क्रान्तिकारियो के त्याग और उनकी तपस्या को मानते भी थे, पर वे जब-तब जैसे उनकी रिहाई के अवसरो पर ऐसे वक्तव्य दे दिया करते थे जिनसे कि क्रान्तिकारी बहुत चिढते थे और इससे यह सूचित होता था कि उनमे सहनशीलता उतनी नही है जितनी कि होनी चाहिए।

सेठजी को जो थोडा बहुत प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिला, उसमे मैं निश्चयपूर्वक इस राय पर पहुँचा कि वे नियम और समय के बहुत पाबन्द हैं और शायद उनके दीर्घ जीवन का यही रहस्य हो। इससे भी बडी बात यह है कि उनका शरीर ही नही, मन भी बहुत स्वस्थ है। हरिद्वार मे फैले हुए अनाचारो से वे जिस प्रकार क्षुब्ध और उत्तेजित थे, उससे यही ज्ञात हुआ कि वे अभी तक बराबर स्वतन्त्र चिन्तन करते हैं और लोगो को अपनी बुद्धि के अनुसार रास्ता दिखाने के लिए भी तैयार हैं।

मैं यही चाहता हूँ कि वे दीर्घायु हो। एक साथी लेखक के नाते मेरी यही कामना है।

मन्मथनाथ गुप्त

(श्री मन्मथनाथ गुप्त पुराने सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, लेखक, विचारक एव दार्शनिक हैं। काकोरी डकैती के सुप्रसिद्ध षड्यन्त्र मे आपको ३४ वर्ष की सजा हुई थी और आपकी युवावस्था का बडा भाग जेलो मे ही बीता है। आपने जितना पढ़ा और लिखा है उतने पढ़ने और लिखने वाले मिलने कठिन हैं। इस समय आप "योजना" पाक्षिक पत्र के सम्पादक हैं। राजनीतिक मामलों मे ही नहीं, किन्तु धार्मिक एव सामाजिक मामलों मे भी आप प्रगतिशील विचारों के कट्टर सुधारक और क्रान्तिकारी हैं। आपका लिखा हुआ साहित्य आपके ऐसे ही विचारों से ओतप्रोत है। विविध विषयों पर आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आप सफल कहानी लेखक और उपन्यासकार भी हैं।)

⊙

१८

जैसा मैंने उन्हें देखा

सर्व साधारण की प्राय धारणा है कि मारवाडी सेठ केवल धन कमाने की ही मशीन होते हैं, साहित्य दर्शन, राजनीति और अध्यात्म विद्या उनको छू तक नही गई। मेरी अपनी भी कुछ ऐसी ही धारणा थी। परन्तु मार्च सन् १९३५ ई० मे कराची मे मुझे एक ऐसे मारवाडी महामानव के दर्शन हुए जिनसे बातचीत करने पर मुझे उपर्युक्त धारणा भ्रमात्मक जान पडी। सेठ रामगोपाल जी बीकानेर निवासी, रावबहादुर सेठ गोवर्धनदासजी ओ० बी ई० के सुपुत्र और कराची के तत्कालीन नगर सेठ रावबहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता के बडे भाई हैं। कराची के सबसे सुन्दर स्थान क्लिफटन पर इनका एक विशाल मोहता पैलेस था। जो पर्यटक कराची देखने

जाते थे वे मोहता पैलेस भी अवश्य देखते थे। भगवत्कृपा से सेठ रामगोपाल जी कोट्याधीश है । आप लाखों रुपया दान मे दे चुके हैं। आपका कारवार सारे भारत मे फैला हुआ है। इस पर भी आप सादगी, सौजन्य, नम्रता और पाण्डित्य की सजीव मूर्ति है। आपके इन्ही गुणो को देखकर मारवाडी सेठो के सबन्ध मे मुझे अपनी धारणा मे सशोधन करना पड़ा था।

मेरा अनुमान था कि मोहता पैलेस जैसे अप-टू-डेट ढग से सुसज्जित राजभवन मे निवास करने वाले सेठ साहब भी अप-टू-डेट शान-वान के मनुष्य होगे, परन्तु देहाती ढग का खद्दर का दूध सा सफेद कुरता और ज्योत्सना के समान धवल धोती पहने, सिर नंगा और पाँवो मे बीकानेरी देशी जूता देख मेरे मन मे उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव सहसा उत्पन्न हो आया। सेठजी की प्रश सा मैंने बहुत सुन रखी थी । मैं समझता था कि धन कुवेरो के गुण-गायक और चाटुकार हुआ ही करते हैं। पजाबी मे एक कहावत है—जिसकी कोठी दाने उसके बावले भी सयाने। इसलिए निश्चय किया कि सेठजी की दानशीलता और बाहरी सौजन्य को अलग रखकर उनके वास्तविक व्यक्तित्व और निजी विचारो को देखना चाहिए। इसके लिए सेठ जी से दीर्घकाल तक विचार-विनिमय करना आवश्यक था। कराची के दो सप्ताह के प्रवास मे इसके लिए मुझे सुअवसर भी मिल गया । मैंने तथा जात-पांत तोडक मडल के महोपदेशक श्री० भूमानन्द जी ने तीन-चार दिन कई-कई घण्टे तक सेठ जी से वार्तालाप किया।

सेठजी गीता के अनन्य भक्त और वेदान्त के पारङ्गत पण्डित हैं। आपने 'सात्विक जीवन', 'दैवी सम्पद्' और 'गीता का व्यवहार दर्शन' नामक तीन पुस्तकें भी लिखी है। आपको पुत्र कलत्र कोई नही। एक कन्या थी, सो उसका भी देहान्त हो चुका है। उस समय आपकी अवस्था कोई साठ वर्ष के लगभग होगी। वेदान्त का व्यावहारिक ज्ञान होने से आप सदा प्रसन्न रहते हैं। उदासी कभी आपके पास नही फटकती। इतना ही नही, आपकी सत्सगति से दूसरो की भी निराशा, चिन्ता और उदासीनता कुछ काल के लिए तो ज़रूर दूर हो जाती है। ससार मे कई मनुष्य ऐसे होते हैं जो दूर से देखने पर ही बडे जान पडते हैं। आप उनके जितना निकट जाएँगे उतना ही आप को उनसे विरक्ति वरन् घृणा उत्पन्न होगी। परन्तु सेठ जी इसके सर्वथा विपरीत है। उनके जितना निकट मनुष्य जाता है, वह उनको उतना ही अधिक मधुर और आकर्षक पाता है।

सेठ जी का समाज-सुधारक रूप भी मुझे देखने को मिला। सेठ जी स्त्री-जाति के बडे हितैषी हैं। वे जन-समाज मे स्त्रियो के लिए सम्मान का भाव पैदा करने और उनको उनके मानवी अधिकार दिलाने के लिए सदा प्रयत्नवान रहते हैं। आपने कलकत्ता के हिन्दू अबला आश्रम को चालीस सहस्र रुपया और लिलुवा का वगीचा व कोठी प्रदान की है । बालविवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय, पर्दा-प्रथा आदि के विरुद्ध प्रचार किया है। आपने इसके लिए अनेक सुन्दर गीत भी बनाए हैं। सेठ जी कोरे प्रचारक ही नही, क्रियात्मक सुधारक भी हैं। आपके छोटे भाई सेठ शिवरतन जी की धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती देवी आप से घूँघट नही करती । सेठानी जी को अतिथियो के खान-पान और रहन-सहन के विषय मे स्वय आकर पूछ-ताछ करते देख हमे बडा हर्ष हुआ। सचमुच सच्चा सुधार घर से ही आरम्भ होता है।

कोई मनुष्य वास्तव मे कैसा है, इसका पता दो-चार घटे के मेल-मिलाप से नही लग सकता। मनुष्य के चरित्र का सच्चा दर्पण उसकी पत्नी, उसके बच्चे, और उसके भाई-वन्द ही होते हैं। कारण यह कि इन घरू लोगो से मनुष्य की कोई भी बात छिपी नही रह सकती। मैं तो उसी मनुष्य को अच्छा कहूँगा जिसे उसके पुत्र-कलत्र और भाई-बन्धु अच्छा कहते हैं। जिस मनुष्य से उसकी भार्या सन्तुष्ट है, जिससे उसका भाई प्रेम करता है, जिसे देखकर उसके बच्चे प्रसन्न होते हैं, समझ लीजिए कि वह सचमुच सज्जन है। सेठ रामगोपाल जी के पुत्र-कलत्र तो हैं ही नही, केवल उनके भाई ही हैं। सेठ शिवरतन जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनसे सेठ

रामगोपालजी के घरू व्यवहार का कुछ पता चल सकता है । सो उनके आचार-विचार और व्यवहार से बडे भाई के प्रति अगाध भक्ति और निर्व्याज प्रेम का भाव प्रदर्शित होते देख सेठ रामगोपाल जी की महत्ता का प्रमाण मिलने मे कोई कठिनाई नही होती ।

सेठ जी बडे आनन्दी मनुष्य हैं । जिन दिनो मैं उनके दर्शनार्थ कराची गया उन दिनो होली का त्योहार मनाया जा रहा था । सेठ जी सुधारक होने के कारण होली मे गदगी बखेरने और वेहूदा बकवाद करने के विरुद्ध हैं । इसलिए आपने पवित्र होली मनाने का आयोजन किया । नगर के दूसरी ओर, वस्ती से कुछ दूर आपकी एक सुरम्य वाटिका थी । वहाँ मारवाडी युवको और बडे-बूढो को निमत्रित किया गया । पहले सेठ जी ने गीता का प्रवचन किया । फिर दो बडे-बडे नगाडो के साथ सभी उपस्थित सज्जनो ने सेठ जी के बनाए हुए समाज सुधार-सम्बन्धी दो गाने गाये । एक तो होली पर था और दूसरा था 'अबलाओ की पुकार' उसका आरम्भ इस प्रकार था —

टेर

सजन सुनो दे कान, धर्म का जो दम भरते हो ।
नारी नर से कहे, जुल्म हम पर क्यों करते हो ।।

अन्तरा

ब्रह्माजी ने आदि काल मे सृष्टि रची सारी ।
एक भुजा से हुआ पुरुष और दूजी से नारी ।।
दोनों मिलकर गृहस्थ करो यह आज्ञा करी जारी ।
आप जगत के पिता हुए और हम भी महतारी ।।
हम बिना आप का कोई काम नहीं चलता ।
नारी को दु:ख होने से धर्म नहीं पलता ।
जप तप व्रत तीरथ यज्ञ दान नहीं फलता ।।
सजन सुनो दे कान ।

पहले सेठ जी स्वय गाते थे, उनके पीछे दूसरे सज्जन एक ताल-स्वर से गाते थे । साथ-साथ नगाडा वजता जाता था । इससे इन सुधार-गीतो का प्रभाव बहुत बढ जाता था । भजन गान के बाद एक मारवाडी खेल हुआ । युवको ने हाथ मे दो-दो डडे लेकर एक गोल चक्कर बना लिया । इसमे दो-दो युवक एक दूसरे की ओर मुँह किये खडे थे । चक्कर के बीच मे दो बहुत बडे नगाडे रखे गये । तब सेठ जी ने स्वय इन नगाडो को एक विशेप ताल के साथ बजाना आरम्भ किया । नगाडे पर चोट पडते ही मण्डलाकार खडे युवको ने चलना आरम्भ किया । धीरे-धीरे इनकी गति तीव्र होने लगी । ये घूमते भी जाते थे और डडो के साथ एक विशेष प्रकार का व्यायाम भी करते जाते थे । इस मण्डल मे सेठ जी के छोटे भाई राव बहादुर सेठ शिवरत्न, उनके पुत्र और सेठ जी के अन्य प्रतिष्ठित सम्बन्धी सभी सम्मिलित होकर नाच और गा रहे थे । बडा सुन्दर दृश्य था । ऐसे खेलो का सामाजिक मूल्य सचमुच बहुत अधिक हैं । इनसे व्यायाम और मनोरञ्जन के अतिरिक्त समता और बन्धुता का भाव भी उत्पन्न होता है । खेल की समाप्ति पर प्रीति-भोजन हुआ । जितने दिन होली रही यह सारा कार्यक्रम उतने दिन रोज होता रहा ।

सेठ जी के विचार

सेठ जी के सामाजिक विचार यद्यपि बडे उदार थे, परन्तु मुझे इतने से सन्तोष नही हुआ। मनुष्य को परखने की मेरी एक अपनी कसौटी है। जो उस कसौटी पर पूरा उतरे मैं उसे ही पूरा समझता हूँ। मैंने सेठ जी को भी उसी कसौटी पर कस कर देखना चाहा। मैंने उनसे पूछा कि जात-पाँत के सम्वन्ध मे आपका क्या मत है ? आप ने कहा, जात-पात को मैं नही मानता, परन्तु आपके मण्डल से भी सर्वांश मे सहमत नही हूँ।

मैंने पूछा, किन वातो मे आपका मत-भेद है ? आपने कहा कि आप लोग केवल तोडते हैं, वनाते कुछ नही। जव तक जात-पाँत को छुडा कर उसके स्थान पर कोई नई चीज़ नही दोगे, तव तक काम न चलेगा। इस पर मैंने कहा कि मैं तो जात-पाँत को एक रोग समझता हूँ। इसको दूर कर देने की आवश्यकता है। इसी से हिन्दू जाति स्वस्थ हो जाएगी। इसको दूर करके इसके वजाय कोई दूसरा रोग लाने की आवश्यकता नही। फिर यदि आप कोई नई चीज वनाना ही चाहते हैं तो हमे इस जात-पाँत के खडहरो को पहले साफ कर लेने दीजिए, इसके वाद हमारे साफ किए हुए मैदान पर आपके लिए नया भवन वनाना सुगम हो जाएगा। जीर्ण-शीर्ण खडहरो की ऊवड-खवड धरती पर कोई नया भवन वनाना सम्भव नही। चार्तुवर्ण्य के विपय पर वडी लम्वी-चौडी वातचीत हुई। मेरे यह कहने पर कि वर्तमान काल मे वर्ण-व्यवस्था की व्यावहारिता और उपयोगिता समझाइए, सेठ जी ने साफ कहा कि मैं गीता का मानने वाला हूँ। गीता मे कर्म-विभाग है, जाति विभाग नही। गीता व्यवहार ग्रन्थ है, धर्म ग्रन्थ नही। उसमे अध विश्वास और अव्यवहार्य कल्पनाओ का लव-लेश तक नही। वर्ण-व्यवस्था मनुष्यो के लिए है, मनुष्य वर्ण-व्यवस्था के लिए नही। आज-कल का वर्ण विभाग समाज के लिए हितकर नही। व्यष्टि को समष्टि के लिए और समष्टि को व्यष्टि के लिए सहायक होना चाहिए। विवाह मे केवल गुण, कर्म, स्वभाव देखने चाहिए, जाति नही। मैं स्वय अपने एक व्राह्मण मित्र की विधवा कन्या का विवाह एक माहेश्वरी वनिए से कराना चाहता था। विवाह मे आचार-विचार की अनुकूलता परम आवश्यक है। जो गीता समत्व योग का उपदेश करती है वह कर्म विभाग मे-वर्णो मे—ऊँच-नीच कैसे मान सकती है ? हिन्दुओ मे एकता लाने के दो ही साधन हैं—एक तो सव मतो को मिटा दो, दूसरे जात-पाँत को उठा दो। इसीलिए—गीता कहती है—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज। अर्थात् सव मत-मतान्तरो को छोड कर एक मेरी शरण—एकत्व भाव—को ग्रहण कर। जो लोग कहते हैं कि गीता समदर्शी होने को तो कहती है, पर समवर्ती (सव के साथ समता का वर्ताव वाला) होने को नही, वे भारी भूल मे है। समवर्ती हुए विना समदर्शी होने का कुछ अर्थ ही नही। देखिए गीता मे साफ कहा है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते॥

अर्थात् जो एकता का अवलम्वन करके सव प्राणियो मे रहने वाले मुझ को भजता है वह योगी सव प्रकार से वर्तता हुआ भी मुझ मे रहता है।

सेठ जी ने कहा कि कलकत्ता मे वगाली और गैर वगाली का प्रश्न वड़ा विकट रूप धारण कर रहा है। पिछले दिनो वगालियो की एक सभा हुई थी। वहाँ कुछ मारवाडी भी गए हुए थे। उन्होंने वगालियो से कहा, आप हमसे द्वेष क्यो रखते हैं ? हम तो अव नाम के ही मारवाडी रह गये हैं, वास्तव मे कई पीढ़ियो से हम वगाल मे ही वसते हैं। हम सव वगाली ही हैं। इस पर उस सभा के प्रधान डाक्टर सर पी० सी० राय ने उत्तर दिया कि यदि आप वगाली हो गये हैं तो वतलाइये, कितने मारवाडी युवको ने वगाली लडकियो से विवाह किया है और कितनी मारवाडी लडकियाँ वगालियों से व्याही गई हैं ? यदि इसका उत्तर नकार मे है, और आप अव

तक भी मारवाडियो मे ही विवाह करते हैं, तो आप बगाली कैसे हैं ? इस पर सब मारवाडियो को चुप रह जाना पडा । आपने फिर कहा—

यदि आप सनातन धर्मियो मे से जात-पाँत को मिटाना चाहते हैं तो आप को उनमे गीता का प्रचार करना चाहिए । कारण, गीता जाति-भेद को नही मानती । अर्जुन ने जब युद्ध करने से इन्कार करते हुए कहा कि इससे कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाएगे और वर्ण-सकरता फैल जाएगी, तो भगवान् ने उसके इन विचारो को क्लीवता बता कर खूब डाँट-डपट की और इन सब धर्मों को छोडकर एकत्व और समत्व की शरण लेने को कहा । यदि गीताकार जात-पाँत मानने वाला होता, तो वह इन धर्मों को छोडने को न कह सकता । मेरे प्रश्न करने पर कि आप इतने स्वतन्त्र विचार रखते हुए भी गीता की गुलामी क्यो कर रहे हैं, सेठ जी ने कहा कि मैं गीता का अधविश्वासी नही हूँ । इसकी सब बातो को बुद्धि-पूर्वक परखने के बाद ही मैं इसकी प्रशसा करता हूँ । गीता स्वय अन्ध-विश्वास के विरुद्ध है । देखिए गीता का सपूर्ण उपदेश सुना चुकने के बाद भगवान् ने अर्जुन से कहा—

इतिते ज्ञानमाख्यात गुह्यद्गुह्यतर मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छासि तथा कुरु ॥

अर्थात् मैंने तुझे यह गुह्य से भी गुह्यतर ज्ञान बतलाया है, अब तू अपनी बुद्धिसे काम लेकर जैसा तुझे उचित जान पडे वैसा कर । भगवान् ने उसे यह नही कहा कि जो कुछ मैं कहता हूँ उसे तुम जरूर ही स्वीकार करो।

सेठ जी ने कहा कि आप लोग भी आर्य समाज के सकुचित मत मे बन्द हैं, इसलिए आप हिन्दू जाति मे समता और एकता नही ला सकते । मैंने कहा कि सेठ जी, मेरा आर्यसमाज कोई सकुचित सप्रदाय या मत नही । मैं तो सब मत-मतान्तरो से परे एक सार्वभौम धर्म को ही अपना धर्म मानता हूँ ।

सेठ जी गीता के श्लोको की ऐसी अनूठी और युक्तियुक्त व्याख्या करते थे कि सुनकर तबियत फडक उठती थी । आपने तीसरे अध्याय के १४ वें श्लोक—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भव ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्या यज्ञ कर्म ,समुद्भव ॥

का बडा अनूठा और व्यापक अर्थ किया । प्राय "अन्न" का अर्थ वर्षा से पैदा होने वाले खाद्य-पदार्थ, "पर्जन्य" का अर्थ मेघ या वर्षा, और "यज्ञ" का अर्थ अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकाण्ड किया जाता है । परन्तु आप ने कहा कि ये अर्थ बहुत ही सकुचित हैं, क्योकि सब भूत प्राणी केवल वृष्टि-जन्य अन्न से ही नही होते । अनेक प्राणी पृथ्वी, जल अथवा वायु से भी होते हैं और उन्ही पर निर्भर रहते हैं । जगत मे सभी पदार्थ परस्पर मे भोगता-भोग्य अर्थात् एक दूसरे का भोजन हैं । वर्षा भी केवल अग्निहोत्र आदि कर्मकाण्डो से नही होती । जिन देशो मे हवन नही होते, वहाँ भी प्रचुर पानी बरसता है । इसलिए "अन्न" शब्द का व्यापक अर्थ "सभी भोग्य पदार्थ" —चाहे वे वर्षा से उत्पन्न हो और चाहे और तरह से, "पर्जन्य" का व्यापक अर्थ "समष्टि उत्पादक शक्ति"—चाहे वह वर्षा रूप मे हो या दूसरे रूपो मे हो, और "यज्ञ" शब्द का व्यापक अर्थ "सभी के अपने-अपने कर्तव्य कर्म करना" अधिक उपयुक्त है सब के अपने-अपने कर्तव्य कर्म करने ही से जगत की समष्टि उत्पादक शक्ति बनती है, जिससे प्राणी-मात्र के भोग्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं ।

सेठ जी को इस प्रकार व्याख्या करते देख राजा जनक की याद हो आती थी । नही कह सकते, जो लोग प्रत्येक हिन्दू-सन्तान के गुण-कर्म स्वभाव की परीक्षा करके उस पर किसी न किसी वर्ण का लेबल लगाने की चिन्ता मे डूबे रहते हैं वे सेठ जी पर कौनसा लेबल लगाएँगे, जो एक ओर तो करोडो का व्यापार करते हैं और दूसरी ओर ब्रह्मविद्या के गम्भीर सागर हैं ।

देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर वात चलने पर सेठ जी ने कहा कि मैं तो समझता हूँ कि हिन्दुओ के पूर्व जन्मो के पापो का प्रायश्चित महात्मा गाँधी के रूप मे हुआ है। हिन्दुओ का जितना अहित काग्रेस कर रही है उतना शायद और किसी ने नही किया। हिन्दुओ को अग्रेजो के राज्य मे उन्नति का वडा अच्छा अवसर मिला था। इनको चाहिए था कि इस शान्ति के राज्य मे अपनी त्रुटियो को दूर करके अपने को सगठित करते और बलवान बनाते। परन्तु उलटा इन्होंने अग्रेजो से शत्रुता पैदा कर ली। यह मूर्ख लोग मुसलमानो की तो मित्रता के लिए लालायित हैं; परन्तु अग्रेजो को अपना शत्रु समझते हैं। अंग्रेज कुछ भी हो सुसभ्य मनुष्य हैं, नर पिशाच नही। उन्होने आज तक न तो किसी हिन्दू के पेट मे छुरा घोपा है और न किसी की बहू-वेटी को ही बलात् उठा ले गए है। उलटा उनकी वेटियाँ कई हिन्दुओ के घरो मे हैं। उन्होने हिन्दुओ के धर्म ग्रन्थो को भी कभी नही जलाया। उलटा वे उनकी रक्षा करते हैं। काग्रेस वाले कहते हैं कि अग्रेज भारत का रुपया वाहर ले जा रहे हैं परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो उनका यह आरोप भी सत्य नही। अग्रेजो के आने के पूर्व सोना तो दूर, लोगो को ताँवे के टके भी देखने को नही मिलते थे। परन्तु अब देखो तो सोने-चाँदी के गहनो का कुछ ठिकाना नही। इतना सोना पहले कहाँ था ? यदि कहा जाय कि ये भारत की उपज-अनाज दाना ले जाते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि इससे भूमि को कुछ भी हानि नही होती। यदि उपज वाहर जाने से किसी देश की हानि होती तो अमेरिका, आस्ट्रेलिया और रूस अपना गेहूँ और कपास कभी वाहर न भेजते।

अब रही अपने राज्य की वात, सो उसका नमूना हम देसी रजवाडो मे देख सकते हैं। अग्रेजी अमलदारी मे तो भोग्याभोग्य और सच्चे-झूठे का वहुत कुछ अन्तर रखा जाता है, परन्तु देसी रजवाडो मे तो अयोग्य से अयोग्य राजपूत को रियासत का बडे से वडा अफसर वना दिया जाता है और दूसरी जाति के योग्य से योग्य मनुष्य को भी जगह नही दी जाती। वहाँ न किसी का दाद-फर्याद है और न इसाफ-अदालत। देसी रियासतो को छोडकर स्वय काग्रेस को ही ले लीजिए। इसके राज्य की वानगी भी हिन्दुओ को मिल रही है। लखनऊ पैक्ट और पजाब, सिन्ध तथा सीमा-प्रान्त मे मुस्लिम राज सभी उसी भावी स्वराज्य के नमूने हैं। कितनी लज्जा की वात है कि जिस अग्रेजी सरकार ने हिन्दू-जनता के प्राणो की, सम्पत्ति की और इज्जत-आबरू की कराची मे गोली चलाकर रक्षा की उन्ही के विरुद्ध असम्बली के हिन्दू सदस्य निन्दा का प्रस्ताव पास करते हैं। उस दिन कराची मे गोली न चलती तो अग्रेज का तो वाल भी वाँका न होता। मुस्लिम हजूम का सारा क्रोध निहत्थे हिन्दुओ पर ही निकलता। परन्तु असम्बली के काग्रेसी हिन्दू अग्रेजो की इसलिए निन्दा करते हैं कि उन्होंने उस बेलगाम जन-समूह को क्यों रोका, उसे हिन्दुओ को लूटने, मारने और बेइज्जत करने क्यो नही दिया ? यह है काग्रेसी स्वराज्य ! अग्रेजो के चले जाने के वाद काग्रेस हिन्दुओ को ऐसा ही स्वराज्य देगी। उधर अग्रेजो की सहनशीलता देखिए। असम्बली में काग्रेसियो से फब्तियाँ और गालियाँ सुनकर भी वे शान्त रहते हैं, आपे से वाहर नही हो जाते। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुओ को अग्रेजो के राज्य से लाभ उठाकर अपने को उन्नत तथा सबल बनाना चाहिए। अराजकता फैल जाने पर फिर उन्हे अपने को सभालने का मौका न मिलेगा और वे मारे जायेंगे।

सेठ जी के मत से चाहे कोई सर्वांश मे सहमत न भी हो तो भी मुझे आशा है कि हिन्दू-जनता इस पर जरूर गम्भीरता-पूर्वक विचार करेगी।

सन्तराम

(श्री सन्तराम जी बी० ए० लाहौर के जात पात तोड़क मंडल के संस्थापक मंत्री के नाते प्रायः सारे देश मे प्रसिद्धि पा चुके हैं। आप की "क्रान्ति" और "युगान्तर" पत्रिकाओ के एक-एक शब्द में सामाजिक क्रान्ति

का सन्देश रहता था। उस सदेश को चारों ओर फैलाने मे आप ने अपने जीवन के लगभग ४० वर्ष लगा दिये और वर्त्तमान वृद्धावस्था मे भी आप को उसी की धुन लगी रहती है। लाहौर से आने के वाद अब आपने होशियारपुर मे सामाजिक क्रान्ति की धुनी रमाई है। बाईस वर्ष पहले कराची मे मोहता जी के साथ हुई मुलाकात का जो चित्रण आप ने किया है, उससे यह प्रगट है कि आप की लेखनी और स्मृति मे कैसा जादू विद्यमान है। आप लोह लेखनी के धनी, अत्यन्त प्रभावशाली लेखक और यशस्वी पत्रकार हैं।)

•

१९

कहाँ वे कहाँ हम ?

ऐसे महापुरुष क्वचित् ही ससार मे दिखाई देते हैं, जो लक्ष्मी के कृपापात्र होने के साथ-साथ सरस्वती के भी प्रियपात्र हो। और यदि कुछ ऐसे महानुभाव निकल भी आएं तो उनमे औदार्य, समदृष्टि, आस्तिकता, सात्विकता व परोपकार जैसे आदर्श गुणो से सम्पन्न व्यक्ति तो वडी कठिनता से मिलेगा। यह मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि वीकानेर के सेठ श्री रामगोपाल जी मोहता के रूप मे हमे ऐसे ही श्रेष्ठ व्यक्तित्व के दर्शन प्राप्त हुए हैं।

सेठ जी से हमारा साक्षात् पहले-पहल सन् २४-२५ मे हुआ था। उन दिनो हम लोग जार्जटाउन के ३२ नम्बर के वगले मे निवास करते थे। "चाँद" का अपना कोई प्रेस नही था। वह इलाहाबाद के ला जर्नल प्रेस मे छपा करता था। सेठ जी के आगमन के कुछ ही समय पहले छपाई की मशीनो की एक प्रख्यात फर्म जॉन डिकिन्सन के मैनेजर श्री सेन्फर्ड की बातो मे आकर हम लोग "चाँद" का अपना प्रेस खोलने के लिए उन्हें लगभग ३० हजार की मशीन का आर्डर दे चुके थे। शर्त यह थी कि किश्तो मे उक्त भुगतान चुकाया जायगा। परन्तु अपने पास पूँजी नाममात्र की ही थी। मशीनें तो इस प्रकार किश्तो पर सुलभ हो गईं किन्तु रेलवे भाडा देकर उन्हें स्टेशन से लदवा कर निर्धारित स्थान पर लाने और चालू करने तक की व्यवस्था के लिए प्राय दस हजार रुपये अतिरिक्त खर्च की समस्या सामने थी। कुछ समझ मे नही आ रहा था कि कैसे क्या होगा। ऐसे ही अवसर पर मोहता जी का आगमन हुआ। बातो ही बातो मे हमने उक्त परिस्थिति उनके सामने रखी। उन्होंने सहानुभूति पूर्वक कहा—"कोई चिन्ता नही। परमात्मा सब ठीक करेगा।" फिर वे विदा लेकर बीकानेर को वापस चल दिए। हम लोगो से उन्होंने कुछ भी स्पष्ट नही किया कि वे क्या सहायता करेंगे और कब करेंगे ? हम लोग किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गए थे। उधर सेठ जी देहली भी न पहुँचे होगे कि हमारे पास एक पत्र मे महाजनी मे लिखी उनकी भेजी दस हजार रुपये की हुण्डी आ पहुँची। लिखा था कि किसी बैंक मे प्रस्तुत करने पर रुपये मिल जायेंगे। हम लोग चकित रह गए उनकी निरभिमानिता और औदार्य पर। परन्तु यह तो उनका स्वभाव ही था, जिसका परिचय हमे वराबर मिलता रहा।

कुछ ही समय वाद हमने वेली रोड मे इम्प्रूवमैण्ट ट्रस्ट से एक बगला व प्लाट १७॥ हजार रुपये मे खरीदा। उसे खरीदे कुछ ही दिन वीते होंगे कि रायल इन्श्योरेन्स कम्पनी के एजेण्ट मिस्टर हेमिल्टन हमसे मिले और सलाह दी कि २८ एडमास्टन रोड स्थित वगला, जिसमे आजकल चांद प्रेस व कार्यालय है, २७,७५० रुपये मे विक रहा है, हम उसे अवश्य खरीदें। बगले की स्थिति और उसकी विशालता से हम लोग प्रभावित हुए।

किन्तु उसे लिया कैसे जाय ? विचार हुआ कि वेली रोड वाली सम्पत्ति और मशीनो आदि को वधक रख वंगला खरीदा जाय किन्तु इलाहावाद मे ऐसा कोई न दीख पडा, जो आवश्यक पच्चीस हजार हमे दे सकता। सयोगवश इसी समय मोहता जी के छोटे भाई रायवहादुर सेठ शिवरतन जी मोहता प्रयाग पधारे। उन्हें जब उक्त वात मालूम हुई तो उन्होंने साधारण भाव से कहा कि "हम वैक को लिखे देते है, आपका काम हो जायगा।" वे तो वापस चले गए और इधर अपने वैक से सम्पर्क स्थापित किया। किन्तु वैक ने साफ जवाव दे दिया कि मशीनो पर और मकानो पर रुपया नही दिया जाता। फलत. मोहता जी की शरण जाने के सिवा हमारे पास कोई दूसरा चारा नही था। उन्हें टेलीग्राम दिया गया और अपने उदार स्वभाव के अनुसार उन्होने तत्क्षण कार्यवाही की। इम्पीरियल वैक का आदमी हमारे यहाँ आया और सूचित किया कि टैलिग्रेफिक ट्रासफर से आपके नाम २५,००० रुपये आए हैं। आकर ले लीजिए। इस प्रकार २८ एडमान्टसन रोड वाला वगला ले लिया गया। इसी समय हम लोगो ने यह विचार किया कि यदि २५००० रुपये मिल जायें तो जान डिकिन्सन कम्पनी का पावना भी चुका दिया जाय और वेली रोड वाला वगला तथा मशीनें मोहता जी के नाम वधक कर दी जायें। तदनुसार मोहता जी को लिखा गया और तुरन्त ही यह धन राशि भी हमे पूर्ववत् टैलिग्रेफिक ट्रासफर से मिल गई। इस प्रकार थोडे ही समय मे मोहता जी ने हमे ६०,००० रुपये की सामयिक सहायता प्रदान की और विना किसी लिखा-पढी के। यह उनकी असाधारण उदारता का ही परिचय था। इन रुपयो को उन्हे वापस करने हेतु हजार-हजार के साठ चैंक हमने उन्हे भेजे थे, जिससे प्रति मास की किश्त वे लेते जायें। सम्भवत दो ही चार महीने वाद उनका पत्र आया कि उक्त चैंक या तो खो गए हैं या कही इधर-उधर हो गए हैं। आप वैक को मना कर दे कि इन चैंको का भुगतान न किया जाय। इस पत्र से मोहता जी के चरित्र की एक दूसरी अनूठी विशेपता का परिचय मिला। वैक को मना कर दिया गया और चैंक पुन भेज दिए गए।

"चाँद" की महिलाओ-सम्वन्धी नीति से ही मोहता जी हम लोगो की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। उन्होंने अनुभव किया कि "चाँद" के पढने से भारत का महिला समाज जागृत और उद्‌वुद्ध हो सकता है। उन्होने तुरन्त हमे लिखा कि हम चाँद मे एक सूचना इस आशय की छाप दें कि "जो महिलाएँ चाँद को पढना चाहती हैं किन्तु अर्थाभाव से उसकी ग्राहिका नही वन सकती, वे प्रार्थना पत्र भेजें, उन्हे "चाँद" मुफ्त भेजा जायगा।" साथ ही हमे लिखा कि इस प्रकार के जो प्रार्थना पत्र प्राप्त हो, उनके अनुसार "चाँद" का भेजना प्रारम्भ कर दिया जाय और शुल्क का विल उनके नाम भेज दिया जाय। उन दिनो "चाँद" मे दयनीय परि-स्थितियो मे पडी हुई महिलाओ के अनेक पत्र प्राय. प्रति अक मे प्रकाशित हुआ करते थे। उनसे प्रभावित हो कर मोहता जी ने हमे लिखा कि हम लोग इलाहावाद मे उक्त महिलाओ के लिए एक शरण-गृह क्यो नही खोल देते। इस पर उन्हे यह लिखा गया कि धन का अभाव है तो तुरन्त १०,००० रुपये उन्होने भेज दिए और लिखा कि "खर्च की चिन्ता न करें, गृह अवश्य खोला जाय।" महिला-समाज की समस्याओ के प्रति उनकी इस व्यावहारिक जागरुकता का परिचय पाकर हम लोग मुग्ध हो गए। यह मोहता जी की ही सहायता और प्रेरणा का फल था कि इलाहावाद मे मातृ-मन्दिर की स्थापना हुई, जिसके द्वारा पचासो महिलाओ को पथभ्रष्ट होने से वचाया गया। यह नही, वहुत कम लोगो को मालूम होगा कि "चाँद" ने महिलाओ की समस्याओ को आगे लाने का जो महत्वपूर्ण कार्य सफलता के साथ सम्पन्न किया, उसका वहुत श्रेय मोहता जी को ही है। चाँद कार्यालय द्वारा प्रकाशित "अवलाओ का इन्साफ" नामक जिस पुस्तक ने समाज-सेवियो मे हलचल उत्पन्न कर दी थी, वह वस्तुत मोहता जी की लेखनी का प्रसाद है। इसी प्रकार "चाँद" के जिस मारवाडी अक को मारवाडी समाज का क्रान्तिकारी सुधार करने का श्रेय प्राप्त है, उसे प्रस्तुत करने मे मोहता जी के केवल वहुमूल्य परामर्श ही नही, किन्तु वहुत सी तथ्य-पूर्ण सामग्री उन्ही से हमे प्राप्त हुई थी। उससे हमे पता चला कि मोहता जी कितने वडे

समाज-सुधारक हैं। मारवाडी समाज का आज जो प्रगतिशील रूप है, उसकी नीव डालने वाले वस्तुत मोहता जी हैं। महिलाओ के सम्बन्ध मे जो असख्य कल्याण-कार्य उन्होंने किये और कराए, उनमे से एक "मातृ-मन्दिर" का ऊपर उल्लेख किया गया है।

"चाँद" और चाँद कार्यालय से मोहता जी के घनिष्ठ सम्पर्क की जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे उनके साहित्यिक अनुराग का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। उनकी लिखी अनेक कृतियाँ वास्तव मे अपने ही ढग की और अनूठी हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर उन्होने "गीता का व्यवहार-दर्शन" नामक जो पुस्तक लिखी है उसे जिसने पढा होगा, उसे यह बताने की आवश्यकता नही कि मोहता जी कैसे तत्त्वदर्शी, मर्मज्ञ, व्यवहार-कुशल और सुलेखक हैं। इसी प्रकार उनकी अन्य पुस्तकें "सात्विक जीवन" और "समय की माँग" आदि भी अत्यन्त उपयोगी हैं। उनसे कितनो ने ही लाभ उठाया और आज भी उठा रहे हैं। "समय की माँग" मे उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि भारत मे केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता से अपेक्षित सुधार नही हो सकता, अपितु उसके लिए सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रो मे क्रान्ति होनी आवश्यक है। एक बार हमने अपने एक साहित्यिक मित्र से पूछा कि चाँद कार्यालय द्वारा प्रकाशित "अवलाओ का इन्साफ" आपने पढा है ? उन्होने कहा कि हाँ, पढ़ा है। प्रारम्भ के तीन विवरण मुझे भाषा, कला और चित्रण की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट प्रतीत हुए। कहना न होगा कि ये तीनो मोहता जी के लिखे हुए थे। यहाँ यह कहना ठीक ही होगा कि उनकी साहित्यिक रचनाएँ जहाँ सिद्धान्तात्मक और उपादेयात्मक हैं, वहाँ उनमे उत्कृष्ट साहित्यिक गम्भीरता की पर्याप्त पुट पाई जाती है। ऐसी दशा मे यदि मोहता जी को भविष्यद्रष्टा साहित्यकार के रूप मे अभिनदित किया जाय तो उचित ही होगा।

निजी रूप से मैं और मेरा परिवार मोहता जी का कितना ऋणी है, यह वाणी या लेखनी से शब्दो मे व्यक्त कर सकना सम्भव नही है। आज भी वयोवृद्ध श्री मोहता जी व उनके योग्य अनुज रायबहादुर सेठ शिव-रतन जी मोहता की कृपा हमे पूर्ववत् प्राप्त है और इन पक्तियो को लिखते समय अपने प्रति मोहता जी की शालीनता, उदारता और आत्मीयता की बातो को स्मरण कर मैं यही अनुभव कर रहा हूँ कि सेठ जी ने गीता के समत्व योग का जो अनुशीलन और स्पष्टीकरण किया है, उसे उन्होने वास्तव मे अपने जीवन मे व्यवहार का रूप प्रदान किया है। अन्यथा कहाँ वे और कहाँ हम ?

नन्द गोपाल सिह सहगल

(यू० पी० प्रिंटिंग प्रेस के श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल सुप्रसिद्ध पत्रकार, "चाँद" सचालक व सम्पादक स्वर्गीय श्री रामरख सिह सहगल के छोटे भाई हैं, जिन्होंने अपने भाई के स्वर्गवास के बाद "चाँद" की परम्परा को जीवित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया है। परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे सफल नहीं हुए। फिर भी उनके हृदय मे वैसी ही लगन, धुन और कर्तत्व शक्ति विद्यमान है। मोहता जी के निकट सम्पर्क मे आने और उनको वहुत समीप से देखने का आपको सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके ये सस्मरण उनकी निजी अनुभूति हैं।)

२०

स्वप्नद्रष्टा

उन दिनो मैं स्कूल का एक छात्र था। तारीख याद करने पर यह भी याद नही आ रही, किन्तु वर्ष सम्भवत. १६३० के आसपास के थे। तब प्रयाग और काशी से प्रकाशित होने वाले साहित्यिक पत्रो मे मैं श्री मोहता जी के लेख पढा करता था। उन लेखो मे समाज का जो चित्र प्रस्तुत रहता था उसे पढकर मैं सोचा करता था कि मोहता जी जिस समाज की कल्पना करते हैं वह निश्चित रूप से एक उन्नत और स्वस्थ समाज होगा। उनके स्वप्न के समाज की स्थापना मे हम सव नवयुवको को योग देना चाहिए।

उन लेखो का प्रभाव मेरे मन पर इतना गहरा पडा था कि एक वार जब अन्तर-स्कूली वाद-विवाद प्रतियोगिता मे मुझे वोलने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने मोहता जी के लेखो से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्ही के तर्क प्रस्तुत किये थे और उस समय पुरस्कार स्वरूप प्राप्त दो पुस्तकें आज भी मेरे पास हैं।

देश के राजनीतिक उत्थान मे सामाजिक चेतना लाने का कितना महत्व है, यह हम सव जानते हैं। रूढियो के अवविश्वास के अन्धकार से समाज को निकालना उस समय राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने मे कितना लाभप्रद सिद्ध हुआ, यह भी सर्वविदित है।

मोहता जी की उस समय की प्रगतिशील विचार धारा की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि तव थी। सामाजिक उत्थान के लिये कानून भी वनाये गये हैं किन्तु जव तक जन-जन के मानस मे वह प्रगतिशील विचारधारा घर न करले तव तक खाली कानून से मतलव पूरा न होगा। सामाजिक क्रान्ति वर्गहीन समाज की स्थापना कर सकेगी। मेरी निश्चित धारणा है कि वयोवृद्ध मोहता जी की विचारधारा को आज और भी वल मिलना चाहिए।

राजस्थान मे तव सामन्ती दौर होने के कारण प्राय यह समझा जाता था कि वहाँ के लोग अर्थ-सग्रह मे तो वहुत कुशल हैं किन्तु रूढिवादिता मे जकडे हैं। यह धारणा कुछ-कुछ ठीक भी थी किन्तु राजस्थान के उन थोडे से उदीयमान व्यक्तियो मे मोहता जी भी हैं जो उस समय भी जागरूक और स्पष्ट दृष्टा थे जव देश पराधीन था और समाज पिछडा हुआ था।

मैं मोहता जी की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

अक्षयकुमार जैन

(श्री जैन दिल्ली और वम्वई से प्रकाशित होने वाले प्रमुख हिंदी दैनिक "नवभारत टाइम्स" के प्रधान सम्पादक हैं। वी० ए० एल० एल० वी० परीक्षा पास करने पर भी आपने वकील न वनकर साहित्यकार वनना पसन्द किया। आप यशस्वी कहानी लेखक, स्वतंत्र विचारक और प्रतिभा संपन्न पत्रकार हैं। "नवभारत टाइम्स" सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक "टाइम्स आफ इंडिया" की मालिक वैनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी की पत्र माला का एक उज्ज्वल रत्न है।)

समाज-सुधारक हैं। मारवाडी समाज का आज जो प्रगतिशील रूप है, उसकी नींव डालने वाले वस्तुत मोहता जी हैं। महिलाओ के सम्बन्ध मे जो असख्य कल्याण-कार्य उन्होंने किये और कराए, उनमे से एक "मातृ-मन्दिर" का ऊपर उल्लेख किया गया है।

"चांद" और चांद कार्यालय से मोहता जी के घनिष्ठ सम्पर्क की जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे उनके साहित्यिक अनुराग का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। उनकी लिखी अनेक कृतियाँ वास्तव मे अपने ही ढग की और अनूठी हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर उन्होंने "गीता का व्यवहार-दर्शन" नामक जो पुस्तक लिखी है उसे जिसने पढा होगा, उसे यह बताने की आवश्यकता नही कि मोहता जी कैसे तत्त्वदर्शी, मर्मज्ञ, व्यवहार-कुशल और सुलेखक हैं। इसी प्रकार उनकी अन्य पुस्तकें "सात्विक जीवन" और "समय की मांग" आदि भी अत्यन्त उपयोगी हैं। उनसे कितनो ने ही लाभ उठाया और आज भी उठा रहे हैं। "समय की मांग" मे उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि भारत मे केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता से अपेक्षित सुधार नही हो सकता, अपितु उसके लिए सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रो मे क्रान्ति होनी आवश्यक है। एक बार हमने अपने एक साहित्यिक मित्र से पूछा कि चांद कार्यालय द्वारा प्रकाशित "अबलाओ का इन्साफ" आपने पढा है ? उन्होने कहा कि हाँ, पढा है। प्रारम्भ के तीन विवरण मुझे भाषा, कला और चित्रण की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट प्रतीत हुए। कहना न होगा कि ये तीनों मोहता जी के लिखे हुए थे। यहाँ यह कहना ठीक ही होगा कि उनकी साहित्यिक रचनाएँ जहाँ सिद्धान्तात्मक और उपादेयात्मक हैं, वहाँ उनमे उत्कृष्ट साहित्यिक गम्भीरता की पर्याप्त पुट पाई जाती है। ऐसी दशा मे यदि मोहता जी को भविष्यद्रष्टा साहित्यकार के रूप मे अभिनदित किया जाय तो उचित ही होगा।

निजी रूप से मैं और मेरा परिवार मोहता जी का कितना ऋणी है, यह वाणी या लेखनी से शब्दो मे व्यक्त कर सकना सम्भव नही है। आज भी वयोवृद्ध श्री मोहता जी व उनके योग्य अनुज रायबहादुर सेठ शिव-रतन जी मोहता की कृपा हमे पूर्ववत् प्राप्त है और इन पक्तियो को लिखते समय अपने प्रति मोहता जी की शालीनता, उदारता और आत्मीयता की बातो को स्मरण कर मैं यही अनुभव कर रहा हूँ कि सेठ जी ने गीता के समत्व योग का जो अनुशीलन और स्पष्टीकरण किया है, उसे उन्होंने वास्तव मे अपने जीवन मे व्यवहार का रूप प्रदान किया है। अन्यथा कहाँ वे और कहाँ हम ?

नन्द गोपाल सिंह सहगल

(यू० पी० प्रिंटिंग प्रेस के श्री नन्दगोपाल सिंह सहगल सुप्रसिद्ध पत्रकार, "चांद" सचालक व सम्पादक स्वर्गीय श्री रामरख सिंह सहगल के छोटे भाई हैं, जिन्होंने अपने भाई के स्वर्गवास के बाद "चांद" की परम्परा को जीवित रखने का पूर्ण प्रयत्न किया है। परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे सफल नहीं हुए। फिर भी उनके हृदय मे वैसी ही लगन, धुन और कर्तत्व शक्ति विद्यमान है। मोहता जी के निकट सम्पर्क में आने और उनको बहुत समीप से देखने का आपको सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके ये सस्मरण उनकी निजी अनुभूति हैं।)

२०

स्वप्नद्रष्टा

उन दिनो मैं स्कूल का एक छात्र था। तारीख याद करने पर यह भी याद नही आ रही, किन्तु वर्ष सम्भवत. १६३० के आसपास के थे। तब प्रयाग और काशी से प्रकाशित होने वाले साहित्यिक पत्रो मे मैं श्री मोहता जी के लेख पढा करता था। उन लेखो मे समाज का जो चित्र प्रस्तुत रहता था उसे पढकर मैं सोचा करता था कि मोहता जी जिस समाज की कल्पना करते हैं वह निश्चित रूप से एक उन्नत और स्वस्थ समाज होगा। उनके स्वप्न के समाज की स्थापना मे हम सब नवयुवको को योग देना चाहिए।

उन लेखो का प्रभाव मेरे मन पर इतना गहरा पडा था कि एक बार जब अन्तर-स्कूली वाद-विवाद प्रतियोगिता मे मुझे बोलने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने मोहता जी के लेखो से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उन्ही के तर्क प्रस्तुत किये थे और उस समय पुरस्कार स्वरूप प्राप्त दो पुस्तकें आज भी मेरे पास हैं।

देश के राजनीतिक उत्थान मे सामाजिक चेतना लाने का कितना महत्व है, यह हम सब जानते हैं। रूढ़ियो के अंधविश्वास के अन्धकार से समाज को निकालना उस समय राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने मे कितना लाभप्रद सिद्ध हुआ, यह भी सर्वविदित है।

मोहता जी की उस समय की प्रगतिशील विचार धारा की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि तब थी। सामाजिक उत्थान के लिये कानून भी बनाये गये हैं किन्तु जब तक जन-जन के मानस मे वह प्रगतिशील विचारधारा घर न करले तब तक खाली कानून से मतलब पूरा न होगा। सामाजिक क्रान्ति वर्गहीन समाज की स्थापना कर सकेगी। मेरी निश्चित धारणा है कि वयोवृद्ध मोहता जी की विचारधारा को आज और भी बल मिलना चाहिए।

राजस्थान मे तब सामन्ती दौर होने के कारण प्राय यह समझा जाता था कि वहाँ के लोग अर्थ-सग्रह मे तो बहुत कुशल हैं किन्तु रूढिवादिता मे जकडे हैं। यह धारणा कुछ-कुछ ठीक भी थी किन्तु राजस्थान के उन थोडे से उदीयमान व्यक्तियो मे मोहता जी भी हैं जो उस समय भी जागरूक और स्पष्ट द्रष्टा थे जब देश पराधीन था और समाज पिछडा हुआ था।

मैं मोहता जी की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

अक्षयकुमार जैन

(श्री जैन दिल्ली और बम्बई से प्रकाशित होने वाले प्रमुख हिंदी दैनिक "नवभारत टाइम्स" के प्रधान सम्पादक हैं। बी० ए० एल० एल० बी० परीक्षा पास करने पर भी आपने वकील न बनकर साहित्यकार बनना पसन्द किया। आप यशस्वी कहानी लेखक, स्वतंत्र विचारक और प्रतिभा संपन्न पत्रकार हैं। "नवभारत टाइम्स" सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक "टाइम्स आफ इडिया" की मालिक बैनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी की पत्र माला का एक उज्ज्वल रत्न है।)

२१

साहित्य मनीषि

श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्पर्क मे आने का सौभाग्य मुझे नही मिला, किन्तु उनका नाम मैं उस समय से सुन रहा हूँ जब समाज-सुधार की दिशा मे क्रान्तिकारी आवाज़ उठाते हुए 'चाँद' का प्रकाशन हुआ था। यह एक खुला रहस्य था कि उसे पूँजी और प्रोत्साहन उपलब्ध कराने का मुख्य श्रेय मोहताजी को ही था।

इसके बाद मोहता जी के वैभव और लोक हितकारी कार्यों के बारे मे भी समय-समय पर जानकारी मिलती रही। लेकिन 'गीता का व्यवहार दर्शन', 'गीता-विज्ञान', 'दैवी सम्पद' और 'सात्विक जीवन' जैसे उनके ग्रन्थो को देखते हुए साहित्यिक और विचार मनीषि के रूप मे उनके प्रति आदर-भाव पैदा न होना अस्वाभाविक था। वैभव मे रहते हुए कोई 'सात्विक जीवन' की बात करे, यह उसके अनासक्त-भाव की ही छाप डाल सकती है। गीता का सन्देश, जो मैं समझा हूँ, यही है कि आसक्ति रखे बिना कर्म या कर्तव्य का पालन किया जाए। श्री रामगोपालजी मोहता ऐसा करते हैं तो वह हमारे लिए आदरणीय ही हैं और ऐसे कर्ममय जीवन के अस्सी वर्ष पूरे कर लेने पर मेरे जैसा व्यक्ति उनके प्रति श्रद्धावनत ही हो सकता है। उनका ऐसा जीवन आगे भी जारी रहे, यही उनके अभिनन्दन के साथ मेरी कामना है।

मुकुटबिहारी वर्मा
प्रधान सम्पादक "दैनिक हिन्दुस्तान"
नई दिल्ली।

२२

सेवा व साधना की विभूति

१६२४-२५ की बात है। मैं उस समय कलकत्ता मे माहेश्वरी महासभा के मुख पत्र "माहेश्वरी" का सम्पादक था। वह सामाजिक क्रान्ति और सघर्ष का युग था। नई पीढ़ी पुराने दकियानूसी विचारो और प्रथाओ का उन्मूलन करने के लिए बैचेन थी। पुराणमतवादी हर सम्भव उपाय से प्राचीन परम्पराओ और रूढियो को जीवित बनाये रखना चाहते थे। वह सामाजिक क्रान्ति किसी एक जाति या उपजाति तक सीमित न थी, बल्कि वह समग्र हिन्दू समाज को ही झकझोर रही थी।

सामाजिक सघर्ष

अग्रवाल, माहेश्वरी, ओसवाल, खण्डेलवाल आदि वैश्यो तथा ब्राह्मणो, कायस्थो और क्षत्रियो मे कही विधवा विवाह के तो कही दस्से बीसे या अपने किसी अन्य बिछुडे हुए अग को एक करने के प्रश्न पर इसी प्रकार के सघर्ष हुए। सभी समाजो मे तरह-तरह की सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित थी। समाज का जीवन जीर्ण-शीर्ण व जर्जरित बना हुआ था। महिलाओ की अत्यन्त हीन स्थिति थी। पुराने विचारो के रूढिगत पंच, समाज मे

व्यक्ति स्वातत्र्य को हर उपाय से दवाने पर उतारू थे। विधवा विवाह करना तो दूर यहाँ तक कि महिलाओ का परदा दूर करने पर भी सामाजिक वहिष्कार कर दिया जाता था। सामाजिक वहिष्कार एक ऐसा प्रवल अस्त्र था कि उसका पच लोग प्रगति और सुधार के हर काम के विरुद्ध यहाँ तक कि विचार स्वातन्त्र्य को दवाने के लिए भी उपयोग करने मे पीछे नही रहते थे। पंच प्राय धनी होते थे और समाज पर उनका आतंक छाया हुआ था इसलिए समाज को उनकी मनमानी को सहन करना पडता था। यदि कोई निर्भीक व्यक्ति उनके निरकुश शासन तथा मनमानी की अवहेलना करता, उसे विरादरी से वहिष्कृत कर दिया जाता था।

ऐसे प्रक्षुब्ध एव अधकारयुक्त सामाजिक वातातरण मे प्रगति और समाज सुधार का प्रकाश दिखाने वाली विभूतियो मे श्री रामगोपाल जी मोहता का अग्रणी स्थान है। समाज सुधार की दृष्टि से राजस्थान पिछडा हुआ प्रदेश है। बीकानेर सामाजिक कट्टरता का एक वडा गढ रहा है, परन्तु श्री रामगोपाल जी मोहता जैसे नर रत्न को जन्म देकर उसने अपने को धन्य वना लिया है। श्री मोहता जी ने यद्यपि माहेश्वरी वैश्य कुल मे जन्म लिया फिर भी उनका जीवन गभीर-चिन्तन, मनन, त्याग, तप और लोक सेवा के कारण ऋषि-तुल्य वन गया है। उनको सभी जातियो और वर्गों का स्नेह तथा आदर प्राप्त हुआ है। बीकानेर के पिछडे वातावरण मे रहते हुए भी वे सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत वनकर सामने आये। वे हिन्दू समाज मे नये जीवन और प्रगतिशील विचारो का प्रसार करने के लिए सदा तन-मन-धन से तत्पर रहे हैं।

उस समय हिन्दू समाज मे सामाजिक जागृति का शखनाद करने वाले पत्रो मे "चाँद" का प्रथम स्थान था। "चाँद" अपने आकर्षक स्वरूप और निर्भीक तथा सामाजिक क्रान्तिकारी लेखो के लिए वहुत लोकप्रिय था। समाज के सभी प्रगतिशील व्यक्ति और विशेषत नवयुवक उसको चाव से पढते थे और उससे प्रेरणा लेकर समाज सुधार के पथ पर तेजी से आगे वढते थे। चाँद प्रेस से प्रकाशित पुस्तकें भी इसी प्रकार की क्रान्तिकारी भावना से ओतप्रोत रहती थी और उन्हें वडे शौक से पढा जाता था। श्री मोहता जी चाँद सस्था के समर्थक और पोपक थे। कलकत्ता उस समय सामाजिक क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र था। मारवाडी समाज मे उस समय जवरदस्त सामाजिक उथल-पुथल फैली हुई थी और इस क्रान्तिकारी विचार धारा को "चाँद" के द्वारा सव से अधिक वल तथा स्फूर्ति मिलती थी। उन्ही दिनो मे चाँद कार्यालय से "अवलाओ का इन्साफ" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमे समाज द्वारा महिलाओ पर होने वाले अनेक अत्याचारो और अन्यायो का वडे हृदय विदारक ढग से प्रतिपादन किया गया था। इस पुस्तक से मारवाडी समाज मे वडी हलचल फैली। उसके वाद चाँद का "मारवाडी अक" प्रकाशित हुआ। उसमे मारवाडी समाज की कुरीतियो पर करारी चोट की गई थी और मारवाडी महिलाओ की स्थिति तथा उन पर होने वाले अत्याचारो का वडा ही रोमाचकारी वर्णन किया गया था। उसमे ऐसे कुछ चित्र भी थे जिनमे महिलाओ की विकृत वेप भूपा पर खासा प्रकाश डाला गया था। "चाँद" के इस विशेपाक के विरुद्ध मारवाडी समाज मे तूफान उठ खडा हुआ। उग्र सुधारवादी तक उसकी निन्दा करने लगे। "चाँद" के मारवाडी अक की प्रतियाँ जलाई गई —उसका वहिष्कार किया गया और उस सम्पादक के विरुद्ध मुकदमा चलाने का अनुरोध सरकार से किया गया। इस प्रसग मे श्री रामगोपाल जी मोहता की भी काफी आलोचना की गई और उन पर तरह-तरह के कटाक्ष भी किए गए। यह दवाव भी डाला गया कि वे चाँद कार्यालय से अपना सम्वन्ध तोड लें। उन्होने उसकी परवाह नही कि। "चाँद" मे समाज सुधार और आध्यात्मिक विपयो पर मोहता जी के लेख समय-समय पर प्रकाशित होते थे।

उस समय तक श्री मोहता जी के दर्शन करने का मुझे अवसर न मिला था। परन्तु उनके लेखो व ग्रथो को पढकर मैं उनके महान् व्यक्तित्व के प्रति काफी अनुरक्त हो चुका था। उनके चचेरे लघु भ्राता श्री रामकृष्ण जी मोहता उस समय कलकत्ता के सामाजिक जीवन मे एक उज्जवल नक्षत्र की भाँति अपना स्थान रखते थे। कलकत्ते

की ऐसी कोई राष्ट्रीय,सास्कृतिक और सामाजिक प्रवृत्ति न थी जिसको उनका सरक्षण एव प्रेरणा प्राप्त न होती हो। मारवाडी समाज के उस समय वे सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे। वे कोई बडे घनी नही थे परन्तु दानशीलता मे वे बडो-बडो को भी मात कर देते थे। महात्मा गाधी जी जब १६२१ मे तिलक स्वराज्य फड के लिए चन्दा करने कलकत्ता पहुँचे तब ७५ हजार रुपये की सबसे बडी रकम उन्हें भेंट करने वाले वे ही थे। उनके सदुपयोग व ४००००) की सहायता से कलकत्ता मे माहेश्वरी विद्यालय की स्थापना हुई और उसका विशाल एव भव्य भवन निर्मित हुआ। अनेक सस्थाएँ उनका सरक्षण पाकर स्थापित हुई। उनके द्वारा समाज सेवा व जन जागरण का विपुल कार्य हुआ। अनेक देश भक्तो और क्रान्तिकारियो को भी वे मुक्त हस्त से गुप्त सहायता देते रहते थे। न जाने कितने छात्र, कार्यकर्त्ता और विद्वान् उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त करते रहते थे। उनके जीवन पर उनके ज्येष्ठ भ्राता विद्वद्वर श्री रामगोपाल जी मोहता के प्रगतिशील विचारो तथा कार्यो की गहरी छाप पडी थी। उनके सरल, उदार व सात्विक जीवन को मनस्वी मोहता जी के जीवन का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।

१६३१-३२ मे माहेश्वरी महासभा का एक शिष्टमण्डल प्रचार करता हुआ बीकानेर पहुँचा। श्री रामगोपाल जी ने मण्डल का स्नेहपूर्वक स्वागत किया। मोहता विद्यालय के छात्रावास की छत पर सभा का आयोजन किया गया। श्री मोहता जी सभा के अध्यक्ष पद पर विराजमान थे। जैसे ही व्याख्यान आरम्भ हुए कि सभा स्थल पर बाहर से पत्थर फैंके जाने लगे। महासभा के विरोधियो की ओर से वह विघ्न डालने का प्रयत्न किया गया था। मोहता जी वैसी विघ्न बाधाओ से विचलित होने वाले नही थे। वे तो सामाजिक कट्टरता के इस गढ मे रहते हुए ही समाज सुधार का शखनाद अबाध रूप से कर रहे थे। श्री मोहता जी ने अपने भाषण मे कहा कि विरोधी भाई इस तरह का प्रदर्शन करके महासभा के प्रभाव को स्वीकार कर रहे हैं और महासभा के शिष्टमण्डल के प्रचार का उद्देश्य स्वयमेव पूर्ण हो रहा है। उस शिष्टमण्डल मे माहेश्वरी पत्र के सम्पादक के रूप मे मैं भी सम्मिलित था। श्री रामगोपाल जी ने उस समय अपने अनुज श्री रामकृष्ण जी मोहता का बडे स्नेहपूर्ण रूप मे स्मरण किया और उनकी माता जी से शिष्टमण्डल का परिचय कराते हुए कहा कि "रामकृष्ण समाज की बहुत बडी सेवा कर रहा है। यह सब उसी के मित्र हैं। उसी की प्रेरणा से यह यहाँ आए हैं।" मैंने उस समय बीकानेर मे श्री मोहता जी की मूक सेवा के दर्शन किये। मैंने देखा कि उनका 'धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय', 'आयुर्वेद विद्यालय', 'मोहता मूलचन्द हाई स्कूल', 'वनिता आश्रम' आदि सस्थाएँ लोक सेवा और जन जागरण का कैसा महत्वपूर्ण कार्य कर रही थी। बीकानेर के बाहर कराची, कलकत्ता, वम्बई, दिल्ली तथा अन्य नगरो मे भी उनकी प्रेरणा तथा सहायता से जन सेवा और लोक जागरण की अनेक प्रवृत्तियाँ चल रही थी। इस तरह बीकानेर की मरुभूमि में बैठकर श्री मोहता जी देश के विभिन्न भागो मे अपनी सहृदयता की सरिता प्रवाहित कर रहे थे।

प्रसिद्धि और आत्म विज्ञापन की भावना से अलिप्त रहकर लोक सेवा का सक्रिय कार्य करना मोहता जी का आरम्भ से ही स्वभाव रहा है। उनका झुकाव आरम्भ से ही अध्यात्म की ओर रहा है और 'श्रीमद्भवद्-गीता' तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थो के पठन-पाठन, प्रचार और साधु सन्तो तथा विद्वज्जनो के सत्सग मे उनका विशेष समय लगा है। परन्तु देश के राष्ट्रीय, सास्कृतिक और सामाजिक जागरण की प्रवृत्तियो से भी वे अलिप्त नही रहे। हिन्दू समाज को अधविश्वास, अज्ञान, कुसस्कारों और सामाजिक रूढियो के सकुचित दायरे से निकालने की ओर उनका सदा ध्यान रहा है। मारवाडी समाज की जन जागृति मे उनकी आरम्भ से ही रुचि रही और उन्होने सदा समाज मे क्रान्तिकारी विचारो के प्रसार का प्रयत्न किया।

१६२४-२५ के सामाजिक सघर्ष मे माहेश्वरी समाज के कोलवार प्रकरण का प्रमुख स्थान है। माहेश्वरी समाज का एक वर्ग परिस्थितिवश मारवाड से निकल कर बहुत वर्षो से उत्तर प्रदेश मे जा बसा था और उसको वहाँ कोलवार कहा जाने लगा था। माहेश्वरी समाज मे सामाजिक जागृति पैदा होने पर उन्होंने भी

सामाजिक संस्थाओ मे आना, जाना शुरू किया और माहेश्वरी समाज मे पुन. घुलमिल जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर जो विवाद खडा हुआ उसके कारण उनके सम्वन्ध मे जाच करने के लिए महासभा ने एक कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन ने सारे देश मे भ्रमण किया, लोगो के विचार जाने, सव प्रकार के तत्सम्वन्धी प्रमाण एकत्र किये और यह सम्मति दी कि कोलवार शुद्ध माहेश्वरी हैं। यह रिपोर्ट माहेश्वरी महासभा के समक्ष प्रस्तुत होने ही वाली थी कि श्री रामेश्वरदास जी विडला ने कोलवार माहेश्वरी कन्या से विवाह कर लिया।

इस विवाह के पश्चात् इस विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। कलकत्ता मे एक महापचायत पक्ष स्थापित हो गया। उसने इस विवाह का विरोध किया और कोलवारो को माहेश्वरी मानने से इन्कार करते हुए उनके साथ रोटी वेटी सम्वन्ध करने वालो का सामाजिक वहिष्कार करने की घोषणा की। महापचायत के विरुद्ध दूसरा पक्ष उठ खडा हुआ जिसने कोलवारो को माहेश्वरी घोषित किया और उनके साथ रोटी वेटी सम्वन्ध करने का खुला समर्थन किया। इसी वीच १९२४ मे वम्वई मे अ० भा० माहेश्वरी महासभा का सप्तम अधिवेशन श्री गोविंददासजी मालपाणी की अध्यक्षता मे हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष श्री रामेश्वरदास विडला थे, परंतु उनके विवाह को लेकर जो विवाद उठ रहा था उसके कारण उन्होंने अपने पद का त्याग कर दिया और उनके स्थान पर स्व० सेठ रामरिख जी मालपाणी पीपाऊ वाले स्वागताध्यक्ष चुने गए।

वम्वई मे माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन का आरम्भ वडे क्षुब्ध तथा सघर्षमय वातावरण मे हुआ। कलकत्ता कोलवार कलह का केन्द्र था। वहाँ से भारी सख्या मे प्रतिनिधि आये और उनमें कोलवार विरोधी पक्ष प्रवल था। अन्य स्थानो से भी भारी संख्या मे प्रतिनिधि आये। महासभा मे पहला सघर्ष कोलवारो को महासभा का प्रतिनिधि वनाने या न वनाने पर हुआ। स्वागत समिति ने उन्हें प्रतिनिधि नही वनाया था। महासभा अधिवेशन का कार्य आरम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष के भाषण निर्विघ्न हुए और विपय निर्वाचिनी समिति गठित हुई। विषय निर्वाचिनी समिति मे कोलवार प्रश्न उपस्थित हुआ—तत्सम्वन्धी जाँच कमीशन की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई और उस पर चर्चा हुई। महासभा के प्रमुख नेता और समाज के वुद्धिमान लोग इस प्रश्न को शान्ति से सुलझाना चाहते थे ताकि महासभा अधिवेशन मे विग्रह न पैदा हो। परन्तु कलकत्ते का महापंचायत पक्ष इस पर तुला था कि इसी अधिवेशन मे कोलवारो को अन्तिम रूप से गैर माहेश्वरी घोषित किया जाय और उनके साथ रोटी वेटी सम्वन्ध रखने वालो को जाति वहिष्कृत किया जाय। विषय निर्वाचिनी समिति ने समझौते का मार्ग यह निकाला कि कमीशन की जाच अधूरी है अत फिर दोवारा जाँच की जाय और तव तक कोलवारो के साथ विवाह सम्वन्ध न किये जायें।

विषय निर्वाचिनी के इस प्रस्ताव के समर्थक वहुत लोग थे क्योकि सभी लोग समाज मे विग्रह उत्पन्न होने की स्थिति को टालना चाहते थे। परन्तु पचायत पक्ष ने खुले अधिवेशन मे मे विपय निर्वाचिनी के प्रस्ताव का विरोध करने और कोलवार विरोधी प्रस्ताव पास कराने का निर्णय कर लिया था। अत जैसे ही अधिवेशन आरम्भ हुआ और विपय निर्वाचिनी का कोलवार विपयक प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि सभा मे चारो ओर हल्ला होने लगा। सभापति ने परिस्थिति को सम्भालने की वहुत कोशिश की, विरोधी पक्ष के वक्ताओ को वोलने का अवसर दिया और दोनो पक्षो मे समझौता कराने का भी प्रयत्न किया परन्तु विरोधी दल अपनी जिद पर दृढ रहा। सभा का कार्य चलना असम्भव समझकर सभापति ने अधिवेशन के समाप्त होने की घोपणा कर दी।

विरोधी पक्ष ने महासभा के टूट जाने की घोषणा करके नागपुर निवासी स्वर्गीय सेठ शिवनारायण जी राठी की अध्यक्षता मे अ० भा० माहेश्वरी महापचायत का अधिवेशन का गठन कर डाला और उसमे कोलवारो को गैर माहेश्वरी ठहराते हुए उनके साथ रोटी वेटी सम्वन्ध करने वालो का जाति वहिष्कार करने का ऐलान कर दिया। सुधार पक्ष (जिनमे राजस्थान केसरी चाँदकरण जी शारदा व श्री कन्हैयालाल जी कलयत्री मुख्य थे) वालो

ने अ० भा० माहेश्वरी युवक महामण्डल का गठन राजरत्न श्री आत्मारामजी दूघानी की अध्यक्षता मे किया और कोलवारो को शुद्ध डीडू माहेश्वरी घोषित करके उनके साथ रोटी बेटी सम्बन्ध किये जाने का ऐलान कर दिया। माहेश्वरी समाज में सर्वत्र बम्बई का यह सघर्ष फैल गया। कलकत्ता मे महापचायत के समर्थक दल ने श्री डीडू माहेश्वरी पचायत के नाम से एक सस्था स्थापित की और ८-६-२४ को एक प्रस्ताव पास करके महापचायत के कोलवार विरोधी प्रस्ताव का न केवल समर्थन किया अपितु कोलवार माहेश्वरियो के सम्बन्धियो के साथ सम्बन्ध रखने वालो का भी बहिष्कार करने का निश्चय किया। उसके लिए जगह-जगह पचायतें करके कलकत्ता प्रस्ताव के पाने पर सहियाँ ली जाने लगी। बाई वेटियो का आना जाना वन्द हो गया और सगे परसगी तथा भाई-भाई भी एक दूसरे से अलग हो गये।

कलकत्ता के माहेश्वरी वन्धुओ के एक दल ने डीडू माहेश्वरी सघ की स्थापना की। उनसे पचायत की तरह कोलवारो को अभी तक के प्रमाणो से गैर माहेश्वरी घोषित किया और उनके साथ रोटी-वेटी सम्वन्ध न करने की घोषणा की परन्तु साथ ही यह भी कहा कि यदि कोलवारो के माहेश्वरी होने के आगे और प्रमाण मिले तो सघ इस प्रश्न पर पुनर्विचार करने को प्रस्तुत रहेगा। तीसरा दल महासभा वादियो का तटस्थ था जो समाज मे गृह कलह को मिटाने और इस सम्बन्ध में सत्य निर्णय किये जाने के लिए प्रयत्नशील था। समाज मे उस समय ऐसे बिरले ही व्यक्ति थे जो किसी पक्ष विशेष के समर्थक न थे और सत्य के पक्ष का अनुसरण करना चाहते थे। पचायत के साथ बहुमत था और पैसे के वल पर उसने देशव्यापी आन्दोलन खडा कर लिया था।

उस समय जो-इने गिने नेता समाज की नौका को इस तूफान से सुरक्षित पार लगा रहे थे उनमे स्व० रामकृष्ण जी मोहता, स्व० तपोधन श्री कृष्णदास जी जाजू, श्री ब्रजलाल वियाणी, वा० गोविन्ददास जी और श्री रामगोपाल जी मोहता के नाम उल्लेखनीय हैं। बम्वई महासभा अधिवेशन के निश्चयानुसार महासभा के कार्यकारी मण्डल ने द्वितीय कोलवार जाँच कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन ने पिछली अधूरी जाँच को पूर्ण किया और सर्वसम्मति से कोलवारो को माहेश्वरी स्वीकार किया। यह भी स्वीकार किया गया कि समाज के अधिकाश व्यक्ति उनसे सम्बन्ध करने के पक्ष मे नही हैं। इस कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर पचायत पक्ष ने पुन शोर मचाया और अपने सामाजिक बहिष्कार आन्दोलन को उग्र बनाकर समाज को कोलवार कमीशन की सम्मति को अमान्य करने के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया।

कोलवारो के सम्बन्ध मे सत्यतापूर्ण निर्णय करने तथा समाज मे विचार स्वातन्त्र्य की रक्षा की भावना जागृत करने के लिए महासभा का अधिवेशन होना आवश्यक था। महासभा के कार्यकारी मण्डल के प्रयत्न से बम्बई के माहेश्वरी वन्धुओ ने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार किया और सुप्रसिद्ध 'पढरपुर' क्षेत्र मे महासभा का अष्टम अधिवेशन करने का निश्चय किया गया। रायसाहब सेठ रूपचन्द जी राठी उसके स्वागताध्यक्ष नियुक्त किए गए।

महासभा के अध्यक्ष पद के लिए ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो समाज मे सर्वाधिक लोकप्रिय, विद्वान, दूरदर्शी और समाज सेवी हो। सवकी दृष्टि श्री रामगोपाल जी मोहता की ओर गई। वे सामाजिक कट्टरता के गढ वीकानेर मे रहते हुए भी सामाजिक क्रान्ति का शखनाद कर रहे थे। आपकी अध्यक्षता मे १५-१६-१७ अक्टूबर १९२७ को पढरपुर मे वह ऐतिहासिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। महासभा ने पचायत पक्ष के तुमल विरोध की कोई परवाह न कर कोलवारो को ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर माहेश्वरी घोषित कर दिया और सामाजिक वहिष्कार का भी उन्मूलन कर दिया। इस प्रकार विचार स्वातन्त्र्य की रक्षा करते हुए सामाजिक प्रगति के मार्ग को निष्कटक वनाने का श्रेय महासभा को मोहता जी के नेतृत्व मे प्राप्त हुआ।

आपके नेतृत्व मे महासभा मे नये जीवन का सचार हुआ और उसने सामाजिक प्रगति के मार्ग पर

समाज को तेजी से अग्रसर करना शुरू कर दिया। सबसे बड़ा काम यह हुआ कि महासभा ने कोलवारो के समान समाज से बिछडे हुए अन्य अनेक अग उपागो को भी समाज मे मिलाकर उसको एक सूत्र मे सगठित कर दिया। श्री मोहता जी की विशेष प्रेरणा से अ० भा० माहेश्वरी महिला परिषद् की स्थापना श्रीमती गुलाब देवोजी (चाची जी) की अध्यक्षता मे श्री कलयंत्री दम्पति के विशेप प्रयत्न से हुई। इस प्रकार सर्वप्रथम राजस्थानी नारी जागरण और शिक्षा प्रचार का कार्य भी किया गया।

विश्वम्भर प्रसाद शर्मा

(शर्मा जी पुराने लोक सेवक और पत्रकार हैं। माहेश्वरी समाज तथा अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के साथ आपका वर्षों सम्बन्ध रहा है। उसके साप्ताहिक पत्र "माहेश्वरी" का आपने अनेक वर्ष सम्पादन किया है। माहेश्वरी समाज की वर्तमान जागृति एवं प्रगति का आपको "जीवित इतिहास" कहा जा सकता है। "आलोक" नाम का यशस्वी पत्र आपने पहले सहारनपुर से और बाद में नागपुर से प्रकाशित किया था। इस समय आप "राजस्थानी" नाम से एक पत्र का संचालन, प्रकाशन व सम्पादन कर रहे हैं। समाज सेवा आपका स्वभाव बन गया है। माहेश्वरी महासभा के रजत जयन्ती उत्सव पर आपने समाज की प्रगति का एक सुन्दर इतिहास लिखा था। इसीलिए आपने मोहता जी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसके प्रामाणिक होने मे सन्देह नहीं किया जा सकता।)

२३

ऋषिवर मोहता जी

हिन्दी मे सामाजिक साहित्य के कर्मठ पत्रकार स्व० भाई श्री रामरख सिह जी सहगल ने सेठ रामगोपाल जी मोहता के गीता सम्बन्धी ज्ञान और कर्मठ जीवन विवेक के क्रियात्मक दर्शन पाने के बाद अपने स्त्रियोपयोगी मासिक "चाँद" मे सुन्दर आर्ट-पेपर पर एक अच्छी हलकी रगीन पृष्ठभूमि पर आपका चित्र देते हुए आपको "ऋषिवर" लिखा था।

राजस्थान के हम लोगो को कराची और बीकानेर के सेठ रामगोपाल जी मोहता के गीता ज्ञानमय जीवन का जब पता चला तब आपको श्री सहगल द्वारा ऋषिवर कहे जाने पर कोई आश्चर्य नही हुआ। आप करोडपति होते हुए भी समत्वयोग के पथिक बन रहे थे। लेकिन शेष हिन्दी ससार ने इस विशेषता की यथार्थता और गहराई को नही समझा क्योकि उसको मोहता जी के इस महान जीवन की कोई जानकारी नही थी।

उन दिनो के कोट्याधीश राजस्थानी सेठो ने हिन्दी साहित्य को क्रान्तिकारी प्रेरणा देने का जो महान कार्य किया उसमे मोहता जी का परिवार, बिडला परिवार तथा स्वर्गीय सेठ जमनालाल जी बजाज का योगदान कभी भी भुलाया नही जा सकता। बजाज जी ने स्वर्गीय श्री विजय सिंह जी पथिक के सहयोग एव भाई सत्यदेव जी विद्यालकार के सम्पादकत्व मे "राजस्थान केसरी" का प्रकाशन १९२० मे किया था। उसको राजस्थान तथा मारवाडी समाज मे क्रान्ति का बीजारोपण करने का श्रेय प्राप्त है। अजमेर के सस्ता साहित्य मण्डल तथा उसकी मासिक पत्रिका "त्यागभूमि" के प्रकाशन का श्रेय सेठ घनश्यामदास जी बिडला को है। उन्ही दिनो मे ऋषिवर

सेठ रामगोपाल जी मोहता "चाँद" की सामाजिक क्रान्ति की भावना के अध्वर्यु बन कर समाज के सामने आए थे। "अबलाओ का इन्साफ" नाम की सामाजिक क्रान्तिकारी पुस्तक का प्रकाशन मोहता जी की क्रान्तिमयी भावना का मूर्त्त रूप था। उसको समाज के रोष, असन्तोष तथा विरोध का निशाना बनाया गया था। लेकिन मोहता जी महिलाओ और विधवाओ के उद्धार के जिस क्रान्तिकारी महान कार्य मे लग चुके थे उसका वह पुस्तक तो केवल एक छोटा सा रूप थी। इसी कारण उन पर उस रोष, असन्तोष और विरोध का कोई प्रभाव पडना सम्भव न था। मोहता जी के अनुज (चचेरे भाई) स्वर्गीय श्री रामकृष्ण जी मोहता भी अपने ढग के एक ही थे। उन्होने मूक भाव से लाखो रुपया राष्ट्र और समाज के कल्याण के लिए व्यय किया था और भाई सत्यदेव जी विद्यालकार के सम्पादन मे प्रकाशित "नवयुग" द्वारा उन्होंने सामाजिक क्रान्ति का जो शखनाद किया था, उससे देश भर के हजारो मारवाडी युवको ने प्रेरणा प्राप्त की थी। इस प्रकार हमारे समाज के सेठ साहूकारो ने जिस क्रान्ति यज्ञ का अनुष्ठान किया उसमे ऋषिवर मोहता जी का प्रमुख स्थान है।

मोहता जी ने सहस्त्रो रुपया व्यय करके चाँद की हजारो प्रतियाँ कई वर्षो तक सस्ते मूल्य मे वितरित की। उनसे सामाजिक क्रान्ति को जो बल मिला उसके परिणामस्वरूप "राजस्थानी महिला" का प्रकाशन हुआ और हमारी "एशिया की महिला क्रान्ति" आदि आधा दर्जन स्त्री साहित्य की पुस्तकें सामने आईं और हम उसी समय से मोहता जी के सामाजिक क्रान्ति के मिशन के एक मिशनरी बन गए। "मीरा" का प्रकाशन भी उसी का परिणाम है।

मोहता जी के कारण ही बीकानेर सरीखा अधविश्वासो तथा रूढियो का गढ सामाजिक क्रान्ति के, विशेषत महिला उद्धार के अनुष्ठान का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। वहाँ आप द्वारा स्थापित वनिता आश्रम की शाखाएँ न केवल राजस्थान के प्रमुख नगरो मे किन्तु इन्दौर तथा इलाहाबाद सरीखे नगरो मे भी खोली गईं और उन द्वारा महिला समाज के उत्थान कार्य के शैशव काल मे जो कार्य हुआ उसकी ठीक-ठीक कीमत नही आकी जा सकती। आपके छोटे भाई श्री मूलचन्द मोहता की बाल विधवा पत्नी मानो विधवाओ के उद्धार के लिए प्रेरणा बन कर प्रगट हुई थी। क्योंकि उसके वैधव्य जीवन मे मोहता जी ने विधवाओ के कष्ट, क्लेश और सताप का जो जीता जागता चित्र देखा था उसने आपको निरन्तर महिलाओ तथा विधवाओ की सेवा मे लगाए रखा। आपकी सुपुत्री के स्मारक मे आपकी प्रेरणा से सस्थापित "श्री भैरव रत्न मातृ पाठशाला" ने स्वर्गीय कर्मवीर श्री अर्जुन लाल जी सेठी की सुपुत्री सुदर्शना बहन की साधना से स्त्री शिक्षा का इतिहास नए सिरे से लिखना शुरू किया। इसी प्रकार आपकी विदुषी दोहित्री श्रीमती रतनबाई दम्माणी के नेतृत्व मे कायम महिला मण्डल जागृति और महिला उत्थान का नव इतिहास निर्माण कर रहा है।

अपने व्यापार व्यवसाय से वीतराग होने के बाद जब मोहता जी बीकानेर आ बैठे तब आप समाज से त्रस्त हरिजनो और अकाल से पीडित किसानो के प्राणाधार बन गए। बीकानेर की मरुभूमि दुर्भिक्ष का प्राय शिकार बनी रहती है। कोई यह नही जानता कि मोहता जी ने हरिजनो और अकाल पीडितो की सेवा का निरन्तर अनुष्ठान करते हुए कितना रुपया उसमे लगाया होगा ? मैंने स्वय कितनी ही बार उनके दरवाजे पर दुर्भिक्ष पीडितो के नर ककालो की भीड जमा देखी है, जिसको आपके यहाँ से मुक्त हाथो से कपडा, अनाज तथा जीवन की आवश्यकता की अन्य सामग्री वर्षों बाँटी जाती रही है। इसके अलावा वहाँ के राष्ट्रीय जागरण को भी आपका सक्रिय आशीर्वाद और सहयोग निरन्तर प्राप्त रहा है। जागीरो मे अत्याचार पीडित दासो को मुक्ति दिलाने का जो काम आपने किया और वहाँ की स्वेच्छाचारिता मे पीसी जाने वाली जनता को जो राहत आपने भिजवाई उसका महत्व राजनीतिक दृष्टि से भी कुछ कम नही हैं। खादी के उत्पादन मे भी आपका सक्रिय सहयोग प्राप्त रहा है। भले ही आप राजनीतिक नेता के रूप मे कभी सामने नही आए और प्रत्यक्ष रूप मे आप अपने

आध्यात्मिक चिन्तन मे लीन रहे, फिर भी आपकी चहुंमुखी सेवायमी जीवन साधना राजस्थान विशेष कर बीकानेर के जन जागरण मे अपना ही स्थान रखती है। जब भी कभी इस महान जागृति का निप्पक्ष इतिहास लिखा जाएगा तब उसमे आपके व्यक्तित्व, सेवा और साधना का उल्लेख बडे गर्व के साथ किया जायगा। बिना उसके वह इतिहास अधूरा रहेगा।

जगदीश प्रसाद "दीपक"

('मीरा' सम्पादक श्री जगदीश प्रसाद जी माथुर को उपहास में उनके साथी "महिला पत्रकार" कहा करते हैं। तात्पर्य इसका यह है कि उन्होने सचमुच ही महिला जागृति को अपने पत्रकार जीवन का मुख्य लक्ष्य बना रखा है। उन्होने अपना समस्त पत्रकार जीवन इसी मिशन के अर्पित किया हुआ है। महिला जागरण का दीपक हाथ मे लिए उसकी ज्योति घर-घर मे फैलाने मे "दीपक" जी अब भी लगे हुए हैं।)

•

२४

मेरे गुरुदेव

श्री मोहता जी जैसे महान विद्वान, उनके क्रान्तिकारी सामाजिक सासारिक एव आध्यात्मिक विचारो और उनके द्वारा लिखे गये अनेक ग्रथो के विषय मे कुछ लिखने की मुझ मे न कोई क्षमता और न मुझे कोई अधिकार ही है। तथापि उनसे और उनके परिवार से कई पीढियो का सम्पर्क होने के नाते मुझे उनके अनुकरणीय जीवन को निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे पितामह स्व० श्री रामजीदास जी ८० वर्ष पूर्व (वि० संवत् १९३४ मे) व्यवसायार्थ कराची गये थे और तभी से हम लोग वहाँ रहते आये थे। अत श्री मोहता जी के सुविख्यात पिता स्व० रायवहादुर सेठ गोवर्धनदास जी मोहता, ओ० बी० ई० जब से कराची पधारे तभी से मेरे पूर्वजो का उनसे निकट सम्पर्क रहा है जो अब तक चला आ रहा है। मुझे तो इनके परिवार ने यहाँ तक अपनाया कि मैं हरियाणे का होते हुए भी मेरी भाषा ऐसी ठेठ बीकानेरी बन गई कि बहुत लोग प्राय मुझे बीकानेर का ही समझते हैं। इसी नाते मैं अपने सक्षिप्त सस्मरण लिखने का साहस कर रहा हूँ। सम्भव है अल्पज्ञता के कारण मेरा दृष्टिकोण उतना विशाल न रहा हो जितना कि पूज्य मोहता जी के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिये आवश्यक था। तथापि मेरे संशयात्मक स्वभाव ने दीर्घकाल के अध्ययन के बाद उन्हें एक तपस्वी के रूप मे स्वीकार किया है।

सन् १९२४ के करीब स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानो की एक पुस्तक से शरीर और आत्मा का भेद जाना जिससे आध्यात्मिक विषय की ओर मेरा कौतूहल बढा। सन् १९२७ मे जब सेठ रामगोपाल जी मोहता कराची पधारे तब उनके कपडा मारकेट स्थित श्री सत्य नारायण जी के मन्दिर मे उनका सत्सग आरम्भ हुआ। अब तक मेरी जानकारी मे, या यूँ कहिए कि मेरी भावनाओ मे मोहता जी एक शुष्क, कठोर, क्रोधी एवं अभिमानी स्वभाव के बहुत बडे धनी के रूप मे थे जिनसे सब डरते थे। इनके परिवार के प्रायः सभी छोटे बडो का स्वभाव विनम्र और हंसमुख था। इनकी पूज्यनीया माता जी तो साक्षात मातृत्व की प्रतिमा थी। उन्हें अपने साँसारिक वैभव-समृद्धि आदि का जैसे ज्ञान ही नही था। वे सब को आदर, सत्कार, वात्सल्य आदि से मुदित

करती थी, किन्तु लोगो की दृष्टि मे सेठ जी का स्वभाव सर्वथा भिन्न था। इन्हें हसते देखने का सौभाग्य तो शायद ही कभी किसी को प्राप्त हुआ हो। इनके तेवर सदा ही तने रहते थे। अपनी विभिन्न दुकानो, दफ्तरो आदि का निरीक्षण करके जब ये पीठ फेरते तब वहाँ के कार्यकर्ता सन्तोप की लम्वी सांस लेते और उनकी जान मे जान आती।

मोहता जी जैसे अत्यन्त वैभवशाली व्यक्ति की ऐसी प्रकृति होना कोई अनोखी वात नही थी। वे कराची के या यो कहिए कि सिन्धु देश के सबसे बडे व्यवसाइयो और उद्योगपतियो मे थे। स्टेनर्स कम्पनी, एलिगर मोहता कम्पनी, बी० आर० हरमन एण्ड मोहता लिमिटेड, एस० जी० मोहता कम्पनी आदि जैसे दफ्तर और कारखाने, मोतीलाल गोवर्धन दास, गोवर्धनदास रामगोपाल, रामगोपाल शिवरतन, शिवरतन चादरतन आदि नामो की दुकानें, प्रीतमाबाद की शूगर मिल तथा कृपि उद्योग, एव सिन्ध, पजाब तथा राजस्थान मे फैली हुई इनकी शाखाओ और एजेन्सियो की शृखला के कारण ये वहाँ के 'मर्चेन्ट प्रिन्स' कहलाते थे। करांची की नगर पालिका (म्युनिसिपैलिटी) को सबसे अधिक जायदाद कर (हाउस टैक्स) देने वालो मे इनका नम्बर चोटी पर था या शायद दूसरा नम्बर था। नगर की भव्य अट्टालिकाओ मे इनकी ही इमारतो की सख्या अधिक थी। गोवर्धनदास मोहता मारकेट, मोहता पैलेस, मोहता बिल्डिग, मोहता हाउस, मोहता गार्डन, मोहता थियेटर, मोहता इस्टेट, रामगोपाल मोहता जिमखाना, गोवर्धनदास आई-अस्पताल प्रभृति इमारतें आज भी वहाँ इनके वैभव का स्मरण करा रही हैं। अत ऐसे प्रभुताशाली व्यक्ति के विषय मे यदि कोई अनोखी वात थी तो वह यह कि वे इतने बडे परिवर्तन की इतनी गहराई मे कैसे उतर सके? विश्वास नही हो रहा था बहुतो को।

एक बडे धनाढ्य, और वह भी ऐसे स्वभाव के हो तो फिर उनसे सत्सग का क्या सम्बन्ध हो सकता है? मेरे मन मे शकाओ का सघर्ष हुआ—तथापि कौतूहलवश मैं सत्सग मे गया। इनके सत्सग मे इनके आत्मीय स्वजन और नौकर चाकर अच्छी सख्या मे आते थे। मैं भी उन दिनो इन्ही की नौकरी मे था। सत्सग मे गीता तथा स्वामी रामतीर्थ जी के व्याख्यान आदि पढे जाते थे जिनका विवेचन मोहता जी करते थे। सौभाग्यवश रामतीर्थ जी के व्याख्यानो की पुस्तक मे से पढकर सुनाने का मौका मुझे दिया गया। अब मुझे कुछ रस आने लगा और मेरी जानकारी कुछ वढने लगी। तथापि इस बात पर जैसे मुझे विश्वास ही नही हो रहा था कि साधारण कुरता पहने मुंडित सिर वाले ये वही मोहता जी है जिन्हें सदैव सर्वत्र राजसी ठाठ मे ही देखा जाता था। मैं सोचता था कि क्या पक्की उम्र के ऐसे स्वभाव वाले एक धनी मे इतना महान परिवर्तन इतनी शीघ्र हो सकता है? दूसरी ओर इनकी ढलती उमर के विपरीत जब मैं इनके स्वास्थ्य मे उन्नति और चेहरे पर पहले से अधिक तेज देखता तो सोचता कि शायद यह आत्मोन्नति की ही प्रतिभा हो? ये सकल्प विकल्प मेरे मन मे होते रहे। अनेक ठोस कारणो से मुझ मे इनके जीवन के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और मैंने इनको तपस्वी मान लिया।

अपनी धर्मपत्नी के असामयिक स्वर्गवास का दुख इन्हें विशेष खलता नही दीखता था। सभी लोग भगवान की इस लीला पर टीका किया करते कि उसने इन्हें पुत्र नही दिया, किन्तु इन्हें कभी किसी ने इस बात पर दुख करते नही देखा। इतना धन और पुत्र का अभाव? तथापि इन्होने उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार दूसरा विवाह नही किया। इनके कनिष्ठ भ्राता श्री मूलचन्द जी भी बहुत छोटी अवस्था मे चल बसे थे। उनकी युवा विधवा को देखकर न केवल आत्मीयजन वरन् सारा समाज दुखी था। किन्तु ये कभी शोकातुर नही देखे गये। इनकी एक मात्र सतान श्रीमती सुगनी बाई भी इनके आध्यात्मवाद मे प्रवेश करने के वाद चल वसी। वह चोट लोगो की दृष्टि मे बहुत कडी थी। सब की निगाहें इन पर पडी, किन्तु इन्हें सदा की भाँति स्थिर पाया। कोई दुख के आसार नजर नही आए। इन सब वातो से मुझे व्यक्तिगत रूप से एक बहुत बडा प्रत्यक्ष प्रमाण मिला। सन् १९३४ मे विलायत से लौटने पर मैं देश, जाति और सस्कृति की सेवा के उद्देश्य से

से एक फिल्म कम्पनी सगठित करना चाहता था। कराची से इनके छोटे सहोदर रावबहादुर श्री शिवरतन जी के आदेश से मैं इनके पास कलकत्ते पहुँचा। उस समय फिल्म व्यवसाय बहुत बदनाम था और मुझे स्वप्न मे भी आशा न थी कि ये मेरी योजना मे कोई दिलचस्पी लेंगे। किन्तु इन्होने सब सुनकर मुझे पूर्ण प्रोत्साहन दिया और न केवल स्वयं सहमत हुए वरन् अपने समधी सेठ जुगल किशोर जी बिडला को भी साथ लेने का विचार किया। मुझे इनके विचार स्वातन्त्र्य पर आश्चर्य हुआ। मुझे दूसरे दिन आकर इनसे एक शिफारशी पत्र श्री बिडला जी के नाम ले जाने का आदेश हुआ, किन्तु उसी दूसरे दिन इनकी अत्यन्त वात्सल्य भाजन अनुजवधू (स्व० श्री मूलचन्द जी की विधवा धर्मपत्नी) का देहावसान इनके सामने ही हो गया। मैं समवेदना प्रकट करने पहुँचा तो इन्हें सदा की तरह बेफिक्र पाया। ये अपने पत्र लेखन आदि मे व्यस्त थे। मेरे कुछ कहने सुनने से पहले ही इन्होंने वही मेरी योजना की बात छेड दी और मुझे पुन प्रोत्साहित करते हुए श्री बिड़ला जी के नाम एक पत्र लिख दिया। मुझे इनकी स्थिरता पर बडा आश्चर्य हुआ और वही मेरी रही सही सब शकाओ का समाधान हो गया। मैंने जान लिया कि वास्तव मे यह इतना आश्चर्य जनक परिवर्तन भीतर और बाहर सब जगह हो चुका है। किन्तु मैं निश्चय न कर सका कि मैं अपनी श्रद्धा किस तरह प्रकट करूँ। अतः एकलव्य की तरह मैंने इन्हें मन ही मन प्रणाम किया।

सन् १९३८ मे जब मुझे भयजनित मानसिक उद्वेग की बीमारी हुई तब मैंने इन गुरुदेव को अपनी वेदना लिखी और इनके उत्तर से मुझे कुछ शान्ति मिली। सन् १९४३ मे जब ये दिल्ली मे अखिल भारतीय मारवाडी सम्मेलन का सभापतित्व करने गये और मैं वहाँ बीमार था तो इनके फिर दर्शन हुए। तब मैंने देखा कि वृद्धावस्था मे इनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। इनके चेहरे पर तेज बढता ही जा रहा है। सन् १९४४–४५ मे एक बार फिर कराची मे उसी श्री सत्यनारायण जी के मन्दिर मे इनके उसी सत्सग का सुअवसर मिला। अब की बार मे आध्यात्म विषय पर कुछ चर्चा करने लायक हो गया था इसलिए सत्सग का विशेष लाभ उठाया। कई बातो मे मैं इनसे सहमत नही हो पाता था, किन्तु इस पर इन्हे कोई क्षोभ न था। ये समुद्र की तरह शान्त थे।

मुझ-सा अल्पज्ञ अपने आपको मोहताजी जैसे महान ज्ञानी का शिष्य बताये यह मेरी ओर से एक प्रकार का ढोग ही है, किन्तु जो कुछ भी है और जैसे भी है मेरे तो ये गुरुओ मे हैं ही। मेरे बहुमुखी, विफल, विकृत एव तमोगुणी जीवन मे यदि कही किसी तरह की सफलता, सौन्दर्य एवं प्रकाश की कुछ क्षीण रेखाएँ हैं तो उनका श्रेय कुछ ऐसे गुरुजनो ही को है जिनमे पूज्य मोहता जी प्रधान हैं। आज के भौतिकता मे डूबे हुए अवनत संसार मे हमे मोहता जी जैसे अनासक्त जीवन से ही भूतकाल के जनकादिक जैसे विदेहो के जीवन का प्रत्यक्ष आभास मिलता है।

भगवान ऐसे महात्माओ को इस तम ग्रसित ससार के उद्धारार्थ चिरकाल तक इस भूमि पर रहने दे। इस कामना के साथ मेरा पूज्य मोहता जी को श्रद्धामय प्रणाम है।

नाथूराम गोयल

(मोहता जी के पुराने अंतरंग साथी।)

२५

मौलिक मार्ग के पथिक

आदरणीय रामगोपाल जी से मेरा सम्पर्क सन् १६१५ से है। उन्होंने अपनी युवावस्था मे ही परम्परा से न चिपक कर मौलिक मार्ग ग्रहण किया। शुरू से ही उनका ध्यान जातीय सुधार और उद्योग की तरफ रहा। इसी कारण मेरा उनकी तरफ आकर्षण हुआ। और उसके बाद हमारी मैत्री और सम्बन्ध बढता चला गया।

मोहता जी से सभी बातो मे मेरे विचार मेल नही खाते और खाना भी नही चाहिये। पर उनके विचारो की स्वतन्त्रता और उनके धैर्य का मैं उपासक हूँ। सस्मरण लिखना, यह कोई बहुत आवश्यक नही है। आवश्यकता है कि सस्मरणो का सार मैं आपको लिखूं और वही मैं आपको लिख रहा हूँ। मोहता जी के जीवन से कई सवक मिलते हैं जो ग्राह्य हैं।

घनश्यामदास बिड़ला

(सुप्रसिद्ध उद्योगपति, दानवीर और शिक्षाप्रेमी।)

•

२६

बलवान आत्मा

विद्यार्थी अवस्था से सार्वजनिक कार्य से मुझे रुचि रही। उस समय सामाजिक सुधार की रुचि अन्य क्षेत्रो से अधिक प्रवल थी। इस मानसिक वृत्ति के कारण विद्यार्थी अवस्था मे ही मैंने श्री रामगोपाल जी मोहता के विपय मे कुछ सुना था। वे बीकानेर के प्रमुख सपत्तिशालियो में से एक होते हुए भी कट्टर समाज सुधारक हैं। वे नवीन विचारो के प्रवर्तक हैं, विद्वान हैं और प्राचीन ग्रथो का अवलोकन कर लेखन कार्य भी करते हैं। उसी समय मेरे दिल मे उनके लिए काफी आदर रहा और इच्छा होती थी कि कभी उनसे मिलूं।

सन् १६२२ मे माहेश्वरी महासभा का अधिवेशन अकोला मे हुआ। मैं उस समय स्वागत समिति का मन्त्री था। महासभा के अध्यक्षपद के लिए स्वागत समिति मे विचार विनिमय चल रहा था। तब जो कुछ नाम सम्मुख आये उन मे एक नाम श्री रामगोपाल जी मोहता का भी था। उस समय जो सामाजिक अवस्था थी उसके अनुसार अध्यक्ष धनवान हो, समाज मे उस की प्रतिष्ठा हो और वह समाज सुधारक भी हो इन तीन गुणों की आवश्यकता होती थी। धन का उस समय व्यक्तित्व के नाते काफी महत्व था। श्री रामगोपालजी मे तीनो गुण थे, परन्तु उनकी समाज सुधार की गति इतनी तीव्र थी कि उस समय का माहेश्वरी समाज उसके साथ चल नही सकता था। अत उनका नाम विनय के साथ अलग हटा और अन्य व्यक्ति का, जो धनवान और सामयिक समाज सुधारक था, सभापति के पद के लिए निर्वाचन हुआ। इस घटना ने मेरे दिल मे श्री रामगोपाल जी के प्रति अधिक आदर उत्पन्न किया। वही सच्चा समाज सुधारक है जो सामयिक समाज के आगे चलता है और इतना आगे चलता है कि वह समाज की गति को धक्का देकर अप्रिय भी हो सकता है। श्री रामगोपाल जी के लिए उस समय समाज मे आदर के साथ अप्रियता का दर्शन भी मैं कर सका।

इसी वीच श्री रामगोपाल जी के कुछ लेख और विचार मैंने पढे। मुझ पर उनका कुछ असर हुआ। मैं दिल मे कल्पना करता रहा कि किसी दिन वे माहेश्वरी महासभा के सभापति होंगे, पर वे तव ही हो सकेंगे जव माहेश्वरी समाज उनके प्रभावी समाज-सुधारकत्व की आँच सहन कर सकेगा।

समय आया। माहेश्वरी समाज में अनेक क्रान्तिमय विचारधाराएँ शीघ्र गति से प्रवाहित होने लगी। कोलवार आन्दोलन आया। समाज मे प्राचीन और नवीन विचारो मे घोर सघर्ष हुआ। माहेश्वरी समाज के नव विचारो की परीक्षा हुई और नव विचार सफल हुए।

माहेश्वरी महासभा का पढरपुर मे अधिवेशन हुआ। श्री रामगोपाल जी एकमत से इस अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए। श्री मोहता जी अपने विचारो मे और कृति मे दृढ रहे, परन्तु अव समाज उनके साथ जाने की शक्ति प्राप्त कर चुका था। मुझे उस दिन अपार हर्ष हुआ जिस दिन श्री मोहता जी ने माहेश्वरी महासभा का सभापतित्व किया।

पढरपुर मे प्रथम वार उनके दर्शन हुए। उनका व्यक्तित्व परिणामकारी दिखाई दिया। उनकी शान्त मुद्रा, उनका स्मित, उनकी गम्भीर चर्चा प्रणाली और उनकी सादगी किसी पर भी असर करने योग्य है। मैंने उनसे अनेक विपयो पर चर्चा की और पाया कि उन्होंने विषयो का गम्भीर अध्ययन किया है।

माहेश्वरी महासभा का, सभापति के स्थान से उन्होने उत्तम कुशलतापूर्वक सचालन किया और प्रतिनिधियो के दिल पर उनके व्यक्तित्व का काफी असर हुआ। पढरपुर के पश्चात् दिल्ली मे उनसे फिर मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी अवस्था काफी वृद्ध थी और शरीर कुछ निर्वल हो गया था, परन्तु उनकी आत्मा मे और विचारों में वही शक्ति थी। चिन्तन और अध्ययन मे उनकी प्रभावी वृत्ति थी। प्रेम से मुझसे मिले और जव जव मैंने उनसे पत्रव्यवहार किया, तव वडी सहृदयता का मुझे परिचय मिला।

श्री मोहता जी से अधिक सम्पर्क मैं प्राप्त न कर सका, परन्तु जो कुछ थोडा सम्पर्क मैंने उनसे प्राप्त किया उस से मैंने एक वलवान और निर्भीक आत्मा के दर्शन किये, जो अपने रास्ते पर चलने की शक्ति रखता है। माहेश्वरी समाज ने उन्हें जन्म दिया, परन्तु वे भारतीय समाज के व्यक्ति वन गये।

विकास में ही जीवन की सफलता है। श्री मोहता जी ने वह प्राप्त की है।

ब्रजलाल वियाणी

("बरार केसरी" के नाम से प्रसिद्ध वियाणी जी यशस्वी लेखक, प्रभावशाली वक्ता और सुयोग्य नेता हैं। १९२० मे एल-एल० बी० की अन्तिम परीक्षा के अवसर पर गांधी जी की पुकार पर शिक्षा का परित्याग कर आप असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। गांधी जी के सभी आन्दोलनो मे आपको लम्वी सजाएँ और नजरवन्दी भोगनी पड़ी। संत विनोवा के वाद युद्ध विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह करने वाले आप दूसरे सत्याग्रही थे। अत्यन्त साधारण स्थिति से अत्यन्त विषम परिस्थितियों में आपने स्वयं अपना निर्माण किया है। वरार प्रदेश काग्रेस, केन्द्रीय एसेम्वली, संविधान परिषद और बरार मध्यप्रान्त विधान सभा के वर्षों सदस्य रहे और वरार मध्यप्रान्त के अर्थमन्त्री के पद को भी सुशोभित किया। मारवाड़ी समाज सुधारक नेताओं मे आपका अग्रणी स्थान है। आपकी लेखनशैली मौलिक, रुचिपूर्ण और हृदयग्राही है। आपकी वाणी ओजस्वी और व्यक्तित्व आकर्षक हैं।)

२५

मौलिक मार्ग के पथिक

आदरणीय रामगोपाल जी से मेरा सम्पर्क सन् १६१५ से है। उन्होंने अपनी युवावस्था मे ही परम्परा से न चिपक कर मौलिक मार्ग ग्रहण किया। शुरू से ही उनका ध्यान जातीय सुधार और उद्योग की तरफ रहा। इसी कारण मेरा उनकी तरफ आकर्षण हुआ। और उसके बाद हमारी मैत्री और सम्बन्ध बढता चला गया।

मोहता जी से सभी बातो मे मेरे विचार मेल नही खाते और खाना भी नही चाहिये। पर उनके विचारो की स्वतन्त्रता और उनके धैर्य का मैं उपासक हूँ। सस्मरण लिखना, यह कोई बहुत आवश्यक नही है। आवश्यकता है कि सस्मरणो का सार मैं आपको लिखूं और वही मैं आपको लिख रहा हूँ। मोहता जी के जीवन से कई सबक मिलते हैं जो ग्राह्य हैं।

घनश्यामदास बिडला

(सुप्रसिद्ध उद्योगपति, दानवीर और शिक्षाप्रेमी।)

●

२६

बलवान आत्मा

विद्यार्थी अवस्था से सार्वजनिक कार्य से मुझे रुचि रही। उस समय सामाजिक सुधार की रुचि अन्य क्षेत्रो से अधिक प्रबल थी। इस मानसिक वृत्ति के कारण विद्यार्थी अवस्था मे ही मैंने श्री रामगोपाल जी मोहता के विषय मे कुछ सुना था। वे बीकानेर के प्रमुख सपत्तिशालियों मे से एक होते हुए भी कट्टर समाज सुधारक हैं। वे नवीन विचारो के प्रवर्तक हैं, विद्वान हैं और प्राचीन ग्रथो का अवलोकन कर लेखन कार्य भी करते हैं। उसी समय मेरे दिल मे उनके लिए काफी आदर रहा और इच्छा होती थी कि कभी उनसे मिलूं।

सन् १६२२ मे माहेश्वरी महासभा का अधिवेशन अकोला मे हुआ। मैं उस समय स्वागत समिति का मन्त्री था। महासभा के अध्यक्षपद के लिए स्वागत समिति मे विचार विनिमय चल रहा था। तब जो कुछ नाम सम्मुख आये उन मे एक नाम श्री रामगोपाल जी मोहता का भी था। उस समय जो सामाजिक अवस्था थी उसके अनुसार अध्यक्ष धनवान हो, समाज मे उस की प्रतिष्ठा हो और वह समाज सुधारक भी हो इन तीन गुणो की आवश्यकता होती थी। धन का उस समय व्यक्तित्व के नाते काफी महत्व था। श्री रामगोपालजी मे तीनो गुण थे, परन्तु उनकी समाज सुधार की गति इतनी तीव्र थी कि उस समय का माहेश्वरी समाज उसके साथ चल नही सकता था। अत उनका नाम विनय के साथ अलग हटा और अन्य व्यक्ति का, जो धनवान और सामयिक समाज सुधारक था, सभापति के पद के लिए निर्वाचन हुआ। इस घटना ने मेरे दिल मे श्री रामगोपाल जी के प्रति अधिक आदर उत्पन्न किया। वही सच्चा समाज सुधारक है जो सामयिक समाज के आगे चलता है और इतना आगे चलता है कि वह समाज की गति को धक्का देकर अप्रिय भी हो सकता है। श्री रामगोपाल जी के लिए उस समय समाज मे आदर के साथ अप्रियता का दर्शन भी मैं कर सका।

इसी बीच श्री रामगोपाल जी के कुछ लेख और विचार मैंने पढे। मुझ पर उनका कुछ असर हुआ। मैं दिल मे कल्पना करता रहा कि किसी दिन वे माहेश्वरी महासभा के सभापति होंगे, पर वे तब ही हो सकेंगे जब माहेश्वरी समाज उनके प्रभावी समाज-सुधारकत्व की आँच सहन कर सकेगा।

समय आया। माहेश्वरी समाज मे अनेक क्रान्तिमय विचारधाराएँ शीघ्र गति से प्रवाहित होने लगी। कोलवार आन्दोलन आया। समाज मे प्राचीन और नवीन विचारो मे घोर संघर्ष हुआ। माहेश्वरी समाज के नव विचारो की परीक्षा हुई और नव विचार सफल हुए।

माहेश्वरी महासभा का पढरपुर मे अधिवेशन हुआ। श्री रामगोपाल जी एकमत से इस अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए। श्री मोहता जी अपने विचारो मे और कृति मे दृढ रहे, परन्तु अब समाज उनके साथ जाने की शक्ति प्राप्त कर चुका था। मुझे उस दिन अपार हर्ष हुआ जिस दिन श्री मोहता जी ने माहेश्वरी महासभा का सभापतित्व किया।

पढरपुर मे प्रथम बार उनके दर्शन हुए। उनका व्यक्तित्व परिणामकारी दिखाई दिया। उनकी शान्त मुद्रा, उनका स्मित, उनकी गम्भीर चर्चा प्रणाली और उनकी सादगी किसी पर भी असर करने योग्य है। मैंने उनसे अनेक विषयो पर चर्चा की और पाया कि उन्होंने विषयो का गम्भीर अध्ययन किया है।

माहेश्वरी महासभा का, सभापति के स्थान से उन्होंने उत्तम कुशलतापूर्वक सचालन किया और प्रतिनिधियो के दिल पर उनके व्यक्तित्व का काफी असर हुआ। पढरपुर के पश्चात् दिल्ली मे उनसे फिर मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी अवस्था काफी वृद्ध थी और शरीर कुछ निर्बल हो गया था, परन्तु उनकी आत्मा मे और विचारो मे वही शक्ति थी। चिन्तन और अध्ययन मे उनकी प्रभावी वृत्ति थी। प्रेम से मुझसे मिले और जब जब मैंने उनसे पत्रव्यवहार किया, तब बडी सहृदयता का मुझे परिचय मिला।

श्री मोहता जी से अधिक सम्पर्क मैं प्राप्त न कर सका, परन्तु जो कुछ थोडा सम्पर्क मैंने उनसे प्राप्त किया उस से मैंने एक बलवान और निर्भीक आत्मा के दर्शन किये, जो अपने रास्ते पर चलने की शक्ति रखता है। माहेश्वरी समाज ने उन्हें जन्म दिया, परन्तु वे भारतीय समाज के व्यक्ति बन गये।

विकास मे ही जीवन की सफलता है। श्री मोहता जी ने वह प्राप्त की है।

ब्रजलाल बियाणी

("बरार केसरी" के नाम से प्रसिद्ध बियाणी जी यशस्वी लेखक, प्रभावशाली वक्ता और सुयोग्य नेता हैं। १९२० मे एल-एल० बी० की अन्तिम परीक्षा के अवसर पर गांधी जी की पुकार पर शिक्षा का परित्याग कर आप असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। गांधी जी के सभी आन्दोलनों मे आपको लम्बी सजाएँ और नजरबन्दी भोगनी पड़ी। संत विनोबा के बाद युद्ध विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह करने वाले आप दूसरे सत्याग्रही थे। अत्यन्त साधारण स्थिति से अत्यन्त विषम परिस्थितियो मे आपने स्वयं अपना निर्माण किया है। बरार प्रदेश कांग्रेस, केन्द्रीय एसेम्बली, संविधान परिषद और बरार मध्यप्रान्त विधान सभा के वर्षों सदस्य रहे और बरार मध्यप्रान्त के अर्थमन्त्री के पद को भी सुशोभित किया। मारवाड़ी समाज सुधारक नेताओ मे आपका अग्रणी स्थान है। आपकी लेखनशैली मौलिक, रुचिपूर्ण और हृदयग्राही है। आपकी वाणी ओजस्वी और व्यक्तित्व आकर्षक हैं।)

२७

श्रद्धा के पात्र मोहता जी

वयोवृद्ध श्री रामगोपाल जी मोहता से मेरा बहुत समय से घनिष्ट परिचय है और वह सदैव मेरे श्रद्धा के पात्र रहे रहे हैं। उनका क्रियाशील जीवन, त्यागवृत्ति, दानशीलता, क्रान्तिपूर्ण विचार एव सेवामयी साधना आदि अनुकरणीय विशेषताएँ है।

कलकत्ता के पास लिलुआ मे स्थित हिन्दू अबला आश्रम व अनाथालय नामक सार्वजनिक सस्था से मेरा आरम्भ से ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। जैसा नाम से ही बोध होता है यह सस्था गृहविहीन, आश्रयहीन, समाजत्रस्त, अनाथ विधवाओ, अबलाओ, कन्याओ, तथा बच्चो को शरण देने व उनके भरणपोषण तथा शिक्षण के लिए स्थापित की गई थी। इसी वर्ष यह सस्था बगाल सरकार के सुपुर्द कर दी गई है। मुझे वर्षो इसकी प्रबन्धकारिणी का अध्यक्ष रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आरम्भ मे उचित स्थान के अभाव मे इस सस्था को अपने कार्यो मे बहुत असुविधाएँ रहा करती थी। सन् १९३० के लगभग की बात है। उस समय लोगो की, विशेषकर समाज की, इस प्रकार के सेवा कार्यों के प्रति बहुत रुचि नही थी और न ऐसे कार्यों मे भाग लेने वालो को समाज की ओर से सहयोग मिलता था। ऐसे समय मे आपने लगभग २० बीघा के क्षेत्रफल का कलकत्ता के पास लिलुआ मे स्थित अपना वृहत् बगान और उसमे बना हुआ दोमजला मकान उक्त सस्था के नि शुल्क उपयोग के लिए देकर अपनी अपूर्व उदारता का परिचय दिया जिससे इस सस्था की बडी समस्या का सहज ही मे समाधान होगया। कलकत्ता के आस पास मे लिलुआ एक बडा भारी औद्योगिक क्षेत्र है और वहाँ की भूमि औद्योगिक दृष्टिकोण से बहुत कीमती है। आप चाहते तो इस सम्पत्ति का अन्यरूप से उपयोग कर सकते थे या इसे ऐसे धर्मार्थ कार्यो मे लगा सकते थे जिनसे उनका बडा नाम हो सकता था। पर आप जैसे सच्चे सेवाव्रतियो को नाम की भूख नही होती। लगभग २७ वर्ष तक इस स्थान मे अनगिनत निराश्रय एव अनाथ अबलाओ व बच्चो को शरण मिलती रही। और इस वर्ष जब यह सस्था बगाल सरकार को सुपुर्द कर दी गई तो आपने भी इस भूमि का अधिकाश भाग, १५ बीघा से अधिक, बगाल सरकार को उदारतापूर्वक दान मे दे दिया। इस भूमि का शेष भाग भी सार्वजनिक सस्था के काम मे आये ऐसी आपकी इच्छा है।

जब भी मुझे आपसे किसी काम के लिए बात करने का अवसर प्राप्त हुआ, आपका सहर्ष सहयोग सदा मिलता रहा। परोपकार और सहयोग के लिए आपकी प्रवृत्ति सदैव प्रबल देखी गई।

यह तो केवल केवल एक मात्र घटना का उल्लेख है जिससे इन पक्तियो के लेखक का विशेष परिचय है, जिसे कभी भुलाया नही जा सकता। उनके जीवन मे ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलेंगे जिनसे अनगिनत नरनारियो का उपकार हुआ है और जिनसे उपकृत मानव आपका सदैव मूक अभिनन्दन करता रहेगा।

जिनका जीवन सर्वदा स्तुत्य व अभिनन्दनीय रहा है उनके अभिनन्दन का यह आयोजन केवल हमारे सतोष व समाधान के लिए किया गया है।

प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

(आप कलकत्ता के बहुत पुराने, लोकप्रिय सार्वजनिक, सामाजिक और राजनीतिक नेता हैं। काग्रेस मे विशेष भाग लेते रहे हैं। कलकत्ता के मारवाडी समाज के जो युवक सब से पहले सरकार के कोपभाजन बने थे उनमे आप प्रमुख थे। तभी से सार्वजनिक प्रवृतियों में आप विशेष भाग लेते हैं। अनेक सार्वजनिक सस्थाओं

तथा धर्मादा ट्रस्टों के आप पदाधिकारी हैं। कलकत्ता व बंगाल के समान असम मे भी आपकी वडी प्रतिष्ठा है। आप यशस्वी एटार्नी-एट-ला हैं। इन दिनो मे संसद की राज्यसभा के सदस्य हैं।)

०

२८

मातृ पूजा का अनुष्ठान

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्मान मे अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। श्री मोहता जी समाज के वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, सेवा परायण सुधारवादी सज्जन हैं। उन्होने ५० वर्ष पहले जिस समय समाज सुधार की वात सोची उस समय समाज की जो स्थिति थी उसमे समाज सुधार की वात कहना व करना कितना कठिन था उसकी आज कल्पना भी नही की जा सकती। मोहता जी जैसे सज्जनो के प्रयत्न का फल है कि आज उग्र से उग्र सामाजिक कार्य करना सहज हो गया है। पर, इस स्थिति को पैदा करने के लिए कितनी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा है, क्या क्या कष्ट उठाने पडे हैं, कैसे कैसे लाञ्छन अपमान सहन करने पडे हैं, उनका विवरण ही मोहता जी का जीवनवृत्त है। मोहता जी का कार्यक्षेत्र राजस्थान और राजस्थान मे भी वीकानेर रहा। वहाँ राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से काम करना तो दूर सोचने वालो की भी वहुत कमी थी। पर मोहता जी ने यह सस्कार यानी मानवता के सस्कार अपनी आध्यात्मिक विचारधारा से ग्रहण किये हैं। इसलिए विरोध का तथा अन्य किसी कठिनाई का प्रभाव उन पर कम-से-कम हुआ। वे अपने विवेक के सहारे अपना काम करते गये। वे शुष्क सुधारवादी ही नही हैं किन्तु उनमे सामाजिकता भी खूव है। इसलिए उनको साथी भी मिलते रहे। वीकानेर मे मोहता जी के साथियो की एक छोटी सी टोली रही जो, वीकानेर मे रसिकता के साथ-साथ उनके कारण नयी भावना ग्रहण करती रही।

समाज सुधारक को शिक्षा के क्षेत्र का सहारा लेना ही पडता है। मोहता जी ने लडके और लडकियो दोनो की शिक्षा का प्रवन्ध करने मे पहल की है। उनके स्थापित किए हुए मोहता मूलचन्द विद्यालय, श्री भैरव रत्न मातृ पाठशाला और महिला मडल इसकी साक्षी हैं। पुस्तकालय, सगीत विद्यालय तथा भजनो गानो तथा सत्सग आदि द्वारा भी सुधार का प्रचार कार्य उन्होने किया, परन्तु जव हरिजनो का कार्य करने लगे, विधवा विवाह की वात करने लगे, पर्दा प्रथा का वहिष्कार करने के लिए कहा, वाल विवाह और वृद्ध विवाह का विरोध किया, स्त्रियो पर होने वाले अन्यायो का विरोध किया तब उनको समाज का कोप भाजन वनना पडा। परन्तु वे अपने विश्वास के साथ आगे वढते रहे। हर समाज सुधारक के जीवन मे ऐसे अवसर आया करते हैं जव वह समाज के विरोध का, कोप का, रोप का और अपमान का शिकार होता है। "न्यायेन पंथा विचलन्ति न धीरा" की तरह जो अपने उद्देश्यो का सच्चाई के साथ पालन करते हैं अन्त मे समाज उनका आदर और उनके कार्यों की प्रशंसा करने लग जाता है। विना किसी स्वार्थ के मानवीय विकास और कर्त्तव्य की भावना से किये हुए कामो का प्रभाव पडे विना नही रहता।

श्री मोहता जी के विचारो का विशेप प्रभाव उनके परिवार के प्राय. समस्त लोगों पर पडा और घर के सारे लोग उनकी विचारधारा से सोचने विचारने लगे। मोहता जी के छोटे भाई श्री शिवरतन जी मोहता की

पत्नी ने शायद बीकानेर मे सबसे पहले परदे का त्याग किया और उनके घर मे एक नवीन वातावरण पैदा हुआ। उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि उनका परिवार सुधार प्रिय बन गया।

सम्भवत सन् १९२४-२५ की बात होगी जब हिन्दी मासिक "चाद" द्वारा स्त्रियो के अधिकार, विकास, स्वतन्त्रता और उन्नति का जोरो से प्रतिपादन किया जा रहा था। कोई भी स्त्री उन्नति का पक्षपाती "चाद" के लेखो से प्रेरणा और उत्साह प्राप्त किए बिना नही रह सकता था। शायद बहन महादेवी जी उन दिनो "चाद" का सम्पादन करती थी। "अपनी बात" के शीर्षक से उनके लेख बहुत ही सुन्दर, पठनीय और मननीय होते थे। इसके अलावा भी चाद कार्यालय द्वारा स्त्रियो मे नवीन जागृति उत्पन्न करने का साहित्य प्रकाशित किया जाता था। पता लगाने पर मालूम हुआ कि इस प्रेरणा के पीछे श्री रामगोपाल जी मोहता का हाथ था। उसी समय से मैं मोहता जी की ओर आकर्षित हुआ। जैसे-जैसे उनके बारे मे जानकारी बढी, उनकी लिखी पुस्तकें पढने का मौका मिला, उनके साथियो से उनके बारे मे जो कुछ सुना और उनकी दिनचर्या की बातें मालूम हुईं उनसे ऐसा लगा कि उनके हृदय मे मातृजाति की पूजा तथा स्त्री जाति की उन्नति का विशेष भाव है।

समाज मे स्त्रियो की, हरिजनो की जो स्थिति है वह सब दबी हुई अवस्था के कारण है। उनके साथ समाज जो वर्ताव करता है वह मानवीय नही है। मुझे तो ऐसा लगता है कि भारतीय नारी की स्थिति समाज मे किसी भी समय बहुत उन्नत नही रही। वह पतियों, पिताओ और पुत्रो के द्वारा भी त्रसित और अपमानित होती रही है। भारतीय इतिहास ऐसे उदाहरणो से भरा पडा है, पर उन सब का यहाँ उल्लेख नही किया जा सकता। महाभारत काल के सबसे पवित्र पुरुष और महान त्यागी पितामह भीष्म के द्वारा एक साथ तीन स्त्रियो को स्वयम्बर से उठाकर ले जाना, युधिष्ठर जैसे महात्मा, धर्मराज के द्वारा द्रोपदी जैसी स्त्री को जुए के दाव पर लगा देना और फिर भरी सभा मे भीष्म, द्रोण जैसे महानुभावो के सामने उसको वस्त्रहीन करने का साहस करना और उसका जरा भी किसी ने नैतिक या अन्य किसी प्रकार का विरोध न करना भारतीय नारी की दयनीय स्थिति को प्रगट करता है। उसके बाद के युग मे कबीर जैसे क्रान्तिकारी सन्त को भी कहना पडा— 'नारी नर्क का दुवारे, मूर्ख क्या देख दिवाना हुआ रे।' और तुलसीदास जी ने तो यह कह दिया कि—

"विधि हू न नारी हृदय गति जानी
सकल कपट अघ अवगुन खानी।"

भला हो महात्मा गाधी का जिन्होंने अपने आश्रम मे नारी को बराबर का स्थान दिया और उसके विकास के लिए भारतीय समाज मे एक नई लहर पैदा कर दी। श्री मोहता जी ने मेरे ख्याल से इन्हीं सब कारणो से व्यथित होकर नारी जगत की उन्नति का प्रयत्न शुरू किया होगा।

मोहता जी के अनेक कामो मे मुझे उनका मातृपूजा का अनुष्ठान सबसे प्रिय और सबसे श्रेष्ठ लगता है। कलकत्ते मे अपना लिलुवे का बगीचा आपने अपने छोटे भाई की पत्नी के नाम पर समाज से वहिष्कृत, प्रताडित, भूली-भटकी वहनो की सेवा और प्रश्रय पाने के लिए दिया था। जिसमे आज भी अवला आश्रम चल रहा है। इसी प्रकार के अन्य कई काम भी उन्होंने किये हैं। अव उनकी आयु ८० वर्ष से अधिक हो गई है। इस वृद्धावस्था मे भी वे सतत प्रयत्नशील हैं और उनके द्वारा समाज हित के अनेक काम हो रहे हैं। आज समाज मे नई विचार-धारा प्रवेश कर रही है पर मोहता जी इस अवस्था मे भी अनेक सुधारको से आगे हैं। अपने प्रगतिशील विचारो के कारण वे युग की गति को पहचानते हैं, उसके आगे चल पाते हैं। ईश्वर की हम पर कृपा हो कि ऐसे विशिष्ट

व्यक्ति जितने दिन समाज मे जीवित रह सकें उतना ही समाज का कल्याण है। इन शब्दो मे मैं इस अभिनन्दन अवसर पर मोहता जी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

सीताराम सेक्सरिया

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन के महिला सेक्सरिया पुरस्कार के प्रतिष्ठाता श्री सेक्सरिया जी गांधीवादी सुधारक और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं। गांधी युग में आप कई बार जेल गए हैं। रचनात्मक कार्यों मे आपकी सबसे अधिक रुचि महिला जागृति मे है। मातृ पूजा का अनुष्ठान आपके जीवन का सबसे बड़ा व्रत है। कलकत्ता मे आपने इस क्षेत्र में अत्यन्त ठोस काम किया है और महिलाओं सम्बन्धी अनेक संस्थाओं का गठन एवं संचालन किया है। इस क्षेत्र मे आपने मोहता जी की तरह ही इस सेवा पथ का अवलम्बन किया है।)

•

२९

उनकी मान्यताएँ सफल हों

श्री रामगोपाल जी मोहता के अभिनन्दन की बात जानकर प्रसन्नता हुई। समाज मे प्रचलित हानिकारक कुरीतियो को तोडने मे तथा स्वस्थ साहित्य, शिक्षा और संगीत के प्रचार मे समाज को उनकी अच्छी देन है। महिला जागृति के सम्बन्ध मे उनके द्वारा किए गए काम का महत्व मारवाडी समाज तथा राजस्थानी जनता के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। हरिजनो की सेवा का भी आपने आदर्श उपस्थित कर दिखाया है। समाज की आने वाली पीढी उन्हे कृतज्ञता के साथ याद रखेगी। इस अवसर पर श्री मोहता जी के सुखी और दीर्घ जीवन के लिए तथा उनकी मान्यताओ की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनाएँ स्वीकार करे।

भागीरथ कनोडिया

(आप कलकत्ता के लोक सेवा भावी, उदारचेता और सात्विक वृत्ति के अत्यन्त सरल सज्जन हैं। १९४२ मे आप को लम्बे समय तक आप की सार्वजनिक प्रवृत्तियो के कारण नजरबन्द रखा गया था। गांधीजी की विचारधारा के मानने वाले सर्वथा मौन रहकर सब रचनात्मक प्रवृत्तियों में आप पूरा सहयोग देते हैं। कलकत्ता और राजस्थान मे आप ने लाखो रुपया सार्वजनिक संस्थाओं तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए दिया और दिलवाया है। महिला उद्धार, हरिजन सेवा, समाज सुधार तथा शिक्षा प्रसार आदि मे आप भी मोहता जी के ही समान अभिरुचि रखते हैं।)

•

३०

क्रियाशील जीवन का आदर्श

श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता के साथ कभी प्रत्यक्ष परिचय न होने पर भी आपके सात्विक जीवन के सम्बन्ध मे परिचय पाकर मेरा सम्मान और श्रद्धा आपके प्रति उत्तरोत्तर बढती ही गई है और मैंने सदा ही अपने को आपके अत्यन्त समीप अनुभव किया है। आपने गीता को अपने जीवन का आदर्श बनाकर उसके सम्बन्ध मे "सात्विक जीवन", "दैवी सम्पद" तथा "गीता का व्यवहार दर्शन" आदि जो ग्रन्थ लिखे हैं और उसके ढाँचे मे अपने क्रियाशील जीवन का जो आदर्श निर्माण किया है वह हमारे लिए आपकी सबसे बडी देन है। आपके आदर्श सात्विक जीवन से यदि वर्तमान पीढी कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकती है, तो आपका निर्मित आध्यात्मिक साहित्य सदियो तक आगामी पीढियो के लिए प्रेरणा तथा स्फूर्ति का पुंज बना रहेगा और उसके प्रकाश से कितने ही भटकते हुए अपने मार्ग की खोज कर सकेंगे। आपकी गणना इसी साहित्य के कारण देश के मनस्वियो और मनीषियो मे की जाती रहेगी। मैं माहेश्वरी, मारवाडी तथा राजस्थानी होने के नाते पूज्य मोहता जी के समकालीन होने का गौरव अनुभव करता हूँ। आपने यह सिद्ध कर दिया कि कोट्याधिपति होने पर भी मनुष्य कैसे अपने को धार्मिक, सात्विक एव आध्यात्मिक पथ का सफल एव यशस्वी अनुगामी बना सकता है।

पूज्य मोहता जी ने समाज के त्रस्त, पीडित एव शोषित वर्ग, स्त्री समाज तथा हरिजन भाइयो की सेवा को अपने जीवन का व्रत बनाकर सामाजिक कल्याण का भी एक आदर्श हमारे सामने उपस्थित कर दिया। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आपने देशी राज्यो तथा जागीरो मे फैली हुई दास-दासियो की कुप्रथा के उन्मूलन करने मे पहल की और बीकानेर सरीखे दकियानूसी राज्य मे उसके लिए सबसे पहले आवाज उठाई। समाज सुधार के क्षेत्र मे मृतक भोज आदि का अन्त करके शिक्षा प्रसार के लिए जो कार्य आपने किया उससे बीकानेर नगर का तो कायाकल्प ही हो गया। समाज मे प्रचलित अनेक कुरीतियो का आपने न केवल अपने घर से किन्तु बीकानेर नगर से भी उन्मूलन कर दिया। लोकोपकार के कार्य के लिए आपने कडे विरोध और गर्हित लोकापवाद का जिस धैर्य और शान्त भाव से सामना किया उसका उदाहरण कही और मिलना कठिन है। अपने इस धैर्य व शान्त स्वभाव से आपने अपने कट्टर विरोधियो और आलोचको को भी अपना बना लिया, क्योकि उनका उपकार तथा भलाई करने मे भी आप कभी चूके नही। "उदारचरितानातु वसुधैव कुटुम्बकम्" आपके जीवन का आदर्श रहा है।

आपके लोकसेवा के महान कार्य का कुछ परिचय मुझे तब मिला जब १९५१-५२ मे बीकानेर राज्य मे भीषण दुर्भिक्ष पडा था। तब मेरे पास बीकानेर से घास व पत्ती आदि से बनी हुई उन रोटियो का एक बण्डल भेजा गया था जिनसे दुर्भिक्ष पीडित देहाती भाई किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह किया करते थे। तब मैंने लोक सभा मे बीकानेर के दुर्भिक्ष का प्रश्न उठाकर केन्द्रीय सरकार तथा अन्न मत्री का ध्यान उस ओर आकर्षित किया था और उन्होने वहाँ विषम स्थिति का पैदा होना स्वीकार किया था। तब मुझे पता चला था कि किस प्रकार मोहता जी उन दुर्भिक्ष पीडित भाई-बहनो की सेवा और सहायता करने मे लगे हुए थे। उनके कार्यकर्त्ता लारियो पर खाद्य सामग्री और वस्त्र आदि ले जाकर देहातो मे बाँटा करते थे। जो लोग अपने कुलाभिमान के कारण मुफ्त सहायता लेने मे सकोच करते थे उनको उनकी साँत्वना के लिए उधार सहायता दी जाती थी, किन्तु उस उधारी की कोई लिखत-पढत नही की जाती थी। मुझे यह भी पता चला कि मोहता जी के परिवार मे दुर्भिक्ष पीडितो की सेवा और सहायता करना एक पुरानी वश-परम्परा है और उसको आपने लाखो रुपया

श्री गजाधर सोमाणी के सस्मरण मे

नौरग देसर गाँव मे अकाल के समय मोहता जी को घास की रोटी दिखाते हुए वहाँ के किसान ।

मोहता भवन बीकानेर में अकाल पीडितो को वस्त्र प्रदान किए जा रहे है ।

३०

क्रियाशील जीवन का आदर्श

श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता के साथ कभी प्रत्यक्ष परिचय न होने पर भी आपके सात्विक जीवन के सम्बन्ध मे परिचय पाकर मेरा सम्मान और श्रद्धा आपके प्रति उत्तरोत्तर बढती ही गई है और मैंने सदा ही अपने को आपके अत्यन्त समीप अनुभव किया है। आपने गीता को अपने जीवन का आदर्श बनाकर उसके सम्बन्ध मे "सात्विक जीवन", "दैवी सम्पद" तथा "गीता का व्यवहार दर्शन" आदि जो ग्रन्थ लिखे हैं और उसके ढाँचे मे अपने क्रियाशील जीवन का जो आदर्श निर्माण किया है वह हमारे लिए आपकी सबसे बडी देन है। आपके आदर्श सात्विक जीवन से यदि वर्तमान पीढी कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकती है, तो आपका निर्मित आध्यात्मिक साहित्य सदियो तक आगामी पीढियो के लिए प्रेरणा तथा स्फूर्ति का पुंज बना रहेगा और उसके प्रकाश से कितने ही भटकते हुए अपने मार्ग की खोज कर सकेंगे। आपकी गणना इसी साहित्य के कारण देश के मनस्वियो और मनीषियो मे की जाती रहेगी। मैं माहेश्वरी, मारवाडी तथा राजस्थानी होने के नाते पूज्य मोहता जी के समकालीन होने का गौरव अनुभव करता हूँ। आपने यह सिद्ध कर दिया कि कोट्याधिपति होने पर भी मनुष्य कैसे अपने को धार्मिक, सात्विक एव आध्यात्मिक पथ का सफल एव यशस्वी अनुगामी बना सकता है।

पूज्य मोहता जी ने समाज के त्रस्त, पीडित एव शोषित वर्ग, स्त्री समाज तथा हरिजन भाइयो की सेवा को अपने जीवन का व्रत बनाकर सामाजिक कल्याण का भी एक आदर्श हमारे सामने उपस्थित कर दिया। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आपने देशी राज्यो तथा जागीरो मे फैली हुई दास-दासियो की कुप्रथा के उन्मूलन करने मे पहल की और बीकानेर सरीखे दकियानूसी राज्य मे उसके लिए सबसे पहले आवाज उठाई। समाज सुधार के क्षेत्र मे मृतक भोज आदि का अन्त करके शिक्षा प्रसार के लिए जो कार्य आपने किया उससे बीकानेर नगर का तो कायाकल्प ही हो गया। समाज मे प्रचलित अनेक कुरीतियो का आपने न केवल अपने घर से किन्तु बीकानेर नगर से भी उन्मूलन कर दिया। लोकोपकार के कार्य के लिए आपने कडे विरोध और गर्हित लोकापवाद का जिस धैर्य और शान्त भाव से सामना किया उसका उदाहरण कही और मिलना कठिन है। अपने इस धैर्य व शान्त स्वभाव से आपने अपने कट्टर विरोधियो और आलोचको को भी अपना बना लिया, क्योकि उनका उपकार तथा भलाई करने मे भी आप कभी चूके नही। "उदारचरितानातु वसुधैव कुटुम्बकम्" आपके जीवन का आदर्श रहा है।

आपके लोकसेवा के महान कार्य का कुछ परिचय मुझे तब मिला जब १९५१-५२ मे बीकानेर राज्य मे भीषण दुर्भिक्ष पडा था। तब मेरे पास बीकानेर से घास व पत्ती आदि से बनी हुई उन रोटियो का एक बण्डल भेजा गया था जिनसे दुर्भिक्ष पीडित देहाती भाई किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह किया करते थे। तब मैंने लोक सभा मे बीकानेर के दुर्भिक्ष का प्रश्न उठाकर केन्द्रीय सरकार तथा अन्न मत्री का ध्यान उस ओर आकर्षित किया था और उन्होने वहाँ विषम स्थिति का पैदा होना स्वीकार किया था। तब मुझे पता चला था कि किस प्रकार मोहता जी उन दुर्भिक्ष पीडित भाई-बहनो की सेवा और सहायता करने मे लगे हुए थे। उनके कार्यकर्त्ता लारियो पर खाद्य सामग्री और वस्त्र आदि ले जाकर देहातो मे बाँटा करते थे। जो लोग अपने कुलाभिमान के कारण मुफ्त सहायता लेने मे सकोच करते थे उनको उनकी सांत्वना के लिए उधार सहायता दी जाती थी, किन्तु उस उधारी की कोई लिखत-पढत नही की जाती थी। मुझे यह भी पता चला कि मोहता जी के परिवार मे दुर्भिक्ष पीडितो की सेवा और सहायता करना एक पुरानी वश-परम्परा है और उसको आपने लाखो रुपया

श्री गजाधर सोमाणी के सस्मरण मे

नौरग देसर गाँव मे अकाल के समय मोहता जी को घास की रोटी दिखाते हुए वहाँ के किसान ।

मोहता भवन बीकानेर मे अकाल पीडितो को वस्त्र प्रदान किए जा रहे है ।

मुक्त हस्त से खर्च करके चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। आपका घर, धर्मशाला और गोवरधन सागर वगीची आदि सब स्थान दुर्भिक्ष पीडितो के राहत स्थान बने रहते हैं और कोई भी दुर्भिक्ष पीडित नर-नारी आपके यहाँ से निराश नही लौटता। इस प्रकार पीडित, दलित तथा शोषित मानव की सेवा करके दरिद्र नारायण की पूजा मे अपने को लगाकर आपने जो पुण्य सचय किया है वह आप के सात्विक जीवन को और भी अधिक ऊँचा उठाने वाला है।

मुझे यह सर्वथा उपयुक्त प्रतीत हुआ है कि आपके अभिनन्दन के निमित्त "एक आदर्श समत्व योगी" नाम से एक विशाल ग्रन्थ का प्रकाशन करके गीता के समत्व योग का न केवल सैद्धान्तिक स्वरूप किन्तु क्रियाशील कर्मठ जीवन का आदर्श भी सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है, जो कि वास्तव मे ही स्फूर्ति एवं प्रेरणा का स्रोत सिद्ध हो सकता है। अपने को इस अभिनन्दन समारोह मे सम्मिलित कर मैं मनस्वी श्री मोहता जी के आदर्श एव अनुकरणीय जीवन के प्रति अपनी विनीत श्रद्धाँजलि अर्पित कर अपने को धन्य मानता हूँ। मेरी यह हार्दिक कामना है कि आप हमारा पथ प्रदर्शन करने के लिए हमारे बीच दीर्घकाल तक उपस्थित रहे। भगवान की कृपा से आप दीर्घायु हों और शतायु हो।

गजाधर सोमाणी

(संसद के सदस्य सेठ गजाधर जी सोमाणी पुराने देशभक्त और समाज सेवी हैं। अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के साथ आपका बहुत पुराना सम्बन्ध है। आप भी सात्विक वृत्ति के अत्यन्त, सरल एवं प्रगतिशील उद्योगपति हैं और देश सेवा तथा समाज सेवा के कार्यों में उदार सहयोग देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। देश के उद्योगपतियों मे आपका प्रमुख स्थान है और बम्बई मिल ओनर्स एसोसियेशन के आप वर्षों से अध्यक्ष पद पर विराजमान हैं।)

३१

छोटे भाई की दृष्टि में

मैं गीता का उपासक होने के कारण उसके वचनो को यथार्थ मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि गीता के अध्याय ६ श्लोक ४१-४२ के अनुसार मैं भी कोई पूर्वजन्म का योग भ्रष्ट जीवात्मा हूँ, इसलिए मेरा जन्म ऐसे कुल मे हुआ है जहाँ मुझे पूज्य माताजी व पिताजी द्वारा सदुपदेशो का अमृत पान करने का सुअवसर मिला और समत्व योगी ज्येष्ठ भ्राता जी रामगोपाल जी मोहता के संरक्षण मे यह मेरा जीवन रूपी पौधा उनके वात्सल्य प्रेम जल से सिंचित होता हुआ अपनी सर्वांगीण भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति कर रहा है। मुझे तो ऐसा लगता है कि श्री रामचन्द्र जी का श्री लक्ष्मण जी के प्रति भ्रातृ प्रेम व वात्सल्य का जो वर्णन रामायण मे है वही सौभाग्य से मुझे प्राप्त हुआ है। मैं तो मेरे ज्येष्ठ भ्राता की दूरदर्शिता, गम्भीर विचार शक्ति और सद्विवेक की चमत्कारिक सात्विक व्यवसायात्मिका बुद्धि को देख कर गीता के १०वें अध्याय के ४१वें श्लोक मे जो भगवान ने कहा है कि "जो जो सत्व विशेष चमत्कारिक विभूति सम्पन्न शक्ति-युक्त व ओजस्वी है उसको तू मेरे ही तेज के

अश से हुआ समझ"। वही परमात्मा के तेज का विशेष अश उनमे प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ अर्थात् उनको परमात्मा की एक विभूति समझता हूँ।

मुझे उनके समत्व योगी होने का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है और अनेक अवसरो पर उनका "वसुधैव कुटुम्बकम्" बर्ताव देखने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। कई काम ऐसे देखे जिनसे विस्मय मे पड जाता हूँ। मैं उनसे १२ वर्ष छोटा हूँ। मेरे १२ वर्ष की अवस्था तक की बातें तो मुझे याद नही हैं अत पूज्य भाई जी के २४ वर्ष की उम्र तक के सस्मरण मुझे याद नही। उसके पीछे की कई बातो का मुझे स्मरण है जो मैं सक्षिप्त रूप मे लिखता हूँ।

दैवी सम्पद के गुण जो गीता अध्याय १६ श्लोक १–३ मे बताये हैं वे आप मे शुरू से विद्यमान हैं। बडो के प्रति आदर, छोटो के प्रति वात्सल्य व सखा सम्बन्धी के प्रति मित्रता का वर्ताव आपका स्वभाव है। गुणीजनो यानी विद्वानो के प्रति मित्रता का वर्ताव आपका स्वभाव है। विद्वानो, सगीतज्ञो, कवियो व अन्य कलाकारो का आप सत्कार करते हैं। बाहर से आये हुए गुणीजनो के गुणो का परिचय आप अवश्य लेते हैं और उनका यथोचित सत्कार करते हैं। पाखडियो के लिए आपके यहाँ कोई जगह नही है, जिससे वे लोग वहुत नाराज होते हैं। फिर भी आपके मन मे विक्षेप नही होता। आपने लाखो ही रुपया परोपकार व सार्वजनिक कामो के लिए दान मे दिया जिससे सरकार भी बहुत प्रभावित होकर आपको पदवी देकर मान प्रतिष्ठा प्रदर्शित करना चाहती थी, परन्तु आपने कोई पदवी आदि लेना स्वीकार नही किया।

इस ससार मे सबको अपने कामो के अनुसार दुख सुख, हानि-लाभ, यश अपयश आदि द्वन्द प्राप्त होते रहते हैं। इसलिए हमारा कुटुम्ब भी इससे वचित कैसे रह सकता था, परन्तु उन परिस्थितियो मे आपके मन का सन्तुलन वना रहा।

सन् १९०६ मे हमारा कुटुम्व भौतिक सुख का खूब अनुभव कर रहा था। हम तीन भाई थे— (१) श्री रामगोपाल जी (२) मैं और (३) सव से छोटा मूलचन्द। उस समय हम क्रमश ३१, १९ और १४ वर्ष की आयु के थे। सव का विवाह हो चुका था। धन, मान, प्रतिष्ठा खूब बढ़ी चढ़ी थी, परन्तु मुझे याद है कि पूज्य भाई जी के मन मे इस वैभव का कोई अहकार नहीं हुआ।

सुख के बाद दुख का परदा पडा। सन् १९०८ मे मैं और मूलचन्द पूज्य माता जी व पिता जी के साथ कराची गये। वहाँ पर मैं ववासीर की असह्य पीडा के कारण वहुत बीमार हुआ और छोटे भाई मूलचन्द को निमोनिया होकर पाँच ही दिन मे आकस्मिक दुखद मृत्यु हो गई। उस समय उसकी आयु १६ वर्ष की थी। पूज्य भाई जी मेरी और मूलचन्द की वीमारी का समाचार पहुचने पर बीकानेर से कराची पहुँच गये। सारे शहर मे हाहाकार मच गया। पूज्य श्री माता जी व पिता जी को जो हृदयविदारक शोक हुआ उसका अनुभव उनके सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता। सवसे छोटे का देहान्त व उससे बडे का रोग ग्रस्त विस्तर मे पडे रहना वृद्ध-माता-पिता का अति शोक का कारण हुआ। उस समय पूज्य भाई जी के हृदय का जिस किसी ने धीरज देखा वह चकित रह जाता था। आपके मन को दुख का अनुभव होना स्वाभाविक था और हुआ भी, परन्तु ज्ञान पूर्वक सहन किया। एक आँसू तक इसलिए नही वहाया गया कि माता-पिता का क्या हाल होगा और भाई जो विस्तर मे पडा है उसका क्या हाल होगा ? मालूम होता है कि उस ३१ वर्ष की अवस्था मे ही "अशोच्यान्नैव शोचस्त्व" गीता अध्याय २, श्लोक ५१ से ३० तक का उपदेश हृदयगम हुआ था। इन्ही श्लोको को पढकर उसका अर्थ पूज्य माताजी व पिताजी को सुना कर उनको सान्त्वना देते थे। अपने हाथो से अपने छोटे भाई का अन्तिम सस्कार किया। इसी दारुण शोक मे पूज्य माता जी ने अपनी नेत्रो की ज्योति उन्ही १२ दिनो मे खो दी और पिता जी सव काम काज से निवृत्त होकर हमेशा आत्मज्ञान के सत्शास्त्रो के पढने सुनने और

अपनी सदा की शैली के अनुसार परोपकार के कामो मे शेप आयु विताते रहे। उस समय पूज्य पिताजी और माता जी तो कराची मे ही रहे और मूलचन्द की विधवा व हम सब लोगो को लेकर पूज्य भाई जी बीकानेर आ गए।

उन दिनो मे छोटी उम्र वाले के मरने पर भी ब्रह्म भोज हुआ करता था, वह नही करके पूज्य भाईजी ने उसकी यादगार मे **"मोहता मूलचन्द विद्यालय"** की स्थापना की। पूज्य माता जी की ब्राह्मण भोज कराने की पहले तो इच्छा थी परन्तु पूज्य भाई जी के विनीत भावयुक्त उपदेशो का उनके ऊपर बहुत प्रभाव पडा और मैंने तो जैसे श्री कपिलमुनि ने अपनी माता को उपदेश दिया वह दृश्य देखा। मेरी पूज्य माता जी ने आपके उपदेशो के कारण भेद-भाव के सब पूजा पाठ का त्याग कर दिया और ज्ञान रूपी सर्वात्मभाव का सूर्य उनके हृदय मे चमकने लगा। उन्होंने मृतक भोज, श्राद्ध इत्यादि करना त्याज्य समझ लिया था और सात्विक दान गीता अध्याय १७, श्लोक १६ के अनुसार ही करने लगे। **बीकानेर शहर मे मृतक के पीछे इस प्रकार का सात्विक कार्य यह पहला ही हुआ,** जिसका अनुकरण बहुत पीछे दूसरे लोगो ने भी किया। इसीलिए तो गीता मे कहा है जो श्रेष्ठ लोग काम करते हैं उसका अनुकरण अन्य लोग भी करते हैं अत श्रेष्ठ लोगो के ऊपर कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य की जिम्मेवारी बहुत है। विद्यालय स्थापित हुआ। उसी दिन के उत्सव मे स्व० पडित कृष्ण शंकर तिवारी का मूलचन्द की मृत्यु पर मर्मस्पर्शी भाषण हुआ, जिसे सुन कर मैं तो फूट फूट कर रोने लगा। उस समय पूज्य भाई जी ने मुझको फटकार कर कहा, अरे कायर मूलचन्द के लडको की शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा है, यह समय रोने का नही किन्तु प्रसन्न होने का है। यह कह कर मुझे धीरज बधाया तथा सब उत्सव का काम आपने बहुत प्रसन्न चित्त से किया। शोक मे भी इस तरह सम रहे और अपने शोक को दूसरो के उपकार मे परिणत कर दिया। इस विद्यालय का स्थायी ट्रस्ट तीन लाख का कराची मे जायदाद देकर बनाया।

पूज्य भाई जी की इकलौती पुत्री सुगनी बाई (जिसकी पुत्री सौ० रतनबाई है) और उस पुत्री के इकलौते पुत्र भैंरवरतन का असामयिक देहान्त बहुत छोटी उम्र मे हुआ। उस समय भी आपकी स्थिति बहुत शान्त बनी रही। अपनी पुत्री व उसके पुत्र की यादगार मे भी श्री "भैंरवरतन मातृ पाठशाला" की स्थापना की। जिसमे इस समय ३५० लडकियाँ शिक्षा पा रही है।

जब सुगनी बाई का देहान्त हुआ तब सौ० रतनबाई की उम्र ३ वर्ष की थी। उसका लालन-पालन व शिक्षा आदि सब आपने किया। आपके सत्सग के आध्यात्मिक उपदेशो का उस पर बचपन से ही प्रभाव पडा। फलत वह भी स्त्री शिक्षा तथा प्रौढ स्त्रियो को चरखा आदि सिखाकर आत्मनिर्भर बनाने मे बहुत दिलचस्पी लेती है। तदर्थ बीकानेर मे "महिला मण्डल" की स्थापना की गई, जिसका सब काम उसी के ऊपर निर्भर है। उसके बचपन मे ही उसके पालन-पोषण व शिक्षा आदि के लिए आपने ५ लाख की सम्पत्ति का ट्रस्ट बना दिया था। आपके हृदय मे पुत्र व पुत्री के लिए एक जैसा ही स्थान है।

आप नारी जाति के दुःख निवारण के लिए हमेशा यथाशक्य तत्पर रहते हैं। इस काम के लिए "रामगोपाल, गोवर्धनदास मोहता धर्म ट्रस्ट" ५ लाख रुपये का सन् १६२८ मे बना दिया था।

सन् १६२६ मे जोधपुर महाराजा श्री उम्मेदसिंह जी के चीतर हिल पर पैलेस बनाने का मैंने ठेका लिया। जिस के बनाने का एक करोड रुपयो का तखमीना था। जिस दिन इस पैलेस (महल) की नीव का उत्सव हुआ उसी दिन पूज्य भाई जी ने एक लाख रुपया का दान स्त्रियो के उत्थान के कार्य मे लगाने के लिए महाराजा को प्रदान किया। महाराजा ने प्रसन्न होकर कहा कि ठेकेदारो को कमाई हो जाती है तो भी बहुत कम लोग उस शहर के लोगो की भलाई के लिए कोई दान देते हैं, परन्तु मोहता जी ने तो काम शुरू होने के पहले ही इतनी बड़ी रकम दे दी। श्री महाराजा ने उसी समय इस रकम से "श्री महारानी भटियाणी जी हिन्दू अबला आश्रम" नाम का एक होम स्थापित करना स्वीकार किया और श्री गोवर्धनदास जी मोहता के कुटुम्ब को यानी हमारे

गृह के स्त्री पुरुष सबको सोने का कडा पैरो मे पहनने को दिया । यह इज्जत उन दिनो महाराजाग्रो की रियासतो मे वहुत ऊँची समझी जाती थी ।

हमारे पूज्य पिता जी चार भाई थे । सबसे वडे पूज्य शिवदास जी थे जिनका कारोवार तो पहले से ही ग्रलग था । श्री शिवदास जी के पुत्र श्री गगादास जी की छोटी उम्र मे मृत्यु हो गई थी । उनकी स्त्री का दिमाग ठीक न होने के कारण जायदाद वर्बाद हो जाने की स्थिति पैदा हो गई थी । तब ग्रापने ग्रथक परिश्रम करके श्री गगादास के नाबालिग वच्चो की जायदाद राज्य के "कोर्ट्स ग्राफ वार्ड्स" मे दिलवा कर उसकी सुरक्षा का प्रवन्ध करवा दिया । पूज्य जगन्नाथ जी, लक्ष्मीचन्द जी व मेरे पिता जी का काम धन्धा भागीदारी मे वहुत वर्षो तक चलता रहा । जब इनके साथ काम-काज का बटवारा हुग्रा तो वहुत ही प्रेम पूर्वक हुग्रा । यहाँ तक कि बटवारा हो जाने के वाद भी बहुत समय तक दुकानो के नाम पुराने ही चलते रहे । लोगो को मालूम हुग्रा तो बडा ग्राश्चर्य करते थे । पूज्य जगन्नाथ जी का पूज्य भाई जी पर ग्रपने लडको से भी ग्रधिक वात्सल्य प्रेम था ग्रौर हमेशा इनको "गोपाल" के छोटे प्यारे नाम से पुकारते थे। पूज्य भाईजी भी उनका वहुत ग्रादर करते थे ग्रौर उनकी ग्राज्ञा का सदा पालन करते थे । पूज्य जगन्नाथ जी के वडे पुत्र श्री मदनगोपाल जी का तो पूज्य भाई जी से वहुत ज्यादा प्रेम था ग्रौर देहान्त तक वे हमारे कलकत्ते के कपडे के काम मे भागीदार रहे । पूज्य लक्ष्मीचन्द जी के वडे पुत्र कन्हैयालाल जी के साथ ग्रापका वडा स्नेह था । जब कभी हमारे कुटुम्व के भाइयो को ग्रावश्यकता हुई तो पूज्य भाई जी उनकी तन-मन-धन से सेवा व सहायता करते थे । उनके ग्रापस मे वैमनस्य हो कचहरी झगडने की नौवत भी ग्राई तो पूज्य भाई जी ने उनका पच बनकर उनको कचहरी मे झगडने की हैरानी व खर्चो से वचा लिया । पूज्य भाई जी का सबके साथ समता का व प्रेम का बरताव था । इस लिए उन पर सबकी एक जैसी प्रेम श्रद्धा रहती थी । कुटुम्वी जनो के कई छोटे बच्चो को ग्रपने बच्चो की तरह रखकर उनका पालन-पोषण किया । शिक्षा दिलवाई । उनकी व्याह-शादी की ग्रौर व्यापार मे लगाया । कुटुम्वी जनो मे किसी के कारोवार मे रुपयो की जरूरत हुई तो लाखो रुपये उनके कार्यो के लिए दिए ।

हमारे कुटुम्व के सव लोगो का ग्रापके समता के वर्ताव के कारण ग्रापने वहुत ज्यादा प्रेम था । मुझे याद है जब कभी 'पिकनिक (सैर) पार्टी होती, कुटुम्ब के सब नवयुवक व बच्चे सम्मिलित होते ग्रौर पूज्य भाईजी विदेश मे होने के कारण उपस्थित नही होते थे तो सबके मुख से यह शब्द निकलते थे कि रामगोपाल के बिना सब ग्रलूण है यानी फीका है । पूज्य मदनगोपाल जी, कन्हैयालाल जी व भीखणचन्द जी राठी तो कहते कि "एक रति विन पाव रति को" यानी रामगोपाल विना यह खाना, गाना, पीना सब फीका लगता है । हमारे वहन नही थी । (एक वहन थी वह छोटी उम्र मे चल वसी) । मेरे पूज्य पिता जी के ३ वहनें थी । उनके वाल वच्चो के साथ भी पूज्य भाई जी का वर्ताव ग्रपने भाई बच्चो जैसा रहा है । हमारी एक भूवाजी की सन्तान हमारे सब काम-काज मे वचपन से ही शामिल है ग्रौर उसके साथ ग्रापका ग्रौर ग्रापके साथ उसका पिता पुत्र जैसा वर्ताव रहा है । ग्रपने नानेरे के परिवार के साथ भी ग्रापका ग्रत्यन्त घनिष्ट प्रेम वना रहा ग्रौर ग्रपने काम-काज मे उनका साझा (पान्ति) रखकर उनकी ग्रार्थिक स्थिति वहुत ग्रच्छी वना दी ।

हमारे काम-काज मे श्री लक्ष्मीनारायण गाडोदिया, श्री रामप्रसाद खण्डेलवाल ग्रौर उसके तीनो भाई व श्री केशव, श्री वाल जी ग्रादि छोटी ग्रवस्था मे भागीदार व मैनेजर तथा सहायक मैनेजर होकर वर्षो तक साथ रहे ग्रौर जव वे ग्रलग हुए तो वडे प्रेम के साथ उनको विदा दी ग्रौर उन्होने हमारे जैसा उसी लाईन का ग्रपना ग्रलग काम किया । ग्राज वे करोडपति हैं तो भी पूज्य भाई जी को ग्रपना मालिक समझ कर ग्रादर करते है । यह उन लोगो का वडप्पन है, परन्तु पूज्य भाई जी का भी उनके साथ जो वर्ताव रहा, वही इसका मूल कारण है ।

मेरी भाभी साहिवा की टी० वी० की, रुग्ण ग्रवस्था मे ग्रापने ग्रपने हाथो से मरण पर्यन्त वहुत सेवा

सुश्रुषा की। नारी पुरुष व ऊँच-नीच के भेद-भाव का आप पर कुछ भी असर नही था। स्त्री को अपने से हीन समझने वाले आपकी यह सेवा सुश्रुषा देखकर वहुत आश्चर्य करते थे और कहते थे कि स्त्री की रुग्ण अवस्था मे इस तरह सेवा करने वाला कोई विरला ही हो सकता है। पूज्य भाई जी के पुत्र नही हुआ। मेरी माता जी की दृढ इच्छा थी कि पूज्य भाई जी दूसरा विवाह कर लें परन्तु उन्होंने हाँ नही भरी तो पूज्य माता जी ने मेरे से उनको प्रार्थना करवाई, क्योकि पूज्य भाई जी मुझ से वहुत स्नेह रखते थे और मेरी उचित प्रार्थना हमेशा स्वीकार कर लेते थे। आपने मुझे जवाव दिया कि तुम लोग नजदीक का सुख देखते हो और परिणाम के ऊपर विचार ही नही करते। मेरे लिए तो ये जितने वालक हैं वे सव मेरे ही पुत्र हैं। जो तेरे पुत्र होंगे वे भी लोक प्रथा के अनुसार मेरे ही आत्मज होगे। समाज मे स्त्रियो के साथ जो अन्याय होता है उसका भी ज्ञान मुझे कराया और कहा कि कुछ विचार करो। इसी तरह यदि मैं वीमार होता तो क्या मैं तुम्हारी भाभी को दूसरा विवाह करने की अनुमति देता ? मुझ पर मेरी आत्मा के विरुद्ध क्यो दवाव डालते हो। इस तरह के नारी पुरुषो के समान अधिकारो का निश्चय आपके मन मे उस समय भी विद्यमान था। व्यापारिक काम-काज का भार तो सव आपके ऊपर ही था क्योकि मैंने तो २४ वर्ष की आयु के पश्चात् काम-काज मे दिलचस्पी लेनी शुरू की। मुझे आप पूज्य माता जी के पास बीकानेर मे ही रखते थे। पूज्य पिता जी का कारोवार विलायत से कपडा आयात करने का था, इस काम मे मि० जे० एलिगर एक अग्रेज भागीदार था। जव यह अग्रेज विलायत जाने लगा तो उसने पूज्य पिता जी को कहा कि मेरी अनुपस्थिति मे किसी दूसरे अग्रेज को रखने की जरूरत नही है, मि० रामगोपाल का अग्रेजी लिखने-पढने का अभ्यास वहुत वढा हुआ है। यह सव चिठ्ठी पत्री मेरे जैसी ही लिख-कर लेता है। कराची चैम्वर आफ कामर्स मे भारतीयो को सदस्य नही वनाया जाता था, परन्तु पूज्य भाई जी को उन्होंने बडी खुशी से अपनी कार्यकारिणी तक का सदस्य वना लिया। आप अंग्रेजी भाषा मे कानूनी दस्तावेज भी ऐसा लिखते थे कि वड़े-वड़े कानूनदाँ भी ताज्जुव करते थे। आपकी स्मरणशक्ति गजव की है। जितना काम आप करते हैं एकाग्र चित्त से करते हैं। इसलिए आध्यात्मवाद सरीखा सूक्ष्म विषय तथा उससे सम्वन्ध रखने वाले श्लोक आदि आपको कंठस्थ हैं। व्यापारिक घटनाएँ, सगीत, चौपाई और कविताएँ आदि कण्ठस्थ होने का तो कोई प्रश्न ही नही है।

मैं अपनी २५ वर्ष की आयु से काम-काज मे साथ देने लगा। मेरा स्वभाव रजोगुणी है और मैं विना भावी परिणाम का समुचित विचार किए वडे-वडे कामो का प्रारम्भ कर दिया करता था, परन्तु मेरे प्रति आपका इतना ज्यादा प्रेम था कि मुझे कभी भी ताडना नही दी और मेरे किये हुए कामो को आप सम्भाल लेते थे सन् १९२८ से आपने काम-काज से सव प्रकार का अवकाश ले लिया का। जव कभी भी आप से सम्मति प्राप्त किये विना मैंने कोई काम किया उसमे तकलीफ ही पाई। हैदरावाद सिन्ध मे जहा रेलवे लाईन भी नही थी मैंने खांड (सक्कर) का एक कारखाना स्थापित करने का निश्चय करके काम शुरू कर दिया। सिन्ध मे गन्ना नही होता था। मैंने १०००० एकड जमीन भी गन्ने की खेती के लिए नहर के किनारे ले ली और 'मोहता नगर' नाम से गाँव वसाया। जव आपने यह सुना तो मुझको लिखा कि यह काम विचारपूर्वक नही किया गया। इसमे वहुत तकलीफ होगी और अन्त मे वैसा ही हुआ।

सन् १९३० मैं मैंने कराची मे अपने रहने के लिए समुद्र तट पर वह मकान वनाना शुरू किया, जो वाद मे हवाई महल नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुझे उसको वनवाने का इतना शौक था कि मैं ववासीर व भगन्दर की वीमारी से पीडित तथा आपरेशन की हालत मे भी पास के मकान से इस नये वनते हुए मकान को देखने और इन्जीनियर को आदेश देने पहुँच जाया करता था, परन्तु पूज्य भाई जी मुझे यही कहा करते तुम अपने रहने के लिए जो इतना वड़ा महल वनवा रहे हो वह उचित नही है। इससे तुम्हारा देह अहकार वहुत वढ जायगा और यह रजोगुणी काम एक दिन दुख का कारण वन जायगा। मैंने आपके उपदेश पर उस मकान की

जोजना को कुछ कम कर दिया व बजाय तीन मन्जिल के दो ही मन्जिल बनाकर समाप्त कर दिया। इस 'मोहता पैलेस' को लोगो ने बहुत पसन्द किया। महात्मा गाँधी व अन्य बडे-बडे नेता, राजा महाराजा आदि गण्यमाण्य सज्जन वहाँ पर रहे। परन्तु देश के विभाजन के साथ वह मोहता पैलेस जिसको बनाने मे अति परिश्रम किया गया और जिस पर २० लाख रुपया खर्च किया गया था पाकिस्तान मे निष्क्रात जायदाद मे चला गया व अब उसमे पाकिस्तान सरकार का विदेश कार्यालय है। अब पूज्य भाई जी के उन दिनो के सदुपदेश व चेतावनी याद आती हैं।

काम-काज के बारे मे आप प्राय कहा करते थे कि तुम लोगों का गीता मे कथित वैश्य के कर्त्तव्य कर्म मे विश्वास नही है। लोगों की जरूरत पूरी करते हुए अपने निर्वाह के लिए बहुत थोडा लाभ रखना चाहिए, परन्तु यह तो लूट खसोट की जा रही है। एक दूसरे को थप्पड मारकर येनकेन प्रकारेण रुपया उपार्जन ही वैश्य अपना कर्त्तव्य समझते हैं। **देश स्वतन्त्र हुआ तो क्या हुआ जब तक तुम वैश्य लोग अपनी सरकार का तन-मन-धन से साथ नहीं दोगे तब तक देश का उत्थान नहीं हो सकता।** दस वर्ष पूर्व आपने इस बारे मे कई लेख लिखे और पुस्तकें भी प्रकाशित की।

"देश के सम्पतिवानो के हित का सुझाव" नाम के अपाके लेख को पढ कर, जिसको गीता का साम्य-वाद कहो या नेहरू जी का समाजवाद कहो, एक बहुत बडे विद्वान व्यापारी ने मुझ मे कहा कि आपके भाई साहब के दिमाग की कील निकल गई दीखती है। अपने आप कौन अपनी धन-सम्पत्ति देश के सुपुर्द करेगा। अभी १० वर्ष भी नही बीते कि वही व्यापारी आज कहते हैं कि श्री रामगोपाल जी ने जो लिखा था वह ठीक था। अगर हम सब लोग मिलकर सरकार का इस दूसरी पचवर्षीय योजना मे साथ दें तो देश सहज मे समृद्धिशाली हो सकता है और हम भी एक भारी विपदा से बच सकते हैं। आयन्दा सन्तान हमारी बुद्धिमानी के लिए कृतज्ञ रहेगी, नही तो हमारी सन्तान दुखी रहेंगी। वैश्य कुल मे उत्पन्न हुआ "एक समत्व योगी" ऐसी दूरदर्शिता की बातें लिख कर सबके सन्मुख उपस्थित करता है। फिर भी यदि व्यापारी लोग व सरकार उसको काम मे न लेकर मखौल उडावें अथवा उचित ध्यान न दें तो देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

पूज्य भाई जी हर एक वस्तु की गहराई मे जाकर उसकी जड पकडते हैं और उसके बाद अपनी सम्मति देते हैं। किसी भी दोष का उपचार उसके मूल कारण का ख्याल रखते हुए करते हैं। आपका कहना है कि गौण बातो पर शक्ति खर्च मत करो। पत्तो को पानी मे सीचना फिजूल है। जड मे पानी दो तो पत्ते अपने पनप जायेंगे। इसी तरह का व्यवहार आप करते हैं। सबकी भलाई यानि "वसुधैव कुटुम्बकम्" तो आपका मूल मन्त्र है। आपकी सेवा क्षणिक सुखदायी न होकर स्थायी सुख देने वाली होती है। साधारण जनता अपनी अज्ञानता के कारण शुरू मे आपकी सेवा का महत्व नही समझ सकती जैसा गीता मे अध्याय २, श्लोक ६९ मे मे कहा है 'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यांजागृति सयमी। यस्या जागृति भूतानि सानिशा पश्यतो मुने।" परिणाम स्वरूप जब अज्ञानी लोगो को उनकी सेवाओ से चिरकाल रहने वाला लाभ मिलता है तब उनकी प्रशसा करते हैं। आपकी दूरदर्शिता के अनेक चमत्कारपूर्ण दृष्टान्त मैं दे सकता हूँ, परन्तु यहाँ एक ही दृष्टान्त देता हूँ।

सन् १९४६ मे अगस्त महीने मे आपने बीकानेर से कराची पत्र देकर मुझको लिखा कि मुझे पाकिस्तान बनने और पजाब व सिन्ध मे हिन्दुओ पर जल्दी ही विपत्ति आती दीखती है। यह हिस्सा मुसलमानो की हकूमत मे आ जायगा और तुम लोगो का वहाँ पर रह सकना मुश्किल ही नही किन्तु असम्भव हो जायगा इसलिए तुम लोग अपने कारोबार को अभी से निपटाना शुरू कर दो और वहाँ से शीघ्रतिशीघ्र हटने के लिए तैयार रहने की योजना बना लो। हम लोगो को यह बात ठीक नही लगी। मैंने उनको उत्तर मे लिखा कि अगर देश का बटवारा भी हुआ तो यह दोनो ही बहुत तरक्की करेंगे व कुशल व्यापारियो की सबको जरूरत रहेगी अत इतना बडा कारोबार और जमीन जायदादें यहाँ रहेंगी तो अधिक लाभ होगा। उसका जवाब आया कि हाँ वे उन्नति कर
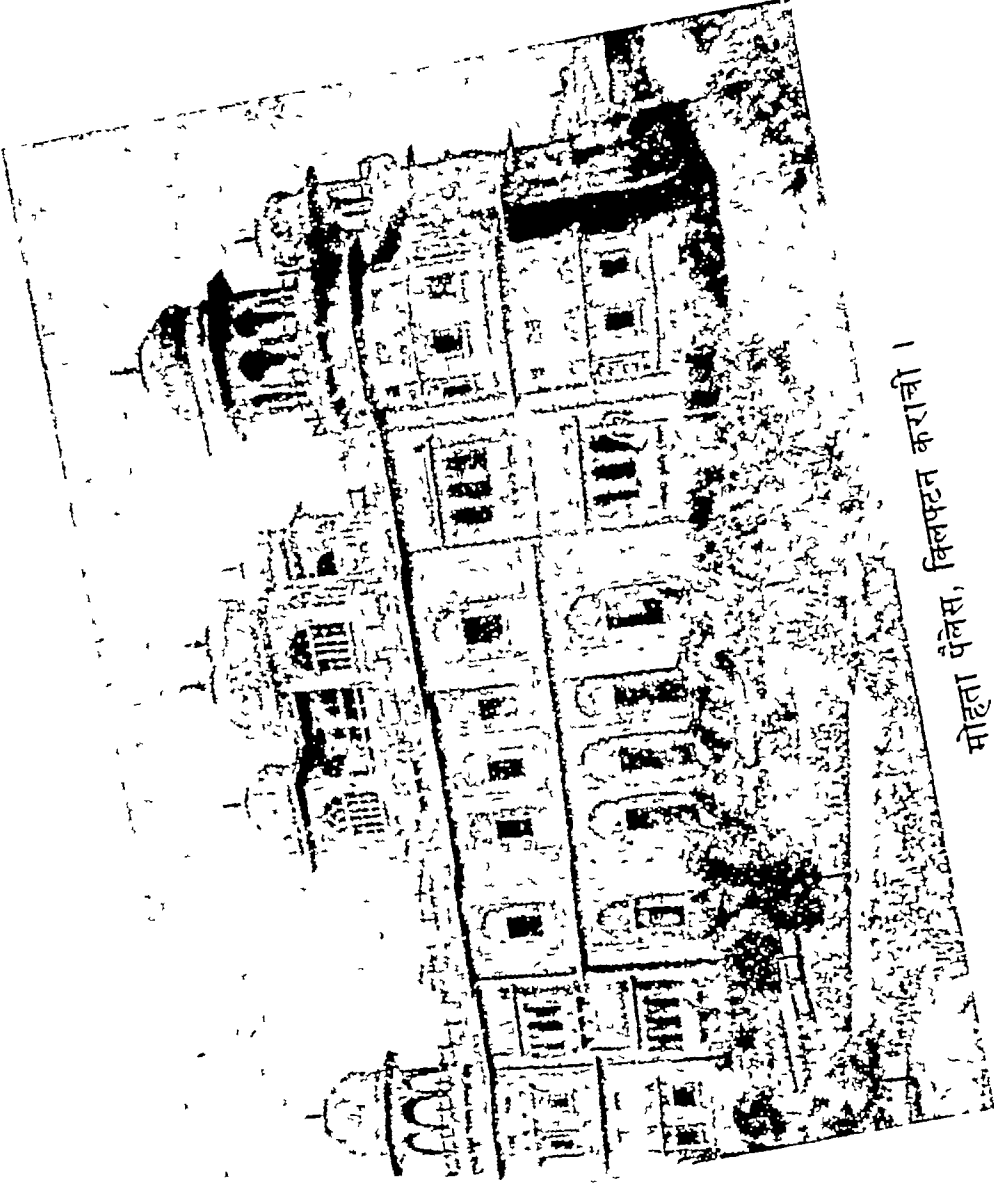
मोहता पैलेस, क्लिफ्टन कराची ।

राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली मे रा० ब० श्री शिवरतन जी मोहता राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और पाकिस्तान के भू० पू० प्रधान मत्री श्री मोहम्मद अली से मोहता पैलेस कराची के सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए ।

सकते हैं, परन्तु तुम को वहाँ कोई लाभ न होगा। वह उन्नति हिन्दुओ के लिए नही होगी। तुम लोग वहाँ पर रह नही सकोगे और ज्यादा शशोपज मे न पड कर जो मैं लिखता हूँ उस पर ध्यान देकर विचार करो, फिर जैसे तुम्हारी इच्छा। जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ मेरी पूज्य भाई जी के वचनो मे वहुत श्रद्धा होने के कारण मैंने १९४६ के नवम्बर से हाथ (कारोवार) पैर सम्हालने शुरू कर दिये। १५ अगस्त १९४७ को जिस दिन देश का वटवारा हुआ उस दिन जिन्ना साहव से मेरी मुलाकात हुई। उससे मुझे निश्चय हो गया कि यहाँ पर वे हम लोगो को रखना नही चाहते और हिन्दुओ पर वडी भारी विपत्ति आने की सम्भावना मुझे स्पष्ट दीख पडने लगी। तव मैं अपने स्त्री, पुत्रो और भागीदारो श्री चाँदरतन मूँधडा आदि की सम्मति के विरुद्ध उसी दिन अर्थात ता० १६-८-१९४७ को अपने छोटे पोते और पोती को लेकर कराची से रेल मे वैठकर वम्वई आ गया। उनका तव भी यह ख्याल था कि ऐसी कोई डरने वाली वात नही है। थोडे ही दिनो वाद जो हुआ वह सवको मालूम है। मेरे दूसरे रिश्तेदारो को भी अपनी जान वचाने के लिए थोडे ही दिनो वाद कराची छोड कर हवाई जहाज और समुद्री रास्ते से वम्वई आने के लिए वाध्य होना पडा। आपकी दूरदर्शिता के कारण हमारे प्राण वचे और कुछ जायदाद भी वच गई।

सन् १९५० के सितम्वर मास मे जव कराची की कुछ जायदाद का देहली के मुसलमानो की जायदाद के साथ तवादला करने का सौदा पक्का होने लगा तो मैंने पूज्य भाई जी से आज्ञा माँगी। आपका जवाव आया कि अपनी निजी जायदाद का तवादला करने से पहले जो धरमादे ट्रस्ट हैं (रामगोपाल चैरिटी ट्रस्ट और गोवरधन दास मोहता चैरिटी ट्रस्ट) उनकी जायदाद का तवादला पहले किया जाना चाहिए नही तो सौदा पक्का नही करना। देहली के मुसलमान इन ट्रस्टो की जायदाद से अपनी जायदाद का तवादला करने को तैयार नही थे; परन्तु पूज्य भाई जी को अपनी निजी जायदाद से इन ट्रस्टो की जायदाद की चिन्ता अधिक थी इसलिए निजी जायदाद मे कुछ कसर खाकर ट्रस्ट की जायदाद का भी तवादला करने के लिए मुसलमानो को समझा-बुझा कर सौदा किया गया। ट्रस्टीज के कर्त्तव्य के पालन व धरमादे की रकम की रक्षा करने की आपकी तत्परता से मुझको यह अनुपम अनुभव मिला।

मैं अपनी रजोगुणी प्रकृति के कारण काम-काज मे फसा हुआ रहता था और जव कभी दर्शन करने को वीकानेर आता तो आप यही कहते कि मैं तेरा भाई हूँ और दूसरो के साथ-साथ तेरी भी भलाई का मुझे ख्याल रहता है इसलिए मैं कहता हूँ कि अव भी सचेत हो जा। यह मनुष्य जन्म वार-वार नही लेता। उसको फिजूल मत खो। अव तो अपने आपका भी विचार कर कि तू कौन है? अव इस देह और देह से सम्वन्ध रखने वाले सव पदार्थों से आसक्ति छोड और रजोगुण के ऊपर उठ, सात्विक गुणो को वढा कर अपने रचे हुए इस ससार रूपी खेल मे सवके साथ एक्य यानि प्रेम रखता हुआ अपनी योग्यता के कर्म कर। जिस तरह कीडे को भवर डक मार कर अपना रूप वना लेता है उस तरह आप मुझको वार-वार मेरा कर्त्तव्य कर्म याद दिलाते रहते हैं। मैंने भी दूसरे कामो से आसक्ति हटा कर अव भवर वनने के कारखाने मे काम करना तो शुरू कर दिया है। परन्तु मालूम होता है कि मेरे कर्मों मे लोहे की कील कही लगी हुई है शायद इस जन्म मे यह स्लेट साफ नही हो सके अत मेरी यह शुभ कामना है कि आपकी छत्र छाया हमेशा वनी रहे और मानव तन-धारी मेरे जैसे जीवो को तरग के भाव से उठाकर वास्तविक समुद्र रूप का अनुभव कराते रहें।

शिवरतन मोहता

(मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के अनुज, साहसी व महत्वाकांक्षी प्रमुख उद्योगपति। सचाई और ईमानदारी से अपने बड़े भाई का अनुकरण करने के लिए प्रयत्नशील। सरल, भावुक और मिलनसार।)

३२

जीवन मुक्त की कोटि

पूज्य रामगोपाल जी मोहता मेरे से १६ बर्ष बडे हैं। जब मैं ११ वर्ष का था तब उनके खोले हुए पुस्तकालय मे पुस्तकें पढने जाया करता था। वह मोहतो के चौक मे था। वही वाद मे गुण प्रकाशक सज्जनालय के नाम से आज भी कोट गेट के पास बीकानेर मे चल रहा है। उनके सार्वजनिक काम तथा सामाजिक सुधार सम्बन्धी बातें तो बहुत हैं।

मेरी जान पहिचान दूर से ही थी। सन् १९१८-१९ मे सारे देश मे इनफुलएजा बुखार फैला। उस समय मैं बीकानेर मे था। उसकी दवाइयाँ भाईजी के यहाँ से बँट रही थी। मैं भी गाँवो मे जाकर उनकी दवाइयाँ वाँटा करता था। तव नजदीक मे ज्यादा आना हुआ।

मुझे उन दिनो काम की आवश्यकता थी और मैंने भाई जी से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए ? तुरन्त उपयोगी जवाव दिया तथा बीकानेर या कराची मे काम देने को कहा, किन्तु मैं कलकत्ता चला आया। यह सब बातें १९१९ या २० की हैं। सन् २२-२३ मे भाई जी कलकत्ता आए। भाई जी इस वीच मे उत्तमनाथ जी महाराज के सम्पर्क मे आ चुके थे और मैं भी उनके सम्पर्क मे था इसलिए भाई जी मुझ से ज्यादा स्नेह रखने लग गए थे। जब कलकत्ता आए तो मेरे व्यापार के काम मे काफी सहायता देने लगे थे। कुछ समय बाद फिर दुबारा भाई जी कलकत्ता आए तो मुझे सार्वजनिक कार्यों के लिए सहायता देने लगे। सामाजिक सुधार मे हम दोनो एक ही विचार के थे इसलिए वे पुत्रवत मुझ से स्नेह रखते थे। आज तक वे मुझे अपने पुत्र के समान ही समझते हैं तथा ज्यादा से ज्यादा स्नेह व विश्वास रखते हैं। व्यवहार के हर काम मे भाई जी जैसे नीतिवान हैं वैसे करोडो मे नही मिलेंगे। जब से उत्तमनाथ जी का ससर्ग हुआ तब से वेदान्त का प्रचार व सत्सग वरावर कर रहे हैं। वहुतो को सत्सगी बनाया है। वेदान्त का आपने जो मनन और निदिध्यासन किया है और कर रहे हैं उससे मैं आपको जीवन-मुक्त की कोटि मे समझता हूँ।

स्त्रियो की भलाई के लिए अपने लाखो रुपया खर्च किया है। हरिजनो की आप सब प्रकार से सहायता करते हैं मानो हरिजनो के प्राण ही हैं।

बीकानेर मे समाज सुधार का काम भाई जी से ही शुरू हुआ। तीन घडे की कुप्रथा आपके परिवार मे पहले पहल आपके ही प्रयत्न से बन्द की गई थी। इससे ब्राह्मण समाज बहुत क्रुद्ध हुआ। क्रोधी समाज ने जो कुछ भी किया वह सब आपने सहन किया। मोहता समाज का श्मशान का आपस का जातिगत झगडा महज़ कुछ आदमियो की ईर्ष्या से शुरू हुआ था। अन्त मे वर्षो बाद आप इसमे सफल हुए। एक सुधार सम्बन्धी सघर्ष हिन्दुस्तान भर मे माहेश्वरी समाज मे चला। वह था कोलवार माहेश्वरी बिडला सम्बन्ध का। बडा कोहराम मचा। वहुत से विवाह सम्वन्व टूटे। कमजोर विचार वालो को वहुत कष्ट पहुँचा। आपने इसमे जो हिस्सा लिया वह प्रशसा के योग्य है। अन्त मे सुधारक विचार वालो की ही वात ठीक रही। सघर्ष ५-६ वर्ष चला। जो आपके विचारो के थे उनकी वात रही और सघर्ष करने वालो के साथ जो रहे वे आज भी अफसोस के भागीदार हैं।

विधवा विवाह के भाई जी करीव ५० वर्ष से समर्थक हैं। विधवा विवाह को चालू करने के लिए आपने लाखो रुपया खर्च किया और कर रहे हैं। आपका घर कभी वीकानेर मे विधवा आश्रम ही था। हर समय पाच-सात विधवाएँ रहती थी। फिर आपने एक विधवा आश्रम खोला। समाज सुवार विरोधी लोगो के वहकावे मे आकर महाराज गगासिह जी के नाराज होने से आपने विरोध स्वरूप वीकानेर मे उसको वन्द कर दिया और

जोधपुर मे निजी मकान व ट्रस्ट बनाकर उसको चलाया। आप एक दफा कलकत्ता आए तव मैं हिन्दू अवला आश्रम का काम देखता था। आप अवला आश्रम को देखकर वहुत प्रसन्न हुए तथा आपने मेरे कहने पर लिलुवा मे सर सेठ हुकमचन्द जी से एक वागान २० बीघा जमीन की आलिशान कोठी सहित खरीद कर आश्रम के लिए दे दिया। यह सन् १९३५-३६ की बात है। आश्रम के सभापति जी ने १६ बीघा जमीन और कोठी, मकान आदि हिन्दू अवला आश्रम चलाने के लिए बंगाल सरकार के सुपुर्द कर दिया। वह इस समय तीन लाख की सम्पत्ति है। सुना है सरकार आश्रम को बन्द कर रही है और वह स्थान किसी दूसरे काम मे लाया जायगा। यह काम जिनकी स्मृति मे हुआ है उनको स्वर्ग मे अच्छा नही लगेगा तथा आप भी इसको ठीक समझेंगे इसमे मुझे शका है। आश्रम को यह वागान दिलाने के वाद जब आप फिर चिरजीव ब्रजरत्न का विवाह बिडला परिवार मे करने कलकत्ता आए तव आपको आश्रम की लडकियो की तरफ से अभिनन्दन पत्र दिया गया। उस समय आपने वहुतो से आश्रम को सहायता दिलवाई। विधवा विवाह के लिए एक ट्रस्ट बना रखा है जिसमे दस हजार रुपया भाई छोटूलाल जी मोहता ने दिया और उतना ही रुपया आपने दिया। ट्रस्ट माहेश्वरी विधवा विवाह करने वालो को जो चाहे एक हजार तक उपहार स्वरूप देता है। स्त्री जाति की उन्नति के लिए आप तन, मन, धन से वरावर सहायता दे रहे हैं।

आप साहित्य, सगीत और कला मे भी अच्छा ज्ञान रखते हैं तथा दूसरो को इनसे वरावर लाभ पहुचाते हैं। आप वर्त्तमान पूंजीवादी प्रणाली के विरुद्ध हैं और उसके विरुद्ध प्रचार भी करते हैं। आप निरन्तर समाज की भलाई की ही चिन्ता करते रहते हैं और उसकी भलाई करने मे वाणी व शरीर से लगे रहते हैं।

आप की चिन्तन शक्ति इतनी तीव्र है कि आप भविष्य की सूझबूझ वरावर रखते हैं और वह अधिकाश मे सत्य होती है।

वीकानेर मे स्कूल, अस्पताल, धर्मशाला आदि जितने काम आप चला रहे है वे सव सामने ही है।

लगभग तीस पैंतीस वर्षो से आप अपनी दिनचर्या नियमित तथा रहन-सहन सादा रखते हैं। घर के सव लोगो को सादा जीवन विताने का उपदेश हर समय देते रहते है। विनोवा जी के विचारों से प्राय सहमत हैं। मेरे तो आप गुरु हैं और गुरु की जितनी प्रशसा अथवा जितने गुणानुवाद किए जाय या गुणों को पचाया जाय वह थोडा है।

बालकृष्ण मोहता

(मोहता जी कट्टर समाज सुधारक और प्रगतिशील विचारों के क्रान्तिकारी हैं। वर्तमान पूंजीवाद, समाज व्यवस्था तथा शासन की रीति-नीति के भी आप कट्टर विरोधी हैं। अपनी धुन के पक्के व लगन के सच्चे हैं। मिशनरी भावना से अपने विचारों का प्रचार करने में निरन्तर लगे रहते हैं। पोस्टर हाथ मे ले, गेरुवा कपड़ा पहन स्वयं अपने विचारो के पत्र, विज्ञप्तियाँ तथा अन्य साहित्य बांटने मे आप तनिक भी संकोच अथवा लज्जा अनुभव नहीं करते। अपने पौत्र और पौत्री का विवाह आपने समस्त सामाजिक रूढ़ियो और धार्मिक अंधविश्वासों को तिलांजलि देकर बडी सरलता के साथ किया है। आप सादे रहन-सहन और ऊँचे विचार के सिद्धान्त मे विश्वास रखते हैं। आपका सारा परिवार पत्नी, पुत्र, पुत्र वधू, पौत्र तथा अन्य परिजन आपके क्रान्तिकारी विचारो मे पूरी तरह रंगे हुए हैं। समाज सुधारक की दृष्टि से आपके परिवार को आदर्श कहा जा सकता है। बीकानेर राज्य मे आपकी निर्दोष सामाजिक एवं विचार क्रान्ति पैदा करने वाली प्रवृत्तियो को भी कभी सहन नहीं किया गया था।)

३३

श्रद्धा के दो पुष्प

सम्माननीय वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के अभिनन्दनार्थ जो अभिनन्दन समिति स्थापित हुई है उसके पुनीत कार्य मे सहयोग देकर श्री मोहता जी के सेवा मे "श्रद्धा के दो पुष्प" मैं भी भेंट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मैं तो श्री मोहता जी को अपने वचपन से ही जानता हूँ, किन्तु वे मुझे तव से जानते हैं जव कि मैं उनके निकट सम्पर्क मे आया। इस परिचय की अवधि भी ३५ साल से कम नही है।

मैंने श्री मोहता जी को जितना निकट से देखने का प्रयत्न किया है उनमे उतनी ही विशेषताएँ पाई। उनकी विचारशक्ति साधारण समझदार मनुष्य से चौथाई सदी आगे चलती हैं। वे अपनी दूरदर्शिता से जो जो वातें आज कहते व करते हैं, वे रूढ़िवादी समाज को आज अप्रिय लगती हैं किन्तु देखा है कि वे ही वातें उसी समाज का समय पाकर समर्थन प्राप्त कर लेती हैं।

मानव मात्र मे कुछ न कुछ कमी होनी सम्भव है और यदि कोई श्री मोहता जी मे केवल कमी की ही खोज करेगा तो उसका मिलना असम्भव नही। सर्वथा निर्दोष और निर्विकार तो ईश्वर ही है, मानव नही। यदि तुलनात्मक दृष्टि से विशेषताओ और त्रुटियो को तराजू के दो पल्लो पर रख तोला जायगा तो मुझे विश्वास है कि श्री मोहता जी की विशेषताओ का पल्ला दूसरे पल्ले से इतना अधिक भारी होगा कि उसके मुकावले हजारो मे भी किसी एक व्यक्ति का मिलना कठिन होगा। अतएव श्री मोहता जी हमारी परम श्रद्धा के पात्र हैं और आज उनके अभिनन्दन मे अपनी श्रद्धा अर्पण करने का सुअवसर प्राप्त होना हमारे लिए परम सौभाग्य की वात है।

श्री मोहता जी के जीवन मे समाज सुधार प्रधान लक्ष्य रहा है। आपने साहित्य रचना की। गीता पर आपका गहरा अध्ययन है। गीता की व्यावहारिकता पर आपने पुस्तकें लिखी, भाषण दिये। आप ने अनेक ग्रन्थ भी लिखे, कई पदो की रचनायें की और गायन वनाये। यदि गौर से देखा जाय तो इन सबकी बुनियाद मे सामाजिक क्रान्ति मिलेगी। अतएव आप मेरी दृष्टि मे वडे से वडे समाज सुधारको मे एक हैं। साहित्य के क्षेत्र में गद्य और पद्य दोनो प्रकार की रचनायें आप करते हैं और विचार इतने मजे हुए हैं कि आपको लिखने मे न तो विलम्व होता है और न अधिक श्रम।

एक दफे की वात है कि मैंने अपने पुत्र के विवाह मे सामाजिक गीत सुधार के लिए आपसे अनुरोध किया। मैंने कहा कि विवाह मे समधी को जो सीठने गाये जाते हैं उन के भाव वहुत भद्दे होते हैं। आप इनमे परिवर्तन कर स्वागत योग्य सुन्दर शब्द भर दें तो वडी कृपा हो और अपने पुत्र के विवाह मे इन्हे गवाऊँ। वस कहने की देरी थी कि आपने दूसरे ही दिन सीठनो के स्थान पर स्वागत के सुन्दर शब्द भर दिये। मैंने अपने यहाँ उनका प्रयोग किया और लोगो ने उनको वहुत पसन्द किया। वीकानेरी भाषा के चालू गानो को यदि सुन्दर रूप में वदल कर चलाया जाय तो श्री मोहता जी से काफी मदद मिल सकती है। यह केवल सामाजिक ही नही वल्कि सास्कृतिक सुधार भी है जिसका वडा भारी महत्व है।

आपकी सार्वजनिक सेवायें भी वहुत महत्व रखती हैं। आपकी युवावस्था मे वीकानेर मे "गुण प्रकाशक मज्जनालय" स्थापित हुआ जिसमे आपने काफी भाग लिया। तव से अव तक न जाने कितनी सस्थाओ से आपका निकट सम्पर्क रहा। आपकी सभी पारवारिक सस्थाओ मे आपका मुख्य भाग रहा। वीकानेर मे स्थित मोहता

धर्मशाला, मोहता औषधालय, मोहता रसायनशाला, मोहता मूलचन्द विद्यालय, संस्कृत पाठशाला, सगीतालय, वनिता आश्रम महिला मडल आदि अनेक ऐसी सस्थायें हैं।

आपको सगीत का वडा शौक है। डाडिया नृत्य और डाडिया गायन वीकानेर का प्रसिद्ध मनोरजन हैं जिसमे आपका मुख्य भाग रहा है। राजा मानसिंह जी की सामाजिक क्रान्ति मूलक वाणी आप गाया करते हैं, उनका प्रचार करते हैं और उनमे भरी हुई समाज सुधार की भावनाओ को रागो मे पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। आपने अवला, विधवा, और हरिजन सेवा मे सक्रिय भाग उस समय से आज तक लिया जिस समय समाज मे इसका तीव्र विरोध था।

आप अपने विचारो को मन ही मन सडने नही देते। उन्हें निधडक होकर प्रगट करते हैं, प्रचार करते हैं, और स्वय अपनाते भी हैं। अकाल के समय आप अकाल पीडितो की सेवा केवल अन्न वस्त्र से ही नही करते, किन्तु उन्हे स्वावलम्बी वनाने के लिए आवश्यक साधन भी जुटाते हैं।

अनाथ, असहाय, विधवाओ को घर बैठे गुप्त सहायता भी आपके द्वारा वडी मात्रा मे पहुँचाई जाती हैं। इसका लेखा जोखा तो आप के सिवाय और कोई नही जानता।

आप अखिल भारतीय माहेश्वरी महा सभा के पंढरपुर अधिवेशन के सभापति उस समय वने जिस समय समाज मे कोलवार आन्दोलन ने विकट रूप धारण किया हुआ था। विचार स्वतत्रता को दवोचा जा रहा था, और महासभा के प्रति विपावत वातावरण जोरो पर था। कोलवार आन्दोलन मे भी आपने बहुत वडा भाग लिया। विचार स्वातंत्र्य की मर्यादा की रक्षा की। साथ ही आपने अपने विचारों के साथियो के विपरीत दूसरे विचार वालो के पक्ष मे कभी कभी ऐसे कठिन निर्णय भी दिये जिसे आपकी न्याय प्रियता की चरम सीमा ही कहा जाना चाहिए।

कोलवार आन्दोलन के भयकर दिनो के मध्य को वात है। श्री कृष्ण लाल जी थिरानी का विवाह श्री रामेश्वरदास जी विडला की पुत्री से देहली मे होने वाला था और डीडू माहेश्वरी सघ ने उसमे सहयोग देने का निर्णय किया। इस पर वीकानेर मे सघ वालो की वैठक हुई और उसमे मतभेद पैदा हो गया। फलत संघ के विखरने की नौवत पैदा हो गई। आप धर्मशाला मे बीमार थे। वीकानेर मे सघ के प्रधान नेता स्वर्गीय श्री रामरतन जी वागडी ने दोनो दलो को इस शर्त पर राजी कर लिया कि श्री रामगोपाल जी मोहता के हाथ मे अन्तिम निर्णय छोड़ दिया जाय और उनका जो भी निर्णय हो वह सवको मान्य हो। हम लोग जो विवाह मे जाना चाहते थे वे राजी हो गये और न जाने विरोधी विचार वालो को श्री वागडी जी ने कैसे राजी कर लिया और आखिर श्री मोहता जी ने श्री वागडी जी से परामर्श करने के वाद निर्णय दिया कि सघ के सभी सदस्य स्वतत्र हैं और जिनकी इच्छा हो वे जावें और जिनकी इच्छा न हो न जायें। साथ ही यह भी निर्णय दे डाला कि जो लोग जावेंगे उनके साथ सघ के दूसरे लोग सामाजिक व्यवहार रखें या न रखें इसके लिए भी सवको स्वतत्रता है।

इस निर्णय से मजवूत दिल वालो के भी दिल हिल गये कि एक ओर पचायत वालो से हमारा सम्वन्ध टूट चुका है और दूसरी ओर सघ वालो के साथ भी सम्वन्ध सदिग्ध हो जाता है। ऐसी स्थिति मे हमारे लडके लडकियो के सम्वन्व मे कितनी कठिनाई पैदा जायगी। सभी वडी असमजस स्थिति मे पड गए। निर्णय मान्य हुआ और मजवूत दिल वाले भविष्य को भगवान के भरोसे छोडकर दिल्ली की गाड़ी पर सवार हो गये और आखिर भगवान की कृपा से वे सफल हो गए। फलत. आज विचार स्वातत्र्य तो क्या, व्यवहार स्वातत्र्य भी खुला है और प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्ति स्वातत्र्य मिल गया है। न समाज की कही रुकावट है और न सामाजिक वहिष्कार नाम की कोई चीज वची है। सामाजिक वहिष्कार के अतिरेक का जो परिणाम सभव था वही हुआ।

राजनैतिक और व्यापारिक क्षेत्र मे भी आप की योग्यता वहुत ऊंची है। वीकानेर के महाराज स्व०

शार्दूल सिंह जी अपने राजकाज मे आपसे परामर्श लिया करते थे और भारत के विभाजन के समय कराची के अपने व्यापार को समेट कर भारत मे ले आने मे आप ही के कारण आपका फर्म सफल रहा। अपनी दूरदर्शिता से आपने अपने को खूब सभाला और बडे अश मे आप बहुत बडी हानि से वच गये। आपका प्रत्येक भागीदार मुनीम, गुमाश्ता सब ही का आप पर पूरा भरोसा रहता है और वार्षिक आकडो के जमा खर्च आपके द्वारा जो भी करा दिए जाते हैं वे सभी को सहर्ष मान्य होते हैं। आप के व्यक्तित्व पर सभी को एक सा भरोसा और विश्वास रहता है।

आपने समाज को, खासकर महिला समाज को अपनी दोहित्री श्रीमती रतनबाई दम्माणी के रूप मे ऐसी देन दी है जिस पर समाज को गौरव है। श्रीमती रतनबाई दम्माणी आप ही के द्वारा तैयार की गयी समाज सेवा की एक जीती जागती सस्था है। जिनसे समाज चाहे तो अपने महिला समाज की प्रगति के लिए यथेच्छ सेवा ले सकता है। रतनबाई को मैंने बाल काल से देखा है, उसके प्रति अत्यन्त आदर के भाव के साथ साथ वात्सल्य का भाव भी मेरे हृदय मे विद्यमान है। अत उसको हार्दिक आशीर्वाद दूं तो भी अनुचित नही। उसकी विचारधारा पर श्री मोहता जी के विचारो की छाप है और कार्यशैली, वक्तृत्व शैली, सभा सचालन क्षमता, किसी योग्य से योग्य महिला मे भी वैसी मिलनी दुर्लभ है। मैं यह चाहता हूँ कि यह देवी और आगे बढे। अपने और श्री मोहता जी के नाम की शोभा मे चार चाद लगाये। इस अवसर पर मुझे मोहता परिवार के कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियो का भी सहज मे स्मरण हो आता है। उनमे रावबहादुर सेठ मदन गोपाल जी मोहता और स्वनामधन्य सेठ रामकिशन जी मोहता मुख्य हैं। सामाजिक मामलो मे सेठ मदन गोपाल जी मोहता ने समय-समय पर बडे साहस का परिचय दिया। कोलवार आन्दोलन के दिनो मे उन्होंने विशेष साहस का परिचय दिया। स्वर्गीय सेठ रामकिशन जी मोहता भी वैसे ही साहसी, परन्तु उदारचेता, गम्भीर और समाज सेवी विशिष्ट व्यक्तित्व रखने वाले थे। १९२० मे महात्मा गाधी के कलकत्ता आने पर वे उनकी पहली सभा मे सभा-पति हुए थे, जिसमे उन्होंने काग्रेस की तिलक स्वराज्य निधि मे स्वेच्छा से २५ हजार की धनराशि प्रदान की थी और आग्रह करने पर उसको दुगना यानी ५० हजार कर दिया था। कलकत्ता से दी गई यह सबसे बडी धनराशि थी। वे इसी प्रकार काग्रेस को और व्यक्तिगत रूप से देश सेवको और क्रान्तिकारियो को भी मुक्त हस्त से सहायता देते रहते थे। वर्षों वे अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के प्रधान मत्री रहे, केवल २३ वर्ष की आयु मे उसके इन्दौर अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए और कोलवार प्रकरण मे उन्होंने असीम साहस से महासभा का साथ दिया और कोलवार जाँच कमीशन के सदस्य के रूप मे काम किया। लाखो रुपया उन्होंने देश सेवा और समाज सेवा के लिए खर्च किया होगा। वे अत्यन्त सरल, मिलनसार और सात्विक वृत्ति के थे।

अपने महान नेता, सच्चे समाज सेवी, दानवीर वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता के अस्सी वर्ष के सफल जीवन पर अपनी श्रद्धा के दो पुष्प सादर भेंट करता हुआ उनके दीर्घ जीवन की मगल कामना भगवान से करता हूँ।

बृजबल्लभदास मूँदडा

(श्री मूँदडा जी पुराने समाज सेवी और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं। अखिल भारतीय माहेश्वरी महा-सभा के सचालन मे आपका प्रमुख हाथ रहा है। कलकत्ता मे माहेश्वरी समाज की सार्वजनिक प्रवृत्तियों मे आप प्रमुख भाग लेते रहे हैं। कोलवार आन्दोलन मे विचार स्वातन्त्र्य के लिए आपने डीडू माहेश्वरी सघ की स्थापना करके जो कार्य किया उसको कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। संघ के प्रधान मत्री के पद पर रहकर आपने सराहनीय सेवा की और डीडू माहेश्वरी महा पचायत के केन्द्र स्थान कलकत्ता मे उसके तीव्रतम विरोध को

आपने बड़े धैर्य एवं साहस से सहन किया। उन दिनो मे समाज की नैतिकता को बनाए रखने का जिनको श्रेय है उनमे आपका मुख्य स्थान है। माहेश्वरी महासभा के आपने प्रधानमंत्री के कार्य को निभाया और उसके अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। इस समय आप कलकत्ता और रंगून में टिम्बर मर्चेन्ट का काम कर रहे हैं।)

●

३४

सच्चे कर्मयोगी

श्रद्धेय मोहता जो की बहुत समीप से देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। वे कुशल व्यापारी होते हुए भी सच्चे कर्मयोगी हैं। उनकी सादगी सराहनीय है। उनमे दयालुता और दृढता का बडा सुन्दर समन्वय है। श्रीमद्‌भागवत गीता का उनका अध्ययन और मनन बहुत गहरा और गम्भीर है। उनके गीता के व्यावहारिक दर्शन से कितने ही प्राणियों ने अनुपम लाभ उठाया है। मुझे भी उनके कितने ही प्रवचन सुनने का लाभ मिला है।

मैं उस आनन्द को जीवन भर भूल नही सकता, जो उनकी भजन मडली अथवा सत्संग मे सम्मिलित होने पर मुझे प्राप्त हुआ। वे छोटे बडे और गरीब-अमीर आदि का सब भेदभाव भुलाकर सबके साथ मिलकर जिस समभाव से गीत व भजन गाते हैं वे दृश्य मेरी आँखो के सामने सदा बने रहते हैं और मैं सदा उनकी सराहना करता रहता हूँ। होली पर भी वे डाडिया खेल मे सब के साथ बिना किसी भेदभाव के शामिल होते हैं। तब योगेश्वर श्रीकृष्ण की बालगोपाल लीला का एक सुन्दर और पवित्र दृश्य उपस्थित हो जाता है।

समाज सुधार के क्षेत्र मे मोहता जी सदा ही अग्रसर रहते हैं और बडी-से-बडी कटु आलोचना की भी परवाह न कर पूरे साहस से अपने कर्तव्य पथ पर आरूढ रहते हैं। किसी भी प्रकार की निन्दा या विरोध उनको विचलित नही कर सकता। उनका दान भी बहुमुखी हैं। कितने ही लोकोपकारी कार्य उन्होंने प्रारम्भ किये और लाखो रुपया लगाकर उनको जारी रखा।

गीता के उपदेशो को मोहता जी ने अपने जीवन मे उतारने का पूरा प्रयत्न किया है। इसी कारण उनका व्यावहारिक ज्ञान बडा प्रखर है और उनसे सलाह करने व परामर्श लेने मे बडा संतोष व प्रोत्साहन मिलता है और अनेक कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।

रामप्रसाद खंडेलवाल

(मोहता जी के कराची के पुराने साथी और यशस्वी उद्योगपति।)

●

३५

मोहता जी का जीवन दर्शन

पूज्य रामगोपाल जी मोहता से मेरा प्रथम साक्षात् दिसम्बर १९४१ मे हुआ था, परन्तु कई वर्षों के बाद उनका पूरा परिचय मिल सका है। उनसे मिलने से पहले भी उनके विषय मे भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगो से जो कुछ परिचय प्राप्त हुआ था उससे श्रद्धेय मोहता जी जैसे मनस्वी को पूर्णतया जाना नही जा सकता था। कुछ लोग कहते थे कि आप एक साम्यवादी धर्म-भ्रष्ट आदमी हैं और कुछ लोग कहते थे कि आप एक विचारशील मननशील, वेदान्तवादी हैं। इस प्रकार परस्पर सर्वथा विपरीत कथनो से उनके बारे मे न कुछ मैं जान सकता था और न जानने का कोई विशेष आग्रह ही था, परन्तु भाग्यचक्र से जब मैं उनके निकट सम्पर्क मे आ गया तो मैंने प्रथम साक्षात् से ही यह अनुभव किया कि जन-श्रुति केवल ज्ञानहीन तथा विकृत मस्तिष्क की उत्तेजना मात्र थी। मैंने देखा कि श्रद्धेय मोहता जी साम्यवादी तो थे परन्तु जीवन के हर एक पहलू मे उत्कृष्ट एव पवित्र थे। उनका साम्यवाद समत्वबोध का एक सुन्दर, उज्ज्वल और पवित्र रूप है। इस मे न तो कोई विकृत बुद्धि की सम्भावना है न पाशविकता या निष्ठुरता का कोई आभास है। यह एक प्रकार का मानव का स्वाभाविक धर्म है जिसे अविमूढ एव निर्मल-चित्त स्वत ग्रहण करता है और अनुष्ठानिक धर्म के मायाजाल से अपने को मुक्त कर सहज सत्य की ओर बढता जाता है। उनका साम्यवाद एक प्रकार का उच्च कोटि का सत्यदर्शन है। उनका जीवन इस सत्यदर्शन मे ओतप्रोत है। वह कभी क्रान्ति के रूप मे, कभी समाज-सुधार के रूप मे, कभी शिक्षा-प्रसार या सत्य-प्रचार के रूप मे प्रकट होता है। साम्यवाद के विस्फुरण से जो परिचित हैं लेकिन पूज्य मोहता जी के समत्व भेद से जो अपरिचित हैं वैसे मनुष्य इस प्रकार के क्रान्तिकारी सत्य-दर्शन को भ्रान्ति से साम्यवाद समझते हैं। वास्तव मे यह उनकी निर्मल बुद्धि का एक सफल प्रयास है।

मानव अनुभव ज्ञान, भक्ति एव कर्म इन तीनो से प्राप्त किया जाता है और ये तीन तत्व अनुभव रूपी त्रिभुज के तीन कोण है। इसलिए तीनो एक दूसरे के आधार पर अवलम्बित हैं। आज के समाज मे हम प्राय यह देखते हैं कि मनुष्यो का ज्ञान उनके कर्म तथा श्रद्धा (भक्ति) से कोई सम्बन्ध नही रखता है। इसी प्रकार मनुष्यो का कर्म ज्ञान एव भक्ति से कोई सम्बन्ध नही रखता है। इससे ससार मे अन्ध-विश्वास तथा अन्ध श्रद्धा का जन्म हुआ है और इस अन्ध-विश्वास के फलस्वरूप समाज मे विभिन्न कुरीतियाँ, व्यभिचार, अन्याय तथा पाशविकता धर्मानुष्ठान के नाम से प्रचलित होकर समाज-जीवन को दूषित, कण्टकित एव दुखमय बनाते हैं। पूज्य मोहता जी ने इस विषय का यथार्थ अनुशीलन किया है और जरजरित समाज-जीवन को निष्कण्टक, निर्दोष एव निर्मल बनाने की प्रवृत्ति से उन्होंने समत्व-बोध को जीवन के हर पहलू मे लागू किया है। मैं उनका उद्योग, व्यापार व व्यवसाय के क्षेत्र मे समत्व-बोध का व्यावहारिक रूप क्या बना है यही नही जान सका, परन्तु शिक्षा एव समाज-सुधार के क्षेत्र मे उनका जो अमूल्यदान है उससे परिचित हूँ। शिक्षा-क्षेत्र मे आप एक ऐसा परिवर्तन ले आये हैं जिसके फलस्वरूप आज बीकानेर शहर का एक निर्बोध, अशिक्षित एव स्थूल बुद्धि सम्पन्न समाज वर्षो की मोह-निद्रा तथा अज्ञानान्धकार से जाग्रत और मुक्त होकर आत्मा के स्वाधीन, सरल एव आनन्दमय मार्ग पर आ गया है। इसका ज्वाजल्यमान प्रमाण 'मोहता मूलचन्द विद्यालय' है जहाँ के विद्यार्थी आज राजस्थान सरकार के विभिन्न विभागो मे उच्च पदो पर आसीन हैं और आज से तीस वर्ष पूर्व की क्रान्ति का सुफल प्राप्त कर रहे हैं। इसी विद्यालय से ही बीकानेर राज्य के सर्व प्रथम हरिजन छात्र ने ज्ञानलोक प्राप्त किया है और अपने तथा अपने समाज के जीवन को सुसस्कृत बनाने मे लगा हुआ है। बीकानेर राज्य के कर्मजीवी

असंस्कृत, निरक्षर सम्प्रदायो को पूज्य मोहता जी ने शिक्षित एवं सुसंस्कृत बनाकर उनके जीवन को सार्थक बनाया है। देश विभाजन की उलझन मे जब सहस्र आर्त नर-नारी बीकानेर राज्य मे आश्रय प्राप्त करने की क्षीण आशा लेकर आये थे उस समय पूज्य मोहता जी ने उनका हृदय से स्वागत कर उनको अपनी हवेलियो मे बसाया एव उनकी पेट पूर्ति के लिए अपने धनकोप का द्वार खोल दिया था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूज्य मोहता जी के साम्यवाद मे धन लोभ, यशोलिप्सा एवं स्वार्थ की भावना नही है बल्कि यह एक विशुद्ध-बुद्धि का प्रकाश है जो कि उनके विभिन्न क्रान्तिकारी कार्यों मे उत्तरोत्तर दैदीप्यमान होकर समाज जीवन को आलोकित करता जा रहा है। इसमें शोषण व हृदय-हीनता का कोई चिह्न नही है। ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का यह एक सुन्दर समन्वय है जो कि श्रद्धेय मोहता जी के भिन्न-भिन्न कर्मो मे स्पष्ट प्रतीत होता है।

पूज्य मोहता जी सम्पर्क मे आकर और उनके सत्य-दीप्त, कर्म-मुखर और ज्ञान-निर्धूत कलमष चरित्र के मधुर सान्निव्य मे मैंने यह अनुभव किया कि जो भक्ति या श्रद्धा या अनुराग समत्व-ज्ञान-प्रसूत नही है वह भक्तिधारा जीवन-मरुस्थल मे शुष्क एव लुप्त हो जाती है यानि वह भक्ति या श्रद्धा अथवा अनुराग जीवन को सुस्निग्ध, सफल, पल्लवित तथा पुष्पित नही कर सकती है। यह केवल तप्त-जीवन पर एक छुन्नाटा पैदा करके हृदय को एव मस्तिष्क को वाष्पावृत करती है जिससे मनुष्य एक अलीक कल्पना राज्य मे रह जाता है एव जीवन की सार्थकता को उपलब्ध नही कर पाता है। मैंने उनसे यह शिक्षा भी ली है कि जो कर्म के पश्चात् मन की स्वाभाविक रुचि या वृत्ति नही है उस कर्म से जीवन को मधुमय तथा सरस बनाया नही जा सकता है। यद्यपि उनकी विचारधारा मेरे लिए पूर्णत बोध-गम्य नही है, परन्तु उस प्राणमयी समुज्ज्वल धारा-प्रवाह के किनारे पर बैठकर मैं अपने जीवन को ययेष्टमात्रा मे स्निग्ध, सरस, तथा सार्थक बनाने मे समर्थ हुआ हूँ। उसकी स्मृति मे मैं जीवन के अन्तिम दिवस तक श्रद्धाजलि अर्पित करता रहूँगा एवं उनकी इस इक्यासिवी वर्ष-गाँठ पर विशेष रूप से श्रद्धाजलि अर्पित कर रहा हूँ। सहृदय पाठक इस श्रद्धा के मूल उत्स को पूर्ण रूप से समझ कर अपने जीवन को इसी प्रकार सफल एव सरस बनायेंगे यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है। मनस्वी रामगोपाल जी मोहता एक नीरस, बुद्धि-मार्गी न्यूटन या एक निष्क्रिय अलस वैदान्तिक या एक हृदयहीन, प्रेमहीन कर्मयोगी नही कहे जा सकते है, परन्तु ज्ञान, भक्ति एव कर्म का जो उत्कृष्ट अश है उससे उनका जीवन अभिषिक्त एव उद्दीप्त होकर हमारे सामने प्रस्फुटित पुष्प की भाति शोभायमान है। इसे देखकर हमे आनन्द प्राप्त होता है। इसकी सुरभि से हम मोहित होते हैं और इसके कोमल स्पर्श मे हम विमल आनन्द प्राप्त करते हैं। शरत्-पूर्णिमा की रात्रि मे पूज्य मोहता जी को जिसने सबान्धव उत्सव मनाते हुए देखा उसने अवश्य ही इस बात को जान लिया होगा कि जीवन मे स्वाभाविक आनन्द की एक विशेष आवश्यकता है। इस आनन्द को प्राप्त करना ही जीवन का परम तथा चरम् उद्देश्य है और इसी आनन्द को हम जीवन-देवता कह सकते हैं। इसी आनन्द के अनुभव से हमे आत्मिक अनुभूति प्राप्त होती है एव ऐसे आनन्द के प्रवाह से ही हमारी चित्त-वृत्ति जागृत होकर जीवन को नयी शक्ति से परिप्लावित करती है। इस दृष्टि से आनन्द ही है जीवन का ध्येय तथा लक्ष्य परन्तु इसे केवल भौतिक आनन्द ही नही समझना चाहिए, इसे साम्यवाद का उत्कट आनन्द नही मानना चाहिये, इसे विलासिता का दूषित आनन्द नही समझना चाहिये, बल्कि उसे समत्व-बोध के निर्मल आनन्द के रूप मे हृदयगम करना चाहिये। इस आनन्द मे मोह नही है, अज्ञानता का अन्धकार नही है, स्वार्थ की गौण भावना या हिंसा की हृदयहीनता नही है। यह आनन्द भगवत्स्वरूप है और इसकी प्राप्ति से मनुष्य जीवन सफल होता है तथा जन्म सार्थक होता है। हमारे समाज के असख्य दुराचारो में जो वीभत्स आनन्द दृष्टिगोचर होता है उससे समाज आज जराजीर्ण, गलित व शिथिल हो गया है। ऐसे समाज को आपने बतलाया है जीवन का लक्ष्य और वह है "व्यावहारिक दर्शन।" मैं जानता हूँ कि मनस्वी पुरुषो के सिद्धान्त सैकड़ो वर्षो के बाद साधारण लोगो को अधिगम्य होते हैं; परन्तु यहं भी

सव को विदित है कि सिद्धान्त को जीवन मे नही अपनाने से वह परित्यक्त स्वर्ण-खण्ड की तरह दीप्ति-हीन हो जाता है और उसके प्रकाश से जीवन का कोई भी क्षेत्र आलोकित नही हो पाता है। अत इस अभिनन्दन-ग्रन्थ के द्वारा समाज-जीवन मे पूज्य मोहता जी का सिद्धान्त चिरकाल के लिए समुज्जवल रहेगा इसमे कोई सन्देह नही है।

श्री माणिकचन्द्र भट्टाचार्य

(आप एम० ए०, बी० एल० और बी० टी० हैं। पहले मोहता मूलचन्द हाई स्कूल के मुख्याध्यापक थे और अब श्री गगा नगर मे इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स हैं।)

•

३६

समदर्शी मोहता जी

श्रीमद्भगवत गीता को समझने के लिए लोकमान्य तिलक ने हमे एक नई दिशा दी। वह थी कर्म-योग की। मोहता जी ने भी गीता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। जिसमे समत्वयोग का मार्ग प्रशस्त रूप मे दिखाया गया है। मोहता जी वहुत अशो मे तिलक को आदर्श मानते हैं।

विशिष्ट व्यक्तियो मे अनेक विशेषतायें होती हैं। उनकी प्राप्ति उन्ही लोगो को होती है जिनकी उनमे रुचि होती है। श्री रामगोपाल जी मोहता मे अनेक विशेषतायें हैं, किन्तु मेरा ध्यान उनकी ओर तव आकर्षित हुआ जव "चाँद" के मारवाडी अंक के प्रकाशन के अवसर पर लोगो ने विरोधी आन्दोलन खडा किया। तब से मैं वरावर उनकी विचारधारा और कार्यकलाप की ओर ध्यान देता रहा हूँ। स्त्रियो को पुरुषो के समान अधिकार दिला और दलित लोगो को सवर्णो के समान स्तर पर लाने के उनके हार्दिक प्रयत्नो मे मैंने उनके समदर्शी रूप के दर्शन किये है। जव वे अपनी घोडा गाडी (टमटम) पर वैठकर नित्य सायकाल गगाशहर की हरिजन बस्ती मे हरिजनो के कथा कीर्तन मे शामिल होने जाते थे तब कट्टरपथी हिन्दू गलियो मे दीवारो पर "मोहता भगी है" सरीखे शब्द लिखकर अपनी आत्मतुष्टि करते थे; किन्तु हर्ष व शोक अथवा निन्दा और स्तुति मे समभाव रखने वाले मोहता जी पर इसका कुछ भी प्रभाव नही पडता था। अपितु उन्होंने उसी गति से अपने कर्त्तव्य कर्म को जारी रखा।

स्त्रियो अथवा हरिजनो मे वे आत्मा का वही पवित्र रूप देखते हैं जोकि ब्राह्मण आदि द्विज कहलाने वाले लोगो मे हैं। वे सम्पति के मोह मे फसे हुए नही हैं। वे अपनी सम्पत्ति को योही गली मे नही फेंक देते, किन्तु जहाँ जन हित का कार्य होते देखते हैं वहाँ विना माँगे ही सम्पत्ति दान करते हैं। मरुभूमि की त्रैवार्षिक शिक्षा योजना मे उन्होंने स्वय वुलाकर मुझे इक्यावनसौ रुपये की सहायता प्रदान की। कोलायत का अपना एक मकान उन्होने हरिजन सेवा कार्य के लिए दे रखा है। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि श्री रामगोपाल जी मोहता कर्म मे निष्ठा रखने वाले विवेकशील, निस्पृह और समदर्शी पुरुष हैं। योगियो मे प्राय इसी प्रकार के लक्षण होते हैं।
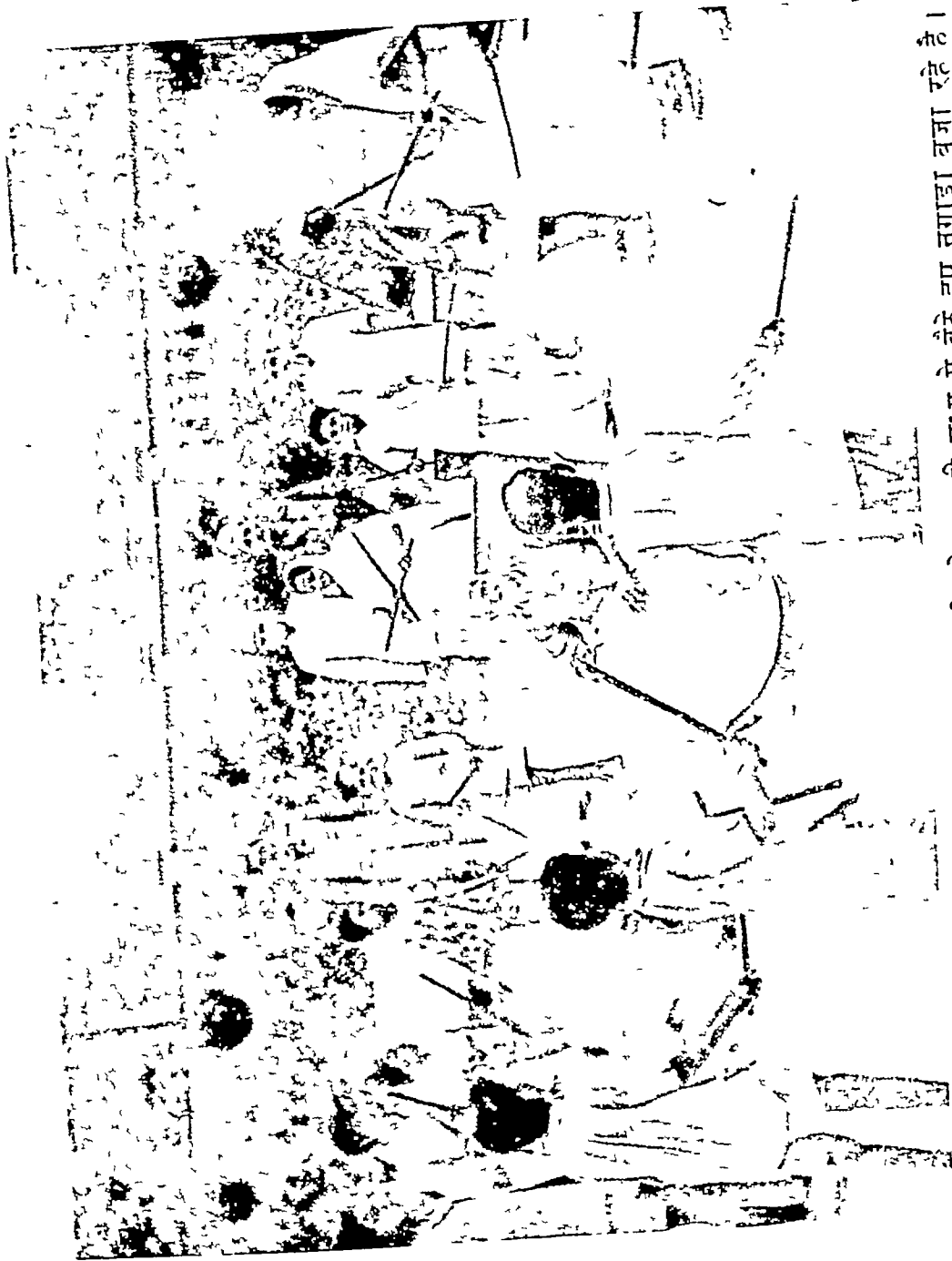
हरिजन बालकों को डाडियों का खेल सिखाते हुए श्री मोहता जी मध्य में बैठे हुए नगाड़ा बजा रहे हैं।
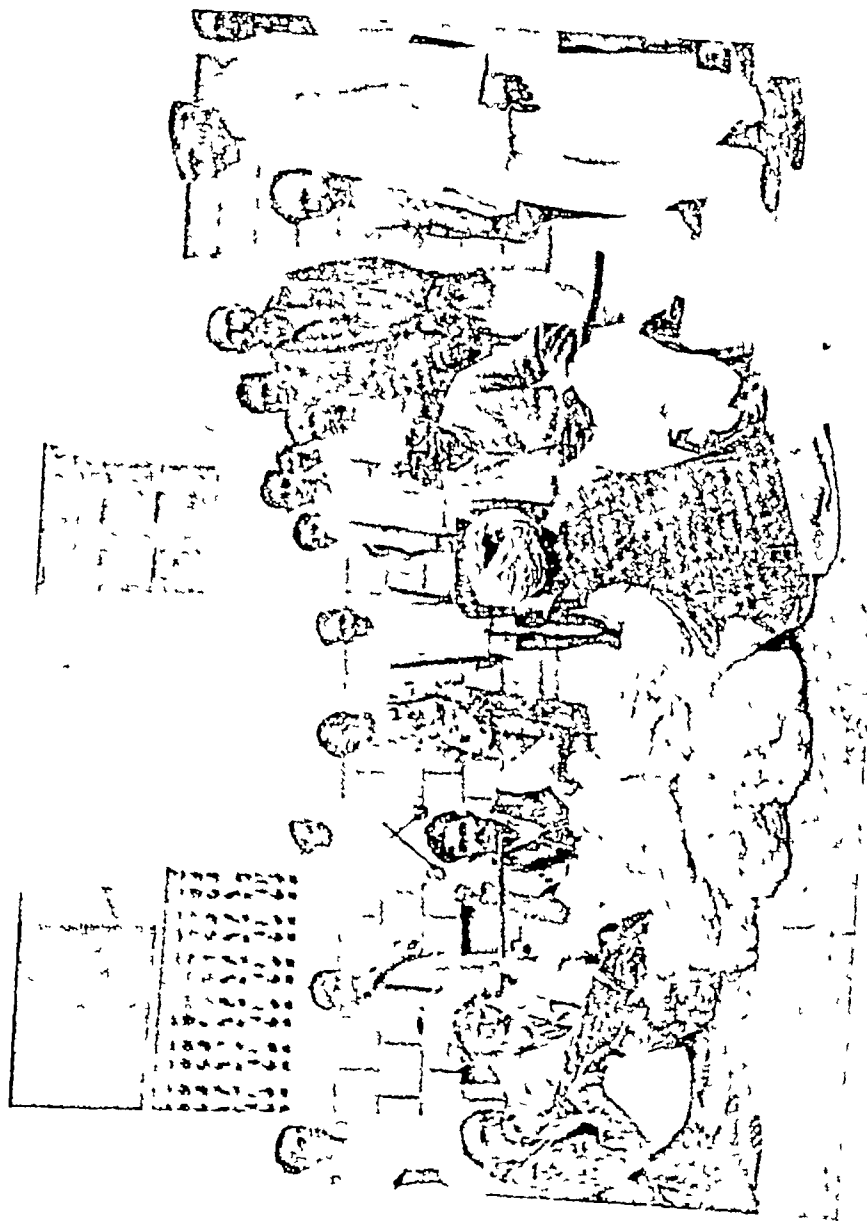
ग्रकाल पीडितो को कपड़ा बुनने के लिए सूत प्रदान करते हुए मोहता जी व पन्नालाल जी बारुपाल, एम० पी०

अत. यह उचित ही है कि उनके सम्मान मे 'आदर्श समत्व योगी' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

केशवानन्द

(आप अपने वंशानुगत मठ का परित्याग कर कर्मठ सन्यासी बन गए हैं और शिक्षा प्रसार के महत्व-पूर्ण कार्य के लिए आपने अपने को न्योछावर कर दिया। पाकिस्तान की एक सीमा अबोहर मे आप द्वारा संस्थापित "हिन्दी पुस्तकालय" पंजाब की अपने ढंग की एक ही सस्था है। उसकी दूसरी सीमा संगरिया मे आपने बालको और बालिकाओ की जिन शिक्षा संस्थाओ की स्थापना की है वे भी अपने ढंग की अनोखी हैं। राजस्थान शिक्षा की दृष्टि से भी एक मरुस्थल है। मरुस्थलमें हरयावल के दुर्लभ स्थानो की तरह संगरिया का शिक्षा केन्द्र एक बड़ा आकर्षण बन गया है जो कि स्वामी जी की ठोस सार्वजनिक सेवा की जीती जागती निशानी है। स्वामी जी इन दिनो मे संसद की राज्य सभा के सदस्य हैं।)

●

३७

"बाबा"—एक आदर्श पुरुष

सेठ रामगोपाल जी मोहता दृढ़प्रतिज्ञ, निर्भीक, धुन एव निश्चय के पक्के, विचारक, दानवीर, रूढियो के विरोधी और दृढ समाज सुधारक हैं। हरिजनोद्धार, दीनहीन पीडितो की सहायता, समाज द्वारा पीडित अबलाओ एव विधवाओ के कल्याण के लिए उन्होने जो निस्वार्थ कार्य किया व कर रहे हैं, उसकी सराहना शब्दो मे नही की जा सकती। उसका अनुमान तो समाज से पीडित महिलाओ तथा देहातो मे फैले लाखो हरिजनो के हृदयो को टटोलने से स्वत हो जायगा। बीकानेर के इलाके मे हरिजनो के लिए उन्होंने कुण्ड बनवाए, तालाबो की खुदाई हेतु रुपए दिए, सहायता देकर स्कूल चालू कराये और बच्चो को पढाने के लिए प्रोत्साहित किया, उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए विद्यार्थियो की सहायता की, मेलो मे व सत्संग मे अस्पृश्यता की निर्मूलता का तात्विक विवेचन किया, हरिजन मोहल्लो मे जाकर उनको सभाला, कार्यकर्ता तैयार किए और उन्हे बराबर मार्ग पर आगे बढाते रहे। सार्वजनिक स्थानो मे हरिजनो का प्रवेश कराया, अकाल पडने व बीमारी फलने पर अनाज, कपडे, व तकावी से हर प्रकार की सहायता की। श्री मोहता जी ने हरिजनोत्थान व नारी कल्याण के लिए न केवल अपना काफी समय ही लगाया है, बल्कि उन्होने लाखो रुपयो की सहायता देकर, अनेक सवर्ण व हरिजन कार्यकर्ता तैयार करके हिन्दू समाज एव राष्ट्र की बहुत बडी सेवा की है।

मुझ जैसा एक साधारण व्यक्ति उन जैसे महान व्यक्तित्व एवं साधक के बारे मे क्या लिख सकता है? आज मैं जो कुछ भी हूँ, वह सब उन्ही की देन है। अगर मुझे उनका आशीर्वाद, मार्गदर्शन, सहयोग व सहायता नही मिली होती तथा सामाजिक अत्याचारो एव विषमताओ के असर से विचलित हो जाने पर अगर उन्होंने मुझे धैर्य बँधाकर पुन सात्विक मार्ग पर न लगाया होता तो पता नही मैं किस दयनीय हालत मे होता? आज मैं भारत की ससद (पार्लमेंट) का सदस्य भी बन सका हूँ यह सब श्रद्धेय, मोहता जी की कृपा का ही फल है।

मोहता जी के सम्पर्क मे मैं विद्यार्थी अवस्था मे आया था। सन् २२-२३ मे मैं जब आर्य समाज मे पढता

था तब उनके पास चन्दे के लिए पहली बार गया था। उसी समय मुझ पर उनका ऐसा प्रभाव पडा कि मैं सत्सग मे जाने लगा। उन्होने रामदेव पाठशाला को सहायता देकर हरिजनो मे शिक्षा प्रसार का कार्य शुरू कराया। पिता जी की मृत्यु के बाद जब मैं घोर आर्थिक सकट मे फंस गया, तब उन्होंने ही मुझे उससे बचाया। उनके द्वारा किए गए विश्लेषण से मुझे पता लगा कि मेरे परिवार के लिए आर्थिक सकट का मूल कारण सामाजिक रूढि के नाम पर पिता के पीछे मृतक भोज का करना था। उनकी प्रेरणा से प्राप्त शक्ति के बल पर मैंने अपने दस साथियो सहित मृतक भोज न करने व उसे बन्द करने का व्रत लिया। मेरी बडी माँ की मृत्यु पर इस व्रत का पालन किया गया, जिस पर मुझे न केवल जाति बहिष्कृत ही होना पडा, बल्कि अन्तिम क्रिया मे मुझे भाग नही लेने दिया गया। आज तो अनेक गाँवो मे हजारो हरिजन परिवारो ने मृतक भोज बन्द कर दिए हैं और निरन्तर इस दिशा मे प्रगति हो रही है।

सवत् १९९६ मे अकाल पडा, उसके बाद भी कई अकाल पडे, बीमारियाँ फैली। उस समय उन्होंने मेरे पर जो भार डाला, वह यह था कि मैं भूखो व नगो की खोज करके लाऊँ व उन्हें सहायता दिलाऊँ। वे अनाज व कपडे की सहायता देते थे, पर साथ ही उन्होने यह ध्यान रखा कि कही उनमे भिक्षा वृत्ति घर न कर जाय, इसलिए उन्होंने कताई व बुनाई का कार्य भी दिया और घाटा उठाकर उनसे सूत व कपडा लेकर उन्हे सहायता पहुँचायी। वर्षा होने पर उन्होने खेती के लिए बीज, हल व तकावी दी। पीडित गायो के लिए उन्होने विशेप व्यवस्था करके गोधन की रक्षा की।

उनके सभापतित्व मे सन् ४३ मे हरिजन हितकारिणी सभा की स्थापना हुई, जिसमे कई सवर्ण भाई आगे आए और उन्होने बीकानेर मे हरिजन कल्याण के लिए सराहनीय कार्य किया। हरिजन सेवक सघ, दलित वर्ग सघ व अन्याय हरिजन हितैषी सस्थाओ व कार्यकर्ताओ को उन्होंने हर तरह से प्रोत्साहन व सहायता दी है। बीकानेर मे सर्वप्रथम गणेश जी के मन्दिर के द्वार हरिजनो के लिए खुलवाने मे उनका योग व आशीर्वाद रहा। वृद्धावस्था एव रुग्णावस्था के बावजूद वे कौलायत व बीकानेर मे हरिजनो के मध्य व सत्सग मे शामिल होकर प्रेरणा देते रहे हैं। उनके प्रयत्नो से स्वयं हरिजनो मे व्याप्त जातीय भेदभाव एव असमानता की समाप्ति की दिशा मे उल्लेखनीय प्रगति हुई है। श्री कौलायत मे "जगजीवन सर्वोदय आश्रम" के लिए जमीन व सहायता देकर उन्होने एक ऐसी सस्था की नीव डाली है, जिसने सब लोग प्रेरणा लें और उसके लिए लक्ष्य को पूरा करके शिक्षा व औद्योगिक प्रशिक्षण द्वारा हरिजनो को प्रशिक्षित बनाकर उन्हे महत्वपूर्ण कार्यों मे भी योग देने का अवसर देवें। मेरी कामना है कि उनके जीवन मे ही बीकानेर क्षेत्र मे कुओ से हरिजनो के द्वारा बेरोक-टोक पानी लेने की समस्या शान्ति से हल हो जाय और सभी सार्वजनिक स्थानो के द्वार उनके लिए खुल जायें।

पूज्य श्री रामगोपाल जी मोहता के जीवन के सम्बन्ध मे आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व मैंने अपने हृदय के उद्गार टूटी फूटी भापा मे व्यक्त किए थे, वे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ जिसमे भाषा का सौष्ठव व अलकार व छन्द का कोई चमत्कार नही है केवल हृदय की एक भावना है —

चिरजीवो श्री गोपाल जी, दीनों को बचाने वाले ॥ टेर ॥
श्री गोरधनदास के जाये, मोहता रामगोपाल कहलाए।
श्री उत्तमनाथ गुरु पाए जी, ब्रह्मज्ञान बताने वाले ॥ १ ॥
ईश्वर अजर अमर अविनाशी, सच्चिदानन्द पूर्ण सुख राशी।
आप हो उसके प्रकाशी, सात्विक जीवन बिताने वाले ॥ २ ॥
है दिव्य दृष्टि तुम्हारी, क्या दुनिया जाने बेचारी।
आप हो कृष्ण रूप अवतारी, गीता विज्ञान बनाने वाले ॥ ३ ॥

श्री कोलायत मे सत्सग, मोहता जी, साधु मोहनराम जी, श्री चादमल जी,
श्री पन्नालाल जी वारुपाल व अन्य सत्सगी ।
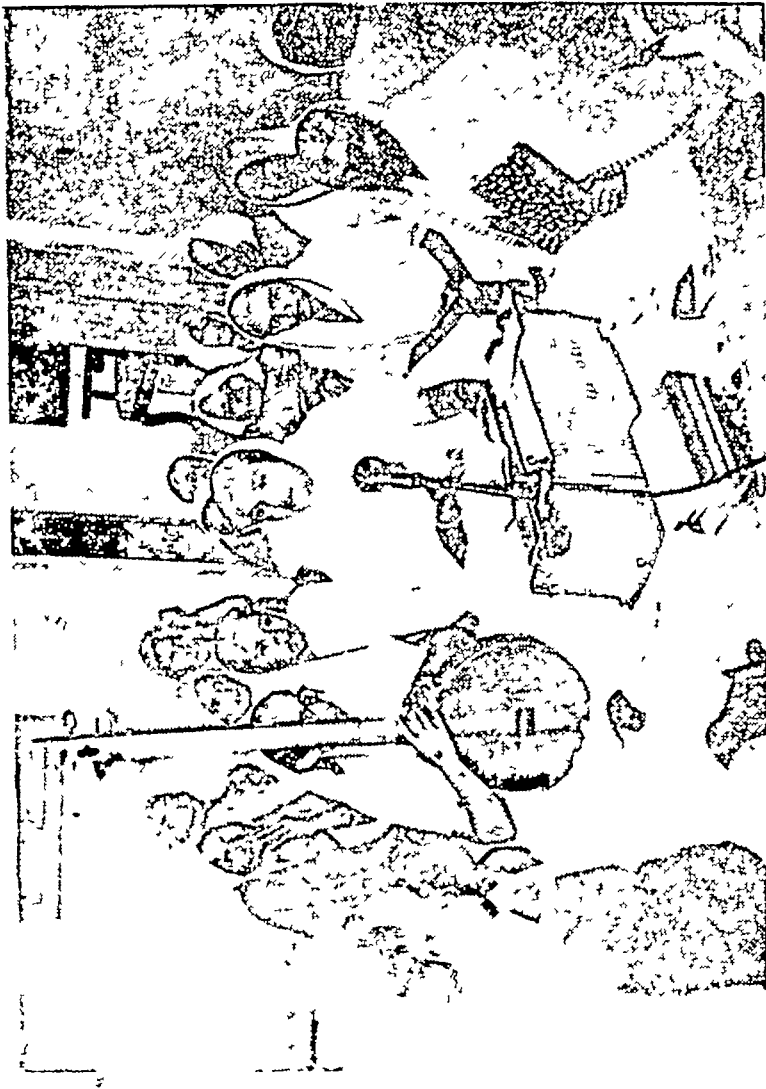
शरद पूर्णिमा को मोहता भवन बीकानेर मे सत्सग करते हुए रा० ब० सेठ शिवरतन जी मोहता, श्रीमती रतन बाई दम्माणी तथा अन्य सत्सगी ।

जब अधर्म देखा भारी, नर देह आपने धारी ।
हो आप बड़े उपकारी, सब का कष्ट मिटाने वाले ॥ ४ ॥
जब अकाल पड़े थे भारी, सब दुखी हुए नरनारी।
आप हुए अन्न वस्त्र दातारी, गौ वंश बढ़ाने वाले ॥ ५ ॥
समता संगठन को जोड़ा, सब द्वैत भाव को छोड़ा।
सब पोल पंथ को तोड़ा सत्त मार्ग दिखाने वाले ॥ ६ ॥
औसर का भांडा फोड़ा, पोपों का मुंह मरोड़ा।
कुरीति का बंधन तोड़ा, भ्रम जाल छुटाने वाले ॥ ७ ॥
अछूतो को कंठ लगाए, छुआ छूत के भूत भगाए ।
राम सम प्रेम भाव उर लाए, सम दृष्टि चाहने वाले ॥ ८ ॥
कहीं विद्यालय बनवाये, कई औषधालय खुलवाए।
कहीं कुए तालाब खुदवाये, धर्म मन्दिर बनाने वाले ॥ ९ ॥
कहीं विधवाश्रम बनवाए, कई पुर्नविवाह रचवाए।
अबलाओ के कष्ट मिटाए, भ्रूण हत्या से बचाने वाले ॥ १० ॥
है सत्संग नाव तुम्हारी, जिसमे तैरते हैं नरनारी ।
आप हो धर्मराज व्रतधारी, नीति न्याय चलाने वाले ॥ ११ ॥
है "पन्नालाल" अभिलाषी, अँखियाँ तो, दर्शन की प्यासी ।
आप हो आदर्श पुरुष सन्यासी, राम सम नियम निभाने वाले ॥ १२ ॥

पन्नालाल बारूपाल

(श्री बारूपाल उन व्यक्तियो मे से हैं जिनका निर्माण मोहता जी ने किया है । उसी का परिणाम है एक साधारण घर मे जन्म लेकर भी आज वे संसद के सदस्य हैं। राजस्थान प्रदेश दलित वर्ग संघ के अध्यक्ष हैं।)

•

३८

मनस्वी मोहता जी

आदरणीय वयोवृद्ध श्री रामगोपाल जी मोहता का जीवन इतना विस्तृत और उनकी सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ इतनी व्यापक हैं कि उनका किसी भी एक ग्रन्थ मे समग्र रूप मे एकत्रित कर सकना सम्भव नही है। ऐसे ठ समाज सेवियो का अभिनन्दन करना एक परिपाटी बन गई है। इसके पीछे सद्भावना अवश्य है किन्तु मेरी मे इतनी रुचि नहीं है। केवल गुण वर्णन करना अथवा अपने प्रेम के बोझ से किसी को लाद देना हमारा लक्ष्य ा होना चाहिए। परन्तु हमे यह सोचना चाहिए कि हम जिसका अभिनन्दन कर रहे हैं उसके हम योग्य अथवा र भी हैं कि नही ?

हमे उनका अभिनन्दन इसलिए करना चाहिए कि हम उनकी कार्यपद्धति, अनुभूति और विचारो का सही और सरल तरीके से दर्शन कर सकें। उनके जीवन सागर मे से जीवन-सगीत, जीवित कला और अनुकरणीय गुणो का सग्रह करके उनके आदर्शों को अपने और अपने साथियो के सामने रख सकें, तो हम सबके लिए वह उत्साहवर्धक और प्रेरणादायक हो सकता है। किसी जलाशय मे से हम जल लेकर उससे अपनी प्यास बुझाते हैं तो वह उपकृत नही होता अपितु हम ही उससे उपकृत होते और जीवन ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार मनस्वी श्री मोहता जी के जीवन मे से उनके कार्य और कृतियो का हमे वह अप्रतिम सत्य, शिव और सुन्दर प्राप्त करना है जिससे हमारा जीवन परिपूर्ण वन सके। हमारे लिए अपने जीवन मे ये ही अमूल्य रत्न और सहारा साबित हो सकेगा। उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के यही सर्वोत्तम उपाय है। मोहता जी के तपस्वी जीवन के प्रति अपनी विनीत श्रद्धाजलि अर्पित करके मैं अपने को धन्य मानता हूँ।

कमलनयन बजाज

(ससद सदस्य श्री कमलनयन बजाज सुप्रसिद्ध देशभक्त सेठ जमनालाल जी बजाज के सुपुत्र और एक यशस्वी उद्योगपति हैं। आप भी स्वर्गीय बजाज जी के समान देश की सार्वजनिक प्रवृत्तियो मे यथोचित भाग लेते रहते हैं। विदेशों का भी आपने कई बार भ्रमण किया है।)

●

३९

भारत के टालस्टाय

श्रद्धेय रामगोपाल जी मोहता का परिचय वैसे तो आज से ४४ वर्ष पूर्व अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के पाली अधिवेशन के सुअवसर पर आपके लघुभ्राता रायबहादुर शिवरतन मोहता द्वारा वितरित 'हमारी वर्तमान दशा का विवेचन नामक आपकी लिखी पुस्तक पढने से हुआ था। किन्तु प्रत्यक्ष व निकट परिचय, सन् १९२८ मे पढरपुर मे आपकी ही अध्यक्षता मे हुए माहेश्वरी महासभा के अधिवेशन पर हुआ। सन् १९२४ मे कोलवार माहेश्वरी व विडला सम्बन्ध को लेकर न सिर्फ माहेश्वरी समाज मे प्रत्युत समस्त देश के राजस्थानी समाज मे पुराने व नये विचारो का जोरदार सघर्ष उठ खडा हुआ था। उस बवडर ने साधारण ही नही समाज सुधारक होने का अभिमान रखने वालो तक के पैर भी उखाड दिए थे।

ऐसे विकट समय मे शक्ति और धैर्य के पुंज मोहता जी ने समाज की वागडोर हाथ मे नही ली, बल्कि अपने सिहनाद द्वारा पर्दा व दहेज कुप्रथा, वाल, वृद्ध अनमेल विवाहो एव मृतक बिरादरी भोजो का जोरदार विरोध करने के साथ-साथ विधवा विवाह, सवर्णीय विवाह, समुद्र यात्रा आदि का जोरदार समर्थन भी किया। मैंने वहाँ आश्चर्य के साथ देखा कि विषय निर्वाचिनी समिति व खुले अधिवेशन मे भी कर्मवीर मोहता जी २०-२० घटे तक कुशल सेनापति की भाँति कार्य सचालन करते रहे।

मैं उस समय (अखिल भारतीय माहेश्वरी युवक महा मण्डल, अखिल भारतीय माहेश्वरी महिला परिषद के प्रथम अधिवेशन, सगीत सम्मेलन, लेखक व कवि सम्मेलन, सम्पादक सम्मेलन, कला प्रदर्शनी आदि सात आयोजनो का सयोजक व सचालक था। अत मोहता जी वह सब देखकर वडे प्रसन्न हुए थे। आपने मुझे

एक स्वर्ण पदक भी प्रदान किया था। श्री मोहता जी के विद्वत्तापूर्ण अध्यक्षीय भाषण की रिपोर्ट मय ब्लाकों के अनेक अंग्रेजी, गुजराती, मराठी व हिन्दी समाचार पत्रो ने अपनी प्रशसात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित की थी।

कर्वे महिला महाविद्यालय पूना को सहायता

पण्ढरपुर से लौटते हुए आपके साथ हम लोग पूना आये। वहाँ कर्वे महिला विद्यालय की संचालिका, स्त्री शिक्षा प्रेमी श्री मोहता जी को संस्था देखने का निमत्रण देने आई। श्री मोहता जी ने भोजन की देरी की परवाह नही की और स्वर्गीय उदारमना रामकृष्ण जी मोहता तथा हम सव साथियो सहित वहाँ गये। सस्था को देखने के पश्चात श्री मोहता जी ने दो हजार रु० और श्री रामकृष्ण ने १,००० रु० सस्था को प्रदान किए। इन दूरस्थ अल्प परिचितो की इस उदार सहायता को प्राप्त कर सचालक बडे प्रभावित हुए।

× × ×

पण्डरपुर अधिवेशन के ४ मास पश्चात समाज सुधार सम्बन्धी कार्य के लिए श्री मोहता जी ने मुझे बीकानेर बुलाया। सौभाग्य से श्री रामकृष्ण जी मोहता भी कलकत्ता से वहाँ आए हुए थे। १-२ दिन के स्थान मे एक सप्ताह मुझे रोक लिया गया। प्रतिदिन ५-६ घण्टे समाज व देश सुधार के मसलो पर बातचीत हुआ करती। मैं तो एक राजनैतिक कार्यकर्त्ता था। अत मेरी प्रार्थना पर श्री रामकृष्ण जी मोहता ने बीकानेर के प्रसिद्ध वकील व उनके ५-४ साथियो को निमत्रित करके एक बन्द कमरे मे मीटिंग की। उन्हें कार्य सचालनार्थ आर्थिक सहायता का अभिवचन भी दिया। कहना नही होगा कि, दोनो भ्राताओ ने हजारो रुपये देकर राजनैतिक जागृति का बीकानेर मे बीजारोपण किया। यह उस समय किया गया जवकि फौलादी कहे जाने वाले महाराजा गगा सिह का शासन था, जो अपने राज्य मे राजनैतिक हवा को भी फटकने देना नही चाहता था। उन दिनो मे श्री जयनारायण जी व्यास मोहता जी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। मुझे व्यास जी के हाथो २५१ रु० विदा रेलवे स्टेशन पर भिजवाये। मैं तो किसी से विदा लेता नही था। अतः सधन्यवाद वापिस कर दिया।

× × ×

सवत् १९९६ मे यानि सन् १९३८ मे जोधपुर और बीकानेर मे भयकर दुष्काल पडा था। पशु और किसानो की तवाही हो रही थी। जोधपुर मे महाराजा उम्मेदसिह जी ने सहायता का काफी प्रवन्ध कर रखा था। हमारी राजपूताना दुष्काल सहायक समिति (बम्बई) भी मारवाड मे सहायता वितरण का खासा कार्य कर रही थी। मैं उसका एक मत्री था। किन्तु बीकानेर राज्य ने तो दुष्काल को तवाही का लायसेन्स दे रखा था। राज्य की ओर से कोई राहत कार्य किया नही जा रहा था। ऐसे विकट समय मे श्रद्धेय मोहता जी चुप नही बैठ सकते थे। आपने अपने आध्यात्म चिंतन, लेखन व गीता प्रवचन के कार्य को प्राय बाजू मे रख कर अहोरात्र १०-१० मास तक हजारो पशु व किसानो विशेषत हरिजनो के लिए कैम्प लगाकर तन, मन व धन से वह कार्य किया, जिसे देखकर लोग दग रह गए। मैं जब बीकानेर आया, देखकर मुग्ध हो गया। सहसा मुँह से निकल पडा कि 'पीडितो के त्राता-बीकानेरी पिता तू धन्य है।' आपके सम्बन्ध मे एक कवि ने मुझे कविता सुनाई थी कि "रानीकेन जायो नूं जायो वणियाणी के।" इस कार्य के लिए नियत कार्यकर्त्ता प्रथम दिन घूम-घूम कर पीडितो को जरूरत के सामान की चिट लिखकर सौंप देते थे। दूसरे दिन सवेरे से ही 'मोहता भवन' मे नये और पुराने दुष्काल पीडितो का ताँता लग जाता था। पहले से ही अन्न व सिले, विन सिले वस्त्रो के ढेर लगा दिये जाते थे। शहर के व वाहर गाँवो के खानदानी स्त्री, पुरुष अलग कमरे मे आकर दीनवन्धु मोहता जी के सन्मुख अपने दु ख की गठरी खाली करके अन्न, वस्त्र की गठरी बाँध कर मूक धन्यवाद देकर चले जाते थे। बाज लोगो की जानकारी मिलने पर

उनको अन्धेरे उजियाले मे सहायता पहुँचाई जाती थी, दूरस्थ बाहर गाँवो मे भी उसी प्रकार सहायता पहुँचाने का कार्य किया जाता था।

इस प्रकार केवल जीवन रक्षण की वस्तुएँ ही नही प्रदान की जाती थी। अपितु अनेको के आपस के अनेक प्रकार के झगडे निपटाने के लिए आपको जज का भी काम करना पडता था। किसी स्त्री को उसके पति ने मारा है। किसी की सास, जेठाणी, देराणी, या ननद उसके हिस्से की रखी हुई रोटी खा गई। किसी का पडौसी स्त्री को फुसलाता है। न जाने क्या-क्या छोटी-मोटी शिकायतें यह देवता स्वरूप जज सुन कर समाधान करने मे प्रसन्नता अनुभव करता था। पीडित बन्धुओ को अक्षरज्ञान, आत्मज्ञान व तत्वज्ञान की भी बातें समझाई जाती थी। हरिजनो के मध्य मे बैठकर ईश्वर व आत्मा सम्बन्धी भजन (वाणी) सुनाये जाते थे, और उनके लय मे लय मिलाकर गाये जाते थे। वास्तव मे मोहता जी दरिद्री और पीडितो मे भगवान के दर्शन करते हैं।

इन प्रकार मुनाफा न देने वाले व्यापार के लिए की जाने वाली लाखो रुपयो की हुण्डियो को, 'भरत सम' लघुभ्राता रा० ब० शिवरतन जी, दूरस्थ कराची मे बैठे चुपचाप सीकार तो देते ही थे। बल्कि जितनी आवश्यकता हो, खुशी-खुशी खर्च करने के लिए सन्देश भिजवाते रहते। सहस्त्रो मुखो से पीडित कहा करते थे कि "धन्य हैं मोहता जी और उनके माता, पिता तथा उनका वैभव।"

× × ×

पहले पहल जब मैं सन् १९२२ मे बीकानेर गया था उस समय मोची, मेहतर व कुम्हार जातियो की शराब छुडाई थी। तब प्रसिद्ध मोहता धर्मशाला मे ठहरा था व श्रद्धेय मोहता जी द्वारा स्थापित व सचालित अनेक सस्थाओ को देखा भी। किन्तु जब मैंने अनेको पुष्करणा ब्राह्मणो के मुँह से दानवीर मोहता जी को गालियाँ देते हुए सुना कि "यह गोपाल मोहता हमारे लडको को अपनी मोहता मूलचन्द विद्यालय मे छात्रवृत्ति का लोभ देकर अगरेजी शिक्षा से उन्हें क्रिश्चियन बना देगा। उनके पूर्वजों ने अनेको ब्रह्मभोज किये थे, यह तो नास्तिक है, ब्राह्मणो को अमावस, पूनम भोजन भी नही कराता।" मैं हैरान था कि सहस्त्रो-सहस्त्रो मुँह से गाली सुन कर भी यह कैसा पुरुष हैं कि हजारो रुपये देकर उन्ही की सन्तानो को पढाता है। मेरे मन मे प्रश्न था "यह मानव है या देव"। उत्तर अब ३५ वर्ष पश्चात मिल गया कि वह वास्तव मे एक आदर्श समत्व योगी है। अगर किसी को देवत्व से भी ऊपर इस पद की आकाक्षा हो तो इस ८१ वर्ष के वृद्ध समत्व योगी के चरणो मे बैठ कर उनसे कुछ सुने, समझे। गीता के मर्मज्ञ, तथा शास्त्र जिसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं, वैसा बनें। आज उसी पुष्करणा समाज के विद्वान व प्रतिष्ठित पुरुष हृदय से स्वीकार रहे हैं कि मोहता जी हमारे परम हितैषी हैं।

नाम, गुण, सकीर्तन के लिए नही किन्तु लाखो-लाखो मानवो के खास कर धनिको के प्रकाश स्तम्भ समान योगी को जो अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है, उसमे चन्द सस्मरण के रूप मे मेरी यह नम्र श्रद्धांजलि प्रेषित है। मेरी दृष्टि मे रूस के उमराव टालस्टाय का सा जीवन इस भारतीय (कोट्याधीश) टालस्टाय का है।

कन्हैयालाल कलयत्री

(श्री कलयत्री जी पुराने मझे हुए और परखे हुए राजस्थान के कार्यकर्त्ता और नेता हैं। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों मे आपने अपने कर्मठ व्यक्तित्व का परिचय दिया है। देशी राज्यों की मूक जनता के लिए आपने अथक श्रम किया है। मध्यभारत, राजपूताना देशी राज्य लोक परिषद के आप प्रधान मत्री और अध्यक्ष रहे हैं। राजस्थान सेवा सघ में आपने स्वर्गीय श्री विजय सिंह जी पथिक को सराहनीय सहयोग दिया था। आप प्रगतिशील विचारों के समाज सेवी और राष्ट्र सेवी हैं। राजपूताना प्रान्तीय किसान सभा के आप अध्यक्ष हैं।)

उनको अन्धेरे उजियाले मे सहायता पहुँचाई जाती थी, दूरस्थ बाहर गांवो मे भी उसी प्रकार सहायता पहुँचाने का कार्य किया जाता था।

इस प्रकार केवल जीवन रक्षण की वस्तुएँ ही नही प्रदान की जाती थी। अपितु अनेको के आपस के अनेक प्रकार के झगडे निपटाने के लिए आपको जज का भी काम करना पडता था। किसी स्त्री को उसके पति ने मारा है। किसी की सास, जेठाणी, देराणी, या ननद उसके हिस्से की रखी हुई रोटी खा गई। किसी का पडौसी स्त्री को फुसलाता है। न जाने क्या-क्या छोटी-मोटी शिकायतें यह देवता स्वरूप जज सुन कर समाधान करने मे प्रसन्नता अनुभव करता था। पीडित बन्धुओ को अक्षरज्ञान, आत्मज्ञान व तत्वज्ञान की भी बातें समझाई जाती थी। हरिजनो के मध्य मे बैठकर ईश्वर व आत्मा सम्बन्धी भजन (वाणी) सुनाये जाते थे, और उनके लय मे लय मिलाकर गाये जाते थे। वास्तव मे मोहता जी दरिद्री और पीडितो मे भगवान के दर्शन करते हैं।

इस प्रकार मुनाफा न देने वाले व्यापार के लिए की जाने वाली लाखो रुपयो की हुण्डियो को, 'भरत सम' लघुभ्राता रा० ब० शिवरतन जी, दूरस्थ कराची मे बैठे चुपचाप सीकार तो देते ही थे। बल्कि जितनी आवश्यकता हो, खुशी-खुशी खर्च करने के लिए सन्देश भिजवाते रहते। सहस्रो मुखो से पीडित कहा करते थे कि "धन्य हैं मोहता जी और उनके माता, पिता तथा उनका वैभव।"

× × ×

पहले पहल जब मैं सन् १६२२ मे बीकानेर गया था उस समय मोची, मेहतर व कुम्हार जातियो की शराब छुडाई थी। तब प्रसिद्ध मोहता धर्मशाला मे ठहरा था व श्रद्धेय मोहता जी द्वारा स्थापित व सचालित अनेक सस्थाओ को देखा भी। किन्तु जब मैंने अनेको पुष्करणा ब्राह्मणो के मुंह से दानवीर मोहता जी को गालियाँ देते हुए सुना कि "यह गोपाल मोहता हमारे लडको को अपनी मोहता मूलचन्द विद्यालय मे छात्रवृत्ति का लोभ देकर अगरेजी शिक्षा से उन्हें क्रिश्चियन बना देगा। उनके पूर्वजों ने अनेको ब्रह्मभोज किये थे, यह तो नास्तिक है, ब्राह्मणो को अमावस, पूनम भोजन भी नही कराता।" मैं हैरान था कि सहस्रो-सहस्रो मुंह से गाली सुन कर भी यह कैसा पुरुष हैं कि हजारो रुपये देकर उन्ही की सन्तानो को पढाता है। मेरे मन मे प्रश्न था "यह मानव है या देव"। उत्तर अब ३५ वर्ष पश्चात मिल गया कि वह वास्तव मे एक आदर्श समत्व योगी है। अगर किसी को देवत्व से भी ऊपर इस पद की आकाक्षा हो तो इस ८१ वर्ष के वृद्ध समत्व योगी के चरणो मे बैठ कर उनसे कुछ सुने, समझे। गीता के मर्मज्ञ, तथा शास्त्र जिसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं, वैसा बनें। आज उसी पुष्करणा समाज के विद्वान व प्रतिष्ठित पुरुष हृदय से स्वीकार रहे हैं कि मोहता जी हमारे परम हितैषी हैं।

नाम, गुण, सकीर्तन के लिए नही किन्तु लाखो-लाखो मानवो के खास कर धनिको के प्रकाश स्तम्भ समान योगी को जो अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है, उसमे चन्द सस्मरण के रूप मे मेरी यह नम्र श्रद्धांजलि प्रेषित है। मेरी दृष्टि में रूस के उमराव टालस्टाय का सा जीवन इस भारतीय (कोट्याधीश) टालस्टाय का है।

कन्हैयालाल कलयत्री

(श्री कलयत्री जी पुराने मझे हुए और परखे हुए राजस्थान के कार्यकर्त्ता और नेता हैं। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रो में आपने अपने कर्मठ व्यक्तित्व का परिचय दिया है। देशी राज्यों की मूक जनता के लिए आपने अथक श्रम किया है। मध्यभारत, राजपूताना देशी राज्य लोक परिषद के आप प्रधान मत्री और अध्यक्ष रहे हैं। राजस्थान सेवा सघ में आपने स्वर्गीय श्री विजय सिंह जी पथिक को सराहनीय सहयोग दिया था। आप प्रगतिशील विचारो के समाज सेवी और राष्ट्र सेवी हैं। राजपूताना प्रान्तीय किसान सभा के आप अध्यक्ष हैं।)

गीता सत्सग भवन गोवर्धन सागर बगीची बीकानेर मे होते हुए सत्सग मे मोहता जी मध्य मे तानपूरा लिए हुए भजन गा रहे है।

४०

मोहता जी का सत्संग

श्री जगत गुरू श्री भारती कृष्ण तीर्थ शकराचार्य गौवरधन भट्ट सन् १६३५ मे बीकानेर पधारे थे। उन्होने गीता की कथा सर्व साधारण को वागडियो की वगीची मे सुनाई थी। उनकी कथा मे मैं हर रोज जाता था। उस कथा मे केवल एक ही अध्याय सुना गया था मगर मेरे हृदय मे एक तीव्र उत्कठा उत्पन्न हो गई कि सारी गीता वहुत अच्छी तरह पढनी और समझनी चाहिए। १६३५ से १६४८ तक मैं गीता को अपने आप या किसी की मदद से पढता रहा मगर मुझे तसल्ली न हुई और सदैव यही सोचता रहा कि किसी वडे विद्वान से गीता पढूं। १६४८ मे श्री रामकृष्ण आचार्य (कलकत्ता) ने मेरे पूछने पर कहा कि बीकानेर मे श्री रामगोपाल जी मोहता जैसा कोई गीता का धुरन्धर विद्वान नही है। आप उनसे गीता पढिये। मैं उनके सम्पर्क मे आया और जैसे-जैसे अदालत के कामो से समय मिलता रहा मैं उनके सत्संग मे शामिल होता रहा। मैं उन दिनो मे डिप्टी कमिश्नर बीकानेर था और साधारण काम के अतिरिक्त तमाम रियासत मे आए हुए शरणार्थियो की जिनकी तादाद २७,००० के करीव थी वसाना भी मेरे सुपुर्द था। इसलिए समय वहुत नही मिलता था मगर श्री मोहता जी ने मेरी जिज्ञासा को देख कर मुझे हर तरह से सुभीता दिया और गीता एक ही दफा नही वल्कि दो तीन वार पढाई। विषय वहुत सूक्ष्म होने के कारण जव भी गीता का पुन. पाठ होता था हर वार पहिले से अधिक आनन्द आता था।

१६४६ मे राजस्थान वन गया और मेरा तवादला वतौर कलेक्टर, पाली हो गया। अब तो सत्संग वहुत दूर हो गया। जव भी बीकानेर आना हुआ सत्सग का फायदा उठाता रहा। सन् १६४६ से लेकर सन १६५३ तक मैं बीकानेर से वाहर रहा, मगर तीन-चार महीने वाद सत्सग का मौका मिलते हुए भी दिल मे यह वात पूर्ण रूप से घर कर गई कि असली सत्सग है तो वह गीता का और यदि कोई उसका वास्तविक मर्मज्ञ है तो श्री मोहता जी। केवल विद्वान ही नही वल्कि जिनका जीवन भी गीता है और जिनके तमाम व्यवहार गीता के अनुसार हैं।

सौभाग्य से १६५४ के शुरू मे मेरा तवादला वहौदे अडिशनल कमिशनर, बीकानेर हो गया। फिर तो सत्संग का हर रोज समय मिलने लगा। इस स्थान पर दौरे का भी काम न था। यह वहुत दिनो तक नही चला और चार माह वाद कलेक्टर, झूंझनू वन कर वाहर जाना पड़ा। झूंझनू रहते हुए साल मे दो-चार वार सत्सग मे शामिल होने का मौका मिलता रहा। झूंझनू से मेरा तवादला उदयपुर-मेवाड वहौदे अडिशनल कमिश्नर हो गया जो बीकानेर से दूर होने के कारण सत्सग मे १० महिने के अन्दर एक ही दफा आना हुआ। उदयपुर मे १० महीने गुजारने के पश्चात् मेरी उम्र ५५ साल की पूरी होने मे तीन माह की कमी रही। इस अरसे की मैंने प्रिपेरेटरी रिटायरमेट (अवकाश) प्राप्त किया और उसी रोज से यानि ६ दिसम्बर, १६५५ से वरावर सत्संग का फायदा उठा रहा हूँ।

यह मेरे ऊपर सत्संग का ही प्रभाव था कि अवकाश प्राप्त होने पर मुझे वड़ी खुशी हुई और फिर नौकरी करने की इच्छा तक भी न हुई। राजस्थान गवर्नमेट के एक उच्चाधिकारी के अपने आप मुझे फिर सर्विस मे रखने की तजवीज को भी मैंने स्वीकार नही किया। इससे कोई यह न समझ ले कि श्री मोहता जी सत्सग मे निकम्मे रहना सिखाते हैं। गीता का व्यवहार दर्शन सफा ५३४ देखें। १८ अध्याय के ४७ वें श्लोक का अर्थ करते हुए उन्होंने लिखा है कि अपने कर्तव्य कर्म करके आपस मे एक दूसरे की आवश्यकताओ को पूरी करने

की लोक सेवा रूप यज्ञ करने ही से सबके समष्टि भाव परमात्मा का पूजन होता है। मेरी ५५ साल की उम्र पूरी हो चुकी थी। २८ साल नौकरी कर चुका था। पेन्शन का हकदार हो चुका था। अपना व्यक्तिगत स्वार्थ फिर नौकरी करके और रुपया कमाना छोडकर लोक सेवा रूप यज्ञ मे शामिल होना मेरे लिए ही नही वल्कि हर मनुष्य के लिए जरूरी है वशर्ते कि उसकी आवश्यकतानुसार पेन्शन व बचत काफी हो।

सत्सग हर शहर मे कई जगह होते हैं और श्री मोहता जी के सत्सग से वडे-वडे होते हैं, जिनमे उपस्थिति हजारो की तादाद मे होती है। मैं भी कई एक सत्सगो मे उपस्थित हुआ हूँ। हर सत्सग मे यह देखने मे आया है कि आम तौर पर उपदेशक अपने को गुरु बता कर सत्सग करता है और नीचे लिखे दोहे के अनुसार अपने मे अध विश्वास का प्रचार करता है।

गुरु गूगा गुरु बावला गुरु देवन का देव।
एक पलक विसरो मति करो गुरु की सेव ।।

जयपुर मे मुझे एक सत्सग मे शामिल होने का मौका मिला। गुरुजी मौजूद थे। उनके अनुयाई ने एक कहानी सुनाई कि किसी जमाने मे एक बुलाकी नाम के गुरु अपने शिष्यो के साथ एक नदी पार कर रहे थे। गुरु जी ने कहा कि तुम सब लोग मेरा नाम लेते हुए पानी मे चलते रहो। उन शिष्यो मे से एक शिष्य डूबने लगा तो गुरु जी ने कहा कि तुम मेरा नाम नही लेते तो उसने कहा कि मैं राम राम कहता हूँ। गुरुजी नाराज हुए और कहा कि मेरा नाम लो। फिर क्या था वह डूबने से बच गया। इस कहानी का उद्देश्य यही मालूम हुआ कि गुरुजी राम से बडे हैं और उसके नाम मे राम के नाम से भी ज्यादा असर है। ऐसी ऐसी कहानियाँ या दोहो से लोगो का गुरु पर विश्वास कराया जाता है ताकि गुरु और उसके साधक लोग भोले भालो से नाजायज फायदा उठा सकें। ऐसे सत्सगो मे भेंट पूजा भी ली जाती है और रिसाले व पुस्तकें बेचकर रुपया भी इकट्ठा किया जाता है।

अधिकतर सत्सगो मे खालस आत्म ज्ञान का उपदेश नही होता। कुछ घृत मे छाछ मिला ही देते हैं जिससे सत्सगियो का जमघट कम न हो किन्तु श्री मोहता जी के क्रान्तिकारी उपदेश मौलिक अद्वैत सिद्धान्त के आधार पर होते हैं जिनमे द्वैतवाद की जरा भी लाग लपेट नही रहती। न द्वैतवाद के साथ किसी प्रकार का समझौता व रिआयत की गुंजाइश ही रहती है।

श्री मोहता जी, सत्सग मे जव कोई आदमी उनको गुरुवर कह कर पुकारता है तो उसी वक्त मना कर देते हैं और कहते हैं कि मैं गुरु नही हूँ। न मेरे पैर को हाथ लगाने को जरूरत है। मैं तो आपकी नाईं एक मनुष्य हूँ। भेंट पूजा लेने का तो सवाल ही नही बल्कि सत्सग व सत्सगियो के लिए अपनी जेब से खर्च करते हैं। पुस्तकें जैसे—गीता का व्यवहार दर्शन, गीता विज्ञान, सात्विक जोवन, समय की माँग, मान पद्य सग्रह, प्रेम भजनावली आदि आदि आम तौर पर मुफ्त ही वाटते हैं। गीता के वारहवें अध्याय के अनुसार जीती जागती मूर्तियो की सेवा ही उनकी साकार भक्ति है। जो मनुष्य उनके सम्पर्क मे आता है उसकी जरूरत के मुताबिक मदद करते ही रहते हैं।

अव सवाल यह उठता है कि जव श्री मोहता जी अपने मान के लिए व लोभ के लिए सत्सग नही करते है तो फिर उनका क्या उद्देश्य है कि ८० साल से ज्यादा उम्र के होने पर भी हर रोज तीन घटे व कभी कभी चार-चार घटे वैठे रहते हैं। वगले से तकरीवन ढाई-तीन मील पैट्रोल जलाकर "गोवर्धन सागर बगीची" आते जाते हैं और वगीची मे पन्द्रह पौडियाँ ऊपर चढ कर, क्योकि सत्सग भवन ऊपर ही है, सत्सग करते हैं। उनका पन्द्रह पौडियो पर एक हाथ मे लकडी का सहारा और दूसरी ओर किसी सत्सगी के कधे का सहारा लेकर चढना व उतरना देखकर आश्चर्य होता है। एक करोडपति सेठ, जिसके वगले पर कई नौकर-चाकर हैं, किसी

दौलत की कमी नही है, भाई, बेटे, भतीजे, पोते, पडपोते, बहुए आदि बडा परिवार है और सब अच्छी तरह उनका बडा सत्कार करते हैं, उनके बीच न बैठ कर और कुनबे का आनन्द न लेकर बीकानेर मे उनसे जुदा रहकर सत्सग करने मे इतनी तकलीफ उठाते हैं। कई दफा सत्सगियो ने तजवीज की कि सत्सग बगले पर ही कर लिया जाय ताकि उन्हे इतनी तकलीफ न हो पर उसका यही जवाब दिया कि बगला बाजार के नजदीक होते हुए लाउडस्पीकर रेडियो, मोटरो आदि का बहुत शोर रहता है, आत्म ज्ञान जैसे सूक्ष्म विषय का सत्सग निरुपाधिक शान्त स्थान मे ही होना उपयुक्त है।

मुझे तो उनके सत्सग करने का एक ही उद्देश्य जान पडा जो श्री जीयाराम जी महाराज ने अपनी वाणी मे कहा है कि जीवो हेतु वपु धर आए—अज्ञानी जीवो को सच्चा मार्ग दिखाने के लिए यह शरीर धारण करके आए हैं। श्री मोहता जी ऊपर लिखी तकलीफ व खर्च की बिल्कुल भी परवाह नही करते हैं और सदैव इसी कोशिश मे लगे रहते हैं कि किसी तरह नर-नारियो को अपने स्वय के बनाए हुए बन्धनो व साम्प्रदायिकता तथा गुरुडम के पाखडी चगुल से छुटकारा मिले और सत्य ज्ञान को प्राप्त करके सुख से अपना जीवन बिताए।

श्री मोहता जी के सत्सग मे हमेशा आत्म ज्ञान के उपदेश के साथ साथ ऐसे कामो को त्याग देने का भी उपदेश होता है जिन कामो से द्वैत भाव बढता है। उन कामो को नही करने के लिए निडर होकर बिना किसी लाग लपेट उनके दोष बतलाते हैं। श्री मोहता जी का कहना है कि जब तक कपडे का मैल साफ नही होगा तब तक उस पर दूसरा रग नही चढेगा। देहाभिमानी द्वैतवादी लोगो को उनका दोष बताना अच्छा नही लगता अत इनके सत्सग मे तीव्र जिज्ञासु ही आते हैं और जो आते हैं उनमे बहुतो का अन्ध विश्वास, वहम आदि कम होते जा रहे हैं। रूढिवाद हटने से भी उनको बहुत लाभ पहुँचा है।

सत्सग मे कई दफा सत्सगी ऐसी आलोचना करते है जिनको सुनकर मामूली आदमी को क्रोध आ जाय, मगर श्री मोहता जी इन आलोचनाओ का बडी शान्ति से उत्तर देते हैं और हर तरह से उनको सच्चा ज्ञान देने की कोशिश करते हैं। एक पढ़े-लिखे सज्जन ने, जो श्री मोहता जी से "प्रगति संघ" सस्था के नाते प्रभावित था, सत्सग मे असयमित भाषा मे कहा कि "इस हर रोज के सत्सग से क्या फायदा है? एक बात को हर रोज कहने से क्या नतीजा? किसी सत्सगी पर कोई असर नही पडता। खाना, पीना, सोना और बैठना उसी तरह है।" ऐसी आलोचना ६०-७० सत्सगियो की मौजूदगी मे सुन कर श्री मोहता जी विक्षिप्त नही हुए बल्कि एक सत्सगी जिसने इस आलोचना का जवाब देने की आज्ञा माँगी तो कहा सयम से उत्तर देना। क्रोध, विक्षिप्तता, व्याकुलता श्री मोहता जी के नजदीक ही नहीं रहती है। एक बात को कई बार भी समझाते हुए बिल्कुल शान्त रहते हैं और शकाओ को समझा कर मिटाते हैं न कि रौब से।

श्री मोहता जी की स्मृति और हाजर जवाबी ८० साल की अवस्था मे भी अद्भुत है। गीता, उपनिषद, पातजल योगशास्त्र आदि जब किसी भी आध्यात्मिक ग्रथ का पाठ व उस पर विवेचन होता है, तब उसी प्रकरण के, अपने स्वयं रचित भजनो व राजा मान सिह जी के, बनानाथ जी व कबीर जी तथा किसी और महात्मा की वाणी व भजनो को वे तत्काल गा कर सुनाते हैं और उसी प्रसंग के मनोरजक दृष्टाँत कहावत, अपने अनुभव की आख्यायिकाए और विनोदी चुटकले आदि सुना कर विषय को इतना सरस बनादेते है कि सत्सगियो को वह मुश्किल प्रकरण आसानी से समझ मे आ जाता है। एक रोज योग वशिष्ठ मे पढा गया कि आशाओं और वासनाओ का त्याग दो प्रकार का होता है। पहिला ध्येय व दूसरा ज्ञेय जैसा कि नीचे लिखे श्लोको से विदित है :—

अन्तः शीतलया बुद्धा कुर्वत्या लीलया क्रियाम्।
यो नूनं वासनात्यागो ध्येयो राम स कीर्तितः॥

निर्मूल कलना त्यक्त्वा वासनां य सम गत ।
ज्ञेय त्यागमय विद्धि मुक्त त रघुनन्दन ॥

श्री मोहता जी ने राजा मान सिंह जी का निम्नलिखित भजन सुनाकर प्रकरण को आसानी से समझा दिया :—

आस दूर कर कीजे आसावरी आस दूर कर कीजे ।
जो यह आसा माने नहीं तो, घोट छान कर पीजे ॥
चूर चूर आसा को होवे, फिर न कभी उलझीजे ।
आस मिटी निरास भये जब, निर्भय पिया सूं मिल लीजे ॥
आसा मव को उलट कर पीजे, सुख भर सदा रहीजे ।
उल्टी आस सीधी कर लेवे, सव दुख दूर हरीजे ॥
कोमल तीव्र छांट कर न्यारे, समझ समझ स्वर दीजे ।
अर्ध तीव्र मधु स्वर करके, तार बजे सुन लीजे ॥
किनकी आस कौन रह्यो न्यारो, जग मम रूप लखीजे ।
मानसिंह यह सुन्दर रागिनी, ज्ञान प्रभात उचरीजे ॥

केवल भजन ही नही तमाम गीता श्री मोहता जी को ऐसी याद है कि किसी अध्याय का कोई श्लोक सुन लो । इतना होने पर भी आप कोई वात सत्सग मे अधिकार जमाने के तौर से नही कहते हैं । सत्सग मे ऐसे लोगो को भी निमन्त्रित करके भाषण कराया जाता है जिनके विचार आपके विचार से बिल्कुल नही मिलते । एक रोज श्री भजामिशकर दीक्षित को जो भौतिकवादी हैं और जो वीकानेर मे पधारे हुए थे, सत्सग मे बुलाकर उनका भाषण कराया और उन्होने अपने विचार के अनुसार ईश्वर का न होना बताया । सत्सग मे गीता के अनुसार यह हर रोज कहा जाता है कि ईश्वर हर प्राणी के हृदय मे मौजूद है । मगर सत्सगियो ने दीक्षित जी के विचारो को व उनकी दलीलो को गौर से सुना और एक सत्सगी ने अपने ख्याल भी जाहिर किये । दोनो तरफ से तीन चार दफा सवाल व जवाव होते रहे और वहस बडे खुले दिल से और प्रेम से समाप्त हुई । मगर सत्सगी लोग अपने विचार पर दृढ रहे । इसी तरह एक रोज श्री शिवकुमार मुनि गोरखपुर वालो का भी सत्सग मे भाषण कराया गया । एक वार जैन आचार्य मुनि श्री कान्ति सागर जी महाराज का भाषण कराया गया । गीता प्रेस वाले श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार का भी एक वार भाषण हुआ । कहने का मतलब यह है कि सत्सग साम्प्रदायिक चहार दिवारी के अन्दर नही किया जाता और न सत्सगियो को घेरे का पशु ही बनाया जाता है । उनको औरो के विचार सुन कर स्वतन्त्र विचार करने का मौका दिया जाता है । कृष्ण ने भी अर्जुन को तमाम गीता का ज्ञान देकर कहा —

इति ते ज्ञानमाख्यात गुह्याद्गुह्यतर मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू ॥

यानि मैंने तुझे यह गुह्य से भी गुह्य ज्ञान कहा है । इस पर पूर्ण रूप से अच्छी तरह विचार करके फिर तेरी जो इच्छा हो वह कर । श्री मोहता जी ने अपनी गीता के व्यवहार दर्शन मे ५३९वें सफे पर लिखा है कि ज्ञानी महापुरुष एव सत् शास्त्र मनुष्य को विचार करने मे सहायता देने एव वुद्धि वढ़ाने के लिए है न कि उसकी वुद्धि अथवा विचार शक्ति छीन कर अपना पालतू पशु वना देने के लिए । इसी विचार के मुताबिक श्री मोहता जी सत्सग मे ज्ञान देते हैं । यह वात और सत्सगो मे नही मिलेगी ।

इनके सत्सग मे केवल शुष्क वेदान्त का उपदेश नही होता किन्तु वेदान्त के अनुसार व्यवहार किये

सत्सग के अवसर पर परसनेऊ गाँव मे उपदेश देते हुए मोहता जी।

निर्मूल कलना त्यक्त्वा वासनां य. समं गत ।
ज्ञेय त्यागमय विद्धि मुक्त त रघुनन्दन ॥

श्री मोहता जी ने राजा मान सिंह जी का निम्नलिखित भजन सुनाकर प्रकरण को आसानी से समझा दिया —

आस दूर कर कीजे आसावरी आस दूर कर कीजे ।
जो यह आसा माने नहीं तो, घोट छान कर पीजे ॥
चूर चूर आसा को होवे, फिर न कभी उलझीजे ।
आस मिटी निरास भये जब, निर्भय पिया सूं मिल लीजे ॥
आसा मद को उलट कर पीजे, सुख भर सदा रहीजे ।
उल्टी आस सीधी कर लेवे, सब दुख दूर हरीजे ॥
कोमल तीव्र छांट कर न्यारे, समझ समझ स्वर दीजे ।
अर्ध तीव्र मधु स्वर करके, तार बजे सुन लीजे ॥
किनकी आस कौन रह्यो न्यारो, जग मम रूप लखीजे ।
मानसिंह यह सुन्दर रागिनी, ज्ञान प्रभात उचरीजे ॥

केवल भजन ही नही तमाम गीता श्री मोहता जी को ऐसी याद है कि किसी अध्याय का कोई श्लोक सुन लो । इतना होने पर भी आप कोई बात सत्सग मे अधिकार जमाने के तौर से नही कहते हैं । सत्सग मे ऐसे लोगो को भी निमन्त्रित करके भाषण कराया जाता है जिनके विचार आपके विचार से बिल्कुल नही मिलते । एक रोज श्री भजामिशकर दीक्षित को जो भौतिकवादी हैं और जो बीकानेर मे पधारे हुए थे, सत्सग मे बुलाकर उनका भाषण कराया और उन्होंने अपने विचार के अनुसार ईश्वर का न होना बताया । सत्सग मे गीता के अनुसार यह हर रोज कहा जाता है कि ईश्वर हर प्राणी के हृदय मे मौजूद है । मगर सत्सगियो ने दीक्षित जी के विचारो को व उनकी दलीलो को गौर से सुना और एक सत्सगी ने अपने ख्याल भी जाहिर किये । दोनो तरफ से तीन चार दफा सवाल व जवाब होते रहे और बहस बडे खुले दिल से और प्रेम से समाप्त हुई । मगर सत्सगी लोग अपने विचार पर दृढ रहे । इसी तरह एक रोज श्री शिवकुमार मुनि गोरखपुर वालो का भी सत्सग मे भाषण कराया गया । एक बार जैन आचार्य मुनि श्री कान्ति सागर जी महाराज का भाषण कराया गया । गीता प्रेस वाले श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार का भी एक बार भाषण हुआ । कहने का मतलब यह है कि सत्सग साम्प्रदायिक चहार दिवारी के अन्दर नही किया जाता और न सत्सगियो को घेरे का पशु ही बनाया जाता है । उनको औरो के विचार सुन कर स्वतन्त्र विचार करने का मौका दिया जाता है । कृष्ण ने भी अर्जुन को तमाम गीता का ज्ञान देकर कहा —

इति ते ज्ञानमाख्यात गुह्याद्गुह्यतर मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू ॥

यानि मैंने तुझे यह गुह्य से भी गुह्य ज्ञान कहा है । इस पर पूर्ण रूप से अच्छी तरह विचार करके फिर तेरी जो इच्छा हो वह कर । श्री मोहता जी ने अपनी गीता के व्यवहार दर्शन मे ५३९वे सफे पर लिखा है कि ज्ञानी महापुरुष एव सत् शास्त्र मनुष्य को विचार करने मे सहायता देने एव बुद्धि बढ़ाने के लिए है न कि उसकी बुद्धि अथवा विचार शक्ति छीन कर अपना पालतू पशु बना देने के लिए । इसी विचार के मुताबिक श्री मोहता जी सत्सग मे ज्ञान देते हैं । यह बात और सत्सगो मे नही मिलेगी ।

इनके सत्सग मे केवल शुष्क वेदान्त का उपदेश नही होता किन्तु वेदान्त के अनुसार व्यवहार किये

सत्संग के अवसर पर परमनेऊ गाँव मे उपदेश देते हुए मोहता जी।
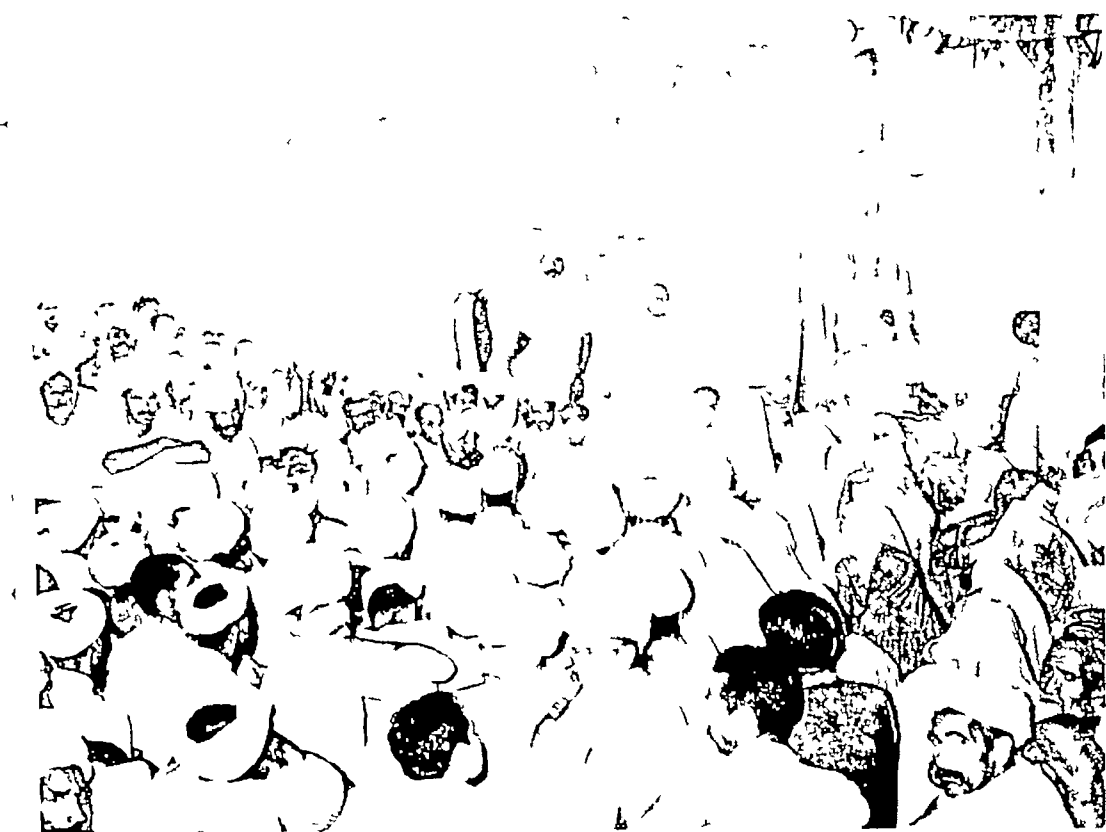
परसनेऊ गाँव मे ६० गाँवो से आए हुए सत्सगियो को उपदेश देते हुए श्री मोहता जी ।

जाय और सुनने वाले व्यक्ति का समाज के प्रति क्या फर्ज है यह बताया जाता है। समाज के उत्थान व समाज मे प्रचलित कुरीतियो को हटाने व अखिल भारतवर्ष व विश्व मे सुख शान्ति कैसे हो इन विषयो पर भी चर्चा होती है। श्री मोहता जी इस बात पर खास जोर देते हैं कि अपनी अपनी योग्यतानुसार शुभ काम केवल निजी स्वार्थ के लिये नही, किन्तु कर्तव्य समझ कर करना ही ईश्वर की सच्ची उपासना है और हम सब लोग अपने कर्तव्य पालन करने द्वारा एक दूसरे की जरूरत पूरी करने मे सहायता देगे और निजी स्वार्थ की लूटखसूट बद करेंगे तब ही हमारा यह रचा हुआ ससार सुखमय बनेगा। श्री नेहरू जी विचार व्यावहारिक वेदान्त के अनुकूल होने के कारण सत्संग मे सदा उनके विचारो की पुष्टि जनता के हित के लिए की जाती है।

जहा शुष्क वेदान्ती लोग ज्ञान और कर्म का विरोध बता कर, आत्म ज्ञान सहित संसार के व्यवहार होना असभव कहते हैं, वहाँ श्री मोहता जी निरसकोच होकर अकाट्य प्रमाणो और युक्तियो से ज्ञान और कर्म के योग को ही सच्चा अद्वैत वेदान्त सिद्ध करते हैं, जिसको गीता मे समत्व योग कहा है।

श्री मोहता जी के सत्सग का प्रभाव केवल बीकानेर मे ही नही है। आसपास के गावो के लोग भी सत्सग मे शामिल होते रहते हैं। माह मार्च ५७ मे चान्दाराम चौधरी गाव बाना वाले के अनुरोध से उन लोगो ने परसनेऊ गाव में सत्सग रक्खा और श्री मोहता जी व अन्य सत्सगियो को भी आमन्त्रित किया। श्री मोहता जी को आयु वृद्ध होने के कारण रेल पर चढ़ना व उतरना व सफर मे तकलीफ होना व वहा ठहरने मे सहूलियत का कम मिलना पहले से ही मालूम था, तो भी अन्य २२ सत्सगियो के साथ परसनेऊ पधारे और वहाँ २४ व २५ मार्च को खूब सत्संग किया। वहाँ सत्सग मे १००० के करीब सत्सगी निम्नलिखित गाँवो से सत्सग के लिए पधारे थे। श्री मोहता जी की और उनकी श्रद्धा व प्रेम देखकर अचम्भा होता था।

१ वेणीसर २ डूँगरगढ ३ बाना ४ बिग्घा ५ किल्याणसर ६ ऊपनी ७ राडी ८ कीतासर ९. धीरदेसर प्रोहितो वाला १० धीरदेसर जाटो का ११ ठुकरियासर १२ जातासर १३. माणक सर १४ गुसाईं सर १५ आलसर १६ ढढेरू १७. रामसरो १८ जेगणिया १९ राजलदेसर २० सिमरसियो २१ धामरियो २२. भावल देसर २३ रिडमलसर २४. डुडेरो २५. पाबूसर २६ रतनगढ २७ आरासर २८ बनडाऊ २९ मालक सर ३० लाडनू ३१ सुजानगढ ३२ छापर ३३. बीदासर ३४ सूडसर ३५ टेऊ ३६ जोरावरपुरा ३७. लाछरसर ३८. बडुआ ३९ बानीदो ४० कूंतासर ४१ पाडूराई ४२. परसनेऊ ४३. दसूसर ४४ पायली ४५ सुरजनसर ४६ आडसर ४७ सेजरासर आदि आदि।

इन गाँवो से आए हुए नर-नारियो मे से अनुमानत ५०० ने मृतक के पीछे जो जीमनवारें होती हैं उनमे नही जीमने की प्रतिज्ञा की। औसर निषेध के सम्बन्ध मे मोहता जी का निम्नलिखित भजन कितना सारगर्भित है —

औसर निषेध

(तर्ज "करमन की रेखा न्यारी, किस विध लखूं मुरारी" की)

औसर से हो रहे जुलम अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥टेर॥

अन्तरा

जब कोई प्यारा मर जावे, घर के सब रोवें चिल्लावें, औरत बच्चे सब रुल जावें, भाई बन्धु माल उड़ावें।
मन में तरस जरा नहीं लावें, कैसी है निर्दयताई, औसर से हो रहे जुलम अपार औसर छोड़ो सब भाई ॥१॥
जिस भाई को निर्धन पावें, उसके घर जेवर बिकवावें, बोहरों से करजा दिलवावें, जो कुछ हो गिरवी रखवावें।
दुःखियों को बेमौत मरावें, भाई है या कसाई, औसर से हो रहे जुलम अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥२॥
जो भाई करदे इनकार, उसको सब करते लाचार, गाली दे तानों की मार, पच करें न्याती से बार।
कितना है यह अत्याचार, इधर कुआ और उधर खाई, औसर से हो रहे जुलम अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥३॥

मरने ऊपर माल उड़ावें, साक्षात राक्षस बन जावें, नोच-नोच दु खियों को खावें, मन में ग्लानी कुछ नहीं आवें।
गीध काग घघू शरमावें, मनुष्य जूण कैसे पाई, औसर से हो रहे जुलम अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥४॥

बने धरम के ठेकेदार, ऐसे करतें अत्याचार, पाप पुण्य का नहीं विचार, अन्त पड़े जब जमकी मार।
नहीं कोई मिले छुड़ावन हार, क्यों करते यह दुखदाई, औसर से हो रहे जुलम अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥५॥

कहे 'गोपाल' सबी समझाय, छोड़ो मित्रो यह अन्याय, मत लेवो दु खियों की हाय, इससे देश रसातल जाय
बारी बारी सब दुख पायें, अब तो कर लो सुनवाई, औसर से हो रहे जुलम अपार, औसर छोड़ो सब भाई ॥६॥

एक दुःखित अबला का विलाप

(तर्क—तरकारी ले लो, मालन तो आई बीकानेर की।)

औसर कर हूँ तो, घर री रही न कोई घाट री। सुन लो सब भाई, बीती सुनाऊँ थाने आपरी ॥१॥
पास रही नहीं फूटी कौडी घर भी गयो बिकाई। जेवर थो सो बीमारी में बैद गया सब खाई ॥२॥
कदे न आया बीमारी में पूछण ने दुख भाई। मरता ही हो गया इकठ्ठा ज्यूँ माख्या गुड़ माई ॥३॥
बड़ियाजी काकाजी कहकर बोल्या लोग लुगाई। बारे तो हुई चार मिठाई आपा करसा काई ॥४॥
म्हाने तो रोटी री मुश्किल पास रही नहीं पाई। आगे पडूँ तो कुवो है और पाछे पडूँ तो खाई ॥५॥
एक तो मालक गयो घरा सू आतो बात विचारो। दया करो म्हारे पर अब मत मरियोड़ी ने मारो ॥६॥
थे केवो सो सिर माथे पर ऐसो रद्यो न म्हारे। बिन परन्योड़ी छोरी न्यारी छोड़ गयो छै लारे ॥७॥
ठेकेदार धर्म रा बोल्या चोखी बात विचारी। बूढे ने परनावण खातिर झट कर दीनी त्यारी ॥८॥
औसर प्रथा बुरी है इणने छोड़ो जद सुख होई। जड़ामूल से खोदो जिससे फेर करे नहीं कोई ॥९॥

सत्सग का विषय अद्वैत वेदान्त है। जिसकी सिद्धि गीता, योगवशिष्ठ व महात्माओ जैसे देवनाथ जी, राजा मानसिंह जी, सुखराम जी, बनानाथ जी, कबीर जी और उत्तमनाथ जी आदि आदि के भजनो से होती है।

श्री मोहता जी ने यह ज्ञान श्री उत्तमनाथ जी महाराज से लिया और उन्ही से गीता पढी, श्री उत्तमनाथ जी को ही अपना गुरु मानते हैं। यहाँ श्री उत्तमनाथ जी के बारे मे इतना ही लिखना काफी होगा कि उनको देह भाव बिल्कुल न था। एक दफा किसी आपरेशन कराने की जरूरत पडी तो डाक्टर को कह दिया कि मुझे बेहोश करने की जरूरत नही है, आप आपरेशन कर दीजिये। उन दिनो इन्जेक्सन से किसी शरीर के हिस्से को मुर्दा करने का अमल नही था। डाक्टर बहुत मुश्किल से माना और आपरेशन करने के बाद बहुत चकित हुआ।

जब श्री मोहता जी के गुरु इतने उच्च कोटि के थे तो श्री मोहता-जी का भी वैसा होना स्वाभाविक है। श्री मोहता जी को भी देह भाव बिल्कुल नही है। कई दफा देखा गया है कि बीमारी मे बडी शान्ति से ओम् का जाप करते हुए पार हो जाते हैं। यह समत्व योगी मनस्वी चिरायु हो और अपने सत्सग व सात्विक कामो द्वारा जनता को सच्चा मार्ग दिखाता रहे।

ओम्—तत्—सत्

मनोहर लाल मित्तल

(बी० ए० एल० एल० बी०, आर० ए० एस० अवसर प्राप्त एडिशनल कमिश्नर राजस्थान बीकानेर। प्रधान मत्री मनस्वी श्री रामगोपाल मोहता अभिनन्दन समिति)

●

४१

दुर्लभ गुणों की मूर्ति

मुझे यह जान कर बडी प्रसन्नता है कि वयोवृद्ध साहित्य मनीषी श्री रामगोपाल जी मोहता के इक्यासिवें वर्ष मे पदार्पण करने के शुभ अवसर पर उनका विशेष अभिनन्दन किया जा रहा है और उनको "एक आदर्श समत्व योगी" नाम से विशेष ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है। श्री मोहता जी ने समाज और देश की जो सेवा की है उसके कारण वे अभिनन्दन के पूर्णत अधिकारी हैं। यह समारोह बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था; परन्तु जब भी समाज अपने सेवको को पहिचान ले और उनका सम्मान करे तभी ठीक है। श्री मोहता जी इस अभिनन्दन को पाकर बडे नही हो जावेंगे—वे सो अपनी सेवा के कारण स्वत ही बडे हैं परन्तु समाज उनकी सेवा के ऋण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। मोहता जी का वास्तविक अभिनन्दन तो उनकी सेवाओ का अनुकरण करना, उनकी कार्य पद्धति को अपनाना और उनके गुणो को अपने जीवन मे उतारना है। मोहता जी सच्चे साहित्य सेवी एव समाज सेवी हैं। जिन्हे उनके निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला है वे उनकी विद्वता, सज्जनता, मिलनसारिता आदि अनेक मानवीय गुणो से अवश्य प्रभावित हुए हैं। उनके वृद्ध शरीर मे युवा मस्तिष्क एव स्नेह भरा हृदय निवास करता है। वे सच्चे कर्मयोगी हैं। उनका दृष्टिकोण व्यापक है और वृत्ति विश्व के प्रति मैत्रीभाव से परिपूर्ण है। दोषो को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु दोपी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हैं और उसके सुधार के लिए तन-मन-धन से प्रयत्न करते हैं। पुरातन और नवीन दोनो के प्रति वे सदैव विवेक पूर्ण सतुलन रखते हैं। नवीन अथवा पुरातन दोनो मे से किसी के भी प्रति उनमे कट्टरता नही है। वे नैतिकता एव उच्च मानवीय मूल्यो की कसौटी पर प्रत्येक वस्तु को देखते हैं। अपने शब्दो के प्रयोग मे वे बहुत नपे तुले रहते हैं ओर जैसा कहते हैं वैसी ही उनकी भावना होती है। मोहता जी दुर्लभ गुणो के मूर्तिमान स्वरूप हैं। यही कारण है कि वे अनेक साहित्य सेवियो और गुणी जनो के आदर के भाजन हैं। मोहता जी का लिखा "गीता का व्यवहार दर्शन" "गीता विज्ञान", "दैवी सम्पद", "सात्विक जीवन", "समय को माँग" आदि पुस्तकें पढकर मुझे उनके विचारो का जो परिचय मिला उसका मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पडा। सुजानगढ मे "बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन" का तीन दिवस का सम्मेलन हुआ जिसके अध्यक्ष श्री मोहता जी मनोनीत किये गये थे। श्री मोहता जी जब बीकानेर से सुजानगढ पहुँचे, तब वहाँ के अनेक प्रमुख नागरिक आप के स्वागत के लिए स्टेशन पहुँचे थे। विपुल सम्पत्ति शाली होते हुए भी मोहता जी की सादगी, मिलनसारिता और प्रेम भरे व्यवहारो की जो झलक लोगो को स्टेशन पर मिली उससे लोग बडे प्रभावित हुए। जहाँ मोहता जी को ठहराया गया था वहाँ कई बार सगीत व भजन आदि का कार्यक्रम हुआ। जब मोहता जी तम्बूरे पर भजन गाते थे तब ऐसे तन्मय हो जाते थे कि देखते ही बनता था। एक बार मैं बीकानेर गया था। मोहता जी के साथ उनके गोवरधन बगीची के आश्रम मे गया था जहाँ उनका सत्सग लगता है। वहाँ अनेक स्त्री पुरुष उसके लिए एकत्रित होते हैं। मोहता जी के प्रभावशाली प्रवचन और भजनो से मुझे लगा कि इस प्रकार के सुलझे हुए विचारो के व्यक्ति अपने समाज मे विरले ही हैं।

—बद्दराज सिंधी

(सुजानगढ़ के पुराने समाजसेवी और साहित्य प्रेमी)

४२

मनीषि मोहता जी

लक्ष्मी और सरस्वती के वरद् पुत्र सेठ साहब रामगोपाल जी मोहता राजस्थान के उन इने गिने सपूतो मे से हैं जिनका व्यक्तित्व अखिल भारतीय स्तर का है। यो तो मैं उनके नाम और काम से वहुत वर्षो से परिचित था पर साक्षात्कार करने का सौभाग्य मुझे १९४२ मे हुये बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन के सुजानगढ अधिवेशन के अवसर पर मिला। उन्होने सम्मेलन की अध्यक्षता स्वीकार कर ली है इस सूचना से ही हिन्दी के महान विचारक श्री जैनेन्द्र जी और बहु प्रसिद्ध कथाकार आचार्य चतुरसेन जी का दर्शन लाभ भी सुजानगढ को अनायास ही प्राप्त हो गया। सेठ साहब के सुजानगढ के अल्पकालीन आवास मे मुझे उनके सत्सग और सेवा का इच्छित अवसर मिला। भारत के महान उद्योगपति, गम्भीर दार्शनिक और सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत सेठ मोहता मुझे उच्च विचार और नियमित सादे जीवन के वस्तुत ही प्रतीक प्रतीत हुये। खादी की पाग, बन्द गले का कोट और घुटनो तक चढी हुई राजस्थानी धोती की यह साधारण पोशाक ही जैसे उनकी असाधारणता बन गई है। महिला जागरण और हरिजन सेवा का काम तो उन्हे अपने जीवन से भी अधिक प्रिय है। साहित्य सम्मेलन के व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद भी वे हरिजन बस्ती मे भगी भाईयो के बीच मे बैठकर कीर्तन करने का लोभ सवरण नही कर सके। उनकी 'प्रेम भजनावली' के राष्ट्रीय और सामाजिक उदात्त भावनाओ से परिपूर्ण लोकगीत आज भी कतिपय घरो की प्रात कालीन प्रार्थना बने हुये हैं। अब भी जब कभी मैंने किसी सार्वजनिक काम के लिये विशेष कर हरिजन सेवा के प्रसग मे उनके सहयोग और अमूल्य परामर्श की कामना की है तो वह मुझे सहज ही प्राप्त होता रहा है। कार्य कर्त्ताओ की उनको बडी पहचान और परख है। आज के कितने ही मेधावी और कुशल व्यक्तित्व सेठ मोहता की ही प्रेरणा और पितृ तुल्य प्रोत्साहन की देन हैं। मानव जीवन के मूल्यो के प्रति उनकी गहरी निष्ठा है और सामाजिक विकास मे ही व्यक्ति का विकास निहित है इस युग-सत्य को उन्होने पूर्णतया समझा है। मैं मनीषी सेठ रामगोपाल जी मोहता के इक्यासीवें वर्ष मे शुभ पदार्पण के अवसर पर उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और उनके दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

कन्हैयालाल सेठिया

(राजस्थान के यशस्वी कवि, लेखक व विचारक और मूक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता। सरल, भावुक और सहृदय व्यक्तित्व।)

●

४३

जन सेवा का उदाहरण

श्री रामगोपाल जी मोहता से कुछ समय से मेरा परिचय रहा है। जिन दिनो मे बीकानेर में कमिश्नर था मुझे उनके समाज सेवा के कार्यो को देखने का अवसर मिला और खासकर सन् १९५१-५२ के अकाल के

दिनो मे राहत कार्य के दौरान में मेरा उनसे और भी अधिक सम्पर्क हुआ। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जन-सेवा का जो उदाहरण उन्होने उस समय प्रस्तुत किया वह हम सब के लिए अनुकरणीय हो सकता है। बीकानेर क्षेत्र मे श्री मोहता जी का "पर्दा-निवारण", "मृतक-भोज निषेध" संबधी कार्य और अन्य समाज-सेवा के कार्यों मे विशेष महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि श्री रामगोपाल जी दीर्घायु हो और समाज मे व्याप्त कुरीतियो को दूर करने मे जिसका उन्होने बीडा उठाया है, उन्हें अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो।

भगवतसिंह मेहता
आई० ए० एस० (राजस्थान)

•

४४

लोकोपकारी व्यक्तित्व

विद्या विवादाय धनम् मदाय,
शक्ति परेशाम पर पीड़िनाय।
खलस्य साधो-विपरीत मेतत्,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

विद्या से विवाद, धन से अहकार और सत्ता से परपीडन, ये दुष्टो का स्वभाव होता है। इसके विरुद्ध सज्जन लोगो मे विद्या से ज्ञान, धन से दान की इच्छा और सत्ता से सेवा भाव उत्पन्न होता है।

इस ग्रन्थ के चरित्र नायक श्री रामगोपाल जी मोहता राजस्थान के गण्यमान्य धनाढ्य व्यक्तियो मे मे हैं साथ ही वे उच्चकोटि के विद्वान भी हैं। इन दोनो विभूतियो का इन्होंने आदर्श उपस्थित किया है। विद्या प्राप्त करके ये ज्ञानी बने और समाज में ज्ञान वितरण का भरसक प्रयत्न किया। अपने धन का पूर्ण सदुपयोग किया व लाखो रुपये ज्ञान सेवा मे खर्च किये। अपना स्वय का जीवन सादा और सयमी बनाकर रखा। मेरा उनसे करीब ३० साल से अधिक का परिचय है और अत्यधिक घनिष्ठता रही है। अत मुझे श्री मोहता जी के विषय मे काफी जानकारी है। मुझे आपके साथ बीकानेर मे रहने का अनेक बार अवसर मिला है। जोधपुर नगर मे श्री मोहता जी की ओर से स्थापित वनिता-विश्राम भवन के प्रवन्ध के सम्बन्ध मे सभी नगर निवासी भली प्रकार परिचित हैं। मैं, जो कि इस विश्राम भवन की प्रवधक समिति का अध्यक्ष तथा ट्रस्टी रहा हूँ, अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि श्री मोहता जी के समकक्ष विवेकी और उदार हृदय व्यक्ति बहुत कम देखने मे आये हैं। मैंने कई वर्ष पूर्व श्री मोहता जी से बीकानेर मे कहा था कि पूंजीपति लोग यदि आपके जीवन को आदर्श बनाकर उसका अनुकरण करें तो हमारे देश मे साम्यवाद और समाजवाद की कोई आवश्यकता नही रहेगी, क्योंकि भारत के ऋषि-मुनियो ने अपने बुद्धि व तपोबल के प्रभाव से इस देश की सस्कृति और समाज व्यवस्था ऐसी बनाई थी कि जिससे सबका हित और कल्याण होता था।

यह विश्व ईश्वर की एक रचना है और हरेक व्यक्ति इस रचना का एक अग है। इसलिए प्रेम और

सहयोग का जीवन बिताना ही व्यक्ति जीवन मे उत्थान का सबसे बडा कारण है। जिस व्यक्ति से जितना लाभ समाज को होता है यही उसकी योग्यता और विवेक की कसौटी है। भारतीय सस्कृति मे स्वार्थ व द्वेष के लिए कोई स्थान नही था। अपितु कर्तव्य परायणता पर सारी सामाजिक व्यवस्था आधारित थी। जैसा कि हमारे शास्त्रो मे कहा गया है कि 'परस्परम् भावयता श्रेय परम वाप्स्यथ । (Make your contribution and co-operate for the benefit of one and all)।

एक बार मैंने मोहता जी से कहा था कि भारत मे साम्यवाद और समाजवाद का पदार्पण हो गया है और यदि पूंजीपति नही सम्भलेंगे तो इसका परिणाम बहुत ही अवांच्छनीय होगा। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे अपने परिचितो का ध्यान इस ओर आकर्षित करें। इस पर उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। यह बहुत पुरानी बात है। उसके बाद बडे-बडे परिवर्तन होते रहे हैं और भविष्य मे अत्यधिक होते रहने की सम्भावना है। आर्थिक दृष्टि से तो यह चीज अवांच्छनीय नही है पर धार्मिक दृष्टि से यह अत्यधिक अवांच्छनीय है। क्योकि हमारी सस्कृति मे तो अभ्युदय (Material Prosperity) और श्रेय (Spiritual Uplift) दोनो का सुन्दर समन्वय किया गया था कि आधुनिक समाजवाद और साम्यवाद मे श्रेय के लिए कोई स्थान नही रखा गया है जिससे जीवन का बहुत बडा अग अपग सा हो जाता है। यह विश्वव्यापी सिद्धान्त है और सनातन धर्म का मूल मन्त्र है। (Charity Covereth a multitude of Sins)। हर प्रकार का दान सब से ऊँची और आवश्यक वस्तु है। जब विद्या और धन दोनो का दान साथ होता है तो समाज को बहुत लाभ होता है। इस दृष्टि से श्री मोहता जी का जीवन बहुत सफल एव सार्थक रहा है। उससे लोगो को बहुत शिक्षा मिली है और मिलती रहेगी। इस ग्रन्थ की भी यही सफलता होगी कि इससे सबको प्रेरणा मिलती रहे।

मैं इस ग्रथ के द्वारा श्री मोहता जी को श्रद्धाजलि अर्पित करने मे अपना सौभाग्य समझता हूँ।

रणजीतमल मेहता
(रिटायर्ड जज, हाईकोर्ट, जोधपुर)

•

४५

महान व्यक्ति

श्रीमान् मोहता उच्च कोटि के आदर्श महान व्यक्ति हैं। ऐसे महान व्यक्ति ढूंढने से भी बहुत कम मिलेंगे। उनमे ३०-३५ वर्ष की आयु मे ही साहित्यिक प्रतिभा झलकने लग गई थी। उस समय आपने "डाडियो का खेल" व "हमारी वर्तमान दशा का विवेचन" नामक पुस्तकें लिखी थीं और डाडियो के गायन मे जो अश्लील भाव थे उन्हे निकाल कर उनकी जगह शिक्षाप्रद भावो का समावेश किया और कई नये गायन अपनी ओर से बनाये जो शिक्षाप्रद थे। फिर स्वामी उत्तमनाथ जी के सत्सग से आप का झुकाव आध्यात्मिक ज्ञान और वेदान्त की ओर हुआ। "सात्विक जीवन", "दैवी सम्पद" एव "गीता का व्यवहार दर्शन" आदि कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की। सारी गीता और उसका भाष्य आपको कठस्थ है। वह आपके रोम-रोम मे बसा हुआ है। आपने श्रीकृष्ण के उपदेशो के अनुसार अपने जीवन को ढालने का यत्न किया है। श्री डूगर कालेज मे गीता के सम्बन्ध

सेठ चादरतन जी वागडी
(मोहताजी की स्वर्गीया पुत्री मुगनीवाई के पति)

मे एक सभा हुई थी तब आपने यह कहा था कि "मेरे रोग शय्या पर पडे होने पर भी यदि कोई गीता के विषय मे मुझ से प्रश्न करेगा तो यथा शक्ति उत्तर देने मे मुझे बडी खुशी होगी ।"

आपकी गृहणी भी बडे सरल स्वभाव की और आपकी आज्ञानुसार चलने वाली मिली थी । उनकी अस्वस्थता मे आपने उनकी बडी सेवा की और धन भी खूब खर्च किया । आपके परिवार मे आपकी पुत्री, स्त्री एव दोहिते का स्वर्गवास प्राय एक साथ ही हुआ । उस सब को आपने बडे धैर्य से सहन किया । आपके पास कोई सहानुभूति प्रदर्शित करने जाता तो आप कहते कि पहले मेला भरा हुआ था अब खिडता हुआ है इसमे सोच काहे का । इस तरह के घोर दुःख मे इतना धैर्य रखना आप जैसे महान आत्मा का ही काम था ।

आपका स्वभाव बहुत ही शात, सरल एव सात्विक है । जब कभी शारीरिक कष्ट आ जाता है तो आप बहुत शाति से उसे सहन कर लेते हैं । आपकी स्मृति इस वृद्धावस्था मे भी नौजवानो से कही अधिक है । बुद्धि भी बडी तीव्र है । जिस समस्या को सुलझाने मे लोग हार खा जाते हैं उसे आप सहज ही मे सुलझा देते हैं। सबको सच्ची व हित की सलाह देते हैं । आपका खाना व पहनना सब सादा है ।

दान देने मे आपकी बहुत रुचि है । अपना कर्त्तव्य समझ कर गीता मे लिखे अनुसार आप सात्विक दान देते हैं । बीकानेर शहर मे आपके माफिक और आपसे ज्यादा कई धनवान है परन्तु दान देने मे आपकी आपका बराबरी कोई नही कर सकता ।

आपका शिक्षा विशेषत स्त्री शिक्षा पर बहुत अधिक ध्यान है। उनकी गिरी हुई दशा सुधारने मे काफी हाथ है ।

शारीरिक शिथिलता रहते हुए भी आप नित्य सत्सग करते हैं और आपके सत्सग एव उपदेशो से बहुतो को लाभ पहुचता है ।

चाँद रतन बागड़ी

(मोहता जी के दामाद और सौभाग्यवती रतन बाई दम्माणी के पिताश्री)

•

४६

कर्मयोगी मोहता जी

मैं श्रीमान् रामगोपाल जी मोहता के अभिनन्दन ग्रन्थ की हृदय से सफलता चाहता हूँ । मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क मे गत ४० वर्षो से रहा हूँ । वे वास्तव मे राजर्षि व कर्मयोगी सारी आयु रहे है और एक आदर्श समत्व योगी हैं । उनसे हजारो लोगो ने मार्ग दर्शन प्राप्त किया । यह बडे सौभाग्य की बात होती यदि मैं विस्तृत रूप से उनके सार्वजनिक जीवन के विषय मे कुछ लिख सकता । मैं निरन्तर बीमार रहता हूँ । अतएव विस्तार से लिखना सम्भव नही है । वास्तव मे वे अपने आध्यात्मिक चिंतन द्वारा देश मे राजनीतिक क्रान्ति लाने की पृष्ठभूमि व नीव स्वरूप रहे । उन्होने मारवाडी समाज मे धार्मिक व सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न की है । देश, राष्ट्र, समाज, धर्म एव आर्य सस्कृति के पुनरुद्धार के लिए जीवन सग्राम मे उनकी तपस्या प्रत्येक भारतीय के

लिए आदर्श है। महा दयालु परमपिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि वे भारत माता की इसी प्रकार निरन्तर सेवा करते रहें।

चन्द्रानन सरस्वती

(सुप्रसिद्ध कर्मवीर, देशभक्त स्वर्गीय श्री चादकरण जी शारदा ने वानप्रस्थ मे अपना नाम "चन्द्रानन सरस्वती" रखलिया था। १६२० मे आप कट्टर कांग्रेसी और असहयोगी थे, किन्तु अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ आपने कांग्रेस को छोड़ दिया और हिन्दू महासभा तथा हिन्दू सगठन के काम में अपने को तन्मय कर दिया। तब से आपकी प्रमुख हिन्दू और आर्य समाजी नेताओं मे गणना की जाती थी। वैदिक धर्म और आर्य सस्कृति के आप दीवाने थे। माहेश्वरी किंवा मारवाडी समाज के पहली श्रेणी के पुराने सुधारको मे आपके परिवार की गणना की जाती है। शारदा परिवार को आपके और स्वर्गीय दीवान वहादुर श्री हरविलास जी शारदा के कारण विशेष ख्याति प्राप्त हुई।)

●

४७

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य हृष्यामिव पुनः पुनः

सन् १६१८ मे श्रीमान सेठ रामगोपाल जी मोहता से सम्पर्क प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। यह साल बीकानेर के इतिहास मे अनेक सुधार-योजनाओ के लिए स्मरणीय है। शिक्षा-विभाग मे प्रगति की योजना का मुख्य स्थान था। इस योजना के फलस्वरूप इस वर्ष के अक्टूबर मास मे श्री सम्पूर्णानन्द जी का और मेरा राजकीय विद्यालयो मे प्रधानाचार्यों के पदो पर प्रवेश हुआ। मैं यदा कदा श्री गुण प्रकाशक सज्जनालय मे समाचार पत्र पढने जाया करता था। मोहता जी उसके पदाधिकारी होने के कारण उसका काम देखने पधारा करते थे। एक दिन शिक्षा के सम्बन्ध मे उनसे वातचीत हुई। हम दोनो के विचारो मे समता होने के कारण मित्रभाव का प्रादुर्भाव हो गया। उन दिनो मे मैं सरदारो के स्कूल (वाल्टर नोवुल्स स्कूल) का प्रधानाचार्य था। उनके ही प्रेमपूर्ण आग्रह से मैं पुस्तकालय का सभासद बन गया और सन् १६२० मे उसका मन्त्री चुना गया। श्रीमान सेठ शिवरतन जी मोहता भी इस सस्था के कार्य मे प्रमुख भाग लिया करते थे। इस प्रकार दोनो वधुवरो से मेरी घनिष्ठता हो गई। उनके सौजन्य, शिक्षा प्रेम, और देश-सेवा के लिए अदम्य उत्साह का विशेष प्रभाव मेरे युवक हृदय पर पडा।

सन् १६२१ मे मुझे श्री मोहता मूलचद विद्यालय की प्रवन्धकारिणी समिति का सदस्य चुना गया। सन् १६२२ के दिसम्वर के अन्त मे एक दिन मोहता जी मेरे स्थान पर पधारे। उन्होंने फरमाया कि विद्यालय के सचालन मे मैं आपका सक्रिय सहयोग चाहता हूँ। मुझमे सकारात्मक उत्तर मिलने पर उहोंने अवैतनिक मन्त्री का पद स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा। जव मेठ साहव मेरी यह वात सहर्ष मान गये कि कोपाध्यक्ष के पद पर रहते हुए वे उपमन्त्री वनना स्वीकार करेंगे, तव पहली जनवरी १६२३ से यह कार्य-भार लेना मैंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उन्होंने मुझे जो आश्वासन दिया था कि वे विद्यालय को उच्च श्रेणी की शिक्षा-सस्था वनाने के लिए तन व धन से मर्वथा और सर्वदा सहयोग देंगे उसका पालन उन्होने अक्षरश किया। मन्त्री पद

पर मैं जून १९४१ तक कार्य करता रहा तब बीकानेर राज्य के शिक्षा-विभाग का संचालक होने के नाते मुझे इस सेवा का परित्याग करना अनिवार्य हो गया था। पुस्तकालय मे पहले मन्त्री और बाद मे सभापति के पदो पर मैं सेठ साहब के साथ सन् १९२० से १९३५ तक कार्य करता रहा। इतने दीर्घकाल तक मोहता जी सरीखे मनीषी और शिक्षा प्रेमी के साथ जनता-जनार्दन की सेवा करने का सुयोग मिलने को मै अपना सौभाग्य समझता हूँ। इस अवधि मे घटी हुई ऐसी अनेक घटनाएँ और प्रसंग है कि उनसे मोहताजी के महान व्यक्तित्व और उनके दिल और दिमाग की विशेषताओ की गहरी छाप मुझ पर ऐसी लगी है कि उनके सम्बन्ध मे सजय के यही शब्द कहे जा सकते हैं। कि "तच्च संस्मृत्य सस्मृत्य हृष्यामिच पुन पुन"। अर्थात् उनको स्मरण करके मैं बारबार पुलकित हो जाता हूँ।

बीकानेर मे श्री गुण प्रकाशक सज्जनालय सब से पहली सार्वजनिक सस्था और श्री मोहता मूलचन्द विद्यालय सबसे पहली आधुनिक शिक्षा सस्था थी। इन दोनो संस्थाओ द्वारा जनता मे जो जागृति हुई और शिक्षा का प्रसार हुआ, उसके कारण मोहता परिवार विशेषतया सेठ साहब के प्रति प्रत्येक सहृदय बीकानेरी का मन आभार से भरा रहेगा। सुबह से शाम तक पाठको की इतनी भीड रहती थी कि बैठने के स्थान के लिए प्रतीक्षा करनी पडती थी। विद्यायलय मे प्रोत्साहन के लिए छात्रो को पुस्तकें और लेखन सामग्री मुफ्त दी जाती थी। दीन छात्रो को जिनकी सख्या अधिक होती थी और छात्रालय मे प्रत्येक कक्षा मे योग्य छात्रो को मासिक वृत्तियां दी जाती थी। छात्रालय मे दीन छात्रो को कुछ नही देना पडता था और अन्य छात्रो से केवल ५ रु० मासिक फीस ली जाती थी। राज्य के सभी भागो से छात्र आकर इन सुविधाओ से लाभ उठाते थे। सन् १९२५ के प्राप्त आकडो के अनुसार केवल छात्रालय पर लगभग १०,००० रु० वार्षिक व्यय आता था।

"विद्यालय" का सचालन प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा होता था। सभापति यथा समय चुना जाता था और प्रत्येक निर्णय बहुमत से होता था।

सन् १९२५ से सेठ साहब की उदारता के कारण हाई स्कूल की परीक्षा मे प्राइवेट तौर पर बैठने वाले छात्रो के लिए अध्यापन का प्रबन्ध हो गया था। सन १९२८ मे यह निश्चय हुआ कि हाई स्कूल परीक्षा के लिए 'विद्यालय' का सम्बन्ध राजपूताना बोर्ड अजमेर से कर दिया जाय। बोर्ड की ओर से निरीक्षण के लिए स्वर्गीय प्रो० अमरनाथ झा (जो बाद मे प्रयाग और पटना के विश्वविद्यालयो के उपकुलपति नियुक्त हुए थे) बीकानेर पधारे थे। वे विद्यालय के प्रबन्ध और पढाई से परम प्रसन्न हुए और सेठ साहब को बधाई दी कि उनकी उदारता से इतनी अच्छी शिक्षा सस्था चल रही है। जुलाई सन् १९२९ से सस्था श्री मोहता मूलचन्द हाई स्कूल मे परिणित हो गई। सन् १९३० से राज्य की ओर से १२०० रु० की वार्षिक सहायता मिलने लगी। सन् १९३३ मे अर्थकरी विद्या के सिद्धान्त के अनुसार छात्रो के हित के लिए छात्रालय मे "शिल्प-शाला" खोली गई जिसमे प्रतिदिन शाम को अनेक उद्योग धन्धो की शिक्षा दी जाने लगी।

सेठ साहब सौहार्द और सौजन्य की मूर्ति हैं। जब सन् १९३० के सितम्बर मास मे दो साल के लिए कानून, शिक्षा-शात्र और मनोविज्ञान का अध्ययन करने के लिए मैं लंदन विश्वविद्यालय मे पढने गया, तो उन्होंने फरमाया कि महत्वपूर्ण मामलो मे मेरा परामर्श लिया जाता रहेगा, इसलिए मन्त्री के पद मे परिवर्तन करना अनावश्यक है। अपना अमूल्य समय निकाल कर वे मुझे स्कूल के मामलो के बारे मे अवगत करते रहे। सन् १९३६ की जुलाई मे आगरे के सैंट जौन्स कालेज मे तीन साल के लिए दर्शन शास्त्र का प्रोफेसर होकर मैं गया, तब भी पूर्ववत् मैं मन्त्री बना रहा। यह उनका मित्रभाव था और साथ ही हृदय की विशालता। प्रसगवश उनकी गहन ज्ञान-गरिमा के बारे मे कहना पडता है कि सन् १९३७ मे जब उनकी पुस्तक "दैवी सम्पद" का अवलोकन विश्व-विख्यात विद्वान प्रो० ग्रियर्सन ने किया तो उन्होंने मुक्त कठ से मोहता जी की विद्वत्ता की सराहना की। यह समालोचना विलायत के मासिक पत्र "इंडियन रिव्यू" मे प्रकाशित हुई थी।

समत्व योग सेठ साहब के व्यवहार मे व्यापक है। एक छोटी घटना लिखी जाती है। उस समय स्वर्गीय मूलचन्द जी मोहता की धर्मपत्नी जीवित थी। उनका एक निकट सम्बन्धी वार्षिक परीक्षा मे फेल हो गया और अन्य फेल हुए बालको के साथ उसे भी कक्षा मे रुकना पडा। बहुत कुछ कहा-सुनी होने पर भी सेठ साहब अपने सिद्धान्त पर अचल रहे कि सब छात्रो के साथ समान व्यवहार होना चाहिए और अनुत्तीर्ण छात्रो की भलाई पूर्व कक्षा मे रहकर कमजोरी दूर करने मे है। किसी ने सच कहा है कि "न्यायात पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा।"

किसी प्रश्न पर अपनी सम्पत्ति अनासक्त होकर सेठ साहब प्रकट करते है। सन् १९३५ मे शिक्षा विभाग के सचालक मि० बी० ए० इगलिश हाई स्कूल की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य बनाये गये। उन दिनो श्री शिवशकर जी अग्निहोत्री बी० ए० स्कूल के एक्टिंग प्रधानाध्यापक थे। अजमेर बोर्ड के नियमो के अनुसार हाई स्कूल के हेडमास्टर के लिए एम० ए० या बी० ए० ट्रेंड होना जरूरी था, अतएव इस योग्यता वाले व्यक्ति के लिए विचार होते समय मि० इगलिश ने यह भी राय दी कि श्री अग्निहोत्री को सैकड मास्टर बना दिया जाय और उसके स्थायी पद एसिस्टैंट हैडमास्टर पर उनके नीचे काम करने वालो श्री कपूर एम० ए० को उन्नत कर दिया जाय। अनुभवी और पुराने मुख्याध्यापक श्री अग्निहोत्री को एक पद नीचे गिरा देने के प्रस्ताव का विरोध हुआ। उन दिनो मैं श्री डूंगर कालेज का प्रधानाचार्य था। शिक्षा विभाग का डाइरेक्टर होने के कारण मि० इगलिश को पूरी आशा थी कि सेठ साहब उनके प्रस्ताव का अनुमोदन करेंगे। पर उन्होने साहब से कहा कि हमारे स्कूल मे सबके साथ न्याय का बर्ताव होता है, अतएव बिना कारण श्री अग्निहोत्री को कैसे एसिस्टैंट हैडमास्टर से द्वितीय अध्यापक किया जा सकता है। अन्त मे बहुमत साहब के विरुद्ध हुआ और वे ऐसे खिसिया गये कि कमेटी मे आना छोड दिया।

वेदान्ती होते हुए भी मोहता जी विनोद प्रिय हैं। जब छात्रालय मे प्रीतिभोज हुआ करते तो वे शिक्षको और छात्रो के साथ बैठकर भोजन ही नही करते, प्रत्युत सगीत, कविता-पाठ और विनोद-वार्ताओ मे भाग लेकर सबका मनोरजन करते। एक शिक्षक महाशय ऐसे भोजन भट्ट थे कि चौबे न होते हुए भी मथुरा के चौबो को मात कर सकते थे। एक दिन भोजन करने के बाद भी किसी मित्र की दावत मे सहसा पहुँचकर अस्सी गुलाब-जामुन और चार लड्डू अपनी दुरतपूर्ण उदरदरी मे पहुँचा कर ही डकार ली और फिर भी अपने घर लौटकर औटा हुआ सेर भर दूध पी गये। सेठ साहब उनके पास जा जा कर भोजन सामग्री परोसवाते। एक प्रीतिभोज मे उन महाशय को खूब छका कर तर माल खिलाया गया। जब वे तुलवाये गये तो उनका वजन चार सेर अधिक हुआ। वे भोजन-भूपति कहलाने लगे। सेठ साहब के बनाए हुए भजन अनेक हैं और वे बडे सरल, सरस और भावपूर्ण हैं।

इस छोटे से लेख मे मैंने विशेषणो के बजाय सेठ साहब के शिक्षा सम्बन्धी कार्यो का उल्लेख विशेषतया किया है, क्योकि किसी कवि ने कहा है कि "करणी ही कह देत आप कहिये नहिं साईं।" समत्व साधक के लिए ऐसा करना ही समीचीन है। अन्त मे मेरी यह कामना है कि सेठ साहब शतायु हो और स्वस्थ रहें जिससे उन सरीखे सज्जन द्वारा हमारे देश की विविध सेवाएँ निरतर सम्पादित होती रहें।

ठाकुर जुगलसिंह खीची

एम० ए०, पी० एच० डी०, बार-एट-ला,

(बीकानेर के वयोवृद्ध सुशिक्षित शिक्षा प्रेमी दर्शन-शास्त्री। राजपूत सरदारों मे आप सरीखे शिक्षा प्रेमी इने गिने ही व्यक्ति हैं। मोहता जी के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों मे सहयोगी होने का परम सौभाग्य आपको प्राप्त है।)

४८

कुछ अविस्मरणीय प्रसंग

मोहता आयुर्वेद औषधालय के प्रधान चिकित्सक होने के नाते मुझे वयोवृद्ध मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता को बहुत समीप से देखने का अवसर मिला है और उनका स्नेह, विश्वास तथा कृपा भी मुझे भरपूर मात्रा मे प्राप्त हुई है। अपने कुछ भाव प्रगट करके उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने की प्रबल इच्छा होते हुए भी मैं उनको केवल इसलिए प्रगट करना नही चाहता कि उनको अपनी प्रशसा सुनने की कतई इच्छा नही है और वे उसको बुरा मानते हैं। फिर भी अपने कुछ भाव प्रगट करने की इच्छा का सवरण मैं नही कर सका। परन्तु कठिनाई यह है कि उनको कहाँ से प्रारम्भ करू और कहाँ समाप्त करू। मोहता जी के व्यक्तिगत गुणो और लोक सेवा का विस्तार इतना अधिक है कि उनका कोई ओर छोर पाना कठिन है। जब से आप ने अपने व्यापार व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धो को सभालना शुरू किया है उससे भी पहले से आपकी लोकसेवा प्रारम्भ है। अपने को अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी मानकर उसका विनियोग जन सेवा के लिए करने का कोई भी अवसर आपने हाथ से जाने नही दिया। प्रगट सेवा की अपेक्षा मूक सेवा कही अधिक है। उसको आपके सिवाय कदाचित ही कोई दूसरा जानता होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मी और सरस्वती दोनो का समान रूप से वरदान देते हुए भगवान ने आपको दयाभाव से भी ओतप्रोत कर दिया है। दीन दुखियो के प्रति उदारता, सहृदयता और सहानुभूति से आपका हृदय सराबोर है। उनका करुणापूर्ण आर्त्तनाद आप सुनते ही पसीज जाते हैं। वैसे तो समाज का कोई भी पददलित वर्ग आपकी सेवा से वचित नही है, परन्तु सहज भाव से उसका सबसे अधिक लाभ हरिजनो और महिलाओ को प्राप्त हुआ है, क्योकि समाज मे वे ही सबसे अधिक दलित, शोषित एव पीडित हैं।

हरिजनो के प्रति उदार एव सहृदय भाव रखते हुए आपने उनकी जो सेवा की है वह गीता के निष्काम कर्त्तव्य पालन का सर्वोत्तम उदाहरण है। उसके लिए आपको रूढि पथियो तथा पुरातन पथियो के प्रकोप का सबसे अधिक शिकार बनना पडा है। एक चिकित्सक के नाते मेरा प्रवेश प्राय सभी तरह के विचारो के लोगो के घरो मे होता रहता है और मुझे मोहता जी की आलोचना सुनने का भी पूरा अवसर मिलता है। लोग आपके सेवाभाव की सराहना करते हुए भी हरिजनो के प्रति प्रगट की गई आपकी आत्मीयता को सहन नही करते और कहते हैं कि आपका अछूतोद्धार और विधवा विवाह का काम सर्वथा निन्दनीय है। अपनी विरोधी भावनाओ को आप तक पहुचाने का मुझे सर्वोत्तम साधन मानने के कारण भी वे मेरे सामने खुल जाते हैं। बहुत से तो भद्दी भद्दी गालिया देने मे ही अपने विरोध प्रदर्शन को सार्थक समझते हैं। वैश्यो और ब्राह्मणो के मुहल्लो मे दीवारो पर मोटे मोटे अक्षरो मे यह लिखा होता था कि "रामगोपाल मोहता भगी है", "रामगोपाल मोहता का नाश हो" और "रामगोपाल मोहता अछूत है।" आपके नाम से गदे गीत लिखकर आपकी कोठी के सामने झाझ आदि बजाकर गाए जाते थे। घर की महिलाओ तक के लिए अश्लील शब्दो का प्रयोग किया जाता था। परन्तु आप धीर, वीर एव विश्वासी व्यक्ति की तरह अपने सेवाभाव तथा कार्य मे निमग्न रहे। मैंने एक बार आप से पूछ ही लिया कि जब ये लोग आपके सुधारो को अच्छा नही मानते, गाली देते हैं और बुरा भला कहते है तब आप अपना लाखो रुपया और अमूल्य समय तथा तन मन, इन कार्यो मे क्यो खर्च करते हैं और क्यों इतना कष्ट उठाते हैं? सहज स्वभाव से उत्तर मिला कि सबको अपना अपना कर्त्तव्य करने की स्वतत्रता है।

*　　*　　*

महिला वर्ग की सेवा का जो कार्य अकेले सेठ साहब ने किया है वह अनेक सस्थाएं भी मिलकर नही कर सकी । महिलाओ की शिक्षा, उन्नति, प्रगति तथा विकास के लिए अनेक सस्थाए और उनके उद्धार तथा विधवाओ के पुर्नविवाह के लिए वनिता आश्रम सरीखी अनेक सस्थाए आप द्वारा स्थापित व सचालित इस समय भी विद्यमान हैं । इस क्षेत्र मे काम करने वाली अनेक सस्थाओ को आपकी सहायता प्राप्त हुई है ।

व्यक्तिगत रूप से किसी भी सत्रस्त, पीडित अथवा उपेक्षित महिला को सहायता एव सरक्षण प्रदान करने के लिए आप सदैव तत्पर रहते हैं । सन् ४२ के मार्च मास की एक घटना है कि दुपहर की धूप मे दिन मे दो वजे मैंने एक महिला को देखा, जो एक दो दिन के शिशु को वत्ती से वताशे का पानी पिला रही थी । मुझे कुछ सदेह हुआ तो मैंने पूछताछ की । मुझे पता चला कि वह अभागी कन्या किसी ऐसी सत्रस्त विधवा की पुत्री है जो उसको अपने स्तन का दूध भी पिलाना नही चाहती और वह उसको वहां ऐसे ही छोड गई । मातृस्नेह विहीन, अरक्षित तथा अनाथ ऐसी कन्याओ का सहारा उन दिनो मे केवल मोहता जी के ही यहाँ मिलना सम्भव था । उस कन्या का भी लालन पालन किया गया । ऐसी कितनी ही कन्याए माया, ललिता तथा लक्ष्मी आदि के नाम से बडी होकर अच्छे घरो मे व्याह दी गईं और मातृपद को सुशोभित कर सदगृहस्थ का जीवन बिता रही हैं ।

उसी वर्ष के मई मास की एक और घटना है। धर्मशाला के जमादार ने मुझे सूचना दी कि एक अज्ञात युवा महिला धर्मशाला मे आकर मोहता जी का पता पूछ रही है । मैं उससे जाकर मिला । उसकी आयु लगभग २१-२२ वर्ष की होगी । कद लम्बा, शरीर स्वस्थ, वोलचाल मे चतुर और विचारो मे कुछ गम्भीर जान पडी । उसका हृदय बडा ही सत्रस्त व व्याकुल दीख पडा । कही से दुखी होकर मोहता जी की शरण मे आई प्रतीत होती थी । इलाहावाद से निकलने वाली पत्रिका "चांद" की एक प्रति और पहने हुए कपडो के सिवाय उसके पास कुछ और न था । बातचीत करने पर उसने एक पत्र मुझे दिया जिस पर केवल इतना लिखा था—"गरीब महिलाओ के शिक्षण के लिए सेठ जी समुचित प्रबन्ध कर देते हैं ।" बडी व्याकुलता से उसने कहा कि "मुझे सेठ जी से मिला दीजिए । वे मेरी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध करके मुझे नर्स बना दें । मैं सेठ जी के खर्च पर कन्या गुरुकुल देहरादून मे शिक्षा प्राप्त करना चाहती हूँ ।"

मोहता जी कराची मे थे । एक लम्बे तार से उनको उसकी सूचना दी गई । अर्जेन्ट तार से उत्तर मिला कि उसकी शिक्षा आदि का प्रवन्ध अभी वीकानेर मे ही कर दिया जाय । युवती को वह तार वता दिया गया और उसको मैंने अपनी माता जी के सरक्षण मे रख कर पढाई का प्रवन्ध कर दिया ।

कुछ समय बाद वह कुछ शात हुई और घर की स्त्रियो मे उसने कुछ अपनापन अनुभव करना शुरू किया । अपनी पत्नी की मार्फत मुझे पता चला कि वह बनारस के एक सभ्रान्त कायस्थ परिवार की कन्या है । दो भाइयो मे से एक रेलवे मे और दूसरा पुलिस मे मुलाजिम है । तीन वहनें हैं । माता जीवित है । दोनो भाइयो का विवाह हो चुका है । घर गिरवी रखकर किसी प्रकार दो वहनो का भी विवाह कर दिया गया है । उसके विवाह के लिए एक आख मे कुछ दोप होने के कारण जो दहेज मागा जाता है वह भाइयो की सामर्थ्य के वाहर है । भौजाई तग करती रहती है, भाई उदास रहते हैं और माता रोती रहती है । वह अपने कारण सबको दुखी देखकर स्वावलम्बी वनने का निश्चय करके घर से निकल पडी है । अपनी कुछ सहेलियो से वातचीत करने पर उसको "चाद" पत्रिका की वह प्रति मिली और उससे उसको सेठ जी का पता मालूम हुआ । इसी प्रकार उसके घर का पता भी मालूम कर लिया गया । वनारस मे पुलिस मे काम करने वाले उसके भाई को तार से सूचना दे दी गई । उसका भाई तार पा कर वीकानेर आ पहुँचा । मोहता जी के उदार स्वभाव से प्रदत्त सहायता से वह स्वावलम्वी वनने के सम्बन्ध मे निश्चित हो चुकी थी इसलिए घर लौटने को तैयार न थी । भाई ने रो

रो कर उसको लौटने के लिए सहमत किया और मोहता जी तथा हम लोगो को उसने उसके साथ सद्व्यवहार करने का विश्वास दिलाया, परन्तु दहेज के अभिशाप के कारण उसका वह भाई कभी कभी बुरी तरह रो पडता था, जिसको सहन करना भी बडा कठिन था। अश्रुपूर्ण नेत्रो से उन दोनो का बीकानेर से विदा होना और समाज की दहेज की कुप्रथा से सत्रस्त उन भाई वहन के विलखने का दृश्य अब भी जब याद आता है तो हृदय रो पडता है। यह केवल एक उदाहरण है उन अनेक घटनाओ मे से जिनमे मोहता जी का आश्रय पाकर न मालूम कितनी महिलाओ ने अपने जीवन का सुधार एवं निर्माण किया है।

* * *

मोहता जी सामाजिक रूढियो तथा धार्मिक अंध परम्पराओ को समूल नष्ट कर देने के लिए प्रयत्नशील हैं। महिलाओ की हीनता द्योतक किसी भी प्रथा या रूढि को आप बिल्कुल भी सहन नही करते। इसी कारण दहेज की कुप्रथा के सबसे अधिक विरोधी हैं और बडी कठोरता से इस सम्बन्ध मे आचरण करते और करवाते हैं। आपके घर के कई लडको के बडे बड़े घरानो मे विवाह सम्बन्ध हुए हैं, किन्तु कभी भी किसी भी विवाह मे दहेज देखने मे नही आया और सभी विवाह अत्यन्त सौहार्दपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुए हैं। पिछले ही दिनो मे आपकी दोहिती श्रीमती रतनबाई दम्माणी के पुत्र का विवाह एक बडे धनी घराने की कन्या के साथ हुआ। उस घराने के लोग समाज सुधार के मामलो मे मोहता जी के समान प्रगतिशील नही हैं। फिर भी विवाह मे उनसे दहेज आदि कुछ भी लिया नही गया। सम्बन्ध करने के समय ही यह ठहरा लिया गया था कि दहेज आदि का किसी भी प्रकार का लेन देन नही किया जायगा। अन्य बहुत से रीति रिवाज भी इस विवाह मे नही किए गए।

* * *

श्री मोहता आयुर्वेद विद्यालय को सरकार से स्वीकृत कराने और कुछ सहायता प्राप्त करने का प्रसंग उपस्थित हुआ। अगरेजी के एक बडे विद्वान् सज्जन से प्रार्थना पत्र तैयार करवाया गया। कुछ और सज्जनो को भी दिखाने के बाद उसे टाइप करवाकर और अपने हस्ताक्षर करके मैं मोहता जी के पास उसको लेगया। उन्होंने उसको अपने पास रख लिया और दूसरे दिन लेजाने को कहा। मैं दूसरे दिन गया तो सशोधन की हुई वह प्रति आपने मुझे दी। मैंने उसको फिर दुबारा टाइप करवाया और तत्कालीन शिक्षा सचालक श्री देसाई के पास ले गया। श्री देसाई भारत प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर मनुभाई मेहता के बहनोई थे। उन्होने उस आवेदन पत्र को पढा तो उसकी भाषा और भाव देखकर मुझसे पूछ ही लिया कि वह किसका लिखा हुआ है। कहने को तो मैंने उन अंग्रेजीदा विद्वान् का नाम ले दिया, परन्तु मैं मन ही मन मोहता जी के अंग्रेजी भापा के ज्ञान की गहराई पर मुग्ध हो गया।

इसी प्रकार मोहता जी हिन्दी और सस्कृत के भी मर्मज्ञ हैं। उनकी विद्वत्ता और पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन का अभ्यास उनके ग्रन्थो से पाकर बड़े-बडे सस्कृतज्ञ भी चकित रह जाते है। उनकी हिन्दी की शैली ऐसी नपी तुली है, जैसे कि एक-एक शब्द नाप-तोल कर रखा गया हो। मोहता जी को बहुत समीप से न जानने वाले बडे आश्चर्य के साथ यह पूछते देखे जाते हैं कि आपने सस्कृत और हिन्दी की शिक्षा कब और कहाँ प्राप्त की? क्योकि कोई यह नही जानता कि आपने कभी किसी सस्था में अथवा किसी गुरु से इन को सीखा हो। आपके कमरे मे हिन्दी, सस्कृत, अ ग्रेजी के बडे-बडे कोषो का सग्रह और अपने लेखन प्रसग मे उनका अध्ययन व उपयोग करते देखकर मैं भी कई बार चकित रह गया। आपके इस अगाध ज्ञान के देखते हुए मुझसे एक दिन रहा नही गया और मैं पूछ ही तो बैठा कि आपने विद्यालय मे किस कक्षा तक अध्ययन किया है? मोहता जी ने सहज भाव से उत्तर दिया कि आठवी कक्षा तक। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा और मैं सोचने लगा कि बड़े-बड़े

व्याकरण और संस्कृत के ग्रन्थ रट लेने वाले भी आपका पार नही पा सकते। कोरे अध्ययन और चिन्तन व मनन मे यही तो अन्तर है।

*　　　　*　　　　*

प्यासे को पानी पिलाना बहुत बडा धर्म माना गया है इसी भावना के कारण शहरो मे सेठ साहूकारो की ओर से प्याऊ लगाई जाती और कुएँ भी बनवाये जाते हैं। अनेक स्थानो पर उन्होने तालाब आदि भी बनवाए है। लेकिन, जिस स्थान पर कोई यश व कीर्ति प्राप्त नही होती वहाँ ऐसा धर्म करने वाले प्राय नही मिलते। बीकानेर, जैसलमेर और जोधपुर की जहाँ सीमाएँ मिलती हैं वहाँ के वियावान रेगिस्तान मे पानी का प्रबन्ध करने का श्रेय मोहता जी को प्राप्त है। मुझे एक बार पता चला कि वहाँ लगाए हुए कुछ प्याऊ बन्द हो गए। यह सोचकर कि वहाँ के लोगो पर क्या बीतती होगी मैंने मोहता जी से वहाँ जाने और प्याउओ की व्यवस्था ठीक कराने का निवेदन किया। मोहता जी ने मुझसे कहा कि तुम वहाँ कैसे पहुँचोगे ? वहाँ तीस-तीस पैंतीस-पैंतीस मील तक कोई आबादी नही है। रास्ता बताने वाला भी कोई न मिलेगा और वहाँ अधिकतर कोई आदमी भी दीख नही पडता। उन्होने रूडीचा रामदेव जी की मोटर यात्रा का स्मरण कराते हुए कहा कि रास्ते के कष्टो का तुम अनुमान तक नही लगा सकते। तुम कैसे वहाँ जाओगे ? मैंने कहा कि घोडों पर। आपने फिर कहा कि उस निर्जन और निर्जल प्रदेश मे तुम और तुम्हारी सवारी दोनो ऐसे लापता हो सकते हैं कि कही ढूंढने पर भी पता न चलेगा। उन प्याउओ के लिए भी ऊँटो के ऊपर लादकर पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस मील की दूरी से पानी लाया जाता है और उनको चालू रखने मे सदा झझट ही बना रहता है। गाँवो के पशु भी पन्द्रह-पन्द्रह मील दूर जाकर चार-पाँच दिन मे एक बार मीठा पानी पीते हैं। पडित जी आप यहाँ शहर मे रहते हैं। आपको उन गाँवो की कोई कल्पना नही हैं। यहाँ महाराजा गगासिह जी और कलकत्ता व बम्बई आदि के सेठ साहूकारो की कृपा से आपको यथेच्छ पानी मिल जाता है। वहाँ तो कुछ गाँवो मे यह हालत हैं कि ठाकुर साहब के यहाँ तीज-त्योहार पर सूची होकर आने की मना दी करने पर ही लोग पानी से गुदा प्रक्षालन करते हैं। उन गाँवो मे आप कैसे यात्रा कर सकेंगे ? मैं मोहता जी की बातें सुनता गया और देहाती भाइयो के असीम कष्ट-क्लेश मे आपके सेवा कार्य का महत्व मेरे हृदय पर और भी अधिक अकित होता गया।

मोहता जी को देहाती किसान की तरह खेती से भी बडा प्रेम है। दुर्भिक्ष के दिनो मे आप किसानों की जो सेवा करते हैं, उससे भी अधिक बडी सेवा तब की जाती है जब वे वर्षा होने का समाचार पाकर बडी आशा और उत्साह से अपने घरो को लौटते हैं। तब उनको वस्त्र, खेती के लिए बीज और अन्य साधन जुटाने के लिए नगद सहायता दी जाती है और आपके यहाँ एक बडा सा मेला लग जाता है।

कोलायत जी के पास बीकानेर से ४० मील की दूरी पर आपकी अपनी ३ वर्ग मील की भूमि है, जहाँ कि आपने गोपालपुरा नाम से एक रेगिस्तानी गाँव बसाया है। वहाँ आपकी अपनी खेती के अलावा अन्य किसान भी अपनी खेती करते हैं। उन सब के लिए गुड, तेल, तम्बाकू आदि आवश्यक सामान की व्यवस्था आपकी ओर से की जाती है। किंवदन्ती यह है कि कभी वह आपके पूर्वजो की बनाई हुई गोचर भूमि थी। वह किंवदन्ती सत्य हो या न हो, किन्तु यह सत्य है कि आपने लाखो की लागत से बसाया गया वह गोपालपुरा गाँव अपनी लहलहाती खेती और वह सारी जमीन बीकानेर की पिंजरापोल गऊशाला को अर्पित कर दी है। वहाँ प्राय हर वर्ष मोहता जी पकी खेती देखने और किसानो के साथ कुछ समय बिताने जाया करते थे।

एक बार एक कुआँ बनवाने का प्रसग उपस्थित हुआ। जनश्रुति यह थी कि वहाँ पूर्वजो के बनाये हुए कुछ कुएँ बालू मे दबे पडे हैं। उनकी तलाश करवाई गई। भेडो के रेवड बैठाए गए। एक जगह पर एक प्राचीन कुआँ मिला। उसको नए ढग से बनाने के लिए ४० हजार रुपया खर्च किया गया। इस प्रदेश मे ३००-४००

फुट गहराई मे पानी की स्थायी धारा हाथ लगती है और कुआँ वनाने वाले चलुए (कूप निर्माण विशेषज्ञ) ऊपर से कुआँ वनाना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे नीचे की मिट्टी खोदते हुए वर्त्तुलाकार चिनाई नीचे की ओर करते चले जाते है। यहाँ अन्य स्थानो की तरह नीचे से कुए का निर्माण करना सम्भव नही है। तीन-चार सौ फीट की गहराई तक की एक साथ खुदाई करना आसान नही है। उस खुदाई के वाद भी मिट्टी के खिसकने और नीचे काम करने वालो के उसमे धँस जाने का खतरा वना रहता है। इस कारण यहाँ नीचे की ओर से नही, किन्तु ऊपर से नीचे की ओर चिनाई की जाती है। इतनी भारी मेहनत और हजारो रुपया खर्च करने के वाद भी यदि कही खारी पानी निकल आया तो सव किया कराया वेकार हो जाता है। इस कुएँ का भी यही हाल हुआ परन्तु मोहता जी निराश नही हुए। आपने १० हजार की लागत से एक सुन्दर वावडी और ५ हजार की लागत से एक वडा कुंड वनवा दिया। उनमे सचित वर्षा के पानी से लोग अपना और अपने पशुओ का काम चलाते हैं।

जो लोग कभी इन गाँवो मे नही गए वे वर्षा के पानी को जमा करने के लिए वनाए गए इन कुंडो और वावडियो का महत्व नही समझ सकते। मुझे एक वार जैतपुर गाँव मे जाने का अवसर मिला। वह रेलवे से १० मील पर है। वहाँ मैंने देखा कि सडक के और खेतो के किनारे-किनारे सैकडो कच्चे कुंड वने हुए थे और उनकी सुरक्षा के लिए उन पर लकडी के किवाड लगे हुए थे। गाँव वालो और उनके पशुओ का जीवन उन पर ही निर्भर था। ऐसे प्रदेश मे मोहता जो ने पानी की जो व्यवस्था की है वह कितना वडा लोकोपकारी कार्य है।

* * *

१९४८ मे स्वराज्य प्राप्ति के ठीक वाद सेठ साहव ने "समय की माँग" नाम से जो पुस्तक लिखी, उसमे आपने पडित जवाहरलाल नेहरू जी को श्रीकृष्ण की चतुर्मुखी क्रान्ति का प्रवर्त्तक वताया है, पढने वालो को वह नेहरू जी की अतिशयोक्ति पूर्ण अनावश्यक श्लाघा सी प्रतीत होती थी। मैंने एक दिन लोगो की यह आशका मोहता जी पर प्रगट कर दी और कह दिया कि नेहरू जी की यह श्लाघा कुछ ठीक नही जँचती।

आपने अपने सहज सरल स्वभाव से इतना ही कहा कि तुम्हारी हमारी जिन्दगी वनी रही तो हम प्रत्यक्ष इसकी सचाई को देख लेंगे।

आज नौ-दस वर्ष वाद मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि आप की दूरदर्शिता कितनी सत्य और लोगो की आशका कितनी निर्मूल सिद्ध हुई।

दिल्ली मे मैं मोहता जी के अनुज रा० व० सेठ शिवरतन जी के पास वैठा हुआ था। उस समय केन्द्रीय मन्त्रालय के एक वहुत वडे अधिकारी आशा भरी दृष्टि से उनके साथ वातचीत कर रहे थे और कह रहे थे कि जिस प्रकार आपने दिल्ली मे एक करोड के कीमत की लगभग की सम्पत्ति का विनिमय कर लिया है, उसी प्रकार क्वेटा की मेरी दो कोठियो के वदले मे यदि आप मुझे यहाँ एक ही कोठी दिलवादें तो मैं जीवन भर आपका ऋणी रहूँगा। दूसरे दिन मैंने उनके साथ जाकर वदले मे लिए हुए मकान, दुकान, वाग वगीचे, कोठिया और कुछ कारखाने देखे और वम्वई मे वनाए गए श्री गोवरधन दास मार्केट की चर्चा भी उनके साथ हुई। मैंने आनन्दविभोर होकर वड़े विस्मय से उनसे पूछा कि वर्तमान कठोर प्रतिवन्धो मे आपने यह सारी सम्पत्ति कैसे प्राप्त की ? उन्होने एकाएक उत्तर दिया कि भाईजी की लोकोपकारी भावना, सेवा और साधना का ही यह पुण्य प्रताप है। अधिक पूछना हो तो वीकानेर जाकर भाईजी से पूछ लेना। मैंने वीकानेर आकर मोहता जी से भी उस सम्वन्ध मे चर्चा की और उसका कारण पूछा तो उन्होने गीता का यह श्लोक सुना दिया कि —

अधिष्ठानं तथाकर्ता करणंच पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा देवंच पात्र पंञ्चमम्॥
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्व कर्मणाम्।

गीता मे आपकी अपार श्रद्धा देखकर मैं अवाक् रह गया।

मेरा मोहता जी के साथ ऐसा निकट सान्निध्य है कि मैं व्यास जी की लेखन-शैली के अभाव मे गणेश जी के समान कितने ही दिनो तक ऐसे सस्मरण निरन्तर सुना सकता हूँ। प्रतिदिन कोई न कोई ऐसी वात, घटना अथवा प्रसग आँखो के सामने आता ही रहता है, लेकिन अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए मैं इतना ही पर्याप्त समझता हूँ।

शकर दत्त वैद्य

(मोहता आयुर्वेद संस्थान के अध्यक्ष व सचालक। आपको लगभग २८ वर्ष तक मोहता जी के अत्यन्त निकट सम्पर्क मे रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आप उनके चिकित्सक ही नहीं किन्तु विश्वसनीय साथियों मे से भी एक हैं।)

०

४६

बसंत के रसिया गोपाल जी

अपने गोपाल जी के विपय मे सस्मरण लिखने की उमग को रोक सकना मेरे लिए कठिन है। मैंने इसमे गोपाल जी के आत्म-ज्ञान, उनकी समाज सेवा, दानशीलता, व्यवहार कुशलता, कुशाग्र बुद्धि, गभीर सूक्ष्म विचार, साहित्य सृजन आदि का गुणगान नही किया है; किन्तु उनके जीवन का वह पहलू लिखा है जिसको वडे-वडे विचारक और विद्वान लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। उससे दूसरे लोग अच्छी तरह परिचित नही है। उनके उपरोक्त गुणो के विषय मे तो मेरी समझ मे करीब-करीव सभी विद्वान लेखक इस अभिनन्दन ग्रन्थ मे लिखेंगे ही, कारण उनके ये गुण तो सर्व विदित हैं और गीता जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक पर इतना विद्वतापूर्ण भाष्य लिखकर उन्होंने केवल अपने समाज मे ही नही बल्कि सारे भारतीय विज्ञ पुरुषो मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

सवत् १९७१ के सर्दी के दिनो की वात है। बीकानेर मे हमारे श्रद्धाभाजन नेता गोपाल जी मोहता ने (यद्यपि उनका पूरा नाम रामगोपाल जी है परन्तु आम लोगो को 'गोपाल जी' का प्यारा नाम ही अच्छा लगता था।) होली के वसतोत्सव मे वरती जानेवाली असभ्यता और अश्लीलता को हटा कर सभ्यतापूर्वक इस त्योहार को उत्साह और उमग के साथ राग-रग युक्त मनाने का निश्चय किया। मैं उस समय अनुमानत २० वर्ष का था। मेरे पिता जी स्वर्गीय श्री रामकृष्ण जी करनाणी और उनके मित्र स्वर्गीय श्री शिवकृष्ण जी मीमाणी दोनो के साथ आपका घनिष्ठ प्रेम था। श्री मरुनायक जी के मन्दिर मे जो भजन आदि होते थे उनमे तीनो सम्मिलित होते थे। मेरे पिताजी और शिवकृष्ण जी मरुनायक जी के मन्दिर के चौधरी (प्रबन्धक) थे। उस मन्दिर के आगे के विस्तृत चौक मे होली के अठवाडे (होलिकाष्टक) के दिनो मे "डाडियो का खेल" प्राचीन काल से वडे समारोह से हुआ करता था; परन्तु कई वर्षो से वह शिथिल पड गया था। उसका जीर्णोद्धार करने का आप तीनो ने आयोजन किया। हम नवयुवको के दिलो मे इस आयोजन से उत्साह और उमग की वाढ आ गई।

डाडियो का खेल—इसमे श्री मोहताजी, उनके परिवार व सगे सम्बन्धी तथा सभी जातियो के आबाल वृद्ध विना किसी भेदभाव के एक साथ खेल रहे हैं

गीता मे आपकी अपार श्रद्धा देखकर मैं अवाक् रह गया।

मेरा मोहता जी के साथ ऐसा निकट सान्निध्य है कि मैं व्यास जी की लेखन-शैली के अभाव मे गणेश जी के समान कितने ही दिनो तक ऐसे सस्मरण निरन्तर सुना सकता हूँ। प्रतिदिन कोई न कोई ऐसी बात, घटना अथवा प्रसग आँखो के सामने आता ही रहता है, लेकिन अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए मैं इतना ही पर्याप्त समझता हूँ।

शकर दत्त वैद्य

(मोहता आयुर्वेद सस्थान के अध्यक्ष व संचालक। आपको लगभग २८ वर्ष तक मोहता जी के अत्यन्त निकट सम्पर्क मे रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आप उनके चिकित्सक ही नहीं किन्तु विश्वसनीय साथियों मे से भी एक हैं।)

०

४९

बसंत के रसिया गोपाल जी

अपने गोपाल जी के विषय मे सस्मरण लिखने की उमग को रोक सकना मेरे लिए कठिन है। मैंने इसमे गोपाल जी के आत्म-ज्ञान, उनकी समाज सेवा, दानशीलता, व्यवहार कुशलता, कुशाग्र बुद्धि, गभीर सूक्ष्म विचार, साहित्य सृजन आदि का गुणगान नही किया है, किन्तु उनके जीवन का वह पहलू लिखा है जिसको बडे-बडे विचारक और विद्वान लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। उससे दूसरे लोग अच्छी तरह परिचित नही है। उनके उपरोक्त गुणो के विषय मे तो मेरी समझ मे करीब-करीब सभी विद्वान लेखक इस अभिनन्दन ग्रन्थ मे लिखेंगे ही, कारण उनके ये गुण तो सर्व विदित हैं और गीता जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक पर इतना विद्वतापूर्ण भाष्य लिखकर उन्होंने केवल अपने समाज मे ही नही बल्कि सारे भारतीय विज्ञ पुरुषो मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

सवत् १९७१ के सर्दी के दिनो की बात है। बीकानेर मे हमारे श्रद्धाभाजन नेता गोपाल जी मोहता ने (यद्यपि उनका पूरा नाम रामगोपाल जी है परन्तु आम लोगो को 'गोपाल जी' का प्यारा नाम ही अच्छा लगता था।) होली के वसतोत्सव मे बरती जानेवाली असभ्यता और अश्लीलता को हटा कर सभ्यतापूर्वक इस त्योहार को उत्साह और उमग के साथ राग-रग युक्त मनाने का निश्चय किया। मैं उस समय अनुमानत २० वर्ष का था। मेरे पिता जी स्वर्गीय श्री रामकृष्ण जी करनाणी और उनके मित्र स्वर्गीय श्री शिवकृष्ण जी मीमाणी दोनो के साथ आपका घनिष्ठ प्रेम था। श्री मरुनायक जी के मन्दिर मे जो भजन आदि होते थे उनमे तीनो सम्मिलित होते थे। मेरे पिताजी और शिवकृष्ण जी मरुनायक जी के मन्दिर के चौधरी (प्रबन्धक) थे। उस मन्दिर के आगे के विस्तृत चौक मे होली के अठवाडे (होलिकाष्टक) के दिनो मे "डाडियो का खेल" प्राचीन काल से बडे समारोह से हुआ करता था; परन्तु कई वर्षों से वह शिथिल पड गया था। उसका जीर्णोद्धार करने का आप तीनो ने आयोजन किया। हम नवयुवको के दिलो मे इस आयोजन से उत्साह और उमग की बाढ आ गई।
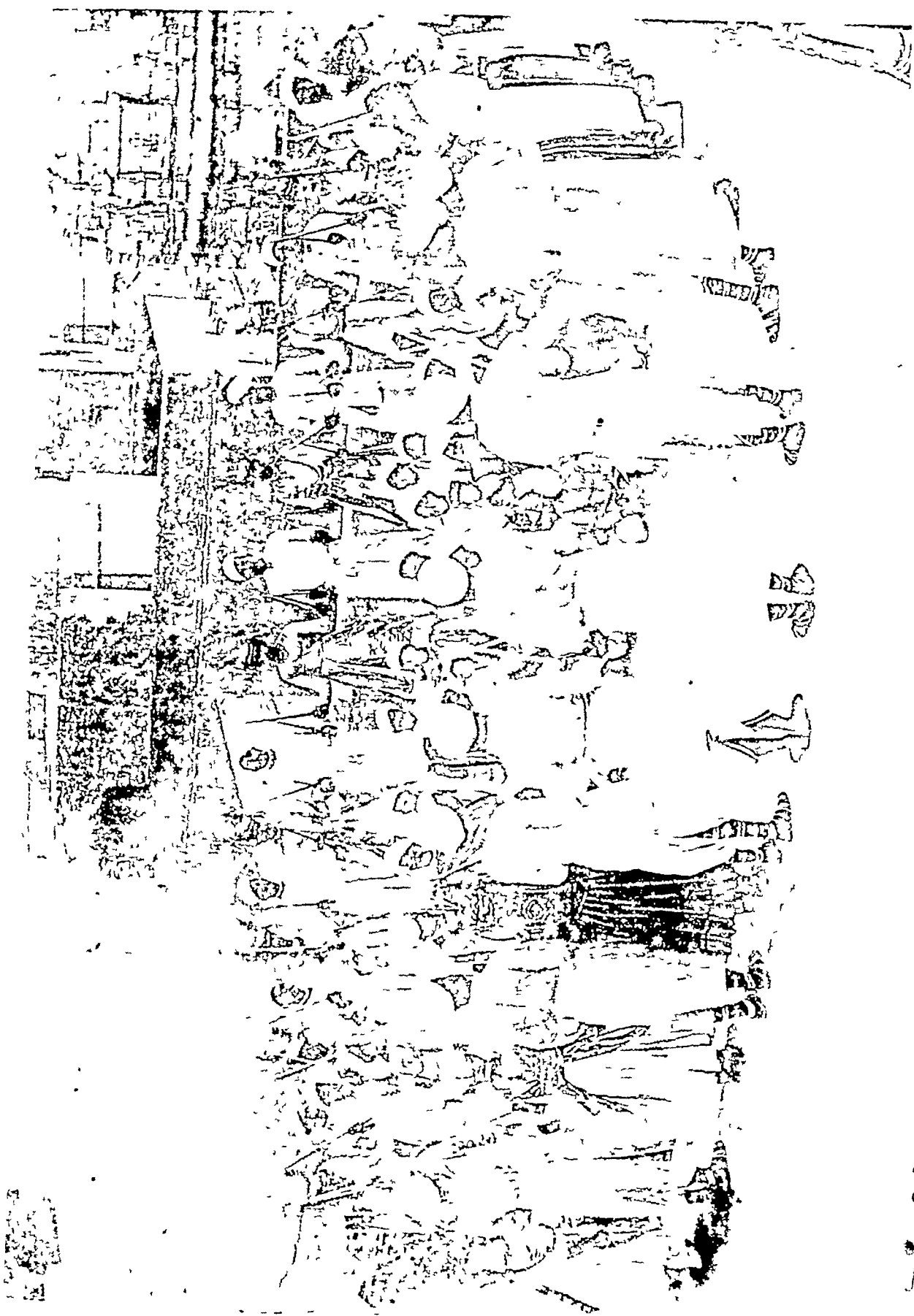
डाडियो का खेल—इसमे श्री मोहताजी, उनके परिवार व सगे सम्बन्धी तथा सभी जातियो के आबाल वृद्ध बिना किसी भेदभाव के एक साथ खेल रहे हैं

डाडियो के खेल मे श्री मोहताजी सम्वत् २०१४ ।

इस खेल मे दो जोड़ी नगाडे, एक बड़ा ढोल, दो जोडी झाझ बीच मे रख कर बजाये जाते थे और उनके इर्द-गिर्द वृहत् कुंडलाकार वृत्त मे सैंकड़ो मनुष्य दोनो हाथो मे रगे लकडी के "डाडियो" लिए हुए ढोल नगाडो की ताल पर एक दूसरे से डाँडिये लडाते हुए और ताल पर ही पैर उठाते तथा हाथ घुमाते हुए चक्कर काटते थे। साथ ही गायन भी गाये जाते थे। नगाडो की ताल आरम्भ मे १६ मात्रा की बहुत विलवित होती थी जो शनै शनै. तेज करते हुए अन्त मे अत्यन्त चलित दो मात्रा तक पहुँच जाती थी। गायन विलवित ताल के अलग होते थे और बढती हुई तेज तालो के अलग-अलग होते थे। ये गायन २५, ३० मनुष्यो की मडली गाया करती थी। इस खेल के लिये नगाडे और ढोल बजाने वालो, डाडिया खेलने वालो और गाने वालो को विशेष रूप से अभ्यास करवा कर तैयार करने की आवश्यकता थी। इस खेल मे संगीत के तीनो अग—गाना, बजाना और नाचना एक साथ होता था। इसलिये इनका अभ्यास होली के तीन महीने पहले ही आरम्भ कर दिया गया। इस खेल मे भाग लेने वाले अर्थात् गाने-बजाने और नृत्य करने वाले सब की एक ही तरह की रँग-बिरगी पोशाक बिजली की बत्तियो के प्रकाश मे बहुत सुहावनी लगती थी। कई नृत्य करने वाले पैरो मे घूँघरू बाँध कर नाचते थे। हमारे गोपाल जी सगीत के इन तीनो अगो के मर्मज्ञ थे। परन्तु किसी ताल के बाजे बजाना, उस पर नृत्य करते हुए खेलना और गायन गाना, साधारण गाने की तरह सहज नही था। विशेष कर उस विलवित ताल पर गाये जाने वाले लोक गीत सागोपाँग गा सकना बहुत ही कठिन था। इन गीतो के जानकार केवल दो तीन वृद्ध मनुष्य शेष रह गये थे। उनसे गोपाल जी ने स्वय ये गीत सीखने का अभ्यास किया। ये गीत राग-रागिनियो के गायन की तरह एक ही व्यक्ति नही गा सकता था। इनकी लय बहुत लम्बी होती थी और ऊँचे स्वर से गाये जाते थे क्योकि खुले मैदान मे हजारो स्त्री-पुरुषो के जमघट के बीच ढोल और नगाडो के बाजो के साथ नीचे स्वरो का गायन सुनाई नही दे सकता था, इसलिये कम से कम २०, २५ मनुष्य मिल कर समवेत स्वर से (Chorus के रूप मे) ये गीत गाते थे और सब को ताल और स्वर के साथ जुडा रहना अनिवार्य था। अगर इन लोगो मे से कोई एक भी स्वर और ताल से अलग हो जाता तो गाना विगड जाता और रग फीका हो जाता। गायन का लय घूम-धाम कर ताल के **सम** पर आवे तभी आनन्द आता है इसलिये ताल के **सम** पर ध्यान रखने की बडी आवश्यकता रहती है। हमारे गोपाल जी की स्मरण शक्ति और धारणा शक्ति अद्भुत थी और वे जो काम करने का निश्चय कर लेते उसको पूरी तरह सागोपाग सिद्ध करने के लिए कुछ भी उठा नही रखते थे, अत इन्होने स्वय इन गीतो का अभ्यास किया और साथ ही साथ सारी गायन मण्डली को भी अभ्यास कराया। इन गायनो के छन्दो व कविता की गठन (बदिश) पुराने ढग की बहुत मनोहर और भावपूर्ण थी परन्तु साधारण तया लोग इनके रहस्य को नही समझते थे। गोपाल जी की मनन शक्ति बहुत तेज थी इसलिये वे इन कविताओ के अर्थालंकारो का मर्म और रहस्य खूब समझते थे। पक्के (शास्त्रीय) सगीत मे राग-रागिनी पाच, छ और सात स्वरो की होती हैं जिनको क्रमश औडव, षाडव और सम्पूर्ण कहा जाता है परन्तु इन गीतो मे से एक गीत मे तो केवल चार ही स्वर लगते हैं और वह गीत बहुत ही मीठा लगता है। इन गीतो की कविता और भाव बहुत उच्च कोटि के हैं। एक 'धोवण' का गीत है जिसमे जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह और एक धोवण (धोबिन) के सवाद की कल्पना की गई है। महाराज धोवण की परीक्षा करने के लिये उसके पास जाकर पानी पिलाने को कहते हैं। धोवण उनके मन का भाव ताड़ जाती है और कहती है कि मेरा पानी पीने वाला जीवित नही रह सकता। महाराजा पूछते हैं कि तेरा पति कैसे जीता है तो धोवण इसका उत्तर देती है कि मेरा पति बहुत चतुर सुजान है। वह वासुकी नाग का जहर उतार सकता है। फिर महाराजा उसको अपने कपड़े धोने को कहते हैं तब धोवण कहती है कि और लोगो के कपड़े तो मैं कभी-कभी धोती हूँ पर आपके कपडे तो मैं दीपक के प्रकाश मैं भी धो दूंगी। इस पर महाराजा प्रसन्न होकर उसको इनाम मे अजमेर, दिल्ली और आगरे के शहरों

की धुलाई का काम लेने को कहते हैं पर धोबण कहती है कि उन शहरो की कमाई करने को कौन जावे। महाराज कहते हैं कि तेरे स्वसुरजी अजमेर और तेरे पति दिल्ली, आगरा जा सकते हैं। तब धोबण उत्तर देती हैं कि मेरे स्वसुर जी की जावे बला—अर्थात् वे नही जा सकते और मेरे पति को भेजने से घर का काम नही चलता। धोबण परीक्षा मे पूर्णाको से उत्तीर्ण हुई।

एक तम्बाकू का गीत है जिसमे वणजारा तम्वाकू के बोरे लाता है। एक स्त्री के पति को तम्वाकू पीने का व्यसन है। वह बणजारे से तम्बाकू का मूल्य पूछती है। वणजारा एक माशे के २५) रुपये और पूरे तोले के ३००) मूल्य करता है, जिस पर स्त्री अपने पति को कहती है कि तम्बाकू की बहुत दुर्गन्ध आती है। आप कम से कम १५ दिन के लिये तो इसको पीना छोड दो। वह नही मानता तब स्त्री कहती है कि आपका हुक्का और चिलम फैंक दूंगी। इस पर पति कहता है कि मैं अपना हुक्का रतन से और चिलम मोती मूंगे से जडाऊगा। तब पत्नी कहती है कि मुझको मेरे पीहर पहुँचा दो और आप लौटते हुए पूगलगढ की पद्मिनी को व्याह लाना। इस तरह अनेक गीत भावपूर्ण हैं। अधिकतर गीत पति-पत्नी के प्रेम और विरह के हैं। कई गीतो मे कुछ अश्लीलता थी उनको गोपाल जी ने वदल कर उनमे समाज सुधार और नीति की कविता भर दी। उनकी तर्जें वही रखी क्योकि तर्जें बहुत ही मधुर थी।

डाडियो मे गाये जाने वाले गीत वीकानेर मे बडे चाव के साथ आम तौर से अनेक अवसरो पर गाये जाते हैं। विशेष कर विवाह आदि उत्सवो और त्यौहारो पर स्त्रियाँ बहुधा गाया करती हैं, परन्तु वे स्वर और ताल के लय पर सुव्यवस्थित रूप से डाडियो के खेल मे ही गाये जाते हैं। इस तरह हमारे गोपाल जी ने डाडियो के सगीतमय खेल का जीर्णोद्धार करके उसको सुव्यवस्थित किया। जिस समय यह खेल होता था उस समय गाने वजाने और नाचने वाले तथा हजारो की सख्या मे एकत्रित दर्शक स्त्री-पुरुप, बालक-वृद्ध इतने आनन्द मग्न हो जाते थे कि अपना सव दु ख सुख विसार कर एक गोपाल जी की तरफ टकटकी लगाये रहते थे। सव की उनके साथ लौ लगी रहती थी। सव कोई उनके ही अधिकार मे रहते थे मानो सब एक ही सूत्र मे पिरोये हुए हैं। गीता के ७ अध्याय का ७वा श्लोक "मयि सर्वमिदम् प्रोत सूत्रे मणि गणा इव" प्रत्यक्ष सामने खडा दीखता था। सब लोग उस एकता के भाव मे इतने मुग्ध हो जाते थे कि किसी को कोई दूसरी बात याद ही नही आती थी। कोई चूं तक नही करता था। एक प्रकार से सब समाधिस्थ हो जाते थे। सारे भेद भाव मिट कर सर्वत्र समता का साम्राज्य हो जाता था। हर कोई अपने आप को काबू मे रखता था। यदि कोई व्यक्ति भूल से कभी कुछ अल्हड पन कर देता तो उसका पडौसी उसको रोक देता था। उन आठ दिनो मे रात्रि के चार पाच घटो के लिये तो लोग आपस के रागद्वेष भूल जाते थे और इसीलिये पुलिस के जाने की आवश्यकता नही रहती थी। श्री मद्भागवत मे वर्णित रास मडल का दृश्य नजरो के सामने दीखता था। भगवान कृष्ण ने वृजवासियो को अपने प्रेम की वाँसुरी वजा कर आकर्षित किया और सब तन मन की सुधि भूल गये वह कथा असभव नही प्रतीत होती थी।

श्री गोपाल जी ने जनता जनार्दन की और जो सेवायें की उनसे यह सेवा भी कुछ कम महत्व की नही है। इस सेवा से अमीर व गरीव, विद्वान व मूर्ख, हाकिम व रैयत, वाल व वृद्ध और स्त्री-पुरुष सब को एक सा अमूल्य आनन्द प्राप्त होता था।

ससार परिवर्तनशील है। गोपाल जी वहुत वृद्ध हो गये अत वीकानेर मे यह खेल अव फिर कमजोर हो गया। परन्तु कलकत्ते और वम्वई मे वीकानेर प्रवासी इसे वडे उत्साह के साथ अव भी खेलते हैं। हाँ, डाडियो के वे गीत तो गोपाल जी के साथ ही रहेंगे।

हमारे गोपाल जी श्रीकृष्ण भगवान के अनन्य भक्त हैं। उनके गीता मे वताये हुए मार्ग पर वे चलने

का प्रयत्न करते हैं। इसीलिये वे ससार को दु ख रूप या वन्धनरूप होने की झूठी मान्यता से गृहस्थ के व्यवहार त्याग कर निवृत्तिपरक सूखे आत्मज्ञान के अभ्यास मे अथवा जप, तप, पूजा, पाठ आदि मे नीरस जीवन विताना उचित नही समझते, किन्तु ससार को भगवान कृष्ण का रूप समझकर इस नाटक के अभिनय मे आमोद प्रमोद के साथ भाग लेते हुए तथा ससार को आनन्दमय अनुभव करते हुए, अनासक्ति पूर्वक उसका रस लेते हुए जीवन यात्रा करना ठीक समझते हैं। गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक ६४-६५ के अनुसार राग-द्वेष रहित होकर सासारिक विषयो मे रमते हुए प्रसन्न रहने से ही मनुष्य की बुद्धि समता रूप परमात्मा मे स्थित रह सकती है। उनका यही निश्चय है।

जिस मनोयोग से एक कुशल व्यापारी अपने व्यापार की सफलता के लिए उद्योग करता है उसी तरह एक सफल व्यापारी के नाते वे अपनी आत्म-ज्ञान रूपी दुकान खोलकर उसके व्यापार की बरावर सफलता पूर्वक वृद्धि कर रहे हैं।

उनकी कुशाग्र बुद्धि और गम्भीर सूक्ष्म विचार का परिचायक एक ही उदाहरण काफी होगा। भारत और पाकिस्तान के विभाजन होने के बहुत दिनो पूर्व ही अपने घर वालों को एव नाते रिश्ते वालो को जो पाकिस्तान (कराची, लाहौर वगैरह) मे व्यापार वगैरह कर रहे थे, चेतावनी दे दी थी कि विभाजन के पश्चात जान-माल की सुरक्षा होनी मुश्किल हो जायेगी। इस तरह से इतने विशाल भारतवर्ष मे इतने वडे नेताओ मे से केवल एक-दो अन्य नेता ही इस भविष्य मे आने वाले सकट की ओर सकेत कर सके थे। विभाजन के वाद काफी सम्पत्ति पाकिस्तान मे ही रह गई फिर भी उनको कभी उदास-चित्त नही देखा गया।

ब्रजरतन करनाणी

(आप कलकत्ता की श्री आसाराम लालचन्द फर्म के मालिक और प्रसिद्ध समाज सुधारक हैं। आप के पिता जी मोहता जी के वचपन के साथी थे और आप छोटी आयु से ही मोहता जी पर वड़ी श्रद्धा रखते हैं।)

●

५०

उदार चेता मोहता जी

इस संसार मे असंख्य ऐसे अभागे प्राणी जन्म लेते हैं जो किसी प्रकार का भी मानवोचित कार्य न कर अजागलस्तनवत् व्यर्थ ही जीवन व्यतीत कर, जल के वुदवुदे के समान विलीन हो जाते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी महान् व्यक्ति प्रकट होते हैं जो अपने अनुपम एव अलौकिक कार्यो द्वारा मानव जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने मे सहायक होकर अपने पीछे ससार यात्रा-मार्ग की ककरीली चट्टानो पर ऐसे अमिट चिह्न अकित कर जाते हैं, जो जीवन के उच्च शिखर पर पहुचने की अभिलाषा वाले अन्य यात्रियो को पथ-प्रदर्शन करते हुए उन्हें अपने चरम लक्ष को प्राप्त करने मे साहस एव प्रेरणा प्रदान करते हैं। ऐसे ही व्यक्तियो का जन्म सफल है, नही तो इस परिवर्तनशील संसार मे आवागमन तो होता ही रहता है। स्वनाम-धन्य श्री सेठ रामगोपाल जी मोहता इसी उच्च श्रेणी के महापुरुषो मे से हैं।

विद्वान् इन भाषणो में भाग लिया करते थे। मोहता जी के गीता पर अधिकार सम्पन्न ज्ञान पर सब चकित रह जाते थे।

सन् १९४२ मे सुजानगढ मे बीकानेर राज्य साहित्य सम्मेलन का चौथा अधिवेशन बडी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ था। श्री मोहताजी उसके अध्यक्ष थे। मुख्य अतिथि के रूप मे इस सम्मेलन मे आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा श्री जैनेन्द्र जी ने भाग लिया था। मनोनीत अध्यक्ष के नाम का प्रस्ताव रखा गया और राजस्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान्, दार्शनिक श्री प० केशरीप्रसाद जी शास्त्री ने बडी रोचक भाषा मे सत्यवादिता के साथ प्रस्ताव का समर्थन किया। उनके शब्द ये थे कि "हर्ष और विषाद का द्वन्द्व आज मेरे अन्तराल मे हो रहा है, क्योकि आज के सम्मेलन की अध्यक्षता मेरे परम मित्र व परम शत्रु करने जा रहे हैं। परम मित्र इसलिए कि साहित्य और समाज को लेकर अनेक बार हुई चर्चाओ मे मैंने सेठजी को न कहने वाले कठोर शब्द कहे, पर धीर गम्भीर सेठ साहब (मोहता जी) ने हँस कर उनका उत्तर इन शब्दो मे दिया कि 'आप यह कहने के अधिकारी हो', जब कि मुझ जैसे निर्धन ब्राह्मण से ऐसा वे क्यो सुने ? यह सब सेठ जी की उदात्त भावना, ऊँचे विचार और क्षमता का प्रतीक है। इन्ही अनुपम गुणो के कारण वे मेरे परम मित्र हैं, और परम शत्रु। परम शत्रु इस कारण कि मैं शतप्रतिशत पुरातन परम्पराओ का भक्त हूँ वे और पुरातन परम्परा, आचार-विचार, तथा रीति-रिवाजो के तोडक, खण्डक व उन्मूलक हैं। इन दो विरोधी भावनाओ का टकराना ही हर्ष और विषाद का कारण है, फिर भी मैं अध्यक्षता के लिए सेठ साहब के नाम का हर्ष और विषाद भरे हृदय के साथ समर्थन करता हूँ।"

कहना न होगा कि शास्त्री जी के इस अनूठे और परिचयात्मक समर्थन के वैचित्र्य से उपस्थित जन समुदाय खिलखिलाकर हँस पडा और जन समाज की माँग के कारण स्वय शास्त्री जी का परिचय तत्काल मुझे देना पडा।

* * *

बाजार की बनी मिठाइयो से मोहता जी को सदा ही घृणा रही है, इसका एक उदाहरण मेरे सामने है—कोलायत के मेले पर मोहता जी प्रतिवर्ष जाया करते हैं। जब मोहता औषधालय वहाँ था, तो वे वही ठहरा करते थे। सन् ४२–४३ मे मैं उक्त औषधालय मे प्रधान चिकित्सक था। मेरे बैठने के कक्ष से लगा हुआ कमरा सदैव की भाँति उनके ठहरने के लिए चुना गया था।

एक दिन प्रात उनकी धेवती श्रीमती रतनदेवी दम्मानी ने बाजार की बनी जलेबियाँ मँगवाई। जलेबियाँ बीकानेर के उस हलवाई की दुकान की थी, जो अपनी प्रामाणिकता व विशुद्धता के लिए विख्यात था, किन्तु सेठजी ने तत्काल वे जलेबियाँ फिकवा दी और कहने लगे, "क्या मेरे साथ रहकर तुम मेले के बाजार की चीजो का उपयोग करोगी ? तुम्हारे पास एक से एक अच्छे हलवाई हैं, यदि चाहो तो उसी दुकान के हलवाई को बुलाकर अपनी पाकशाला मे जलेबियाँ निकलवा सकती हो।" इस से स्पष्ट है कि स्वास्थ्य के नियमो का दृढता से पालन करना मोहता जी के गुणो मे से एक है। प्रतिदिन टहलना, हल्का व्यायाम, सादा व सात्विक भोजन, समय पर सोना, मनन और सत्सग, सभी कार्य मोहता जी की दिनचर्या मे नियम से अपेक्षित रहे हैं।

* * *

बात सवत् १९९६ की है—राजस्थान मे भयकर दुष्काल पडा। पेट की ज्वाला को शान्त करने सैकडों हजारो ग्रामीण रोजी की टोह मे नगरो की ओर दौड चले। सेठ जी ने अकाल पीडित अछूतो के लिए बीकानेर मे एक स्थायी बस्ती का निर्माण किया। मोहता धर्मशाला के पिछले खुले मैदान मे प्रतिदिन उन्हें अनाज वितरित किया जाता था और इसी मैदान मे प्रति अमावस्या को उन्हे भरपेट भोजन कराया जाता था। गुड की लपसी

ग्रौर चने की दाल उस दिन का भोजन होता था। लगभग दो ढाई हजार स्त्री-पुरुष-बच्चे पंक्तिवद्ध होकर व्यवस्था के साथ भोजन करते ग्रौर सेठ साहव स्वय खडे-खडे इस व्यवस्था का संचालन करते।

एक दिन सेठ साहव के ग्रनुज रावबहादुर श्री सेठ शिवरतन मोहता सेठ साहव के साथ इन ग्रकाल पीडितो की वस्ती को देखने गये। नग्न ग्रौर ग्रर्धनग्न इन दु खियो के लिए कपडे की व्यवस्था तो मोहता जी ने कर दी थी पर ग्रपनी ग्रादत के मुताविक रहते ये मैले कुचैले ही थे। सेठ शिवरतन जी ने सुझाव दिया कि इनके लिए सावुन की व्यवस्था की जाय। स्त्रियो के लिए 'काजल' 'कूंपला' (नेत्र-ग्रजन काजल का पात्र) वितरित किया जाय ग्रौर ग्रनाज वाँटते समय सफाई की ग्रनिवार्यता प्रत्येक पर लागू हो। तुरन्त सभी उपकरणो की व्यव स्था की गई ग्रौर कहना न होगा कि दूसरे तीसरे दिन से ही वे मैले-कुचेले ग्रामीण साफ-सुथरे ग्रौर सुन्दर दिखाई देने लगे।

* * *

सन् १९४२-४३ मे राजस्थान मे भीषण रूप से विषम ज्वर (मलेरिया) फैला। कोलायत वैसे ही मलेरिया का क्षेत्र है ग्रौर इसके प्रदेशव्यापी रूप ले लेने से वहाँ इसका प्रसार ग्रौर भी उग्र हो गया। दूसरे महासमर के कारण जावा-सुमात्रा द्वीप समूह से ग्राने वाली कुनीन दुष्प्राप्य या दुर्लभ ही हो गई। काले वाजार मे इसकी कीमत साढे चार सौ रुपया पौंड तक पहुँच गई। श्री मोहता जी ने कुछ भागो मे वैद्यो ग्रौर ग्रायुर्वेद कालेज के योग्य छात्रो को मलेरिया-ग्रस्त क्षेत्रो मे चिकित्सार्थ भेजा। कोलायत के मेले पर मोहताजी जव वहाँ ग्राये तो गाँवो की करुण-कहानी सुनकर दहल उठे। ग्रविलम्ब उन्होने वैलगाडियो से मलेरिया पीडित ग्रामीणो को कोलायत वुलवा लिया ग्रौर मेरी मदद के लिए दो ग्रन्य चिकित्सक नियुक्त कर दिये। कुनीन व इसके इजेक्शनो की व्यवस्था भी कर दी ताकि शीघ्र ही वुखार से छुटकारा मिल सके। कुछ ऐसे ग्रशक्त वीमार भी थे, जो घर छोडने मे ग्रसमर्थ थे। उनके लिए तुरन्त मोहता जी ने ग्रपनी मोटर देकर चिकित्सको को उनके घर भेजा। इस प्रकार दीन हीन ग्रछूत जन की सेवा मे इन्होने ग्रपना वहुत कुछ ग्रर्पण किया है।

वैद्य ठाकुर प्रसाद शर्मा
ग्रायुर्वेदाचार्य

(ग्रापने श्री मोहता ट्रस्ट द्वारा संचालित ग्रायुर्वेद विद्यालय में ग्रायुर्वेद की उच्च शिक्षा प्राप्त कर कुछ वर्षों तक उसी संस्था के चिकित्सालय विभागों मे काम किया ग्रौर इस समय श्री स्वामी केवलराम ग्रायुर्वेद सेवा निकेतन मे प्रधान चिकित्सक के पद पर कुशलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। राजस्थान राज्य के इण्डियन मेंडीसन वोर्ड के ग्राप उपाध्यक्ष हैं। ग्राप प्रगतिशील विचारों के युवक विद्वान हैं।)

०

५२

मानव समाज के उपकारी

माहेश्वरी समाज ही नही मारवाडी समाज के मोहता जी एक ग्रमूल्य रत्न हैं। उनकी प्रतिभा का ग्राभास उनकी वहुमुखी सेवाग्रो मे प्रचुरता से मिलता है। समझ मे नही ग्राता कि किन शब्दो मे उनके प्रति

५५

जन सेवा के धनी मोहता जी

श्री रामगोपाल जी मोहता का जीवन समाज सुधारक और समाज-सेवक के रूप मे जब सामने आया, तब वह बडा कठिन काल था। उस समय समाज सुधारक की बात तक करनी कठिन थी। सामाजिक विरोध, जाति-बहिष्कार और शासन की कुदृष्टि का शिकार उसके लिए बनना पडता था। आज समाज सुधार और समाज सेवा प्रतिष्ठा-सूचक हैं। जब कि उस समय यह कार्य अपमान, घृणा और खतरा पैदा करता था। ऐसे काल मे सेवा-व्रत लेना और समाज सुधार मे लगना साधारण कार्य नही था। उस कठिन काल मे आपका कदम कभी रुका नही, पीछे हटने का तो कोई प्रश्न ही नही था ? आपके द्वारा किए गए शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज सुधार, हरिजन उद्धार, महिला उत्थान, आदि अनेक कार्य हमारे सामने हैं। बीकानेर राज्य के अतीत का जब स्मरण करते हैं तो समाज सुधारको और समाज सेवको मे आपका नाम सबसे पहले आता है।

बीकानेर शहर मे सार्वजनिक स्थान "मोहता धर्मशाला" जैसा उपयोगी दूसरा नही हैं। बीकानेर राजधानी होने के कारण गरीब-अमीर सबको ही वहाँ आना पडता था। उस समय न सरकार की ओर से कोई व्यवस्था थी और न आज की भाँति होटल, ढाबे और सराय आदि ही थे। उस काल मे यह धर्मशाला देवालय का काम करती थी। बीकानेर राज्य का कोई क्षेत्र अथवा गाँव ऐसा नही होगा जहाँ के रहने वालो ने इस धर्मशाला से लाभ न उठाया हो। इस धर्मशाला के साथ जन सेवा के लिए आयुर्वेदिक औषधालय और भक्तजनो के लिए भगवान के दर्शन हितार्थ बना "हरि मन्दिर" जन-जन की शुभकामनाएँ प्राप्त कर रहा है।

सामाजिक सुधारों मे मृतक भोज (नुकता) धडा आदि कुप्रथाओ से जनता को मुक्ति दिलाने का साहस करने वालो मे आप पहले समाज सेवी हैं। परदा प्रथा, जेवर आदि की फिजूल खर्ची दहेज आदि ऐसे अनेक सुधार हैं जिनका श्रीगणेश आपने किया है। आपकी सेवाएँ और विचार जनसाधारण के लिए सदैव कुनैन के समान रहे जिससे समाज का ताप हरा जाता रहा, किन्तु आपको भारी से भारी विरोध व अपमान आदि का सामना करना पडा।

विधवा विवाह जैसे कार्य को भी जो समाज के गले नही उतरता था, आपने साहस और दृढता के साथ आगे बढाया। स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, आदि कार्य तो आपके जीवन के अग रहे हैं। आज भी आप अपनी उसी लगन से अपने कार्यो मे लगे हैं। हरिजनो के लिए आपने अपने जीवन का विशेष भाग अर्पित किया है, शिक्षा का प्रचार एव व्यवस्था, छुआछूत का विनाश और आर्थिक सहायता द्वारा हरिजनो को सदैव ही आगे बढाया है। मोहता जी का घर गरीबो के लिए हरि मन्दिर बना हुआ है। वहाँ से कोई निराश नही लौट सकता।

बीकानेर सदैव अकाल का घर रहा। उस कारण बडी परेशानी यहाँ के लोगो को सदैव रही। अकाल के दिनो मे रोटी और रोजी राज के घर मे नही मिलती थी, पर आपके घर मे वे सदा सुलभ रही। गरीब चौबीस घण्टे आपका घर-घेरे रहते हैं। मोहता जी का जीवन समाज और गरीबो का बन गया। आपकी वाणी और शक्ति दरिद्र नारायण की पूँजी बनी हुई है।

मैंने आपको बहुत निकट से देखा है। आपका सादा और सेवा-भरा जीवन समाज मे फैले अज्ञान, अन्धविश्वास और रूढिवाद से सघर्ष करता रहा है।

मैं इस पुण्यात्मा को सामाजिक सुधारको मे क्रान्ति उत्पन्न कर देने वाले के रूप मे देखता हूँ, और जन सेवा के क्षेत्र मे सच्चा दानशील और समाज सेवक मानता हूँ।

वीकानेर राज्य मे ग्राज जितनी शिक्षा, स्वास्थ्य ग्रौर जन सेवा करने वाली संस्थाएँ चलती हैं उनमे सवने पुरानी सस्थाएँ ग्रापके परिवार की हैं। ग्रापकी प्रेरणा से ग्रन्य ग्रनेक संस्थाग्रो ने भी जन्म लिया।

ग्राज के राजस्थान मे राजनीति से दूर ऐसा जन सेवक ग्रौर समाज सुधारक दूसरा विरला ही होगा। राजस्थान की जनता विशेपत. वीकानेर राज्य के लोग ग्रापकी सेवाग्रो से सदैव कृतज्ञ रहेगे।

ऐसे जनसेवी के ग्रभिनन्दन मे सम्मिलित होना मैं ग्रपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

कुंभाराम ग्रार्य

(भूतपूर्व मंत्री राजस्थान सरकार, सेवा भावी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता ग्रौर स्वामी केशवनन्द ग्रभिनन्दन समिति के ग्रध्यक्ष।)

•

५६

मोहता जी की आत्मीयता

ग्राज से २५-३० वर्ष पूर्व मैं भाई श्री रामगोपाल जी मोहता के यहाँ स्वर्गीय जमनालाल जी के साथ गई थी। दूसरी वार पूज्य विनोवा जी ग्रौर श्री कृष्णदास जी जाजू के साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुग्रा। विनोवा जी के साथ ग्रछूतोद्धार ग्रान्दोलन मे मैं भी थी। उन्होंने ग्रात्मीयता दर्शाने ग्रौर ग्रातिथ्य सत्कार करने मे कोई भी कसर न उठा रखी।

उनकी दोहित्री रतन जी ने जो उनकी पुत्री के ही समान हैं मुझे वहाँ का महिला मण्डल दिखलाया। उन्होने सभा का भी ग्रायोजन किया। जोधपुर का ग्रनाथाश्रम भी देखा जो उनकी ही ग्रोर से चलता है। वम्वई मे रतन वाई के पति का ग्रापरेशन हुग्रा था। उसी समय मेरा भी ग्रापरेशन हुग्रा था। रतनवाई गाय के घी मे तैयार खाद्य पदार्थ मुझे भी वड़े प्रेम से यह कह कर—लाकर देती कि "काकी जी यह ग्रपने वीकानेर के गाय के घी की चीजें हैं।" उसी समय गगापुर जाने का भी मौका मिला था। वहाँ एक सस्था हैं जहाँ मैंने जलाशयो की ग्रोर वहनो का ध्यान ग्राकर्पित किया। वहनो ने उन तालावो के सुधारने के लिए सहयोग देने का ग्राश्वासन दिया। रामगोपाल जी के यहाँ सत्सग हुग्रा करता था, मैं भी उसमे एक दिन सम्मिलित हुई। उन्होंने वहनो से मेरी वात सुनने का ग्राग्रह किया। मैंने वहाँ कूपदान ग्रौर जलाशयो के लिए ग्रपील की। मैं उन दिनो कूपदान का ही कार्य कर रही थी। वीकानेर मे पानी की समस्या वडी विकट है। सव ने मेरी ग्रपील पर ध्यान दिया। वहाँ कुँए वनने कठिन हैं ग्रत कुण्ड जगह-जगह वनाये जायें यह तै हुग्रा। श्री मोहता जी ने कहा, "माता जी की वात ग्रापने सुनी। जैसा वे कहती हैं वैसा करें।"

वीकानेर में हरिजन कान्फ्रेंस होने वाली थी जिसके लिए उसके मंत्री मुझे लेने के लिए दिल्ली ग्राए थे। हरिजन वहनो की ग्रलग कान्फ्रेंस वुलाई गई थी जिसमे मैंने सफाई रखने, नशे से दूर रहने व वच्चो को पढाने के वारे में कहा। मोहता जी ने जव-जव भी भोजन पर वुलाया तव तव उनका ग्रातिथ्य प्रेम व ग्रात्मीयता देख कर तृप्ति ग्रौर ग्रपार प्रसन्नता हुई।

बडी हवेली, ऐश्वर्य एव वैभव मे रह कर भी उनकी सादगी और सज्जनता अलग ही झलकती है। रहन-सहन व स्वभाव से वह साधु ही हैं साथ ही उदार और दानवीर भी हैं। अनेक सस्थाएँ आज भी उनकी ओर से चल रही हैं। हरिजनो और महिलाओ के लिए उन्होने जो कुछ अकेले किया है वह अनेक सस्थाएँ भी कर नही सकी। मुझे मालूम है कि बीकानेर राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक दृष्टि से कितना पिछडा है। वैसे तो सारा राजस्थान ही पिछडा हुआ है। ऐसा मालूम होता है जैसे कि पिछली एक सदी मे राजस्थान मे जागृति के सूर्य का प्रकाश फैल ही नही सका और आज भी घोर अन्धकार चारो ओर छाया हुआ है। वहाँ की अधिकाश महिलाएँ आज भी परदे मे कैद हैं। हरिजनो के साथ होने वाले अन्यायपूर्ण दुर्व्यवहार के जो समाचार प्राय समाचार पत्रो मे पढने को मिलते रहते हैं उन पर सचमुच ही आश्चर्य होता है। अस्पृश्यता का व्यवहार कानून से वर्जित व दण्डनीय ठहराया जाने पर भी उनके प्रति वैसा ही व्यवहार आज भी चालू है। अचरज यह देखकर होता है कि सरकारी अधिकारियो के कान भी इस बारे मे बहरे बने हुए हैं और वे भी उस अन्याय व दुर्व्यवहार को प्रश्रय देते हैं। ऐसे प्रदेश मे पचास वर्ष पहले शिक्षा प्रसार, हरिजन सेवा तथा मातृ जाति के उद्धार का काम शुरू करने से मोहता जी के साहस एव दूरदर्शिता का पता चलता है। लाखो रुपया इन कार्यो मे वे खर्च कर चुके हैं और अब भी खर्च करते रहते हैं। एक राजस्थानी होने के नाते मुझे सचमुच ही उनके लिए बडा गर्व अनुभव होता है। इस अवसर पर भी उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करना अपना कर्त्तव्य मानती हूँ।

जानकी देवी बजाज

(माता जानकी देवी जी को सुप्रसिद्ध देशभक्त स्वर्गीय सेठ जमनालाल जी बजाज की धर्मपत्नी के रूप मे कौन नहीं जानता? गांधी जी के अनुयायी बनकर उन्होंने अपने राजसी वैभव के उपभोग करने से एकाएक हाथ खींच लिया था। उनके उस उत्सर्ग में माता जानकी देवी जी ने भी पूरा हाथ बटाया और उनके निधन के बाद तो वे इस प्रकार सार्वजनिक सेवा के मैदान में निकल पड़ीं जैसे कि उन्होंने अपने स्वर्गीय पति के जन सेवा के प्रसिद्ध स्वप्न को पूरा करने का सकल्प कर लिया। वे अहोरात्र उसको पूरा करने में लगी रहती हैं। सत विनोबा के भूदान यज्ञ की पूर्ति के रूप में आपने कूपदान आन्दोलन का श्री गणेश किया है।)

•

५७

आधुनिक नरसी भगत

मैं करीब ३० वर्ष पहले माहेश्वरी महासभा का प्रचार करते हुए बीकानेर गई, तो पूज्य रामगोपाल जी मोहता के वहाँ ठहरी। मैंने उनका नाम पहले से ही सुन रखा था। आपने भी मेरा नाम सुना था। किन्तु साक्षात परिचय उससे पहले नही हुआ था। वे पिता समान होते हुए भी मैं उनको पहले ही दिन से "भाई जी" सम्बोधन करने लग गई। वे तो मुझे पुत्री ही समझते थे, क्योकि वे मुझ से २१ साल तथा मोहता जी से १६ वर्ष अधिक बडे हैं। वे हम दोनो को अपनी सन्तान समान ही स्नेह करते हैं। तब मैं वहाँ केवल ८-१० दिन ठहरी थी। भाई जी की दिनचर्या देखकर मे चकित रह गई कि बीकानेर मे माहेश्वरी समाज मे करोडपति ऐसे परोपकारी, सुधारक, साधु-स्वभाव के हो सकते हैं। भाई जी जैसा व्यवहार लाखो मे मिलना मुश्किल है।

उन्होने स्त्री जाति की भलाई मे तन-मन-धन लगाया है। स्त्री जाति की उन्नति का कोई ऐसा काम नही जो उन्होने नही किया। स्त्री जाति के प्रति पुरुषवर्ग की हीन भावना को वदलने के लिए उन्होंने साहित्य का निर्माण किया। उनमे शिक्षा फैलाने के लिए अनेक सस्थाएँ कायम की, उनको स्वावलम्बी वनाने के लिए कुछ काम-काज सिखाने का सिलसिला प्रारम्भ किया और पुरुषो द्वारा मार्ग भ्रष्ट की गई वहनो के उद्धार के लिए स्थान-स्थान पर अनेक आश्रम स्थापित किए। विधवाओं के उद्धार के लिए पुनर्विवाह का मार्ग खोलने के कारण उन पर क्या लाछन नही लगाए गए परन्तु वे अपने मार्ग से जरा सा भी विचलित नही हुए। हरिजनो के लिए तो वे करुणा-निधान ही हैं। उनके कष्टो को वे अपना कष्ट मानते हैं और दिन-रात तन-मन-धन से उनके दुख-निवारण मे लगे रहते हैं। जनता मे आत्म-ज्ञान फैलाने के उद्देश्य से उन्होने सत्सग का क्रम शुरू किया हुआ है। जव वे सन्तों की वाणियाँ सत्सग के समय गाते हैं तो भारत के पुराने ऋषि-मुनियो का स्मरण हो आता है। जव-जव वीकानेर जाने और वहाँ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ मुझे भाई जी का परोपकारी कार्य देखकर वडा हर्ष हुआ। मुझे इससे खुशी है कि पहले नरसी मेहता हुए थे और आज उनके जैसे मोहता जी हैं। परन्तु मोहता जी मे वैसी अन्ध श्रद्धा अथवा अध भक्ति नही है। मोहता समाज की होने के कारण मुझे भाई जी के लिए गर्व ही अनुभव होता है।

गंगादेवी मोहता

(श्रीमती गंगादेवी मोहता—धर्मपत्नी श्री वालकृष्ण जी मोहता उन महिलाओं में से हैं, जिन्होंने सब से पहले परदा प्रथा का त्याग करके समाज सेवा के सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश किया और समस्त सामाजिक रूढ़ियों तथा धार्मिक अंध विश्वासों को तिलांजलि दे दी। आप का सारा परिवार प्रगतिशील सुधारक विचारों का है। आप ने अपने पौत्र चिरंजीव वीरेन्द्र का शुभ विवाह अग्रवाल विधवा कन्या के साथ वड़ी सादगी से आडम्वर-रहित विधि से करके समाज के सम्मुख एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। दो वर्ष पहले अपनी पौत्री का विवाह भी इसी ढंग से किया था। आप मोहता जी के विचारो का पूरी तरह पालन करने वाली कट्टर समाज सुधारक महिला हैं।)

●

५८

मेरे नाना जी और उनकी शिक्षा

जव मैं तीन वर्ष की थी तभी मेरी माता जी का स्वर्गवास हो गया था। मेरा पालन पोषण मेरे पूज्य नाना जी श्री रामगपाल जी मोहता के सरक्षण से हुआ। मेरी माता जी के स्वर्गवास होने के आठ महीने पश्चात् ही मेरी पूज्य नानी जी का पुत्री वियोग मे स्वर्गवास हो गया। वे बीमार वर्षों से थी पर यह शोक वर्दाश्त न कर सकी। मेरा भाई जिसका नाम भैरव रत्न था मुझ से ३ वर्ष वडा था। मेरी पूज्य नानी जी के स्वर्गवास होने के आठ महीने पश्चात् ८ साल की उम्र मे उसका देहान्त हो गया। मेरे पिता जी वहुत व्याकुल रहा करते थे। सवा साल मे इन तीनो की मृत्यु हो जाने पर भी नाना जी के अन्त करण का सन्तुलन वना रहा। आप ने मेरे पिता जी को मेरी माता जी व मेरे भाई की यादगार मे एक कन्या पाठशाला खोलने का परामर्श

दिया। उसके फलस्वरूप श्री भैरवरत्न मातृ पाठशाला की स्थापना की गई। यह बीकानेर मे जनता की तरफ से स्थापित की हुई प्रथम कन्या पाठशाला है। इसने बडे भारी अभाव की पूर्ति की क्योकि इससे पहले बीकानेर के लोगो मे स्त्री शिक्षा का पूर्णतया अभाव था। यह पाठशाला आज भी मिडिल स्कूल के रूप मे सफलता-पूर्वक चल रही है। हजारो बालिकाएँ इस स्कूल से शिक्षा व शिल्पकला मे निपुणता प्राप्त कर चुकी हैं और सैकडो की सख्या मे कर रही हैं।

इन सब की मृत्यु हो जाने से मेरा लालन-पालन मेरे पूज्य नाना जी की गोद मे ही हुआ। हर समय वे मुझे शिक्षाप्रद बातें सुनाया करते थे। मेरी प्रत्येक उचित इच्छा पूरी की जाती थी, व अनुचित इच्छा मे मार-पीट व धमकाने से काम न लेकर अच्छी तरह समझाया जाता था जिससे उससे मेरा मन हट जाता था। आप का हृदय मातृत्व से परिपूर्ण था जिससे मुझे कभी भी पूज्य नानी जी व माता जी का अभाव प्रतीत न हुआ।

आपकी दृष्टि मे पुत्र व पुत्री एक समान हैं व उनके अधिकार भी समान हैं। इसी दृष्टिकोण को रखते हुए जब मैं छोटी थी तभी आपने मेरे नाम से एक ट्रस्ट कायम कर दिया था। मेरा विवाह सम्बन्ध करने मे भी वर-पक्ष की धन सम्पत्ति पर विशेष ध्यान नही दिया गया अपितु मेरी प्रकृति के अनुकूल मेरे जोडी का वर तलाश करने पर विशेष ध्यान दिया गया। आप के विचार मे विवाह सम्बन्ध करने मे वर कन्या के दाम्पत्य जीवन के सुख पर ही ध्यान रखा जाना चाहिए। मेरा विवाह सम्बन्ध मेरी इच्छानुसार मुझ से अच्छी तरह पूछ कर किया गया। विवाह के पश्चात् मुझे आप से हर समय यही उपदेश मिलता था कि "ससुराल वाले प्रसन्न हो वही काम हमेशा करना चाहिए। यह मन मे कभी नही सोचना चाहिए कि मेरे नाना जी बडे आदमी हैं, उन्होंने मुझे लाखो रुपये दिये हैं फिर मैं किसी से दबकर क्यो रहूँ। मनुष्य कुछ देकर ही पा सकता है। उनको तुम अपना प्रेम व सेवा अर्पण करो वे खुद तुम्हारे अपने हो जावेंगे।" इन उपदेशो के प्रभाव से ही आज मेरे सुसुराल वाले पूर्णरूप से मुझ से प्रसन्न हैं और मेरी उन्नति मे सब प्रकार से सहायक हैं।

स्त्रियो व अछूतो के प्रति आप की विशेष सहानुभूति रही। हमारे समाज मे इनकी जो दशा है वह सर्वविदित है। इनकी इस पददलित दशा का मूल कारण आप ने शिक्षा का अभाव समझा। आपने अछूतो को वजीफे आदि अन्य सहूलियतें देकर पढवाना शुरू किया जिसके फलस्वरूप पन्नालाल, धर्मपाल जैसे हरिजन भाई सब के साथ उच्च स्थानो पर बैठने योग्य हो गए। स्त्री शिक्षा के लिए आप ने सन् १९४६ मे महिला मडल की स्थापना श्रीमती सरस्वती देवी मोहता, श्री गुलाब कुमारी जी शेखावत व श्री गगादेवी मोहता, धर्मपत्नी श्री बालकृष्ण जी मोहता, द्वारा करवाई। मैं भी आप लोगो के कार्य मे सहयोग दिया करती थी। प्रारम्भ मे आपके शहर वाले मकान मे महिला मडल के तत्वावधान मे साप्ताहिक सभाएँ हुआ करती थी जिनमे शिक्षा का महत्व समझाया जाता था। फलस्वरूप कुछ महिलाओ मे पढने की रुचि उत्पन्न हुई। १५ अगस्त सन् १९४७ मे मडल के कार्य के सचालन हेतु महिलाओ की एक कार्यकारिणी समिति बना दी गई। उस समय मैं मडल की कोषाध्यक्ष चुनी गई थी। आपने बिना किराए अपना मकान व १०० रुपया मासिक देना शुरू कर दिया। मडल मे प्रथम कक्षा व पजाब की हिन्दी रत्न की कक्षा प्रारम्भ कर दी गई। इस समय यह सस्था महिलाओ को शिक्षा देने तथा काम-काज सिखाकर उनको स्वावलम्बी बनाने वाली बीकानेर की एक प्रमुख सस्था है। इसका सचालन तथा व्यवस्था आदि सारा कार्य महिलाओ द्वारा ही किया जाता है। महिला उत्थान के प्रति आप की लगन व उदारता की कुछ साक्षी इस सस्था से भी मिलती है।

समाज सुधार के कार्यो मे आप हमेशा अग्रणी रहे। भारतवर्ष व खास कर हमारे राजस्थान मे विवाह शादी व मृत्यु के अवसरो पर धार्मिक अन्धविश्वासो के कारण और सामाजिक रीति रिवाजो के कारण जो फिजूल खर्च और आडम्बर किया जाता है उसके आप सर्वथा विरुद्ध हैं। उन खर्चों से सारा समाज परेशान है फिर भी

कुंवर मदन गोपालजी दम्माणी

सौभाग्यवती रतनबाई मदन गोपाल दम्माणी
(मोहताजी की विदुषी दोहिती)

सौ० सुशीलादेवी लोईवाल
सुपुत्री श्री मदनगोपालजी दम्माणी

श्री कृष्णकुमार दम्माणी
सुपुत्र श्री मदनगोपालजी दम्माणी

आगे बढ़कर सुधार करने की हिम्मत किसी की नही होती। आपके ही उपदेशो से प्रेरित होकर मेरी बडी लडकी के विवाह मे जो कि सन् १९५० मे हुआ था व लडके के विवाह मे जो कि सन् १९५७ मे हुआ किसी भी अदृष्ट देवता के प्रसन्न करने के लिए फिजूल खर्च नही किया गया और शादी के बाद देवताओ की जात वगैरह भी नही दी गई। जन्मपत्री व कुण्डली दिखाने मे झाड-फूंक व मन्त्र जन्त्र मे तथा मुहूर्त आदि दिखाने मे मेरे परिवार मे किसी को विश्वास नही है। हमारे घर मे धार्मिक अन्धविश्वासो पर किसी की श्रद्धा नही है।

विवाह के समय मे होने वाले सामाजिक रीति रिवाज जो कि समाज को हानि पहुँचाने वाले हैं हमने अपनी लडकी व लडके के विवाह मे सर्वथा बन्द कर दिए, क्योकि आपने प्रतिज्ञा की हुई थी कि जिस विवाह मे निम्नलिखित हानिकारक प्रथाएँ की जाएँगी उसमे मैं सम्मिलित नही होऊँगा। आप के उपदेशो से हमारी भी इन घोर हानिकारक रिवाजो से घृणा हो चुकी थी।

(१) **टीका (मुछा)**—यह विवाह से पहले सगाई के अवसर पर हजारो रुपये का कन्या पक्ष वालो की तरफ से वर पक्ष वालो को दिया जाता है। यह रिवाज हमने अपनी लडकी व लडके दोनो के विवाह मे नही किया।

(२) **मिलनी**—यह कन्या पक्ष वालो की तरफ से वर पक्ष वालो की सगाई के बाद पहली बार मिलने पर विवाह के समय सारे परिवार वालो को रुपये के रूप मे दी जाती है जिसे हमने न दिया और न ही लिया।

(३) **टीका**—यह सन्तान के माता पिता के ननिहालो की तरफ से पहली सन्तान के विवाह मे दिया जाता है। यह हमने हमारी लडकी के विवाह मे ही बन्द कर दिया था।

(४) **बरी**—वर पक्ष वाले कन्या के लिए गहने व कपडे बडे दिखावे के साथ लाते है। यह रिवाज एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए एक दूसरे से बढ कर किया जाता है जिससे विवाह के बाद मे दोनो पक्ष वालो मैं आपस मे झगडे इन गहनो के पीछे होते हैं। यह रिवाज भी हमने लडकी के विवाह मे बन्द कर दिया था।

(५) **कन्यादान**—माता पिता पुण्य उपार्जन की दृष्टि से पेट की सन्तान कन्या को दान स्वरूप, वर को पशु व निर्जीव पदार्थ की तरह दे देते हैं। यह दान न हमने लिया और न दिया।

(६) **मोहेरा**—वर व कन्या के ननिहाल वाले बडे दिखावे के साथ अपनी लडकी के ससुराल वालों की मदद करने आते है चाहे मन मे कष्ट ही पाते हो कारण कमाई सब की सीमित है। फिर दूर-दूर मे रेल किराया वगैरह लगता है पर यह रिवाज पूरी जरूर करनी पडती है कारण समाज मे नाक कटने का भय रहता है। ऐसी हानिकारक रिवाज को हमने अपने लडके के विवाह मे मेरे पिता जी की सहमति व रजामन्दी से बन्द कर दिया ताकि दूसरे भी कुछ इसका अनुकरण करें।

(७) **दहेज**— यह समाज की सब से बडी हानिकारक प्रथा है। हमारे समाज मे यह प्रथा इतनी बढ गई है कि सारे समाज मे इसके दुष्परिणाम से त्राहि-त्राहि मची हुई है। इसके विरुद्ध आन्दोलन भी होते हैं जिसमे इस प्रथा की हद बांधते हैं, समूल नष्ट नही करते, जिससे यह फिर पनप उठती है। कितनी ही कन्याओ का इस प्रथा के कारण अच्छा सम्बन्ध नही हो सकता और उनका सारा जीवन बर्बाद हो जाता है। हमने अपनी लडकी के विवाह मे दहेज दिया नही और लडके के विवाह मे लिया भी नही।

(८) **पगे पड़नी**—यह कन्या की माता की तरफ से वर पक्ष की औरतो को दी जाती है। वह सब के पैर छूती है व रुपये देती है। इससे समानता की भावना नष्ट होती है इसलिए हमने अपनी लडकी व लडके के विवाह मे इस प्रथा को बन्द कर दिया।

(९) **सूखडी**—यह विवाह के बाद कन्या पक्ष वाले कन्या के ससुराल व नानी ससुराल वालो को सूंख अर्थात् घूस के रूप मे देते हैं, न हमने सूंख दी और न ली।

(१०) **घूंघट**—यह हमारे यहाँ से सर्वथा हटा दी गई है। हमने अपनी लडकी का विवाह खुले मुँह किया। लडके के ससुराल वाले रीति रिवाजो मे बडे कट्टर व धार्मिक अन्धविश्वासी हैं। पर उनसे हमने सगाई के समय ही सारी बात कर ली थी जिससे यह विवाह भी पूर्ण सुधार सहित खुले मुँह किया गया।

यह सब रीति रिवाज एक दूसरे से बढाचढी करने व एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए किए जाते जाते हैं। सहयोग व समता का भाव आपस मे रहा ही नही।

समाज को सुखी बनाने व समता का भाव स्थापित करने के लिए हर व्यक्ति के लिए 'गीता' का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। बचपन मे मेरा स्वभाव बहुत चचल था। मैं एक जगह ज्यादा देर तक बैठ ही नही सकती थी। [आप 'गीता' के अत्यन्त प्रेमी हैं और श्री भगवद्गीता ही एक ऐसा शास्त्र है जिसके अध्ययन से मनुष्य आधिभौतिक, आधिदैविक व आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। गीता के सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए आप हमेशा सत्सग किया करते हैं जिससे काफी लोगो ने लाभ उठाया व उठा रहे है। मुझे आप अपने साथ सत्सग मे ले जाते पर मेरा मन वहाँ २, ३ घटे बडी कठिनाई से लगता था। पर फिर भी मेरे अन्त करण मे दूसरे अदृष्ट देवताओ के प्रति श्रद्धा व कल्पित ईश्वर का डर नही था। हृदय सरल था इसलिए जल्दी ही आप के उपदेशो का प्रभाव पडने लगा। गीता के प्रति प्रेम व उसके सिद्धान्तो के प्रति श्रद्धा व विश्वास हो गया। मैंने 'गीता' का अर्थ सीखना शुरू कर दिया। गीता के अध्ययन से मुझे यह निश्चय हो गया कि आत्मा सर्वत्र एक समान सम रूप से व्यापक है, यह ध्यान मे रखते हुए अपनी-अपनी स्वाभाविक योग्यतानुसार अपने कर्त्तव्य कर्म अच्छी तरह से पालन करते हुए ससार चक्र को सुचारु रूप मे चलने मे सहयोग देना ही वास्तव मे सच्चा धर्म, यज्ञ व पाठ पूजा आदि हैं।

आज मेरा मन पूर्ण शान्त व आनन्दमय है।

श्रीमती रतनदेवी दम्माणी

(आप मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता की एक मात्र दोहिती हैं और सेठ चादरतन जी बागडी की पुत्री हैं। बीकानेर में महिलाओं मे जागृति का सचार करने वाली सस्था "महिला मडल" की आप सस्थापिका तथा सचालिका हैं। साहित्यरत्न तथा एफ० ए० तक आपने शिक्षा प्राप्त की है। "प्रवर्तितो दीप इव प्रदीप." के अनुसार आप अपने नाना जी की समाज सेवा सम्बन्धी सभी सार्वजनिक प्रवृत्तियों मे प्रमुख भाग लेती हैं। आपके पति श्री मदन गोपाल जी दम्माडी भी सेवाभावी व्यक्ति हैं और दोनों ही सार्वजनिक प्रवृत्तियो मे प्रमुख भाग लेते हैं।)

●

५६

वंश के प्रकाश-स्तम्भ

हमारे पूज्य पितृव्य श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता का स्मरण होते ही एक ऐसे दूरदर्शी तत्त्वान्वेषी एव सफल समाज सुधारक का व्यक्तित्व सामने आ जाता है जिसने अपने चिन्तन व मनन को कर्म निष्ठा मे प्रतिष्ठित कर साकार किया, समाज के कठोर विरोध के उपरान्त भी रूढियो, परम्पराओं व अन्ध-विश्वासो के विरुद्ध मोर्चा लिया और समाज के विरोध व अपमान की सर्वथा उपेक्षा करते हुए अपने सिद्धान्तो व अपनी मान्यताओ को व्यावहारिक रूप देकर सबके समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। संसार मे यश की कामना सबको होती है और उचित माने जाते हुए भी अनेक अच्छे कार्य केवल अपयश के भय से अकृत रह जाते हैं। पूज्य पितृव्य उन इने गिने व्यक्तियो मे से हैं जिन्होने यश-अपयश से निर्लिप्त रह कर अपनी मान्यताओ को व्यावहारिक रूप दिया। आज से ४०-४५ वर्ष पूर्व जबकि किन्ही सुधारो के विषय मे सोचना भी सामाजिक अपराध माना जाता था तब समाज की अनेक कुरीतियो के विरुद्ध दृढतापूर्वक मोर्चा लेना वस्तुत. आपके आन्तरिक अभय, अपूर्व साहस एवं दृढनिश्चयात्मिका बुद्धि का परिचायक है, जो कि एक समत्वयोगी मे ही पाई जा सकती है। आज भी बीकानेर मे अनेक रूढिवादी आपके ब्राह्मण-हरिजन-अभेदभाव, विधवा विवाह-समर्थन, एव अनाथ स्त्री-बालको को सरक्षण आदि कार्यों की घोर निन्दा करते हैं, परन्तु आप इन सबकी अवहेलना करते हुए अपनी निष्ठा पर दृढ हैं। कोई भी बाह्य शक्ति उन्हें उचित माने हुए कार्य से रोक नही सकती।

बहुधा यह देखा जाता है कि उग्र बुद्धिवादी एवं विशुद्ध तार्किक व्यक्तियो का हृदय-पक्ष इतना शुष्क हो जाता है कि उसमे मानवीय सौहार्द, सहानुभूति या करुणा के लिए कोई स्थान नही रहता और मानव की स्वभावगत दुर्बलताओ के प्रति उदारतापूर्ण क्षमा की भावना तनिक भी नही रहती। दूसरी ओर मानवीय तत्व प्रधान हृदय मे एक ऐसी भावुकता का आधिक्य होता है कि ऐसे व्यक्ति सभी बातो पर विश्वास करते-करते अन्धविश्वासों के भवंर मे जा फँसते हैं। इसी कारण जीव कल्याण की भावना मूलक बहुत से विचार केवल अन्धविश्वास बन कर रह जाते हैं। उनसे कल्याण के स्थान पर अकल्याण की ही सृष्टि होती है। अत. बुद्धि की अति शुष्कता एवं हृदय की अति आर्द्रता के बीच की स्थिति ही सदा कल्याणकारी होती है। जिसका हृदय मानव मात्र के प्रति प्रेम व सहानुभूति से परिपूरित हो, किन्तु जो विवेक तथा बुद्धि द्वारा शासित हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा ही मानव जाति का कल्याण सम्भव हो सकता है।

पूज्य पितृव्य कट्टर बुद्धिवादी व विशुद्ध तार्किक हैं। जो तर्क से प्रमाणित नही होता और वास्तविकता की कसौटी पर नही कसा जा सकता वह उन्हें स्वीकार नही। उस पर वे निर्ममता से प्रहार करते हैं, चाहे इससे दूसरे के विश्वासो, या यूं कहो कि अन्धविश्वासो को कितनी ही चोट क्यो न पहुँचे। किन्तु दीन, दुखी, दलित व उत्पीडितो के लिए आपके पास प्रेम, सहानुभूति, दया व सहायता की कभी कमी नही रहती। मानव की स्वभाव-गत दुर्बलताओ के प्रति आपका दृष्टिकोण अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण रहता है, किन्तु दम्भ, पाखड व ढोग से आपको घृणा है। झूठे पाखडियो की पोल खोलने मे आप कभी संकोच नही करते। अनाथ बालक, गरीब हरिजन व उत्पीडित स्त्री जाति आपकी सहानुभूति व सहायता के सदा पात्र रहे हैं। अनेक अनाथ बालको व निराश्रय स्त्रियो को आप शरण व आश्रय देते हैं फिर उनके भरण पोषण का कोई स्थायी प्रबन्ध कर देते हैं।

बीकानेर राज्य मे दुर्भिक्ष प्राय तांडव-नृत्य करता रहता है। भूख व सर्दी के कारण अनेकों ग्रामवासी मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं। कई बार तो पेड़ो के पत्तो को चबाकर प्राण रक्षा का प्रयत्न करने तक की नौबत

आ जाती हैं जबकि उन अभागे व्यक्तियो की सहायता का कोई अन्य स्रोत नही होता—सरकार की दृष्टि वहाँ तक पहुँचती ही नही और राज्य के अन्य धनी व्यक्ति केवल ब्राह्मणो को दान व भोजन देकर ही अपने पुण्योदय व पाप क्षय करने मे व्यस्त रहते हैं। तब पूज्य पितृव्य का सहायतार्थ बढा हुआ हाथ ही उन विपदग्रस्त ग्रामीणो का एक मात्र सहारा होता है। मैंने कुछ रूढिवादी लोगो के मुँह से स्वय यह व्यग सुना है कि रामगोपाल जी मोहता के मन मे हर समय हरिजन ही बसे रहते हैं, अन्त समय भी उन्ही मे उनका मन रहेगा, सो अगले जन्म मे वे निश्चय ही हरिजन होकर जन्म लेंगे।

इस प्रकार पूर्णत अभाव ग्रस्तो के लिए तो आप अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करते ही हैं किन्तु उनमे कुछ स्वाभिमानी ऐसे भी होते हैं जिनके स्वाभिमान को दान ग्रहण करने से चोट पहुँचती है। उनके लिए आप यह नही कहते कि हम तो देने को तैयार हैं, यह नही लेते तो अब हम क्या करें, प्रत्युत उनके स्वाभिमान की प्रशसा करते हैं और प्रयत्न करके ऐसी व्यवस्था करते हैं जिससे उन्हें सस्ते से सस्ते भाव मे अन्न वस्त्र मिल सकें। जो भी प्रार्थी आपके पास आते हैं, उन सबके लिए आपका द्वार खुला रहता है। आप उनका दुख सुनते हैं, सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और उन्हें उचित परामर्श एव आवश्यक सहायता प्रदान करते हैं।

जहाँ एक ओर आप दूसरो की सच्ची अभाव-जनित आवश्यकताओ का पूर्ति के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर मन की सनक, या अन्धविश्वासो के कारण मान ली गई झूठी आवश्यकताओ को आपकी सहायता तो क्या सहानुभूति भी प्राप्त नही होती। इस प्रकार के प्रार्थियो की माँगो को आप कभी आश्रय नही देते।

आप सादा रहनसहन के समर्थक हैं। तनिक भी अपव्यय आपको सुहाता नही। आपके रहनसहन की सादगी देखकर दग रह जाना पडता है। मोटे वस्त्र व विशुद्ध सात्विक भोजन के अतिरिक्त अपने शरीर पर आपको कुछ भी व्यय करते देखा नही गया। पोस्टकार्ड से काम चले तो लिफाफा प्रयुक्त न करने के आप पक्ष-पाती हैं। हम लोगो को बहुधा उपदेश दिया करते हैं कि "देश मे इतनी गरीबी होते हुए जहाँ लोगो को उदर-पूर्ति के लिए पर्याप्त अन्न भी नही मिलता, वहाँ हमारा यह कर्त्तव्य हैं कि हम अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओ को अधिक से अधिक घटा कर बचा हुआ धन गरीबो की सहायता के लिए अर्पण कर दें। इस समय अपव्यय एक अधर्म है। निजी आवश्यकताओ को काट कर अपने हाथ-खर्च मे से बचा कर दिए हुए दान का ही सच्चा मूल्य होता है, क्योकि उसमे त्याग की भावना का योग रहता है।" दूसरो की सहायतार्थ लाखो रुपये व्यय करने वाले व्यक्ति का इतना अधिक सादा रहनसहन सचमुच विस्मय एव श्रद्धा उत्पन्न करता है। वैभव के मिथ्या प्रदर्शन से आपको चिढ़ है। इसी लिए ऐसे प्रार्थी जिन्हे कोई सच्चा अभाव तो नही, किन्तु जो समाज के भय से या रूढिगत अन्धविश्वासो के कारण जन्म, विवाह, मृत्यु आदि अवसरो पर केवल प्रतिष्ठा के प्रदर्शन हेतु व्यय करने के लिये सहायता की माँग करने आते हैं, उनको आप कभी सहायता नही देते, प्रत्युत मिथ्या प्रदर्शनो के मोह से मुक्ति पाने का उपदेश देते हैं।

आजकल अधिकतर लोग अति भौतिकवादी दृष्टिगोचर होते हैं। वे नीति-धर्म के सामान्य नियमो को ताक पर रख कर केवल भौतिक सुख ऐश्वर्य की प्राप्ति मे अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं और उसी मे संलग्न रहते हैं। जो थोडे बहुत आत्मवादी हैं, वे इस भौतिक जगत को माया व भ्रान्तिमूलक मानकर इतने निवृत्त या आत्म-निरत रहते हैं कि मानव जीवन की समस्याओ का निराकरण खोजना तो दूर निरीक्षण करना भी नही चाहते। अन्तर्जगत जब तक व्यवहार मे साकार नहीं होता तब तक न तो उसका कोई मूल्य है न महत्व। सिद्धान्त तो उसी अश तक सारवान हैं जिस अश तक वे जीवन की कसौटी पर कसे जाएँ, अन्यथा उनका मूल्य तो क्या, सच्चा अर्थ तक समझ मे नही आता। पुस्तको मे पढ कर या दूसरो मे सुन कर पर्वत की चोटी पर के

सुन्दर दृश्य का शाब्दिक वर्णन कोई भले ही कर दे, किन्तु उस दृश्य के वास्तविक सौन्दर्य व आनन्द को तो पर्वत की चोटी पर स्वय चढ कर ही जाना जा सकता है। अनुभवहीन वर्णन तो शव्दाडवर ही होगा।

"गीता का व्यवहार दर्शन" नामक अपने ग्रन्थ मे पूज्य पितृव्य ने यही प्रतिपादन किया है कि गीतोक्त योग न तो अव्यावहारिक दर्शन है, न हठयोग है और न सन्यास, वरन् परम व्यावहारिक कर्म योग है। अति सीधी सरल भाषा मे इसी वात को आपने सोदाहरण समझाया है, जिससे कि अपने आप शंका समाधान भी होता चला जाता है। समष्टि मात्र को आत्मरूप मानते हुए सवके सुख-दुख के भागी बन कर सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हुए जो उचित है उसे साहसपूर्वक करते चले जाना ही कल्याण का एकमात्र साधन आपने वताया है। आपने स्वयं अपने जीवन मे इस व्यावहारिक कर्मयोग को साकार किया है, इसी से आपका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक एव आपके उपदेश अमूल्य हैं। हमारे वश के तो आप ही एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं जिनके स्नेह सहानुभूति और सहृदयता के प्रकाश मे विषम परिस्थितियो मे भी चलते रहने का वल व उत्साह प्राप्त होता है। हम आपका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करते हुए आपके दीर्घ जीवन की मगल कामना करते है।

कौशल्या देवी मोहता

(स्वर्गीय श्री गंगादास जी मोहता के सुपुत्र श्री शिववक्श जी मोहता की आप धर्मपत्नी हैं। माहेश्वरी अथवा मारवाड़ी समाज मे आपके समान सुशिक्षित और विचारशील महिलाएँ बहुत कम हैं। आप थियोसोफिकल विचारों की हैं और थियोसोफिकल सोसाइटी द्वारा प्रकाशित अनेक पुस्तकों का आपने अनुवाद किया है।)

●

६०

बाबा जी का जीवन दर्शन

आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व मेरे वैधव्य जीवन के आरम्भ काल मे कुछ घरेलू, कुछ बाहरी प्रतिकूलताओं और कुछ आन्तरिक वेदनाओ के कारण मेरा चित्त उद्विग्न और अशान्त रहता था। दु ख के भार को कम करने के लिए सिवाय आँसू वहाने के और कोई चारा नही था। मेरे मन मे विद्याध्ययन की उत्कट जिज्ञासा पैदा हुई। परन्तु घर वाले इसको नापसन्द करते थे। इसलिए विना किसी वाहरी सहयोग के उस जिज्ञासा को पूरा करना मेरे लिए प्राय असम्भव था। संयोगवश मुझे स्वर्गीय भाई भीखाराम जी का ससर्ग प्राप्त हुआ। उन्होंने मेरी इस विषय मे वहुत सहायता की। वे मेरी हृदय से उन्नति चाहते थे। उन्होने नीति और सुन्दर चरित्र-निर्माण सम्वन्धी अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाकर मुझे पढाईं और पूज्य वावा जी के सत्सग मे आने के लिए प्रेरणा दी। उन दिनो मेरे मन मे पूज्य वावा जी के प्रति इतनी श्रद्धा नही थी और न घर वाले ही यह चाहते थे कि मैं उनके सत्सग मे जाऊँ। कारण यह था कि मेरे सम्वन्धियो के मन मे यह भय था कि वहाँ जाने से मेरा पुनर्विवाह करवा देंगे।

भीखाराम जी के अत्यधिक आग्रह करने पर मैं आपके सत्संग मे आई। आध्यात्मिकता के रस से अभिषिक्त आपके मधुर उपदेशो और सारगर्भित गानो को सुन कर मेरे हृदय की विक्षिप्तता शनैः शनै. दूर हो गई और शान्ति का अनुभव होने लगा। उन्ही दिनो सन् १९४६ मे सत्सग मे यह विचार उपस्थित हुआ कि

महिलाओ को सामयिक शिक्षा और अर्थोपार्जन के साधनो की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूज्य बाबा जी ने बीकानेर मे श्री महिला मडल की स्थापना कराई। आरम्भ मे पढने वाली महिलाओ की सख्या बहुत कम थी। बाद मे पजाब युनिवर्सिटी की "हिन्दी रत्न" की क्लास चालू की गई। इसमे मेरे सहित कुल सात बहिनो ने पढ़ना शुरू किया। पढाई के लिए किसी प्रकार का शुल्क नही लिया गया। पाठ्य पुस्तकें, परीक्षा फीस, परीक्षा देने के लिए दिल्ली आने जाने का, वहाँ ठहरने का तथा भोजन और सवारी आदि के सब प्रबन्ध का खर्च बाबा जी ही की तरफ से वहन किया गया था। इससे दूसरी बहिनो को भी पढने के लिए प्रेरणा मिली। तत्पश्चात् महिला मण्डल की उत्तरोत्तर प्रगति होती गई। आज इसका कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि यहाँ मैट्रिक कक्षा तक की महिलाओ को तैयारी करवाई जाती है और सिलाई, बुनाई व कताई आदि की शिक्षा दी जाती है तथा बच्चो के लिए शिशु सदन विभाग खोल दिया गया है, जिसमे मनोरजन के साथ-साथ अक्षर ज्ञान कराया जाता है। यहाँ उद्योग विभाग मे पापड, बडी आदि कई चीजें बनाई जाती है जिससे कई गरीब बहिनो को मजदूरी मिलती है। वर्तमान मे महिला मडल का कार्य आपकी दोहित्री श्रीमती रत्न देवी जी के सरक्षण मे होता है और महिलाओ की सख्या लगभग २०० है। इसी सस्था की सहायता से मैंने रत्न, प्रभाकर, प्रथमा व हिन्दी साहित्य रत्न आदि की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं।

ज्यो-ज्यो मेरा आपसे सम्पर्क बढता गया और आपके विचार, वाणी तथा कार्यों मे निहित लोकहित की भावना का मूर्त रूप मेरे सामने आने लगा, त्यो-त्यो मेरे मन मे आपके प्रति श्रद्धा की कोपलें प्रस्फुटित होने लगी।

आपका हृदय मातृत्व और भगनीत्व के रस से सराबोर है। आपने अपने निकटतम प्रिय स्वजन की तरह मुझे पास बिठाकर, मेरे अन्तस्तल के भावो को जानने की कोशिश की और यथाशक्य मुझे उन्नति के पथ पर ले जाने का प्रयत्न किया।

स्त्रियो के दु ख दर्द की गाथाएँ सुन कर आप के हृदय मे "जो घनी भूत पीडा छाई रहती है", वह "आँसू बन कर बरस पडती है।" नारी जाति की दुरावस्था की वेदना से आपका अन्तस्तल द्रवीभूत हो उठता है और उनके दुख को दूर करने के लिए आप तन, मन और धन से उद्यत हो जाते हैं। जिन बहिनो को आपके वात्सल्यमय मातृ हृदय की छाया मे अपने दुखो को दूर करने का अवसर प्राप्त हुआ है, वे जानती हैं कि स्त्रियों के प्रति आपकी कितनी सहानुभूति है।

कितनी ही बहिनो को जो समाज के अत्याचारो से पीडित थी, पथ-भ्रष्ट होने से बचाने के लिए आपने अपने घर मे सरक्षण प्रदान किया था। उनकी कई भूलो और निन्दनीय कार्यों के बावजूद भी आपने उनके समस्त दोषो को हृदय-पट से सर्वथा धो दिया और पूर्ववत् उनके हित साधन मे लगे रहे। आपका उक्त कार्य अब भी जारी है। इस कार्य को स्थायी रूप से सम्पादित करने के लिए आपके धन और प्रयत्न से सचालित जोधपुर का वनिता आश्रम सर्व विदित है। अब भी आश्रयहीन बहिनो को आप अपने घर पर आश्रय देते हैं।

वर्तमान मे भी कई भाई-बहन आप पर अनर्गल दोषारोपण कर देते हैं और कभी-कभी अकारण ही एक दूसरे से लडाई झगडे करके आपको उपालम्भ भी दिलवा देते हैं किन्तु आपके चित्त पर इसका प्रभाव जल-तल पर अकित लकीर की तरह होता है। आपकी इस नारी दु ख कातरता को देख कर गुप्त जी की यह कविता हृदयाकाश मे विद्युत्वत चमक उठती है कि —

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखों में पानी ॥

आपकी स्मरण शक्ति बहुत ही विलक्षण है। ८० वर्ष की वृद्धावस्था मे पहुँच जाने पर भी गीता के श्लोक, भजन व अन्यान्य कई अनुभव की बातें पूर्ववत याद हैं, जबकि मेरे जैसी अल्पायु नवयुवतियो और नवयुवको को कल की याद की हुई बात अब भी स्मरण रहनी मुश्किल होती है।

आपकी प्रत्युत्पन्नमति को देख कर तो कभी-कभी आश्चर्य होता है। कठिन से कठिन उलझन भरा प्रश्न भी क्यो न उपस्थित हो जाय, शीघ्र ही अपनी जबान पर उसका उत्तर आविर्भूत हो जाता है। हम लोगो के सामने कभी ऐसा मौका नही आया, जबकि किसी प्रश्न के जवाब देने मे क्षण भर के लिए भी आप हिचकिचाए हो।

आपकी सहिष्णुता भी प्रशसनीय है। थोडे ही समय पूर्व की एक घटना है कि एक दिन बिच्छू ने आपके हाथ पर डक मार दिया था। हाथ पर काफी सूजन आ गई थी परन्तु आपके मुख से आर्तता का एक भी शब्द नही निकला। आप हमेशा की तरह शान्त चित्त लेटे रहे और ओम् का उच्चारण करते हुए पीडा निवारण करते रहे। आमातिसार और तेज ज्वर तो कई बार मेरे सामने हुए हैं, परन्तु कभी भी आपके चित्त पर व्याकुलता का भाव दिखाई नहीं दिया।

कई व्यक्तियो ने आपसे समय-समय पर अज्ञात सहातायें प्राप्त की हैं और कर रहे हैं। सिवाय प्राप्ति कर्त्ता और दाता के अन्य किसी को यहाँ तक कि अपने परिवार वालो को भी पता नही चलता। कभी-कभी स्वय प्राप्तिकर्त्ता व्यक्ति के द्वारा ही कोई बात प्रकट होने से हम लोगों को मालूम होता है। स्वय मैंने भी कई कठिन परिस्थितियो के समय आपसे विशेप सहायताएँ प्राप्त की हैं।

आपका जीवन बहुत ही सयमित और सादगी लिए हुए है। अन्य पूँजीपतियो की भाँति विलासिता और अकर्मण्यता आप से कोसो दूर है। आप गीता मे वर्णित सात्विक आचरणो के प्रबल समर्थक हैं। इसलिए सुख, प्रीति और आरोग्यता-वर्द्धक सात्विक भोजन जैसे दलिया, दाल, कढी, हरी सब्जी और फुलका तथा दूध आदि का ही आप नित्य प्रति सेवन करते हैं। वेपभूषा भी अत्यन्त सादी है जिससे प्राय सभी परिचित हैं। कर्म योग का जैसा उदाहरण आपने प्रस्तुत किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इतनी वृद्धावस्था मे भी आप कुछ न कुछ कार्य करते रहते हैं। दो ढाई घटे से अधिक देर आराम नही करते है। आराम प्रिय जीवन व्यतीत करने के आप घोर विरोधी हैं।

हिन्दू समाज मे प्रचलित सामाजिक बुराइयो और धार्मिक अन्धविश्वासो के प्रति आपके दिल मे बहुत बडी कसक है। उनको दूर करने के लिए आपने तन, मन, धन से अथक परिश्रम किया और कर रहे हैं। धार्मिक अन्धविश्वासो का खडन, विधवाओ का पुनर्विवाह कराना, औसर प्रथा, कन्या विक्रय, दहेज प्रथा और पर्दा प्रथा आदि को समाप्त करने का प्रयत्न करना आपका प्रिय विपय रहा है। इन कार्यों के प्रयत्न मे भयकर विरोधो के आधी-तूफान आपके सामने आये परन्तु आप अपने लक्ष्य पर हिमालय की तरह दृढ़ रहे। परिणामस्वरूप बहुत अशो मे आपको सफलता मिली। उपर्युक्त समस्त बुराइयो का उन्मूलन गीता मे वर्णित चौमुखी क्रान्ति द्वारा ही होना आप सम्भव समझते है।

आप अद्वैत वेदान्त के महापुजारी हैं। समस्त ससार को अपने मे और अपने को समस्त ससार मे देखने का आप नित्य प्रति उपदेश करते हैं। आपकी दृष्टि मे अपने से भिन्न संसार का अस्तित्व नही है। ससार वास्तव मे आप आत्मा की इच्छा का खेल है। इसी विचार मे हमेशा निमग्न रहने की दृढ़ स्थिति बनाये रखने के लिए अपने सत्संग मे गीता तथा अन्य वेदान्त के ग्रन्थो का अध्ययन और इसी विपय से सम्बन्धित भजनो का गान आदि नियमित रूप से हमेशा किया जाता है।

परम पूज्य बावा जी के चरण कमलो मे अपनी हार्दिक श्रद्धा के पुष्प समर्पित करती हुई मैं कामना करती हूँ कि मानव समाज की सुव्यवस्था मे योग देने के लिए आप दीर्घायु बनें ।

गगादेवी साहित्य रत्न

(सहायक अध्यापिका श्री महिला मण्डल बीकानेर ।)

●

६१

कर्मयोगी

यह जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हो रही है कि मुनि श्री रामगोपाल जी मोहता का ८१ वां जन्म दिवस उनके श्रद्धालुओ, मित्रो और शिष्यो द्वारा मनाया जा रहा है ।

अपने को उस महान् व्यक्ति का श्रद्धालु कहने मे मैं गौरव समझता हूँ । पिछले बीस वषो से मैं उनको अच्छी तरह जानता हूँ । मैंने उनके द्वारा सम्पादित कार्यों को देखा है ।

शब्दो मे इतनी सामर्थ्य नही है कि वे उनके महान् व्यक्तित्व और उनके उन महान् कार्यों का वर्णन कर सकें जो कि वे निर्धन, ज़रूरतमन्द लोगो और शारीरिक तथा मानसिक रोगियो के लिए कर रहे हैं ।

जितना कि मैं जानता हूँ, वास्तव मे वे एक पूर्ण कर्मयोगी बन चुके हैं ।

एम० एन० तोलानी

(आफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (एजूकेशन) राजस्थान सरकार, जयपुर ।)

●

६२

महान् विचारक

"श्री रामगोपाल जी मोहता महान् विचारक हैं । उनकी छाप भविष्य पर निश्चित रूप से पड रही है । वे विभिन्न प्रकार की जानकारियो और विचारो का सग्रह करते हैं और उनको अपवे जीवन मे पूरा उतारते तया क्रियान्वित करते हैं ।"

टी० के० भातेजा

(कराची कार्पोरेशन के भूतपूर्व सदस्य ।)

●

६३

जनता का सेवक

वेदान्त रा परम विद्वान्, त्यागी स्वर्गीय श्री स्वामी उत्तमनाथ जी महाराज रा उपदेशा ऊपर, आछी तरह सूं ध्यान देकर, उणारे अनुसार आपरो जीवन वणा कर प्राणी मात्र मे समता की भावना को प्रचार करण वाला आज अगर स्वामी जी रा शिष्य-वर्ग माम सूं खोज की जावे तो केवल श्री सेठ रामगोपाल जी मोहता हीज नजर आरया है।

धनवान घर मे जन्म लेकर भोग विलास सू विरक्त रहकर जीवन को सदुपयोग करता हुया परभवरी साधना मे रत रहणो आपरा जीवन सू सीखियो जा सके है। बीकानेर नगर मे उत्पन्न होणे के कारण केवल वीकानेर तक ही आपको कार्य क्षेत्र हुवे, आ वात नही है। माहेश्वरी जाति मे जन्म लेकर ए केवल माहेश्वरी जाति रे हीज उपयोग मे आवण वाला न वणकर जनता-जनर्दन री सेवा मे आपरो जीवन दियो है। आज आपरा कार्य एव कार्य-क्षेत्रा पर कोई ध्यान देवे तो वे, केवल वीकानेर या राजस्थान तक हीज सीमित न रह कर इण सूं वारे भारतवर्ष मे भी मिले है।

गीता ऊपर अनेक विद्वताएँ आप-आपरा विचार व्यक्त किया है। पण, सेठ रामगोपाल जी मोहता ए जो 'गीता व्यवहार दर्शन' ग्रन्थ लिखियो है जो अद्वितीय है। इण उपरान्त वेदान्त पर आपका विचारा सूं परि-पूर्ण अनेक पुस्तका है।

स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, रोगी-सेवा, शिक्षा-प्रचार, इसो कोई क्षेत्र नही जिण मे आपको हाथ नही रहयो हुवे। आप चतुर्मुखी उन्नति रा इच्छुक आर परमार्थ सेवी है।

जनता री तरफ सूं आपकी सेवा वा री उचित कदर की जा रही है इण मे मैं भी आपणा विचार भेज कर अपणो कर्त्तव्य पालन करणो म्हारो फर्ज समझूं हूँ। प्रभु आपने दीर्घायु देवे।

हाकू जोशी

(आप स्वदेश भक्त, समाज सुधारक, सत्संग प्रिय तथा प्रगतिशील वृद्ध पुरुष हैं। बीकानेर शहर में एक पुस्तकालय और वाचनालय का संचालन करते हैं।)

●

६४

अपने ढंग के एक

जव मैं ग्यारह-वारह साल का था तो इलाहावाद से प्रकाशित मासिक 'चाँद' वडे चाव से पढा करता था। उसी पत्र के द्वारा मुझे सर्वप्रथम वीकानेर के सुधारवादी मोहता-परिवार तथा श्री रामगोपाल जी मोहता के नाम से परिचय हुआ। कुछ वर्षों वाद रामगोपाल जी की 'गीता का व्यवहार-दर्शन' पढ़ने को मिली। मैंने गाधी जी, तिलक, विनोवा तथा दो एक अन्य विद्वानो की गीता पर लिखी किताबें देख रक्खी थी इसलिए

'व्यवहार-दर्शन' को भी उसी दिलचस्पी से देखा। दार्शनिक गहराई उसमे साधारण-सी मालूम दी लेकिन ससार के दैनिक जीवन मे किस हद तक गीता के ज्ञान का उपयोग हो सकता है इसका उसमे वडा अच्छा और सुलझा हुआ चित्र पाया। मन पर उसकी कुछ छाप भी पडी। वणिक्-परिवार मे उत्पन्न लेखक की सूझ पर भी कुछ विचार गया। लेखक का धार्मिक ग्रन्थ से व्यवहार और काम की वातें खोजना परम्परा के अनुकूल ही लगा। एक रूप से इतना ही परिचय मेरा मोहता जी के सम्बन्ध का रहा।

उसके वाद कलकत्ता मे उनके कुटुम्बी भ्राता श्री भागीरथ जी मोहता से उनके व्यावहारिक और श्री वालचन्द जी नाहटा से उनके वौद्धिक विचारो की जानकारी मिली। सब मिलाकर श्री रामगोपाल जी के वारे मे मेरी यह धारणा बनी कि चाहे किसी का उन से कुछ बातो पर मतभेद हो वे अपने ही ढग के हैं।

मोहता जी ने अपनी व्यावसायिक प्रवृत्तियो के साथ-साथ सार्वजनिक कामो का सिलसिला भी रक्खा और खास करके शिक्षा-प्रचार, हरिजन-उत्थान और समाज-सुधार के क्षेत्रो मे उनकी अपनी कुछ देन है। उन्होने कुछ बुनियादी काम किए हैं। मेरी धारणा है कि उन्होंने जो कुछ किया वह सार्वजनिक-सेवा कार्य था और उसका अपना महत्व है।

मैंने उन्हे एक अध्ययनशील जिज्ञासु, विचारक और कर्मठ व्यक्ति के रूप मे पाया। वे साधारण वेश-भूषा रखते है और साधारण ढग से ही रहते हैं। अगर सभी धनी-मानी लोग इस तरीके पर रह सकें तो गरीबो और अमीरो की एक दूरी मिट जाय।

उनके अभिनन्दन के मौके पर मैं भी अपनी शुभकामना प्रकट करता हूँ।

शकरलाल पारीक

(लाडनू के प्रगतिशील साहित्य सेवी और उदीयमान लेखक)

●

६५

मोहता जी का तपस्वी जीवन

मेरा सेठ रामगोपाल जी मोहता से १९५२ मे परिचय हुआ। तब वे "प्रगति सघ" के स्थायी अध्यक्ष थे। उन दिनो मे निरतर दो वर्ष तक मेरा भी "प्रगति सघ" के साथ सम्पर्क रहा और मुझे उसका एक प्रमुख कार्यकर्त्ता होने का गौरव प्राप्त है। उसी नाते मोहता जी के साथ भी मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा। तब मैंने देखा कि वे किस प्रकार प्रगति सघ के काम मे तत्पर और सलग्न रहते थे। वह उनके लिए जीवन का मिशन था। आपने कभी भी किसी भी काम को धन के अभाव के कारण रुकने नही दिया। मुझ पर मोहता जी के तपस्वी सरल जीवन, वृद्धावस्था मे भी काम करने की अथक लगन व धुन, विचारो की उच्चता व पवित्रता और गम्भीर अध्ययन व विद्वत्ता का विशेष प्रभाव पडा।

गोपालदास

(प्रगति सघ के पुराने एकनिष्ठ कार्यकर्त्ता)

●

६६

एक सच्चे देशभक्त

राजनीतिक स्वतन्त्रता हमे अवश्य प्राप्त हो गई है और हम हर वर्ष इसकी खुशियाँ मनाते हैं । क्या हम को इनके लिए वास्तव मे हर्ष व आनन्द मनाना चाहिए ? क्या भारतवासी सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी उसके लिए खुशियाँ मनाने को स्वतन्त्र हैं ? ऐसे कुछ प्रश्न उन सबके सामने हैं, जो वर्तमान स्थिति पर कुछ थोडा गम्भीर विचार करते हैं ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के शुरु दिनो मे यह स्वीकार किया जाता था कि धार्मिक और सामाजिक पुनर्निर्माण हमारे स्वतंत्रता के आन्दोलन का प्रधान अग है । राष्ट्रीय नेता वडे उत्साही समाज सुधारक होते थे, जो आपस के मतभेद को मिटाकर एकता पैदा करके समता-समानता, न्याय और बन्धुभाव के आधार पर सच्चे राष्ट्रीय जीवन का विकास करना चाहते थे । परन्तु पिछले दिनो मे राष्ट्र निर्माण के इस महत्वपूर्ण पहलू की बुरी तरह उपेक्षा करदी गई, इस प्रकार जनता के वास्तविक हित की सर्वथा उपेक्षा कर दी गई और यह झूठी आशा पैदा करदी गई कि राजनीतिक स्वतन्त्रता से समाज सुधार का काम स्वत- हो जायगा ।

कुछ दूरदर्शी देशभक्त इस विषमता को समझ नहीं सके और वे जनता को सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भी स्वतन्त्र करने मे लगे रहे, उन्होंने यह अनुभव किया कि राष्ट्रीयता का निर्माण कच्ची नीव पर नहीं किया जा सकता । ऐसे विशिष्ट नेताओ की पक्ति मे सेठ रामगोपाल जी मोहता का प्रमुख स्थान है । जो कि विना किसी सकोच के अविचल भाव से गीता के समत्व योग के आदर्श का अपने आचार और विचार से निरंतर प्रतिपादन करते रहे हैं । उनका आत्म-त्याग और सेवा भाव दूसरो का भी प्रेरणा, उत्साह और सामर्थ्य देने वाला हैं । वे ऐसी वनावटी एकता मे विश्वास नहीं रखते जिसका कि आजकल दावा किया जाता है । परन्तु वे इस देश की जनता को सामाजिक दृष्टि से इस प्रकार एक हुआ देखना चाहते हैं, जिससे कि राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त वन सकता है । वे उस कुशल डाक्टर के समान है, जो कैन्सर की वीमारी को छिपाना नहीं चाहता । यदि कही हमने अपने मे आमूल चूल परिवर्तन करके अपना इलाज न किया तो हमने अपनी महानता और स्वतन्त्रता को जैसे पिछले दिनो मे खो दिया था वैसे ही कही निकट भविष्य मे भी खो न वैठें ।

हरभगवान

(लाहौर के जात पात तोड़क मडल के भूतपूर्व संगठन मंत्री, कट्टर समाज सुधारक और भारत सेवक समाज के उत्साही कार्यकर्त्ता ।)

६७

परोपकार-भाव की पराकाष्ठा

मुझे पहले पहल सेठ रामगोपाल जी मोहता का परिचय स्वर्गीय बाबू मुक्ताराम जी वकील से तब मिला जब मैं उनसे कानून पढने जाया करता था। तब मैं मित्र मडल का भी सदस्य था। वकील साहब सेठ जी की बडी तारीफ किया करते थे और उनके विधवा आश्रम के भी वे बडे प्रशसक थे। बीकानेर मे रहते हुए मैं जब भी कभी सेठ साहब के बगले के आगे से गुजरता था तब वहाँ गरीबो की भीड लगी रहती थी। उनको वे कपडे, अन्न व नगदी आदि से सहायता किया करते थे। गाँवो मे किए जाने वाले उनके सेवा कार्य की भी मुझे कुछ जानकारी थी, परन्तु तब तक भी सेठ साहब से मेरा प्रत्यक्ष परिचय नही हुआ था।

१९३४ मे मैं बीकानेर तहसीलदार बन कर आया और मुझे कोलायत जी के मेले के इन्तजाम पर भेजा गया। तब कोलयात मेला कमेटी के ठा० शार्दूलसिंह जी, जो कि बीकानेर राज्य के दीवान भी थे प्रधान थे और सेठ साहब उसके मत्री थे। वहाँ सेठ साहब से मेरा पहला प्रत्यक्ष परिचय हुआ और यह परिचय उत्तरोत्तर बढता ही गया। श्री रामदेव जी के मन्दिर मे जो कि आपका ही बनवाया हुआ है वहाँ यात्रियो के साथ बैठकर भजन, कीर्तन और सत्सग किया करते थे। बिना किसी भेदभाव के हरिजन और सवर्ण सब उसमे सम्मिलित होते थे। सेठ साहब किसी भी प्रकार के भेदभाव को नही मानते थे। मैं इससे बडा प्रभावित हुआ।

सवत् ९० मे मगरा तहसील के गाँवो मे बाढ आ गई। लोगो के मकान गिर गए। चारो ओर पानी ही पानी फैल गया। आपको जब इसका पता चला तब आपने अपने आदमी भेजकर लोगो को सिरकियो, कपडो, अनाज व नगदी आदि से बडी सहायता पहुँचाई और उनका कष्ट दूर किया।

१९५१ मे मेरे पैर मे बिवाई फटने से जो बीमारी शुरू हुई उसने धीरे-धीरे बहुत भयानक रूप धारण कर लिया। यहाँ तक कि सेप्टिक हो जाने से पैर कटवाने की स्थिति पैदा हो गई। मैंने सिविल सर्जन का कहना न मानकर अपना इलाज शुरू कर दिया और दिल्ली से दवा मगाकर उपचार करता रहा, परन्तु हालत दिन पर दिन बिगडती गई। सरकारी नौकरी मैं छोड चुका था। बच्चे छोटे-छोटे थे। अपना कोई मकान न था। किराये के मकान का किराया चुकाना भी दूभर हो गया। भैसावाडा मे मैंने मकान के लिए एक जमीन खरीदी हुई थी वहाँ अपना मकान बनाने का विचार किया और सिरकियाँ डालकर वहाँ रहना शुरू कर दिया। अपने पुराने मित्रो और साथियो से मैंने कुछ उधार लेने की कोशिश की, परन्तु उस बीमारी मे किसी ने भी मेरी सहायता नही की। सबने यही समझा कि पैर की बीमारी के कारण मैं मर गया तो उनका पैसा डूब जायगा। मुझे मालूम था कि सेठ साहब के यहाँ से कोई निराश नही लौट सकता और मैं वहाँ जाऊँ तो मुझे भी निराश नही होना पडेगा। परन्तु सवाल यह था कि मैं कैसे उनके पास जाऊँ। मेरा उनसे कोई घनिष्ठ परिचय न था। एक दिन बहुत दुखी और निराश होकर मैंने अपनी पत्नी के साथ परामर्श किया और अत मे अपने लडके को भेज कर सेठ साहब के विश्वसनीय मुनीम जी पूनमचन्द जी को बुलाया और उनको सारी कहानी कह दी। उन्होंने मेरी हालत देखी और बिना कुछ कहे सुने चुपचाप उठ कर चले गये।

मुझे आजतक भी नही मालूम कि उन्होने सेठ साहब से जाकर क्या कहा, परन्तु दूसरे दिन क्या देखता हूँ कि ईंटो से भरी लौरियाँ मेरे स्थान पर आ खडी हुईं और मुनीम जी चलुवा (राज मिस्त्री) को साथ लेकर आ पहुँचे। वे मुझ से बोले कि सेठ साहब ने मकान बनवाने का आदेश दिया है। मैं असमजस मे पड गया। मैंने यह सोचा था कि सेठ साहब रुपये पैसे से जो सहायता करेंगे, वह मैं बाद मे लौटा दूंगा। परन्तु इस प्रकार

वनाए गए मकान का क्या हिसाव रखा जाता और किस रूप मे उसको लौटाया जा सकता । मैंने ऐसा ही मुनीम जी से कह दिया। मुनीम जी ने लौट कर सेठ साहव से मेरी ओर से निवेदन किया, तो उन्होंने मेरी इच्छानुसार रुपये भिजवा दिए और उनके लिए कोई लिखा पढी नही की । मैं और मेरी पत्नी दोनो यह देखकर चकित रह गये । जिन लोगो के मैं सरकारी नौकरी के दिनो मे कुछ काम आया था, उन्होने मुझे वडे लम्वे चौडे भरोसे दिलाये थे, परन्तु इस समय उनमे से कोई भी सीधे मुंह वात करने को तैयार न था । मैं सवके यहाँ गया और निराश होकर लौट आया । सेठ साहव की तो मैंने कुछ भी सेवा न की थी और उनसे मुझे मुंह माँगी सहायता मिल गयी।

आपके इस उपकार को मैं कभी भी भूल नही सकता । आपके इस उपकार-भाव से जो स्नेह सम्वन्ध आपके साथ कायम हुआ वह उत्तरोत्तर वढता ही गया ।

इसी वीच एक दुर्घटना और घट गई । जोरो को वर्षा हुई । मेरे झोपडे के चारो ओर पानी ही पानी जमा हो गया । झोपडे मे आराम से वैठना भी मुश्किल हो गया । कर्नल महाराज भैरोंसिह जी मोटर पर आए और सडक से ही मेरी दुर्दशा पर हँसकर चल दिए । इसी प्रकार की सहानुभूति दिखाने वालो की कुछ कमी न थी। परन्तु मुनीम पूनमचन्द जी फिर सेठ साहव की ओर से चारपाइयाँ और सिरकियाँ लेकर उपस्थित हुए । सेठ साहव की दयालुता की यह चरम सीमा थी । सच है आपत्ति मे सगे सम्वन्धी और मित्र भी पराये वन जाते है।सेठ साहव सरीखा दयालु तो कोई विरला ही मिलता है । उनके प्रति मेरे हृदय मे जो आदर भाव पैदा हुआ उसका वर्णन शव्दों नही किया जा सकता ।

मेरे भाग्य ने पलटा खाया । वीमारी ठीक हुई और स्थिति भी कुछ सभल गई । मैं सेठ साहव की रकम उनको लौटाने गया । उन्होने लेने से इनकार कर दिया । मेरे वहुत विनय करने पर वे रुपये वापस लेने को सहमत हुए और मुझे उन्होने समझाया कि आप समझते नही । मैंने आपके साथ कोई उपकार नही किया। आपके और मेरे पूर्व सस्कार ही ऐसे थे जिन्होने यह सव करवाया । मुझ पर उनके विचारो का वडा प्रभाव पडा । मैंने जिस किसी को भी सेठ साहव की दयालुता और उदारता की यह आपवीती सुनाई तो सभी ने वडा आश्चर्य प्रगट किया और कुछ ने तो उस पर विश्वास भी नही किया ।

आज मैं प्राय पूरी तरह स्वस्थ हूँ । जिन्होने मुझे पैर कटवाने की सलाह दी थी वे मुझे उस पैर से चलता फिरता देख आश्चर्य करते हैं। सेठ साहव की कृपा से मकान भी वन गया । अपने को मैं वडा भाग्य-शाली मानता हूँ । मैं अपनी नौकरी के दिनो मे वीकानेर राज्य के अनेक शहरो मे रहा और वडे वडे सेठ साहू-कारो से मेरा सम्पर्क हुआ । परन्तु दुख मे गरीवो का साथ देने वाला आप सरीखा सेठ मैंने नही देखा । मैंने आपके उपकार का वदला इस रूप मे चुकाने का निश्चय कर लिया कि अच्छा होने पर अपने को गरीवो की सेवा मे लगा दूंगा और आज मैं भी हरिजनो की सेवा करके अपने को धन्य मान रहा हूँ । यह तो हमारे अपने ही पापो का प्रायश्चित है ।

इस प्रकार सेठ साहव की कृपा से मेरे जीवन का भी सुधार हुआ । न मालूम उन्होने कितनो के जीवन का सुधार किया होगा । भगवान उनको चिरायु करे और वे मुझ सरीखो के जीवन का सुधार करते रहे ।

चन्द्रसिह

(आप वीकानेर राजघराने से सम्वन्धित राजवी सरदारों में से हैं । आपने अपने को कष्ट मे डालकर भी सत्यमार्ग का कभी त्याग नहीं किया । राज्य मे आपने पुलिस में वर्षों तहसीलदार रहकर काम किया और धर्मादा विभाग मे उत्तरदायी पद पर रहे । आप सरीखे सत्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी कम ही दीख पड़ते हैं ।)

६८

गीता का व्यवहार दर्शन

लगभग बीस-बाईस वर्ष पहले की बात है, जब श्रीमद्भगवद्गीता पर उपर्युक्त नाम की एक व्याख्या दृष्टिगोचर हुई । तब तक सरकारी परीक्षाओ, अन्य प्रसगो तथा रुचि के कारण गीता के अनेक प्राचीन नवीन व्याख्यानो का मैं अध्ययन कर चुका था । उस समय बाल्यकाल से उपचित अपनी भावनाओ के कारण हिन्दी मे लिखी पुस्तको की ओर मेरा आकर्षण नही की बराबर था । 'गीता रहस्य' के अतिरिक्त गीता पर हिन्दी मे अन्य कोई व्याख्या-ग्रन्थ मैंने नही पढा था । अपने स्वभाव के अनुसार 'व्यवहार दर्शन' के सन्मुख आते ही मैंने उसे आधे पौने घण्टे तक इधर-उधर पन्ने लौटकर और जहाँ-तहाँ से जायजा लेकर आलमारी मे पुस्तको के साथ सजा दिया ।

उन दिनो मैं देहरादून रहता था । कुछ महीनो बाद मेरे एक पुराने मित्र प० बलवन्तसिंह शर्मा उधर पधारे और मेरे साथ ठहरे । उन दिनो वे सन्यास आश्रम मे प्रवेश कर चुके थे । अब उनका नाम स्वामी विश्वानन्द था । इस आश्रम मे प्रविष्ट होने के अनन्तर मेरे लिये उनके ये पहले ही दर्शन थे, उनके उस वेष तथा आश्रम परिवर्तन से मुझमे कुछ प्रतिक्रिया होनी आवश्यक थी । उनके प्रति मेरी मित्रता और समानता का भाव ओझल हो रहा था और अपने कुल परम्परागत उपचित सस्कार मेरे हृदय मे एक अभिनव श्रद्धा और भक्ति की भावना को उभार रहे थे । उनको मैंने बडी आवभगत के साथ ठहराया । जल्दी ही एक दिन उन्होने गीता की व्यवहार दर्शन सम्बन्धी व्याख्या के विषय मे चर्चा छेडी और उसे आद्योपान्त पढने के लिए आग्रह किया । उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने अगले कुछ महीनो मे उस समस्त व्याख्या-ग्रन्थ का पारायण किया, और उसके अनन्तर अनेक अवसरो पर विभिन्न स्थलो का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन किया है । उन्ही दिनो व्यवहार दर्शन की भावना के अनुसार मैंने पाँच-छ अध्यायो पर सक्षिप्त व्याख्या भी लिखी, जिसका उपयोग गीता-भक्त जनता पाठमात्र के लिये कर सके, परन्तु कतिपय अनिवार्य बाधाओ के कारण वह कार्य अधूरा रह गया और प्रकाश मे न आ सका ।

पर्याप्त समय से विद्वज्जन समुदाय मे ऐसी भावना घर किये प्रतीत होती है कि गीता मानव जीवन के व्यावहारिक स्वरूप को छुडाकर घरबार से अलग कर जगल की ओर चले जाने को प्रवृत्त कर देती है । गीता-ध्यायी व्यक्ति ससार के किसी काम का नही रह जाता । परन्तु जन-समुदाय की ऐसी भावना कहाँ तक ठीक रही है, देखना चाहिये ।

गीता मे जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा किये गये वर्त्तमान गीता-प्रवचन के पहले अज्ञात था, ऐसी बात नही है । यह विचार गीता के आधार पर ही स्पष्ट हो जाता है । इसकी सिद्धि या पुष्टि के लिये अन्यत्र से कोई प्रमाण खोजने के परिश्रम की अपेक्षा नही रहती ।

गीता की समत्व भावना का प्रभाव जब तक भारतीय समाज मे रहा, तब तक देश सुख-समृद्धि एव धन्यधान्य सौजन्य आदि से परिपूर्ण रहा । उसका ह्रास होने पर देश मे कलह एव सघर्ष की भावना जागृत हो गई । भगवान श्रीकृष्ण के जन्म का काल ऐसा ही था । समाज की दुरवस्था से खिन्न होकर उन्होंने अपना समस्त जीवन देश व समाज के एक सच्चे नेता के समान इसी दिशा मे लगा दिया । सकल सामाजिक व्यवहारो मे अध्यात्म की भावना को कभी भी न भूल जाने का मूल मन्त्र समाज को प्रदान किया । गीता मे जिस व्यवहार दर्शन का प्रतिपादन किया गया है, उसका वास्तविक स्वरूप यही है कि आत्मा की इस आधिभौतिक अवस्था मे—जबकि वह ससार के समस्त व्यवहारो मे लीला विलास किया करता है—अध्यात्म को किञ्चित् भी विस्मृत न किया जाय, अधिभूत और अध्यात्म का सामञ्जस्य ही गीता का व्यवहार दर्शन है । अधिभूत अध्यात्म

से बाहर नही और केवल अध्यात्म अधिभूत के बिना असफल है। इस तत्व को समझकर जब समाज आचरण करता है, तब वह ईर्ष्या द्वेष, कलह, संघर्ष, परपीडा आदि पापो से बचा रहता है और अभ्युदय तथा आनन्द के मार्ग को प्रशस्त करता है।

द्वापर के अन्त मे भगवान् कृष्ण के द्वारा गीता के रूप मे इन भावनाओ का प्रवचन होने पर भी कालान्तर मे इस परम्परा के पुन उच्छिन्न होने से गीता के व्याख्याकारो ने गीता को केवल अध्यात्म की प्रतिपादक समझकर उसके वास्तविक लक्ष्य व्यवहार दर्शन को दृष्टि से ओझल कर दिया, और समझ लिया गया कि गीता जीवन व्यवहार को छुडाकर जगल मे चले जाने का उपदेश करती है। पर वस्तुत देखा जाय, तो गीता सम्बन्धी इन विचारो का प्रत्याख्यान स्वय गीता के द्वारा ही हो जाता है। अर्जुन अपने कर्त्तव्य को भुलाकर और छोडकर जगल को भागना चाहता है, इसके विपरीत गीता का प्रवचन उसे अपने कर्त्तव्य मे तत्पर कराता है। आगे समस्त जीवन वह अपने कर्त्तव्यो को इसी व्यवस्था के अनुसार सम्पन्न करता है। भगवान् कृष्ण के जन्म से बहुत पूर्व प्राचीन काल मे अनेक जनक आदि राजर्षियो ने अपनी समस्त जीवन-व्यवस्थाओ को इन्ही आदर्शो पर आरूढ रखा, यह इतिहास मे स्पष्ट जाना जाता है। गीता [३-२०] मे स्वयं इस प्रकार उल्लेख किया गया है। गीता के इस व्यवहार दर्शन को मनस्वी श्री रामगोपाल जी मोहता ने अपनी व्याख्या मे अद्भुत रूप मे प्रकट किया है। वस्तुत पूर्ववर्त्ती व्याख्याकार एक निराधार रूढिवाद के नीचे दबे रहे हैं, जिसका परित्याग न करने के कारण गीता के इस उज्जवल रूप को वे प्रत्यक्ष न कर पाये।

व्यवहार दर्शन का यही वास्तविक आधार है। जिस प्रकार आदिकाल मे गीता की भावनाओ का प्रवचन विवस्वान ने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को किया, अनन्तर अनेकानेक राजर्षियो तपस्वियों समत्वयोगी भक्तो के द्वारा आचरण किया जाता हुआ गीता धर्म धीरे-धीरे प्रमाद आलस्य आदि के कारण नष्ट हो गया। विषय-लम्पट लोग उसकी ओर से विमुख हो गये। गीता-धर्म के लोप के कारण लोगो मे परस्पर वैमनस्य, संघर्ष, लडाई-झगडे होकर दुःख और कलह का साम्राज्य छा गया, जनता अपने कर्त्तव्य को छोड बैठी, ऐसे समय मे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लक्ष्य कर मानव मात्र के लिये गीता धर्म का पुन प्रवचन किया। वह धर्म-सरिता कालान्तर मे व्याख्याकारो की रूढिवादिता के कारण आविल होकर जनता के लिये सन्मार्ग बताने के स्थान पर उन्मार्ग की व्यञ्जक बनकर तारने के बजाय डुबाने का साधन बनने लगी। तब गीता के श्री मोहता जी द्वारा किए गए प्रस्तुत व्याख्यान ने व्यवहार दर्शन की वास्तविकता को प्रकट कर गीताधर्म के वस्तु-स्वरूप का उद्घाटन किया है। इस रूप मे पाठक व्याख्यान की आत्मा को समझने और आचरण करने का प्रयत्न करें, तो लोक-संग्रह के साथ कल्याण के भागी बन सकते हैं और मोहता जी का जीवन प्रयत्न सार्थक हो सकता है। इस प्रयत्न के लिए सकल्प करना ही मोहता जी का वास्तविक अभिनन्दन हो सकता है।

उदयवीर शास्त्री

(शास्त्री जी बीकानेर की प्रमुख शिक्षा संस्था श्री शार्दूल ब्रह्मचर्याश्रम के लोकप्रिय आचार्य हैं। प्रगतिशील विचारो के, सरल व सहृदय स्वभाव के सेवा भावी व्यक्ति हैं। संस्कृत और वैदिक साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् और शिक्षा-प्रेमी होने से आपने शिक्षा-प्रसार को अपना जीवन-व्रत बना लिया है। प्राचीन शास्त्रों का आपने उदार और प्रगतिशील दृष्टि से अध्ययन किया है। श्री शार्दूल ब्रह्मचर्याश्रम में शिक्षा के प्राचीन आदर्श के साथ वर्त्तमान प्रणाली का समन्वय किया गया है। शास्त्री जी के व्यक्तिगत जीवन मे भी उस समन्वय का एक सुन्दर उदाहरण पाया जाता है।)

६८

गीता का व्यवहार दर्शन

लगभग बीस-बाईस वर्ष पहले की वात है, जव श्रीमद्भगवद्गीता पर उपर्युक्त नाम की एक व्याख्या दृष्टिगोचर हुई । तब तक सरकारी परीक्षाओ, अन्य प्रसगो तथा रुचि के कारण गीता के अनेक प्राचीन नवीन व्याख्यानो का मैं अध्ययन कर चुका था । उस समय वाल्यकाल से उपचित अपनी भावनाओ के कारण हिन्दी में लिखी पुस्तको की ओर मेरा आकर्षण नही की वरावर था। 'गीता रहस्य' के अतिरिक्त गीता पर हिन्दी मे अन्य कोई व्याख्या-ग्रन्थ मैंने नही पढा था। अपने स्वभाव के अनुसार 'व्यवहार दर्शन' के सन्मुख आते ही मैंने उसे आधे पौने घण्टे तक इधर-उधर पन्ने लौटकर और जहाँ-तहाँ से जायजा लेकर आलमारी मे पुस्तको के साथ सजा दिया ।

उन दिनो मैं देहरादून रहता था । कुछ महीनो बाद मेरे एक पुराने मित्र प० वलवन्तसिंह शर्मा उधर पधारे और मेरे साथ ठहरे । उन दिनो वे सन्यास आश्रम मे प्रवेश कर चुके थे । अव उनका नाम स्वामी विश्वानन्द था । इस आश्रम मे प्रविष्ट होने के अनन्तर मेरे लिये उनके ये पहले ही दर्शन थे, उनके उस वेप तथा आश्रम परिवर्तन से मुझमे कुछ प्रतिक्रिया होनी आवश्यक थी । उनके प्रति मेरी मित्रता और समानता का भाव ओझल हो रहा था और अपने कुल परम्परागत उपचित सस्कार मेरे हृदय मे एक अभिनव श्रद्धा और भक्ति की भावना को उभार रहे थे । उनको मैंने बडी आवभगत के साथ ठहराया । जल्दी ही एक दिन उन्होने गीता की व्यवहार दर्शन सम्बन्धी व्याख्या के विषय मे चर्चा छेडी और उसे आद्योपान्त पढने के लिए आग्रह किया । उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मैंने अगले कुछ महीनो मे उस समस्त व्याख्या-ग्रन्थ का पारायण किया, और उसके अनन्तर अनेक अवसरो पर विभिन्न स्थलो का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन किया है । उन्ही दिनो व्यवहार दर्शन की भावना के अनुसार मैंने पाँच-छ अध्यायो पर सक्षिप्त व्याख्या भी लिखी, जिसका उपयोग गीता-भक्त जनता पाठमात्र के लिये कर सके, परन्तु कतिपय अनिवार्य वाधाओ के कारण वह कार्य अधूरा रह गया और प्रकाश मे न आ सका।

पर्याप्त समय से विद्वज्जन समुदाय मे ऐसी भावना घर किये प्रतीत होती है कि गीता मानव जीवन के व्यावहारिक स्वरूप को छुडाकर घरबार से अलग कर जगल की ओर चले जाने को प्रवृत्त कर देती है । गीताध्यायी व्यक्ति ससार के किसी काम का नही रह जाता । परन्तु जन-समुदाय की ऐसी भावना कहाँ तक ठीक रही है, देखना चाहिये ।

गीता मे जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा किये गये वर्त्तमान गीता-प्रवचन के पहले अज्ञात था, ऐसी बात नही है । यह विचार गीता के आधार पर ही स्पष्ट हो जाता है। इसकी सिद्धि या पुष्टि के लिये अन्यत्र से कोई प्रमाण खोजने के परिश्रम की अपेक्षा नही रहती ।

गीता की समत्व भावना का प्रभाव जव तक भारतीय समाज मे रहा, तव तक देश सुख-समृद्धि एव धन्यधान्य सौजन्य आदि से परिपूर्ण रहा । उसका ह्रास होने पर देश मे कलह एव सघर्प की भावना जागृत हो गई । भगवान श्रीकृष्ण के जन्म का काल ऐसा ही था । समाज की दुरवस्था से खिन्न होकर उन्होंने अपना समस्त जीवन देश व समाज के एक सच्चे नेता के समान इसी दिशा मे लगा दिया । सकल सामाजिक व्यवहारो मे अध्यात्म की भावना को कभी भी न भूल जाने का मूल मन्त्र समाज को प्रदान किया । गीता मे जिस व्यवहार दर्शन का प्रतिपादन किया गया है, उसका वास्तविक स्वरूप यही है कि आत्मा की इस आधिभौतिक अवस्था मे—जवकि वह ससार के समस्त व्यवहारो मे लीला विलास किया करता है—अध्यात्म को किञ्चित् भी विस्मृत न किया जाय, अधिभूत और अध्यात्म का सामञ्जस्य ही गीता का व्यवहार दर्शन है । अधिभूत अध्यात्म

बालक आश्रम और विधवा आश्रम समस्त भारत मे अपने ढग की पहली सस्था है। अन्य हिन्दू तीर्थो के समान पढरपुर मे भी हिन्दू समाज के पाप की शिकार अनेक विधवाएँ और कुमारी कन्याएँ भी अपनी लाज बचाने के लिए वहाँ पहुँच जाती हैं और उनको तथा उनकी सन्तान को जो सुरक्षा इस सस्था द्वारा प्रदान की जाती है वह हिन्दू समाज की सबसे बडी सेवा है। इसी प्रकार महर्षि कर्वे ने विधवाओं की सेवा को अपना जीवन व्रत बनाकर महिला विश्वविद्यालय के रूप मे पूना के समीप हिंगणे मे जिस महान् यज्ञ का अनुष्ठान किया है वह भी साधनामयी सेवा का अन्यतम उदाहरण है। मोहता जी जब इन संस्थाओं को देखने के लिए गए तब मैं भी उनके साथ था। पूना मे आप आचार्य कर्वे के महिला विश्वविद्यालय को देखने के लिए ही विशेष रूप से ठहरे थे। आपके साथ स्वर्गीय, स्वनामधन्य सेठ रामकिशन जी मोहता भी थे। वे भी आप सरीखे ही कट्टर समाज सुधारक, उदार, सहृदय और समाज सेवी भावना के अत्यन्त प्रगतिशील स्वभाव के देवता स्वरूप व्यक्ति थे। जीवन के अंतिम दिनो मे इनको जिन विषम परिस्थितियों का सामना करना पडा उनके कारण उनका यथेष्ट उत्कर्ष और विकास नही हो सका, अन्यथा वे भी अपने जीवन काल मे एक इतिहास का निर्माण कर गए होते। आप दोनो ने उन सस्थाओ के कार्य मे केवल कोरी सहानुभूति ही नहीं दिखाई, अपितु उनको उदार सहायता भी प्रदान की। मैंने दोनो ही भाइयो मे उन दिनो मे जिस प्रगतिशील व्यक्तित्व के दर्शन किए थे उसकी छाप आज भी मेरे हृदय पर वैसी ही बनी हुई है।

: ४ :

१६२८ मे स्वर्गीय सेठ रामकिशन जी मोहता के ही आग्रह पर मैं कलकत्ता गया था और उनके सहयोग से सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्य से "नवयुग" नाम से एक मासिक पत्र प्रकाशित करना शुरु किया था। उसके लिए मोहता जी की भी जो सहानुभूति और सहायता मुझे प्राप्त हुई वह सहज और स्वाभाविक थी। नमक सत्याग्रह के सिलसिले मे मैं जेल चला गया और "नवयुग" बन्द हो गया। "नवयुग" की विचारधारा इतनी उग्र थी कि कुछ आर्य समाजी भी उस पर आपत्ति करते देखे गए। परन्तु मोहता जी का सहयोग और समर्थन उग्र सामाजिक क्रांतिकारी विचारो को अनायास ही प्राप्त हो जाता था।

: ५ :

उसके बाद १६३४ मे बिहार भूकम्प के राहत कार्य के सिलसिले मे मुझे एकबार फिर मोहता जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। बिहार जाने पर यह देखकर मैं चकित रह गया कि वहाँ परदा प्रथा की कठोरता और हृदयहीनता के कारण महिला समाज की स्थिति मारवाड़ी महिलाओ की स्थिति से भी कही अधिक दीन हीन और पराधीन थी। सारे बिहार मे राहत कार्य करने वाली एक भी महिला नही थी और जो बाहर से गयी, उनको प्राय पटना से ही वापस लौटा दिया गया। हम कुछ साथियो ने, जिनमे वर्तमान केन्द्रीय श्रम उप-मत्री भाई आबिद अली मुख्य थे बिहारियो की महिलाओ के प्रति मनोवृत्ति के विरुद्ध चुपचाप एक षड्यन्त्र रच लिया और यह निश्चय किया कि एक केन्द्र ऐसा कायम किया ही जाना चाहिए जिसकी संचालिका कोई महिला हो। प्रगट रूप मे ऐसा करना प्राय असम्भव था। इसलिए चुपचाप यह सारी कार्रवाई की गई। मेरी पत्नी श्रीमती सुभद्रा देवी को भाई आबिद अली ने तार देकर बुला लिया और मुज़फ्फरपुर से १२-१३ मील की दूरी पर रामपुरहरि मे ४०-४५ गाँवो का एक केन्द्र कायम करके उनको वहाँ बिठा दिया गया। यह भी तय कर

६९

मोहता जी का चरित्र और स्वभाव

: १ :

सम्भवत १९२२-२३ की बात है मैं नागपुर से निकलने वाले साप्ताहिक "मारवाडी" का सम्पादन करता था। व्यावर के देशभक्त सेठ दामोदर दास जी राठी के साथी स्वर्गीय श्री रामनारायण जी राठी उन दिनो मे इने गिने समाज सुधारको मे अग्रणी स्थान रखते थे। इसी भावना से उन्होने इस पत्र को प्रारम्भ किया था। मनस्वी श्री मोहता जी की लिखी हुई "सात्विक जीवन" पुस्तक की एक प्रति पत्र के कार्यालय मे समालोचना के लिए प्राप्त हुई। मैं उसको आदि से अत तक पढ गया और मैंने एक पेन्सिल लेकर उसमे कितने ही स्थानो पर कुछ नोट लिख डाले। वाद मे उन नोटो के आधार पर एक लम्बा पत्र मोहता जी को लिख दिया। मोहता जी से उत्तर मे अत्यन्त सहृदयतापूर्ण पत्र प्राप्त हुआ। यह मेरा मोहता जी के साथ पहला अप्रत्यक्ष परिचय था।

"मारवाडी" पत्र के सम्पादक के अलावा भी मेरा मारवाडी समाज के साथ अग्रवाल महासभा और माहेश्वरी महासभा के कारण कुछ विशेष सम्पर्क हो गया था। मैं उनके कई अधिवेशनो मे सम्मिलित हुआ था। उनमे अनेक प्रगतिशील लोगो के सम्पर्क मे आने का अवसर मुझे मिला था। परन्तु "सात्विक जीवन" के लेखक के नाते मोहता जी मे जिस अध्यात्म दृष्टि का परिचय मिला वह मारवाडी समाज मे मेरे लिए सर्वथा नवीन था। साधारण रूप से मारवाडी समाज के सम्बन्ध मे यह भावना पैदा हो गई है कि वह सेठ साहूकारो व पूंजीपतियो का समाज है और ऐसे लोगो का आध्यात्मिकता के साथ कोई सम्बन्ध हो नही सकता। मोहता जी इस भावना अथवा धारणा के मुझे अपवाद प्रतीत हुए।

२ :

मोहता जी के दर्शन करने का पहला अवसर १९२६ मे पढरपुर मे मिला। वहाँ आप अखिल भारत-वर्षीय माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष होकर आये थे। माहेश्वरी समाज मे कोलवार आन्दोलन का जो तूफान खड़ा हुआ था उसके कारण इस अधिवेशन को विशेष महत्व प्राप्त हो गया था। वैसे पहले भी दो एक बार मोहता जी को महासभा के अध्यक्ष चुनने की चर्चा वार्ता चली थी, परन्तु आप ऐसे सुधारक समझे गये, जिनको तब समाज पचा न सकता था, केवल इसी कारण तब आप अध्यक्ष पद के योग्य न समझे गए। कोलवार आन्दोलन का यह प्रत्यक्ष परिणाम था कि मोहता जी के कुछ अधिक उग्र सुधारक हो जाने पर भी आपको पढर-पुर में अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिए वाध्य किया गया। वहाँ आपकी गम्भीरता, सरलता, सहृदयता और सुधारक भावना का जो प्रत्यक्ष परिचय मिला उससे मैं सहज ही मे आपकी ओर आकर्षित हो गया।

३ :

माहेश्वरी महासभा के अध्यक्ष पद के दायित्व को निभाने के साथ साथ आपने पढरपुर और पूना की समाज सुधारक सस्थाओ के काम मे जो दिलचस्पी ली वह मेरे लिए कुछ अधिक कौतुकपूर्ण थी। पढरपुर का अनाथ

खाना शुरू कर दिया। एक बडा काम शुरू होते-होते रह गया। उन दिनो के सरकारी प्रतिबन्धो के कारण कोई नया पत्र पत्रिका शुरू करना अत्यन्त कठिन हो गया था। मैं लगभग १५ दिन कराची मे क्लिफ्टन पर बने हुए "मोहता पैलेस" मे ठहरा था। परन्तु मोहता जी शहर मे अपने कपडे के मार्केट मे ही एक कोने के कमरे मे वानप्रस्थियो की तरह अनासक्त भाव से कुछ अलिप्त सी स्थिति मे रहते थे। वैसे आप अपने काम काज की देख रेख अवश्य करते थे, किन्तु आपका जीवन और रहन सहन भोगैश्वर्य मे सर्वथा अलिप्त था। बीकानेर मे भी आपकी सरलता और सादगी का मुझ पर विशेष प्रभाव पडा था। परन्तु कराची मे तो मैंने यह अनुभव किया कि सरलता और सादगी आप के स्वभाव सिद्ध गुण बन गए हैं। आप के कराची के वैभव की चर्चा करने की आवश्यकता नही है। वहाँ आप "आयरन किंग" के नाम से प्रसिद्ध थे और वर्त्तमान कराची के निर्माता, उद्योग पतियो तथा व्यवसाइयो मे आप का पहला स्थान था। केवल मकानो व दुकानो के किराये की मासिक आमदनी का अनुमान एक लाख रुपया लोग लगाया करते थे। ऐसे वैभव मे भी "पद्मपत्र मिवाम्भसा" की गीता की उक्ति का आप के जीवन और रहन सहन पर चरितार्थ होना मेरे लिए कम विस्मय की बात नही थी।

: ८ :

दो एक और घटनाएँ भी देनी आवश्यक हैं। उन से जहाँ मेरे प्रति मोहता जी के विश्वास का पता चलता है वहाँ आपके चरित्र और स्वभाव पर भी उनसे अच्छा प्रकाश पडता है। "गीता का व्यवहार दर्शन" प्रकाशित होने पर एक बडा पार्सल कराची से मुझे भेज दिया गया—इस उद्देश्य से कि पुस्तको को लागत मूल्य पर गीता के प्रति अनुराग रखने वालो को दे दिया जाय। सारी पुस्तकें हाथो हाथ निकल गईं। "गीता विज्ञान" के १०-१० हजार के दो संस्करण और "गीता का व्यवहार दर्शन" का १० हजार का तीसरा सस्करण दिल्ली से मेरी देख-रेख मे मुद्रित करवाया गया और बिक्री के लिए "गीता विज्ञान कार्यालय" के नाम से एक केन्द्र भी दिल्ली मे कायम कर दिया गया। कुछ समय बाद यह कार्यालय बीकानेर चला गया। परन्तु आज तक भी पुस्तको के लिए पत्र प्राय प्रतिदिन आते रहते हैं। बिना विज्ञापन और आन्दोलन के पुस्तको की यह बिक्री उनकी उपयोगिता और लोकप्रियता का प्रबल प्रमाण है। इसमे कुछ भी सन्देह नही कि मोहता जी की पुस्तकें स्वत मे अपना विज्ञापन हैं। जो कोई भी पढा लिखा उनको दूसरो के हाथो मे देखता है उसमे उनको प्राप्त करने की इच्छा स्वत ही पैदा हो जाती है। दक्षिण के अहिन्दी क्षेत्रो मे इनका बहुत अच्छा प्रसार होना साधारण बात नही है।

: ९ :

श्री रामरखसिंह सहगल के स्वर्गवास के बाद "चाँद" कार्यालय का काम बिखर गया और सरकारी रिसीवर नियुक्त होकर सारे सामान के नीलाम होने की स्थिति पैदा हो गई। कुछ लोगो ने मोहता जी को वह सब सामान लेकर साझे मे काम करने के लिए तैयार कर लिया। कराची से मुझ को पत्र मिला कि मुझे इलाहाबाद जाकर आप के प्रतिनिधि को मशीनो आदि के सम्बन्ध मे वस्तुस्थिति की जानकारी देनी चाहिए। वहाँ जाने पर मुझे नयी साझेदारी का पता चला और यह भी मालूम हुआ कि साझे का काम निभेगा नही और उसमे काफी घाटा रहेगा। मैंने आप के प्रतिनिधि से बातचीत करके एक लम्बा तार आप को उस साझेदारी के विरोध मे दे दिया। दूसरे दिन मुझे उत्तर मिला कि हमे अपने वचन का पालन करना ही चाहिए। साझे मे

लिया गया था कि यदि बिहार रिलीफ कमेटी की ओर से उस केन्द्र के लिए पैसा न मिल सका, तो इधर-उधर से पैसा बटोर कर उसको चलाया जायगा। यह सन्देह इसलिए था कि उस केन्द्र की स्थापना बिहार रिलीफ कमेटी की स्वीकृति के बिना की जा रही थी। उसी के समीप वेदौल मे एक दूसरे केन्द्र मे मैं काम कर रहा था। उस केन्द्र का सचालन शुरू मे कलकत्ता मे कायम की गई एक रिलीफ कमेटी करती थी। इसलिए जब मैं कलकत्ता गया तब रामपुरहरि केन्द्र के लिए कुछ सहायता इकट्ठी कर लाया। उसके लिए मैं मोहता जी से भी मिला तो आपनें बिहार मे महिलाओ की स्थिति सुनते ही बडी सहानुभूति प्रगट की और मुझे एकाएक पांच सौ रुपये दे दिए। वैसे आप एक बडी रकम पहले ही पटना भेज चुके थे। महिलाओ के प्रति आपकी उदार भावना का मेरे लिए पहला प्रत्यक्ष परिचय था। परन्तु उससे पहले इलाहाबाद के मासिक पत्र "चाँद" और "अबलाओ का इन्साफ" पुस्तक को लेकर कलकत्ता के मारवाडी समाज मे आपके विरुद्ध जो आन्दोलन हुआ था उससे मैं कलकत्ता मे ही रहने के कारण भली प्रकार परिचित था और मैं यह भी जान गया था कि महिलाओ की सेवा व उद्धार के लिए मोहता जी लोकापवाद की कितनी बडी झोकी सहज मे सरल भाव से झेल सकते हैं।

६

१९३६ मे मैं दैनिक "हिन्दुस्तान" का सम्पादक होकर दिल्ली चला आया और दिल्ली आने के बाद मुझे मोहता जी के अत्यन्त निकट आने का अवसर मिल गया। आपके और मेरे सामाजिक विचार पूरी तरह मेल खाते थे और आपके गीता सम्बन्धी व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी मेरे विचारो का सामञ्जस्य था। अनेक बार बीकानेर और एक बार कराची जाकर कई दिन आपके साथ रहने का भी प्रसग उपस्थित हुआ। बीकानेर मे जब भी कभी मैं गया तो मैंने वहाँ आपको सदा ही हरिजनो और अकाल पीडितो की सेवा मे सलग्न पाया। बीकानेर के आसपास के तालावो की खुदाई और कोलायत जी मे भी तालाव की खुदाई का काम सरकारी ठेके के काम से कही अधिक व्यवस्थित, नियमित और सतोषजनक रूप मे होता देख कर आपकी सेवा परायणता का सहज ही मे स्पष्ट परिचय मिल जाता था। मिट्टी खोदने वाले अकाल पीडित आपके ही कारण बडी तन्मयता और तत्परता के साथ उस काम को अपने ही घर का काम समझ कर करते देखे गए। किसी के भी चेहरे पर उदासी, निराशा अथवा दुख की कोई रेखा दीख न पडती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि बीकानेर आकर और मोहता जी को पाकर सहज ही मे वे अपने सारे ही दुख दारिद्र्य को भूल गये थे। सरकार की ओर से चलने वाले राहत कार्य भी मैंने अनेक स्थानो पर देखे, परन्तु आत्मीयता का जो वातावरण बीकानेर मे राहत कार्य मे दीख पडा वह कही भी दीखने मे नही आया। वहाँ सब ओर मोहता जी की आत्मीयता, सहृदयता और सहानुभूति छायी दीख पडती थी। सत्सग का कार्यक्रम तो प्रतिदिन दुपहर को अव्याहत रूप से चलता ही था।

७

कराची मैं एक विशेप उद्देश्य से बुलाया गया था। मोहता जी का देर से विचार था कि प्रगतिशील विचारो का एक सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखने वाला मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय। कराची मे उनके लिए योजना तैयार की गई और "सूर्य" नाम से एक मासिक पत्र निकालने का निश्चय किया गया। मैं कराची से लौटकर अभी जोधपुर ही पहुँचा था कि १९३९ के सितम्बर मास मे योरुप मे दूसरे विश्वव्यापी महायुद्ध की घटायें छा गई और दिल्ली पहुँचते न पहुँचते देश की राजनीतिक परिस्थिति ने बहुत तेजी से पलटा

खाना शुरू कर दिया। एक वडा काम शुरू होते-होते रह गया। उन दिनो के सरकारी प्रतिवन्धो के कारण कोई नया पत्र पत्रिका शुरू करना अत्यन्त कठिन हो गया था। मैं लगभग १५ दिन कराची मे क्लिफटन पर वने हुए "मोहता पैलेस" मे ठहरा था। परन्तु मोहता जी शहर मे अपने कपडे के मार्केट मे ही एक कोने के कमरे मे वानप्रस्थियो की तरह अनासक्त भाव से कुछ अलिप्त सी स्थिति मे रहते थे। वैसे आप अपने काम काज की देख रेख अवश्य करते थे, किन्तु आपका जीवन और रहन सहन भोगेश्वर्य मे सर्वथा अलिप्त था। वीकानेर मे भी आपकी सरलता और सादगी का मुझ पर विशेष प्रभाव पडा था। परन्तु कराची मे तो मैंने यह अनुभव किया कि सरलता सौर सादगी आप के स्वभाव सिद्ध गुण वन गए हैं। आप के कराची के वैभव की चर्चा करने की आवश्यकता नही है। वहाँ आप "आयरन किंग" के नाम से प्रसिद्ध थे और वर्त्तमान कराची के निर्माता, उद्योग पतियो तथा व्यवसाइयो मे आप का पहला स्थान था। केवल मकानो व दुकानो के किराये की मासिक आमदनी का अनुमान एक लाख रुपया लोग लगाया करते थे। ऐसे वैभव मे भी "पद्मपत्र मिवाम्भसा" की गीता की उक्ति का आप के जीवन और रहन सहन पर चरितार्थ होना मेरे लिए कम विस्मय की वात नही थी।

८ :

दो एक और घटनाएँ भी देनी आवश्यक हैं। उन से जहाँ मेरे प्रति मोहता जी के विश्वास का पता चलता है वहाँ आपके चरित्र और स्वभाव पर भी उनसे अच्छा प्रकाश पडता है। "गीता का व्यवहार दर्शन" प्रकाशित होने पर एक वडा पार्सल कराची से मुझे भेज दिया गया—इस उद्देश्य से कि पुस्तको को लागत मूल्य पर गीता के प्रति अनुराग रखने वालो को दे दिया जाय। सारी पुस्तकें हाथो हाथ निकल गईं। "गीता विज्ञान" के १०-१० हजार के दो सस्करण और "गीता का व्यवहार दर्शन" का १० हजार का तीसरा सस्करण दिल्ली से मेरी देख-रेख मे मुद्रित करवाया गया और विक्री के लिए "गीता विज्ञान कार्यालय" के नाम से एक केन्द्र भी दिल्ली मे कायम कर दिया गया। कुछ समय वाद यह कार्यालय वीकानेर चला गया। परन्तु आज तक भी पुस्तको के लिए पत्र प्राय प्रतिदिन आते रहते हैं। विना विज्ञापन और आन्दोलन के पुस्तको की यह विक्री उनकी उपयोगिता और लोकप्रियता का प्रवल प्रमाण है। इसमे कुछ भी सन्देह नही कि मोहता जी की पुस्तकें स्वत. मे अपना विज्ञापन है। जो कोई भी पढा लिखा उनको दूसरो के हाथो मे देखता हैं उसमे उनको प्राप्त करने की इच्छा स्वत' ही पैदा हो जाती है। दक्षिण के अहिन्दी क्षेत्रो मे इनका वहुत अच्छा प्रसार होना साधारण वात नही है।

: ९ :

श्री रामरखसिंह सहगल के स्वर्गवास के वाद "चाँद" कार्यालय का काम विखर गया और सरकारी रिसीवर नियुक्त होकर सारे सामान के नीलाम होने की स्थिति पैदा हो गई। कुछ लोगो ने मोहता जी को वह सव सामान लेकर साझे मे काम करने के लिए तैयार कर लिया। कराची से मुझ को पत्र मिला कि मुझे इलाहावाद जाकर आप के प्रतिनिधि को मशीनो आदि के सम्बन्ध मे वस्तुस्थिति की जानकारी देनी चाहिए। वहाँ जाने पर मुझे नयी साझेदारी का पता चला और यह भी मालूम हुआ कि साझे का काम निभेगा नही और उसमे काफी घाटा रहेगा। मैंने आप के प्रतिनिधि से वातचीत करके एक लम्वा तार आप को उस साझेदारी के विरोध मे दे दिया। दूसरे दिन मुझे उत्तर मिला कि हमे अपने वचन का पालन करना ही चाहिए। साझे मे

शुरू किया गया काम दो तीन महीने भी निभ नही सका। मुझे फिर बीकानेर बुलाया गया। वहां पहुँचते ही आप ने यह शब्द कहे कि आप की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। मोहता जी को, यदि मैं भूलता नही, २० हजार की और हानि उठानी पडी होगी। परन्तु मैंने आप मे उसके लिए कोई क्षोभ, दुख अथवा चिन्ता नही पाई। "सुख दु खे समेकृत्वा लाभा लाभौ जया जयौ" का प्रत्यक्ष अनुभव मुझे आप मे मिल गया। ऐसे अनेक प्रसगो पर आप की समवृत्ति देखकर मैं विस्मित रह गया।

१०

अन्त मे जिस घटना का उल्लेख करना मुझे आवश्यक प्रतीत होता है, वह है मारवाडी सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन की। उसके अध्यक्ष पद के लिए आपको सहमत करने का काम मुझको सौंपा गया और आप के वार-वार इनकार करने पर मुझे उसके लिए बीकानेर भेजा गया। मारवाडी सम्मेलन की नियमावली मे सामाजिक विपयो पर चर्चा न होने का उल्लेख था और जिस सस्था मे सामाजिक विपयो की चर्चा न हो उसमे सचमुच ही आप के लिए कोई आकर्पण नही हो सकता था। मेरा दृष्टिकोण यह था कि "मारवाडी" शब्द प्रदेश का सूचक है जाति विशेप का नही। इसलिए उसमे वैश्य, ब्राह्मण, राजपूत, जाट और हरिजन आदि सब सम्मिलित हो सकते हैं। यदि सव को एक मच पर लाया जा सके, तो समाज सुधार की दृष्टि से यह भी कुछ कम नही है। मोहता जी इस पर सहमत हो गए। जो प्रतिनिधि मडल आपके साथ बीकानेर से आया, उसमे ब्राह्मण, वैश्य, राजपूत और हरिजन आदि सभी सम्मिलित थे। वे सब सम्मेलन मे मच पर बैठते थे। उनके भाषण भी हुए और भोजन-शाला मे भी वे सव के साथ विना किसी भेदभाव के सम्मिलित होते थे। सम्मेलन मे वैसा पहली ही बार हुआ था। अपने भापण मे जिन क्रातिकारी और साम्यवादी विचारो का आप ने प्रतिपादन किया था, वह भी सम्मेलन मे पहली ही वार किया गया था। कुछ प्रस्ताव भी बीकानेर के प्रतिनिधि मडल की ओर से ऐसे प्रस्तुत किए गए थे जिनसे सम्मेलन के सचालक सहमत नही थे। यही कारण था कि उनमे से कइयो ने मुझ से यह कहा कि दिल्ली वालो ने मोहता जी को अध्यक्ष चुनकर उनको धोखा दिया और वे यदि मोहता जी के विचारो से परिचित होते तो उनको अध्यक्ष वनाने के लिए सहमत नही होते। उनके ऐसे विचारो के कारण मोहता जी कुछ महीने भी उनके साथ निभा न सके। आपको त्यागपत्र देकर सम्मेलन से अलग हो जाना पडा। अपने विचार और सिद्धान्त के साथ किसी प्रकार का समझौता करना आपने नही सीखा। दिल्ली मे कई वार गीता पर आप के प्रवचन करवाये गये। ऐसा प्रसग भी आया, जव कि पडिताभिमानी ब्राह्मण यह कहकर उनमे सम्मिलित नही हुए कि व्यासपीठ से एक वैश्य के मुख से गीता की कथा वे नही सुन सकते। ऐसा विरोध तो मोहता जी के लिए वहुत ही सामान्य और हलका सा था। आप ने अपने विचारो के लिए बीकानेर की रूढिवादी जनता और शासको का जो विरोध, निन्दा और अपवाद वर्पो तक निरतर सहन किया है उसमे कोई दूसरा टिक नही सकता था। परन्तु आप तो चट्टान की तरह इस नीति वाक्य पर सदा ही अडिग वने रहे हैं कि—

"निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मी समा विशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा न्यायात्पथ,
प्रविचलन्ति न धीर ॥"

इसी नीति वाक्य मे आप के चरित्र और स्वभाव का चित्र अकित किया जा सकता है, जिसको वहुत समीप मे देखने और अध्ययन करने का मुझे प्राय अवसर मिलता रहा है। मैं उसका इतना अधिक प्रशसक रहा

हूँ कि आज आप के अभिनन्दन के निमित्त इस ग्रन्थ का सम्पादन करने का सुअवसर प्राप्त होने पर मैं अपने को ही धन्य मानता हूँ, क्योकि मुझ को आप के प्रति वर्षो की भावना को मूर्त्तरूप देने का अलभ्य अवसर अनायास ही प्राप्त होगया ।

सत्यदेव विद्यालंकार

(हिन्दी पत्रकार)

•

७०

सेवा परायण संत

श्री रामगोपाल जी के सार्वजनिक अभिनन्दन का समाचार जानकर वहुत प्रसन्नता हुई । व्यापारी वर्ग मे ऐसे सेवा परायण सत वहुत कम हैं । ऐसे सही अभिनन्दन से जनता-जनार्दन को लाभ और अनुकरणीय मार्ग का प्रदर्शन होगा । इस अवसर पर अपनी भावना व्यक्त करने मे मैं गौरव अनुभव करता हूँ । मोहता जी चिरायु हो ।

सोहनलाल दूगड़

(देशभक्त, उदार, दानवीर और सेवाभावी ।)

•

७१

पितृ-स्नेह

श्रद्धेय श्री रामगोपाल जी मोहता के सम्बन्ध मे कुछ लिखने मे काफी सकोच होता है । उनके सान्निध्य मे जीवन के कुछ कीमती वर्ष विताये हैं । उनका स्मरण हमेशा मन को आनन्द विभोर कर देता है और पिछले वीस वर्षो से उस मूर्त्त सान्निध्य से वचित रहते हुए भी कभी मैंने यह महसूस नही किया कि उनके साथ आत्मीयता की और गुरुजन की जो भावना वध चुकी है वह शिथिल हुई है । उसी नजदीकी के भाव से अभिभूत होने से लिखने मे वहुत सकोच अनुभव करता हूँ ।

जीवन मे हम कितने दिवास्वप्न देखते हैं और कदाचित ही उनका मूर्त्तरूप हमे देखने को मिलता है । परन्तु मोहता जी के साथ मेरा सान्निध्य होना अजीव संयोग की वात है । सन् १९३०-३१ मे जयपुर मे अध्ययन काल मे "चांद" मासिक मे मोहता जी के समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों की वाते पढी । सामाजिक क्राति मे तभी से अपने मन मे एक गहरी प्रवृत्ति होने से, ऐसी कल्पना किया करता था कि काश मोहता जी का सेक्रेटरी

वन सकूँ तो सामाजिक सुधारो मे अपना योग भोग दे सकूँ। सयोग वश घटना चक्र से मैं सन् ३३ मे पर्यटन वृत्ति से कराची पहुचा और वहाँ अध्यापन कार्य मे प्रवृत्त हो गया। अकस्मात एक दिन सेठ जी के सत्सग मे एक मित्र ने आग्रह से पहुँचाया। उनके गीता-विपयक विचारो पर प्रवचन सुना और स्वय भी उसके बाद होने वाली चर्चा मे भाग लिया। शायद दूसरी वार के प्रवचन के वाद ही उन्होने अपने साथ सेक्रेटरी का काम करने का प्रस्ताव किया। जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मैं तो पहले ही उसकी कल्पना कर चुका था।

करीव ५-६ वर्ष तक मैं मोहता जी के साथ रहा। इस काल मे घटी घटनाओ का और उपस्थित हुए प्रसगो का विवरण लिखा जाना सम्भव हो तो उनके सस्मरणो का एक वडा पोथा वन सकता है, परन्तु यहाँ तो मुझे केवल अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करनी है।

सेठ जी के उस सहवास मे जो सबसे वडा और महत्वपूर्ण काम हुआ, वह था, गीता का व्यवहार-दर्शन ग्रन्थ को पूरा करने का। चार अध्याय पहले ही लिखे था चुके थे। शेप चौदह अध्याय लिखवाने का काम मुझ से करवाया गया। ऐसा कोई वधा हुआ दैनिक कार्यक्रम तो न था, फिर भी सवेरे शाम और कभी-कभी रात को भी ६-७ घटे उस काम मे लग जाते थे। सेठ जी कभी न थकते थे। मैं जरूर थक जाता था। मेरी प्रवृति कुछ इधर-उधर के कायो मे भी रहती थी। परन्तु सेठ जी तो चौवीसो घटे उसी मे लीन रहते थे और दिन भर कितनी ही गीताओ का तुलनात्मक अध्ययन व विवेचन करते रहते थे। जिस सरल ढग से और व्याव-हारिक भापा मे वे अपने भाव अभिव्यक्त करते थे, उनका प्रवाह गगा या जमुना की तरह चलता रहता था। कही कोई रुकावट या कठिनाई पैदा नही होती थी। एक वडी कठिनाई यह अवश्य थी कि मोहता जी तिलक विचार धारा के थे और मैं था गाधी विचारधारा का। कभी-कभी तीव्र मतभेद होने के कारण चर्चा उग्र रूप धारण कर लेती थी, परन्तु उस उग्रता मे कटुता पैदा होने का कोई प्रसग मुझे याद नही है। वैसा प्रसग यदि कोई आया होता तो उतने वर्प उस प्रकार निभ नही पाते और इतना वडा गम्भीर ग्रन्थ मुझसे लिखवाने का काम पूरा न हुआ होता।

मैं ग्रन्थ के महत्व को खूब समझता था और उसके प्रति मेरी आत्मीय अनुभूति भी कुछ कम नही थी, परन्तु उसके गौरव को तव मैंने और भी अधिक अनुभव किया जव उसकी भूमिका लिखवाने के लिए मैं वयोवृद्ध, लोकनायक श्रीयुत माधव श्रीहरि अणे से शिमला जाकर मिला। उससे पहले मैं अन्य अनेक विद्वानो और विचारको से इस सिलसिले मे मिला था। मुझे नही याद कि किसी ने भी ग्रन्थ के महत्व को स्वीकार न किया हो। आचार्य विनोवा, आचार्य श्री कि० घ० मशरूवाला, काका कालेलकर, श्री कृष्णकान्त मालवीय, सेठ गोविन्ददास जी मालपाणी, श्री व्रिजलाल वियाणी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सभी ने मोहता जी के विचारो और शैली की मुक्त कठ से सहराना की। श्री अणेजी लोकमान्य तिलक के अन्यतम उत्तराधिकारी हैं। उन्होंने भूमिका मे ग्रन्थ के प्रति अपना जो उच्च आशय प्रगट किया है वह विस्मय मे डाल देने वाला है। उन सरीखे विद्वान् ने ग्रन्थ की सराहना मे लिखने मे कुछ भी कमी नही रहने दी।

वैसे जव भी कभी मैं अपने उन वर्पो को याद करता हूँ तव मुझे सहसा प्रमुख रूप से सेठ जी का पितृवत व्यवहार व स्नेह और गुरुवत वात्सल्य व आत्मीयता का स्मरण हो आता है। हृदय मे पैदा हुए सारे भाव भावुकता मे विलीन हो जाते हैं। किसी भी पुत्र के लिए अपने पिता का यथार्थ चित्र चित्रित करना प्राय असम्भव है। ठीक यही मेरी स्थिति है।

समाज सुधार अथवा सामाजिक एव धार्मिक क्रान्ति के सम्बन्ध मे "चांद" के द्वारा पूज्य मोहता जी के सम्बन्ध मे जो कल्पना मैंने की थी वह अक्षरश सत्य सिद्ध हुई। समाज सुधार मोहता जी का सवसे अधिक प्रिय विपय है। समाज के दलित व शोपित वर्ग, हरिजनो तथा महिलाओ, विशेपत विधवाओ की सेवा और

सहायता के लिए मैंने आपको सदा ही तत्पर पाया। बीकानेर और कराची मे भी आपने उनकी सेवा के लिए जो ठोस कार्य किया है वह कई सस्थाएँ मिलकर भी नही कर सकती। मुझे ऐसा एक भी प्रसग याद नही है जबकि किसी हरिजन भाई अथवा विधवा बहन को निराश होकर आपके यहाँ से लौटना पडा हो।

बीस वर्ष बाद पिछले दिनो फिर कुछ दिन हरिद्वार मे आप के पास रहने का अवसर मिला। एक बार फिर पिछले सहवास की सारी स्मृतियाँ मेरी आँखो के सामने नाच गईं। पिता अथवा गुरु का वही स्नेह, वात्सल्य, व्यवहार और विवाद। आचार्य विनोबा के "स्थित प्रज्ञ दर्शन" ग्रन्थ के वाचन के बाद तिलक विचार-धारा और गाधी विचारधारा के आधार पर ठीक वैसी ही चर्चा हुई जैसी कि अनेक बार कराची और बीकानेर मे हुआ करती थी। मुझे दुख रहा कि मैं अधिक दिन आप के पास नही रह सका। परन्तु आप का आग्रह निरन्तर बना रहा।

यह कुछ पक्तियाँ लिखकर मैं भी आप के अभिनन्दन के इस मगलमय प्रसग मे अपने को शामिल कर अपने को भाग्यशाली समझता हूँ और यह कामना करता हूँ कि आप का वरद् हस्त सदा ही हमारे सिर पर बना रहे।

विद्याभूषण चिन्तामणी

(जैन दर्शन शास्त्री, न्यायतीर्थ।)

७२

समाज सुधारक मोहता जी

मोहता जी के बहुत घनिष्ठ परिचय मे आने का अवसर न मिलने पर भी मैं यह जानता हूँ कि वे बहुत पुराने समाज सुधारक हैं। वैसे तो समाज सुधारक बनना एक फैशन सा बन गया था, परन्तु ऐसे समाज सुधारक कुछ अधिक नही थे जो कहने के अनुसार कुछ करते और कुछ करने के लिए कोई कष्ट उठा सकते। मोहता जी इसके अपवाद हैं। उन्होने अपने समाज सुधार सम्बन्धी विचारो को मूर्त रूप देने का सदा प्रयत्न किया है, उनके लिए लाखो खर्च किया है और बडे से बडे लोकापवाद तथा तिरस्कार को भी सहर्ष सहन किया है। कोई भी विघ्न बाधा अथवा कठिनाई उनको अपने निश्चित मार्ग से विचलित नही कर सकी। उनकी दृढता का कुछ परिचय मुझे दिल्ली के मारवाडी सम्मेलन के अवसर पर मिला।

तब मारवाडी सम्मेलन के कार्यक्षेत्र मे समाज सुधार का विषय सम्मिलित नही था। इस कारण बहुत कठिनाई से उन्होने उसका अध्यक्ष पद स्वीकार किया था। परन्तु अपने भाषण मे अपने विचारो को प्रगट करने मे और "मारवाडी" कहे जाने वाले हरिजन भाइयो को भी अपने साथ सम्मेलन मे लाने मे वे पीछे न रहे। उस समय उनके वे विचार और उनका वह कार्य सम्भव है हम मे से किसी को पसन्द न आया हो, परन्तु उनकी दृढता का पता हम सब को अवश्य मिल गया।

फिर कुछ दिन बाद समाज सुधार के ही एक प्रश्न पर उन्होने सम्मेलन के अध्यक्षपद से त्यागपत्र दे दिया और बहुत आग्रह करने पर भी वे अपना त्यागपत्र वापस लेने को सहमत नही हुए। अपने निश्चय पर वे

दृढ रहे। उनकी यह दृढता अनेको के लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध हुई है। प्रभु उनको चिरायु करें और वे इसी प्रकार समाज का पथ प्रदर्शन करते रहे।

ईश्वरदास जालान

(पश्चिमी वगाल के स्वायत्त मत्री श्री जालान जी मारवाडी समाज के प्रमुख नेता है। अखिल भारतवर्षीय मारवाडी सम्मेलन आप की ही कल्पना और प्रयत्न का परिणाम है। कलकत्ता की मारवाडी समाज की सार्वजनिक प्रवृत्तियों मे आप प्रमुख भाग लेते हैं। आप यशस्वी एटार्नी एट-ला और प्रथम श्रेणी के सुशिक्षित एव प्रगतिशील मारवाडियों मे से हैं।)

●

७३

मोहता जी की दृढ़ता

अपने समवयस्क (वस्तुत आयु मे एक-डेढ वर्ष कम) वयोवृद्ध साहित्यानुरागी श्रीमान् सेठ रामगोपाल जी मोहता के सार्वजनिक अभिनन्दन का समाचार जानकर मुझको हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं मोहता जी के साहित्य से इतना अधिक परिचत नही हूँ। मुझे उनके व्यापार-व्यवसाय मे साझीदार होने का गौरव प्राप्त है। उत्तर-भारत मे उनका कपडे का बहुत बडा काम था। दिल्ली भी कपडे की बहुत बडी मण्डी थी। अमृतसर और कानपुर के बीच दिल्ली मण्डी का महत्व हरियाना, राजपूताना, मध्यभारत और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलो के कारण बहुत अधिक था। इसीलिए मोहता जी का काम दिल्ली मण्डी मे भी खूब चलता था। मैं उनका साझीदार ही नही किन्तु मुख्य सलाहाकार भी था और वे मेरी सलाह को हमेशा ही अपनी सम्मति से भी अधिक महत्व दिया करते थे। दिल्ली की एक कपडा मिल खरीदने का सौदा पाँच-साढे पाँच लाख मे प्राय पक्का हो गया। केवल मेरी सलाह न होने से वह सौदा छोड दिया गया। मुझे ठीक-ठीक याद नही कि मैंने वैसा करने की सलाह क्यो दी, परन्तु इतना याद है कि मेरे ही कारण वह पूरा न किया जा सका। अपनी सम्पति से अपने साझीदार की सम्मति को अधिक महत्व देना साधारण बात नही है।

समाज-सुधार के मामलो मे मेरी मोहता जी के साथ खूब पटती थी। जब हम लोगो के विवाह हुए तो आम तौर पर १०-११ वर्ष की आयु मे कन्या का विवाह हो जाता था। बीकानेर मे कन्या की ९ वर्ष की ही आयु बहुत अधिक मानी जाती थी। बीकानेर वाले बीकानेर से बाहर विवाह करने को राजी नही होते थे। मोहता जी के छोटे भाई राव बहादुर श्री शिवरतन जी मोहता के विवाह पर ये सब पुरानी मर्यादाए और रूढियाँ तोड दी गई। कन्या की आयु १४ वर्ष की थी और उसके पिता सुप्रसिद्ध सुधारक श्री श्यामसुन्दर जी लोईवाल ग्वालियर के दीवान थे। उनके घर मे परदा प्रथा का अन्त हो चुका था। इन और ऐसे कुछ कारणो से उस विवाह के लिए बीकानेरी समाज मे कुछ भी अनुकूलता नही थी और मोहता जी के घर के भी कुछ लोग सहमत नही थे। उस समय मुझे भी अनुकूलता पैदा करने के लिये कुछ प्रयत्न करना पडा। मोहता जी की दृढता का मुझे उस समय कुछ परिचय मिला। अपने घर मे उनके ही कारण यह विवाह सम्भव हो सका। बीकानेर मे बिना परदा प्रथा का और कन्या की इतनी बडी आयु का सम्भवत वह पहला ही विवाह था।

समाज के दलित व शोषित वर्ग, हरिजनो और महिलाओं की निरन्तर जो सेवा मोहता जी ने की है, और उसके लिये जो निन्दा, अपमान तथा तिरस्कार उन्होने सहन किया है, वह अब किसी से छिपा नही है। अपने पिताजी के स्वर्गवास के बाद दिल्ली मे बहुत बडे पैमाने पर ब्रह्मभोज और जाति भोज की व्यवस्था उनकी ओर से की गई थी। परन्तु उसके तुरन्त बाद उन्होने बडी हिम्मत से यह घोषणा की थी कि भविष्य मे उनकी ओर से इस प्रकार के भोज नही करवाए जाएंगे। बीकानेर समाज मे ऐसे भोजो पर लाखो रुपया खर्च किया जाता है। बीकानेर मे इस कुप्रथा का अन्त करने का श्रेय मोहता जी को ही प्राप्त है।

दिल्ली मे मोहता जी मारवाडी सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते जब पधारे थे तब उनके सम्मान मे एक विशाल जलूस निकाला गया था। स्वागताध्यक्ष स्वर्गीय सेठ जमनादास जी पोद्दार ने स्वय उनके साथ रथ पर बैठकर मुझे उनके साथ बैठने को बाध्य किया। तब मैंने देखा था कि वे किस कठिनाई से जलूस के लिए सहमत हुए थे और रथ पर तो उन को जबरदस्ती ही बिठाया गया था। वे उसको व्यक्ति पूजा मानते थे और व्यक्ति पूजा के वे कट्टर विरोधी हैं।

मारवाडी सम्मेलन को दिल्ली मे उनके ही कारण नई दिशा प्राप्त हुई थी। एक तो उसमे मारवाडी के नाते सभी समाजो के लोगो ने बिना किसी भेदभाव से सम्मिलित होना शुरू किया और दूसरा यह कि सम्मेलन ने समाज सुधार के मामलो मे भी दिलचस्पी लेनी शुरू की।

अनेक मामलो मे उन्होने सारे ही समाज का पथ प्रदर्शन किया है और उनके उस ऋण से मारवाडी समाज उऋण नही हो सकता।

एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। मुझे इतनी बडी आयु प्राकृतिक चिकित्सा के ही कारण प्राप्त हुई है। मोहता जी प्राकृतिक चिकित्सा के वैसे समर्थक न होने पर भी मैं जानता हूँ कि वे कैसा सरल प्राकृतिक जीवन बिताते हैं और उनको भी यह दीर्घायु प्रकृति की सेवा से ही प्राप्त हुई है। प्राकृतिक जीवन बिताने की शिक्षा उनके दीर्घ जीवन से हम सबको अवश्य ही ग्रहण करनी चाहिए।

लक्ष्मीनारायण गाडोदिया

(वयोवृद्ध सेठ लक्ष्मीनारायण जी गाडोदिया मोहता जी के ही समान अस्सी को पार कर तिरासिवें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। वर्तमान दिल्ली के सामाजिक, सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन के निर्माण में गाडोदिया जी का बहुत बडा हिस्सा है। लोकोपकारी कार्यों मे उदार सहयोग देना आपका स्वभाव रहा है। गाधी जी की विचारधारा के आप अनुयायी हैं और स्वदेशी तथा प्राकृतिक चिकित्सा के अन्यतम समर्थक हैं। दिल्ली मे गाधी जी तथा अन्य राष्ट्र नेताओ के शुरू दिनो में मेजबान होने का गौरव आपको प्राप्त है।)

●

७४

मेरा परिचय और दर्शन

पूज्य श्री सेठ जी से मेरा परिचय सन् १९१४ जरमनी के प्रथम युद्ध मे प्रथम मई मास मे आरम्भ होता है। दर्शन उसी वर्ष नवम्बर मे हुआ। सुनती थी कि सेठ जी बहुत ही बड़े व्यक्ति हैं, जैसे उस समय के होते थे।

प्राय बीकानेर के लोग, भाई जी यहाँ के सेठ जी और मैं जेठ जी और सुगनी बाई की माँ (आप की धर्मपत्नी) को मैं जेठानी जी कहा करती थी। उन्हें प्रथम पैरो पडाई मे मैंने गिन्नी दी थी और उन्होने जैसे जेठानी देरानी को देती है आशीर्वाद दिया था कि "वीदनी ऊँचा होवो"। मेरे को देखकर बडी प्रसन्न हुई थी और आपके (सेठ जी के) आने पर सम्वोधन करके कहा था कि "जव कि आप तरबूज हाथ मे लेकर खडे-खडे खा रहे थे कि मुनीम जी की वीदनी तो फुटरी है, (मुनीम जी वहाँ उच्च पदाधिकारी को ही कहते है। फुटरी सुन्दर का प्राय वार्ता शब्द है।) तो आप हँस दिये थे। आप के साथ गाने बजाने वाले प्राय रहा करते थे। आप ने अपने बेटे के शुभ विवाह पर भी उच्चकोटि के गवैये बुलाये थे। उनका खुला सुन्दर प्रदर्शन करवाया था।

आपका लेखको द्वारा लिखा गया ऋषिवर नाम मैंने पढा था। मैं भी ऋषिवर के नाम से ही सम्बोधन करने लगी थी। आपने दवाखाने और स्कूल कालेज खुलवाये। पब्लिक के अनेको कार्य किए। स्त्रियो के सुख के कार्य भी अनेको किए। मेरा भी एक कार्य मेरे मनचाहा किया जिसे मैं अपने जीवन मे नही भूल सकती। वह यह है—सन् १६३० का वाकया है कि श्री गाडोदिया जी दो वर्ष तक वीमार रहे। उस समय इनका एक ट्रस्ट बनाने का विचार था अपनी सम्पत्ति का। मेरा विचार उससे भिन्न था। मैं यह जानती थी कि सेठ जी का कहा ये टालेंगे नही। तव मैंने गुप्तचर द्वारा श्री पूज्य भाई जी को सदेश भेजा था और तब आप बोले थे कि मुनीम जी को मेरे पास भेजो। ये गए। तव बोले कि भई तुम अपनी स्त्री बच्चो को अयोग्य करार देकर ट्रस्ट क्यो बना रहे हो। इन दोनो के हाथ बँध जायेंगे। ऐसा मत करो। इनकी समझ मे बात आ गई और ट्रस्ट नही बना। मैं इसके लिए आप की जीवन पर्यन्त आभारी रहूँगी।

आप के भाई सेठ शिवरतन जी को मैं धर्मराज जी कहा करती हूँ। बोलती किसी से आज तक भी नही हूँ, किन्तु मैं अपनी भावना के अनुसार उपाधि दे दिया करती हूँ। यह मेरा अभ्यास ही समझो।

सुगनी बाई की माँ तो जव भी, जितने दिन भी दिल्ली रहती थी मैं उनके पास नित्यप्रति जाती थी। साथ मे वाहर घूमने भी जाती। यदि किसी कारणवश एक दिन भी नागा हो जाता था तो बुलावा देती। जाते ही उलाहना देती। हर बात मे सम्मति माँगती। यद्यपि मैं उन दिनो किस लायक थी, फिर भी पता नही क्यो मैं उन्हे वहुत ही अच्छी लगती थी। एक वार छापर रेशमी ओढना भी लाकर दिया और कहने लगी "वीदनी थे परिजो था पर ओपसी। (सुन्दर लगेगा)।

सेठजी से व्यापारिक सम्बन्ध तो लगभग चालीस वर्षो से अलग हो गया है, किन्तु अभी तक मन का सम्बन्ध वैसे का वैसा ही वना हुआ है। आप सन् ३२ मे काश्मीर गए थे। बगले मे ठहरे थे। साथ मे रतनबाई, उसकी सहेली और छोटे भाई स्वर्गीय मूलचन्द जी की स्त्री भी थी। हम लोग शिकारे मे बैठकर दो वार आपके घर गए थे। आप भी हमारे हौसवोट पर पधारे थे। आप एक वार हरिद्वार विडला हौस मे थे। मैं भी बालको को लेकर मसूरी से आकर हरिद्वार ठहरी थी। मैंने तार तो विडला हौस के सेक्रेटरी के नाम दिया था, पता नही सेक्रेटरी ने क्या किया। आने पर पता चला कि स्थान तो सेठ मोहता जी से भरा है। तव मेरे को लगा कि जैसे अपने घरवालो से वहुएँ कहलाती हैं, लडके से कहा कि ताऊजी के पास जाकर कह दे कि ताऊजी माँ ने कहा है है कि हम लोग आए हैं। स्थान दीजिए। मेरे को जैसे अपने वडो पर हिन्दू नारियो को अभिमान होता है वैसे ही आदरणीय श्री सेठ जी पर है। मैं छोटे मुँह वडी वात कैसे कहूँ। आपकी वडाई करना सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य है।

सरस्वती गाडोदिया

(धर्मपत्नी श्रीमान सेठ लक्ष्मीनारायण जी गाडोदिया)

●

७५

उन्मुक्त मानवता

मैं उस ज्ञान की खोज के लिए, जिसके लिए भारत प्रसिद्ध है आस्ट्रेलिया से पर्यटक के रूप मे भारत आया। श्री रामगोपाल जी मोहता से मुलाकात होना मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। वीकानेर मे मैंनें कुछ स्मरणीय दिन विताये और उनके साथ हुई लम्बी चर्चा मे मुझे उनके महान ज्ञान और उन्मुक्त मानवता का सराहनीय परिचय मिला। जिस ससार मे हम रहते हैं उसको दुखी व सकटापूर्ण मानकर मैं वडी दुविधा और असमजस मे पड गया था। उन्होने इस ससार के प्रति मेरे रुख और दृष्टि को वहुत वदल दिया। उन्होने मुझे यह सिखाया कि हम सव जिस मुक्ति की कामना करते है उसके लिए ससार का त्याग करने की आवश्यकता नही परन्तु साथियो की एकता और मानवीयता की भावना से अपने साथियो की सच्ची सेवा करते हुए उसको प्राप्त कर सकते है।

मैं यह देखकर वहुत प्रभावित हुआ कि शोषितो और पीडितो की सेवा के महान कार्य के सम्पादन करने मे अपना समस्त जीवन लगा देने पर भी वे कैसे सादे, सरल और नम्र है। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि अपने भारत प्रवास मे मैं केवल श्री रामगोपाल जी मोहता की ही सगति मे आया होता तो यह वास्तव मे ही मेरे लिए श्रेयस्कर हुआ होता।

सी० एल० सेन्टिनेला

(आपने जर्मनी, अमरीका, इंगलैड, भारत, यूरुप और रूस का विस्तृत भ्रमण किया है। भारत मे आप मुक्ति की खोज मे अनेक स्थानों पर गए हैं; परन्तु सच्ची आत्मिक शान्ति की प्राप्ति आपको कहीं न हो सकी। वीकानेर भी इसी उद्देश्य से गए। कृषि और गोपालन आपका धंधा है।)

अंगरेज़ी में

अगरेजी मे प्राप्त सस्मरणो को यहा उनके मूलरूप मे भी दिया जा रहा है। इनके हिन्दी अनुवाद पीछे यथास्थान दिये जा चुके हैं -

True Significance of King Janak

I first came in contact with Shri Ram Gopal Ji Mohta some 25 years ago through my late lamented friend and colleague Krishna Kant Malviya He asked me to write a forward to the well known book of Mohta Ji "Vyavahar-Darshan and Gita" Later on I read his other books on Gita and articles on philosophical topics also His writings impressed me as the result of deep thinking and earnest study of the teachings of Bhagwat-Gita by him, essentially from the practical point of view of a man who wants to live in the world and play his part with full faith in the Divine purpose underlying the Cosmic manifestation of the God and in the consciousness of the true mission of one's own life In the life of Mohtaji one can fully understand the true significance of what Gita says of King Janak—"कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादय" Mohta Ji is a faithful pilgrim for that path of righteousness and action which leads to the attainment of the सिद्धि (Self-realisation)

M S. Aney

•

Life of Devotion

I am delighted to know that Shri Ram Gopal Mohta will celebrate his 81st birthday soon It is good to know that even business people take interest in our culture and try to mould their lives on its fundamentals Shri Ram Gopalji has had a full life of devotion and service and his works are read with great interest

S Radhakrishnan
Vice President

०

A Useful Guide

I am glad to learn that it is proposed to present an Abhinandan Granth to Shri Ram Gopal Ji Mohatta on the occasion of his 81st birthday. This commemoration volume will aim at outlining the achievements of *Shri Mohatta in the field of social reform*, religion, philanthrophy and literature and will present before the public, in interesting detail, the various facets of Shri Mohatta's life. I have every hope that this compilation will serve a good cause in that it would be taken as a useful guide by others who are keen to learn from other people's experiences in life

I take this opportunity of wishing Shri Ram Gopal Ji Mohatta many happy returns of the day.

Swaran Singh
Minister for Steel
Mines and Fuel

•

A Great Student of Ancient Philosophy

It is kind of you to have asked me to send you my impressions on the life of Shri Ramgopalji Mohta Although my relations with Mohta family were very close, as it happened, by the time I got into the public life at Karachi, Shri Ram Gopal Ji had ceased living in Karachi and had transferred his headquarters to Bikaner. Except therefore for getting occasional glimpses of him, I have had no real opportunity to come in close contact with him It would therefore be a little impertinent on my part to record what would amount to personal memories We all, however, knew him to be a great Philanthropist and a keen social reformer He was known to be very courageous and often faced the music of his own community in advocating social reforms Even then he was known to be a great student of ancient literature both in the fields of philosophy and religion

Lalji Mehrotra
Indian Ambasador
Embassy of India,
Rangoon

A Perfect Karam-yogi

It gives me special pleasure that the 81st Birthday of Muniji Shri Ramgopal Mohta is being celebrated by his friends, admirers and disciples I count it as a privilege to call myself an admirer of this great man I have known him for the last 20 years in Bikaner and I have seen good many of his activities social and spiritual No words can adequately describe his great personality and the great and silent work he has been doing for the poor and needy and the sick in body and in mind In fact he is the nearest approach to a perfect Karam-yogi I have ever known

M N Tolani
Officer on Special Duty (Education)
Govt of Rajasthan
JAIPUR

•

Late M. N. Roy and Mohtaji

Early in the summer of 1943, we had an unusual visitor in our home at Dehradun The visit was unusual for more than one reason Few strangers used to come to us unannounced, because whenever we were not travelling for our work, we used to live very quietly in this remote retreat of ours And even our friends never came during the day when M N Roy was at work I had made it a habit to do my work on the front veranda to "intercept" visitors and avoid any disturbance But that visitor in the early summer of 1943 was unusual for yet another reason He was an elderly gentleman in orthodox style and traditional garb, very different from the young men who were members of our Radical Democratic Party, or even from the local Congressmen who used to call occasionally in spite of their political differences, out of personal regard

That unusual visitor was Seth Ramgopal Mohatta He was spending the summer at Hardwar, and had come up to Dehradun for a few days for some medical consultation It seemed surprising that he should want to meet M N Roy We thought he might be one of those who used to come in those days and ask in a pained voice Why do you support the war, when all the leaders are in jail ? And why do you criticise Mahatma Gandhi ? Or such other questions to which there could be no reply except by going all over the field of contemporary history and philosophy, for which there

usually was no common ground to reach any understanding, and which anyhow could not be satisfactorily done in course of a casual social call

But what a happy surprise it was when the orthodox looking Sethji turned out to be not only well acuqainted with Roy's ideas and activities, but even agreed with them to a very large extent and expressed his appreciation and a profound understanding. And not only did we find him an interesting and original thinker, but also an extremely lovable person. After their first exchange of opinions and discussion, Sethji remarked that ours was a very nice place We walked together round the garden, and I collected for him some rare flowers. I appreciated it very much then that he did not throw them away or leave them behind, as many people do who are careless about those delicate beautiful things, but carried them carefully away with him

After he had left, Roy told me how deeply impressed he was with Sethji's learning and profound knowledge of Indian philosophy and scriptures, more extraordinary for a man of his class and environments He said, only a man with a very bold character and original critical thinking could thus rise above the mental and social conventions

During the next seven or eight years, a relation of friendship developed between the two men, who were in some ways so different; and if there remained some points of philosophy on which they could not entirely agree, that did not diminish their mutual respect and liking. It also did not prevent Sethji from extending to us throughout those years the most generous help, always offered with rare kindness and grace. Sethji could do that because he was not only a scholar, but also a very successful businessman. Frequently he gave us good advice about our own concerns of publishing books and papers But unfortunately, in spite of his good advice, we could never transform those concerns of a socio-political movement into a profit-making business All that we could do, thanks to the devotion of members of the movement, was to keep them going and carry on without making debts But all resources and even personal donations went into the financing of our work.

That remids me again of that first visit of Sethji to Dehradun. When he had left, we found on our table a closed envelop containing a generous gift in big banknotes, without as much as a word Deeply moved, in his first letter of thanks to Sethji, M. N. Roy wrote :

"It was really very kind of you to have given this help just when it was needed. It was on the very eve of a study camp held here for young women anxious to take part in public work. Nearly forty of them came from different provinces, and went back very satisfied, feeling themselves qualified to do something useful for the country. In these days of high cost of living, such a camp is a great burden on our modest

means Therefore your help was almost a God-sent You know that I do not believe in God , but goodness is perhaps even greater than godness And I do know how to appreciate and Worship goodness !"

These last sentences characterise both M N Roy and Seth Ramgopal Mohatta

ELLEN ROY

•

IMPORTANT CORRESPONDENCE

Some important correspondence exchanged between late M N Roy and Mohta Ji

Letter from M N Roy

Dehradun, July 13th, 1943

My dear Sethji,

This delay in my thanking you for the generosity is due to the fact that I did not know your address at Hardwar, where you were to spend yet another month It was really very kind of you to have given the help just when it was needed It was on the very eve of a study camp held here for young women anxious to take part in public work Nearly forty of them came from different provinces, and went back very satisfied, feeling themselves qualified to do something useful for the country In these days of high cost of living, such a camp is a great burden on our modest means Therefore, your help was almost a God-sent You know that I do not believe in God , but goodness is perhaps even greater than godness And I do know how to appreciate and worship goodness

I hope you did not feel that your visit here was entirely useless, and you will take the trouble of keeping touch with me

Yours Sincerely

M N Roy

Mohta ji's reply

Bikaner, July 20, 1943

My dear Mr Roy,

I am very glad to have your letter of 13th instant. I do not think I have given any help to you It was merely a token of the heartfelt sympathy which I entertain towards the cause of serving the country, for which you are working heart and soul.

I fully agree with the principles of equality and co-operation advocated by you and am trying in my own way to propagate and advance the same. I shall be really pleased to hear from you occasionally about the progress of your mission.

Your Sincerely.
Ramgopal Mohatta

●

M. N. Roy's Letter

January 30, 1944

Dear Sir,

Thanks for your letter dated the 25th, which was forwarded to me here. I am glad to know that you hold such critical views about this wasteful affair in Delhi. I wonder if you allow your views to be published If you do, please send a word to that effect to the Vanguard Office (30, Faiz Bazar) .

It is really a matter of gratification to me that you take so much interest in our activities and wish us success Owing to the press boycott, very little of our activity is publicly known We are making headway much faster than we ourselves expected Now, thanks to the 'Vanguard', our activities can be known at least to our friends and sympathisers. That being our only organ of publicity, we are anxious to build it up as a first class newspaper. In spite of unimaginable difficulties, we have carried it on for nearly two years. But we are greatly handicapped by the inability to have a press of our own That not only adds to our financial burden, but often the paper does not come out it time That baffles our efforts to build up a large circulation Therefore, we are anxious to make some more satisfactory printing arrangements We are simply not in a position to have a press of our own Perhapse you may not know that we started the paper literally with a few hundred rupees It has been built up entirely on voluntary labour, and is to-day a self-supporting concern.

I wonder if you can think of any way of helping us in this respect We don't want any money to be given to us You may know of some party who will be prepared to set up a Press in Delhi, and give preference to printing our paper , in addition to that we shall give him our whole printing work which is quite considerable Briefly, a press with our printing will be profitable business For investment, not more than Rs 50,000 may be needed immediately If you can think of doing something in this respect, particulars may be had from the General Secretary of our party, Mr V B Karnik, Advocate, 30, Faiz Bazar, Delhi I do hope you will write a few lines from time to time

Yours Sincerely
M N Roy

●

Mohta ji's reply

Bikaner, 18th February, 1944

Dear Sir,

I am in receipt of your kind letter of 30th ultimo My friend Mr Balkrishna Mohta has returned from Delhi He was greatly assisted by the 'Vanguard' in his agitation against the wasteful Mahayajna and my views were represented by him Thanks for your help in this connection I note the difficulties experienced in publishing literature and the 'Vanguard' owing to the absence of your own press I suggest that a public limited company be floated for establishing a Press for the 'Vanguard' and allied literature with a capital of a lac of rupees, half of which may be paid up in advance I think the shares would be readily taken up I am prepared to subscribe ten thousand rupees worth of shares Please consider this matter and let me know whether you like the suggestion

Yours Sincerely
Ramgopal Mohatta.

M N. Roy's Letter

Dehradun, February 22, 1944

Dear Sir,

I am very glad to receive your reply to my letter It is gratifying to know that you take so much interest in our affairs. As regards your proposal, it may be the way out of our difficulties But we are no businessmen. And the floating of a limited company, particularly raising the capital, cannot be done by novices. Therefore, I feel that your proposal may be put into practice only if you will take the trouble of floating this company as yours. If you were occupied with other things, you may appoint some of your men to do the thing under your guidance I hope you will give the matter your due consideration, and let me have en encouraging reply, at your convenience.

Yours Sincerely.
M. N. Roy

•

Mohta ji's reply

Bikaner, 28th March, 1944

My dear Comrade Roy,

I duly received your letter of 14th instant. I have seen the 'People's Plan of Economic Development' in the 'Vanguard' and in the 'Independent India', and found it very interesting and thought-provoking

I agree with you that it would be advisable to wait until after the war for setting up a Press. I learn that the 'National Herald' Press of Lucknow is on sale or in the alternative it could be leased out It would be worth while to negotiate for it if it could be obtained on lease on reasonable terms, as I am informed that the Press is uptodate and complete This is only a suggestion for your consideration.

We had Pandit Laxman Shastri Joshi among us while on his way to Jodhpur and it really gave us a great pleasure of meeting him I was greatly impressed by his thorough knowledge of the Shastras mixed with modern thoughts of using it for progressive purposes. We want such Pandits for our emancipation. He seems to be the right type of man for taking advantage of ancient history for the cause advocated by your good self.

I beg to enclose herewith 10 halves of currency notes of Rs 100/- each The other halves will be sent after I get acknowledgment of this letter. Please use these one thousand rupees as you think proper for the furtherance of your work With kindest regards

Yours Sincerely.
Ramgopal Mohatta

•

M N. Roy's Letter

Dehradun, April 2nd, 1944

My dear Sethji,

Thanks very much for your letter I am glad to know that you liked my friend Pandit Laxman Shastri Joshi I am writing to Lucknow to enquire about the position of the National Herald Press It is a Rotary machine, and I am afraid it will be expensive It will be rather costly even to rent it However, I shall let you know as soon as concrete information will be available

I thank you very much for the contribution Will you kindly send the second halves to my Delhi address I need hardly tell you that it will be a great help, particularly for the new campaign for the popularisation of our Plan of Economic Development. I am glad to know that you approve of it

Yours Sincerely
M N Roy

•

M. N. Roy's Letter

13, Mohini Road,
DEHRA DUN
Oct 2, 1950

Respected Sethji,

I am writing to acknowledge the receipt of your new book, and thank you for sending it to me It gives me the feeling that you have not forgotton me, and I am very glad for it

Some friends at Jodhpur and Bikaner have been pressing me to visit Rajasthan. Most probably, I shall go this year about the middle of December. I wonder if you will be at Bikaner about that time ; because in that case, I shall be very happy to call on you to pay my respects.

With best wishes and kindest regards

Yours Sincerely
M. N. Roy.

●

Mohtaji's reply

Seth Ram Gopal Mohatta
New Delhi.

My dear Comrade Roy,

Your kind letter of 2nd instant duly reached me for which I thank you It gives me great pleasure to learn that you will be coming here about middle of December and I shall indeed be very happy to meet you after such a long time I trust you are doing quite well. With kindest regards.

Your Sincerely,
Ram Gopal Mohatta.

●

M. N Roy's Letter

13, Mohini Road,
Dehradun.
Oct., 28

My dear Sethji,

Thanks for your kind letter. I was very glad to receive it. For sometime we have been out of touch and I very much regretted the fact.

I shall be seeing you at Bikaner most probably by the middle of December. Meanwhile, I may just as well acquaint you with the purpose of my visit.

I presume that you are informed of the activities of this Institute. Unfortunately, we have not been able to make much progress owing to the want of sufficient fund. Except for your generous contribution, no substantial help has come. But I

can't believe that it can't be obtained if efforts are made in the proper quarter That is the object of my visit to Rajasthan. I hope that you will kindly help me in this respect

With best wishes and kindest regards.

Your Sincerely,
M N. Roy

•

M. N Roy's Letter

13, Mohini Road,
Dehradun,
Dec. 10, 1950.

Respected Sethji,

Because of illness, I have cancelled the projected visit to Jodhpur and Bikaner in winter Moreover, I came to know that friend Chhaganlal is at Delhi and cannot go to Bikaner for some time He accordingly also advised that my visit should be postponed until the end of February or early in March I have agreed.

I came to know from my friend Ramsingh, formerly editor of the 'Vanguard' now of 'Thought', that you are expected at Delhi As I shall not see you immediately, I have requested him to do so on my behalf in order to make certain propositions for your consideration So that you may have made your judgment by the end of February when I hope to see you at Bikaner

You may know that I have completely retired from politics for reasons publicly known Experience has confirmed the opinion I held for many years, that for a long time in India work in the cultural and intellectual field is much more important than political activity or economic reconstruction The foundation of a truly free and democratic society has still to be laid I desire to devote the rest of my life to this work

With the help of some friends, I made a modest beginning already several years ago The first object is to train up a band of selfless scholars who will carry the message of cultural and intellectual freedom to the people, in other words, to educate the educators of the people

Unfortunately, from the very beginning I have been greatly handicapped by the want of the most minimum funds. Now the stage is reached when I shall be compelled ao give up the work unless it enlists the patronage of some liberal-minded enlightened rich people. Therefore I wish to make a desperate attempt, and with that object intend to visit Rajasthan.

I have not the slightest doubt that you sympathise with my ideas, although there might have been points of difference. In any case, I dare count upon you to see that the last years of my life are not wasted and embittered by frustration. On my part, I fully agree with your view that the inspiration for a cultural and intellectual renaissance must be and can be found in the past history of India. You may have noticed that to carry on research in Indian history is an important part of the programme of the Indian Renaissance Institute. Personally, I am engaged in writing a cultural history of India and a history of Indian Philosophy But you may not know that I cannot make much progress because I must work for several days a week to earn the means for a bare living by writing articles for newspapers

For these reasons, I have no other alternative than to appeal to your generous patronage I am sure that, if you took active interest in the work of this Institute, many wealthy men of Rajasthan, who usually patronise good ventures, will help us also. With that belief, I shall come to Bikaner in the last days ot February.

With very best wishes and kindest regards,

Your Sincerely,
M N. Roy.

•

Mohataji's Reply

Bikaner, 18th December, 1950

My dear Mr Roy,

I duly reeeived your letters of 20-10-50 and 10-12-50, the latter addressed to me at Delhi I am sorry to learn that on account of illness you have postponed your proposed visit to Rajasthan until the end of February or early in March Although I would have been very pleased to meet you here, I feel it necessary to advise you that

it would be mere waste of your valuable time and energy and also of money if you visit this area, as I think the object for which you are coming here, would not be achieved, because I do not find many people on this side who can understand and appreciate the lofty ideals and subtle and deep philosophy propogated by your goodselt especially the rich people of Rajasthan, are mostly uneducated and exceedingly selfish They would not even think of meeting you They are caste ridden, intoxicated by wealth, bigotory, orthodoxy and blind faith As for myself, I have an intention, if health permits, to come over to Dehradun and meet you there some time during the spring or summer and have a talk with you and then to decide as to what I can contribute towards the noble cause for which you are working

I have only a meagre knowledge of English language and therefore cannot fully understand your high scholarly writings with many technical words and terms But I have gathered from the literature of your Indian Renaissance Institute which you have very kindly sent me that you are coming nearer to the ancient philosophy of practical Vedanta as every accomplished and great free thinkers like yourself, must ultimately do I am also sure that as your research work advances you will come more and more nearer to it and you will find that the cultural and intellectual and above all spiritual freedoms of the people which you are aiming at, can be found abundantly in the Upnishads and Bhagvad Gita if they are studied in the light of my interpretations and exposition I have expounded these ideas very clearly in my books, "Gita ka Vyavahar Darshan" *i e* Practical Philosophy of the Gita and laterly in "Samai ki Mang" both published in Hindi It is a pity that you are not conversant with Hindi language otherwise you wonld be convinced of what I have written, by reading my books Unfortunately almost all the interpretations written by learned scholars and Pandits and Political leaders are based on ideas of theological and mystical, bigotory, ceremonial orthodoxy and superstitions and dogmas which are derogatory to humanself and have robbed the people of this country, both educated and uneducated, of the faculty of free thinking

As you know the vast majority of Hindu masses and also of classes are blind worshippers of Gita, without knowing the true implications of its teachings, and they have great reverence for the name of Upnishads In fact all the religious sectarian leaders had to take authority of Gita and Upnishads, for making their sectarian gospels popular among the people I would therefore suggest that the educators and trainers whom you want to educate the people, should themselves grasp deeply the real and subtle inner teachings of these monumental scriptures of ancient practical philosophy, putting aside the heavily adulterated and spurious matters and tendentious interpreta-

tions, so that they can teach the people the lesson of cultural and intellectual and also of spiritual freedom of your idealogy on the authority of their own worshippers and revered books in their own mother tongues and thus enlighten them and remove their darkness by their own torches of light I think in this manner, you will be able to achieve success more easily As I have stated above, the people of this country have lost the power of free thinking and have become slaves of blind faith and one would be well advised to utilize their very blind faith for the cause of liberating them from the bondage of the same I venture to say that this course would be a speedy and certain cure for paralizing malady

I sincerely trust you have recovered from the illness mentioned in your letter

With best wishes,

Yours Sincerely.

Ramgopal Mohatta

•

M. N. Roy's Letter

Calcutta, January 25th, 1951

Respected Sethji,

Your letter in reply to mine reached me in Bombay about the middle of December Since then I have been travelling from place to place You will kindly excuse the unavoidable delay in my writing to you with reference to your observations and suggestions They have of course received my most careful consideration, and I am indeed thankful for them Your English is faultless, and you will kindly excuse my inability to correspond with you in Hindi But I know this language well enough to read your works and also others worth reading If I prefer to write in English, that is because of the fact that books written in that language reach the relatively small, fraction of the educated and progressive people of India, to whom our appeal must be addressed in the first place Hindi may be the universal language of India in a distant future Meanwhile, I must reach readers also in the whole of the South and Bengal And that can be done only if I express my ideas in English Moreover, all those who in the Hindi speaking parts are likely to be interested and appreciate these ideas can read English, in many cases more easily than Hindi.

I fully agree that, to reach the people at large, one must speak in their language But the people of India do not speak one language and none can possibly

speak and write in all the Indian languages The way out of the difficulty is to prefer the language which is under-stood by the educated and progressive people, throughout the country Once the latter are moved, they will speak to the people at large in their respective mother-tongues

None can possibly write in all the Indian languages , but I should be very happy if my books were translated and published in all the Indian languages That is a question of material means, which I do not possess I venture to think that you could help at least as far as Hindi is concerned Given some more capital, the Renaissance Publishers Ltd , could publish Hindi editions of my books, and other Hindi literature, such as your valuable works

As regards the importance of laying emphasis on the rationalist thought in ancient India, I should draw your attention to the aims and objects of the Renaissance Institute They are to carry on research in Indian history, to discover sources of inspiration for attempts to reform and reconstruct the present state of affairs We have been doing that in a modest manner, and can do much more if the requisite material means were available I ventured to hope that with your help it should be possible to enlist the patronage of some wealty people who usually patronise constructive endeavours I have been informed that Seth Sohanlal of Jaipur, for instance, could be approached, and hoped to do so through you There may be other such cases

Therefore I should not abandon the plan of visiting Rajasthan at the end of February altogether, and count on your good offices in raising some fund for the Indian Renaissance Institute Our immediate requirement is Rs 2,00,000 It will enable us to enlarge the Institute so as to provide for a minimum number of resident-scholars and teachers

I am very glad to learn that you intend to visit Dehradun next summer But we may meet earlier in Bikaner as I so very earnestly wish to On that occasion, I shall submit for your consideration a plan of publishing Hindi books The Renaissance Publishers is a private Limited company For the moment, I hold the majority of its shares issued against my unpaid royalties The initial capital was subscribed by a few friends The company has no liabilities, and there is an unlimited scope for expansion of business For that purpose, it requires some liquid capital If you so desire, you may acquire a controlling interest in the company by taking up its unissued shares The authorised capital is one lakh, shares worth Rs 40,000 have been subscribed, Rs 30,000 on account of my unpaid royalties The prospectus and balance sheet are being sent to you under separate cover I do hope that you will kindly consider the proposition before I come to Bikaner

श्री सेन्टीनली बीकानेर मे—मोहता जी के साथ विचार-विनिमय कर रहे है

श्री सेन्टिनेली बीकानेर मे मोहताजी के साथ विचार विनिमय करते हुए। (चित्र मे आप दोनो के साथ रा० ब० शिवरतनजी मोहता और डा० छगनलालजी

With very best wishes and kindest regards,

Yours Sincerely
M N Roy

•

Profound Humanity

As a visitor to India from Australia seeking that wisdom for which India is famous. It has been my good fortune and privilege to have met Ram Gopal Mohatta During a memorable few days spent at Bikaner and in the course of several long discussions with him I was able to appreciate his great wisdom and profound humanity Confused and perplexed as I was by the troubled world in which we live, he has contributed substantially to change my attitude to the world He has taught me that one does not necessarily have to abandon the world to achieve that liberation which we all wish for, but we can achieve this best perhaps, by devotion and service to our fellowman, activated by a spirit of unity with humanity

I was greatly impressed by the fact that in spite of a life-time of achievement in the cause of the oppressed and unfortunate he still remains simple, modest and unassuming With conviction I can say that if my stay in India had only resulted in my association with Ram Gopal Mohatta it would have been truly worth while

C L Sentinella

(Farmer by profession Widely travelled and lived in Germany, America and England and travelled extensively in India Europe and Russia)

•

मोहता जी के सम्बन्ध में केला जी की भावना

आजकल प्रत्येक क्षेत्र—सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक आदि—मे सुधारको की बाढ आयी हुई है, तो भी यथेष्ट सफलता नही मिल रही है। वरन् कहा जा सकता है कि मर्ज बढता गया, ज्यो-ज्यो दवा की वाला हाल है। इसका कारण क्या ? वात यह है कि सुधारक दुनिया के सुधार का तो वीडा उठाते हैं, पर अपने काम की शुरूआत अपने आप से न करके दूसरो से करते हैं। साहित्यकार, लेखक, सम्पादक आदि अपने हजारो और लाखो पाठको को जो उपदेश देते हैं, उस पर वे स्वय कहाँ तक आचरण करते हैं ? समाज-सुधारक दूसरो को जाति-भेद न मानने, अस्पृश्यता दूर करने, रीति व्यवहार मे कम खर्च करने की वात कहते नही थकते, पर स्वय अपने वालको का विवाह अपनी जाति मे ही नहीं, उपजाति मे करते हैं, किसी हरिजन को अपने घर मे रखने को तैयार नही होते, और विवाह शादी आदि धूमधाम से करने मे किसी किफायतशारी का परिचय नही देते। राजनैतिक नेता और सूत्रधार देश के निर्माण की बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते है और उनके लिए धन जुटाने के वास्ते जनता को खूब

त्याग करने और कष्ट सहने की अपील करते रहते हैं, पर वे स्वय अपने वेतन, भत्तो और अन्य सुविधाओ मे कुछ कमी नही करते और यदि कभी विशेष दबाव पडने पर एक मद मे कुछ कमी करनी पडती है तो उसकी पूर्ति करने के दूसरे रास्ते निकाल लेने की फिक्र मे रहते हैं। ऐसे व्यवहार से अभीष्ट सुधार की क्या आशा हो सकती है।

उदाहरण के लिए एक युवक का दृष्टान्त है। वह बहुत निराशा और चिन्ता के कारण अस्वस्थ होगया था। इस पर वह एक चिकित्सक के पास गया। चिकित्सक ने देखा कि युवक को कोई खास शारीरिक बीमारी नही है, उसका रोग मानसिक है। इसलिए उसने युवक के साथ बहुत सहानुभूति दर्शाते हुए कहा तुम्हे अमुक नाम वाले लेखक की अमुक-अमुक कृतियां पढनी चाहिएँ, इससे तुम्हे मानसिक शान्ति मिलेगी और उसका तुम्हारे स्वास्थ्य पर निश्चय ही बहुत अच्छा प्रभाव पडेगा। यह सुन कर युवक चकित हो गया, कुछ देर उससे बोलते न बना। आखिर, उसने कहा 'महाशय ! वह अभागा लेखक मैं ही हूँ, जिसकी पुस्तकें पढने का आप मुझे परामर्श दे रहे हैं।'

इस प्रसग मे हमे मुहम्मद साहब के जीवन की एक घटना याद आती है। कहा जाता है कि एक महिला का पुत्र गुड बहुत खाया करता था। उसे बहुत समझाया गया पर उस लडके मे कुछ सुधार न हुआ। उसकी मां ने मुहम्मद साहब की बहुत तारीफ सुनी थी। उसे यह निश्चय हो गया कि अगर वे इस लडके को समझावें तो अवश्य सफलता मिले। इस पर वह अपने लडके को उनके पास ले गयी, और उनसे आवश्यक निवेदन किया। मुहम्मद साहब थोडी देर चुप रहे, पीछे बोले—इस लडके को एक सप्ताह के बाद मेरे पास लाना। इस पर महिला अपने घर लौट आयी और एक सप्ताह के बाद फिर उस लडके को लेकर मुहम्मद साहब की सेवा मे हाजिर हुई। अब मुहम्मद साहब ने प्यार से उस लडके को समझाया तो लडके ने यह आश्वासन दिया कि मैं एक सप्ताह मे अपनी आदत सुधार लूंगा। मुहम्मद साहब ने उस महिला से कहा यह लडका बहुत अच्छा है, यह मेरी बात जरूर मानेगा, तुम अगले सप्ताह मुझे इसका समाचार देना। निर्धारित समय के बाद महिला मुहम्मद साहब के पास आयी और कहा कि लडके की आदत सुधर गयी है। मैं आपका बडा अहसान मानती हूँ, लेकिन यह तो बताओ कि आपने लडके को जो बात कहने के लिए दुबारा बुलाया, वह मेरे पहली बार ही आने के समय क्यो नही कह दी, मुझे दुबारा आने का कष्ट न उठाना पडता और एक सप्ताह का समय बच जाता। इस पर मुहम्मद साहब मुस्कराये और उन्होंने कहा—"मैं पहली बार ही आने पर लडके को गुड छोडने का उपदेश कैसे दे सकता था, उस समय तो मैं भी गुड बहुत खाता था। तुम से भेंट होने के बाद मैंने पहले अपना सुधार करने का निश्चय किया, और उसमे सफल हो जाने पर ही मैं इस बालक को आवश्यक आदेश देने का साहस कर सका। जो आदमी अपना सुधार करने की ओर ध्यान न देकर दूसरो के सुधार का बीडा उठाता है, उसको सफलता की आशा न करनी चाहिए। वे अपने आपको धोखा देते है और ससार को धोखा देने वाले हैं।

श्री रामगोपाल जी मोहता से मेरा बहुत पुराना परिचय है। अपने समाज के "माहेश्वरी" पत्र को लगभग ४०-४५ वर्ष पहले जब मैंने देखना शुरू किया था तभी से मैं उनके विचारो से परिचित हूँ। मैं यह कह सकता हूँ कि वे ऐसे सुधारक हैं जिन्होने स्वय पहले अपना सुधार किया। आधुनिक सुधारक उनका अनुकरण करते हुए मेरी बात पर ध्यान देने की कृपा करे।

भगवानदास केला

(स्वर्गीय श्री केला जी ने अपने स्वर्गवास से कुछ ही समय पहले हमारे अनुरोध पर ये पक्तियां लिख भेजने की कृपा की थी। सभवत अपने जीवन की उनकी ये अतिम ही पक्तियां हैं। साहित्यिक क्षेत्र मे उन्होने जितना निर्माण किया उतना बडी-बडी सस्थाएँ भी नहीं कर सकीं। वे मन, वचन, कर्म, से सर्वतोभावेन सर्वोदयी थे और सर्वोदय मे सलग्न अवस्था मे ही उनका स्वर्गवास हुआ।)

●

खंड ४

इस प्रकरण में गीता के व्यावहारिक दर्शन और विचार क्रान्ति के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी लेख दिये जा रहे हैं। गीता के व्यावहारिक दर्शन पर प्रकाश डालने वाले प्राप्त अनेक लेखों को इस प्रकरण में नहीं दिया जा सका है। ऐसे सब महानुभावों से विनीत भाव से हम क्षमा प्राथी हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ विचार क्रान्ति सम्बन्धी लेख भी नहीं दिये जा सके।

इस प्रकरण में जो उपयोगी लेख दिये जा रहे हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

१ गीता पर आधुनिक दृष्टिकोण
२ गीता के अर्थ का अनर्थ
३ गीता का समत्व योग
४ गीता का धर्म और नीति
५ सर्व धर्म परित्याग
६ गीता दर्शन का व्यावहारिक रूप (अंगरेजी भी)
७. विचार क्रांति का रूप
८ सत सुधारकों की कृति का मूल्य
९. भगवान बुद्ध और महायोगेश्वर श्रीकृष्ण

गीता पर आधुनिक दृष्टिकोण

श्री तिलक, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी और मनस्वी मोहता जी की व्याख्या का तुलनात्मक विवेचन

[लेखक—श्री दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार, सम्पादक—"भारत सेवक", भूतपूर्व सम्पादक—"दैनिक विश्व मित्र", "दैनिक वीर अर्जुन", "दैनिक जनसत्ता", और "सफल जीवन" मासिक ।]

१

लोकमान्य का कर्मयोग

गीता के अर्वाचीन भाष्यो मे लोकमान्य बाल गगाधर तिलक का "गीता रहस्य" प्रमुख है। गीता-भाष्य की प्राचीन प्रणाली की सीमा का सबसे पहले इस मे उल्लघन किया गया है। प्राचीन भाष्य-पद्धति एक विशिष्ट दृष्टिकोण युक्त है जिसका सूत्रपात आदि शकराचार्य ने किया। शकर ने सबसे पहले उपनिषद्, वेदान्त और गीता को "प्रस्थान त्रयी" का नाम दे कर इन तीनो को अद्वैतपरक और जगत्-माया-मिथ्यात्व युक्त निवृत्ति मार्ग पोषक सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उन्होने कर्म की अपेक्षा ज्ञान को, प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति को और गृहस्थ की अपेक्षा सन्यास को श्रेयस्कर सिद्ध करते हुए गीता द्वारा इसकी पुष्टि की है। उनके बाद के आचार्यो ने इसी मार्ग का अवलम्बन करते हुए गीता सहित "प्रस्थान त्रयी" के भाष्य किये हैं। शकर के बाद रामानुजाचार्य ने अपने गीता भाष्य द्वारा विशिष्टाद्वैत की पुष्टि की है, अर्थात् जीव (चित्) और जगत् (अचित्) दोनो एक ही ईश्वर के शरीर है। इसलिए चित्-अचित् विशिष्ट ईश्वर एक ही है। तीसरा गीता भाष्य माध्वाचार्य ने किया जिसमे द्वैत मत का समर्थन किया गया है। ब्रह्म जीव की पृथक्ता बताते हुए भक्ति मार्ग की पुष्टि की गई है। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से किया गया चौथा भाष्य वल्लभाचार्य का है। माया रहित शुद्ध जीव और ब्रह्म को एक ही वस्तु मानते हुए परमेश्वर के अनुग्रह अर्थात् "पुष्टि" और "पोषण" की कामना ही जीवन का लक्ष्य मानी गई है। इस सम्प्रदाय का नाम इसलिए "पुष्टि मार्ग" भी है। गीता का पाँचवा भाष्य निम्बार्क का है जिसमे जीव, जगत् और ईश्वर तीनो को भिन्न-भिन्न बताते हुए जीव को केवलमात्र ईश्वर की इच्छा का साधन और राधा-कृष्ण की भक्ति को सर्वाधिक प्रधान माना गया है। छठा भाष्य ज्ञानेश्वर का है। इसमे ज्ञान और भक्ति को विशिष्टता बताते हुए पातजल के योगमार्ग की पुष्टि की गई है।

लोकमान्य ने अपने भाष्य मे इन सब रूढियो को तोड कर गीता को कर्मयोग प्रधान शास्त्र बताया। प्राचीन आचार्यों के भाष्यो को आपने साम्प्रदायिक और एकागी कहा है, जैसे एक मिठाई को देखकर चार व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि से उस के स्वरूप का वर्णन करते हैं। एक कहता है, इसमे आटा मुख्य है, दूसरा कहता है चना प्रधान है, तीसरा कहता है, घी का पहला स्थान है और चौथा चीनी को मुख्य स्थान देता है। वैसे पूर्व आचार्यों ने अपने-अपने मत को पुष्ट करने के लिए गीता के अर्थों मे अत्यधिक खीचतान की है। समुद्र-मन्थन के समय किसी को अमृत, किसी को विष, किसी को लक्ष्मी, किसी को ऐरावत, कौस्तुभ, पारिजात आदि भिन्न-भिन्न पदार्थ मिले। परन्तु, यह नही कहा जा सकता कि इससे समुद्र का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट हो गया अथवा उसकी

गहराई पता लग गई। गीता-सागर का मन्थन करने वाले इन टीकाकारो और भाष्यकारो की ऐसी ही अवस्था है। गीता तो एक ही है और उसके श्लोक भी एक ही हैं पर इन साम्प्रदायिक भाष्यकारो ने इतनी रस्साकशी की है कि वह एक जजाल बन गया है। इस सदोष और साम्प्रदायिक पक्षपात की दृष्टि छोडकर हमे स्पष्ट, सीधे और स्वाभाविक ढग से गीता के तात्पर्य को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी ग्रन्थ को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह देखना चाहिए कि वक्ता या लेखक का अभिप्राय क्या है, किस प्रकार के वाक्यो से और कैसे प्रकरणो से अपने विचारो की पुष्टि की गई है, उसमे क्या उदाहरण हैं और अन्त मे क्या सिद्धान्त निकाला गया है। मीमासा शास्त्र मे इस कसौटी को निम्न श्लोक मे बहुत अच्छे ढग से स्पष्ट किया गया है—

उपक्रमोपसहारौ अभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्ग तात्पर्यनिर्णये॥

किसी ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्णय करने मे सात बातें साधन स्वरूप हैं, पहले ग्रन्थ का आरम्भ किस उद्देश्य से हुआ और उसकी समाप्ति किस प्रकार हुई। प्रारम्भ और अन्त का आपस मे समन्वय होना चाहिए। इसे ही उपक्रम और उपसहार कहा गया है। तीसरा साधन अभ्यास है, अर्थात् बार-बार कह कर किस बात पर अधिक बल दिया गया है। चौथा, अपूर्वता अर्थात् अपने पक्ष की सिद्धि मे क्या नवीन सिद्धान्त, युक्ति अथवा विशेष अद्भुत बात कही गई, पाँचवाँ 'फल' अर्थात् परिणाम, लेखक जिस तत्त्वार्थ को पाठक के सामने निचोड के रूप मे रखना चाहता है, छठा अर्थवाद अर्थात् अपने पक्ष की पुष्टि के लिए उदाहरण देना, दृष्टान्त देना अथवा अलकार व व्यग्य रूप से कोई बात कहना, सातवाँ उपपत्ति, अर्थात् तर्कशास्त्र के अनुसार बाधक युक्तियो का खडन और साधक प्रमाणो द्वारा अपना पक्ष-समर्थन, इस प्रकार ग्रन्थ के आदि और अन्त के किनारो को मिला देना। मीमासको द्वारा प्रस्तुत ये सातो सिद्धान्त न केवल भारत मे अपितु सर्वत्र माने गये हैं और इन मे ऐसी कोई बात नही है जिसका विरोध किया जाए।

लोकमान्य तिलक ने इसी कसौटी पर गीता की परीक्षा की है। गीता का आरम्भ अर्जुन के विषाद, मोह और द्वन्द्वात्मक स्थिति से होता है। क्षात्र धर्म उसे युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा था जब कि अपने सामने युयुत्सु रूप मे खडे गुरुजन और आत्मीय जनो का मोह उसे कर्त्तव्य पथ से विरत कर रहा था। एक ओर कूँआ, दूसरी ओर खाई—ऐसी अर्जुन की मानसिक स्थिति थी। इस मोह मे ग्रसित होकर वह घर से भाग भिक्षा-वृत्ति को स्वीकार करने के लिए उद्यत हो गया। अब इस प्रकार उद्वेलित मानस के युवक को सीधे मार्ग पर लाना, उसके विषाद और मोह का निराकरण करते हुए उसे क्षात्र धर्मानुकूल युद्ध के लिए प्रेरित करना, यही कार्य श्री कृष्ण ने किया। अपने पक्ष-पोषण के लिए भगवान् कृष्ण ने शरीर-जीवात्मा का सम्बन्ध बताते हुए और आत्मा की अमरता पर बल देते हुए अर्जुन को पहले मृत्यु के भय से मुक्त किया। फिर कर्मयोग की बडे प्रभावपूर्ण शब्दो मे व्याख्या की। अर्जुन को बार-बार इन शब्दो से प्रेरित किया—"तस्माद् युध्यस्व भारत" इसलिए हे अर्जुन! तू युद्ध कर (गीता २।२८) "तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय"—इसलिए हे कुन्तिपुत्र अर्जुन! तू युद्ध का निश्चय कर उठ खडा हो (गीता २।३७) "तस्मादसक्त सतत कार्य कर्म समाचर"—इसलिए तू मोह छोड कर अपना कर्त्तव्य कर्म कर (गीता ३।३६) "कुरु कर्मैव तस्मात् त्वम्" इसलिए तू कर्म ही कर (गीता ४।१५)—"मामनुस्मर युध्य च"—इसलिए मेरा स्मरण कर और लड। अध्याय ११, श्लोक ३३ कितना स्पष्ट और सार्थक है—

तस्मादुत्तिष्ठ यशो लभस्व।
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्य समृद्धम्॥
मयैवेते निहता पूर्वमेव।
निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन्॥

हे अर्जुन ! तू उठ, यश प्राप्त कर और शत्रुओ को जीत कर ऐश्वर्ययुक्त राज्य का भोग कर। सामने खडे शत्रु मुझ द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं, इसलिए हे सव्यसाची अर्जुन ! तू केवल निमित्त बन कर ही आगे आ। गीता का अध्याय १६, श्लोक २४ इस प्रकार है :—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥

क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है। इसका निर्णय करने के लिए तुझे शास्त्रो को प्रमाण मानना चाहिए। शास्त्रो मे जो कुछ कहा गया है उसे समझ कर उसी के अनुसार इस लोक मे कर्म करना तुझे उचित है।

गीता के अन्तिम अध्याय १८ मे भगवान् ने अपने सारे उपदेश का उपसहार किया हैं। छठे श्लोक मे भगवान् अपना निश्चित सिद्धान्त इन शब्दो मे प्रकट करते है —

एतान्यपि तु कर्माणि संगंत्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥

इन ऊपर कहे गये यज्ञ, दान, तप आदि कर्म बिना फल की आशा रखे तुझे करते रहना चाहिए, हे अर्जुन ! यह मेरा उत्तम मत है।

इस अध्याय के साथ गीता के उपदेश को समाप्त करते हुए भगवान् कृष्ण अर्जुन से ७२वें श्लोक मे पूछते है :—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थत्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञान समोहः प्रणष्टस्ते धनंजय ॥

हे अर्जुन ! तुम ने एकाग्र मन से मेरा यह सारा उपदेश सुन तो लिया पर तुम्हारा मोहरूपी अज्ञान अभी तक पूरी तरह नष्ट हुआ हैं कि नही।

अर्जुन ने इसका जो उत्तर दिया, इसी अध्याय का ७३ श्लोक, वह कितने मार्के का है :—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

हे अच्युत ! तुम्हारी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे अपने कर्त्तव्यधर्म की स्मृति हो गई है। मैं अब सन्देह रहित हो गया हूँ और आप के वचन का पालन करूंगा।

गीता के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर उसके विषय को दृष्टि मे रखते हुए नाम सकेत किया गया है। १८वें अध्याय की समाप्ति पर ये शब्द दिये गये हैं—इति श्रीमद्भगवत गीतासु उपनिपत्सु ब्रह्मविद्याया योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सवादे मोक्ष सन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्याय।" इस वाक्य मे से "इति श्रीमद्भगवत गीतासु उपनिपत्सु ब्रह्मविद्याया योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सवादे " यह शब्द प्रत्येक अध्याय के अंत मे एक समान आते हैं। इसके बाद अध्याय का विषय और अध्याय की सख्या दी गयी है जैसा उपर १८वें अध्याय के अन्त के शब्द उद्धृत किये गये है। इसका अर्थ है इस प्रकार श्री भगवद्गीता मे उपनिपदो मे ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत योग शास्त्र मे श्रीकृष्ण अर्जुन सवाद मे मोक्ष सन्यास योग नाम का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ। इसमे "मोक्ष सन्यास" शब्द को लेकर निवृत्ति मार्ग पोपक यह युक्ति देते हैं कि यह अध्याय सन्यास मार्ग प्रेरक है पर इस सारे अध्याय मे कर्मयोग का ही उपदेश है। पाँचवे श्लोक मे भगवान् स्पष्ट कहते हैं :—

यज्ञदानतपः कर्म न त्यज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

यज्ञ, दान, तप आर कर्म का कभी त्याग न करके इन्हे करना ही चाहिए। यज्ञ, दान और तप बुद्धि-

मानो को भी पवित्र करने वाले हैं। इस अध्याय मे ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, घृति, बुद्धि, सुख—इन सब के सत्, रज, तम्— इस दृष्टि से तीन-तीन भेद बताते हुए चारो वर्णों के कर्मों का निर्देश किया गया है और धर्मपालन के लिए आग्रह करते हुए अर्जुन को कहा गया है कि —

असक्तबुद्धि सर्व जितात्मा विगतस्पृह ।
नैष्कर्म्य सिद्धि परमां सन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४६ ॥

किसी भी काम मे आसक्ति न रख, स्पृहा रहित आत्मा (मन) को वश मे करके निष्काम भाव से कार्य करने पर कर्म फल के सन्यास द्वारा सिद्धि को प्राप्त होता है।

अध्याय के अन्त मे अहकार को छोड ईश्वर के अर्पण अपने को कर, किसी प्रकार की चिन्ता न करते हुए श्रीकृष्ण के उपदेश के अनुसार कार्य करने का आदेश अर्जुन को दिया गया है और फिर यह प्रश्न पूछा गया है कि तुमने क्या समझा और तुम्हारा मोह दूर हुआ है या नही। इसका जो उत्तर अर्जुन ने दिया वह पहले कहा जा चुका है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस अध्याय के "मोक्ष सन्यास योग" नाम का एक मात्र अर्थ यही है कि "काम्य कर्मों का सन्यास" न कि सन्यास आश्रम का ग्रहण करना, जैसा कि निवृत्तिमार्गी कहते हैं।

वे कहते हैं कि गीता का मुख्य विषय तो कर्म-सन्यास ही है, बीच-बीच मे कर्मयोग की प्रशसा आनुषंगिक और अर्थवाद रूप मे ही की गयी है। पर यह युक्ति बडी सार हीन है। यदि कर्म सन्यास ही श्रीकृष्ण के उपदेश का मुख्य लक्ष्य था तो अर्जुन तो इसके लिए पहले से ही उद्यत था। वह भयकर कुल क्षय और जाति क्षय को देख कर युद्ध से विमुख हो गाडीव को फैंक चुका था। फिर इतना विस्तृत उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी। अर्जुन की कुल परम्परा वर्ण संकर और जातिधर्म नष्ट होने की शका तो वैसी की वैसी बनी रहती। निश्चय ही श्रीकृष्ण इस प्रकार के पलायन वाद का उपदेश अर्जुन को नही देना चाहते थे। अर्जुन की शकाओ का निवारण उन्होंने एक ही प्रभावशाली युक्ति से किया कि "निष्काम वृत्ति से कर्म करो और यह युद्ध भी निष्काम बुद्धि से करो।" गीता का सार इसी निष्काम कर्म मे है। लोकमान्य ने गीता के निम्न श्लोक को कर्म योग का सारभूत बताया है —

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ २ ॥ ४७

कर्म करने मात्र का तेरा अधिकार है, फल की प्रतिक्रिया पर तेरा अधिकार नही है। किसी कर्मफल की प्रेरणा से तू कर्म करने वाला मत हो और कर्म न करने की ओर भी तेरी प्रवृत्ति न हो।

लोकमान्य के शब्दो मे यह कर्मयोग की चतुसूत्री है और इसमे कर्मयोग का सारा रहस्य थोडे मे उत्तम रीति से बतला दिया गया है" (गीता रहस्य पृष्ठ ३३८)

यह कहना ठीक नही कि गीता मे वेदान्त, भक्ति और पातजल योग का कोई वर्णन नही है परन्तु, लोकमान्य के कथनानुसार, इन तीनो का समन्वय गीता मे बहुत सुन्दर ढग से किया गया है। प्रवृत्ति धर्म और निवृत्तिधर्म दोनो मे अविरोध गीता द्वारा प्रतिपादित किया गया है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो प्रकार के मार्गों की कसौटी लोकसग्रह को भगवान् कृष्ण ने माना है। व्यावहारिक रूप मे गीता का स्वरूप यह है कि किसी धर्म के उचित व अनुचित होने का निर्णय बाहर के परिणाम से नही किन्तु कर्त्ता की बुद्धि से किया जाना चाहिए। "बुद्धौशरण मन्विच्छ कृपणा फलहेतव"—गीता का यह वाक्य बडा ही सार्थक है।

लोकमान्य तिलक की दृष्टि मे गीता का तत्त्व क्या है, यह उनके निम्न शब्दो से बहुत स्पष्ट हो जाता है—

"किसी भी दृष्टि से विचार कीजिए, अन्त मे गीता सचतो याच्च कीह त्पर्य हमलूमागाकि" ज्ञान भक्तियुक्त कर्मयोग" ही गीता का सार है। अर्थात्, साम्प्रदायिक टीकाकारो ने कर्मयोग को गौण ठहरा कर गीता के जो अनेक प्रकार के तात्पर्य वतलाये हैं, वे यथार्थ नही है।...... भगवान् ने ऐसे ज्ञान मूलक, भक्ति प्रधान और निष्कामकर्म विषयक धर्म का उपदेश गीता मे किया है कि जिसका पालन आमरण किया जाए, जिससे वुद्धि (ज्ञान), प्रेम (भक्ति) और कर्त्तव्य का ठीक-ठीक मेल हो जाए, मोक्ष की प्रप्ति मे कुछ अन्तर न पडने पाये और लोक-व्यवहार भी सरलता से होता रहे। इसी मे कर्म-अकर्म के शास्त्र का सार भरा हुआ है। अधिक क्या कहे, गीता के उपक्रम, उपसहार से यह वात स्पष्टतया विदित हो जाती है कि अर्जुन को इस धर्म का उपदेश करने मे कर्म अकर्म का विवेचन ही, मूल कारण है।" (गीता रहस्य पृ० ४९३)

लोकमान्य ने अपनी पुस्तक का नाम "गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" रखा है। इनका आशय इसीसे स्पष्ट हो जाता है। गीता के प्रत्येक श्लोक की टीका और व्याख्या प्रारम्भ करने से पूर्व उन्होने ६२२ पृष्ठो मे १५ प्रकरण और एक परिशिष्ट प्रकरण "गीता की वहिरग परीक्षा" के नाम से लिखे हैं। इन १६ प्रकरणो मे लोकमान्य ने इतना गम्भीर, सर्वागपूर्ण और कई जगह मौलिक चित्रण किया है कि सामान्य वुद्धि के व्यक्ति के लिए वह सहजगम्य प्रतीत नही होता। पृष्ठ ६३५ से ९०३ तक अर्थात् २६८ पृष्ठो मे लोकमान्य ने गीता के प्रत्येक अध्याय के श्लोको की टीका और आवश्यकता अनुसार व्याख्या की है। इस प्रकार यह वृहत् ग्रन्थ गागर मे सागर के समान है। इस मे जितना गहरा उतरें उतने ही रस प्राप्त होते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ और अन्त मे कई प्रकार की सूचियाँ भी दी गयी हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ मे श्री अरविन्द और महात्मा गाधी की सम्मतियाँ दी गयी हैं। श्री अरविन्द के शव्दो मे "गीता रहस्य का विपय तो गीता ग्रन्थ है वह भारतीय आध्यात्मिकता का परिपक्व सुमधुर फल है।" महात्मा गाधी के शव्दो मे "वर्तमान अवस्था मे तो गीता मेरा वाइविल या कुरान तो नही वल्कि प्रत्यक्ष माता ही है। अपनी लौकिक माता से तो कई दिनो से मैं विछुडा हूँ किन्तु तभी से गीता मैया ने मेरे जीवन मे उनका स्थान ग्रहण कर लिया है और उसकी क्षति नही के वरावर कर दी। आपत्काल मे यही मेरा सहारा हैं।"

•

२

योगीराज अरविन्द् की अध्यात्म दृष्टि

श्री अरविन्द ने १९१३ से १९२० तक अपनी मासिक पत्रिका "आर्य" मे गीता पर एक लेख माला लिखी थी जो वाद मे पुस्तकाकार रूप मे प्रकाशित हुई है। १९५४ मे उसका तीसरा सस्करण "गीता-प्रवन्ध" के नाम से निकाला गया।

"गीता के नवीन भाष्यकारो" मे श्री अरविन्द का अन्यतम स्थान है। लोकमान्य तिलक के भाष्य से इसमे एक वडा भेद है। लोकमान्य का 'गीता रहस्य' एक प्रकार से सर्वसंग्राहक ग्रन्थ है, वह केवल गीता की व्याख्या नही है किन्तु उपनिषद, रामायण, महाभारत और षड्दर्शनो तथा स्मृतिग्रन्थो का निचोड है। वह एकऐसा विशाल ग्रन्थ है जिसमे अनेक अनमोल रत्न भरे हुए है और जो जितना गहरा गोता लगा सके, उसे उतनी ही

अधिक तत्त्वार्थ की प्राप्ति हो सकेगी। लोकमान्य ने गीता की कर्मयोगपरक व्याख्या करते हुए उसे आध्यात्मिक और आचार शास्त्र के साथ-साथ प्रवृत्ति मार्ग का नीतिग्रन्थ माना है।

इसके विपरीत श्री अरविन्द गीता को विशुद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं। अपनी पुस्तक "गीता प्रबन्ध"[२] के प्रारम्भ मे ही आप कहते हैं—"गीता नीतिशास्त्र या आचार शास्त्र का ग्रन्थ नही है, बल्कि आध्यात्मिकता का ग्रन्थ है। वास्तव मे यह ग्रन्थ मूलत एक योगशास्त्र है और जिस योग का यह उपदेश करता है उसकी इसमे व्यावहारिक पद्धति बतायी गयी है, और जो तात्त्विक विचार इस मे आये हैं वे इसके योग की व्यावहारिक व्याख्या करने के लिए ही लिये गये हैं। इसमे ज्ञान और भक्ति के भवन को कर्म की नीव पर खडा किया गया है और कर्म को भी कर्म की जो परिसमाप्ति है, उस ज्ञान मे ऊपर उठाकर रखा गया है तथा कर्म का पोषण उस भक्ति द्वारा किया गया है जो कर्म की प्राण है और जहाँ से कर्म उद्भूत होते हैं।"

स्पष्ट है, श्री अरविन्द गीता को मुख्यत , आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं और भक्ति को ही कर्म का प्राण मानते हैं। इस दृष्टिकोण का कारण यह है कि श्री अरविन्द स्वय एक योगी थे और योग-सिद्धि द्वारा ही उन्होने गीता का मर्म जाना था।

मनुष्य की चिरतन खोज परम सत्य के लिए है। यह सनातन सत्य सर्वाश या सर्वार्थ मे किसी एक दर्शन शास्त्र या किसी एक सद्गन्थ मे उपलब्ध नही होता। यह समय, इस काल के द्वारा और मानव की मन-बुद्धि के द्वारा ही अपने को प्रकट करता है। सत्य का प्रतिपादन करने वाले सद्ग्रन्थो मे दो तरह की बातें हुआ करती हैं। एक **अचिर नश्वर** देश विशेष और काल विशेष से सम्बन्ध रखने वाली और दूसरी शाश्वत, अनश्वर सब कालो और देशो के लिए समान रूप से उपयोगी और व्यवहार्य। पहली बातें जहाँ गौण हैं वहाँ दूसरी मुख्य। इस प्रकार के सद्ग्रन्थ मे सम्पूर्ण रूप से चिरन्तन महत्व का विषय वही होता है जो सर्वदेशीय होने के अतिरिक्त स्वानुभूत हो और बुद्धि की अपेक्षा परादृष्टि के द्वारा जिसको देखा गया हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर श्री अरविन्द गीता मे से प्रकृत जीते-जागते तथ्य ढूंढना चाहते हैं और इसी के द्वारा पारमार्थिक लक्ष्य सिद्धि प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। उदाहरण के लिए, गीता मे आये "यज्ञ" शब्द को श्री अरविन्द आलकारिक, साकेतिक और सूक्ष्म तत्व का परिचायक मानते हुए मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव आदि प्राणियो मे परस्पर होने वाले आदान-प्रदान, एक दूसरे के हितार्थ बलिदान और प्राणदान का प्रतीक मानते हैं। इसी प्रकार श्री अरविन्द कर्म को भी एक आध्यात्मिक तथ्य के रूप मे ही अगीकार करते हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति अपने स्वभावके अनुसार सब कर्म सम्यक् रूप से सम्पादित करे और वह अपनी प्रकृति के स्वभाव के अनुरूप इन सहज गुणो को प्रकट करे और इन्ही गुणो के व्यापार के अनुसार व्यक्ति के जीवन की धारा चले और क्षेत्र का निर्धारण करे। गीता मे प्रयुक्त "साख्य" और "योग" शब्दो के बारे मे भी श्री अरविन्द का कहना है कि वेदान्त द्वारा प्रतिपादित मार्ग की ओर ले जाने वाले ये दो परस्पर सहकारी मार्ग हैं। इनमे एक दार्शनिक, बौद्धिक और विश्लेषणात्मक है और इसका अन्तर स्फुटित, व्यावहारिक, नैतिक और समन्वयात्मक है और अनुभूति द्वारा ज्ञान तक पहुँचाता है। गीता की दृष्टि मे इन दोनो मे कोई भेद नही है। श्री अरविन्द की दृष्टि मे गीता केवल दार्शनिक बुद्धि की कल्पनात्मक चमक अथवा आश्चर्य में डाल देने वाली युक्ति नही है बल्कि आध्यात्मिक अनुभव का चिरस्थायी सत्य है। गीता का सिद्धान्त केवल अद्वैतवाद नही है, मायावाद, विशिष्टाद्वैत, माना गया है और यही आध्यात्मिक चेतना भी है। गीता मे परब्रह्म मे जीवन का लोप नही पर निवास, साख्य और वैष्णवो का ईश्वरवाद परास्थिति है। उपनिषदो के समान गीता मे समन्वय किया गया है और यह आध्यात्मिक होने के साथ-साथ बौद्धिक भी है, इसलिए इसमे ऐसा कोई सिद्धान्त नही जिससे इसकी सार्वलौकिक व्यापकता मे बाधा पैदा हो। गीता तर्क की लडाई का हथियार नही है। यह ऐसा महाद्वार है जिसमे

से समस्त आध्यात्मिक सत्य और अनुभूति के जगत की झाँकी प्राप्त होती है। इस झाँकी मे उस परमदिव्य धाम के सभी स्थान अपनी ठीक जगह दिखाई पडते हैं। गीता मे इन स्थानो का विभाग या वर्गीकरण तो है पर कही भी एक स्थान दूसरे स्थान से विच्छिन्न नही है और न ही किसी ऐसी चहार दीवारी से घिरा हुआ है कि हमारी दृष्टि आर-पार कुछ न देख सके। उपनिषदो और वेदान्त के समन्वय के आधार पर गीता मे भी प्रेम, ज्ञान और कर्म इन तीन महान् साधनो और शक्तियो का समन्वय किया गया है।

श्रीकृष्ण, अर्जुन और गीता का उपदेश—इन तीनो के बारे मे श्री अरविन्द का कहना है कि श्रीकृष्ण गुरु रूप मे स्वय भगवान् हैं जो मानव रूप मे अवतरित हुए हैं। अर्जुन शिष्य है और अपने काल का श्रेष्ठ व्यक्ति है, इसे हम मानव मात्र का प्रतिनिधि भी कह सकते है और गीता का प्रसग वह स्थिति है जो पाँडव-कौरवो के मध्य युद्ध के समय विकट रूप से भीपण है और जिसका आतंक, प्रचड प्रभाव और जिसका सकटजनक अवस्था से मानवता का प्रतिनिधि अर्जुन एक दम हतबुद्धि, किंकर्त्तव्यविमूढ और प्रकम्पित हो यह सोचने को बाध्य होता है कि इसका आखिर क्या अभिप्राय है, जगदीश इसके द्वारा क्या चाहता है और मानव जीवन तथा कर्म का क्या मतलब है? गीता का तत्व समझने के लिए श्री अरविन्द कृष्ण की ऐतिहासिक सत्ता मानते हुए भी उसके आध्यामिक मर्म के साथ ही सम्बन्ध रखना चाहते हैं, उसे अवतार भी मानते हैं और कहते हैं कि मानव रूप मे श्री भगवान् के बार-बार अवतार लेने के सिद्धान्त को गीता मानती है। इसके साथ ही गीता मे भगवान् के जिस रूप पर जोर दिया गया वह यह नही है किन्तु परात्मक विराट् और आतरिक है, समस्त वस्तुओं का उद्गम है, सबका स्वामी है और मनुष्य के हृदय मे वास करता है।

गीता का लक्ष्य मानव को भागवत स्थिति तक पहुचाना है। इस स्थिति का अभिप्राय है कि आत्मा को मन-बुद्धि, प्राण और शरीर के जीवन से निकाल कर परा शक्ति मे ले जाना। इस ससार मे आकर आत्मा को कर्म तो करना ही होगा, जगत को अपने काल चक्र पूरे करने ही होंगे पर मानव शरीर मे आये आत्मा का यह काम नही है कि वह जिस कार्य को करने के लिये यहाँ आया है, उसे अपने नियत कर्म की ओर से अज्ञान वश अपनी पीठ फिरा दे। गीता की शिक्षा का सम्पूर्ण क्रम इन्ही तीन बातो मे है।

गीता के "उपदेश का सार मर्म" बताते हुए श्री अरविन्द कहते हैं कि गीता मे आये सन्यास शब्द के प्रयोग से ही यह समझ लेना कि "सन्यास मार्ग" की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है यह भारी भूल है। अगर पक्षपात रहित होकर देखा जाए तो गीता मे बार-बार यही बात कही गई है कि अकर्म भी अपेक्षा कर्म ही श्रेष्ठ है क्योकि इसके द्वारा समाज की प्राप्ति होती है और आन्तरिक त्याग द्वारा इस कर्म को परमपुरुष को अर्पण करना होता है। गीता मे भक्ति तत्त्व नि सन्देह हैं और पुरुषोत्तम सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया गया है पर इसके साथ तीन बातें और कही गयी हैं जो बडी मार्के की हैं—(१) ईश्वर वह आभितत्व है जिसमे सम्पूर्ण ज्ञान परिसमाप्त होता है (२) वही इसका प्रभु है जिसके समीप सब कर्म हमको ले जाते हैं और (३) यह ईश्वर ही प्रेमरूप स्वामी है जिसमे भक्त हृदय प्रवेश करता है। गीता मे कही ज्ञान पर जोर है, कही कर्म पर और कही भक्ति पर परन्तु यह तात्कालिक विचार प्रसग से है। इसका यह मतलब नही कि कोई किसी से श्रेष्ठ व हीन है। जिस भगवान् मे ये तीनो मिलकर एक हो जाते हैं वह परमपुरुष है, वही पुरुषोत्तम है। वह ज्ञानयुक्त सचेतन शरणागत है जिसमे भक्त कर्मी अपने आपको पहले भगवान् के हाथो सौंप देता है और बाद मे भगवान् सत्ता मे प्रवेश करता है।

गीता जिस कर्म का प्रतिपादन करती है वह मानव कर्म नही किन्तु दिव्य कर्म है, सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन नही किन्तु कर्त्तव्य और आचरण के अन्य सब पैमानो का त्याग कर अपने स्वभाव के द्वारा कार्य करने

विचार सर्वथा भिन्न हैं। गीता की और उसके साथ सम्बद्ध महाभारत की ऐतिहासिकता को ही लें। गाधी जी का यह विचार पश्चिम से प्रभावित प्रतीत होता है। भारत के इतिहास का बडा अश, उसकी परम्पराएँ, उसका लोक जीवन, नगरो और तीर्थों के नाम, उनके साथ सम्बद्ध कथाएँ तथा जनता की युगो से चली आ रही भावनाएँ सब पर पानी फिर जाएगा अगर गाधी जी की यह बात मान ली जाए। पर हम यहाँ इस पर अधिक विचार नही करना चाहते। गाधी जी गीता को आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं। आप कहते हैं "गीता हमारे लिए आध्यात्मिक निदान ग्रन्थ है। उसके अनुसार आचरण मे निष्फलता रोज आती है पर यह निष्फलता हमारा प्रयत्न रहते हुए है। इस निष्फलता मे सफलता की फूटती हुई किरणो की झलक दिखाई देती है।" श्री अरविन्द भी गीता को आध्यात्मिक ग्रन्थ मानते हैं जबकि लोकमान्य की दृष्टि मे वह कर्मयोग शास्त्र है। पर श्री अरविन्द महाभारत के युद्ध को यथार्थ ही नही मानते किन्तु युद्ध की आवश्यकता को भी स्वीकार करते हैं। गाधी जी की मान्यता है कि महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नही किन्तु निरर्थकता सिद्ध की है और विजेता से रुदन, पश्चात्ताप तथा दुःख प्रकट कराया है। महाभारत मे लिखित घटनाओ से इस स्थापना की पुष्टि नही होती।

गीता मे "युद्ध" शब्द कई बार आया है और जितनी बार भी आया है उसमे यह कहा गया है कि "हे अर्जुन ! तू युद्ध कर" पर यह गीता मे कही भी नही कहा गया कि "तू युद्ध मत कर।" गीता मे "युद्ध" शब्द निम्न स्थलो पर आया है और गाधी जी ने "अनासक्ति योग" मे जो उसके जो अर्थ किये हैं, वे भी हम प्रत्येक श्लोक व वाक्य के साथ नीचे उद्धृत करते हैं—

अन्ये च बहव शूरा मदर्थे त्यक्तजीविता ।
नानाशस्त्रप्रहरणा सर्वे युद्धविशारदा ॥ १।९

अर्थ—दूसरे भी बहुतेरे नाना प्रकार के शस्त्रो से युद्ध करने वाले शूरवीर हैं जो मेरे लिए प्राण देने वाले है। ये सब युद्ध मे कुशल हैं।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ १।२२

अर्थ—जिससे युद्ध की कामना से खडे हुए लोगो को मैं देखूँ और जानूँ कि इस रण सग्राम मे मुझे किसके साथ लडना है।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागता ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षव ॥ १।२३

अर्थ—दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध मे प्रिय करने की इच्छा वाले जो योद्धा इकट्ठे हुए हैं, उन्हें मैं देखूँ तो सही।

एवमुक्त्वा हृषीकेश गुडाकेश परतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥

अर्थ—हे राजन् ! गुडाकेश अर्जुन हृषीकेश गोविंद से ऐसा कहकर "नही लडूँगा" कहते हुए चुप हो गये।

तस्मात् युद्धयस्व भारत। २।१८

अर्थ—इसमे हे भारत तू युद्ध कर।

धर्म्याद्धि युद्धात् श्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ २।३१

अर्थ—धर्म युद्ध को अपेक्षा क्षत्रिय के लिए और कुछ अधिक श्रेयस्कर नही हो सकता।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २।३२

अर्थ—ऐसा युद्ध तो भाग्यशाली क्षत्रियो को ही मिलता है।

अथ चेत्त्विममं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ २।३३

अर्थ—यदि तू यह धर्म प्राप्त युद्ध नही करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खो कर पाप को प्राप्त होगा।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेयः युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ २।३७

अर्थ—अत हे कौन्तेय! लडने का निश्चय कर तू खडा हो।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ २।३८

अर्थ—इस प्रकार तू युद्ध के लिए तैयार हो, ऐसा करने से तुझे पाप नही लगेगा।

युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३।३०

अर्थ—राग रहित होकर तू युद्ध कर।

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥ ८।७

अर्थ—इसलिए सदा मुझे स्मरण कर और जूझता रह।

तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्व,
जित्वा शत्रुन्भुङ्क्ष्वराज्यं समृद्धम्।
मयैवेते निहिताः पूर्वमेव,
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ११।३३

अर्थ—इसलिए तू उठ खडा हो, कीर्ति प्राप्त कर, शत्रु को जीता कर धनधान्य से भरा हुआ राज्य भोग। इन्हें मैंने पहले से ही मार रखा है। सत्यसाचिनसाची! तू केवल रूप वन।

मया हतास्त्वं जहि माव्यथिष्ठा।
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ११।३४

अर्थ—उन्हें तू मार, डर मत, लड। शत्रु को तू रण मे जीतने को है।

ऊपर हमने समस्त गीता मे से ऐसे १४ श्लोक व श्लोकांश और साथ मे गाँधी जी के अर्थ उनकी पुस्तक "अनासक्ति" मे से उद्धृत किये हैं जिनमे स्पष्ट रूप से युद्ध करने का आदेश है। गाँधी जी ने इन सब श्लोको मे आये हुए "युद्ध" शब्द का अर्थ—युद्ध अर्थात् लडाई ही किया है। यदि गाँधी जी यह समझते थे कि गीता मे कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध मे प्रेरित करने की अपेक्षा उससे विरत करने का उपदेश दिया है तब उन्हे चाहिए था कि इन सब श्लोको की ठीक सगति लगाते और "युद्ध" शब्द की स्पष्ट व्याख्या करते। केवल यह कह देने से कि गीता मे भौतिक युद्ध के वर्णन के वहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरतर होते रहने वाले द्वन्द्व युद्ध का ही वर्णन है, मनुषी योद्धाओ को रचना हृदयगत युद्ध को रोचक बनाने के लिए गढी हुई कल्पना है"—(अनासक्ति योग ६ ६)—पूरा सतोष नहीं हो सकता। समग्र गीता का पाठ करने के वाद एक सामान्य पाठक के हृदय मे यह शका पैदा होती है कि जब अर्जुन ने दोनो सेनाओ के वीच अपना रथ खड़ा कर और दोनो ओर शस्त्र सज्जित सेनाओ को देखकर मोह ग्रस्त हो युद्ध करने से इन्कार कर दिया था और अपने हाथ से गाडीव धनुष को नीचे रख दिया था तब भगवान कृष्ण ने उसे उपदेश दिया। इतना विस्तृत, गभीर और जीवन मे क्रान्ति ला देने वाले उपदेश के वाद श्री कृष्ण पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञान संमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ १८।७२

यह हृदय मथन से ही उत्पन्न होता है । यह त्याग शक्ति पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए । एक प्रकार का ज्ञान तो बहुतेरे पडित पाते हैं । वेदादि उन्हे कठ होते हैं । परन्तु उनमे से अधिकाँश भोगादि मे लगे-लिपटे रहते हैं । ज्ञान का अतिरेक शुष्क पाँडित्य के रूप मे न हो जाए, इस ख्याल से गीताकार ने ज्ञान के साथ भक्ति को मिलाया और उसे प्रथम स्थान दिया । बिना भक्ति का ज्ञान हानिकर है । इसलिए कहा गया है—"भक्ति करो तो ज्ञान मिल ही जाएगा । पर भक्ति तो "सिर का सौदा" है । इसलिए गीताकार ने भक्त के लक्षण स्थित प्रज्ञ के से बतलाये है । तात्पर्य, गीता की भक्ति बाह्य चारिता नही, अधश्रद्धा नही है । इसमे से हम देखते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना, भक्त होना ही आत्म दर्शन है । आत्म-दर्शन उससे भिन्न वस्तु नही है ।"

गाँधी जी के "अनासक्ति योग" की सबसे बडी विशेषता यह है कि गाँधी जी ने इसमे गीता के सम्बन्ध मे जो लिखा है वह गाँधी जी के अपने शब्दो मे "गीता की शिक्षा को पूर्ण रूप से अमल मे लाने का ४० वर्ष तक सतत प्रयत्न करने के बाद" लिखा गया है । इसलिए जब आप कहते हैं कि—

"गीता सूत्र ग्रन्थ नही है । गीता एक महान धर्म काव्य है । उसमे जितना गहरा उतरिए उतने ही उसमे से नये और सुन्दर अर्थ लीजिए । गीता जन समाज के लिए है, उसमे एक ही बात को अनेक प्रकार से कहा गया है ।"

"गीता मे ज्ञान की महिमा सुरक्षित है, तथापि गीता बुद्धिगम्य नही, वह हृदयगम्य है ।" (पृ० १६) सचमुच गाँधी जी के ये शब्द ४० वर्ष की अनुभूति और गहरे आत्म निरीक्षण के आधार पर है । "अनासक्ति योग" की यह अनुभूति और अनिर्वचनीय विशेषता योगीराज श्री अरविन्द की अनुभूति के समान है ।

●

४

मोहता जी का व्यावहारिक दर्शन

पुराणो मे एक कथा है । पतित पावनी गगा पहले स्वर्ग मे थी । वहाँ से गिर कर वह शकर की जटाओ मे समा गई । बहुत दिन तक वही पडी रही । वहाँ से हिमालय के वनो मे फसी रही । राजा भगीरथ हिमालय मे उसे भूतल पर लाये जिससे असख्य प्राणियो का कल्याण हुआ । गीता की भी दशा गगा के समान ही है । बडे-बडे आचार्यो, पण्डितो, भाष्यकारो और टीकाकारो के चक्रव्यूह मे फसी गीता की ज्ञान गगा सामान्य जनो के लिए दुर्लभ थी । हिमालय स्थित शकर भगवान् की जटाओ मे उलझी गगा सदृश गीता की कलुष हारिणी अमृत धारा अल्पज्ञानियो के लिए बडी दुरूह थी । वे उसको पूजा के योग्य अवश्य मानते थे, पर उनके लिए वह दैनिक व्यवहार का दर्पण नही बन सकी थी । शकर के जटा जूट मे से पृथ्वी पर गगा को लाने का श्रेय जिस प्रकार राजा भगीरथ को है उसी प्रकार गीता को आम लोगो तक पहुचाने और उसे दैनिक व्यवहार के लिए दर्पण बनाने का श्रेय जिन मूर्धन्य व्यक्तियो को दिया जा सकता है उनमे लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी के अतिरिक्त मनस्वी रामगोपाल जी मोहता का विशेष स्थान है । आपने कई वर्षों तक गीता का गम्भीर अनुशीलन करके सरल और सीधी भाषा मे बडा उपयोगी, सुलभ और व्यवहार योग्य साहित्य दिया है । आपकी चिन्तन शैली एक दम नवीन दिशा की सूचक और अद्भुत सूझबूझ वाली है । आपका दृष्टिकोण सर्वथा भगवान् कृष्ण के सिद्धान्त के अनुकूल है । भगवान् कहते हैं—

मांहि व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ।। ९।३२

मोहता जी ने अपनी पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" के २४० पृष्ठ पर इस श्लोक का जो अर्थ किया है वह सब प्राचीन रूढियो को तोडते हुए सर्वथा सहजगम्य है। आप लिखते हैं, "हे पार्थ ! जो पापयोनि हैं अर्थात् जो पूर्व के पापो के कारण तामस स्वभाव वाली (चोर, ठग, डाकू आदि जरायम पेशा) जातियो मे जन्म लेने वाले लोग हैं, वे, और स्त्रिया, वैश्य तथा शूद्र, अर्थात् जिनमे रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता होती है वे मेरा आश्रय करके, अर्थात् उपरोक्त अनन्य भाव से मेरी उपासना करने से परम गति को पाते हैं।" पर टीकाकारो ने भगवान् कृष्ण के इस आदेश का सर्वथा उल्लघन करते हुए गीता को ऐसे परिधान मे परिवेष्टित कर दिया कि स्त्री, वैश्य, शूद्र, पापयोनि तो क्या बेचारे बडे उत्कृष्ट विद्वान् भी उसे समझने मे असमर्थ हो गये थे। मोहता जी ने इन परम्पराओ के विरुद्ध आधुनिक दृष्टि से गीता को देखा। अपनी पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" के पृष्ठ २४ का निम्नलिखित सदर्भ मोहता जी की विचार सरणी का पूरी तरह परिचायक है—

"श्रीमद्भागवत् गीता को उपनिषदो का सार माना जाता है। वह उपनिषदो का सार ही नही है किन्तु उसके गहन और सूक्ष्म सिद्धान्तो का जीवन के व्यवहारो मे उपयोग करने का विधान भी है। ज्ञान और व्यवहार के मेल का खुलासा सर्वत्र सरल और सुगम रीति से गीता मे किया गया है। ..गीता की यह विशेषता है कि आत्म ज्ञान की सात्त्विकी बुद्धि से कर्तव्य का निर्णय करके, जगत् के व्यवहार किस तरह करने चाहिए कि जिससे अभ्युदय और नि श्रेयस दोनो, अर्थात् शान्ति, पुष्टि और तुष्टि की निश्चयपूर्वक प्राप्ति हो सके, इस ज्ञान-कर्म समुच्चय का निरूपण इसमे बहुत ही स्पष्ट रूप से किया गया है, सो भी केवल सात सौ श्लोको मे और बहुत ही सरलतापूर्वक। यदि गीता मे केवल एकात्म ज्ञान के सिद्धान्त (थ्यूरी) मात्र ही का उपदेश होता तो उसकी कोई विशेषता नही होती, और न उसकी सार्वजनिकता और सर्वोपयोगिता ही होती। आत्मज्ञान के तो बहुत से ग्रन्थ हैं परन्तु जिस ज्ञान के अनुकूल व्यवहार न हो सके, अथवा जिसका व्यवहार में कुछ भी उपयोग न हो सके, वह साधारण लोगोंके किस काम का ! वह शुष्क ज्ञान तो लौकिक व्यवहार से विरक्त सन्यासियो ही के उपयोग मे आ सकता है परन्तु गीता मे शुष्क ज्ञान नही है। गीता तो व्यावहारिक वेदान्त का एक अनुपम ग्रन्थ है जिसकी उपयोगिता किसी व्यक्ति विशेष तक परिमित नही है। वह सार्वभौम और सार्वजनिक है। उसका उपयोग छोटे से छोटे और बडे से बडे लोग—जाति, वर्ण, आश्रम, धर्म, समुदाय, देश और काल के भेद बिना—सदा सर्वदा कर सकते हैं।"

गीता एक वेदान्त ग्रन्थ है परन्तु वेदान्त के सम्बन्ध मे कुछ भ्रान्त धारणाएँ फैली हुई हैं। यह समझ लिया गया है कि "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" ही वेदान्त है और वह मनुष्य को हाथ पर हाथ रखकर बैठने की शिक्षा देता है। इसलिए गीता भी ससार छोड कर सन्यासी होने का उपदेश देती है। यह सर्वथा मिथ्या धारणा है। "वेदान्त" शब्द पर जरा गम्भीर विचार करने से यह गुत्थी सुलझ जाती है। "वेदान्त" मे दो शब्द हैं, वेद और अन्त। 'वेद' शब्द कई धातुओ से बनता है, अर्थात् विद् ज्ञाने, विद्-सत्तायाम्, विदलृ-लाभे। जिससे ज्ञान की प्राप्ति हो, जिससे किसी का अस्तित्व बना रहे और जिससे सुख, आनन्द, उन्नति का लाभ हो, वही वेद है। इस प्रकार के भाव का जहाँ अन्त हो, अर्थात् सीमा हो, उच्चतम स्थिति हो, उसे ही वेदान्त कहा जाता है। इसमे आलस्य और जगत् से भाग जाने की भला गुंजायश कहाँ ? श्री मोहता जी ने 'वेदान्त' शब्द की बडी मौलिक और व्यावहारिक व्याख्या की है। "गीता का व्यवहार दर्शन" पुस्तक के पृष्ठ ३० पर आप कहते हैं :—

"वेदान्त' शब्द का अर्थ है—जानने का अन्त अथवा ज्ञान की पराकाष्ठा, जानने का अन्त अथवा ज्ञान की पराकाष्ठा प्रत्येक व्यक्ति के अपने आप मे होती है। जब तक अपने से भिन्न कोई दूसरी वस्तु रहती है तब तक

जानने का अन्त नही होता क्योकि जब तक जानने वाला (ज्ञाता) और जानने की वस्तु (ज्ञेय) का अलग-अलग अस्तित्व रहता है तब तक एक दूसरे का जानना अथवा ज्ञान बना रहता है। परन्तु जब जानने वाले (ज्ञाता) और जानने की वस्तु (ज्ञेय) की पृथक्ता मिटकर एकता हो जाती है, अर्थात ज्ञाता और ज्ञेय का, सबकी एकता रूप अपने आप (सेल्फ) मे लय हो जाता है, तब जानने के लिए कुछ भी शेष नही रहता, केवल "अपना आप" ही शेष रहता है, जो जानने (ज्ञान) का विषय नही है, क्योकि जब अपने से भिन्न कोई दूसरा हो तभी जानने की क्रिया हो सकती है। अत जानने का अन्त "अपने आप" (सेल्फ) में होता है।"

तो क्या "अपने आप" (सेल्फ) को जान लेने से जगत मिथ्या हो जाता है ? जब 'अपने आप" को जान लिया तो फिर क्या संसार से भाग जाएँ और हाथ पर हाथ धर कर भाग्यवादी हो जाएँ ? इसका उत्तर श्री मोहता जी ने अपनी इसी पुस्तक के पृष्ठ ६० पर बहुत युक्तियुक्त ढँग से दिया है। आप कहते हैं —

"वास्तव मे न तो वेदान्त जगत् के अस्तित्व को मिथ्या कहता है और न उसके व्यवहार त्यागने ही का प्रतिपादन करता है। इसके विपरीत वेदान्त तो यह कहता है कि जगत् का अस्तित्व बिलकुल सच्चा है क्योकि असत् वस्तु का तो भाव ही नही होता (गीता अ० २ श्लोक १६) परन्तु जगत् का अस्तित्व तो सबको प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, एव वह सबको अच्छा और प्यारा भी लगता है, इसलिए अस्ति,—भाति प्रियरूप से अर्थात् एकत्व भाव मे वह निम्सन्देह सत्य है। वास्तव मे वेदान्त इस प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले और प्यारे लगने वाले जगत् के अस्तित्व को सच्चा मानकर ही सन्तोष नही करता किन्तु वह इसको अस्ति-भाति प्रिय-स्वरूप, एक, अविनाशी, नित्य और सत्य आत्मा (सबके अपने आप) से अभिन्न मानता है, और साथ ही साथ इसमे जो नाना भाँति के अनन्त भेद और विचित्रताएँ दृष्टि-गोचर होती रहती हैं उनको वह उसी एक, सत्-चित् आनन्द रूप आत्मा के अनेक परिवर्तनशील नाम और रूपो का कल्पित बनाव सिद्ध करता है। वेदान्त के अनुसार "जगन्मिथ्या" का तात्पर्य इतना ही है कि सबके अपने आप, सबके आत्मा परमात्मा से भिन्न जगत् का स्वतत्र अस्तित्व नही है। दूसरे शब्दो मे जगत्-आत्मा अथवा परमात्मा ही का विकृत भाव है, अत वस्तुत वह परमात्मा स्वरूप ही है। वह जैसा हमारी स्थूल इन्द्रियो को भिन्न-भिन्न प्रकार का—अनन्त उपाधियो एव द्वन्द्वो युक्त—प्रतीत होता है, वास्तव मे वैसा नही हैं।"

वेदान्त की यह कितनी व्यवहार युक्त, तर्क पूर्ण और वर्त्तमान स्थिति के अनुकूल व्याख्या है। इस वेदान्त के सिद्धान्त को शुद्ध रूप मे न समझने के कारण मध्ययुग के विचारको ने मस्तिष्क की कितनी अटकल बाजियाँ की हैं। मोहता जी की व्यावहारिक दृष्टि से गीता को पढने पर मानव की कर्म शक्ति कितनी बढ जाएगी, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्त मे विश्व के लिए कितना उपयोगी वह बन जाएगा, यह कहने की आवश्यकता नही।

गीता मे "त्रिगुणातीत" शब्द का प्रयोग हुआ है और सत्त्व, रज और तम का तो कई बार प्रयोग हुआ है। इन शब्दो का ठीक अर्थ न समझने से गीता का तत्त्व अथवा मर्म कभी स्पष्ट नही हो सकता। मोहता जी ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३६ पर इन तीनो शब्दो की बडी सुन्दर वैज्ञानिक व्याख्या की है। आप कहते है—

"सत्त्वगुण की प्रधानता से (यथार्थ) ज्ञान होता है (गीता १४।११) रजोगुण की प्रधानता से विविध प्रकार के व्यवहार होते हैं (गीता १४।१२) और तमोगुण की प्रधानता से अयथार्थ ज्ञान अर्थात् अज्ञान होता है (गीता १४।१३)। अत तमोगुण अविद्यारूप है और जिस जगत् तथा जिस शरीर मे स्थित होकर ज्ञान—अज्ञान का विचार करते है वह इन तीनो गुणो के तारतम्य का बनाव है, अत शरीर के और जगत् के रहते इन तीनो गुणो का तारतम्य बना रहना अनिवार्य है (गीता १८।४०) कभी सतोगुण की कभी रजोगुण की और कभी तमोगुण की प्रधानता होती रहती है (गीता १४।१०)। किसी एक का भी सर्वथा अप्रभाव कभी हो नह सकता।

इससे स्पष्ट है कि इनका आपस मे विरोध नही है किन्तु वे एक दूसरे के सहायक है। आत्मज्ञानी के शरीर में यद्यपि तीनो गुण रहते हैं परन्तु सत्वगुण की प्रधानता रहती है। अत वह तीनों गुणो का नियन्ता अर्थात् स्वामी होता है। वह यथार्थ ज्ञान द्वारा सर्वभूतात्मैक्य भाव से जगत् के व्यवहार करता है और स्वतत्रता पूर्वक तीनो गुणो का यथा योग्य उपयोग करता हुआ भी उसमे आसक्ति नही रखता। रजोगुण-तमोगुण उसको कुछ भी वाधा नही देते और न वह उनको त्याग देने की इच्छा करता है। (गीता १४।२२-२३)।"

प्राय. भाष्यकारो ने "त्रिगुणातीत" का अर्थ यह किया है कि जो सत्व, रज और तम इन तीनो गुणो को लाघ जाए। यह स्थिति कहने मे भले की अच्छी लगे किन्तु यह सर्वथा अव्यवहार्य है। मोहता जी ने इस सम्बन्ध मे सर्वथा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है, अर्थात् इस शरीर मे जीवात्मा के रहते इन तीनो गुणो से एकान्त छुटकारा पा जाना असम्भव है। इनमे समन्वय रखना और रज तथा तम को सत के आधीन रखना, प्रधानता सतोगुण की ओर शेष दो की अल्प मात्रा रखना और उन मे आसक्ति न रखना—यही त्रिगुणातीत का स्वरूप है। क्रमश प्रयत्न और अभ्यास करने से यह स्थिति लानी सम्भव है जिसका सकेत सार्थक ढग से मोहताजी ने किया है। इस प्रकार गीता के एक इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने से वह कितना सहजगम्य हो जाता है।

गीता मे श्रीकृष्ण ने आत्मौपम्य भाव अथवा सर्वभूतात्मैक्य भाव का वर्णन किया है। गीता के दूसरे अध्याय के अन्त मे 'स्थित प्रज्ञ", वारहवें अध्याय मे भक्त" चौदहवें अध्याय मे "गुणातीत" और सोलहवें अध्याय मे "दैवी-सम्पत्ति"—यह सव आत्मौपम्य के पोषक शब्द ही हैं। गीता की इस भावना का स्रोत वेद और उपनिषदो मे है। ऋग्वेद का मन्त्र है—

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि मा समीक्षन्ताम्"

मैं मित्र की दृष्टि से सव प्राणियो को देखूं और सव प्राणी मित्र की दृष्टि से मुझे देखने वाले हों।

यजुर्वेद के ४० वें अध्याय मे—जिसे ईश उपनिषद् भी कहा जाता है—निम्नलिखित दो मन्त्र ६ और ७ इस सर्वभूतात्मैक्य भाव के वहुत सुन्दर द्योतक हैं .—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

जो सव भूतो को अपनी आत्मा मे ही देखता है और सब भूतो मे अपनी आत्मा को, वह किसी से घृणा नही करता।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूदविजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकात्वमनुपश्यतः॥

अर्थ—जिस स्थिति मे आत्मज्ञानी को समस्त भूत प्राणी अर्थात् सारा जगत अपना आप ही होगया, उस स्थिति मे एकता देखने वाले आत्मज्ञानी के लिए मोह और शोक कहा रहता है? गीता के अध्याय ६ श्लोक २९ से ३२ और अध्याय १३ श्लोक २२ तथा २७ से ३४ तक इसी आत्मौपम्य भाव को पुष्ट किया गया है।

पर व्यवहार मे यह आत्मौपम्य की भावना कैसे आये? सत्व, रज और तम का यह पुतला मानव अपने दैनिक कार्यो मे किस प्रकार पुण्यात्मा और पापी दोनो को एक दृष्टि से देखे? श्री मोहता जी ने अपनी पुस्तक "गीता का व्यवहार दर्शन" के पृष्ठ ८२-८३ पर इस सिद्धान्त की भी वडी व्यावहारिक व्याख्या की है। आप कहते हैं —

"साधारणतया दूसरो से पृथक् व्यक्तित्व के भावो के कारण ही आसुरी सम्पत्ति के अथवा राजस-

तामस आचरण बनते हैं और एकता के साम्य भाव से दैवी सम्पत्ति के अथवा सात्विक आचरण बनते हैं। अतः जितने ही अधिक पृथक्ता के भाव बढे हुए होते हैं उतने ही अधिक आसुरी अथवा राजस-तामस व्यवहार होते हैं, और जितना ही अधिक एकता का साम्य भाव बढा हुआ होता है, उतने ही अधिक सात्विक व्यवहार होते हैं। इसलिए यह बात ध्यान मे रखने की है कि व्यवहार अथवा कर्म सब जड होने के कारण उनमे स्वय अच्छा-पन या बुरापन कुछ भी नही होता किन्तु कर्मों मे अच्छापन या बुरापन कर्त्ता के भाव से उत्पन्न होता है। यदि दैवी सम्पत्ति के सात्त्विक आचरणो मे पृथक् व्यक्तित्व के अहकार और दूसरो से पृथक् व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के भाव आ जाएँ, तो उनका दुरुपयोग होकर वे ही राजस-तामस आसुरी सम्पत्ति मे परिणत हो जाते हैं। दूसरी तरफ यदि आसुरी सम्पत्ति के राजस-तामस आचरण, समष्टिभाव और सब के हित के उद्देश्य से किये जाएं तो उनका सदुपयोग होकर वे ही दैवी सम्पत्ति के सात्विक आचरणो मे परिणत हो जाते हैं। अनेक अवसर ऐसे आते हैं, जब कि लोक सग्रह के लिए काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, मान आदि आसुरी भावो के आचरण आवश्यक एव लोकहितकर होते है, उस परिस्थिति मे वे काम-क्रोध आदि के आचरण आसुरी भाव नही रहते। इसी तरह अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब कि सत्य, दया, क्षमा, अहिंसा आदि दैवी सम्पत्ति के आचरण, लोक सग्रह के विरुद्ध, अर्थात्, लोक पीडा के हेतु हो जाते हैं, ऐसी दशा मे वे दैवी सम्पत्ति के आचरण नही रहते किन्तु आसुरी सम्पत्ति मे परिणत हो जाते हैं -' दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति सापेक्ष हैं, एक के होने के लिए दूसरी का होना अनिवार्य है। इसलिए सर्वभूतात्मैक्य-समत्व बुद्धि से—निर्णय करके ही इसका यथा योग्य आचरण करने का विधान है। कर्मो की अपेक्षा बुद्धि की श्रेष्ठता गीता मे इसलिए विशेष रूप से कही गयी हैं।"

सर्वभूतात्मैक्य भाव के सम्बन्ध में मोहता जी का उपर्युक्त दृष्टिकोण बडा ही व्यावहारिक है और सामान्य जन के लिए सुलभ है। हम समझते हैं कि मोहता जी का यह दृष्टिकोण, कई अशो मे, लोक मान्य तिलक के दृष्टिकोण से भी आगे बढ गया है।

गीता मे भगवान् ने, प्राय उत्तम पुरुष के सर्वनामो का प्रयोग किया है, जैसे "अह, माम्, मया, मे, मत्, मम, मयि" इत्यादि। यह भी कहा है—

सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेक शरण व्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच. ॥१८।६६।

हे अर्जुन ! तू सब धर्मो को छोडकर केवल मेरी शरण मे आ। मैं तुझे सब पापो से छुडा दूंगा, चिन्ता मत कर।

गीता के अन्तिम अध्याय के इन अतिम श्लोको मे सबमे "माम्" और "अह" पर ही जोर दिया गया है। इसमे क्या कृष्ण जी की अहम्मन्यता प्रकट होती है ? नही। मोहता जी ने इसकी भी बडी सुन्दर व्यावहारिक व्याख्या की है। आप के शब्दो मे इन सर्वनामो का प्रयोग "श्रीकृष्ण महाराज के विशेष व्यक्तित्व (व्यष्टिभाव) के लिए ही नही समझना चाहिए किन्तु वे सर्वनाम उनके व्यष्टि-समष्टि सयुक्तभाव, अर्थात्, सबके "अपने वास्तविक रूप (सेल्फ)" के लिए प्रयुक्त हुए समझना चाहिए। इसी तरह अर्जुन के लिए भिन्न-भिन्न नामो एव विशेषणो युक्त तो सम्बोधन है उन्हें प्रत्येक व्यक्ति के व्यष्टि-भाव के लिए समझना चाहिए। दूसरे शब्दों मे, गीता का उपदेश प्रत्येक मनुष्य (स्त्री पुरुष) मात्र के लिए, समष्टि आत्मा-परमात्मा का दिया हुआ समझना चाहिए।" (गीता का व्यवहार दर्शन पृष्ठ ७२)

इससे यह मतलब नही कि मोहता जी गाधी जी तरह श्रीकृष्ण और अर्जुन को अथवा महाभारत को ऐतिहासिक नही मानते। अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८५ पर आप कहते हैं कि "महाभारत युद्ध के तथा श्रीकृष्ण

और अर्जुन के होने का प्रमाण तो स्वय गीता ही है·· वहुत से और प्राचीन ग्रन्थो मे भी इस विजय के प्रचुर प्रमाण भरे पडे हैं तथा महाराज युधिष्ठिर का सवत् अव तक प्रचलित है।"

गीता मे "यज्ञ" "आसक्ति" "निष्काम कर्म" "कर्मफल त्याग" आदि शब्द वारवार आते हैं। अन्य भाष्यकारो के प्रचलित अर्थों के विरुद्ध मोहता जी ने इनके भी सारगर्भित और व्यवहारोपयोगी अर्थ किये हैं। "यज्ञ" का अर्थ, आपके शब्दो मे, इस प्रकार है.—

यज्ञ—ससारचक्र को अर्थात् जगत के व्यवहार को यथावत् चलाने के लोक सग्रह के लिए अपने-अपने स्वाभाविक गुणो के अनुसार चातुर्वर्ण्य विहित कर्म करने के विधान को गीता मे "यज्ञ" कहा गया है। इस व्यापक "यज्ञ" मे प्रत्येक व्यक्ति के (व्यष्टि) कर्मो को सवके (समष्टि) कर्मो मे सम्मिलित करने, अर्थात् सवके साथ सहयोग करने द्वारा, अपनी-अपनी व्यष्टि व्यावहारिक शक्तियो का—देवता-रूप से कथित-जगत् को धारण करने वाली समष्टि शवितयो मे योग देने की आहुति देकर, ससारचक्र चलाने मे सहायक होने का विधान किया गया। प्रत्येक व्यक्ति की व्यष्टि शक्तियो का सव की समष्टि शक्तियो मे योग देना ही उन देवताओ का यजन अर्थात् "यज्ञ" है। (पृष्ठ ७७)

अनासक्ति—ममत्व की आसक्ति का त्याग, अथवा, अनासक्ति का तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति-विशेष अथवा पदार्थ-विशेष ही को अपना मानकर उसके पृथक्ता के भाव मे ममत्व की आसक्ति रखना साम्य-भाव का वाधक है क्योकि ससार के सभी पदार्थ एक ही आत्मा के अनेक रूप हैं, इसलिए किसी विशेष व्यक्ति अथवा विशेष पदार्थ ही मे समत्व रखने के वदले सवके साथ अनन्य भाव का प्रेम रखना चाहिए।" (पृष्ठ ७९)

निष्काम कर्म—इसका तात्पर्य यह है कि अखिल विश्व मे एकता सच्ची होने के कारण सवके स्वार्थ आपस मे मिले हुए हैं, अत कोई भी व्यक्ति दूसरो के स्वार्थों की सर्वथा अवहेलना अथवा हानि करके अपने पृथक् व्यक्तिगत स्वार्थों की सिद्धि नही कर सकता। दूसरो से पृथक् अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध की कामना से कर्म करना मिथ्या व्यवहार है, अत अपना स्वार्थ सवके स्वार्थो के अन्तर्गत समझकर सवके हित के साथ अपना भी हित-साधन करने के उद्देश्य से कर्म करना चाहिए। (पृष्ठ ७९)

कर्मफल त्याग—का भी यही तात्पर्य है कि जगत की एकता सच्ची होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति के कर्मो का प्रभाव एक दूसरे पर पडे विना नही रहता, इसलिए कोई भी व्यक्ति अपने कर्मो के फल के लाभ से दूसरों को सर्वथा वचित रख कर केवल अकेला ही उससे लाभ न उठाये, किन्तु दूसरो को लाभ पहुँचाने के साथ-साथ स्वय भी अपनी आवश्यकताएँ पूरी करे। (पृष्ठ ७९)

निरहंकार—गीता के निरहकार का यह तात्पर्य कदापि नही है कि संसार के व्यवहार करने मे मनुष्य अपने आपके अस्तित्व तथा आत्माभिमान एव अपने दायित्व को सर्वथा भुलाकर, दूसरे किसी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष व्यक्ति अथवा शक्ति पर निर्भर होकर स्वावलम्वन के वदले परावलम्वी वन जाए। (पृष्ठ ८०)

अनासक्ति का भी यह तात्पर्य नही है कि किसी भी काम के करने मे मन न लगाया जाए तथा उसका अच्छी तरह सम्पादन करने एव उसमे उन्नति करने के लिए विचार शक्ति का उपयोग न करके केवल मशीन की तरह, जड भाव से एव असावधानी से काम किये जाएँ तथा उनके सुधारने-विगाडने की कुछ भी परवाह न की जाए।" (पृष्ठ ८०)

निष्काम कर्म और कमफल-त्याग का भी यह तात्पर्य नही है कि किसी उद्देश्य के विना पागलो की तरह निष्प्रयोजन चेष्टाएँ की जाएँ अथवा अपनी इच्छा के विना दूसरो की प्रेरणा से जवरदस्ती कर्म किये जाएँ, तथा इस विचार से कर्म किये जाएँ कि उनका फल कुछ भी न हो, अथवा कर्मो का फल यदि उत्पन्न हो तो वह

ग्रहण न किया जाए। जिस तरह खेती करे तो अनिच्छा से करे, अन्न उत्पन्न करने के उद्देश्य से न करे तथा इस भाव से करे कि इससे कुछ भी उत्पन्न नही होगा—केवल जमीन पर हल चलाना और बीज फेंकना मात्र ही कर्त्तव्य है और यदि उससे अन्न उत्पन्न हो जाए तो वह किसी के उपयोग मे न आये और न स्वयं उसे खाकर भूख शान्त करे। यदि कर्मों का फल ही न हो तो कर्म-विपाक का सिद्धान्त नष्ट हो जाए और कर्म करने मे किसी की प्रवृत्ति ही न रहे। गीता मे तो यज्ञ अर्थात् लोक सग्रह के उद्देश्य से कर्म करने का स्पष्ट आदेश है लोक सग्रह के उद्देश्य से किये हुए कर्मों के फल मे किसी व्यक्ति विशेप की स्वार्थ-सिद्धि का मिथ्या भाव नही रहता किन्तु उनसे अपने-अपने कार्यक्षेत्र की सीमा मे आने वाले सब व्यक्तियो के हित होने का सद्भाव रहता है, जिनमे स्वय कर्त्ता भी सम्मिलित है। यही निष्काम कर्म तथा कर्मफल त्याग का रहस्य है। (पृष्ठ ८१)

त्याग, वैराग्य अथवा सन्यास का यह तात्पर्य कदापि नही है कि जगत् को वस्तुत मिथ्या जानकर उससे घृणा करके अलग होने का प्रयत्न किया जाए तथा सब उद्यम छोड-छाड कर निठल्ले हो बैठे। इस तरह के त्याग, वैराग्य एव सन्यास को भगवान् ने अप्राकृतिक एव अव्यावहारिक कहा है। इसलिए भगवान् उक्त मिथ्या भाव ही को छुडाकर एकता का सच्चा भाव ग्रहण करने को कहते हैं। यही सच्चा त्याग, वैराग्य अथवा सन्यास है।

त्याग और ग्रहण दोनो सापेक्ष हैं। त्याग के लिए ग्रहण का भी साथ-साथ होना आवश्यक है। इसलिए गीता व्यष्टि-भाव का त्याग समष्टि भाव मे कराती है, अर्थात् व्यष्टि-समष्टि का भेद मिट जाता है तब त्याग और ग्रहण के लिए कुछ शेप नही रहता। अत जो कुछ करना है वह यही है कि व्यष्टि-भाव का झूठा अभिमान मिटाना है। फिर न व्यष्टि है, न समष्टि, जो कुछ है वह सब अपना आप ही है—जो न ग्रहण का विषय है, न त्याग का। (पृष्ठ ८२)

इस प्रकार मोहता जी ने गीता मे आये इन सब मूलभूत शब्दो के सम्बन्ध मे एक बडी क्रान्तिकारी व्याख्या की है। इन शब्दो और व्याख्याओ के प्रकाश मे गीता का जो स्वरूप सामने आता है वह बडा व्यावहारिक और ऐसा है कि जिस पर सामान्य जन भी चल सकता है। आप की "निष्काम कर्म," "कर्मफल त्याग" और "अनासक्ति" सम्बन्धी व्याख्याएँ बडे मार्के की हैं और एकदम प्राचीन रूढियो को तोडकर सर्वथा नवीन और परिस्थितियो के अनुकूल मार्ग बताने वाली हैं। "गीता का व्यवहार दर्शन" पुस्तक मे मोहताजी की भूमिका बडी सारपूर्ण, सार्थक और गीता की कई गुत्थियो को नये ढग से सुलझाने वाली है। मोहता जी के इस प्रयत्न की जितनी प्रशसा की जाए, उतनी ही थोडी है। मोहता जी की इस पुस्तक मे निम्नलिखित शब्द, सचमुच, गागर में सागर भर देते हैं।

"इस मे कोई सन्देह नही रह जाता कि श्रीमद्भगवद् गीता मे "व्यावहारिक वेदान्त" (प्रैक्टिकल फिलासफी) का ही प्रतिपादन है, न कि कोरे कल्पित सिद्धान्त (थ्योरी) अथवा अव्यावहारिक आदर्शवाद (इम्प्रेक्टिकल आइडलिज्म) का, जैसा कि कई लोग अनुमान करते हैं।"

हम मोहता जी के शब्दो से पूर्ण सहमत हैं। हमारा दृढ विश्वास है कि मोहता जी ने अपने इन अद्भुत विचारो और गम्भीर चिन्तन तथा हृदयग्राही विचार सरणी से न केवल भारतीयो के किन्तु समूचे मानव समाज के सम्मुख एक ऐसा मार्ग निर्दिष्ट किया है जो व्यावहारिक रूप मे अभ्युदय, उन्नति और चौमुखे विकास की ओर ले जाने वाला है। कई सदियो से गीता के तथा-कथित निवृत्ति मार्ग मे अपने स्वरूप को भूली हुई और इसी कारण राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद भी दिमागी गुलामी के शिकार भारतीयो के लिए मोहता जी की यह व्याख्या संजीवनी बूटी है। पुरानी सदियो की लकीर पीटने वालो के लिए मोहता जी का "गीता का व्यवहार दर्शन" एक प्रबल आह्वान है और दिमाग मे जोरदार तूफान पैदा करने वाला है। आत्मिक विकास के लिए भी इसमे भरपूर सामग्री है।

हमारा अभिमत

गीता की इन आधुनिक व्याख्याओ के इस विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक साधारण व्यक्ति के लिए मोहता जी की व्याख्या और दृष्टिकोण कुछ अधिक सरल, ग्राह्य और उपयोगी है। इससे भी अधिक बडी बात यह है कि मोहता जी ने किसी दृष्टि विशेष अथवा हेतु विशेष को सामने रखकर गीता का अध्ययन नही किया किन्तु उसको उन्होने अपनी आन्तरिक प्रेरणा से उत्साहित होकर पढना शुरू किया और जैसे-जैसे वे उसे पढते गये वैसे-वैसे उसकी ग्रन्थियाँ उनके लिये लिए खुलती गयी। इस प्रकार गीता को उसके स्वाभाविक रूप मे देखने, समझने और उसकी व्याख्या करने का मोहता जी को सुअवसर प्राप्त हुआ। दूसरे शब्दो में यह भी कहा जा सकता है कि मोहता जी ने जब गीता का अध्ययन शुरू किया तब वे मुख्यतः व्यापार-व्यवसाय मे लगे हुए एक प्रमुख कारोबारी व्यक्ति थे। उन्होने दुनिया की वस्तुओ का मूल्याकन उनके स्वाभाविक रूप मे करने का निरन्तर धन्धा किया। व्यापारी अपनी तीखी दृष्टि और पैनी बुद्धि से वस्तुओ का ठीक-ठीक मूल्याकन करने का आदी हो जाता है। आश्चर्य नही कि मोहता जी अपनी इस दृष्टि, बुद्धि अथवा स्वभाव के कारण गीता का भी ठीक-ठीक मूल्याकन करने मे सफल हुए हैं और सर्वसाधारण के सम्मुख उन्होंने गीता के स्वाभाविक रूप को उपस्थित करने का भी श्रेय प्राप्त किया है। अन्य आधुनिक व्याख्याताओ का व्यक्तित्व मोहता जी के व्यक्तित्व से कही अधिक महान है। अपने प्रखर राजनीतिक जीवन के कारण उन्होने मोहता जी की अपेक्षा कही अधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता भी प्राप्त की। परन्तु वे सब गीता का अध्ययन शुरू करने से पहले अपना एक निश्चित दृष्टिकोण बना चुके थे और एक विशेष राजनीतिक हेतु को सिद्ध करने के लिए उन्होने एक निश्चित मार्ग भी अपना लिया था। इसीलिए उनकी व्याख्या उनके दृष्टिकोण और उनके अपनाये हुए मार्ग के रंग मे रगी हुई है। योगीराज अरविन्द पाडेचेरी मे अपने आश्रम के अध्यात्म जीवन मे लीन हो चुके थे। इसलिए उन्होंने अपनी व्याख्या को आध्यात्मिक रंग दे दिया। लोकमान्य तिलक सारे देश को कर्मयोगी बनाने मे लगे हुए थे। इसीलिए उन्होंने गीता को भी कर्मयोग का रूप दे दिया। महात्मा गाधी का जीवन, अनासक्ति की साधना का मूर्तरूप था और जनता को इस अनासक्त साधना मे लगाये बिना वे देश के लिए स्वतन्त्रता प्राप्त नही कर सके। इसलिए उन्होने गीता को भी अनासक्ति योग का नाम दे दिया।

मोहता जी की ऐसी कोई पूर्व निश्चित-धारणा नही है जिससे उन्होंने गीता का अध्ययन किया। यह भी भूलना नही चाहिए कि इन सब महापुरुषों की व्याख्याएँ गीता के सपूर्ण रूप को व्यक्त न करके उसके एक विशेष अग अथवा पहलू पर प्रकाश डालती हैं। कर्मयोग और अनासक्ति, अध्यात्म, साधनायोग गीता के व्यापक रूप के केवल अग विशेष हैं, वे सर्वांग या सम्पूर्ण नही है। मोहता जी की व्याख्या गीता के सम्पूर्ण रूप को पाठक के सम्मुख उपस्थित करती है और वह ऐसा रूप है जिस को हर व्यक्ति अपने जीवन मे सहज मे पूरा उतार सकता है, और उसके अनुरूप अपने जीवन को बनाने मे सफल हो सकता है। विद्वत्ता, दार्शनिकता अथवा तार्किकता की दृष्टि के दूसरे व्याख्याताओं तथा उनकी व्याख्याओ का स्थान भले ही ऊँचा हो, परन्तु व्यावहारिक जीवन के तराजू पर वे व्याख्याए पूरी नही उतरती। श्री शकर, श्री रामानुज और श्री ज्ञानदेव सरीखे आचार्यों के सम्बन्ध मे भी यही कहा जा सकता है जो हमने अपने राजनीतिक नेताओ के सम्बन्ध मे ऊपर कहा है। उनकी व्याख्याएँ, मुख्यत, सम्प्रदाय विशेष के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं और उसी दृष्टिकोण से उनको पढा व ग्रहण किया जाता है। मोहता जी के "गीता का व्यवहार दर्शन" "गीता विज्ञान" "सात्विक जीवन" तथा "दैवी सम्पद" और "ईशावास्योपनिषद्" की व्यावहारिक व्याख्या का स्वतन्त्र दृष्टि से अध्ययन करने वाले हमारे अभिमत से सहमत हुए बिना नही रहेंगे।

गीता के अर्थ का अनर्थ

[लेखक श्री सजय]

वैदिक ग्रथो के भाष्यकारो अथवा टीकाकारो ने उनके साथ एक बडा अन्याय किया है। वैदिक साहित्य के शब्दो के गूढ यौगिक अर्थों को न लेकर वे रूढ अर्थों के भ्रमजाल मे उलझ गए। उन्होने इस प्रकार अर्थ का अनर्थ कर दिया। योगिराज श्री अरविन्द ने सस्कृत शब्दो के सम्बन्ध मे अपने विचार स्वामी दयानन्द के 'वेदभाष्य' की चर्चा करते हुए प्रकट किये हैं। स्वामीर्जा के वेदभाष्य की चर्चा करना इस लेख का मुख्य विषय नही है। वर्तमान काल मे सस्कृत शब्दो के रूढिगत अर्थों के विरुद्ध यौगिक अर्थों के लिए आग्रह करके स्वामी दयानन्द ने वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे एक अद्‌भुत क्रान्तिकारी शैली का प्रतिपादन किया। उन्होने यास्क मुनि के "निरुक्त" से प्रेरणा प्राप्त की। सस्कृत के शब्दो का अर्थ समझने के लिए उनकी मूलभूत धातु को जानना आवश्यक है। उस धातु के अनेक अर्थो को सामने रखते हुए प्रसग, अवसर तथा स्थिति के अनुसार उनका अर्थ और सारे सदर्भ को ठीक रूप मे समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। स्वामी दयानन्द की इस शैली की प्रशसा करते हुए योगिराज अरविंद ने 'वकिम-तिलक, दयानन्द' नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि "स्वामी दयानन्द के इस विचार मे कोई दुराग्रह नही है कि वेद सव सत्य विद्याओ का पुस्तक है जिसमे विज्ञान और धर्म दोनो सम्मिलित हैं। मैं अपने विश्वास के अनुसार यह कहना चाहता हूँ कि वेद मे विज्ञान की वे सचाइयाँ भी विद्यमान हैं जिनको आज का ससार नही जानता और इस सम्वन्ध मे स्वामी दयानन्द ने जो कहा है उसमे वैदिक ज्ञान की गहराई तथा व्यापकता के सम्वन्ध मे न्यूनोक्ति से काम लिया गया है, अतिशयोक्ति से नही। शब्द उत्पत्ति विज्ञान (धात्वर्थ) और भाषा विज्ञान का सहारा लेकर वे जिस शैली से इस परिणाम पर पहुँचे हैं उस पर भी आपत्ति की गई है। उनके ईश्वर परक शब्दो के अर्थों पर विशेष रूप से आपत्ति की गई, मैं यह समझता हूँ कि ऐसी आपत्ति करना वहुत वडी भूल है और उसका कारण है प्राचीन भाषा के सम्वन्ध मे हमारा अध्ययन। हम वर्तमान काल के लोग शब्दो का प्रयोग परस्पर विरोधी अथवा समानार्थक रूप मे करते हैं, उनकी मूलभूत भावना की सराहना हम नही कर सकते। हम जव वोलते हैं तव हमारा ध्यान केवल उसके रूप पर रहता है परन्तु उसके भावात्मक अर्थ पर नही जाता जो कि प्रयोग मे न आने के कारण हमारे लिए मृत वन चुके हैं। वे हमारे लिए शब्दो की टकसाल का केवल प्रचलित सिक्का रह गये हैं। उनकी अपनी कोई कीमत नही रही है। भाषा के प्रारम्भिक काल मे शब्द इस समय से सर्वथा विपरीत जीवित अर्थ के सूचक होते थे। उनमे भावो को प्रगट करने की मौलिक शक्ति रहती थी। उनके धातुगत अर्थ प्रयोग मे लाये जाने के कारण भुलाए नही गये थे। वक्ता के मन मे उनमे निहित शक्ति की अनुभूति वरावर वनी रहती थी। हम आज यदि 'वुल्फ' (भेडिया) शब्द का प्रयोग करते हैं तो हम उसका अर्थ केवल पशु विशेष करते हैं। उसके लिए किसी अन्य रूढिगत शब्द का प्रयोग करने से भी हमारा काम चल सकता है, परन्तु पुराने लोग "वृक" धातु सामने रखकर उसका अर्थ फाडने वाला करते थे और उसका वह विशेष अर्थ उनके सामने वना रहता था। हम "अग्नि" शब्द का प्रयोग करके उसका अर्थ आग कर लेते हैं हमारे लिए इस शब्द का कोई दूसरा अर्थ नही हैं। पुराने लोगो के लिए "अग्नि" शब्द का अर्थ कुछ और भी होता था, क्योकि वे उसकी मूल उत्पत्ति पर पहुँचकर उसके अनेक धात्वर्थ करते थे। वडे ध्यान से शब्दो का प्रयोग करने पर भी हमारे लिए उनका प्रयोजन दो-एक अर्थों तक सीमित रह गया है। उनके लिए वे अनेक अर्थो के सूचक होते थे और वे अर्थ उनके लिए वहुत ही आसान होते थे। वे यदि अग्नि,

वरुण और वायु आदि शब्दो का प्रयोग करते थे तो वे उनके साथ जुडे हुए अनेक गूढ एव रहस्यमय विचारो के द्योतक होते थे। वे शब्द उनके लिए (गूढ अर्थों का रहस्य खोलने के लिए) कुंजी का काम देते थे। इसमे सदेह नही है कि वैदिक ऋषि अपनी भाषा की इस महान क्षमता से लाभ उठाते थे। "गौ" और "चन्द्र" आदि शब्दो का जो उन्होने प्रयोग किया है उस पर थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है। निरुक्त इस क्षमता का साक्षी है। ब्राह्मण ग्रथों और उपनिषदो मे हमको इन शब्दो के स्वतत्र एव साकेतिक प्रयोग और व्यवहार अब भी मिलते हैं।

अपने इसी आशय को श्री अरविन्द ने "वेद रहस्य" नामक ग्रन्थ मे जिन शब्दो मे प्रकट किया है वे भी महत्वपूर्ण हैं। उन्होने लिखा है कि "तीसरी भारतीय सहायता तिथि अपेक्षया कुछ पुरानी है, परन्तु मेरे वर्तमान प्रयोजन के अधिक नजदीक है। यह है वेद को फिर से एक सजीव धर्म पुस्तक के रूप मे स्थापित करने के लिए आर्य समाज के सस्थापक स्वामी दयानन्द के द्वारा किया गया अपूर्व प्रयत्न। **दयानन्द ने पुरातन भारतीय भाषा-विज्ञान के स्वतन्त्र प्रयोग को अपना आधार बनाया, जिसे कि उसने निरुक्त मे पाया था।** स्वयं सस्कृत का एक महा विद्वान होते हुए, उसने उसके पास जो सामग्री थी, उस पर अद्भुत शक्ति और स्वाधीनता के साथ विचार किया। विशेषकर प्राचीन सस्कृत भाषा के अपने उस विशिष्ट तत्व का उसने रचनात्मक प्रयोग किया, जो कि सायण के "धातुओ की अनेकार्थता" इस एक वाक्यांश से बहुत अच्छी तरह से प्रगट हो जाता है। इस तत्व का, इस मूलसूत्र का ठीक-ठीक अनुसरण वैदिक ऋषियो की निराली प्रणाली समझने के लिए बहुत अधिक महत्व रखता है। दयानन्द की मत्रो की व्याख्या इस विचार से नियन्त्रित है कि वेद धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक सत्य का एक पूर्ण ईश्वर प्रेरित ज्ञान है। वेद की धार्मिक शिक्षा एक देवतावाद की है और वैदिक देवता एक ही देव के भिन्न-भिन्न वर्णनात्मक नाम है, साथ ही वे देवता उसकी उन शक्तियो के सूचक भी हैं जिन्हे कि हम प्रकृति मे कार्य करता हुआ देखते हैं और वेदो के आशय को सच्चे रूप मे समझ कर हम उन सभी वैज्ञानिक सचाइयो पर पहुँच सकते हैं जिनका कि आधुनिक अन्वेषण द्वारा आविष्कार हुआ है।"

शब्दो का अर्थ करने की निरुक्त प्रतिपादित धात्वर्थ की प्रणाली को छोडकर उनके रूढिगत अर्थों को अपनाने का जो दुष्परिणाम हुआ वह महीधर, सायण तथा ऊवट सरीखे आचार्यों के वेदभाष्यो मे देखा जा सकता है। उन सरीखे अर्थ के तत्व को न जानने वाले टीकाकारो ने वेदमत्रो के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दृष्टि से किये जाने वाले विविध अर्थों की सर्वथा उपेक्षा कर दी और ऐसे बीभत्स, अश्लील एवं लज्जास्पद अर्थ किये कि वेदो के प्रति घृणा पैदा होकर किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति का माथा लज्जा से झुके बिना नही रह सकता। जगन्नाथपुरी के मदिर की दीवारो पर जैसे लज्जास्पद एव घृणास्पद अश्लील चित्र अकित हैं वैसे ही विधान वेद मत्रो में निश्चित बताए गए। उन्होने राजमहिषि तथा पटरानी का मृत अश्व के साथ सम्भोग करने तक की कल्पना कर ली। अश्वमेध यज्ञ के जिस प्रकरण मे राजा की धार्मिकता का प्रतिपादन करना मुख्य विषय है उसमे कामवासना के आधार पर मृत घोडे के साथ रानी के सम्भोग की कल्पना करना कितना बीभत्स है ? इसी प्रकार देश को सुख, समृद्धि से भरपूर करने वाले गोमेध आदि यज्ञो की जो दुर्गति की गई वह सर्वविदित है। धार्मिक बताये गये यज्ञो मे गाय तथा अश्व आदि की बलि देना उनके तथाकथित पवित्र स्वरूप के सर्वथा विपरीत है। इस ढग से किये गए वेद भाष्यो के अर्थ अश्लील सम्भोगादि परक तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियो को उत्तेजना देने वाले हैं जो कि धर्म की मूलभूत भावना के सर्वथा विपरीत हैं। स्वामी दयानन्द की यौगिक अर्थ प्रणाली का विरोध करने वाले सनातनधर्म के बडे-बडे पडित और आचार्य भी अब अपने दुराग्रह को छोडकर उनके ही मार्ग को अपनाने लग गये है। परन्तु रूढिगत अर्थों का जो दुष्परिणाम होना था वह हो चुका। भारतीय जनता का नैतिक अध. पतन उसी का दुष्परिणाम है। विदेशो मे भी उसके वैदिक साहित्य का उपहास किया गया।

अपने पुराने साहित्य तथा वैदिक ग्रन्थों के सम्बन्ध मे दूसरी बडी भूल यह की जाती है कि उनमे प्रतिपादित पूर्वापर विपयो की ठीक-ठीक सगति नही बिठाई जाती। उनकी लेखन और विपय प्रतिपादन की शैली इतनी पुरानो है कि इस समय की शैली के साथ उसका कुछ भी सम्वन्ध नही रहा। उसके पढने व समझने की हजारो वर्प पुरानी गुरु शिष्य परम्परा के विशृखल हो जाने से उसका समझना कठिन हो गया है। पूर्व पक्ष का प्रतिपादन उन ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप मे नही किया जाता। पाठक के लिए पूर्व और उत्तर पक्ष को अलग-अलग करना कठिन है। भूल यह हो जाती है कि अनेक प्रसगो मे पूर्व पक्ष को ही ग्रन्थ का मुख्य और ग्रन्थ मे जिस विपय का खण्डन किया गया है उसी को उसका प्रतिपाद्य विपय समझ लिया जाता है। इसी कारण विद्वानो मे उनके सम्बन्धमे विवाद शुरू होकर वितडावाद खडा हो जाता है। विद्वानो के इस लट्ठमलट्ठा मे वास्तविक विपय कही का कही छूट जाता है। अनेक बार ऐसा भी होता है कि कुछ उदाहरण देकर प्रतिपाद्य विपय को स्पष्ट किया जाता है। उदाहरण सर्वथा गौण अथवा एकाकी होते हैं, परन्तु उनको प्रतिपाद्य विपय से भी कही अधिक महत्व देकर वास्तविक विपय को दृष्टि से ओझल कर दिया जाता है इससे ग्रथ के प्रयोजन को समझा नही जा सकता।

एक और मार्ग यह अपना लिया गया है कि जिस ग्रन्थ की जो वात समझ मे नही आती अथवा जिसका अपने मत के साथ मेल नही वैठता उसे "प्रक्षिप्त" यानी बाद की मिलावट कह दिया जाता है। आर्य समाजी विद्वानो से इस प्रवृत्ति को विशेप वल मिला है। उन्होने मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा ऐसे ही अन्य गन्थो मे मे वहुत हिस्सो को प्रक्षिप्त वता दिया। गीता के सम्वन्ध मे भी उनका यही मत है। वे उसके ७०-८० के लगभग श्लोको को मौलिक मानते हैं और शेष सब श्लोक उनकी सम्मति के अनुसार बाद मे मिला दिये गये है। किसी भी ग्रन्थ के साथ न्याय करने की यह विधि नही है। इससे न्याय होने की अपेक्षा अधिक अन्याय होना सम्भव है।

वैदिक साहित्य तथा वैदिक ग्रन्थो के प्रति किए गए अन्याय का एक बडा कारण है, भाष्यकारो अथवा टीकाकारो की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति। आम जनता मे शास्त्राचार के नाम से जो रुढ़िगत धर्म अथवा धार्मिक आचार विचार प्रचलित किया गया उसका प्रतिपादन वैदिक ग्रन्थो मे दिखाने का प्रयत्न किया गया और धर्मजीवी लोगो ने अपने प्रपच का समर्थन वैदिक ग्रन्थो के नाम से करने का प्रयत्न किया। इसी लिए साम्प्रदायवादी आचार्यो को उनमे अपने सम्प्रदाय का प्रतिपादन, समर्थन अथवा पुष्टि बतानी आवश्यक प्रतीत हुई। अपने सिक्को पर उनकी छाप लगाए विना वे उनको जनता मे चालू नही कर सकते थे। उन्होंने वैदिक ग्रन्थो को अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण मे रग दिया अथवा जिस रग का चश्मा उनकी आँखो पर लगा था केवल उसी से उनको उन्होने देखा। परिणाम यह हुआ कि कोई भी श्रुति स्मृति किसी भी विपय पर एकमत नही रहे। गीता सरीखे सरल, सुवोध और अत्यन्त स्पष्ट गन्थ के साथ भी ऐसा ही किया गया। वेदो, उपनिषदो, ब्राह्मण ग्रन्थो, दर्शनो तथा गीता तक के इतने विभिन्न भाष्य तथा टीकाएँ मिलती हैं कि उनसे साधारण जन अपना कर्त्तव्य कर्म निश्चित करने के वजाय और भी अधिक भटक जाते हैं। वैदिक साहित्य का महत्व, उपयोगिता, आकर्षण और सौन्दर्य सर्वथा क्षीण पड गया है। गीता के सम्बन्ध मे ज्ञानदेव, शकर, रामानुज तथा ऐसे ही अन्य आचार्यों के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से किये गये कितने भाष्य मिलते हैं। वैष्णव शैव तथा शाक्त आदि सम्प्रदायो के आचार्यों ने उनके एक दूसरे के विरोधी—भक्तिपरक, ज्ञानपरक तथा निवृत्तिपरक—ऐसे अर्थ किये हैं जिनमे कुछ भी हाथ नही लगता। वर्तमान मे भी गीता के साथ वैसा ही किया गया है। साम्प्रदायिक आचार्यो की तरह राजनीतिक नेताओं द्वारा भी गीता का दुरुपयोग अपने राजनीतिक सम्प्रदाय के लिए किया गया है। यह गीता की लोकप्रियता अथवा व्यापक उपादेयता का सूचक है कि उसकी कोई उपेक्षा नही कर सका। परन्तु इसके इस सौन्दर्य

पर "आत्मनो गुण दोपन वध्यन्ते शुक सारिका" की उक्ति चरितार्थ नही की जा सकती थी। हर सम्प्रदायवादी ने उसमे से अपने सम्प्रदाय का समर्थन खोजना आवश्यक समझा। गीता के वर्षों वाद प्रगट होने वाले सम्प्रदायो ने भी उसमे अपना प्रतिपादन वताने का प्रयत्न किया। गीता को मदारी का पिटारा वना दिया गया। उदाहरण के लिए, योगिराज अरविन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी और सत विनोवा के गीता के भाष्यो को लिया जा सकता है। योगिराज अरविन्द गीता को अध्यात्मवाद का ग्रन्थ वताते हैं, गीता के प्रति पैदा की गई पुरानी सव विचारधाराओ का प्रतिवाद करते हुए लोकमान्य तिलक ने उसको कर्मयोग का नाम दिया है, तो गाँधी जी ने उसको अनासक्ति योग कहा है। यह अनासक्ति अन्त मे निवृत्तिपरक होकर उस अकर्मण्यता की सूचक हो सकती है जिसके गीता सर्वथा विपरीत है। सत विनोवा का गीता को "आई" अथवा मा कहना उनकी उसके प्रति श्रद्धा भक्ति का सूचक है, किन्तु यह श्रद्धा भक्ति भी उसके पूर्ण एव वास्तविक स्वरूप की द्योतक नही है। इस प्रकार एकागी दृष्टि से किया गया गीता का अध्ययन, अनुशीलन अथवा भाष्य उसके व्यापक स्वरूप को प्रगट नही कर सकता।

यहाँ कुछ उदाहरण देकर यह वताना आवश्यक है कि गीता के सम्बन्ध मे कैसा अन्याय मूलक एव भ्रममूलक अनर्थ किया गया है। गीता मे सभी प्रकार के शास्त्राचार तथा लोकाचार का तीव्र शब्दो मे प्रतिवाद किया गया है। गीता किसी भी प्रकार की संकीर्णता अथवा सकुचित दृष्टि की पोषक नही है। वह धर्म, कर्म के सम्बन्ध मे उस खुली पुस्तक के समान है जिसके वारे मे किसी को कुछ भी सन्देह नही होना चाहिए। वेदो का स्थान वैदिक धार्मिक ग्रन्थो मे सर्वोपरि माना गया है और यज्ञादिक वैदिक कर्मकाडो को वैदिक धर्म मे सवसे ऊँचा स्थान दिया गया है। गीता मे दोनो का इतना स्पष्ट खडन किया गया है कि कोई नास्तिक भी उनका क्या खडन करेगा? वेद के सम्बन्ध मे दूसरे अध्याय के ४२, ४३ और ४४वे श्लोक मे कहा गया है कि —

"यामिमां पुष्पिता वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्म कर्मफल प्रदाम्।
क्रियाविशेष वहुला भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥"

अर्थात् "हे पार्थ! वेदो के अर्थवाद के (रोचक) वाक्यो मे उलझे हुए तथा "इसके अतिरिक्त और कुछ नही है" ऐसा कहने वाले, कामनाओ मे आसक्त, और स्वर्ग ही है अन्तिम लक्ष्य जिसका ऐसे विचारहीन लोग भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त, वहुत से कर्मकाडो के प्रपच करने वाली तथा जन्म और कर्मफल को देने वाली मन लुभावनी वातें किया करते हैं। ऐसी मीठी-मीठी वातो से जिनका चित्त हर लिया गया है, उन भोग और ऐश्वर्य मे अत्यन्त आसक्त लोगो की वुद्धि जो निश्चयात्मक रूप से पथ-प्रदर्शन कर सकती है वह समाधि अर्थात् साम्यभाव मे स्थित नही हो सकती अथवा समत्व योग की साधना मे सहायक नही वन सकती। इस प्रकार वेदो पर आधारित धर्म कर्म को गीता मे स्पष्ट रूप से पथ भ्रष्ट करने वाला वताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गीता के काल मे वैदिक प्रार्थनाओ और वैदिक कर्मकाडो का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत भोग व ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति करना रह गया था। न केवल इस जन्म मे, किन्तु जन्म जन्मान्तर मे उसकी प्राप्ति के लिए वेद मत्रो तथा वैदिक कर्मकाडो द्वारा ईश्वर की स्तुति एव प्रार्थना की जाती थी। परिणाम यह हुआ कि समष्टि भावना का अन्त हो गया और देश व समाज का सामूहिक विकास होना रुक गया। गीता ऐसी प्रार्थना, साधना अथवा मान्यता के सर्वथा विपरीत है और वह उसको पाप मानती है।

इस कारण ४५वें श्लोक मे निश्चयात्मक रूप से असदिग्ध शब्दो मे वेदो के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि —

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान ॥

अर्थात् "हे अर्जुन ! वेद मनुष्य को तीन गुणो मे फँसाने वाले हैं, तू तीन गुणो से सर्वथा मुक्त होकर द्वन्द्वो से भरे नित्य सत्व मे स्थित और योग क्षेम की व्यक्तिगत फलाशा से रहित होकर अपने वास्तविक आत्म-रूप को पहचान ।

वैदिक कर्मकाड यज्ञादि को भी गीता मे सर्वथा निरर्थक बताया गया है । और यज्ञ का जो अर्थ किया गया है वह इन कर्मकाडो का समर्थक नही है । यज्ञ का अर्थ गीता मे ससार को धारण करने वाले कर्म किया गया है । और उनमे सहयोग देने को ही उनका अनुष्ठान बताया गया है । तीसरे अध्याय के प्रारम्भ का सारा यज्ञ प्रकरण इसी का सूचक है । इस अध्याय के अन्त मे तो इतनी ऊँची बात कह दी गई है कि उसके सामने किसी भी प्रकार का शास्त्राचार तथा लोकाचार टिक नही सकता । श्लोक ४२, ४३ मे कहा गया है कि —

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य पर मन ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धे परतस्तु स ॥
एव बुद्धे परम बुद्ध्वा सस्तम्यात्मनमात्मना ।
जहि शत्रु महाबाहो कामरूप दुरासदम ॥

अर्थात् "स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ परे या ऊपर कही जाती हैं, इन्द्रियो से परे मन और उससे भी परे बुद्धि है परन्तु बुद्धि से भी परे कुछ जानने योग्य है और वह है आत्मा । हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से परे उस आत्मा को जानकर अपने वास्तविक आप-आत्मा मे स्थित होकर, काम रूपी दुर्जय शत्रु को मार ।

इस आत्म-स्थिति का प्राप्त करना गीता की दृष्टि मे सबसे बडा धर्म कर्म है, क्योकि इस स्थिति मे ही गीता के अनुसार सब की एकता की अनुभूति प्राप्त होती है । फिर भी ऐसे लोगो की कमी नही है जो गीता के आधार पर सभी साम्प्रदायिक शास्त्राचार और लोकाचार का समर्थन करने मे सकोच नही करते । गीता के प्रति इससे बडा दूसरा अन्याय नही हो सकता ।

आश्चर्य यह है कि गीता मे जिन शब्दो के अर्थ का स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया गया है उसको भी ठीक-ठीक रूप मे नही समझा गया । उसकी उपेक्षा करके मनमाने अर्थ कर दिये गए हैं । धातुमूलक अर्थों तक पहुँचने की यौगिक प्रणाली की प्राय उपेक्षा कर दी गई है । शब्दो के रूढिगत अर्थ यथार्थ भाव के सूचक नही हो सकते । ईश्वर, धर्म, मोक्ष, यज्ञ, कर्म तथा ऐसे ही अन्य शब्दो के सम्बन्ध मे इसी कारण अत्यन्त भ्रममूलक धारणाएँ पैदा कर दी गई हैं । ब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, परपुरुष, परब्रह्म, आदि शब्दो का अर्थ व्यक्ति विशेष ईश्वर कर लिया गया है । गीता का अभिप्राय इन शब्दो से अखिल विश्व मे व्यापक सत्ता अथवा आत्मा के लिए किया गया है । आत्म रूप मे सबमे विद्यमान, परमात्म-तत्व के सम्बन्ध से सबके प्रति समबुद्धि पैदा करना ही गीता का मुख्य विषय है । सातवें अध्याय मे चौबीसवें श्लोक मे और ९वें अध्याय के ग्यारह बारह श्लोक मे व्यक्ति ईश्वर मानने वालो को अबुद्धि, मूढ और राक्षसी-आसुरी तथा तामस प्रकृति का कहा गया है । फिर भी अनेक टीकाकार इस तामस प्रकृति के शिकार बन गये ।

३—व्यक्ति विशेष के रूप मे ईश्वर की कल्पना कर लेने के बाद भक्ति व उपासना के अर्थ का अनर्थ करना प्राय अनिवार्य हो गया । ऐसा करने वालो ने जप, पूजा, पाठ, कर्मकाड तथा सकीर्तन आदि को ही भक्ति व उपासना मान लिया । गीता मे लोक सग्रह के लिए अपने-अपने कर्म करने की समाज सेवा को ही भक्ति-

उपासना तथा यज्ञ आदि कहा गया है। अठारहवें अध्याय के ४६वें श्लोक मे विशेप स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि —

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।

अर्थात् "जिस सर्वव्यापक सत्ता से इस सारे जगत की प्रवृत्ति है और जो सारे विश्व मे व्याप्त है, उसका अपने कर्मों द्वारा पूजन करने से ही मनुष्यो को सिद्धि प्राप्त होती है। गीता के इस स्पष्ट मत का विपर्यास करके प्रचलित कर्मकाडो का समर्थन करना कितना वडा अर्थ का अनर्थ है ?

४—ऐसे लोग धर्म शब्द का अर्थ भी साम्प्रदायिक मत मतान्तर, पथ और मजहव करते हैं, परन्तु गीता मे अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्म को ही धर्म कहा गया है कि —अठारहवे अध्याय के ४७ वें श्लोक मे स्पष्ट कहा गया है कि —

श्रेयान स्वधर्मोविगुणाः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वमाप्नोति किल्विषम् ।।

अर्थात् "दूसरो के अच्छे प्रतीत होने वाले धर्मों से अपने विगुण (कर्म श्रेष्ठ) धर्म भी श्रेष्ठ हैं। अपने स्वभाव के अनुसार नियत किये हुए कर्म करते रहने से कोई पाप नही होता।"

अठारहवें अध्याय के ६६वें श्लोक मे सव साम्प्रदायिक धर्मों तथा उनके मायाजाल को सर्वथा छोड देने के लिए कहा गया है —

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजः ।

अर्थात् "सव धर्मों को सर्वथा त्याग कर सव की एकता स्वरूप मेरी शरण मे आ, आश्चर्य यह है कि "सर्वधर्म परित्याग" का स्पष्ट प्रतिपादन करने पर भी "स्वधर्मेनिधनं श्रेय परधर्मो भयावह" का अर्थ अपनी साम्प्रदायिक सकीर्णता को चिपटे रहना किया जाता है और उदार वनाने वाले धर्म के नाम से ही अनुदारता, असहिष्णुता तथा राग द्वेप आदि दुर्गुण पैदा किए जाते हैं। यहाँ धर्म का वास्तविक अर्थ यह है कि अपने गुण, स्वभाव एव योग्यता के अनुसार अपने कर्त्तव्य कर्म को न करते हुए दूसरे के ऐसे कर्म को अपनायेगा जो उसके गुण, स्वभाव एव योग्यता के अनुकूल होगा। तो उससे स्थिति उसके लिए भयावह वने विना नही रहेगी और उससे सारे समाज की व्यवस्था विश्रखल हो जाने से एक महान सकट पैदा हो जायगा।

५—यज्ञ शब्द का और भी अधिक अनर्थ किया गया है। यज्ञ शब्द का अर्थ हवन आदि साम्प्रदायिक कर्मकाड करना गीता के आशय के सर्वथा विपरीत है। यह उसकी भावना के ही नही किन्तु शब्दो के भी प्रतिकूल है। गीता मे अपनी स्वभावसिद्ध योग्यता के अनुसार कर्त्तव्य कर्म का सम्पादन करके समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति मे योग देना ही यज्ञ कहा गया है अर्थात् व्यक्तिगत फल की इच्छा व आकांक्षा का परित्याग करके समष्टि भावना से अपना कर्त्तव्य कर्म करना यज्ञ है। हवन आदि कर्मकांडो को दूसरे अध्याय के ४२ से ४४ श्लोको मे भोगेश्वर्य आदि का निमित्त वताकर त्याज्य वताया गया है और तीसरे अध्याय के १४वे श्लोक मे "यज्ञ कर्म समुद्भव" कहकर यज्ञ का स्वरूप स्पष्ट कर दिया गया है।

६—यज्ञ प्रकरण मे "पर्जन्य" शब्द का रूढिगत अर्थ वर्षा करके उसके सारे सौंदर्य को नष्ट कर दिया गया है। पूर्वापर सगति के अनुसार पर्जन्य शब्द का अर्थ है "समष्टि उत्पादन शक्ति", जिसको आधुनिक भापा मे सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विस्तार अथवा सहकारी कार्य पद्धति आदि कहा जा सकता है। परन्तु ये शब्द भी गीता के पर्जन्य शब्द के भाव को पूरी तरह व्यक्त नही करते। गीता की यह पर्जन्य शक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य कर्मरूपी यज्ञ से पैदा होती है। "यज्ञात् भवति पर्जन्य" का यही भाव है। जहाँ वर्षा नही होती वहाँ भी

उद्योगी लोग अपने सामूहिक परिश्रम से, बाँध, नहरें व तालाब आदि बनाकर सिंचाई करके अन्न आदि पदार्थ पैदा कर लेते हैं और जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति कर ली जाती है। जो लोग हवन आदि का नाम भी नही जानते उनके देश मे वर्षा निरतर होती रहती है। उद्यमहीन लोगो के यहाँ वर्षा होने पर भी अन्न पैदा नहीं हो सकता। अपने-अपने पेशे तथा व्यवसाय राष्ट्रीय बुद्धि से करना ही वास्तविक यज्ञ है और उससे उत्पन्न होने वाली सामूहिक शक्ति का नाम है पर्जन्य। किसान का खेती व पशु पालन, जुलाहे का कपडा बुनना, सुथार का लकडी का काम, लोहार का लोहे का काम, चमार का चमडे का काम, कुम्हार का मिट्टी का काम और मेहतर का झाड़ू लगाने व मैला साफ करने का काम भी यज्ञ ही है और उनका समष्टिगत राष्ट्रीय स्वरूप "पर्जन्य" है।

७—देव शब्द का भी ऐसा ही अनर्थ किया गया है। वेद मत्रो का अर्थ करते हुए इस शब्द का जो अर्थ किया गया है उससे भूलोक से ऊपर किसी स्वर्ग, मोक्ष स्थान, अथवा देवलोक आदि की कल्पना की गई और उनमे रहने वाले व्यक्ति विशेषो को देव अथवा देवता मान लिया गया। गीता मे इस शब्द का तात्पर्य है समाज को धारण करने वाली समष्ट शक्ति। उपनिषदो तथा अन्य वैदिक ग्रन्थो मे इसी शक्तिको देवत्व और उस शक्ति से सम्पन्न लोगो को देवता कहा गया है। उनसे भिन्न कल्पित व्यक्ति देवताओ की उपासना की सातवें अध्याय के बीसवें श्लोक मे निन्दा की गई है। देव शब्द के समान अग्नेय, वरुण, आदित्य आदि अन्य अनेक शब्दो का भी अनर्थ करके सैकडो व हजारो देवी देवताओ की कल्पना कर ली गई। फिर, उनके मदिर व मूर्ति आदि बनाकर और भी अधिक प्रपच फैला दिया गया। हिन्दू समाज मे इसी कारण देवी देवताओ की कल्पना का कोई अन्त नही रहा।

८—योग शब्द का रूढिगत अर्थ आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि हठयोग तथा राज-योग की क्रियाएँ किया जाता है। गीता मे दूसरे अध्याय के ४८वें श्लोक मे "समत्व योग उच्यते" कह कर समता के भाव को योग बताया गया है और यत्र तत्र इसी भाव की पुष्टि की गई है। "योग कर्मसु कौशलम्" कहकर अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म का कौशल यानी चतुराई के साथ सम्पादन करना ही योग कहा गया है। कौशल अथवा चतुराई का अर्थ है सुख-दु ख, हानि-लाभ, तथा जय-पराजय और सफलता-असफलता मे भी अपना सन्तुलन बनाए रखकर कर्त्तव्य कर्म मे लगे रहना। इस भावना की सर्वथा उपेक्षा करके योग शब्द का जो रूढि-गत अर्थ किया जाता है वह गीता के अनुकूल नही है।

९—सन्यास, त्याग, वैराग्य आदि शब्दो का अर्थ ससार के सब व्यवहार छोड बैठना किया जाता है गीता की मान्यता ऐसी नही है। उसमे व्यक्तिगत स्वार्थो की आसक्ति को छोडने का प्रतिपादन किया गया है। गीता के छठे अध्याय के पहले श्लोक मे सन्यासी अथवा योगी की परिभाषा अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे निम्नलिखित की गई है —

अनाश्रित कर्मफल कार्य कर्म करोति य।
स सन्यासी च योगी च न निराग्निर्न चाक्रिय ॥

अर्थात् "कर्मफल के आश्रय बिना, कर्म के फल मे किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि की आसक्ति न रखकर, जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्म करता है वही सन्यासी है और वही योगी अर्थात् समत्वदर्शी है, निरग्नि अर्थात् गृहस्थाश्रम को त्यागने वाला, और अक्रिय अर्थात् कर्मों से रहित होकर निठल्ला बैठा रहने वाला सन्यासी नही है। व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि की आसक्ति बिना अपने कर्त्तव्य कर्म करने वाला समत्व योगी ही सच्चा सन्यासी होता है। गीता की इस भावना को भुलाकर केवल गेरुए वस्त्र धारण कर लेने अथवा सर्वथा नग्न होकर भस्म धूनी रमा लेने मे अपने को सन्यासी या योगी मान लेने का दुष्परिणाम यह है कि लाखो

निठल्ले आदमी अनुत्पादक बनकर समाज के सिर पर भार बने हुए हैं। कोई भी सभ्य, सुसस्कृत और प्रगतिशील राष्ट्र इतनी बडी संख्या मे अपने देशवासियो का इस प्रकार निठल्ले बने रहना सहन नही कर सकता। हमारे देश मे ऐसे निठल्ले लोगो की सख्या ७० लाख है। अपने को साधू व सन्यासी कहकर वे समाज व देश पर बड़ा भार बने हुए हैं और उनके कारण कितना अनाचार चारो ओर फैला हुआ है।

१०—तप शब्द का अर्थ भी इसी प्रकार तपना अर्थात् शरीर को क्लेश देने वाली क्रियाएँ किया जाता है। परन्तु गीता के सत्रहवें अध्याय के १४ से १६ श्लोको तक शरीर, वाणी और मन के शिष्टाचार को तप बताया गया है। इसी अध्याय के ५,६ और १६ श्लोको मे आसुरी श्रद्धा और तामस तप का अर्थ शरीर को कष्ट देने वाली क्रियाएँ किया गया है। तामस तप की परिभाषा १६वें श्लोक मे यह की गयी है कि :—

मूढ़ग्राहेणात्मनो यत्पीड़या क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥

अर्थात् "मूर्खतापूर्ण दुराग्रह से शरीर और मन को पीडा देकर, अथवा दूसरों को बुरा करने के लिए जो तप किया जाता है, उसको तामस कहते हैं। तात्पर्य यह है कि व्रत उपवास आदि करके भूखे प्यासे रहने द्वारा, अथवा सर्दी गर्मी मे नगे पडे रहने द्वारा शरीर को क्लेश देने वाला जो तप हठ अथवा दुराग्रह से किया जाता है, अथवा जो दूसरो के मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि के खोटे उद्देश्य से किया जाता है— वह तप तामस है।

११—जप शब्द का अर्थ व्यक्ति ईश्वर के कल्पित नामो का जाप करना। माला फेरना, आटे की गोलियाँ बनाना तथा सकीर्त्तन आदि किया जाता है। परन्तु गीता मे दिए गए विधान का अर्थ है "ओम्कार" का उच्चारण करते हुए सब की एकता का चिन्तन करना। आत्म-रूप मे सब मे विद्यमान परमात्मा मे ही सब की एकता निहित है।

१२—जन्म मरण, लोक परलोक, मोक्ष अथवा ब्रह्म निर्वाण स्थिति आदि के सम्बन्ध मे भी अनेक रूढिगत भ्रान्त धारणाएँ समाज मे जड पकडे हुए हैं और उनका समर्थन भी अन्य ग्रन्थो की तरह गीता के भी नाम से किया जाता है। वास्तव मे ये सब प्रचलित धारणाएँ गीता की दृष्टि से भ्रान्तिमूलक, निराधार और मिथ्या हैं। धर्म के नाम से विविध सम्प्रदायो का जो मायाजाल जनता को भरमाने और उसको उसमे उलझा कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए धर्मजीवी लोगो ने फैला रखा है उसी के लिए जन्म मरण के सम्बन्ध मे नाना तरह की कपोल कल्पनाएँ करके लोक परलोक तथा मोक्ष एव निर्वाण के भी अनेक प्रकार के सुनहरे चित्र गढ़ लिए गए हैं। कोई भी सम्प्रदाय ऐसा नही है जिसमे सुरलोक की सी कल्पना करके वहाँ के जीवन को अत्यन्त भोगमय नही बताया गया है। यदि इस लोक की भोगवासनाएँ मनुष्य के लिए त्याज्य हैं तो सुरलोक अथवा स्वर्गलोक की भोग-वासना ग्राह्य कैसे हो सकती हैं ? परन्तु मनुष्य को लुभाकर अपने सम्प्रदाय की ओर आकर्षित करने के लिए इस सारे प्रपंच का विस्तार किया गया है। साधारणतया मृत्यु का भय आस्तिक और नास्तिक प्रत्येक व्यक्ति को बना रहता है और उससे छुटकारा पाने के लिए ही सब उत्सुक रहते है। इसी लिए गीता मे मरने के बाद की गति का उल्लेख किया गया है मरने के बाद की अवस्था का युक्ति-युक्त वर्णन करके इस व्याकुलता का समाधान किया गया है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही हो जाता है। गीता मे भी उपनिषद् के इस विचार की ही सुविस्तृत व्याख्या की गई है कि "यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति यद् वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।" अर्थात् "मनुष्य मन मन मे जैसा सोचता विचारता है वैसा ही बोलता है। जैसा बोलता है वैसे ही वह कर्म करने लग जाता है और जैसे कर्म करता है वैसे ही फल प्राप्त करता है।" गीता मे कहा गया है कि मनुष्य जीवन काल मे जैसे विचार व

कर्म करता है, वैसे ही उसकी वासनाएँ तथा संस्कार बन जाते हैं और उनके अनुसार मृत्यु के बाद उसके परलोक का निर्माण होता है।

ससार मे किसी भी पदार्थ का सर्वथा नाश अथवा अभाव कभी नही होता। केवल उसके रूपो का परिवर्तन होता है। इसलिए मृत्यु के बाद भी मनुष्य के अस्तित्व का सर्वथा अन्त या लोप नही होता। उसका भी केवल रूप बदलता है। अपनी अपनी वासना के अनुसार किसी न किसी रूप मे वह अवश्य रहता है। इस देह को विनाशी और उसमे स्थित आत्मा को नित्य, स्थायी एव अविनाशी कहा गया है। पुराने कपडो का परित्याग करके जैसे मनुष्य नये धारण कर लेता है ठीक वैसी ही स्थिति इस देह की है। जिसमे देहरूपी वस्त्र को मृत्यु के रूप मे केवल बदल दिया जाता है। दूसरे अध्याय का २२वाँ श्लोक इस भाव का सूचक है उसमे कहा गया है कि —

"वासासि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि सयाति नवानि देही॥

आत्मा की नित्यता और अविनाशी रूप को २३ और २४ श्लोक मे कितने स्पष्ट शब्दो मे प्रकट किया गया है। उनमे कहा गया है कि —

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम् क्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन॥

अर्थात् "इस (शरीर धारण करने वाले जीवात्मा) को शस्त्र काट नही सकते, आग जला नही सकती, पानी गला नही सकता और हवा सुखा नही सकती। यह न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न गलाया जा सकता है और न सुखाया जा सकता है, यह नित्य, सब मे व्यापक, सदा स्थित, नाश रहित और अनादि है।"

देह के साथ इस जीवात्मा को भी मरा हुआ कैसे माना जा सकता है? इसी लिए गीता मनुष्य का विनाश या अत होना स्वीकार नही करती और उसके अनुसार इस लोक से परलोक मे जाने का अर्थ केवल नवीन जन्म धारण करना है। जन्म जन्मान्तर की शृखला के रूप मे मनुष्य का अस्तित्व सदा बना रहता है। जन्म और मृत्यु दोनो वे दो किनारे हैं जिनमे सृष्टि का यह प्रवाह निरतर चला रहता है। उसमे हर्ष व शोक मानना गीता के सर्वथा विपरीत है।

गीता पुनर्जन्म के लिए कर्मवाद के सिद्धान्त को आधार मानती है। मनुष्य वर्तमान जन्म मे जैसे कर्म करता है वैसे ही फल वर्तमान जीवन मे अथवा भविष्य जीवन मे उसको अवश्य भोगने पडते है। मनुष्यो के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वभाव, योग्यता और सुख-दुख आदि के कारण का इस कर्मवाद के सिवाय दूसरा कोई युक्तियुक्त समाधान नही है। इन विविध प्रकार की विचित्रताओ को आकस्मिक घटनाएँ कह देने से यथार्थ समाधान नही हो सकता। इसी कारण कर्म करने मे मनुष्य को स्वतन्त्र मानते हुए भी उसके फल भोगने मे उसको स्वतन्त्र नहीं माना गया। गीता के शब्दो मे उसका कर्म पर तो अधिकार सम्भव है, परन्तु फल पर उसका कोई अधिकार नहीं है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्" का यही अभिप्राय है।

मृत्यु के भय अथवा परलोक की चिन्ता से गीता के अनुसार वह मनुष्य ही मुक्त हो सकता है, जो

अपने शरीर के स्वाभाविक योग्यता के कर्त्तव्य कर्म व्यक्तिगत स्वार्थ की ममता और अहंकार से रहित होकर करता रहता है। दूसरे अध्याय के ७१-७२ श्लोक मे इस भाव को इन शब्दो मे कहा गया है कि :—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थः नैना प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

अर्थात् "जो व्यक्ति स्वार्थ की सब कामनाओ को छोडकर तृष्णा, ममता और अहकार से रहित हुआ अपने कर्त्तव्य कर्मो का आचरण करता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! यही ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त करके मनुष्य मोह को प्राप्त नही होता। अन्तकाल मे भी इसमे स्थित रहता हुआ ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करता है अर्थात् पूर्ण मुक्त रहता है।"

इस प्रकार जन्म, मरण लोक-परलोक तथा मोक्ष एवं ब्रह्म निर्वाण की स्थिति को गीता ने किसी चमत्कारपूर्ण कल्पना मे नही उलझाया है, अपितु वर्तमान जन्म और भविष्य मे भी इसी प्रकार के जन्मान्तर रूपी परलोक मे उस सब को सुलभ बताकर जन्म मरण की जिस शृखला का प्रतिपादन किया गया है वह सब भ्रान्त धारणाओ, कपोल कल्पनाओ और लुभावने सुनहरे चित्रो के सर्वथा विपरीत है। अचरज होता है यह देख कर कि गीता सरीखे इतने सरल, सुबोध और स्पष्ट ग्रन्थ के आधार पर भी कैसी विचित्र भ्रान्तियाँ, धारणाए और कल्पनाएँ कर ली गई हैं। इसलिए आवश्यकता है कि गीता का अध्ययन गीता की ही दृष्टि से किया जाय और शब्दो के रूढिगत अर्थ तक सीमित न रखकर उनके यौगिक अर्थों को समझने का प्रयत्न किया जाय। विद्वानो का कर्त्तव्य उसके स्वरूप को रहस्यमय न बनाकर स्पष्ट शब्दो मे प्रकट करना होना चाहिए। कठिनाई यह है कि धर्मजीवी लोगो का प्रपच साधारण सी बात को भी रहस्यमय बनाए बिना चल नही सकता। इसी कारण अर्थ का अनर्थ करके हर वस्तु को रहस्यवाद के रग मे रग कर अत्यन्त गूढ बनाने का प्रयत्न किया जाता है और साधारण जनता इस प्रकार भ्रमजाल मे फँस जाती है। पिछले वर्षों मे वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे काफी अनुशीलन किया गया है और रूढिगत परम्परावाद को तिलाजलि देकर उसके वास्तविक अभिप्राय तक पहुचने का प्रयत्न किया गया है। साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ऊपर उठने के भी प्रयत्न किए गए हैं। गीता के सम्बन्ध मे अनेक विद्वानो ने स्वतन्त्र दृष्टि से विचार किया है। निश्चय ही इस प्रवृत्ति को और आगे बढाया जाना चाहिए और तथ्य तक पहुचने का प्रयत्न निरतर जारी रहना चाहिए।

गीता का समत्वयोग और आधुनिक समाजवाद

[लेखक श्री देव]

साधारणतया गीता को पारलौकिक कल्याण तथा परमार्थ साधन की राह दिखाने वाला कोरा धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। समय-समय पर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से उसकी जो व्याख्याएँ की गईं उनसे इस धारणा की और भी अधिक पुष्टि हुई। शकर, रामानुज, माध्वाचार्य तथा ज्ञानदेव सरीखे आचार्यों ने उसको अपने सम्प्रदाय के साथ जोडने का प्रयत्न किया और उसके विशाल स्वरूप को अपने सम्प्रदाय के समान सकीर्ण एव सकुचित बना डाला। यह वहुत बडी भूल है। वास्तव मे गीता समाज-विज्ञान का उच्चकोटि का सार्वजनिक शास्त्र है। उसके अनुसार मानव समाज अपनी सर्वांगीण उन्नति करता हुआ वर्तमान और भविष्य मे भी पूर्ण सुख व शान्ति प्राप्त कर सकता है। इसी कारण उसकी उपयोगिता और उपादेयता पाँच हजार वर्ष के बाद भी वैसी ही वनी हुई है और सभी देशो तथा सभी कालो मे उसको समान रूप से ग्रहण किया गया है। वर्तमान काल के प्राय सभी विचारो के नेताओ ने उसके महत्व को स्वीकार किया है। भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय, डा० एनी बीसेंट, डा० भगवान दास, श्री राजगोपालाचार्य, योगिराज अरविन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी और सत विनोवा आदि सभी ने मध्यकालीन आचार्यों की तरह गीता की अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्या की है और उसमे से अनमोल रत्न निकाल कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। श्री जवाहरलाल नेहरू भी यह स्वीकार करते हैं कि उनके जीवन निर्माण मे गीता का विशेष स्थान है। बाइविल के बाद विश्व के साहित्य मे गीता का सबसे अधिक प्रसार और ससार की सबसे अधिक भाषाओ मे उसका अनुवाद हुआ है। बाइबिल के पीछे ईसाई पादरियो की अध भावना और ईसाई राष्ट्रो की अध श्रद्धा विद्यमान है जिनके वल पर उसका इतना प्रचार हो सका है। परन्तु गीता के पीछे ऐसी कोई अध भावना अथवा अध श्रद्धा की प्रेरक शक्ति नही है। वह विशिष्ट व्यक्तियो के बुद्धि एव विवेक का सहारा पाकर फली फूली है और चारो ओर फैली है। यह अवश्य है कि इन विशिष्ट महापुरुषो की गीता के प्रति दृष्टि पर "जाकी रही भावना जैसी" की कहावत चरितार्थ होती है। फिर भी गीता के सार्वजनिक व सामाजिक स्वरूप, उसकी सुख-शान्ति स्थापित करने और मानव कल्याण करने की सामर्थ्य पर कोई आशका नही की जा सकती। उसके इस स्वरूप और सामर्थ्य को सभी ने स्वीकार किया है। खुदीराम वोस सरीखे क्रान्तिकारी युवक उसको छाती से लगाकर हँसते-हँसते फासी पर झूल गए। श्री शचीन्द्र सान्याल तथा श्री चन्द्रशेखर आज़ाद सरीखे युवको की गीता की शक्ति पर अटूट भक्ति थी।

समाजवाद और साम्यवाद भी मानव समाज को पूर्णतया सुखी वनाने का दावा करते हैं परन्तु वे गीता के समत्व योग की तुलना मे अधूरे हैं। आधुनिक समाजवाद अथवा साम्यवाद का आधार भौतिकवाद है। यह आधिभौतिकता पर अवलम्बित है। वह सब मनुष्यो के भौतिक अधिकार समान करके सबके लिए सासारिक सुखो के साधन समान रूप से उपलब्ध करने के लिए भोग्य पदार्थों का एक समान बँटवारा करना चाहता है। मनुष्यो के स्वभाव तथा गुणो की योग्यता के अन्तर को वह महत्व नही देता और स्थूल भौतिक विचारो से परे सूक्ष्म आदिदैविक तथा आध्यात्मिक विचारो तक जाने की आवश्यकता को स्वीकार नही करता। सबकी आत्मरूप मौलिक एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त को वह नही मानता। समाज का भौतिक आधार स्थायी नही है, क्योकि भौतिक भिन्नता के वनाव निरन्तर वदलते रहते हैं इसी कारण वे स्थायी नही है। भिन्न-भिन्न स्वार्थो के निरन्तर सघर्ष के कारण समाज मे सदा द्वन्द व अशान्ति वनी रहती है। भौतिक आवश्यकताएँ उस सघर्ष का मूल कारण हैं

और वे भी स्थायी नही हैं। उनकी पूर्ति के लिए किया जाने वाला भौतिक साधनो एवं पदार्थों के एक समान बँटवारे का सन्तुलन विगडे बिना नही रह सकता। उसको कायम रखने के लिए अत्यन्त कठोर-एकतत्रीय शासन के उस नियत्रण की आवश्यकताहै जो कि हिटलर और लेनिन सरीखे शासको के बिना चल नही सकता। प्रजा-तन्त्र उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है और वह असफल सिद्ध हुआ है।

गीता का समत्वयोग सबकी मौलिक एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त पर अवलम्बित है। अर्थात् भिन्नता के अलग-अलग वनावो के मूल मे एकता के निश्चयपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करने के सच्चे समाज विज्ञान का गीता मे प्रतिपादन किया गया है। इस एकता के निश्चयात्मक आधार पर ही सच्ची समता स्थायी रह सकती है और पृथकता के आधार पर समता स्थायी नही रह सकती। अलग-अलग व्यक्तिगत स्वार्थों की खीचतान से विषमता उत्पन्न होती है, इसलिए गीता मे सबकी एकता के आध्यात्मिक सिद्धान्त को समाज-विज्ञान का मूल माना गया है और लोक सग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए अपनी-अपनी योग्यता के काम व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि की कामना छोडकर करते रहने की व्यवस्था की गई है। दूसरे अध्याय के पैंतालीसवें श्लोक मे सबकी एकता के आत्मज्ञान का यह उपदेश दिया गया है कि —

त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

अर्थात् "हे अर्जुन ! कर्मकाड का प्रतिपादन करने वाले वेद तीन गुणो से ही विशेष सम्बन्ध रखते हैं, तू इन तीनो गुणो से अलिप्त हो और द्वन्द्वो से परे, नित्य सत्व मे स्थित और योग क्षेम से रहित होकर (अपने वास्तविक स्वरूप) आत्मा का अनुभव कर। तात्पर्य यह कि भेद प्रतिपादित कर्मकाण्डात्मक वेदादि शास्त्र त्रिगुणा-त्मक प्रकृति के नाना नामो और रूपो के वनावो मे ही उलझाये रखने वाले वर्णनो से भरे पडे हैं। तू अपने को उन त्रिगुणात्मक प्रकृति के वनावो से ऊपर, प्रकृति का स्वामी अनुभव कर और सुख-दुख आदि नाना प्रकार के द्वन्द्वो से परे, नित्य सत्व रूप सबके एकत्व भाव मे स्थित होकर, तथा अपने से पृथक् किसी भी पदार्थ की प्राप्ति और स्थिति की चिन्ता से रहित होकर सर्वत्र अपने आप अर्थात् आत्मा ही को परिपूर्ण अनुभव कर।" गीता के समत्वयोग की यह पहली शर्त है। इस आत्मनिष्ठा मे व्यक्तिगत आकांक्षा का कोई स्थान नही है; अपितु सब प्राणियो मे आत्मानुभूति पैदा करने का यह उपक्रम है।

इसके वाद सैंतालीसवें श्लोक मे कहा गया है कि .

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि ॥

अर्थात् "काम करने मे तेरा अधिकार है। उससे उत्पन्न होने वाले फल पर कदापि नही। तेरा काम स्वार्थ सिद्धि के फल के लिए नही होना चाहिए और काम न करने मे अर्थात् निठल्ले बैठे रहने मे भी तेरी आसक्ति नही होनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपने-अपने स्वाभाविक गुणो की योग्यतानुसार काम करते रहना चाहिए। उस काम से उत्पन्न होने वाले पदार्थों पर अपने व्यक्तिगत अधिकार जमाने का भाव नही रखना चाहिए; क्योकि कोई भी काम किसी अकेले के किये नही हो सकता किन्तु उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य लोगो तथा समष्टि शक्ति के सहयोग से होता है। इसी कारण किसी व्यक्ति को अपने किसी काम से उत्पन्न होने वाले पदार्थों पर दावा अथवा एकाधिकार करने का कोई कारण नही है। ये सब पदार्थ सार्वजनिक सम्पत्ति होते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के भाव न रखने के कारण किसी को अपना काम छोडकर निठल्ला नही रहना चाहिए।

फिर अडतालीसवें श्लोक मे समत्व भावना अथवा समत्वयोग का कैसा सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। उसमे कहा गया है कि —

योगस्थ कुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा धनजय।
सिद्ध्यसिद्ध्यो समोभूत्वा समत्व योग उच्यते ॥

अर्थात् "सबकी एकता के साम्यभाव मन मे स्थिर करके व्यक्तिगत स्वार्थ की आसक्ति से रहित होकर स्वार्थ की सिद्धि अथवा असिद्धि मे नीर्विकार रहता हुआ काम कर। सबकी एकता का साम्यभाव ही योग है।

इसके बाद के ४६ और ५० श्लोक ऊपर के श्लोको के भाव को और भी अधिक स्पष्ट कर देते हैं। उनमे "कृपण" शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया है जो स्वार्थ से प्रेरित होकर काम करता है। ४६वें श्लोक मे कहा गया है कि —

दूरेण ह्यवर कर्म बुद्धियोगाद्धनजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतव ॥

अर्थात् "सबकी एकता के आत्मज्ञान के बुद्धियोग के बिना जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए काम करते हैं, वे कृपण हैं।

५०वें श्लोक मे कर्मयोग का रूप बताते हुए कहा गया है कि —

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग. कर्मसु कौशलम् ॥

अर्थात् "आत्मज्ञान की समत्व बुद्धि से व्यक्तिगत स्वार्थ की भावनाओ को छोडकर साम्यवाद से काम करने को ही "कर्म कौशल" अर्थात् काम करने की कुशलता अथवा योग कहा गया है।" यही सच्ची व वास्तविक योग समाधि है। अपने सुपुर्द किए गए कर्त्तव्य कर्म को सार्वजनिक व सामाजिक भावना से पूरा करने मे तल्लीन होना ही गीता के अनुसार योग व समाधि है।

अगले अध्यायो मे इन श्लोको मे सूत्र रूप मे कहे गए विचारो की सुविस्तृत व्याख्या की गई है। गीता के अनेक भाष्यकार उक्त कुछ श्लोको को ही गीता का मुख्य विषय मानते हैं। उनके मत के अनुसार गीता द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग का मूलभूत आधार यही श्लोक हैं।

गीता के अनुसार सभ्य समाज की सुव्यवस्था के लिए चार प्रकार के कार्य विभाग की आवश्यकता है। वे है शिक्षा, सुरक्षा, वाणिज्य और शारीरिक सेवा अथवा व्यक्तियो के स्वाभाविक गुणो के अनुसार चार प्रकार के कार्यो का विभाजन। सत्वगुण की प्रधानता के कारण विशेष बौद्धिक विकास वाले सयमी व्यक्तियो के लिए ज्ञान-विज्ञान के अनुसधान और विवेचन-पूर्वक शिक्षा, रजोगुण की प्रधानता वाले बलवान लोगो के लिए रक्षा और तमोगुण की प्रधानता वाले लोगों के लिए खेती, वाणिज्य तथा पशुपालन और शारीरिक श्रम के कार्य नियत किए गए हैं। क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सज्ञा दी गई। यह सज्ञा केवल उनके गुणो के अनुसार किए जाने वाले कार्यो के लिए दी गई थी। उसको वर्ण व्यवस्था कहते थे। यह केवल कार्य विभाग था न कि मनुष्यो को जन्म, जाति अथवा किसी ऐसे ही अन्य आधार पर चार हिस्सो मे बांटा गया था। जन्म व जाति की ऐसी कोई रुढिगत व्यवस्था नही थी। इस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का विवरण अट्ठारहवें अध्याय के ४१ से ४४ श्लोक मे दिया गया है। ४७वें श्लोक मे यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इस वर्ण व्यवस्था के अनुसार किये जाने वाले सभी वर्णो के चारो कर्म श्रेष्ठ हैं। उनमे ऊँच-नीच की ऐसी कोई भावना नही है। न तो ब्राह्मणो का कार्य श्रेष्ठ है और न मेहतर का निकृष्ट। लोक सग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए सबको अपने-अपने स्वाभाविक गुणो की योग्यतानुसार काम करते रहना चाहिए। अपनी-अपनी योग्यता के काम करने से ही वर्तमान
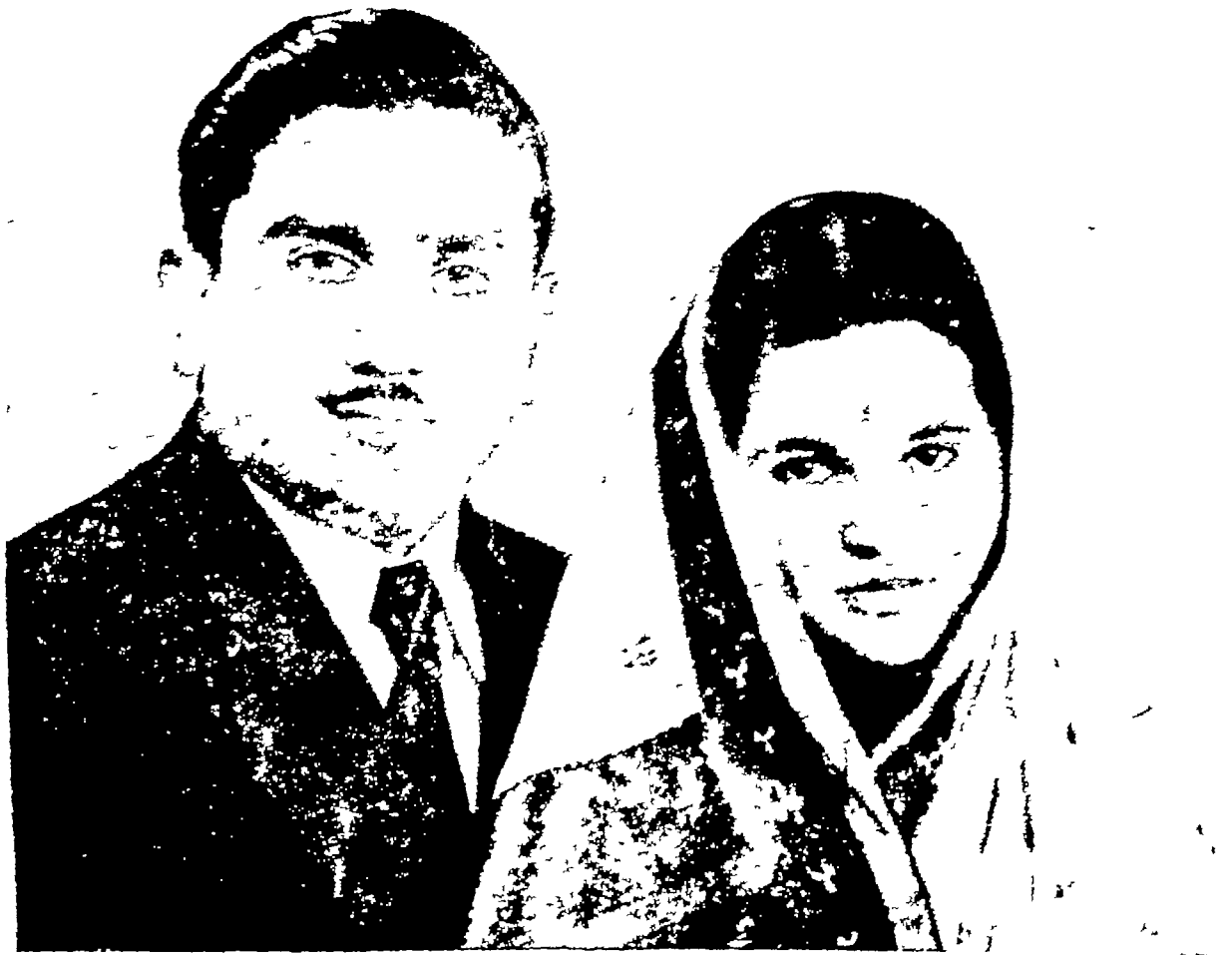
कुंवर जगदीशप्रसाद गोयनका | सौभाग्यवती राजकुमारी जगदीशप्रसाद गोयनका
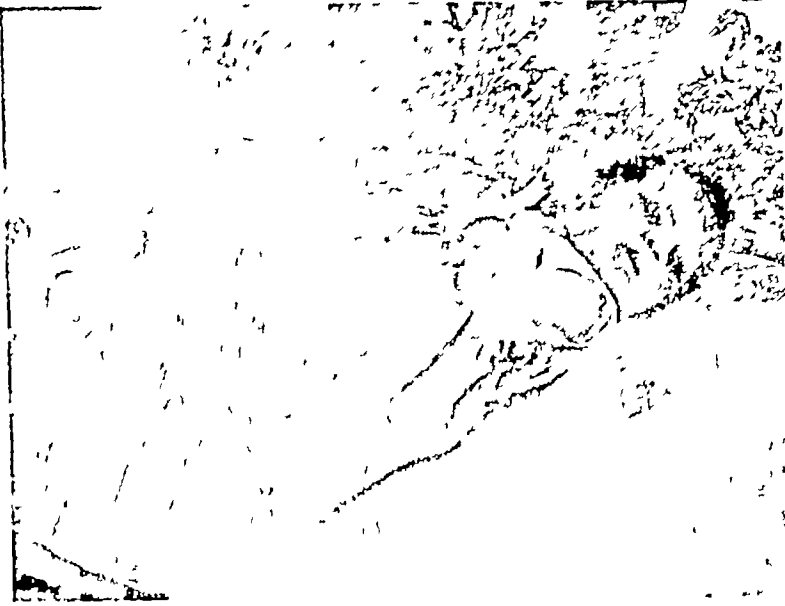
शिशु यशोधरा बाई गोएनका

तथा भविष्य मे सबको एक समान श्रेय प्राप्त होना सम्भव है। सब को समाज मे एक समान स्थिति प्राप्त है। पाचवें अध्याय के १८-१६ श्लोको मे सब श्रेणियो के लोगो को ही नही, किन्तु प्राणिमात्र को एक समान समझने को कहा गया है। वे श्लोक ये है कि —

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
इहैव तैर्जित. सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

अर्थात् "विद्या, और विनय (नम्रता) सम्पन्न ब्राह्मण मे, गौ मे, हाथी मे और इसी तरह कुत्ते तथा चाण्डाल मे (आत्मज्ञानी) विद्वान् पुरुष समदर्शी होते है। जिनका मन (उक्त) समता के एकत्व भाव मे स्थित हो जाता है, वे ससार को यही (इसी शरीर मे) जीत लेते हैं, (और) क्योकि ब्रह्म ही निर्दोष एव सम है इसलिए वे ब्रह्म मे स्थित रहते हैं। तात्पर्य यह है कि द्वैतभाव से उत्पन्न राग, द्वेष आदि सब दोषो से रहित साम्यभाव ही ब्रह्म है, इसलिए जिनका मन उक्त साम्यभाव मे स्थित हो जाता है, उन्हे मुक्त होने के लिए कोई दूसरा शरीर धारण करके किसी दूसरे लोक विशेष मे जाने की अपेक्षा नही रहती, किन्तु वे यहाँ (इस शरीर मे) ही साक्षात् ब्रह्मरूप हो जाते हैं और वे जीवन मुक्त महापुरुष विश्व विजेता अर्थात् सारे जगत के स्वामी होते हैं।

तीसरे अध्याय के ८ से १६ श्लोको मे चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की कुछ अधिक व्याख्या की गई है। उसमे बताया गया है कि समाज की सुव्यवस्था के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना के बिना अपनी योग्यता के काम करने मे हर व्यक्ति को लगे रहना चाहिए। इसी को यज्ञ कहा गया है और इसी यज्ञ पर सम्पूर्ण समाज अथवा ससार की स्थिति निर्भर कही गई है। इसी से समाज की उन्नति और वृद्धि सम्भव बताई गई है। समष्टि समाज को देव सज्ञा देकर प्रत्येक व्यक्ति के लिए सारे समाज के साथ योग देकर समाज की आवश्यकताओ की पूर्ति मे भाग लेने और पूरित समाज से प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी होने के यज्ञ चक्र का विधान किया गया है। अर्थात् व्यष्टि समष्टि के लिए और समष्टि व्यष्टि के लिए काम करने के यज्ञ चक्र मे सब को अपना-अपना भाग अदा करना आवश्यक है। जो इस यज्ञ चक्र मे अपना योग नही देता किन्तु निठल्ला रहकर दूसरो पर निर्भर रहता है उसे चोर और पाप भोगने वाला कहा गया है। प्राणिमात्र का अस्तित्व सबके अपने-अपने काम करने रूपी यज्ञ पर निर्भर है इस यज्ञ से वह शक्ति (पर्जन्य सामुदायिक अथवा समष्टिगत शक्ति) प्रकट होती है जिसमे तरह-तरह के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। जो इस यज्ञ चक्र के अनुसार आचरण नही करता, उसमे अपना योगदान नही देता और अपने हिस्से का काम नही करता उसको ससार मे जीने का कोई अधिकार नही है। यही गीता का समाज-विज्ञान अथवा समाजवाद है। इसी के आधार पर सुव्यवस्थित समाज रचना की जा सकती है, जो कि समाजवाद का सर्वोत्कृष्ट व्यावहारिक रूप है। गीता इसी को समत्व योग कहती है। इसके जोड का समाजवाद दूसरा क्या हो सकता है?

गीता के इस समाजवाद मे पूंजीवाद के लिए कोई स्थान नही है। पूंजीपतियो की गणना गीता के दसवें अध्याय के विभूति वर्णन मे 'वित्तेशो यक्ष रक्षसाम्' कह कर यक्ष व राक्षस आदि मे की गई है। सोलहवें अध्याय मे विस्तार पूर्वक विवेचन करते हुए उनको असुर कहा गया है। सबकी एकता व समता पर पूरा जोर देते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रकार के काम अपने-अपने गुणो व योग्यता के अनुसार करने की व्यवस्था की गई है और अपने-अपने गुणो व योग्यता मे उन्नति करने का सबके लिए समान अधिकार और अवसर रखा गया है। भौतिक भोगो और सुखो मे सयम रखना सबके लिए समान रूप से आवश्यक ठहराया गया है। आज जो शूद्र के काम पर नियुक्त है, यह आवश्यक नही कि वह जन्म भर उसी मे लगा रहे और उसके पुत्र व पौत्रादि भी उसके अलावा

कोई दूसरा काम न कर सकें। शूद्र अपने मे रजोगुण एव सतोगुण की वृद्धि करता हुआ वैश्य, क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण का भी काम कर सकता है और उसकी सन्तान भी किसी भी वर्ण का काम कर सकती है। ब्राह्मण का दर्जा ऊँचा वताने वाले यह भूल जाते हैं कि उसके लिए मान-सम्मान विष के समान और अपमान अमृत के समान वताया गया है। क्षत्रिय राज्य का सचालन एव सुरक्षा करते हुए भी उसका व्यक्तिगत उपभोग नही कर सकता। वैश्य भी इसी प्रकार धन, सम्पत्ति एव समृद्धि की वृद्धि करते हुए उसको केवल अपने उपभोग मे नही ला सकता। यदि कोई अपने सुपुर्द किये गये काम को यथावत् नही करता और अपने मे विद्यमान सतोगुण तथा तमोगुण और रजोगुण के सतुलन को अस्त-व्यस्त कर देता है तो वह अपने वर्तमान वर्ण मे नही रह सकता। इस प्रकार कर्त्तव्य कर्म के लिए आवश्यक गुणो एव योग्यता को महत्त्व देकर समाज की जो व्यवस्था की गई है उसको आदर्श समाज-व्यवस्था कहा जा सकता है। यह वर्ण व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति के सत, रज तथा तम पर आधारित गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार किया गया विभाजन है जो कि किसी न किसी रूप मे सर्वत्र पाया जाता है। उसको जन्म जाति अथवा सम्प्रदाय के साथ बाँधना समाज के जीवन को विकसित होने से रोकना है, क्योकि समाज की सारी व्यवस्था के जड वन जाने से वह प्राणहीन व चेतनाहीन वन जायेगी और उसके प्रगतिशील सब तत्त्व नष्ट हो जायेंगे। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि गीता के समत्व योग, समाज व्यवस्था एव समाजवाद का उद्देश्य "सर्वभूतहिते रता" अर्थात् सारे समाज के हित सम्पादन मे प्रत्येक व्यक्ति का रत रहना अथवा लगे रहना है।

आयुर्वेद मे जैसे व्यक्ति के स्वास्थ्य को वात, पित्त, कफ की समान स्थिति पर निर्भर बताया गया है, वैसे ही गीता मे समाज की सुव्यवस्था का आधार व्यक्ति मे सत, रज और तम के विकास को माना गया है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए जो महत्त्व वात, पित्त, कफ का है वही महत्त्व समाज के स्वास्थ्य के लिए सत, रज व तम का है। उनका यथावत् सन्तुलन बनाये रखना आदर्श समाज व्यवस्था के लिए आवश्यक है। सृष्टि विज्ञान मे भी इन तीनो गुणो को उसकी रचना का मूल कारण और उसके सरक्षण के लिए भी आवश्यक बताया गया है।

गीता के समत्वयोग अथवा उसके समाजवाद के मूलभूत तत्त्व निम्नप्रकार कहे जा सकते हैं —

(१) प्राणिमात्र मे आत्म-तत्त्व के नाते वर्तमान एकता व समता सारी समाज रचना का आधार, (२) व्यक्ति और समष्टि मे पूर्ण समन्वय, (३) व्यक्ति का कर्त्तव्य कर्म उस कर्म के लिए किया जाने वाला प्रयत्न और उस प्रयत्न का सम्पूर्ण परिणाम समष्टि के लिए है व्यक्ति के लिए नही, (४) व्यक्तिगत फलाकाक्षा का पूर्ण परित्याग, (५) कर्त्तव्य कर्म का निरतर पालन और निठल्लेपन का पूर्ण अभाव, (६) कर्त्तव्य कर्म की दृष्टि से ऊँच-नीच के भेदभाव का सर्वथा अत, (७) व्यक्तिगत सग्रह की कृपणता के पाप से मुक्ति अर्थात् पूँजीवाद की भावना की परिसमाप्ति। इन तत्त्वो के आधार पर सगठित समाज का जो रूप होगा वह कितना सुन्दर, स्वस्थ और उन्नतिशील होगा—इसकी कल्पना करना कठिन नही होना चाहिए। वर्त्तमान राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सब समस्याओ को इस समाज व्यवस्था द्वारा सहज मे हल किया जा सकता है और सब कृत्रिमताओ एव विषमताओ का अत करके समाज मे स्वाभाविक स्थिति पैदा की जा सकती है। तव वडे गर्व के साथ यह कहा जा सकेगा कि —

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु खभाग्भवेत्॥

गीता के इस समत्वयोग अथवा समाज-व्यवस्था या समाजवाद के साथ यदि पश्चिम के वर्तमान समाजवाद की तुलना की जाय तो यह विलकुल स्पष्ट है कि आधुनिक समाजवाद की अपेक्षा गीता का समत्वयोग कही अधिक उच्चकोटि का एव निर्दोष है। वह आदर्श समाज-व्यवस्था का सूचक है, जिसमे व्यष्टि और समष्टि अथवा व्यक्ति और समाज की पूर्ण प्रगति, उन्नति, विकास एव अभ्युदय सुनिश्चित है। पश्चिमी राष्ट्र चाहे वे पूँजीवादी

हैं या साम्यवादी, —सभी अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार भौतिक समाजवाद के आधार पर ही समाज की व्यवस्था करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह एकागी दृष्टि है। उस से व्यक्ति अथवा समाज का सर्वाङ्गीण विकास हो नही सकता। इस कारण उनके इस समाजवाद का जो रूप है वह सबके सामने है। सब राष्ट्रो मे पूंजीपतियो और श्रमिको के संघर्ष आदि के अन्तर्विग्रह और अन्तर्राष्ट्रीय कलह व सघर्ष ने भयानक रूप धारण किया हुआ है। सब एक दूसरे से भयभीत हैं और उस भय के निवारण का जो उपाय करने मे वे लगे हुए हैं उसी का दुष्परिणाम अणु बम तथा उद्जन बम आदि घातक शस्त्रास्त्रो का आविष्कार है। एक से एक भयानक परीक्षणात्मक विस्फोट करके वे अपना आतक दूसरे पर जमाना चाहते है और निर्दोष राष्ट्रो की गरीब जनता पर संहारक रेडियोधर्मी कण बरसा रहे हैं। उनके दुष्परिणामों पर निष्पक्ष वैज्ञानिको ने जो प्रकाश डाला है वह कितना भयानक चित्र उपस्थित करता है ? इस राग-द्वेष की अग्नि से, जिसको आजकल की राजनीतिक परिभाषा मे 'शीतयुद्ध' कहा जाता है कोई भी बचा नही है। उसकी आँच उन देशो पर भी पहुँच जाती है जो इस राग-द्वेष से सर्वथा दूर या अलिप्त रहने के लिए प्रयत्नशील हैं। किसी का किसी पर विश्वास नही है। पारस्परिक सन्देह और अविश्वास इस चरम सीमा पर पहुँच गया है कि एक टेबल पर बैठ कर विश्वशांति के लिए चर्चा करने वाले भी घात-प्रतिघात मे निरतर लगे रहते हैं और सब एक दूसरे के लिए विनाश की खाई खोदने मे सलग्न हैं। विनाश की इस लीला मे लगे हुए लोगो को शाति कैसे नसीब हो सकती है ? इन सब विपत्तियो से छुटकारा पाने का प्रभावशाली उपाय गीता के समत्व-योग के सिवाय दूसरा नही है। व्यक्तिगत दृष्टि अथवा फल की आशा के त्यागने पर संग्रह की प्रवृत्ति स्वतः नष्ट हो जायगी और अपरिग्रह की भावना के व्याप्त हो जाने पर घात-प्रतिघात की भावना एव प्रवृत्ति का स्वय-मेव अत हो जायगा। तब स्थायी सुख व शान्ति स्थापित हो सकेगी।

हमारे देशवासियो को गीता के समत्वयोग के प्रकाश मे सारी स्थिति पर कुछ गम्भीर विचार अवश्य करना चाहिए और देखना चाहिए कि अपने देश मे गीता के समत्वयोग के आदर्श के अनुसार सामाजिक व्यवस्था कैसे कायम की जा सकती है ? कही ऐसा न हो कि पश्चिम के भौतिकवादी समाजवाद की नकल करते हुए हमारी स्थिति अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धे की सी न हो जाय। हमारे देश की साधारण जनता की बुद्धि का विकास इतना अधिक नही हुआ है कि वह समत्वयोग के आदर्श को अगीकार कर अपनी समाज व्यवस्था का निर्माण कर सके। व्यक्तिगत स्वार्थों की आसक्ति के कारण उसमे जो "कृपणता" व्याप गई है उससे उसका नैतिक स्तर भी बहुत गिर गया है और उसका मानसिक एवं बौद्धिक विकास आवश्यक मात्रा मे होना रुक गया है। परन्तु देश के जिन नेताओ की बुद्धि सबकी एकता के साम्यभाव मे पूरी तरह स्थित प्रज्ञ है, उन लोगो का यह कर्त्तव्य है कि वे समत्व योग के सिद्धान्त के आधार पर समाज की व्यवस्था बनादें और स्वयं उसके अनुसार आचरण करने का आदर्श उपस्थित करके साधारण जनता को उसको अपनाने के लिए प्रेरित व बाधित करें। गीता मे ठीक ही कहा है कि "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्त दैवेतरो जना" श्रेष्ठ लोग अर्थात् बुद्धिमान नेता अथवा स्थितप्रज्ञ जैसा आचरण करते हैं वेसा ही साधारण जन भी करने लग जाते हैं।

इन स्थितप्रज्ञ पुरुषो अथवा नेताओ के लक्षण गीता के दूसरे अध्याय के ५५से ५७ श्लोको मे निम्न प्रकार कहे हैं—

> प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
> आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥
> दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
> वीतराग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

अर्थात् "मन मे उत्पन्न होनेवाली व्यक्तिगत स्वार्थों की सब कामनाओ को जो त्याग देता है और अपने मे सन्तुष्ट रहने के कारण आत्म-विश्वासी एव आत्म निर्भर होता है वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ।

दु खो मे जिसका मन उद्विग्न नही होता और सुखो के लिए जो लालायित नही होता तथा राग, भय और क्रोध से जो मुक्त है वह स्थित प्रज्ञ कहलाता है ।

जो अनुकूलता से प्रफुल्लित नही होता और प्रतिकूलता से द्वेष नही करता, सदा-सर्वदा आसक्ति से रहित है, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है ।

ऐसे स्थितप्रज्ञ महापुरुष अथवा नेता ही समाज मे समत्वयाग की स्थापना करके अपने राष्ट्र का सुख, शान्ति तथा अभ्युदय की ओर अग्रसर कर सकते हैं । उनके व्यक्तिगत जीवन से अनुप्राणित हुई जनता समत्वयोग के आदर्श को स्वीकार करने मे कभी पीछे नही रह सकती ।

•

गीता का धर्म और नीति

[लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार]

हिन्दू समाज और उसके धर्म शास्त्रो मे धर्म को इतना व्यापक बना दिया गया है कि उसकी कोई परिभाषा करनी कठिन हो गई है। आचार-व्यवहार मे उसको और भी अधिक व्यापक रूप दे दिया गया है । मानव जीवन मे सभी लोकाचार और शास्त्राचार धर्म के अन्तर्गत मान लिए गये हैं । जन्म से भी पहले से ये धर्माचार शुरू हो जाते हैं और मृत्यु के बाद भी जारी रहते हैं । जीवन का कोई भी व्यवहार अथवा क्रम धर्म से रहित नही रहने दिया गया । धर्म को इस प्रकार मानव जीवन मे श्वास-उच्छ्वास से भी अधिक महत्व दे दिया गया है और उसको प्राणो से भी अधिक कीमती मान लिया गया है । यह आम धारणा बन गई है कि प्राण भले ही चले जायें, परन्तु धर्म नही जाना चाहिए । जिन्होने जनेऊ, चोटी, कठी, माला, गडा, तावीज, तिलक, छाप तया कडा-कच्छ-कृपाण-केश व कघा आदि को धर्म के चिन्ह मान लिया वे उनके लिए ऐसी खून खराबी करने को तैयार हो जाते हैं, जिसका प्रतिपादन कदाचित् ही किसी धर्म मे किया गया हो । पीपल व वट आदि के पेडो और ईंट, मिट्टी व चूने आदि से बनाए गए धर्म स्थानो को मानव जीवन से कही अधिक महत्व दे दिया गया है । धर्म के नाम पर किये जाने वाले हिन्दु-मुस्लिम दगो को उपहास मे दाढी-चोटी सघर्ष कहा जाने लगा । धर्म को सम्प्रदाय का रूप देने वालो अथवा सब सम्प्रदायो को धर्म की श्रेणी मे शामिल कर देने वालो ने धर्म की जो दुर्गति की है उसकी चर्चा क्या की जाए ?

देवी देवता और सब से ऊपर ईश्वर को माने बिना सम्प्रदाय रूपी धर्मो का काम चल नही सकता । इन सम्प्रदायो के देवी-देवताओ और ईश्वर की कल्पना के कारण शायद ही ससार की कोई चीज ऐसी बची होगी जिसको उनकी जगह बिठाकर ईश्वर की तरह पूजा न गया हो । किसी भी पत्थर को सिन्दूर मल दीजिये, बस, वह देवता बन जाता है और उसकी पूजा शुरू होकर उस पर भेंट व चढ़ावा चढ़ने लग जाता है । और तो मोर, सांप, मगर-मच्छ, बन्दर, गाय और कही-कहीं तो गधे तक की भी पुजा की जाने लगी । कुम्हार के चाक,

कुएँ, नदी तथा पेडो और चौराहो को भी पूजा जाने लगा। धर्म को अजीव गोरख-धन्धा वना दिया गया। यदि पूजा किये जाने वाले सव पदार्थों को पूजा की विधि सहित और धर्म की भावना से स्वीकृत चिह्न धारियो को एक स्थान पर एकत्र किया जा सके, तो अत्यन्त मनोरजक प्रदर्शनी वन सकती है। स्थिति यह है कि जिज्ञासु अथवा मुमुक्षु के लिए धर्म का असली रूप समझना प्राय असम्भव हो गया है। उसकी हालत उस राही की सी हो गई है जो घने जगल मे रास्ता भटक जाता है और जिसको ढूंढने पर भी राह मिलती नही। सचमुच ही धर्म का जजाल जगल की तरह एसा घना हो गया है कि साधारण जन के लिए वह दुर्गम वन गया है। वह आखें मूंद कर दूसरो का पल्ला पकडे उनके पीछे चलने मे ही अपना कल्याण मान बैठा है। मनुष्य मे भी पशुओ की सी गतानुगतिकता पैदा हो गई है। उसने यह सिद्धान्त बना लिया है कि "महाजनो येन गत· स पन्थ ।" महाजनों के नाम से अव तो हर किसी के भी पीछे लोग लग जाते है और उसको धर्म गुरु मानकर पूजना शुरू कर देते हैं। साधारण वोलचाल मे इसी को भेडिया धसान कहा गया है। यह कैसा विस्मय है कि जिस को विवेक-बुद्धि के कारण सब प्राणियो मे सर्वोपरि माना गया, वह उससे काम न लेकर सिर नीचा किये भेडो की तरह दूसरो के पीछे चलने का आदी वन गया है। ऐसे ही लोगो के लिए कहा गया है

"धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।"

अर्थात खाना-पीना, सोना, दूसरो से डरना और अन्य व्यसन भी मनुष्यो मे पशुओ जैसे ही हैं। केवल उनमे धर्म विशेष है और उस धर्म के विना वे पशुओ के समान है। यहाँ धर्म से अभिप्राय धार्मिक कर्मकाण्ड आदि नही है, अपितु बुद्धि विवेक है। यही मनुष्य मे पशु की अपेक्षा विशेषता है। शास्त्राचार व लोकाचार का सारा धर्म-कर्म करते हुए भी मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नही रह गया है। रूढि, परम्परा, मर्यादा अथवा लोकाचार और शास्त्राचार के नाम से जिस धर्म का अवलम्वन किया जाता है, वह गतानुगतिकता अथवा भेडिया-धसान से अधिक कुछ नही है। उसमे वास्तविक धर्म की छाया तक शेष नही रह गई है। वट-वृक्ष की तरह नाना सम्प्रदायो अथवा साम्प्रदायिक कर्म-काण्डो की शाखा-प्रशाखाएँ उसमे फूट निकली हैं। उसका मूल सर्वथा नष्ट हो चुका है। धर्म शास्त्रो का भी यही हाल है। इस कारण यह कहा गया है कि श्रुतियाँ और स्मृतियाँ अर्थात् धर्मशास्त्र एक दूसरे से भिन्न हैं और कोई धर्माचार्य भी ऐसा नही जिसकी वात को प्रमाण माना जा सके, क्योकि सभी एक दूसरे की वात काट देते हैं। साधारण जन के लिए धर्म का तत्व, भेद अथवा रहस्य जानना अत्यन्त कठिन ही नही किन्तु असम्भव हो गया है। उसके प्रकाश मे जीवन की किसी भी समस्या का हल कर सकना सम्भव नही रहा।

गीता का आरम्भ धर्म शब्द से हुआ है। धृतराष्ट्र ने सजय से जो प्रश्न पूछा है, उसमे महाभारत की लडाई के युद्ध क्षेत्र कुरुक्षेत्र को धर्म क्षेत्र कहा गया है और इसी से गीता आरम्भ होती है।

गीता का अन्त जिस श्लोक के साथ हुआ है उसका अन्तिम चरण है "ध्रुवा नीतिर्ममतिर्मम ।" इस मे नीति शब्द मुख्य है। इसलिए यह माना जा सकता है कि गीता का अन्त नीति शब्द के साथ हुआ है।

वैदिक ग्रन्थो का स्वाध्याय करने वालो का यह मत है कि किसी भी ग्रन्थ का ठीक-ठीक अभिप्राय समझने के लिए उसके उपक्रम और उपसहार पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। आदि और अन्त की सगति विठाए विना उसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझ मे नही आ सकता। गीता के आदि और अन्त को सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो "धर्म" और "नीति" मे उनके प्रचलित रूप के अनुसार कोई मेल या सगति नही वैठती, क्योकि दोनो परस्पर विरोधी मान लिए गए हैं। धर्म ऐसे लोकाचार व शास्त्राचार का प्रतिपादन करता है, जिनके बारे मे यह कहा जाने लगा है कि मृत्यु उपस्थित होने पर भी उनको छोडना नही चाहिए। नीति का सम्वन्ध

छल-कपट, वेईमानी तथा कूट चालो के साथ जोडा जाता है और उनका धर्म के साथ कोई सम्वन्ध समझा नहीं जाता। इस प्रकार दोनो एक दूसरे के विपरीत वन गए हैं। परन्तु गीता के धर्म और नीति मे ऐसा कोई अन्तर नही है। उनके वास्तविक रूप को समझने के लिए गीता पर एक सरसरी दृष्टि डालनी आवश्यक है। गीता के पहले ही अध्याय मे यह वताया गया है कि शूरवीर योद्धा होते हुए भी अर्जुन युद्ध से विमुख क्यो हो गया ? अपने सामने अपने घरवालो, अपने सगे-सम्बन्धियों और अपने गुरुजनो को खडा देख उसके हृदय मे धर्म तथा अधर्म और पाप तथा पुण्य की शकाएँ-कुशकाए पैदा हो गई हैं। वर्णसकर होने और पिण्डोदक क्रियाओ के लुप्त होने से सव के नरकगामी वनने का भय उसके दिल पर छा जाता है। जाति-धर्म और कुल-धर्म के विनाश की सम्भावना उसको भयभीत कर डालती है, पाप की कल्पना से वह घवरा जाता है। सारी गीता मे इसी धर्म-अधर्म अथवा पाप-पुण्य का विविध दृष्टियो से गम्भीर विवेचन किया गया है।

अपने को धर्म-अधर्म का युग-युग मे सम्पूर्ण व्यवस्था करने वाला वता कर श्रीकृष्ण ने पहले शरीर और आत्मा के गुण धर्म को स्पष्ट करते हुए शरीर को विनाशी और आत्मा को अविनाशी बताया। शरीर को जीर्ण-शीर्ण कपडो से उपमा देते हुए आत्मा को किसी भी प्रकार नष्ट न होने वाला और किसी भी ससारी पदार्थ से प्रभावित न होने वाला बताया गया है। श्रीकृष्ण का यह विवेचन कैसा प्रेरक, स्फूर्तिप्रद और प्रभावोत्पादक है। निराश हृदय मे भी वह आशा का सचार कर देता है। आत्मा के रूप मे परमात्मा को सबमे व्यापक और अविनाशी वता कर दुनिया के इस सारे खेल को मृत्यु और जीवन के दो किनारो के बीच प्रवाहित होने वाली नदी के समान बताया गया है। देह का धर्म विनाश और आत्मा का अमरत्व समझाते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह वताया कि कौन किसको मारता है ? न कोई मरता है और न कोई मारता है, "न चाय हन्ति न हन्यते।" इस प्रकार मरने या मारने की पाप बुद्धि को दूर करने का प्रयत्न करने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने क्षात्र धर्म का ध्यान दिलाया और उससे विमुख होने पर लोकापवाद का भय दिखाया। यह कहा कि तुझे फल अर्थात् परिणाम पर ध्यान देने की जरूरत नही। तेरा धर्म तो कर्म करना है और वह तुझे करते ही रहना चाहिए। स्थितप्रज्ञ की परिभाषा करते हुए उसको अपने कर्तव्य कर्म रूपी धर्म मे स्थिर बुद्धि होकर लगे रहने के लिए प्रेरित किया। उसके वाद दार्शनिक दृष्टि से धर्म-अधर्म अथवा पाप-पुण्य की व्याख्या की गई। साख्य व योग आदि की दृष्टि समझाई गई। प्राय सभी तरीको से धर्म की सुविस्तृत व्याख्या करने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन पर छा जाने का प्रयत्न किया। उसको मैस्मराइज करने अथवा पूरी तरह अपने वश मे करने के लिए विराट रूप के दर्शन कराए। इसमे किसी भी चीज को छोडा नही गया, जिसको अपने मे निहित नही बताया गया। पशु, पक्षी, वृक्ष व वनस्पति तथा नर-नारायण व देवी देवता और द्यूत कर्म तक को अपना ही रूप बताया गया है। तात्पर्य यह है कि दुनिया मे स्वत कोई भी चीज न तो केवल अच्छी है और न बुरी। उसकी अच्छाई या बुराई उस भावना मे है, जिससे उसको ग्रहण या उसका उपयोग किया जाता है। प्रत्येक वस्तु मे उसका अपना स्वभावसिद्ध धर्म विद्यमान होता है और उसका प्रयोग आवश्यकतानुसार करने का नाम है नीति।

इस प्रकार धर्म और उसके व्यवहार की सभी दृष्टियो से व्याख्या करने और उनका वास्तविक रूप समझाने के वाद भी जव अर्जुन की धर्म एव पाप के सम्वन्ध मे मूढ भावना दूर होकर उसके व्यामोह का अन्त नही हुआ तव श्रीकृष्ण ने १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक मे, जहाँ कि गीता की समाप्ति होती है यह कहा कि —

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरण व्रज ।
अहत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच. ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! सव धर्म कर्म के जजाल को छोड कर तू मेरी शरण मे आ जा। तू किसी भी प्रकार की चिन्ता या सोच विचार मत कर। मैं तुझको सव प्रकार के पापो से मुक्त कर दूंगा।"

गीता की यहाँ प्राय समाप्ति हो जाती है। इसके बाद श्रीकृष्ण अर्जुन से पूछते हैं कि अब भी अज्ञान से पैदा हुआ तेरा मोह दूर हुआ कि नहीं ? अर्जुन उत्तर मे कहता है कि :—

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ।"

"हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे स्मृति प्राप्त हुई, इसलिए मैं सशय रहित होकर दृढता के साथ आपके वचन के अनुसार काम करूँगा।" धर्म के सुविस्तृत व्याख्यान का अर्जुन पर वैसा प्रभाव नही पड सका जैसा कि नीति के एक ही उपदेश का असर उस पर हो गया। धर्म, जिन सिद्धान्तो अथवा आदर्शो का प्रतिपादन करता है, नीति उसको व्यवहार मे लाने का मार्ग बताती है। भले ही धर्म उन सिद्धान्तो एवं आदर्शों को अनिवार्य एवं अपरिहार्य क्यो न बताता हो; किन्तु नीति उनको व्यवहार की कसौटी पर कस कर यह बताती है कि किस प्रसग, स्थिति अथवा अवसर पर उनका किस रूप मे प्रयोग किया जाना चाहिए। अथवा किस प्रकार उन पर आचरण किया जाना चाहिए। वैसे तो जो जिसका स्वभाव सिद्ध धर्म है उसको उसमे कभी भी अलग नही किया जा सकता, परन्तु अर्जुन जिस जाति धर्म व कुल धर्म के क्षय अथवा विनाश के भय से पाप-पुण्य की मिथ्या भावना मे उलझ कर व्यामोह मे फँस गया था वह उसका स्वभाव सिद्ध शाश्वत धर्म नही था। कुल धर्म अथवा जाति धर्म साम्प्रदायिक धर्मों के समान परिवर्तनशील हैं। उनको स्थायी नित्य अथवा शाश्वत मानना बहुत बड़ी भूल है। अर्जुन इसी भूल का शिकार बन गया था। नीति इसका परिमार्जन करती है और श्रीकृष्ण ने सर्व धर्म परित्याग की बात कह कर इसी नीति का प्रतिपादन किया है। धर्म की दार्शनिक व्याख्या की अपेक्षा उसकी व्यावहारिक व्याख्या अधिक सरल और सुबोध होती है। श्रीकृष्ण ने गीता के अन्तिम भाग के कुछ श्लोको मे धर्म के नीतिपरक व्यावहारिक रूप को स्पष्ट किया है और उन श्लोको के अलावा शेष सारी गीता मे उसके दार्शनिक किंवा सैद्धान्तिक रूप का प्रतिपादन किया है। नीति नियम सबके स्वभाविक अथवा स्वभाव सिद्ध शाश्वत धर्म नही होते। उनका सम्बन्ध व्यवहार के साथ होता है, जो स्थिति, अवसर, प्रसग अथवा व्यक्ति के अनुसार बदलते रहते हैं। वे परिवर्तनशील होने के कारण एक दूसरे के अपवाद अथवा कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी भी प्रतीत हो सकते हैं। बोलचाल की भाषा मे इनको भी धर्म इसलिए कह दिया जाता है कि वे व्यवहार मे धारण किये जाते हैं अथवा उनको आचरण मे स्वीकार किया जाता है। गीता मे स्थान-स्थान पर नीति नियमो का उल्लेख इसी कारण धर्म के नाम से किया गया है और वैसा करना धर्म और नीति के पारस्परिक विरोध की अपेक्षा अनुकूलता का सूचक है। धर्म के बिना नीति और नीति के बिना धर्म चल नही सकते। दोनो एक ही सिक्के के दो बाजू अथवा एक नदी के दो किनारे हैं। अहिंसा को परम-धर्म मानते हुए भी दुष्टो के दमन के लिए हिंसा का अवलम्बन करना नीति है, जो कि गीता का मुख्य विषय कहा जा सकता है। उन पर दया करना हृदय की दुर्बलता है। सत्य को भी परम धर्म माना गया है। परन्तु अप्रिय सत्य बोलना और प्रिय झूठ बोलना निषिद्ध ठहराया गया है। यही सत्य का नीतिपरक रूप है। गीता के शब्दो मे सत्य उद्वेगरहित, प्रिय एव हितकारी होना चहिए। अर्थात् कल्याणकारी अथवा अहितकर सत्य नही बोलना चाहिए। काम व क्रोध धार्मिक दृष्टि से निषिद्ध हैं परन्तु "मन्युरसि मन्युं मयि धेही" और "वीर्य मसि वीर्य मयि धेहीं" कह कर ईश्वर को मन्यु (क्रोध) रूप और वीर्य रूप मान कर उससे मन्यु और वीर्य प्राप्ति की कामना की गई है। समाज धारण के लिए काम व मन्यु दोनो को भगवान की विभूति माना गया है। साराश यह है कि नीति नियमो का परिस्थिति, प्रसग, अवसर तथा सामने वाले व्यक्ति के अनुसार यथावत प्रयोग करना धर्म के विरुद्ध नही उसके अनुकूल है। उनका यथावत् प्रयोग न करना ही अधर्म अथवा पाप है।

श्रीकृष्ण के जीवन मे नीति नियमो के पालन के अत्यन्त अद्‌भुत उदाहरण मिलते हैं। उनके जीवन

का राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो वे एक अत्यन्त चतुर एव कुशल कूटनीतिज्ञ कहे जा सकते हैं। कूटनीतिज्ञ राजदूत के कर्तव्य कर्म को निभाने मे वे अत्यन्त निपुण थे। पाँडवो ने जहाँ भी कही नीति को भुला कर मूर्खता से काम लिया वहाँ सदा ही श्रीकृष्ण ने नीतिपूर्ण चतुराई से काम लेकर उनकी लाज बचाई और उनकी रक्षा की। उनकी इस चतुराई को यदि अधर्म माना जाय तो श्रीकृष्ण का धर्म सस्थापन के लिए बार-बार जन्म लेने का दावा सत्य की कसौटी पर पूरा नही उतर सकता। श्रीकृष्ण के जीवन का लक्ष्य माण्डलिक राजाओ का अन्त करके देश मे शक्तिशाली केन्द्रीय शासन अथवा पाण्डवो का राजसूय यज्ञ रच कर उनके हाथो मे शासन की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सार्वभौम सत्ता सौंपना था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होने जिस कूटनीति से काम लिया उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। नीति के व्यवहार मे वे कूटनीतिज्ञ चाणक्य से भी आगे हैं। उस पर भी उनको "धर्मावतार" मानने का यही अर्थ है कि उनका कूटनीति का यह व्यवहार धर्म के प्रतिकूल नही था। गीता का अन्तिम श्लोक सजय के मुख से कहलाया गया है और उसको सारी गीता का निचोड कहा जा सकना है। वह यह है कि —

"यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर. ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।"

इसका सीधा और साफ अर्थ यह है कि जहाँ श्रीकृष्ण सरीखे धर्म के प्रवक्ता अथवा व्याख्याता हैं और अपने धनुप रूपी नीति से यथावत् काम लेने वाले अर्जुन सरीखे नीतिवान हैं, वहाँ श्री, विजय, विभूति और अचल नीति निश्चित रूप से रहती हैं, ऐसा मेरा मत है।

इसी भाव को उपनिषद मे इन शब्दो मे कहा गया है —

अग्रतश्च चत्वारिवेद पृष्ठतः सशरं धनु·
इद क्षत्रम् इद क्षात्रम् शापादपि शरादपि।

प्राचीन आप्त वचनो की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण करने मे जो खीचतान अथवा वितडावाद किया जाता है उसमे हम नही पडना चाहते। गीता मे जिस प्रकार योगेश्वर शब्द से धर्म अथवा धार्मिक भावना और धनुर्धर शब्द से नीति अथवा व्यवहार अपेक्षित है, ठीक उसी प्रकार इस उद्धरण मे 'चारो वेद' धर्म के और 'सशर धनु' नीति के प्रतीक हैं। यह कहा गया है कि अपने सम्मुख चारो वेद, अर्थात धर्म और पीठ पर तीर कमान अर्थात् नीति रखनी चाहिए। चारो वेद अर्थात् धर्म ब्राह्मण का और तीर कमान अर्थात् नीति क्षत्रिय का कर्म है, परन्तु मनुष्य को शाप और शर अर्थात् धर्म और नीति दोनो से ही काम लेना चाहिए। इस प्रकार दोनो से काम लेने का मनुष्य को आदेश दिया गया है। गीता के उपदेश का भी यही सार अथवा निचोड है।

गीता के सम्बन्ध मे एक और प्रश्न विचारणीय है। सारी गीता मे श्रीकृष्ण ने अपने लिए अह, मैं, मया, आत्मान आदि शब्दो का जो प्रयोग किया है उससे मूढ-भावना के कारण उनको ईश्वर का अवतार मानकर सर्व साधारण की पहुँच से परे बता दिया जाता है। गीता के अनुसार यह सर्वथा निराधार और कपोल-कल्पना है। गीता का उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गुरुभाव अथवा पितृभाव से दिया है। उसमे अपने लिए इन शब्दो का प्रयोग करना स्वाभाविक है। अर्जुन मे आत्म-विश्वास जागृत किये विना श्रीकृष्ण के लिए उस व्यामोह को दूर कर सकना सम्भव नही था। पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य के सामने अपने लिए ऐसी ही भाषा का प्रयोग करता है और इसी से वह उस पर छा जाता है। जिस प्रकार अर्जुन का सारा सन्देह, अज्ञान और मोह नष्ट हो गया उसी प्रकार गीता के हर मुमुक्षु पाठक का हो सकता है। यह गीता की एक विशेषता है। इसी कारण ५ हजार वर्षो के वाद आज भी उसका सौन्दर्य, आकर्षण, महत्व और उपयोगिता वैसी ही बनी हुई है। हर स्थिति, प्रसग तथा अवसर पर पथ प्रदर्शन करने की क्षमता उसमे विद्यमान है।

गीता की दृष्टि बहुत व्यापक है। वह व्यक्ति और समष्टि दोनो के प्रति समन्वयात्मक है। आत्मा के रूप मे परमात्मा को सर्व व्यापक मानकर मनुष्य मात्र के प्रति समान दृष्टि को जागृत करके गीता मे समष्टि धर्म का प्रतिपादन किया गया है और श्रीकृष्ण अपने को उस समष्टि धर्म के प्रतीक के रूप मे उपस्थित करके विश्वात्म स्वरूप को प्रगट करते हैं। इसलिए वे अर्जुन को व्यक्तिवाद से ऊपर उठाकर उसके सम्मुख समष्टि धर्म को स्पष्ट करना चाहते है और उसके लिए ही उन्होने अपने लिए "अह" आदि शब्दो का और अर्जुन के लिये "त्वा" आदि का प्रयोग किया। "मामेक शरण व्रज" का अभिप्राय यही है कि हे अर्जुन! तू व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर मानव के विश्वात्म रूप को समझ कर उसमे अपने को समा दे। गीता की यह भावना समाजवाद अथवा साम्यवाद का एक सुन्दर एव उत्कृष्ट रूप उपस्थित करती है, जिसमे व्यक्ति समष्टि के अभ्युदय के लिए उस पर अपने को न्योछावर कर देता है। धर्म और नीति के सदुपयोग का यही प्रयोजन है।

गीता मे प्रतिपादित श्रीकृष्ण का उपदेष्टा का वडप्पन यदि उनके उत्कृष्ट धार्मिक रूप को सर्व-साधारण के सम्मुख उपस्थित करता है तो उनका कर्तव्यनिष्ठ जीवन एक नीति कुशल नेता का उज्ज्वल रूप प्रकट करता है। नृशस दैत्यो व असुरो, कस व जरासन्ध सरीखे अन्यायी माण्डलिक राजाओ और महाभारत की लडाई मे द्रोण, कर्ण दु शासन तथा शिशुपाल सरीखे विपक्षियो का अन्त करने मे श्रीकृष्ण ने जिस छल कपट से काम लिया, उससे साधारण जन की दृष्टि मे उनका सारा धार्मिक स्वरूप लुप्त हो जाना चाहिए। द्रोण की हत्या के लिए "अश्वत्थामा हत नरो वा कुंजरो वा" की नीति वाक्य के प्रयोग के लिए धर्मराज युधिष्ठिर को भी सहमत कर लिया गया है और यह नीति वाक्य एक कहावत वन गया है। विपक्ष की कोई भी हत्या ऐसी नही है जिसमे नीति अथवा चतुराई से काम नही लिया गया। गीता की दृष्टि मे चतुराई और विवेक वुद्धि से स्थिति, प्रसग या अवसर के अनुसार काम करना और अपने प्रयोजन व उद्देश्यो को पूरा करना ही नीति है। अन्यथा श्रीकृष्ण को कौरवो के दरवार मे द्रोपदी का चीर वढाने, पाण्डवो की रक्षा के लिये लाक्षागृह और कौरवो के भरमाने के लिये माया भवन वनवाने, पाण्डवो के लिए पाँच गाँव की माँग उपस्थित करने, महाभारत की सारी लडाई मे केवल सारथी वने रहने और धृतराष्ट्र के सम्मुख भीम की लोहे की मूर्ति प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही होनी चाहिए थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण के उपदेश तथा जीवन के व्यवहार मे सर्वत्र धर्म और नीति का जो सुन्दर समन्वय पाया जाता है, वह हम सव के लिए ग्राह्य और अनुकरणीय है। किसी भी वात को वावा वाक्य अथवा पत्थर की लकीर मान कर अपने विवेक तथा वुद्धि पर ताला लगा देना गीता के सर्वथा प्रतिकूल है। गीता मे वुद्धियोग अर्थात् विवेक व वुद्धि से काम लेने पर विशेष जोर दिया गया है। जो इससे काम नही लेता तथा समत्व भावना को त्यागकर व्यक्तिगत फल की आकाक्षा मे लीन रहता है उसको कृपण कहा गया है।

वुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥

अर्थात् समत्व वुद्धियुक्त पुरुप ही सुकृत और दुष्कृत व पाप और पुण्य से ऊपर उठ सकता है। उसी के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए, क्योकि इस समत्व वुद्धि योग को ही कर्मों मे चतुरता माना गया है साराश यह हैं कि वुद्धि एव विवेक अथवा वुद्धियोग के विना समत्व योग की भी साधना नही की जा सकती। धर्म सिद्धान्तो एवं आदशो का प्रतिपादन करता है और नीति उनके अनुसार किये जाने वाले व्यवहार को निश्चित करती है। दोनो को मिलाने वाली है वुद्धि। वुद्धि व विवेक से यह निश्चित किया जाता है कि किस विशेप अवसर, विशेप प्रसग, विशेष व्यक्ति अथवा विशेप पक्ष के साथ किसी सिद्धान्त वा आदर्श का किस रूप मे प्रयोग किया जाना चाहिये। इसीलिए समत्व योग की साधना धर्म और नीति के विना नही की जा सकती।

का राजनीतिक दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो वे एक अत्यन्त चतुर एव कुशल कूटनीतिज्ञ कहे जा सकते हैं। कूटनीतिज्ञ राजदूत के कर्त्तव्य कर्म को निभाने मे वे अत्यन्त निपुण थे। पांडवो ने जहाँ भी कही नीति को भुला कर मूर्खता से काम लिया वहाँ सदा ही श्रीकृष्ण ने नीतिपूर्ण चतुराई से काम लेकर उनकी लाज बचाई और उनकी रक्षा की। उनकी इस चतुराई को यदि अधर्म माना जाय तो श्रीकृष्ण का धर्म सस्थापन के लिए बार-बार जन्म लेने का दावा सत्य की कसौटी पर पूरा नही उतर सकता। श्रीकृष्ण के जीवन का लक्ष्य माण्डलिक राजाओ का अन्त करके देश मे शक्तिशाली केन्द्रीय शासन अथवा पाण्डवो का राजसूय यज्ञ रच कर उनके हाथो मे शासन की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सार्वभौम सत्ता सौंपना था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने जिस कूटनीति से काम लिया उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। नीति के व्यवहार मे वे कूटनीतिज्ञ चाणक्य से भी आगे हैं। उस पर भी उनको "धर्मावतार" मानने का यही अर्थ है कि उनका कूटनीति का यह व्यवहार धर्म के प्रतिकूल नही था। गीता का अन्तिम श्लोक सजय के मुख से कहलाया गया है और उसको सारी गीता का निचोड कहा जा सकना है। वह यह है कि —

"यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर ।
तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।"

इसका सीधा और साफ अर्थ यह है कि जहाँ श्रीकृष्ण सरीखे धर्म के प्रवक्ता अथवा व्याख्याता हैं और अपने धनुप रूपी नीति से यथावत् काम लेने वाले अर्जुन सरीखे नीतिवान हैं, वहाँ श्री, विजय, विभूति और अचल नीति निश्चित रूप से रहती हैं, ऐसा मेरा मत है।

इसी भाव को उपनिषद मे इन शब्दो मे कहा गया है —

अग्रतश्च चत्वारिवेद पृष्ठतः सशरं धनु
इदं क्षत्रम् इद क्षात्रम् शापादपि शरादपि।

प्राचीन आप्त वचनो की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण करने मे जो खीचतान अथवा वितडावाद किया जाता है उसमे हम नही पडना चाहते। गीता मे जिस प्रकार योगेश्वर शब्द से धर्म अथवा धार्मिक भावना और धनुर्धर शब्द से नीति अथवा व्यवहार अपेक्षित है, ठीक उसी प्रकार इस उद्धरण मे 'चारो वेद' धर्म के और 'सशर धनु' नीति के प्रतीक हैं। यह कहा गया है कि अपने सम्मुख चारो वेद, अर्थात धर्म और पीठ पर तीर कमान अर्थात् नीति रखनी चाहिए। चारो वेद अर्थात् धर्म ब्राह्मण का और तीर कमान अर्थात् नीति क्षत्रिय का कर्म है, परन्तु मनुष्य को शाप और शर अर्थात् धर्म और नीति दोनो से ही काम लेना चाहिए। इस प्रकार दोनो से काम लेने का मनुष्य को आदेश दिया गया है। गीता के उपदेश का भी यही सार अथवा निचोड है।

गीता के सम्बन्ध मे एक और प्रश्न विचारणीय है। सारी गीता मे श्रीकृष्ण ने अपने लिए अह, मैं, मया, आत्मान आदि शब्दो का जो प्रयोग किया है उससे मूढ-भावना के कारण उनको ईश्वर का अवतार मानकर सर्व साधारण की पहुँच से परे वता दिया जाता है। गीता के अनुसार यह सर्वथा निराधार और कपोल-कल्पना है। गीता का उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गुरुभाव अथवा पितृभाव से दिया है। उसमे अपने लिए इन शब्दो का प्रयोग करना स्वाभाविक है। अर्जुन मे आत्म-विश्वास जागृत किये विना श्रीकृष्ण के लिए उस व्यामोह को दूर कर सकना सम्भव नही था। पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य के सामने अपने लिए ऐसी ही भाषा का प्रयोग करता है और इसी मे वह उस पर छा जाता है। जिस प्रकार अर्जुन का सारा सन्देह, अज्ञान और मोह नष्ट हो गया उसी प्रकार गीता के हर मुमुक्षु पाठक का हो सकता है। यह गीता की एक विशेपता है। इसी कारण ५ हजार वर्षो के वाद आज भी उसका सौन्दर्य, आकर्षण, महत्व और उपयोगिता वैसी ही वनी हुई है। हर स्थिति, प्रसग तथा अवसर पर पथ प्रदर्शन करने की क्षमता उसमे विद्यमान है।

समभाव साधना

[लेखक श्रीयुत अगर चन्द जी नाहटा]

भारतीय जीवन, दर्शन और सस्कृति मे समभाव साधना को प्रमुख स्थान प्राप्त है। आध्यात्म दृष्टि से उसका महत्त्व और भी अधिक है। ब्राह्मण और श्रमण भारतीय सस्कृति की दो मुख्य शाखाएँ हैं और दोनो मे साम्यभाव साधना को एक सरीखा महत्व प्राप्त है। मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य परमात्म-दर्शन अथवा कैवल्य की प्राप्ति कहा गया है। उसके लिए राग द्वेष आदि द्वन्द्वो पर विजय पाकर समभाव साधना को आवश्यक ठहराया गया है। समत्व योग गीता का सार है। उसमे स्पष्ट शब्दो मे यह कहा गया है कि विद्या विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाडाल मे पडित अर्थात् आत्मज्ञानी समदर्शी होते है। श्रमण सस्कृति मे अहिंसा की दृष्टि से हाथी और चीटी तथा प्राणिमात्र को समान माना गया है और किसी भी जीव के प्रति हिंसा की भावना क्षम्य नही है।

सयोग और वियोग को समभाव की साधना मे सबसे अधिक बाधक बताया गया है, क्योकि सयोग से अनुकूल और वियोग से प्रतिकूल अनुभूति होने के कारण मनुष्य सहसा ही अपना संतुलन खो बैठता है और सतुलन खोने का अर्थ है समभाव साधना से विचलित होना।

गीता के चौदहवे अध्याय के २४ और २५ श्लोक मे ठीक ही कहा गया है कि—

समदु.खसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः ॥२४॥
मानापमानयो स्तुल्यस्तुल्यो मित्रा रिपक्षयो.।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥२५॥

इसी प्रकार जैन योगीराट् आनन्दघन ने कहा है कि—

"मान अपमाने चित्त सम गणे, सम गणे कनक पाषाण रे।
वन्दक निन्दक सममणे, इस्योहोय तुं जावरे ॥६॥
सर्वजग जन्तुने समगणे, गणे तृण मणिभाव रे।
मुक्ति ससार बेहुसमगणे, मुणेभव जलनिधि नाव रे ॥१०॥

योग वाशिष्ट आदि मे भी अनेक उदाहरण देकर समभाव के महत्व को प्रगट किया गया है। चारवाक और वाममार्ग के सिवाय सब धर्मों मे समभाव का महत्व स्वीकार किया गया है। जैन धर्म सबसे अधिक निवृत्ति-परक है। जैन धर्म की निवृत्ति और योगदर्शन की एकाग्रता मे कोई अन्तर नही है। दोनो व्यक्ति को समभावी होने के लिए प्रेरित करते हैं। दोनो का अभिप्राय यह है कि संयोग और वियोग तथा अनुकूलता एव प्रतिकूलता मे मानव को सदा ही समबुद्धि रहना चाहिए। इसी प्रकार जीवन मरण के प्रति भी समदृष्टि रखनी आवश्यक है। आत्मा को नित्य और शरीर को मरण धर्मा होने से अनित्य मानने वाला जन्म मरण के प्रति समभाव रख सकता है। सृष्टि के प्रवाह के लिए जन्म मरण नदी के प्रवाह के दो किनारो के समान हैं।

ममत्व और भेद की भावना समभाव की साधना मे बहुत बडी बाधा है। उनको दूर करने के दो उपाय हैं। एक यह कि "मैं" और "मेरा" की सकीर्णता से ऊपर उठा जाय और दूसरा यह कि ममत्व के दायरे को इतना फैलाया जाय कि वह समत्व या समभाव मे विलीन हो जाय। जन्म मरण के समान अन्य विरोधी

गीता के इस धर्म और नीति से काम लेने वाला व्यक्ति ही जीवन रूपी कुरुक्षेत्र मे विजय श्री और विभूति दोनो का निश्चित रूप से सपादन करना है। अभ्युदय की प्राप्ति का यह सुनिश्चित मार्ग है।

अन्त मे दो और बातो का उल्लेख करना आवश्यक है। एक यह कि श्रीकृष्ण को जो लोग "अवतारी" महापुरुष मानते हैं, वे उनके मानव जीवन को भी लोकोत्तर मानकर उनकी हर बात को अंध श्रद्धा से देखते हैं। यहाँ अवतारवाद के सत्य अथवा मिथ्या होने की चर्चा हम नही करना चाहते किन्तु इतना ही कहना चाहते हैं कि अवतार लेने के बाद भी यदि कोई महापुरुष लोकोत्तर बना रहता है तो उसका मानव जीवन धारण करना निरर्थक हो जाता है, क्योकि फिर वह सर्वसाधारण के लिये अनुकरणीय अथवा आदर्श नही बन सकता। उसमे मानव जीवन की भावनाओ, निर्बलताओ, कमियो और कमजोरियो का होना आवश्यक इस लिए हो जाता है कि वह उनके द्वारा ही सर्वसाधारण के लिये आकर्षक बनकर उनके सम्मुख अपने जीवन की घटनाओ द्वारा ऐसे उदाहरण उपस्थित करता है जिनका अनुकरण सहज मे किया जा सकता है। उनको उनकी कमियाँ, कमजोरियाँ अथवा निर्बलतायें मानकर उनका उपहास नही किया जाना चाहिए, अपितु उनके परिणामो पर गम्भीरता से विचार करते हुए उनसे समुचित शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि अग्नि परीक्षा के बाद भी राम ने अपने अतर्द्वन्द्व के कारण सीता का परित्याग कर दिया अथवा किसी के बहकावे मे आकर मुनि शृग का गला केवल इसलिए काट दिया कि शूद्र होने के कारण उसको तपस्या करने का अधिकार नही था तो उनके ऐसे कृत्य अनुकरणीय नही हो सकते। यदि देश के विभाजन के बाद हिन्दुओ ने साधारण से सदेह पर राम की तरह अपनी पत्नियो, माताओ, बहनो अथवा कन्याओ का परित्याग कर दिया होता तो कैसी भीषण परिस्थिति पैदा हो गई होती? यदि शृग की तरह समस्त हरिजनो को अपनी प्रगति, उन्नति एव विकास करने से रोक दिया जाय तो हिन्दू समाज का पतन होने मे कुछ भी समय न लगे? राम और श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष अपने मानव जीवन मे उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनो प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि हम उत्कृष्ट उदाहरणो से स्वीकारात्मक और निकृष्ट उदाहरणो से निषेधात्मक आचरण करना सीखें। यही तो उनके अवतारी मानव जीवन का प्रयोजन है। परिणामो पर विचार किये बिना किसी का भी अंधानुकरण करना गीता की भावना के सर्वथा विपरीत है। गीता मे तो वेदो तक को "त्रैगुण्य विषया" तथा वैदिक कर्मकाडो को 'भोगेश्वर्य' प्रधान बताकर उनको भी त्याज्य कहा गया है। गीता किसी भी प्रकार की रूढिगत अथवा परम्परागत सकीर्णता के सर्वथा विपरीत है। धर्म और नीति दोनो ही के सम्बन्ध मे उसका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और व्यापक है।

दूसरी बात गीता की एक और विशेषता है जो कि सबसे अधिक उत्कृष्ट है। सारा उपदेश करने के बाद श्री कृष्ण अर्जुन को अट्ठारहवें अध्याय के ६३वें श्लोक मे यह कहते हैं कि—"यह गूढ से भी अति गूढ ज्ञान मैंने तुझको कहा है।" इस रहस्ययुक्त ज्ञान पर सम्पूर्ण तथा अच्छी प्रकार से विचार करने के बाद जैसी तेरी इच्छा हो वैसा तू कर?" क्या कोई भी धर्माभिमानी पुरुष अथवा महापुरुष अपने श्रोताओ को उसके उपदेश को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने की ऐसी स्वतत्रता दे सकता है? देखते मे यह आता है कि धर्म के सम्बन्ध मे भी साम, दाम, दण्ड भेद से काम लिया जाता है। अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ और दूसरे धर्मों को त्याज्य बताकर भेदभाव से काम लिया जाता है, लेकिन गीता मे ऐसा नही किया गया है। गीता विचार स्वातन्त्र्य का कैसा सुन्दर उत्कृष्ट उदाहरण है? गीता मे जिस धर्म का उपदेश दिया गया है, उस पर आचरण करना या न करना श्रोता अथवा पाठक की इच्छा पर छोड दिया गया है। यह उदार और व्यापक दृष्टि गीता की अपनी ही विशेपता है। इसी कारण उसका जीवन दर्शन सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वाधिक व्यावहारिक है।

सर्व धर्म परित्याग

[लेखक प्रो० हबीबुर रहमान शास्त्री, भू०पू० प्राध्यापक—संस्कृत, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़]

[इस लेख के विद्वान लेखक उत्तर प्रदेश के निवासी शास्त्रीजी का जन्म लखीमपुर खीरी के एक अठकोहना में १६६० में हुआ। कानपुर, अलीगढ और लाहौर के ओरियेन्टल कॉलेज में आपको शिक्षा हुई, जिससे आपने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया। १६२३ से १६४८ तक आप अलीगढ विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर रहे। संस्कृत और वेदान्त में आपकी विशेष अभिरुचि है। ईशोपनिषद पर आपने "तत्वार्थ बोध" नाम से एक सुन्दर टीका लिखी है।]

श्री गीता के अध्याय १८ श्लोक ६६ मे कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा है कि "तू सब धर्मों को छोड कर मुझ एक की शरण मे आ जा, मैं तुझे समस्त पापो से मुक्त कर दूंगा, सोच मत कर" इस श्लोक का भाव सामान्य जनों को अत्यन्त आश्चर्य मे डाल देता है, कारण कि उनके हृदय मे यह विश्वास दृढ रूप से अकित हो रहा है कि मोक्ष धर्म ही से होता है तथा शास्त्रो मे भी धर्म की वहुत प्रशसा की गई है अत. उक्त जनो को इससे आश्चर्य होना ही चाहिये परतु विचार दृष्टि से देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत श्रीकृष्ण जी का सर्व धर्म परित्याग रूपी वचन नितान्त सत्य है। इस सारगर्भित वाक्य को समझने के लिये निम्नलिखित वातो पर ध्यान देना आवश्यक है :—

१. वन्धन क्या है ?

२ मोक्ष किसे कहते हैं ?

३. धर्म का क्या प्रयोजन है तथा उसकी सिद्धि किसी व्यापक धर्म द्वारा होती है या साम्प्रदायिक धर्मों से ?

४ सर्व धर्म परित्याग पूर्वक कृष्ण रूपधारी विश्वात्मा की शरण लेने से मोक्ष क्यो हो जाता है ?

सख्या एक (वन्धन क्या है) के सम्वन्ध मे मुझे यह प्रदर्शित करना है कि वेदान्त आदि शास्त्रो मे इस वात का पूर्ण विवेचन किया गया है कि अखण्ड आनन्द स्वरूप, अपरिमित परमात्मा अपनी माया से काल्पनिक जीव वनकर समस्त सासारिक शरीरो मे कल्पित तादात्म्य (ध्यानस्थ अभेद भाव) के द्वारा 'प्रविष्ट हो गया है अर्थात् परमात्मा का शरीर मे प्रवेश ऐसा नही है जैसे कि कोई भौतिक पदार्थ दूसरे भौतिक पदार्थ मे प्रवेश कर जाता है। साराश यह है कि यह प्रवेश योग शक्ति या तप पर निर्भर है और इसीलिये तैत्तिरीय उपनिषद् मे कहा गया है" —²परमात्मा ने तप (योगमाया) किया" उसने तप करके यह जो कुछ है सव पैदा कर दिया" उसको पैदा करके उसी (नाम रूपो) मे प्रविष्ट हो गया। इस सम्वन्ध मे लौकिक दृष्टान्त यह है कि जैसे रस्सी को सर्प समझने वाले व्यक्ति की चित्त शक्ति भ्रम रूपी सर्प के शरीर का जामा ओढ कर उसमे इस प्रकार से प्रविष्ट हो जाती है कि जव तक भ्रम दूर न हो जाय वह इस असत् ज्ञान से वाहर नही निकल सकता, उसी तरह परमात्मा अपने ईश्वरीय सकल्प और प्रवल कल्पना (ध्यानात्मक तप) से समस्त नाम रूपो मे प्रवेश कर गया है, भेद केवल इतना है कि उक्त व्यक्ति रस्सी को भ्रम से परवश होकर सांप समझता है, इस कारण भ्रम को उसकी शक्ति नही कह

१—तत् सृष्ट्वा तदेवाऽनुप्राविशद् (तैत्तिरीय उपनिषद्)

२—सतपो अतप्यत्। स तपस्तपत्वा इदं सर्वं असृजत् (तैत्तिरीय-उपनिषद्)

सकते परतु ईश्वर जान बूझ कर (स्वतन्त्रता पूर्वक) अपने सकल्प से माया द्वारा सृष्टि रूपी लीला करता है, इसलिये माया उसकी शक्ति कहलाती है। इस स्थान पर तार्किक लोगो के हृदय मे यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि वेदान्त के उक्त सिद्धान्तानुसार आत्मा जीवरूप होकर शरीर मे क्यो फँसा और कैसे फँसा ? क्यो का उत्तर यह है कि आत्मा ने माया कल्पित इस ससार रूपी नाटक की रचना केवल इसलिये की है कि उसका कृत्रिम अश (जीव) शरीर द्वारा विशुद्ध कर्म करके देवताओ से भी अधिक ऊँचा उठ कर अपने विस्मृत आत्मस्वरूप को पुन प्राप्त कर ले क्योकि प्रकाश की अवस्था से अन्धकार मे आकर ग्रस्त हो जाने के पश्चात् पुन प्रकाशात्मक हो जाने मे कुछ और ही आनन्द मिलता है जो केवल प्रकाश ही प्रकाश मे रहने से कभी भी नही मिल सकता—देखिये किसी भी शक्ति (पावर) के बल्व को यदि दिन मे जलाया जाय तो उसमे वह आनन्द और चमत्कार नही प्राप्त हो सकता जो रात्रि(अधेरे)मे जलाने पर अनुभव किया जाता है, इसी तरह आत्म तत्त्व के माया (अन्धकार) क्षेत्र मे आकर ससारी हो जाने के पश्चात् पुन अपने चमत्कृत स्वरूप की प्राप्ति मे अत्यन्त आनन्द मिलता है। इसी आनन्द अथवा लीलात्मक रमण के कारण अपरिच्छिन्न सत्ता अर्थात् परमात्मा परिच्छिन्न (जीवात्मा) हो कर शरीर से ससक्त हो गया है जैसा कि ब्रह्मसूत्र के सूत्र "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्"— मे जगत् रचना को लीला ही कहा गया है, तथा सूफी सतो का भी सृष्टि के बारे मे यही सिद्धान्त है कि वह तमाशा अर्थात् लीला रूप ही है, जैसा कि कहा गया है[1] "मेरा यार पूर्ण मायिकता के साथ खुद ही तमाशा है और खुद ही तमाशाई (तमाशा देखने वाला)" शाह अब्दुलहूद्दूस गगोही का कथन है[2] मायावी की तरह अग रक्षा की आस्तीन मुंह पर डालकर अपने अहभाव के साथ हाट (बाजार) की ओर तमाशे मे आया। पुन वसन्त ऋतुओ मे विकसित पुष्प और समतल मैदानो मे वाटिका के रूप मे प्रकट हुआ, फिर बुलबुलो का जामा ओढ फूलो के वियोग मे चहचहाता हुआ (करुणनाद करता हुआ) प्रादुर्भूत हुआ। मसूर के अनलहक रूपी नाद और उसकी फांसी का मौलिक आधार क्या था ? तू ने ही खुद अनलहक[3] कहा और तू ही फांसी पर चढा। कोई मस्त महानुभाव और भी खुले रूप मे कहते हैं—"मैं अनलहक नही कह रहा हूँ, यार कहता है कि कह दें। दूसरे सन्त ने कहा है[4] जबकि दर्शन (जीव बनकर अपने को देखने) की स्वाभाविक प्रीति ने दामन (वस्त्र का छोर) पकड लिया तो अपरिमित तत्व परिच्छिन्नता (शरीदादि) की कैद (बन्धन) मे फस गया। इस सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना चाहिए कि चाहे भ्रम से किसी वस्तु को कुछ का कुछ समझ लिया जावे या वेदान्त के अनुसार सामाधिक कल्पना द्वारा किसी को अपना स्वरूप निश्चित कर लिया जाये, दोनो अवस्थाओ मे जिससे नाता जुड जायेगा, उसके प्रभाव का समझने या निश्चय करने वाले पर पडना आवश्यक है, अत जिस प्रकार रस्सी को सर्प समझने मे समझने वाले मे भय, कम्प आदि उत्पन्न हो जाते हैं ऐसे ही जब आत्मा ने अपने को शरीर निश्चित कर लिया तो शरीर की समस्त

१—यारे मन बा कमाले रानाई—खुद तमाशा व खुद तमाशाई।

२—आस्तीं बररू कशीदी हम्चू मकाराम दी।
बा खुदी खुद दर तमाशा सूए बाजाराम दी॥

३—दर बहारा गुल शुदी दर सहन गुलजार आमदी।
बादे जा बुलबुल शुदी वा नालये जार आमदी॥
शोरे मसूर अजकुजाओं दारे मसूर अज कुजा।
खुद जदी बागे अनाल्हक बर सरे दारामदी॥
मन नमी गोयम अनलहक यारमी गोयद बिगो।

४—चूँ शुद हुम्बे नजारा दामनगीर—गश्त मुतलक बदामे कैद असीर।

त्रुटियाँ और दोष आत्मा मे प्रतीत होने लगते है और वह अपने को असीम के बदले ससीम शाश्वत के बदले नश्वर, निरन्तर आनद स्वरूप के स्थान मे क्षणिक और नाशवान सुखो का अभिलाषी अनुभव करते लगता है तथा अपनी आकाशवत् व्यापकता विस्मृत करके केवल विशेष शरीर की अन्धी कोठरी मे बन्द हो जाता है। यह बन्द होना तथा अखण्ड आनन्द और सर्व शक्तिमत्ता आदि गुणो की स्मृति से वियुक्त होकर इन कष्ट साध्य, और तुच्छ विषय वासनाओ के सुख को वास्तविक सुख समझ लेना और भी महाबन्धन है। इस सम्बन्ध मे यह जानना आवश्यक है कि परमात्मा का जीव के रूप मे आना केवल कल्पित लीला के लिये स्वप्नवत् अवास्तविक होता है अत इससे उसमे किसी तरह का दोषारोपण नही हो सकता, जैसे कि किसी स्वप्नदर्शक को स्वप्न मे जेल हो जाये तो उसके अवास्तविक होने के कारण यह कोई नही कह सकता कि उसे वास्तव मे जेलखाना हो गया है। कैसे फँसा ? का उत्तर सक्षेप मे तो ऊपर आ चुका है और हम लिख चुके है कि परमात्मा अपने कल्पित तादात्म्य द्वारा शरीर के बन्धन मे स्वय आया है। परन्तु फिर भी इस गूढ विषय (तादात्म्य भाव) को हृदयगम करने के लिये एक स्पष्ट विवेचन की आवश्यकता है, अत निवेदन है कि हम प्रकट कर चुके हैं कि आत्मा शरीर मे केवल इसलिये फँसा है कि उसके द्वारा अच्छे कर्म करके देवताओ से भी ऊँचा उठकर अपने विस्मृत रूप को पुन प्राप्त कर ले, अत अपनी उच्चता और विस्मृत स्वरूप से पुन मिलने का अभिलाषी जीव शरीर का प्रेमी हो गया कारण कि जिस वस्तु से किसी की उन्नति (लाभ) होती है उससे प्रेम हो ही जाता है तथा प्रकृति का यह भी नियम है कि उक्त लाभ, जितना उत्तम और दिव्य होता है, प्रेमी का प्रेम भी उतना ही उत्कृष्ट हो जाता है और स्पष्ट है कि अपने अखण्ड आनन्द स्वरूप से पुन मिलन से अधिक आनन्दप्रद कोई भी पदार्थ नही है, अत. शरीर के साथ जीव का प्रेम अपनी अन्तिम अवस्था (पूर्णासक्ति) तक पहुँच गया तथा इस अवस्था का अनिवार्य परिणाम यह है कि प्रेमी का चित्त प्रियतम के अतिरिक्त अन्य समस्त सासारिक वासनाओ (चित्तवृत्तियो) से शून्य होकर सर्वथा उसी मे समा जाय क्योकि पूर्णासक्ति का अभिप्राय ही यह है कि प्रेमी के चित मे अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिये पूर्ण अभिलाषा अर्थात् आकाक्षा उत्पन्न होजाय और आकाक्षा उस समय तक पूर्ण आकाक्षा नही कही जा सकती, जब तक कि चित्त पूर्ण रूप से एकाग्र होकर अपनी सम्पूर्ण ध्यान शक्ति केवल एक ही ध्येय मे न लगा दे और जब पूर्ण ध्यान एक ही ध्येय मे लग गया तो उसमे प्रियतम के अतिरिक्त और किसी पदार्थ के लिये स्थान ही कहाँ रहा ? अत यह कथन नितान्त सत्य है कि पूर्णानुराग मे प्रेमी का चित्त प्रियतम के अतिरिक्त समस्त सासारिक वृत्तियो से शून्य हो जाता है, जैसा कि अरबी की कहावत है—[१] "पूर्ण शक्ति एक देदीप्यमान अग्नि है, जो प्रियतम के अतिरिक्त और समस्त पदार्थों को भस्म कर देती है" इस वाक्य से भी स्पष्ट होता है।[२] योगदर्शन भी कहता है कि जैसे बिल्लौर मणि अपने समीप स्थित वस्तु से प्रभावित होकर उसी के रंग रूप मे रग जाती है, उसी तरह वह चित्त जो ससार और तदगत् पदार्थों से शून्य होकर स्वच्छ हो जाता है, जिस वस्तु की ओर ध्यान देता है उसी के रूप में ढल जाता है। फारसी साहित्य मे भी इसी अवस्था का चित्र चित्रित किया गया है—फारसी के प्रसिद्ध कवि खुसरो का कथन है[३] मैं तू हो गया और तू मैं"। मैं शरीर हूँ तो तू उसकी जान। इसलिये कि कोई यह न कहे कि तू और है और मैं और "साराश यह है कि प्रेमोद्रेक मे जीवात्मा शरीर के तादाम्य भाव मे डूबकर न केवल शारीरिक गुणो से विशिष्ट हो गया है, अपितु अपने को

१—अलइश्को नारुन् यह रुको मासिवलमहबूब।

२—क्षीण वृत्ते रभिजातस्य इव मणे गृहीत ग्रहण गाह्येपु तत्स्थ तदञ्जनता समापत्ति ।

३—मन् तो शुदम् तो मन् शुदीमन् तन शुदम् तो जा शुदी।
ता कस्न गोयद बादज़ी मन् दीगरम तो दीगरी॥

शरीर ही समझने लगा है। यही कारण है कि चोट तो शरीर के लगती है और हाय करता है मैं शब्द वाच्य जीवात्मा। यदि दोनों एक न हो गये होते तो शरीर की चोट से जीवात्मा हाय क्यो करता, क्योकि उसके लिये तो गीता मे कहा गया है कि "इसको हथियार[1] काट नही सकते और अग्नि जला नही सकती इत्यादि। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय प्रमाणन्वेषी जन गर्ग-सहिता लिखित यह रहस्यमयी घटना भी पढ सकते हैं कि गर्म दूध तो पियें श्री राधिका जी और छाले पड़ें महाराज कृष्ण के चरणो मे। इससे अधिक प्रेमात्मक तादात्म्य भाव और क्या हो सकता है। अत स्पष्ट हो जाता है कि अखण्ड आत्मा ही, प्रेमाधिक्य के कारण देह से ससक्त होकर उसी मे वन्द (फँस) हो गया है।

अब संख्या २ (मोक्ष किसे कहते हैं) पर विचार करने की आवश्यकता है। हम प्रकट कर चुके हैं कि अखण्ड आनन्द स्वरूप आत्मा का ध्यान रूपी तप के द्वारा भौतिक शरीर मे आना और शारीरिक कामनाओ पर आसक्त होकर अवास्तविक विषयानन्द मे फँस जाना बन्धन है, अत इस बन्धन का विच्छिन्न हो जाना ही मोक्ष है, क्योकि जब बन्धन का कारण (शरीर और तद्‌गत वासनाओ का सम्बन्ध) जाता रहेगा तो उसका कार्य (बन्धन) कैसे रह सकता है ? तथा बन्धन का न रहना ही मोक्ष है, अत वेदान्त का यह वाक्य निता त सत्य है कि"[2] "विपयानन्द से छुटकारा पाना मोक्ष है तथा विषयो मे रस लेना बन्धन है" इस स्थान पर किसी को यह शका हो सकती है कि विपयानन्द से छुटकारा पाना सम्भव भी है या नही। इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि शास्त्र ने इस बात का निर्णय कर दिया है कि विपयो मे जो आनन्द प्रतीत होता है वह वस्तुत विषयो मे नही होता है अपितु उपर्युक्त आत्मानन्द अर्थात् स्वरूपानन्द ही का प्रतिबिम्ब होता है, जैसा कि अद्वैतसिद्धि[3] मे निर्धारित किया गया है—विषय सुख भी स्वरूप सुख से पृथक् नही है (क्योकि विषय प्राप्ति के समय अन्तर्मुखी मन मे स्वरूप ही के सुख का प्रतिविम्ब पडता है जैसे कि सामने रखे हुये दर्पण मे अपने मुख का।) "वृहदारण्यक उपनिषद मे है—"[4] यही परमात्मा का परम आनन्द है अन्य प्राणी इसी की मात्रा से जीवित है" पचदशी का सिद्धान्त है—'विपयानन्द ब्रह्मानन्द का अश है, विपय प्राप्ति (माया ग्रस्त जीव के लिये) केवल उस आनन्द का द्वार मात्र है, श्रुति ने भी विपयानन्द को ब्रह्मानन्द का अश ही गाया है। ब्रह्मानन्द को परम आनन्द इस कारण कहा गया है कि वह अखण्ड और एक रसात्मक (परिवर्तन रहित) है तथा दूसरे प्राणी इसी की मात्रा भोगते हैं। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि विपयो मे कोई आनन्द नही है, केवल उनमे प्रतिविम्वित आशिक ब्रह्मानन्द ही को लोग विषयानन्द समझने लगते हैं, अत जिस पर यह भेद खुल गया उसके प्रेम की ग्रन्थि शरीर और शारीरिक भावो से मुक्त होकर वास्तविक प्रियतम के साथ लग जाती है और यही आशय है विपयानन्द से छुटकारा पाने या मुक्त हो जाने का तथा यही अवस्था वेदान्त मे विदेह या केवल्य मोक्ष के नाम से वोली जाती है और सूफी सन्त इसी को "फना" की पदवी कहते हैं। इसी ब्रह्मभाव मे स्थित ज्ञानी, देह सम्बन्धी समस्त सुखो से विरक्त होकर केवल ईश्वर दर्शन मे मग्न रहता है जैसा कि श्री शेख सादी का कथन है—

---

१. नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक इत्यादि

२ मोक्षो विपय वैराग्य बन्धो वैपयि कोरस
विपसुखमपि स्वरूप सुखान्नातिरिच्यते विपय प्राप्तौ सत्यामन्तर्मुखे मनसि स्वरूप सुखस्यैव प्रतिविम्वनात् स्वाभिमुखे दर्पणे मुख प्रतिविम्ववत्।

३ एपोऽस्य परमानन्द एतस्यै वान्दस्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति।

४ अथात्रविपयानन्दो ब्रह्मानन्दाश रूप भाक्। निरुप्यते द्वार भूतस्तदशत्व श्रुतिर्जगौ।
एपोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डैक रसात्मक।
अन्यानि भूतान्ये तस्य मात्रामेवोव भुन्जे।

"[1]तू अपनी आँखो से प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी न देख, जो कुछ देखे उसे उसी के प्रादुर्भाव का दर्पण जान"

दूसरे महात्मा उक्त अवस्था मे पहुँच कर कहते हैं "[2]जब वेरंगी और वे सूरती (निराकारता) समस्त रगो (रगीनियो) की जड हैं तो ऐ मन। तू भी वे सूई (दिक शून्यता) की ओर चल, क्योंकि यही मार्ग किसी (प्रियतम) की ओर जाता है।"

स्वरूप को भुलाकर शरीर को आपा समझने के पश्चात् पुन भीतरी आकर्षण द्वारा स्वरूप को ओर चलने की अभिलाषा को स्पष्ट करते हुए हजरत मुजीव ने कहा है—"मुजीव उसने छुपकर किया तुझको जाहिर, वही तुझसे "वदला" लिया चाहता है।"

साराश यह कि सासारिक पदार्थ कल्पित होने के कारण कृत्रिम मात्र हैं, इसलिये इनको सत्य न मान कर स्वप्नवत् असत्य ही समझना चाहिये और असत्य समझने से यह लाभ होगा कि समझने वाले के हृदय मे इन से गहरी प्रीति नही हो सकती, जैसे कि जागने के पश्चात् प्रिय स्वाप्निक पदार्थो मे भी प्रीति नही रहती, अपितु असत्य समझने के कारण लोग उन्हे भूल भी शीघ्र ही जाते है और जव सासारिक पदार्थों की प्रीति हृदय मे न रही तो वह मृत्यु के समय याद भी नही हो सकती और मोक्ष के लिए इसी की आवश्यकता है कि मरण काल मे किसी भी सांसारिक पदार्थ की याद न आये जैसा कि गीता अध्याय ८ श्लोक ६ मे स्पष्ट किया गया है—

"[3]अन्तकाल मे जीवात्मा जिस जिस भाव का चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग करता है, उस भाव से भावित पुरुष सदा उस स्मृत भाव ही को प्राप्त होता है।"

साराश यह कि मरणकाल मे सांसारिक पदार्थों की याद न आनी चाहिये नही तो यह पदार्थ उक्त भावना द्वारा जीव पर अपना ही रग चढाकर उसे मोक्ष से वचित करके ससार ही की ओर खीच लाते हैं, अतः स्पष्ट हो गया कि मोक्ष की प्राप्ति इस असत्य वहुता को कल्पित खेल या लीला समझ कर इसके अन्तस्तल मे व्यापक रूप से स्थित एक अखण्ड विश्वात्मा ही को सत्य मानने पर निर्भर है। इसीलिए सूफी लोग कहते हैं तुम[4] मरने से पहले (वैज्ञानिक मृत्यु द्वारा) मर जाओ "अर्थात् शरीर पतन से पहले तुम कल्पित ससार तथा अपने वनावटी आपा को असत्य समझकर अखण्ड विश्वात्मा मे लीन हो जाओ, जैसा कि श्री शाह तालिव हुसेन ने दीवान जामेजम मे उपदेश किया है :

कूद पड़ वहरे[5] फना[6] मे गर है कुछ हिम्मत मुजीव, डूव जाये याकि होवे पार होनी हो सो हो।

तथा स्वामी रामतीर्थ का भी शेर है—

तू[7] स्वय ही अपने आपा का आच्छादक हो गया है अत. ए मन। तू वीच से हट जा और मुझे अपने स्वरूप मे आने दे।

---

१. तो ज चश्माने खुद मवीं जुज दोस्त-हरकि वनी विदाकि मजहरे ओस्त।
२. वेरंगिवो वे सूरती आमद च् अस्ले रंग हा-ऐ सूय वेसूई दिला ईनस्त रह सूये कसे।
३. यं य वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
सं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
४. मूतू कव्ल अन्तमूतू
५. समुद्र
६. वैज्ञानिक मृत्यु (विदेहत्व)
७. तो खुद हिजावे खुदी ऐ दिल अज मियां वरखेज

अब सख्या तीन (धर्म के प्रयोजन) पर विचार किया जाता है। इस सम्बन्ध मे सबसे प्रथम धर्म शब्द के अर्थ पर ध्यान देने की आवश्यकता है। धर्म उसको कहते हैं जो ससार रूपी नदी मे वहते हुए को पकड लेता है, अर्थात् पूर्वोक्त कल्पित पदार्थों और तद्गत वासनाओ को कल्पित न समझ कर उसमे फस कर सासारिकता की ओर वह कर जाते हुए मनुष्य को अपने विस्मृत स्वरूप (आत्म क्षेत्र) मे लाकर देह और वासनाओ के फन्दे से मुक्त करा देना ही, "धर्म को वहते हुए को पकड लेना है और इसी को शास्त्रो मे धर्म का प्रयोजन अर्थात् मोक्ष" कहा गया है। इस स्थान पर यह विवेचन भी आवश्यक है कि उक्त मोक्ष की प्राप्ति साम्प्रदायिक धर्मों द्वारा निश्चित है या वेदान्त सिद्धान्तानुसार ससार के सुखो को मृगतृष्णा के समान असत्य समझने के कारण उनमे आसक्ति छोडकर वास्तविक आनन्द स्वरूप अपने आत्मा के साथ नाता जोड लेने से। इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि मोक्ष के बारे मे हम सक्षिप्त रूप से लिख चुके हैं कि इसकी प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अन्तकाल मे ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की स्मृति न आनी चाहिए अर्थात् उस समय ऐहिक पदार्थों की याद आने से मोक्ष नही हो सकता, अत देखना यह है कि उक्त याद का न आना साम्प्रदायिक कर्मों द्वारा सम्भव है या वेदान्त के अनुसार स्वाप्निक सृष्टि की तरह सबको असत्य समझने से। विचार करने से प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक धर्मों मे यह शक्ति नही है कि उनके अनुसार कर्म करने से मृत्यु के समय सासारिक पदार्थ याद न आये क्योकि हम प्रदर्शित कर चुके हैं कि जिस पदार्थ को मनुष्य असत्य समझ लेता है उसमे प्रीति नही होती और प्रीति न होने के कारण अन्तकाल मे उसकी याद भी नही आती, परन्तु ससार को असत्य समझा देना साम्प्रदायिक धर्मों या उनके कर्मों का कार्य नही है, क्योकि समझने समझाने का साक्षात् सम्बन्ध ज्ञान से है न कि कर्मों से। अत साम्प्रदायिक धर्मों से परिमित फल के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति की सम्भावना अत्यन्त दुस्तर है, तथा सम्प्रदाय सम्बन्धी कर्म विधि निषेधात्मक होने के कारण प्राय दु ख से बचने और सुख प्राप्ति ही के लिये किये जाते हैं, अत ऐसे (सकाम) कर्मों से मोक्ष कैसे हो सकता है ? इसके अतिरिक्त गीता अध्याय ४ श्लोक १६ मे कहा गया है कि, "[1]क्या कर्म है और क्या अकर्म है (कर्माभाव) इसके समझने मे बडे-वडे बुद्धिमान भी मोहित हो चुके हैं "तथा श्लोक १८ मे है जो कर्म मे अकर्म और अकर्म मे कर्म देखता है, वह बुद्धिमान योगी और समस्त कर्म करने वाला है।"[2]

इन श्लोको से स्पष्ट है कि यदि "विना ज्ञान के मोक्ष नही होता" इत्यादि श्रुतियो पर ध्यान न देकर हठात् कर्म से मोक्ष मान भी लिया जाय तव भी कर्म के समझने मे इतने झगडे हैं कि उससे मोक्ष की निश्चित-प्राप्ति का निर्णय अति दुस्तर है। अत हमारी सम्मति मे साम्प्रदायिक धर्मों से मोक्ष का होना प्राय असम्भव ही है।

अब वेदान्त की ओर आइये—वेदान्त सिद्धान्तानुसार हम ऊपर प्रदर्शित कर चुके हैं कि मोक्ष की प्राप्ति इस कल्पित वहुता को असत्य समझने और उसके अन्तस्तल मे स्थित एक ही आत्मा को सत्य मानने पर निर्भर है, इसलिए जव ज्ञानी के लिए एक अखड आत्मा के अतिरिक्त और किसी पदार्थ की वास्तविक सत्ता ससार मे रही ही नही तो फिर वह फसेगा किस मे ? अर्थात् उसके लिए वन्धन कहाँ से आयेगा। इस कारण शाह नियाज अहमद साहव वरेलवी जीवन मुक्ति का अनुभव करते हुए कहते हैं —

जव[3] हर जगह खुदा है तो फिर मे कहा हूँ, अत मैं खुदा (परमात्मा) हूँ, खुदा हूँ, खुदा हूँ।

---

१ किं कर्म किम कर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता

२ कर्मण्यकर्म य पश्येदकर्मणि च कर्म य सवुद्धिमान्मनुष्येपु सयुक्त कृत्स्नकर्मकृत् ॥

३ चु हर जा हक्क वुवद मन् दर कुजायम।
खुदायम् मन् खुदायम् मन् खुदायम् ॥

मैं[1] खुदा का प्रकाश हूँ, परमात्मा का स्वरूप हूँ यद्यपि शरीर की दृष्टि से मिट्टी ही से प्रादुर्भूत हुआ हूँ। अभिप्राय यह है कि शारिरिक बन्धनो से मुक्त नित्य आनन्द स्वरूप सत्ता मैं ही हूँ।

हजरत मोहम्मद ने कहा है कि जिसने सच्चे हृदय से कह दिया कि "ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ विद्यमान नही है वह वैकुण्ठ (मोक्षावस्था) पहुँच गया।

मौलाना रूम के आध्यात्मिक गुरु श्री शम्स तवरेज ने इसी अद्वैत स्वरूप मोक्ष की मस्ती मे कहा है—

ऐ मुसलमानो ! क्या तदवीर की जाये, मैं तो अपने ही को नही जानता। मैं न पारसी हूँ न ईसाई, न यहूदी, न मुसलमान।

मैं न मिट्टी से उत्पन्न हुआ हूँ न हवा न पानी और न अग्नि से, न आदम न हव्वा और न फिरदौस नामी उच्चकोटि के वैकुण्ठ से।

जव मैंने द्वैत दृष्टि को द्वार (हृदयद्वार) से वाहर निकाल दिया तो दोनो लोको को एक देखा।[2]

मैं एक ही जानता एक ही देखता, एक ही ढूंढता और एक ही को वुलाता हूँ। समस्त उपनिपद ग्रन्थ भी अद्वैत ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन करते हैं जैसा कि श्वैताश्वेतर मे है—"जो लोग इस ब्रह्म को जान लेते हैं वह अमर हो जाते हैं"[3] अत पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि जीव और ब्रह्म वास्तव मे तो दोनो एक है, परन्तु जीव अपनी ब्रह्मावस्था को भुलाने के कारण उस राजा की तरह जीवत्व रूपी तुच्छता को प्राप्त हो गया है जो स्वप्नावस्था मे अपने को रक देखता है, अत. जव ज्ञान होने पर उसको अपने तात्विक स्वरूप का प्रत्यक्ष हो जाता है तो ससार के वन्वन से छूटकर अमर हो जाता है, जैसे कि पहले था ठीक उसी प्रकार। जैसे कि राजा जागने पर अपने को फिर राजा ही देखता है। इसी रहस्य की ओर सकेत करते हुए हजरत मुजीव ने जामे-जम मे कहा है—

न मोमिन न काफिर न मौला न वन्दा, मैं जैसा था वैसा ही हूँ और क्या है।

इस सम्वन्ध मे गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण मे मायावाद ही का प्रतिपादन किया है जैसे कि, "ईश्वर अश जीव अविनाशी अजर अनादि सहज सुख राशी" इत्यादि से स्पष्ट होता है।

श्री गीता भी अद्वैत ज्ञान ही से मोक्ष की प्राप्ति वताती है, जैसा कि उसके वहुत से श्लोको और विशेपत अ० ६ श्लोक १ तथा उसके सम्वन्धी श्लोक ४–५ से स्पष्ट होता है। मेरा अभिप्राय यह है कि जिस ज्ञान को श्लोक १ मे अशुभ से मुक्त कराने वाला कहा गया है, उसी का स्वरूप श्लोक ४-५ मे वर्णन किया गया है जो खुला हुआ अद्वैत है। इस कारण कि उक्त श्लोको का साराश यह है कि, यह समस्त संसार अव्यक्त चित् शक्ति (निराकार आत्मा) से व्याप्त हो रहा है अर्थात् उसी की ध्यान रूपी कल्पना (भावना) के आधार पर उसके ज्ञान मे टिक रहा है, क्योकि ध्यान ज्ञानमय तप या योगमाया के अतिरिक्त और कोई प्रकार ऐसा नही है, जिससे निराकार सत्ता इन भौतिक पदार्थों मे व्याप्त हो सके, इसलिए कि भौतिक व्यापकता मानने से व्याप्य के साथ व्यापक का भी भौतिक और परिमित होना आवश्यक हो जायगा और स्पष्ट है कि आत्मा न भौतिक है न

---

१. नूरे इलाहियम् मन् जाते खुदाइयम् मन्।
दर सूरतम् अगर्चे अल खाक आफरीदा॥

२. चे तदवीर ऐ मुसलमाना कि मन् खुदरा न मीदानम् न तर सावो यहूदीयम् न गवरस् नै मुसल्मानम्॥ न अज खाकम न अज वादम् न अज आवम् न अज आतिश न अज आदम् न अज हव्वा न अज फिरदौसे रिजवानम्। दुईरा चूंव वदर कारदम् यके दीदम् दो आलम् रा-यके दानम् यके वीनम् यके जोयम् यके खानम्॥

३. य एतद्विदु. अमृतास्ते भवन्ति।

परिमित। तथा श्लोक ५ मे प्रयुक्त भूत भावन (भूतो को भावना द्वारा उत्पन्न करने वाला) शब्द भी ससार को चैतन की भावना ही वता रहा है। जैसा कि उसके अर्थ से स्पष्ट है। इन्ही कारणो से शकर स्वामी ने श्लोक १ की भाष्य मे ज्ञान शब्द को अद्वैत ज्ञान ही मानकर अपने भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'सब कुछ वासुदेव ही है "आत्मा[२] ही यह सब जगत है, ब्रह्म[३] एक ही है, यही[४] ज्ञान साक्षात् रूप से मोक्ष का साधक है। अब मैं यह विवेचन भी करना चाहता हूँ कि गीता मे जो यज्ञ और निष्काम कर्म से मोक्ष बताया गया है वह मोक्ष भी अद्वैत मोक्ष से भिन्न नही है, अपितु उसी पर आश्रित होने के कारण उसके अन्तर्गत ही है, इसलिये कि "यज्ञ" व्यापक दिव्य शक्ति अर्थात विष्णु को कहते है, जैसा कि "यज्ञो वै विष्णु (यज्ञ विष्णु है) से सिद्ध है। अब यदि इस पर विचार किया जाय कि यज्ञ तो एक कर्म है, इस पर विष्णु शब्द क्यो बोला गया तो उचित उत्तर यही होगा कि विष्णुजी का काम समस्त ससार का पालन करना है और यज्ञ से भी परोपकार होने से ससार का पालन होता है अत विष्णु का काम करने से यज्ञ को भी विष्णु कहा गया है, तथा सच्चा परोपकार (शुद्ध यज्ञ) उस समय तक नही हो सकता जब तक कि जिसका उपकार किया जाय उसके साथ उपकारी के हृदय मे सच्ची (आन्तरिक) सहानुभूति न हो अर्थात् उपकारी, उपकार्य के दु ख और सुख से उसी तरह प्रभावित न हो जाय, जैसा कि अपने दु ख और सुख से होता है और यह बात उस समय तक सम्भव नही जब तक कि दोनो के बीच से भिन्नता का परदा उठ कर अभिन्नता के दर्शन न होने लगें और इस प्रतीति के दर्शन उसी समय हो सकते हैं जब मनुष्य अपने व्यक्तित्व सहित समस्त सासारिक नाम रूपो को अपने वास्तविक आपा (विश्वात्मा) ही से प्रादुर्भूत समझकर उनसे वैसी ही प्रीति करने लगे जैसी अपने से करता है अत स्पष्ट है कि अद्वैत ज्ञान के बिना शुद्ध यज्ञ की पूर्ति नही हो सकती।

इस सम्बन्ध मे यह भी विचारणीय है कि जब मनुष्य समस्त नाम रूपो को कल्पित होने के कारण असत्य समझ लेगा तो उसकी दृष्टि से सब भेद-भाव मिट जायेगा क्योकि जीवात्मा मे यह भेद शरीर के साथ अपनी एकता (तादाम्यभाव) मानने ही से पैदा हुआ था। अत जब शरीर न रहे तो उन पर आश्रित भेद-भाव कैसे टिक सकता है, इसीलिये जब अद्वैत ज्ञानानुसार कल्पित होने के कारण भेद मिट गया तो अपनी भिन्नता (वैयक्तिक सत्ता) का विश्वासी जीवात्मा अपने स्वत्व को भी असत्व समझकर अन्तस्तल मे विद्यमान अपने सत्य स्वरूप विश्वात्मा (परमात्मा) मे लीन हो जाता है और हम लिख चुके हैं सब रूप विश्वात्मा के ही रूप हैं इसलिये इस लीनता अर्थात् विश्वात्मा के साथ एकता के कारण जीवात्मा को भी सारे ससारी रूप अपने ही प्रतीत होने लगते हैं, परिणाम यह होता है कि वह समस्त प्राणियो के कार्यों मे उसी तरह हार्दिक सहयोग देने के लिए कटिबद्ध हो जाता है जैसे कि अपने कार्यो मे, तथा इस के इस साम्यभाव का प्रभाव जब दूसरे लोगो पर पडता है तो वह लोग भी इसके हितैषी हो जाते हैं, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—

पर हित बस जिनके मन माही, तिन कह जग दुर्लभ कछु नाहीं।

अत स्पष्ट हो जाता है कि उक्त एकता (अद्वैत) ही के द्वारा दोनो लोको मे सुख तथा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है और यही अद्वैतानुसारिणी शुद्ध समता अकृत्रिम और दृढ राष्ट्रीयता है।

मेरे विचार मे ऊपर के वर्णन मे जीवात्मा का परमात्मा मे उक्त रीति से लीन हो जाना (अपने

---

१ सर्वं वासुदेव इति
२ आत्मैवेद सर्वम् (बृहदारण्यक)
३ एकमेवाद्वितीयन् (छान्दोग्य)
४ इदनेव सम्यग्ज्ञान साक्षाद् मोक्ष प्राप्ति साधनम्।

व्यक्तित्व को मिटा देना) वही महायज्ञ है जिसके लिए गीता अ० ४ श्लोक २५ के उत्तरार्ध मे कहा गया है—कि दूसरे योगी ब्रह्म अग्नि मे आत्मा को आत्मा द्वारा हवन करते है तथा यह कि द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है तथा इसी अपनी सत्ता रूप आहुति के सम्बन्ध मे श्री शम्स तबरेज़ ने कहा है—

मैं अपनी इस सतारूपी गुदड़ी को अद्वैत की मधुशाला मे सैंकडो बार गिरवी रख चुका हूँ, मैं तो मधुशाला का नगा हूँ ॥

अब मैं निष्काम कर्मों (मोक्षप्रद कर्मों) से मोक्ष प्राप्ति के बारे मे भी निवेदन करना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि निष्काम कर्म बिना सर्व भूतात्मैक्य भाव (सब प्राणियो की एकता) की प्रतीति के नही हो सकते, कारण कि इनका आचरण केवल लोक सग्रहार्थ अर्थात् अपने आचरण रूप उपकार द्वारा लोगो को कुमार्ग से बचाने के लिए होता है और हम लिख चुके हैं कि शुद्ध उपकार बिना सब के साथ अपनी एकता के अनुभव के नही हो सकता, तथा यह अनुभव अद्वैत ज्ञान द्वारा विश्वात्मा मे लीनता ही से उत्पन्न होता है, जैसा कि ऊपर कहा गया है। अत अद्वैत ज्ञान पर आश्रित निष्काम कर्मो से मोक्ष की प्राप्ति भी अद्वैत ही पर निर्भर है।

अब केवल यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि अद्वैत ज्ञान से होने वाले मोक्ष के लिए कृष्णजी ने यह क्यो कहा कि "तू मुझ एक की शरण मे आजा मे तुझ को सब पापो से मुक्त कर दूंगा।" इस कथन का अभिप्राय यह है कि गीता आदि शास्त्रो के अनुसार कृष्णजी की वैयक्तिक सत्ता, व्यापक सत्ता अर्थात् विश्वात्मा मे लय होने के कारण विश्वात्मा ही हो गई थी, जिसका प्रमाण यह है कि श्रीकृष्ण ने समस्त गीता मे अपने को व्यापक आत्मा ही माना है न कि परिमित जीवात्मा या भौतिक शरीर। जैसा कि अ० १० श्लोक २० अर्थात् अहमात्मा गुडाकेश से—लेकर श्लोक ३९—यच्चापि सर्व भूताना बीजं तदहमर्जुन तक पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है तथा अद्वैत ज्ञान भी विश्वात्मा ही के यथार्थ ज्ञान का नाम है। अतः उसके द्वारा भेद-भाव मिट कर मोक्ष होने का अभिप्राय वस्तुत कृष्ण रूपी आत्मा ही के ज्ञान से मोक्ष होना है, इसलिये कृष्णजी की यह प्रतिज्ञा नितान्त सत्य है कि—सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच, अर्थात् साम्प्रदायिक धर्मों की परस्पर भिन्नता, उत्पादक, निर्मूल तथा सार रहित ऊपरी प्रथा से विशिष्ट धर्मो को छोडकर मेरे अद्वैत स्वरूप "समभाव" की शरण मे आ जा मैं तुझे सब पापो से मुक्त कर दूंगा।

जैसा कि कृष्णजी के पश्चात् मौलाना रूम और शेख सादी इत्यादि सूफी महात्माओ का भी सिद्धान्त है तथा मौलाना ने कहा है—"सैंकड़ो पुस्तको और पत्रो को अग्नि मे डालकर अपने मुख को दिलदार (वास्तविक प्रियतम) अर्थात् आत्मा की ओर मोड दे।"[1]

शेख सादी ने भी कहा है —

ऐ पडितमन्ये नादान विद्वान् तू अपनी विद्या पर घमड करता है (याद रख) कि तू परमात्मा से निकट नही है, प्रत्युत दूर है, जब तक कि एकाग्र चित्त के साथ एकत्व के अनुराग मे मग्न न होगा, उस समय तक तू इन कन्ज और "कुदूरी" नामी पुस्तको से खुदा को नही पहचान सकेगा।[2] इतिशम्।

---

१. सद् किताबो सद् वरक दर नार कुन, रूय खुदरा जानिबे दिलदार कुन।
२. ऐ आलिमें नादा तो दरी इल्म गुरूरी, नजदीक तो माबद नई बल्कि तो दूरी।
दर खिल्वते दिल तान कुनी उल्फते तौहीद, हकरान शिनासी तो अजी कन्जो कुदूरी ॥

The Activist Philosophy of Geeta

(*Shri S D. Kulkarni, Asst Collector, Poona*)

The orthodox section of the Indian community regards the teachings of the Bhagwad Geeta as emanating from the Lord Himself and would not admit any change in its traditional interpretation even so much as the dotting of "i"s and dashing of "t"s. It considers every word in the Lord's song as the revealed truth and would take cudgels to vindicate its stand At the other extreme is the section which regards the Geeta teachings something as the mumbo-jumbo defying any scientific treatment of its Philosophy The great mass of humanity in India stands bewildered and fails to find its moorings in any kind of a Philosophy of Life and leads a purposeless, hackneyed, humdrum life. The traditional poverty adds to its confusion and it is no wonder if it considers its very existence a veritable curse Is there any hope ?

A discerning citizen would immediately guess that my answer to this question is an emphatic YES The whole trouble arises because of the apathy of the intelligent section of the community in not interpreting the activist philosophy of Geeta, endowing our very existence, with a purpose, viz , the joy of living one's life fully and helping our brethren to live theirs the same way My endeavour here would be to prove that the philosophy of Geeta is not some mumbo-jumbo as the so called rationalists would put it or the Gospel of Inaction (सन्यास) and other worldliness as the orthodox would put it It is a code of conduct for the man as an individual member of the society and in his relationship towards Society

Geeta tells us that all the living creatures are the product of food and food is possible through rains The rains come because of sacrifice and sacrifice is another name for selfless action Such action is the very nature of the Immanent Self (ब्रह्म) The plain message contained in this couplet is the clarion call to everybody to be up and doing The God Himself through selfless action sets the world moving and causes rain It is the duty of man who has been endowed with necessary intelligence and equipment to pursue the same path of Selfless Action and increase the well being all around Everybody is called upon to do his utmost to add to the sum total of happiness of the Society by producing more and more This in other words means a call to produce in co-operation or perish

The Geeta's ideal कर्मयोगी is one who works hard according to his capacity for the good of the Society as a whole He does his duty but even so, as he does it

selflessly, he is said to act in Him (the Society). In Geeta, the Blessed Lord is exhorting अर्जुन and through him the whole mankind, to do his utmost for the Society (सर्वभूतहिते रत). He tells us that when such action is forthcoming, the Lord is pleased. The Geeta's Gospel of कर्म is not an individualistic, selfish action of attaining Liberation or Salvation with utter disregard to the Society in which the man lives. Liberation is not some state to be attained after death Liberation is that state of mind in which a man pursues selfless action according to his capacity for the good of the society undisturbed by the pleasure or pain caused to him consequent on such persuit of action.

This is plain enough but this ideal of Selfless action (निष्काम कर्म) placed by the Geeta before mankind has so far reached the man in a strange and peculiar garb The interpreters of the गीता like Shankaracharya, Dyaneshwar etc, apart from their emphasis on the Path of Knowledge or Path of Love towards the goal, namely, Liberation, have discussed this Life as the result of sin and consequently have enjoined on us to understand this worldly life as the one bundle of miseries or the cycle of sufferings. As a result, their idea of Liberation is to reach that stage wherein the Soul has not to suffer the miseries of this life again, *i.e*, to avoid Rebirth

Lokmanya Tilak, the modern Apostle of the Gospel of Selfless Action as preached by the Geeta, nevertheless accepts the Theory of Rebirth and Liberation as traditionally interpreted to us by the Acharyas before him The net result is the utter confusion in the mass mind as regards the purpose of life If the life is full of miseries and if the aim is Liberation, *i e*, to avoid the cycle of births and deaths, one is ordinarily impelled to ask the question why not attain that Liberation by concentrating on Him by renouncing this world In a world full of contradictions and dualities like the pleasure and pain, heat and cold, success and failure, is it not better to retire from this active life and think of God in seclusion ? Undisturbed selfless action as preached by Geeta, he argues, is well-nigh impossible for the man of the society and as compared to this, to retire into one's shell and think of God alone is much easier provided one is somehow able to get minimum food apart from clothing and shelter—as a सन्यासी would retire to a cave in a jungle wherein these things would be unnecessary.

These are legitimate questions which defy satisfactory and rationalistic answers The rationalistic mind, therefore, thinks of even selfless action for the attainment of traditional Liberation as the mumbo-jumbo of the confused mind

To my mind, this confusion arises because of our wrong view of life We regard this life as something, the result of our sins of commission and ommission in our previous life Naturally, we are taught to be prayerful to God and request Him to

Oh, Arjun ! that he is the real yogin who looks upon all My creations with the same feeling as he would look upon himself. Such a yogin even while he is engaged in all sorts of duties for the welfare of the society, can be considered to be acting in God alone (6·31-32). (Please mark the emphasis on performing one's duties for the welfare of the society.) Oh Bharat, please remember that I am the source of all creation and I am also its seed (14-3)."

The whole description given in the 16th and 17th chapters about good and bad people, about good food, good gift, etc , is the directive to men how to behave properly in this world. The whole conception of Hindu religion is based on good behaviour in this life. But this aspect is lost sight of and we have allowed ourselves to be enmeshed in the thinking of so-called things spiritual. This has blinded even the best brains of the society towards social good. We tolerate uncleanliness even at our places of worship, we tolerate poverty thinking that it is God's will We have allowed to develop in the masses a feeling of apathy towards collective good. Even dirty streets and dilapidated condition of houses in places of pilgrimage like Varanasi and Pandharpur do not rouse us to constructive and collective action.

From all this, it is amply clear that it is God's strong will to continue His creation, while it is man's desire to achieve Liberation, *i.e*, extinction of human species. Obviously, man cannot succeed against God's will. The only result will be, for the man to run after a mirage and come to utter grief and miss the goal of real Liberation, *i e.*, to serve by selfless action the mankind and lead it to greater and still greater heights, mental, moral and physical. God has given us power of reasoning and capacity to lead an organised social life, with this sole aim of ushering on this earth the co-operative commonwealth of man, wherein each individual is assured of every opportunity of bettering his worldly lot in a moral way. It is not God's will that His best representative on this earth, the man, should renounce the world the day he realises the utter futility of leading this worldly life (यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ।) This whole attitude of mind that this world is a dreadful place to live in and that this life is full of misery and the aim of man's span of life on this earth is to reach the state wherein further life on this earth becomes impossible, has arisen out of the misconception of the Theory of Liberation and Rebirth

The real understanding of the aim of life comes with the acceptance of the plain meaning of what God has said about this world and its inhabitants. Even Dyaneshwar has told us that this world is not an illusionery one. It is the manifestation of God Himself (चिद्विलास). In other words, the universe is God and nothing else. If Universe is God, then we all are part-God (अंशात्मक). Even the Advait Vedanta tells

liberate us from this result of sin, namely, the life How strange is our way of thinking ! If anybody does not get a son or a child, he would pray to God to give him one And what is this child, but the result of sin

I am afraid, we have not clearly understood the plain meaning of the couplet "अन्नाद भवन्ति भूतानि", etc , God's effort is to set this world in motion and to continue the motion and our effort is to stop this motion We are really working against God's will and so we are caught in the mess of self-created confusion Let us see what God has Himself said about this world and its inhabitants, animate and inanimate

"Oh Arjun ! this universe is created by My power under My direct superintendence With this object of Mine, the whole cycle of creation, animate and inanimate goes on uninterruptedly (9-10) Alongwith the creation, I also showed it the way of achieving commonwelfare, namely, by collective action (यज्ञ), (3-10). He who goes against this cycle of creation is a selfish rogue (3-16) A man should, therefore, do his appointed duty selflessly for the good of the society as a whole (3-17, 18-19) I have, in fact, nothing left for which I should strive, but in order that people should not misunderstand Me, I carry on My duties in a detached manner for the good of society (3-22) If I do not act in the manner I do, all the people would follow My Path and the whole creation would go to dogs and the creation would perish (3-24) " (Mark the Lord's desire throughout to continue His creation)

"Oh Arjun ! it is My custom to appear on this earth whenever I find that the demonical type of people rear their head and make life impossible for the good I destroy the wrong-doers (4-8) [This clearly expresses the anxiety of the Lord to establish moral order in this universe It does not talk of Liberation Whenever He talks of Liberation, the emphasis is on ending unhappiness accruing to the man due to his senseless attachment to property and the pleasure oft he senses According to the Lord, the perfect mental equipoise in whatever circumstances, pleasing or unpleasing, attained by the man is Liberation (मोक्ष)] I do my duty selflessly to uphold the moral order in the society Because of this, I am not disturbed by success or failure of My action (4-14) This is the Path followed by all those who are after मोक्ष I, therefore, enjoin on you to do the same (4-15) "

(This clearly shows that गीता considers this to be the quality of those who are after मोक्ष, namely, to strive to attain the state wherein selfless action is possible)

"He is really the happiest person who while on this earth, is able to conquer completely the unbrided desires of the senses Such a person alone is able to achieve Liberation (5-23-24) "

Here again, the emphasis is on mental happiness "I, therefore, tell you,

Oh, Arjun ! that he is the real yogin who looks upon all My creations with the same feeling as he would look upon himself. Such a yogin even while he is engaged in all sorts of duties for the welfare of the society, can be considered to be acting in God alone (6·31-32). (Please mark the emphasis on performing one's duties for the welfare of the society.) Oh Bharat, please remember that I am the source of all creation and I am also its seed (14-3)."

The whole description given in the 16th and 17th chapters about good and bad people, about good food, good gift, etc, is the directive to men how to behave properly in this world. The whole conception of Hindu religion is based on good behaviour in this life But this aspect is lost sight of and we have allowed ourselves to be enmeshed in the thinking of so-called things spiritual. This has blinded even the best brains of the society towards social good. We tolerate uncleanliness even at our places of worship, we tolerate poverty thinking that it is God's will We have allowed to develop in the masses a feeling of apathy towards collective good. Even dirty streets and dilapidated condition of houses in places of pilgrimage like Varanasi and Pandharpur do not rouse us to constructive and collective action.

From all this, it is amply clear that it is God's strong will to continue His creation, while it is man's desire to achieve Liberation, *i e*, extinction of human species. Obviously, man cannot succeed against God's will. The only result will be, for the man to run after a mirage and come to utter grief and miss the goal of real Liberation, *i e.*, to serve by selfless action the mankind and lead it to greater and still greater heights, mental, moral and physical. God has given us power of reasoning and capacity to lead an organised social life, with this sole aim of ushering on this earth the co-operative commonwealth of man, wherein each individual is assured of every opportunity of bettering his worldly lot in a moral way. It is not God's will that His best representative on this earth, the man, should renounce the world the day he realises the utter futility of leading this worldly life (यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ।) This whole attitude of mind that this world is a dreadful place to live in and that this life is full of misery and the aim of man's span of life on this earth is to reach the state wherein further life on this earth becomes impossible, has arisen out of the misconception of the Theory of Liberation and Rebirth.

The real understanding of the aim of life comes with the acceptance of the plain meaning of what God has said about this world and its inhabitants. Even Dyaneshwar has told us that this world is not an illusionery one. It is the manifestation of God Himself (चिद्विलास). In other words, the universe is God and nothing else. If Universe is God, then we all are part-God (अंशात्मक). Even the Advait Vedanta tells

us the same. How can that what is God—our life also is manifestation of God—be had in any sense ? If this is so, how can it be the aim of life to stop the cycle of births and deaths. Even श्रुति's tell us that this manifested world is the play of the God Himself. He has created this world for his pleasure (लोकवत्तु लीला कैवल्यम्) The aim is, therefore, to love life Love of life cannot be achieved in its true perspective unless one learns the art of doing selfless action for the good of society And good of society is nothing but bettering its wordly lot When the whole universe is God, it is logically proved that there is no other world like Heaven or Hell Other worldliness has, therefore, no meaning. While we are taught to love other worldliness utterly disregarding man's duty to his fellow beings, we are asked to know God, realise God (साक्षात्कार) without knowing what God is God is conceived in some abstract terms and we are asked to concentrate on this Abstract God The common and religious man who is interested in the pursuit of knowledge, knowing what man is, what is the purpose of his being on earth, etc , is caught in this purposeless passivity and the other so-called worldly man is engaged in the pursuit of his worship of his God, viz , the mammon even through immoral means

To achieve सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् in life is the purpose of life As Dr. Radhakrishnan has aptly put it the ideal of the devotee of Geeta is one in whom love is lighted up by knowledge and bursts forth into fierce desire to suffer for mankind Or, as the महाभारत Poet has put it, "Oh, ye man, follow the righteous path and you are sure to gain worldly goods and desires (धर्माद् अर्थश्च कामश्च)."

विचार क्रान्ति का रूप

[लेखक स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक, सत्यज्ञान निकेतन, ज्वालापुर, हरिद्वार]

आधुनिक युग मे क्रान्ति शब्द अपना एक विशेष आकर्षण रखता है। इसके उच्चारण से भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप लोगो के मन मे आते हैं। अधिकाश प्रजा तो इस शब्द से सामाजिक गडबड का चित्र अपने मन मे खीचने लग जाती है, कुछ इस प्रकार के व्यक्ति हैं जो क्रान्ति से रक्त रजित विद्रोह की तसवीरें अपने मस्तिष्क मे बनाने लगते है, कुछ ऐसे भी हैं जो क्रान्ति को प्रगतिशीलता का महान व्यापक क्षेत्र समझते हैं। और इससे नवीन प्रकार के सुधारो की आशाएँ अपने मन मे बाधने लगते हैं—सक्षेप मे यह शब्द भिन्न-भिन्न विचारको के लिये अलग-अलग उपक्रम पेश करता है।

ईसा की १६वी शताब्दी के मध्यभाग मे जब अपनी सस्कृति के फैलने के कारण यूरोप के शिक्षित समुदाय ने स्वतन्त्र सोचना सीखा और वे रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की जजीरो से मुक्त होने लगे तो उन्हे अपने

अपने राष्ट्रो के नागरिको की सामाजिक आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियो पर गम्भीरता से विचार करने का अवसर मिला और वह शताब्दि क्रान्ति की जननी वन गई। यो तो ससार के सव से वडे क्रान्तिकारी भगवान वुद्ध भारत मे उत्पन्न हुए और उन्होने पुरोहित वर्ग के विरुद्ध क्रान्ति की आवाज उठाई। उन्होने स्पष्ट तौर से कह दिया कि वे प्राचीनता को उसी सीमा तक मानेंगे जहाँ तक वह न्यायशीलता और सच्चरित्रता को समाज मे आगे वढाएगी। उन्होने घोपणा की कि यदि वेद निरपराध पशुओ के मारने की आज्ञा देते हैं तो वे उनके आदेश को कदापि नही मानेंगे। और यदि वेदो का ईश्वर समाज मे विभिन्नताएँ रखता है और एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर अत्याचार करने की शिक्षा देता है तो वे उस भगवान को मानने के लिये भी उद्यत नही हैं। उनकी इस घोपणा ने भारतवर्ष के संगठित समाज मे क्रान्ति उत्पन्न कर दी। वह युग था मस्तिष्क की स्वाधीनता का। भारतीय संस्कृति समाज के लिए विचार स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। इस कारण भगवान वुद्ध ने विना किसी सेना के उस अपनी क्रान्ति को, अपने भिक्षुओं के चरित्रवल के आधार पर सफल वनाया और उसका डंक सारे एशिया मे वज गया।

उन्ही आर्यो के वशज जव यूनान के टापुओ मे जाकर वसे तो वहाँ उनके वीच युग प्रवर्तक सत सुकरात ने जन्म लिया, जिसकी शिक्षाओ के कारण यूनान के उन टापुओ मे सत्य ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठा। यूनानियो की यह क्रान्ति पाश्चात्य जगत के लिये मगलमय सिद्ध हुई। प्लेटो और अरस्तू जैसे वैज्ञानिक शिक्षको ने अपने शिष्यो के मस्तिष्क को स्वतन्त्र कर दिया और विचार क्रान्ति की एक नीरोग विचारधारा पश्चिम की ओर वहने लगी। योरप के विश्वविद्यालयो मे इसी यूनानी सस्कृति के कारण अद्भुत जागृति पैदा हुई, और उस महाद्वीप की भावी उन्नति का कारण इसी यूनानी सस्कृति के इतिहास मे छिपा हुआ है।

यहाँ हम वर्तमान कालीन क्रान्ति की चर्चा करना चाहते है। लेकिन, पृष्टभूमि के तौर पर हमे यह वतलाना आवश्यक है कि रक्तरजित क्रान्तियो के पहले अहिंसा द्वारा जो क्रान्तियाँ विश्व मे लाई गईं उनकी तह मे कौन सा सिद्धान्त काम कर रहा था। वौद्धमठ मे पढने वाला यहूदी कुमार यीशू खीष्ट वहाँ से प्रेरणा पाकर जव अपनी जन्मभूमि जैरूसलम मे गया तो उसने अपने समाज के यहूदियो के सामने पुराने सभी पैगम्वरो के विरुद्ध अपना नवीन सन्देश (New Testament) सुनाया। उस सन्देश की उसको वडी कठोर कीमत चुकानी पडी। उसके अपने लोगो ने ही उसके विरुद्ध रोमन शासको के पास जाकर उनके कान भर दिये और यीशू खीष्ट वलिदान होकर हजरत ईसामसी के नाम से विश्व मे विख्यात होगये।

उन घटनाओ को शताब्दियाँ वीत गईं और वहुत सा पानी पुल के नीचे से निकल गया—वडे-वड़े विजेता आये। वे अपने हिंसक कुकृत्य करके चले गए। उनके समय में जो क्रान्तिया हुईं वे हिंसा से परिपूर्ण थी। क्रान्ति क्यों जन्म लेती है? इस प्रश्न के उत्तर मे हम एक उदाहरण देकर समझाते है। ऊपर जिन क्रान्तिकारियो का नाम हमने दिया है वे थे अहिंसावादी, किन्तु जिन क्रान्तिकारियो का जिक्र हम लोग आधुनिक इतिहास मे पढते है वे सव जवर्दस्त हिंसावादी थे। कार्लमार्क्स जर्मनी की प्रसिद्ध रियासत प्रशिया मे पैदा हुए थे। वहाँ पर उस समय मे राष्ट्रीयता के सूर्य का उदय हुआ था। जर्मन जाति उसके प्रकाश से पुलिकित होकर अपने को ही सव कुछ समझने लग गई थी। यहूदियो के साथ जर्मन शासक न्याय का वर्ताव नही करते थे। कार्लमार्क्स के मस्तिष्क मे उस अन्याय की भीषण प्रतिक्रिया शुरू हुई और उन्होंने राष्ट्रीयता के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयता की लहरो को पकडना प्रारम्भ कर दिया। जर्मनी छोडकर वे स्विटजरलैंड चले गये और वहाँ ही सोचते-सोचते उन्होने (Das Capital) अर्थात् पूंजी के आधार पर समाज मे कैसे-कैसे भयानक और विकृत विचार उत्पन्न हो जाते हैं उसकी मीमासा की। उनकी उस पुस्तक ने मजदूर समाज मे उथल-पुथल मचा दी। उस समय तक मजदूरो मे साम्प्रदायिकता का जोर था। वे मज़हव की दीवारो के कारण एक दूसरे के पास नही आ सकते थे।

जव कल कारखाने बने और सब प्रकार के मजदूर पेट की ज्वाला बुझाने के लिए गाँव छोडकर नगरो मे आने लगे तो उन्हे आपस मे मिलने वाला एक नया सीमेण्ट मिल गया। कार्लमार्क्स की पुस्तक ने उन पर जादू किया और वह किताव योरोप की सब भाषाओ मे अनूदित होकर मजदूरो के हाथ पड गई। शताब्दियो से सम्प्रदायो मे जकडे हुए वे मजदूर अन्तर्राष्ट्रीयता का अमृतपान कर अपने आपको धन्य मानने लगे।

हम यहाँ पर क्रान्ति का इतिहास नही लिख रहे हैं। हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि विचार क्रान्ति का रूप क्या है, क्रान्ति उसी व्यक्ति के मस्तिष्क मे उत्पन्न होती है जो उसके लिये अपना सर्वस्व होम कर देता है। जिसने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपना ही पेट पालना सीखा है वह नर पशु भला क्रान्ति के महत्त्व को क्या जाने ? शाक्य मुनि ने राजपाट छोड दिया, प्यारी लाडली स्त्री और एकमात्र पुत्र छोड दिया—अपना यह सब वलिदान करने से उन्हें क्रान्ति का मार्ग मिला—उनके ज्ञानचक्षु खुल गये—वे अपने उस समाज मे उन बुराइयो को देखने लगे जिन्हें संस्कृत के बडे २ विद्वान धुरन्धर पण्डित नही देख सके थे। विचार क्रान्ति का जीता जागता चित्र उस व्यक्ति के मस्तिष्क मे आकर उपस्थित होता है जो अपनी खुदी को भूल जाता है और केवल दूसरो के लिए जीना जानता है। ऐसे लोग द्वेषवश क्रान्ति नही किया करते। उनमे वदले की भावना नही होती। ऐसे परोपकारी व्यक्ति दूसरो के लिये हालाहल विष पी जाते हैं और ससार मे अमृत की वर्षा कर जाते हैं।

हम हैं आज ईसा की २०वी शताब्दि मे जब राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की गुत्थम-गुत्था हो रही हैं। जव विज्ञान ने देशो की दूरी को समाप्त कर हमे एक दूसरे के पास लाकर खडा कर दिया है—अब हम एक दूसरे को पहचानने लगे हैं—ईश्वर के चुने हुए पुत्र पुत्रियाँ कोई नही और ना उसने कोई विशेष ग्रन्थ अजील अथवा कुरान अपनी मोहर लगाकर हमारे लिये भेजा है। वह प्रभु सारे ससार के लिये विश्व ज्ञान देता है। और प्रत्येक स्त्री पुरुष के मस्तिष्क मे ज्ञान प्राप्ति के साधन जुटाता है। हम अपने पुरुषार्थ से उन साधनो की सहायता से अपने सामने खुली हुई प्रकृति की दिव्य पुस्तक से शिक्षाएँ ले सकते हैं और समयानुसार आवश्यकता के साधन जुटा सकते हैं। अन्तिम सच्चाई कोई नही है। कोई पैगम्बर रसूल और अवतार तुम्हे अन्तिम सचाई वताने नही आयेगा। हमे अपने अन्दर ही उस नवीनता को तलाश करना चाहिए जो हमारी मोक्षदायिनी है इसलिए विचार क्रान्ति का रूप उसी व्यक्ति को दिखाई दे सकता है, जिसने स्वतन्त्रता से विचार करना सीखा है। ईश्वरीय पुस्तको, पैगम्बरो, गुरुओ और अवतारो के खूँटो से बँधे हुए व्यक्ति कोल्हू के बैल की तरह उन्ही खूँटो के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं।

लीजिये एक नया उदाहरण। सन् १८५७ मे भारत के लोगो ने अग्रेजो के विरुद्ध शस्त्र विद्रोह किया, जिसे ब्रिटिश शासको ने वडी क्रूरता से खतम कर डाला और यह प्रण कर लिया कि हिन्दू मुसलमानो का सगठन कभी नही होने देंगे। शासन की उसी नीति के आधार पर सब वाइसरायो ने अपना शासन चलाया और भेद बुद्धि उत्पन्न कर सगठन की सब आशाएँ मिटा दी। तब उठे महात्मा गाँधी, उन्होने एक नया तरीका सगठन का निकाला और अपनी क्रान्ति का नया चक्र चलाया। अग्रेजी शासको के ये दो वडे जबर्दस्त हथियार—पुलिस और खुफिया पुलिस—महात्मागाधी ने इन दोनो को अपने वश मे कर लिया। उन्होने गुप्त काम करने की नीति को त्याग कर खुला जीवन वनाया और खुफिया पुलिस के सामने अपनी सब स्कीमे खुली रख देने की रीति अपनाई। यह था नवीन ढग और क्रान्ति का अद्भुत मार्ग। इसने अग्रेजो के दोनो हथियारो को निकम्मा कर दिया और वे अग्रेज शासक चकित हो कर उस लगोटवन्द नेता को देखने लगे। विना हथियारो के विना शस्त्रो से सुसज्जित फौज के उस महान क्रान्तिकारी वापू ने सन् १९४२ मे महान साम्राज्य के स्वामी अँगेजी शासको को यह कह दिया—Quit India—भारत त्याग कर चले जाओ। यह वह तिलस्म की छडी थी, जिसे देखकर सारी

दुनिया दंग रह गई। इसे कहते हैं विचार क्रान्ति और पाँच वर्षों के अन्दर जिस अँग्रेजी राज्य पर सूर्य-अस्त नही होता था वह भारत से निकल भागा। हम क्या अलफ लैला की कथा कह रहे हैं ? आने वाली सन्तानें तो इस इतिहास को पढकर दाँतो तले अँगुलियाँ दवायेंगी, परन्तु हम है उस क्रान्ति के गवाह। है न यह हमारा सौभाग्य ?

अतएव विचार क्रान्ति की महिमा को वही समझ सकता है जिसके मस्तिष्क मे से स्वार्थ विल्कुल निकल जाता है और जो निष्काम भाव से कर्मयोग का पथ पकडता है। यह यश प्राप्ति का मार्ग नही है, यह दुनिया को डराने धमकाने का रास्ता नही है, यह वडे-वडे नगरो और विश्वविद्यालयो को वमो से उडाने का पथ नही है, यह अपनी ईगो (खुदी) को मारने का मार्ग है। जव व्यक्ति अपनी इन्द्रियो के माया जाल से निकल जाता है जव मनोविकार उसको सताते नही, जव भोगविलास की चकाचौंध उसके मन को चचल नही करती, वह स्थित प्रज्ञ पुरुष जिसने अपने आपको वश मे कर लिया है, जो ईश्वर प्रविधान का मार्ग पकड कर उसके लिये पुष्प मालाएँ वनाने लग जाता है उस व्यक्ति को सत्य, शिव और सुन्दर निहाल कर देते हैं। उसकी सव गाँठें खुल जाती हैं। और विचार क्रान्ति का सच्चा स्वरूप उसे दिखाई देने लग जाता है। विचार क्रान्ति विनाश मे नही सुन्दर रचनात्मक कार्य मे है। ससार मे हम सव हालाहल विष फैला रहे हैं। राग द्वेष के वशीभूत होकर झगडे फसाद और युद्धो के वीज वो रहे हैं।

आइये, हम सव उस मगलमय शिव भगवान की तरह हालाहल विप पीना सीखें और उसके स्थान पर विचार क्रान्ति का सुन्दर कल्याणकारी रूप अपने जीवन मे दिखलाएँ तभी ससार का उत्थान हो सकता है। लेकिन—

हाँ, एक आवश्यक वात तो मैं भूल ही गया। मैंने अपने प्रेमी पाठको से यह निवेदन किया था कि आजकल मेरे अन्दर विचार क्रान्ति की भीषण लहरें उथल-पुथल मचा रही हैं और मैं उनके विपय मे दिन रात सोच मे पड़ा हुआ हूँ। वह मेरा मानसिक तूफान क्या है—इसे जरा विस्तार से सुनिये।

सन् १९०५ के अन्त मे मैं फिलिपाइन द्वीप समूह की राजधानी मनीला मे था। वहाँ पर मि० क्लिण्टन सी स्काट नाम के एक अमरीकन सज्जन से मेरी भेंट हुई। वे सरकार के शिक्षा विभाग मे हैड्क्लर्क थे। "मनीला टाइम्स" मे मेरा एक लेख छपने पर उन्होंने मुझे अपने घर वुलाया और आग्रह किया कि मे उनके पास रह कर उन्हें उपनिषदे पढ़ाऊँ। कुछ समय की वाकफीयत के वाद उन्होने मुझ से यह अनुरोध पूर्वक प्रस्ताव किया कि मैं देश की स्वाधीनता के प्रश्न को पीछे फेंक कर भारतीय सस्कृति के मिशन के प्रचार का काम उठा लूं और स्वामी विवेकानन्द जी की तरह अमरीका मे सगठित कार्य करूँ। इस पवित्र कार्य के लिये उनके पास काफी पैसा था और वे मेरी हर तरह से सहायता करने को तैयार थे। लेकिन मैं तो निकला था स्वतन्त्रता की खोज मे। इसलिए उनका प्रस्ताव मैंने ठुकरा दिया, और उन्होने मुझे कुछ महीनो के वाद अमरीका का टिकट कटा दिया।

युनाइटेड स्टेटस् आफ अमरीका मे अपनी पढाई समाप्त कर और वार्शिगटन स्टेट विश्वविद्यालय का स्नातक वन कर जव मैं निकला तो सीयेटल नगर के मि० एडवर्ड जेम्स ने मुझे यह सत् परामर्श दिया कि मैं न्यूयार्क की कोलम्विया यूनिवर्सिटी मैं जाकर डाक्टर की डिग्री प्राप्त करलूं। मैंने उनकी वात भी नही मानी, क्योंकि मुझे तो स्वतन्त्रता की तलाश थी, जिसे मैं अपने देश मे ले जाना चाहता था। अमरीका मे घूमता घामता २३०० मील पैदल यात्रा करता हुआ जव मे कार्नेगी के प्रसिद्ध नगर पिट्सवर्ग मे पहुचा तो वहाँ की वेदान्त सोसायटी ने मेरे व्याख्यान करवाये। वहाँ मेरी भेंट मि० हिल से हो गई। वे भी वडे धनी व्यक्ति थे। उन्होने भी मुझसे अमरीका मे रहने और वेदान्त का प्रचार करने की सलाह दी और आर्थिक सहायता देने का वचन

सन्त सुधारकों की कृति का मूल्य

[लेखक भारतीय इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान, प्रोफेसर जयचन्द्र जी विद्यालंकार]

भारतीय राष्ट्र का जीवन प्राचीनकाल मे चाहे जिन उतार-चढावो मे से गुजरता है, उन सब के बीच वह एक जिन्दा राष्ट्र का ही जीवन है। जीत-हार सब किसी की होती है, पर कोई जीवित राष्ट्र एक हार से पस्त होकर गिर नही जाता। वह फिर उठकर खोई भूमि को वापिस लेता या किसी और दिशा मे उसकी पूर्ति कर लेता है। भारतीय राष्ट्र की ठीक वैसी दशा हम समूचे प्राचीन काल मे अर्थात् आर्य राज्यों के उदय से लगभग ५३५ ई० तक पाते है। राज्य क्षेत्र मे, विज्ञान, वाड्मय, कला और दार्शनिक चिन्तन मे एक से दूसरे युग तक आते हुए लगातार किसी रफ्तार से प्रगति जारी रहती है।

इसके बाद कुछ अन्तर दिखाई देने लगता है। राज्यक्षेत्र का कोई अंश यदि एक बार छिनता है तो उसे वापस लेने की चेष्टा नही होती। बेशक, भूमि का कोई टुकडा छोड़ने से पहले डट कर लडा जाता है, पर एक बार छूटने पर वह प्राय वापस नही मिलता। जनता अपने सामूहिक राजनीतिक अधिकारो और कर्त्तव्यो के लिए पहले सी सजग नही रहती। इसी से छठी शताब्दी से गणराज्य मिट जाते है; शासन के निरंकुश होने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे जगने लगती है। कला मे सौन्दर्य जारी रहता है और कारीगरी के बड़े-बड़े चमत्कार करके दिखाए जाते हैं, पर उनमे गुप्त युग का सा ओज और सरलता दिखाई नही देती। विज्ञान और दर्शन मे विचार की प्रगति रुक जाती और पिछले विचारो के भाष्य और भाष्यो पर टीका करने मे ही बुद्धि का कौशल प्रकट होता है। धर्म मे अन्धविश्वास और ढोग घर बनाने लगते है। ९२० ई० तक यो थोडी भूमि खोने और थोड़ा ह्रास-ग्रस्त होने के बावजूद भारतीय राष्ट्र अपने स्थान पर डटे रहने की चेष्टा करता है।

पर संसार के इतिहास मे आगे बढना छोड कर कोई अपने स्थान पर टिका नही रह सकता। ९२० ई० के बाद से ह्रास की रफ्तार स्पष्ट बढ जाती है। ११९०-१३२५ ई० के बीच तो ऐसी दशा आ जाती है कि भारतीय राज्य एक एक ठोकर खाकर गिर पडते हैं, अथवा बिना कोई ठोकर लगे अपनी भीतरी जीर्णता से ही टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। समाज के आपसी बर्ताव मे संकीर्णता आ जाने से लगभग ११५० ई० से वह जात-पांत के अलग-अलग खानो मे टूटने लगता है। कला मे कोई नई प्रेरणा नही दिखाई देती, भोडापन और अश्लीलता भी आ जाती है।

इस पतन के कारणो पर हम विचार करते तो पाते हैं कि वे सर्वथा भीतरी हैं। महाराष्ट्र के जिस राजा रामदेव के राज्य पर चढाई कर अलाउद्दीन उसके भीतर २५० मील तक बेरोक टोक बढ जाता और फिर उसकी दुर्भेद्य राजधानी देवगिरि को दो दिन मे ले लेता है, उसके मन्त्री हेमाद्रि का लिखा ग्रन्थ चतुर्वर्ग चिन्तामणि प्राप्य है, जिसमे हिन्दुओ के धार्मिक, सामाजिक कर्त्तव्यो का व्यौरा है। उसी प्रकार के उसी शताब्दी के काशी और मिथिला के पण्डितों—नीलकण्ठ, कमलाकर भट्ट आदि—के ग्रन्थ भी प्राप्य हैं। इन ग्रन्थो मे हिन्दू धर्म का जो रूप है उसके अनुसार प्रत्येक नैष्ठिक हिन्दू को बरस भर मे लगभग २००० व्रत, पूजा, अनुष्ठान करने चाहिए— अर्थात् प्रतिदिन साढे पाँच। जिन राज्यो के सचालको का सारा ध्यान इन पूजाओं व्रतों पर लगा हो वे अपनी सीमाओ की रक्षा कैसे करते अथवा अपने राज्यों मे व्यवस्था कैसे रख सकते हैं? समाज का केवल धनी निठल्ला वर्ग ही ऐसे धर्म को निभा सकता था, और वह भी इस कारण कि जिनके खून-पसीने की कमाई पर वह ऐसा निठल्ला जीवन बिताता वे दबे हुए सब कुछ सहते हुए कोल्हू के बैलों की तरह श्रम करते जाते थे।

दिया। मैंने उन का प्रस्ताव भी नही माना, क्योकि मेरे मस्तिष्क मैं तो भारत की दासता दूर करने का सकल्प था और मैं उस पर दृढ था। इस प्रकार अमरीका मे मुझे बहुत से ऐसे अवसर मिले जो सासारिक दृष्टि से मेरे भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाले थे। जब मैं शिकागो विश्वविद्यालय मे पढता था तो मैंने बादशाह एडवर्ड की आधीनता त्याग कर अमरीका की नागरिकता के अधिकार प्राप्त किये थे। अमरीका का नागरिक बनकर मैं उस स्वतन्त्र देश मे बडे मजे से जीवन व्यतीत कर सकता था, लेकिन मैंने अपनी धुन को नही छोडा।

सन् १६११ के जौलाई मास मे मैं भारत लौट कर इलाहाबाद पहुच गया और लगा अपने सकल्प को पूरा करने। उन सब का वर्णन मैंने अपनी "स्वतन्त्रता की खोज मे" नामक पुस्तक मे किया है। अब यहाँ पर इस लेख मे मैंने उपरोक्त घटनाओ का वर्णन क्यो किया और उन शुभ अवसरो को हाथ से जाने देने की बातें क्यों लिखी ?

प्यारे पाठक, सन् १६४७ के अगस्त मास मे देश को वह स्वाधीनता मिल गई, जिसकी मुझे तडफ थी। आज १० वर्षो के बाद अपने सत्यज्ञान निकेतन की गुफा मे ज्वालापुर बैठा हुआ मैं अपने पिछले जीवन का सिहावलोकन कर रहा हु। मेरा मन कहता है कि यदि त् मि० स्काट अथवा मि० हिल के प्रस्ताव को मान लेता तो कितना अच्छा होता ? देश की वर्तमान दुर्दशा को देखकर मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है। आज के भारत-वासी कैसे स्वार्थी, कैसे लोभी, वचक और इन्द्रियो के गुलाम हैं। क्या इन्ही के लिए मैं स्वतन्त्रता की खोज करने अमरीका गया था ? मेरा अन्त करण कहता है कि सदियो की राजनीतिक गुलामी के कारण यह आर्य जाति डी जैनेरेटेड हो चुकी है। इसके समाज मे बडे भयकर निकम्मे पौदे उत्पन्न हो गये हैं जो नीरोग पौदो का भोजन चट कर जाते हैं। जब तक हम कुशल किसानो की तरह भारत रूपी खेत की निराई कर इन निकम्मे पौदो को उखाड नही फेंकेंगे, तब तक यह देश कदापि भी स्वाधीनता का आनन्द भोगने के योग्य नहीं बन सकता। अमरीकनो ने गाय की नसल को भी श्रेष्ठतम बनाकर अपने देश मे दूध की नदियाँ बहा दी है, लेकिन हम यहाँ पर दूध में पानी डालकर बेचते हैं। है न यह डूब मरने की बात ? यह भीषण क्राति की लहरें मेरे अन्दर उथल-पुथल मचा रही हैं। नेत्रहीन मैं अकेला अपनी गुफा मे बैठा हुआ अपने हाथ से भोजन बनाकर जीवन के दिन काट रहा हूँ। मैं किस प्रकार ऐसी क्रान्ति लाऊँ जो मेरा जीवनोद्देश्य सफल हो सके और भारतवासी अपनी स्वाधीनता के द्वारा सुख समृद्धि पा सकें। निकम्मे पौदो को उखाड फेंकने के लिये कोई महान् शक्तिशाली व्यक्ति चाहिये, जो हिंसा अहिंसा के पचडो से ऊपर उठ सके। जो गीता के शब्दो मे मृत्यु के रूप मे पुराने कपडे उतार कर नये कपडे पहनना सिखाता हो। ऐसा तत्वदर्शी महापुरुष ही इस पतित आर्य-जाति का पुनरुद्धार कर सकेगा, मैंने इस लेख में अपने हृदय की कसक देश वासियो के सामने रखी है और परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि इस करोडो की आबादी के देश मे कोई माई का लाल मेरी इस चीत्कार को सुने और इसे हृदयगम कर सच्ची स्वाधीनता लाने का प्रयत्न करे।

सन्त सुधारकों की कृति का मूल्य

[लेखक भारतीय इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान, प्रोफेसर जयचन्द्र जी विद्यालंकार]

भारतीय राष्ट्र का जीवन प्राचीनकाल मे चाहे जिन उतार-चढावो मे से गुजरता है, उन सब के बीच वह एक जिन्दा राष्ट्र का ही जीवन है। जीत-हार सब किसी की होती है, पर कोई जीवित राष्ट्र एक हार से पस्त होकर गिर नही जाता। वह फिर उठकर खोई भूमि को वापिस लेता या किसी और दिशा में उसकी पूर्ति कर लेता है। भारतीय राष्ट्र की ठीक वैसी दशा हम समूचे प्राचीन काल मे अर्थात् आर्य राज्यो के उदय से लगभग ५३५ ई० तक पाते है। राज्य क्षेत्र मे, विज्ञान, वाङ्मय, कला और दार्शनिक चिन्तन मे एक से दूसरे युग तक आते हुए लगातार किसी रफ्तार से प्रगति जारी रहती है।

इसके बाद कुछ अन्तर दिखाई देने लगता है। राज्यक्षेत्र का कोई अंश यदि एक बार छिनता है तो उसे वापस लेने की चेष्टा नही होती। बेशक, भूमि का कोई टुकडा छोडने से पहले डट कर लडा जाता है, पर एक बार छूटने पर वह प्राय वापस नही मिलता। जनता अपने सामूहिक राजनीतिक अधिकारो और कर्त्तव्यो के लिए पहले सी सजग नही रहती। इसी से छठी शताब्दी से गणराज्य मिट जाते हैं, शासन के निरंकुश होने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे जगने लगती है। कला मे सौन्दर्य जारी रहता है और कारीगरी के बडे-बडे चमत्कार करके दिखाए जाते हैं, पर उनमे गुप्त युग का सा ओज और सरलता दिखाई नही देती। विज्ञान और दर्शन मे विचार की प्रगति रुक जाती और पिछले विचारो के भाष्य और भाष्यो पर टीका करने मे ही बुद्धि का कौशल प्रकट होता है। धर्म मे अन्धविश्वास और ढोग घर बनाने लगते हैं। ९२० ई० तक यो थोडी भूमि खोने और थोडा ह्रास-ग्रस्त होने के बावजूद भारतीय राष्ट्र अपने स्थान पर डटे रहने की चेष्टा करता है।

पर ससार के इतिहास मे आगे बढना छोड कर कोई अपने स्थान पर टिका नही रह सकता। ९२० ई० के बाद से ह्रास की रफ्तार स्पष्ट बढ जाती है। ११९०-१३२५ ई० के बीच तो ऐसी दशा आ जाती है कि भारतीय राज्य एक एक ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, अथवा बिना कोई ठोकर लगे अपनी भीतरी जीर्णता से ही टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। समाज के आपसी वर्ताव मे संकीर्णता आ जाने से लगभग ११५० ई० से वह जात-पांत के अलग-अलग खानो मे टूटने लगता है। कला मे कोई नई प्रेरणा नही दिखाई देती, भोडापन और अश्लीलता भी आ जाती है।

इस पतन के कारणो पर हम विचार करते तो पाते हैं कि वे सर्वथा भीतरी हैं। महाराष्ट्र के जिस राजा रामदेव के राज्य पर चढ़ाई कर अलाउद्दीन उसके भीतर २५० मील तक बेरोक टोक बढ जाता और फिर उसकी दुर्भेद्य राजधानी देवगिरि को दो दिन मे ले लेता है, उसके मन्त्री हेमाद्रि का लिखा ग्रन्थ चतुर्वर्ग चिन्तामणि प्राप्य है, जिसमे हिन्दुओ के धार्मिक, सामाजिक कर्त्तव्यो का ब्यौरा है। उसी प्रकार के उसी शताब्दी के काशी और मिथिला के पण्डितों—नीलकण्ठ, कमलाकर भट्ट आदि—के ग्रन्थ भी प्राप्य हैं। इन ग्रन्थो मे हिन्दू धर्म का जो रूप है उसके अनुसार प्रत्येक नैष्ठिक हिन्दू को बरस भर मे लगभग २००० व्रत, पूजा, अनुष्ठान करने चाहिए—अर्थात् प्रतिदिन साढे पाँच। जिन राज्यो के सचालको का सारा ध्यान इन पूजाओं व्रतो पर लगा हो वे अपनी सीमाओ की रक्षा कैसे करते अथवा अपने राज्यो मे व्यवस्था कैसे रख सकते हैं? समाज का केवल धनी निठल्ला वर्ग ही ऐसे धर्म को निभा सकता था, और वह भी इस कारण कि जिनके खून-पसीने की कमाई पर वह ऐसा निठल्ला जीवन बिताता वे दबे हुए सब कष्ट सहते हुए कोल्हू के बैलों की तरह श्रम करते जाते थे।

जिम मलिक काफूर ने दक्खिन के सारे हिन्दू राज्यो को एक-एक ठोकर से तोड गिराया वह स्वय पहले हिन्दू अछूत था—घेड जात का जो गुजरात मे गाँवो के बाहर रहते और वर्तन माँजते हैं। वह हिन्दू रहता तो आयु भर वर्तन ही माँजता रहता, पर मुस्लिम बनने से उसकी महत्वाकाक्षा और सेना-सचालन की प्रतिभा जाग उठी और उसने दक्खिन भारत का नक्शा पलट दिया।

लगभग १३०० ई० से ही इस दशा के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगती है और इस मानसिक मकडी-जाले को साफ करने की चेष्टाएँ होने लगती हैं। जिन सुधारको की परम्परा ने इस कार्य को किया वे हमारे इतिहास मे सन्त कहलाते हैं। सन्तो ने जटिल क्रियाकलाप तथा घोर और अश्लील पूजाओ का स्थान भक्ति और हृदय की सरलता को दिया। भक्ति और हृदय की सरलता छोटे बडे सबके लिए एक समान साध्य थी, इसलिए धर्म के क्षेत्र मे उन्होंने ऊँचनीच को मिटाने का उपदेश दिया। इस धार्मिक, सशोधन की फलस्वरूप राजनीतिक सचेष्टता आपसे आप जग उठी—नामदेव और तुकाराम के प्रभाव से शिवाजी का उदय हुआ, गुरु नानक के साफ किए क्षेत्र मे गुरु गोविन्द सिंह का आविर्भाव हुआ। शिवाजी ने तेरहवी शताब्दी के हिन्दू राजाओ की तरह रक्षापरक लडाइयाँ नही लडी, प्रत्युत शून्य मे से नया राज्य खडा किया और उसे लगातार आगे बढाया। पुराने विरसे को बचाना मात्र नही, प्रत्युत नया राज्य बनाना और फैलाना उसका ध्येय रहा। महाराष्ट्र के इस पुनरुत्थान का अनुसरण बुन्देलखण्ड, व्रजभूमि, पजाब और नेपाल मे भी हुआ। भारत मे इस्लाम इस बीच बुझा कारतूस हो चुका था और रक्षापरक लडाइयाँ लड रहा था। १८वी शताब्दी मे यदि यूरोपीय शक्ति बीच मे आकर दखल न देती तो सारा भारत मराठो, सिक्खो, गोर्खालियो के राज्य मे समाता दिखाई दे रहा था। यह सब सन्तों के सुधारो से हुए पुनरुत्थान का फल था।

किन्तु इस पुनरुत्थान से प्रभावित भारतीय-शिवाजी, बाजीराव, छत्रसाल, गोविन्दसिंह और पृथ्वी-नारायण के वशज अग्रेजो के मुकाबले मे अपनी स्वतन्त्रता को क्यो नही बचा पाये ? यह पुनरुत्थान अपने ध्येय तक पहुँचते-पहुँचते क्यो पतन मे परिवर्तित हो गया—ऐसे घोर पतन और पराधीनता मे जैसे भारत ने पहले कभी न देखे थे ? यह हमारे इतिहास का सबसे बडा प्रश्न है। हमारी कमजोरी के इस पहलू पर प्रकाश डालने वाले अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं।

पश्चिमी-यूरोप के लोग नये समुद्री रास्ते से पहले पहल पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त मे भारत आये। उन्होंने शीघ्र ही भारत के समुद्र पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया, और एक शताब्दी बाद जब पुर्त-गालियो के इस एकाधिपत्य को आलेन्देजो (डचो) और अग्रेजो ने चुनौती देकर तोड दिया तब भारत के समुद्र में अराजकता छा गई जो डेढ सौ बरस जारी रही। जिस अवधि मे इन राष्ट्रो के डाकू हमारे समुद्र और बडी नदियो मे लगातार लूटमार, बलात्कार करते रहे जिसे भारत के शासक कभी रोक न सके। पश्चिमी यूरोप के लोगो के पास कौन-सी ऐसी शक्ति थी जिसके सामने अकबर और औरगजेब, शिवाजी और बाजीराव ने अपने को असहाय माना ? वे लोग जल-युद्ध की कला मे तथा तोपें बनाने और चलाने मे दक्ष थे, और उनकी इस दक्षता की धाक समूचे मुगल-मराठा युग मे भारत पर छाई रही। पर उस दक्षता की नीव क्या थी ? क्या उनके जहाज भारतीय जहाजो से बेहतर होते थे ? नही। इस बात की पडताल करने पर हम पाते हैं कि भारत के कारीगर भाप-बोट निकलने के पहले तक यूरोपियो से बेहतर जहाज बनाते थे जिन्हें यूरोप वाले भारत से खरीद ले जाते थे। तोपें बन्दूकें बनाने की ओर भी जब-जब भारतीय कारीगरो ने ध्यान दिया तब यूरोपीयो से बेहतर बना कर दिखाईं। किन्तु उन जहाजो और उन तोपो का उपयोग कर समुद्री युद्ध करने की कला मे यूरोप के लोग हम से कुछ आगे निकल गये थे। हम लोग यदि ध्यान देते तो कुछ ही वर्षों मे उस कला को सीख उनका मुकाबला कर सकते। पर भारत के नेताओ व शासन-सचालको ने इस ओर कभी ध्यान न दिया कि वो अपनी जल-सेना तैयार

कर लें, वे आँखें मूंदे हुए अपने को अशक्त मान लाछनाएँ सहते रहे। शिवाजी ने तमिलनाड पर चढाई की तो देखा कि गढो को ढाने के लिए अग्रेज इजीनियर तोपो का बहुत अच्छा उपयोग करते है। शिवाजी ने चाहा कि उन अग्रेज इजीनियरो को अपनी सेवा मे ले लें, और उनके न मानने पर अपने को असहाय मान लिया, पर यह कभी न सोचा कि अपने मराठो को उसी कार्य के लिए प्रशिक्षित कर लें। बाजीराव के शासन-काल मे वसई से दमन तक की कोकण की भूमि जो पुर्तगालियो ने दो सौ वर्ष से दवा रखी थी उनसे वापस छिन गई। वसई मे पुर्तगालियो की जहाज़ मरम्मत करने की गोदियाँ (डौक-यार्ड) आदि तव मराठा राजा के हाथ आ गई, पर उनका कोई उपयोग नही कर उन्हें यो ही उजडने दिया गया। मराठो की आँखो के सामने गोवा मे पुर्तगाली अपनी पुस्तकें छापते थे, पर मराठो को कभी न सूझा कि हम भी मराठी पुस्तकें इसी प्रकार छाप कर अपनी जनता मे जागृति फैला सकते हैं।

अठारहवी शताब्दी मे यूरोपीय लोग स्थल-युद्ध की कला मे भी भारतीयो से आगे निकल गये। तब उन्होने भारत से ही भाडेत सेना खडी कर उसे अपनी युद्ध-कला की कुछ मोटी बातें सिखा अपना उपकरण बना कर उसी के द्वारा भारत की राजनीति मे दखल देना और यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित करना शुरू किया। भारत के नाना फडनवीस जैसे जिन योग्यतम नेताओ को अग्रेज़ो की उस नई शक्ति से वास्ता पडा, उन्हें भी यह नही सूझा कि उस शक्ति की जड मे केवल दो बातें हैं, एक तो कुछ नई युद्ध-कला तथा दूसरे हमारे अपने ही देशवासी और कि उस नई कला को हम भी सीख लें और अपने ही देशवासी भाडेत सैनिको को अपनी तरफ मिलालें तो अग्रेजो की उस शक्ति की जड उखाड सकते हैं। उन्होंने आँखें खोल कर यह नही देखा, और अग्रेजो की शक्ति देख-देख कांपते रहे। और तो और, हमारे अपने देश के ज्ञान मे भी यूरोपीय हमसे आगे निकल गए थे। अठाहरवी शताब्दी का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा प्राप्य है, उसी काल के ईस्ट इडिया कम्पनी के बनवाये भारत के नक्शे से मिलान करने से स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारी आँखें उनके मुकाबले मे कितनी बन्द थी। इंगलैंड मे कातने-बुनने के नये यन्त्रो की ईजादें अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुई। भारत का मुख्य भाग महाराष्ट्र के नेतृत्व मे तब तक स्वतन्त्र था। भाप-बोट की ईजाद १८३० मे हुई। पजाब का सिक्ख राज्य तब तक स्वतन्त्र था। यदि हमारी आँखें खुली होती तो हम देखते कि इस नये ज्ञान को अपनाये बिना हमारी व्यावसायिक समृद्धि और स्वतन्त्रता को खतरा है, और यदि हम यह देख लेते तो हमे इस ज्ञान को पाने और अपनाने से कौन रोक सकता था ? पर हमारी आँखें ही तो मुंदी थी।

यो इतिहास के इस पहलू की विवेचना से प्रकट हुआ है कि जिस पुनरुत्थान की लहर ने शिवाजी, छत्रसाल, गोविन्दसिंह और पृथ्वीनारायण को उठाया, उसमे पुनर्जागरण की प्रेरणा सम्मिलित नही थी। सन्त सुधारको ने भारत को जड कर्मकाड से उबार कर उसकी कर्म-शक्ति को जगाया, पर उसकी ज्ञान-चक्षुओ को खोलने की कोई प्रेरणा नही दी, इसी से उनका किया समाज-सुधार भी अधूरा रहा, भक्ति के क्षेत्र मे उन्होने ऊँच-नीच हटा दी, पर समाज के बाकी जीवन से जात-पाँत को नही निकाल सके। वे रहस्यवाद की भाषा बोलते रहे, अन्धविश्वास पर सीधी चोट नही कर सके।

परन्तु जो नया जीवन उन्होने भारत मे पैदा कर दिया था, वही अपनी इस कमजोरी को पहचानने मे सहायक हुआ। १७वी १८वी शताब्दियो के भारत के पुनरुत्थान की इस कमजोरी को पहले पहल १८वी शताब्दी के मध्य मे हरि दामोदर नवलकर और उसके बेटे रघुनाथ ने पहचाना। उन्होने यह देखा कि यूरोपीयो के नये ज्ञान को लिए बिना भारत उनका मुकाबला नही कर सकता। हरि दामोदर को मराठा सरकार ने १७५६ मे झाँसी का सूबेदार नियुक्त किया था, १७६५ से १७९४ तक उसका बेटा रघुनाथ उस पद पर रहा। रघुनाथ हरि ने स्वय अग्रेजी पढ़ी, उसके द्वारा भौतिकी और रसायन के नये विज्ञान सीखे, तथा ज्ञान की उस ज्योति को जारी

रखने के लिए झाँसी मे वेधशाला (ऑब्जरवेटरी) परीक्षणशाला (लेबोरेटरी) और पुस्तकालय स्थापित किये। उसकी ये सस्थाएँ आज बची नही हैं क्योंकि १८५८ मे अग्रेज सेनापति सर ह्यू रोज ने रघुनाथ हरि के भाई की पुत्रवधू महारानी लक्ष्मीवाई पर जब चढ़ाई की तब उन सबको जलाकर जमीदोज कर दिया। रघुनाथ हरि के सम्प्रदाय मे ही पहले पहल यह तथ्य पहचाना गया कि अग्रेज भारत को भारतीय सेना द्वारा ही काबू किये हुए हैं। एक बार जब आखों पर का पर्दा हट गया तब इस तथ्य को देख लेना कुछ कठिन नही था। १८५७ का स्वातन्त्र्य-युद्ध इस तथ्य को पहचान लेने पर ही निर्भर था।

किन्तु १८५७ का वह प्रयत्न भी विफल हुआ और उसकी विफलता का कारण यह था कि भारत मे अग्रेजी शक्ति की इस एक नीव को देख कर भारतीय क्रान्तिकारियो ने इसे ढाने का जहाँ प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी नीव—नई युद्धकला—की ओर ध्यान नही दे पाये। १८५७ के बाद क्या उन्होने अपनी विफलता पर विचार किया, क्या उसके इस कारण को देखा पहचाना ? यदि भारतीय राष्ट्र मे, उसके पुनरुत्थान की लहर मे, रघुनाथ हरि के चलाये पुनर्जागरण की प्रेरणा मे जीवन बाकी था तो वैसा विचार उन्हे करना चाहिए था, और इस तथ्य को पहचानना चाहिए था। इन प्रश्नो का उत्तर हाँ मे है और वह उत्तर हमे दयानन्द सरस्वती, उनके शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा और उन्नीसवी बीसवी शताब्दी के पिछले क्रान्तिकारियो के चरितो से मिलता है। वह एक दूसरी कहानी है। यहाँ इतना ही कहा जाय कि दयानन्द के दिल मे अपने देश की दुर्दशा के लिए जैसी उत्कट वेदना थी, उस दुर्दशा के जो कारण उन्हे दिखाई दिये उनकी समीक्षा करते हुए वह वेदना प्रकट हुए बिना न रह सकती थी। इसीलिए, सन्त मार्ग की आलोचना मे दयानन्द ने यदि कुछ कडे शब्द कहे तो हमे समझना चाहिए कि वे शब्द उस वेदना की उपज थे। किन्तु उन्होंने जो सन्त मार्ग के दुर्बल पहलू को पहचाना वह उनकी गहरी जागृत दृष्टि का सूचक था।

बीसवी शताब्दी के आरम्भ से भारत मे राष्ट्रीय शिक्षा की लहर और क्रान्तिकारी सघठन की प्रवृत्ति को साथ लिए हुए जो स्वदेशी आन्दोलन चला वह ठीक दयानन्द और उनके साथी गोपाल हरि देशमुख की शिक्षाओ की उपज था। १९२० के बाद महात्मा गाधी ने नई लहर चलाई जिसमे कुछ बातें उन्होने स्वदेशी आन्दोलन की अपनाईं और कुछ अपनी सन्त-मार्गी प्रेरणा से ली। जैसा कि हमने देखा सन्त-मार्गी प्रेरणा का एक पहलू अच्छा तो दूसरा आंखो को बन्द रखने वाला भी था। जिस अश तक महात्मा गाधी ने इस दूसरे पहलू को भी उभाडा, जिस अश तक उन्होंने बुद्धिवाद के बजाय रहस्यवाद को उठा कर और "ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होये" की शिक्षा को पुनर्जीवित कर देश के पढे-लिखे युवको की खुलती हुई ज्ञान-चक्षुओ को फिर सुलाने के लिए थपकी दी, जिस अश तक उन्होने १९०५ वाली स्वदेशी राष्ट्रीय-शिक्षा और क्रान्तिकारी सगठन की लहर का मार्ग बदला, उस अश तक देश सच्चे स्वराज्य के मार्ग से च्युत हुआ। उसका फल हम आज भोग रहे हैं।

भगवान गौतम बुद्ध और महायोगेश्वर भगवान कृष्ण

[लेखक : मनस्वी श्री रामगोपालजी मोहता, बीकानेर]

मथुरा के श्री गीता आश्रम मे गत मगसर शुक्ला ११ को गीता जयन्ती उत्सव मनाया गया था जिसका सभापतित्व भारत के उपराष्ट्रपति और राज्य सभा के सभापति श्रीमान सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने किया था और भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा देश के वडे-वडे नेताओ ने उत्सव पर सहानुभूति के सदेश भेजे थे। उस उत्सव मे अखिल भारतीय गीता सघ (All India Gita Society) स्थापित करने का निश्चय किया गया जिसमे देश के वडे-वडे नेताओ तथा विद्वानो ने सम्मिलित होना स्वीकार किया।

उत्सव मे उपस्थिति वहुत अधिक थी। उनमे एक कालेज के इतिहास के प्रोफेसर गान्धीवादी सज्जन और एक गीतावादी सज्जन मे आपस मे वार्तालाप होने लगा।

प्रोफेसर . क्योजी ! एक धार्मिक पुस्तक की जयन्ती मनाने का क्या कारण है ? वडे-वडे महान पुरुषो की और विशेष महत्वपूर्ण तथा हर्षप्रद अवसरो एव घटनाओ की जयन्ती आदि मनाने की वात तो समझ मे आ सकती है, परन्तु एक धार्मिक पुस्तक की जयन्ती मनाना तो अनोखी वात है। दूसरे धार्मिक ग्रथो की जयन्तियाँ कोई नही मनाता और न उनकी जन्म तिथियो का ही किसी को पता है। गीता किसने और कव लिखी इसका पता कैसे लगा ?

गीतावादी प्रोफेसर साहव ! यह जयन्ती किसी पुस्तक की नही मनाई जाती है। यह जयन्ती उस "व्यवहार दर्शन" (Philosophy of Practical Life) की मनाई जाती है जो गीता मे सगृहीत है। यह "व्यवहार दर्शन" महाभारत युद्ध के प्रथम दिन मगसर शुक्ला ११ को महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले पहल अर्जुन को समझाया था। यह दर्शन मनुष्य मात्र को जीवन का ऐसा सच्चा मार्ग दिखाता है कि जिसका अवलम्वन करने से मनुष्य, स्त्री पुरुष मात्र, जाति भेद, देश भेद, काल भेद, अवस्था भेद, पद भेद, वर्ग भेद आदि किसी भी प्रकार के भेद विना एक समान अपनी सर्वांगीण उन्नति करता हुआ पूर्ण सुख शान्ति प्राप्त कर सकता है। यह दर्शन कोई साम्प्रदायिक धर्म या मजहव नही है कि जो किसी विशेष देश, काल, जाति वर्ग या वर्ण के लोगो की ही स्वार्थ सिद्धि करता हो, किन्तु यह विश्व कल्याण कारक सार्वजनिक दर्शन है, इसीलिए इसको इतना भारी महत्व दिया जाता है।

प्रोफेसर : भाई साहव ! माफ करना। मैं यह नही मानता। आपने गीता की तारीफ के जो इतने पुल वाँध दिये, वे मेरी समझ मे नही आते। कृष्ण ने वेचारे अर्जुन को गीता का उपदेश देकर महाभारत का युद्ध कराया, देश के वड़े-वड़े महापुरुष मारे गये, देश की सारी सभ्यता नष्ट हो गई जिससे देश की इतनी गिरावट हुई कि वह आज तक नही संभल सका।

गीतावादी : महाशय जी ! महाभारत मे देश के महापुरुष नही मारे गये किन्तु अधिकतर स्वार्थी, आततायी लोग ही मारे गये। वडे-वडे विद्वान्, गुणवान, विचारक और श्रेष्ठ पुरुष उस समय भी वचे हुए थे। महाभारत से तो देश दुष्टो, अत्याचारियो के मैल से शुद्ध हुआ था। महाभारत के वाद तत्काल ही पाडवो का राज्य तथा उनके वाद परीक्षित, जन्मेजय आदि के राज्य उस समय की परिस्थिति के अनुसार पूर्णतया सुसभ्य और उन्नत होने के वर्णन प्राचीन ग्रन्थो मे पाये जाते हैं और उनके पीछे के इतिहासो मे देश मे विद्याओ और कलाओ आदि की वडी उन्नति होना पाया जाता है। गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत,, काव्य, कला, वास्तु

शास्त्र आदि महाभारत के बाद बहुत उन्नत हुए हैं। अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, भोज प्रभृति राजाओ के काल देश की उन्नति के परिचायक हैं। पाणिनी का व्याकरण, चाणक्य की राजनीति और अर्थशास्त्र अब तक अद्वितीय माने जाते हैं। लीलावती के गणित विज्ञान को भी ससार ने बहुत ऊँचा माना है।

प्रोफेसर परन्तु इतिहास के आधार पर तो महाभारत का होना ही सिद्ध नही होता।

गीतावादी हाथ मे कगण की तरह जो बात सामने प्रत्यक्ष हो उसके लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? जब महाभारत होने का स्थान, उस समय के वर्णित देश, नगर, नदी, पहाड आदि ज्यो के त्यो मौजूद हैं और सारे चिह्न लगातार पाये जाते हैं तथा कौरव पाडवो के वश अब तक अटूट चलते हैं और सबसे अधिक राजा युधिष्ठिर का चलाया हुआ सवत्सर हमारे पचागो मे प्रति वर्ष एक-एक करके बढता हुआ अब ५०५७ तक बढ चुका है तो महाभारत के विषय मे भ्रम होने के लिए वास्तव मे कोई अवकाश तो रहता नही।

प्रोफेसर इतिहास के अनुसार तो ४००० वर्षों से अधिक पुरानी कोई सभ्यता थी ही नही।

गीतावादी क्षमा कीजिए साहब ! आपके इतिहासज्ञो का कोई निर्णय स्थिर नही रहता, क्योकि उनकी खोज के आधार अधिकतर पुराने शिलालेख या सिक्के या खडहरो से प्राप्त होने वाली पुरानी पुरातत्त्व की वस्तुएँ होती हैं। जितने पुराने समय तक की ये वस्तुएँ उनको मिलती हैं उतना ही सभ्यता की प्राचीनता का समय वे लोग मान लेते हैं। जब फिर कोई उनसे अधिक प्राचीन वस्तु मिल जाती है तो फिर उनका सभ्यता का काल पीछे हटता जाता है। सबसे प्राचीन वैदिक सभ्यता का काल पहले ४ हजार वर्षों से अधिक प्राचीन नही मानते थे, फिर जब मोहनजोदाडो और हरप्पा आदि की खुदाई करने पर अधिक प्राचीन वस्तुएँ भू-गर्भ मे से निकली तब सभ्यता का काल पीछे खिसक गया आगे फिर इससे अधिक प्राचीन चिह्न ज्यो-ज्यो मिलते जाएँगे त्यो-त्यो आप के इतिहास और पीछे सरकते जावेंगे। अत इतिहासज्ञो का माना हुआ पुरानी सभ्यता का काल विश्वास करने लायक नही है। फिर इतिहासज्ञो के भी आपस मे बहुत मत भेद हैं। न मालूम किस का मत प्रामाणिक है और किस का अप्रामाणिक। भारत के एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ से मेरा घनिष्ठ परिचय था। वह महाशय पुराने पत्थरो पर पुरानी लिपियो मे लेख खुदवा कर उजाड जगलों मे गढ्ढे खोदकर उन्हे मिट्टी से पाट दिया करते थे। फिर कई वर्षों बाद उनको खुदवा कर एक नई खोज का समाचार प्रकाशित कर दिया करते थे। कई राजाओ से काफी मात्रा मे रिश्वतें ले ले कर उनके पूर्वजो का इतिहास और वशावलियाँ उनके कहे अनुसार अपने इतिहास मे लिख दिया करते थे। यह बात मैं सुनी सुनाई नही कर रहा हूँ किन्तु अपने प्रत्यक्ष देखे हुए अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। उन महाशयो के लिखे हुए इतिहास और ऐतिहासिक लेख बडे प्रामाणिक माने जाते हैं। ऐसी दशा मे इतिहासो पर क्या विश्वास किया जाए ? इसके अतिरिक्त आप के वर्तमान इतिहासो पर पश्चिमी इतिहासज्ञो की गहरी छाप जमी हुई है जिनको अपनी सभ्यता की नवीनता के कारण हमारी सभ्यता की प्राचीनता सहन ही नही हो सकती। भला यह कोई न्याय है कि विक्रमादित्य का "सम्वत्" जो प्रतिवर्ष एक-एक करके बढता हुआ २०१३ तक पहुँच चुका है उसको भी ये लोग प्रामाणिक नही मानते ?

प्रोफेसर परन्तु मध्य काल मे हमारे देश का भारी पतन हुआ, यह तो आपको भी मानना पडेगा।

गीतावादी निसदेह, परन्तु उस पतन का कारण गीता अथवा महाभारत नही है। महाभारत के बाद भी ब्राह्मणो का प्रभुत्व समाज पर ज्यो का त्यो बना रहा और जनता पूर्ण रूप से इनके चगुल मे फँसी रही। इन लोगो की स्वार्थपरता दिन-प्रतिदिन उग्र होती चली गई। इन लोगो ने अपने स्वार्थ के लिए वर्ण-व्यवस्था के बदले मे जन्मगत जाति भेद की इतनी मजबूत दीवारें खडी कर दी कि समाज के टुकडे-टुकडे हो गये और लोगो को साम्प्रदायिक कर्म काडो मे मजबूती से जकड दिया। इनके अत्याचारो से जनता को मुक्त करने के लिए भगवान् गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने क्रांति करके इन लोगो का मुकाबला किया और इन महापुरुषो ने उस समय

की परिस्थिति के अनुसार निवृत्ति मार्ग का प्रचार किया। कुछ हद तक इन को ब्राह्मणवाद से मुकावला करने मे सफलता भी मिली और कई सौ वर्षों तक देश ब्राह्मणवाद के चगुल से मुक्त रहा। फिर स्वामी शकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुन स्थापना करने के लिए निवृत्ति प्रधान वौद्धमत मे आई हुई स्वाभाविक बुराइयो का मुकावला करके सूखे अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त के आधार पर दूसरे ढग से निवृत्ति मार्ग का प्रचार किया और उसके वाद भक्ति मार्ग के अनेक सम्प्रदायो के प्रवर्तको ने भी एक प्रकार से निवृत्ति मार्ग का ही प्रचार किया। इन कारणो से देश की जनता निरुद्यमी, उत्साहहीन, अन्धविश्वासी, प्रारब्धवादी, परावलम्वी और भीरू हो गई। इन वेदानुयायी निवृत्ति मार्ग वालो ने ब्राह्मणवाद की उपेक्षा की अथवा उनकी पुष्टि की जिससे ब्राह्मणवाद की बुराइयाँ भी ज्यो की त्यो वनी रही। एक तरफ ब्राह्मणवाद और दूसरी तरफ निवृत्ति मार्ग ये दोनो ही देश के घोर पतन के कारण हुए।

प्रोफेसर : यह तो ठीक है परन्तु स्वामी शकराचार्य और भक्ति मार्ग के आचार्यों ने भी गीता के आधार पर ही तो अपने-अपने सम्प्रदायो की पुष्टि की है।

गीतावादी : इन लोगो ने अपने-अपने सम्प्रदाय चलाने के लिए गीता का सहारा लेने के उद्देश्य से उसके अर्थ को तोड मरोड कर अपने सम्प्रदाय के अनुकूल वनाने के लिए परस्पर विरोधी, खीचातानी की टीकाएं करके गीता को झूठा साम्प्रदायिक रूप दे दिया है। वास्तव मे गीता मे साम्प्रदायिकता बिल्कुल ही नही है किन्तु स्पष्ट शब्दो मे साम्प्रदायिकता का जगह-जगह खंडन किया गया है। इन साम्प्रदायिक टीकाकारो ने ही गीता के वास्तविक एक मात्र सिद्धान्त *"व्यावहारिक वेदान्त"* को एक प्रकार से लुप्त कर दिया और इनके वाद के टीकाकार, उन साम्प्रदायिक टीकाओ का आश्रय लेने के कारण, उसको एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ मानकर इसके असली सिद्धान्त को अच्छी तरह समझने मे असमर्थ रहे। वास्तव मे गीता के सिद्धान्त इतने व्यापक, सत्य, नित्य, ठोस और लोक कल्याणकारी हैं कि बुद्धिवादी भगवान् बुद्ध ने भी गीता मे वर्णित भगवान् कृष्ण के अधिकाश सिद्धान्तो को स्वीकार किया है।

प्रोफेसर · भाई साहव ! यह मत कहिए, मैं यह नही मानता कि बुद्ध ने गीता मे कहे हुए कृष्ण के सिद्धान्तो को स्वीकार किया है। स्वीकार करना तो कहाँ, बुद्ध के सिद्धान्त तो कृष्ण के सिद्धान्तो से सर्वथा प्रतिकूल हैं। कृष्ण के सिद्धान्त ईश्वरवादी हैं और बुद्ध विल्कुल निरीश्वरवादी, पक्का नास्तिक था।

गीतावादी कृष्ण भी पक्का निरीश्वरवादी था।

प्रोफेसर : यह कैसे हो सकता है ? गीता मे कृष्ण ने स्थान-स्थान पर ईश्वर, ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा, पुरुषोत्तम आदि की दुहाई दी है।

गीतावादी : पर गीता मे वर्णित ईश्वर, ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा, पुरुषोतम आदि जगत् से भिन्न कोई विशेष व्यक्ति या विशेष शक्ति नही है किन्तु जो सत्ता, जो शक्ति और जो तत्त्व सारे विश्व को और सारे शरीरो को धारण किये हुए हैं और जो सब का मूल तत्त्व होने के कारण सब का अपना आप आत्मा है, उसी को गीता मे ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, पुरुषोत्तम आदि नामो से अलकृत किया गया है। वह सत्ता, शक्ति या तत्त्व सव मे ओत-प्रोत होने के कारण सवका अपना आप है, इसी कारण गीता मे प्राय. सर्वत्र भगवान् कृष्ण ने उसके लिए "मैं" (अहम्) शब्द के अनेक रूपों के उत्तम पुरुष वाचक अहम् मा, मया, मे, मम, मत्, मयि आदि सर्वनामो का प्रयोग किया है। ये सर्वनाम कृष्ण ने अपने पृथक् व्यक्तित्व के लिए नही कहे हैं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति और सारे विश्व मे जो एक आत्मसत्ता व्यापक है, उस समष्टि भाव के लिए प्रयोग किये हैं और गीता के प्राय. सभी अध्यायो मे बार-बार यह स्पष्ट कर दिया है कि मैं सव का आत्मा, सव मे रहने वाला तत्त्व हूँ। "मैं" रूप से सव शरीरों मे व्यापक, सब का आत्मा, सव का अपना आप, सव का आधार और सब का प्रेरक होने के कारण सव का

स्वामी है, इसीलिए उसको ईश्वर आदि के विशेषण दिये गये हैं। जो अपने से और संसार से भिन्न किसी दूसरी सत्ता, शक्ति या तत्त्व का होना ही नही मानता, वह कृष्ण ईश्वरवादी कैसे कहा जा सकता है ?

प्रोफेसर गीता के १५वें अध्याय के १६-१७ श्लोको मे कहा है कि "इस लोक मे क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं। सारे भूत क्षर और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर है। परन्तु उत्तम पुरुष उन दोनो से अन्य है, उसको परमात्मा कहते हैं जो तीनो लोको मे व्याप्त हुआ भरण पोषण करने वाला ईश्वर है।" इससे विदित होता है कि गीता, जगत और जीवात्मा से अलग ईश्वर का अस्तित्व मानती है।

गीतावादी पर इसी श्लोक मे जब यह कहा गया कि "वह परमात्मा अथवा ईश्वर तीनो लोको मे व्याप्त रहता हुआ भरण पोषण करता है," तो फिर अलग कहाँ रहा ? और फिर इसके बाद ही भगवान् कृष्ण ने १८वें श्लोक मे कह दिया है कि "क्योकि मैं क्षर से अतीत और अक्षर से उत्तम हूँ, इसीलिए लोक और वेद मे मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं", तो १७वें श्लोक मे जिसे परमात्मा या ईश्वर कहा था, वही उत्तम पुरुषवाचक, अपना आप हो जाता है, क्योकि जैसे कि मैं पहले कह आया हूँ कि कृष्ण ने उत्तम पुरुषवाचक "मैं" शब्द का प्रयोग सबके अपने आप आत्मा के लिए किया है। १३वें अध्याय के दूसरे श्लोक मे कहा है कि "क्षेत्र रूप सब शरीरो मे क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ।" इसके अतिरिक्त १५वें अध्याय के ८वें श्लोक मे जीव को ईश्वर ही कहा है और १३वें अध्याय के १७वें और २२वें श्लोको मे तथा ३१वें श्लोक मे भी सब देहों मे स्थित जीवात्मा को ही परमात्मा, महेश्वर और पर पुरुष कहा है।

प्रोफेसर · तो फिर १५वें अध्याय के १७वें श्लोक मे "अन्य" शब्द का प्रयोग क्यो किया है ?

गीतावादी . ७वें अध्याय के ४-५वें श्लोको मे भगवान् ने जिन अपरा और परा प्रकृतियो को अपनी प्रकृति कहा है, उन्ही को १३वें अध्याय मे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ कहा है और १५वें अध्याय के १६वें श्लोक मे उन्ही को क्षर और अक्षर पुरुष कहा है। ये दोनो प्रकृतियाँ या पुरुष वस्तुत आत्मा से भिन्न नही है किन्तु उसी का स्वभाव हैं। परन्तु भौतिक जड भाव की अपरा प्रकृति अथवा क्षर पुरुष निरन्तर बदलने वाला और नाशवान है और आत्मा अव्यय और अविनाशी है, इसलिए कृष्ण ने १८वें श्लोक मे अपने को क्षर से अतीत कहा है, तथा चेतन जीव भाव की परा प्रकृति अथवा अक्षर पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप का अज्ञान स्वीकार करके व्यक्ति भाव मे आसक्ति रखकर अपने को परिमित मानता है, इसलिए उससे अपने को उत्तम कहा है। सर्वात्मा की विलक्षणता दिखाने के लिए ही यहा "अन्य" शब्द का प्रयोग हुआ है। पूर्वापर की संगति मिलाने से जगत, जीव और परमात्मा व ईश्वर मे कोई भेद दिखाने के लिए यहाँ "अन्य" शब्द प्रयुक्त नही हुआ है।

प्रोफेसर गीता के १८वें अध्याय के ६१वें श्लोक मे कृष्ण ने कहा है कि "ईश्वर सब भूतो के हृदय मे रहता हुआ सब को यन्त्र मे चढाये हुए की तरह घुमाता है," इससे साफ है कि कृष्ण अलग ईश्वर का अस्तित्व मानता था।

गीतावादी परन्तु उसी श्लोक के पूर्वार्द्ध मे पहले ही कह दिया है कि "ईश्वर सब भूतो के हृदय मे रहता है," और सबके हृदय मे अपने आप ही का अनुभव होता है, अपने आप के सिवाय किसी दूसरे का अनुभव नही होता, इसलिए कोई अलग ईश्वर घुमाने वाला नहीं रहा। सब का अपना आप आत्मा ही सब शरीरो को गति देता है और चेष्टाएँ करवाता है। इस श्लोक का यही स्पष्ट अर्थ है। दूसरा अर्थ हो नही सकता।

प्रोफेसर पर बुद्ध तो आत्मा को भी नही मानता ?

गीतावादी जब कि कृष्ण के माने हुए कर्म विपाक, पुनर्जन्म और निर्वाण के सिद्धान्तो को भगवान बुद्ध पूरी तरह स्वीकार करते हैं, यहां तक कि उन्होंने अपने अनेक पूर्व जन्मो की स्मृति की बातें भी कही हैं, तब आत्मा का अस्तित्व स्वत· ही स्वीकार हो गया, क्योकि पूर्व जन्म मे जो कर्म करने वाला होता है, वही तो दूसरे

जन्म मे उनका फल भोगेगा। एक के कर्मों का फल दूसरा नही भोग सकता और न एक की स्मृति दूसरे को रह सकती है। कर्म स्थूल शरीर द्वारा किये जाते है सो स्थूल शरीर तो इसी जन्म मे मरने पर यही समाप्त हो जाता है, आगे जाता ही नही ? दूसरा जन्म लेने वाली कोई दूसरी सूक्ष्म, नित्य वस्तु, स्थूल शरीर के अन्दर रहने वाली होनी चाहिये, जो स्थूल शरीर के साथ नही मरती। इसके अतिरिक्त निर्वाण होने के बाद पुनर्जन्म नही होता, ऐसा माना गया है सो निर्वाण अवस्था स्थूल शरीर को तो प्राप्त हो नही सकती। स्थूल शरीर से परे कोई सूक्ष्म तत्त्व है जो निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है। स्थूल शरीर का मर जाना तो निर्वाण अवस्था है ही नही, यदि ऐसा होता तो मरने के बाद सभी निर्वाण को प्राप्त हो जाते, फिर पुनर्जन्म ही कौन लेता ? बुद्ध ने उस सूक्ष्म तत्त्व को "विज्ञान" नाम दिया है। कृष्ण ने भी आत्मा को "ज्ञान स्वरूप" माना है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनो के मतो मे कोई भेद नही है केवल नामो का ही अन्तर है। कृष्ण ने जिस तत्त्व को आत्मा नाम दिया है, बुद्ध ने उसी को "विज्ञान" नाम दे दिया है। उसी तत्त्व को दूसरे विचारको ने प्रवाह, सम्बन्ध, शून्य, प्रकृति, स्वभाव, आदि नाम दे दिये है परन्तु एक अव्यक्त सूक्ष्म तत्त्व के होने से कोई इन्कार नही करता। फिर विज्ञान, प्रवाह, सम्बन्ध, शून्य, प्रकृति अथवा स्वभाव का जानने वाला या अनुभव करने वाला भी कोई न कोई अवश्य होना चाहिए। कर्त्ता अथवा ज्ञाता (Subject) के बिना कर्म अथवा ज्ञेय (Object) नही हो सकता। वह जानने वाला अथवा अनुभव करने वाला सब का अपना आप (Self) है। भगवान बुद्ध को जब ध्यानयोग के द्वारा बोध हुआ तब वह किसी इन्द्रिय गोचर बाहरी वस्तु का बोध तो था ही नही किन्तु अपने भीतर अपने असली तत्त्व का अपनी बुद्धि के विचार द्वारा बोध हुआ था। उस बोध का स्वरूप या लक्षण उन्होने कुछ भी नही बताया, क्योकि वह अपने आप का सच्चा बोध या अनुभव था जिसका वर्णन शब्दो द्वारा नही किया जा सकता। कुछ भी हो, जो सबका अपना आप है उसको कोई कैसे इन्कार कर सकता है ? अपने आप के अस्तित्व के विषय मे किसको आपत्ति हो सकती है ? भगवान् बुद्ध से जब आत्मा के विषय मे पूछा गया था तब उन्होने कुछ भी उत्तर नही दिया, मौन धारण कर लिया। इसका यही मतलब हो सकता है कि अपना आप केवल अपने अनुभव का विषय है, वाणी का विषय नही। यही बात कृष्ण ने गीता मे कही है कि आत्मा इन्द्रियाँ, मन और वाणी की पहुँच से परे हैं। बुद्ध ने यह नही कहा कि आत्मा नही है किन्तु इस विषय मे कोई शब्द नही कहा। "मौन सम्मति लक्षणम्" मौन रहना रूपान्तर से स्वीकृति ही होती है।

जो लक्षण और प्रभाव गीता मे आत्मा के कहे गये हैं प्राय वे सब लक्षण रूपान्तर से बुद्ध ने विज्ञान के कहे हैं। अन्तर केवल नामो मे है और नामो का अन्तर होने से सिद्धान्त मे अन्तर नही आता। जब कोई किसी सिद्धान्त को नये रूप मे उपस्थित करता है तब उसके नाम और रूप मे कुछ न कुछ फेर-फार करता ही है तभी उसमे नवीनता आती है।

भगवान् कृष्ण का उद्देश्य दुष्टो के अत्याचारों से समाज का उद्धार करने का था, इसीलिए उन्होने सब की एकता के आत्मज्ञान की समत्व बुद्धि से संसार के सब प्रकार के व्यवहार, लोकसग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए करने का विधान गीता मे कर्मयोग के नाम से किया है और इसीलिए उन्होने आत्मा के विषय मे असदिग्ध रूप से विस्तृत खुलासा किया है ताकि लोग सब की एकता के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझकर व्यवहार मे उसका उपयोग कर सकें, परन्तु भगवान् बुद्ध के सामने प्रश्न उस समय वैदिक कर्म काडो मे होने वाले अपार जीवो की हिंसा रोकने का था और वैदिक कर्मकाड उस समय आम तौर से कल्याणकारक समझे जाते थे। उनसे जनता को निवृत्त करने के लिए कर्म सन्यास का प्रचार ही उपयुक्त था। अत. सन्यास द्वारा मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त होने के सिद्धान्त का उन्होने प्रचार किया। सन्यास मार्ग मे लौकिक व्यवहार अथवा समाज की सुव्यवस्था की एक प्रकार से उपेक्षा ही की जाती है, इसलिए व्यक्ति के निर्वाण के उपयोगी श्रेष्ठाचरण

आदि को तो उन्होने पूरा महत्व दे दिया, परन्तु सब की एकता के आत्म-ज्ञान को उन्होंने विशेष महत्त्व नही दिया। इतना अन्तर कृष्ण के और बुद्ध के सिद्धान्तो मे अवश्य दिखाई देता है।

प्रोफेसर आप का यह कहना तो बिल्कुल ठीक है कि जब कर्मों का फल दूसरे जन्म मे भोगने और निर्वाण प्राप्ति के सिद्धान्त को बुद्ध ने मान लिया तब आत्मा के अस्तित्व का सिद्धान्त "द्रावडी प्राणायाम" की तरह घुमा फिरा कर स्वत ही मान लिया गया है, चाहे उसका नाम कुछ भी रखो। कृष्ण और बुद्ध के समय की परिस्थितियो मे भी अन्तर था। अब बताइए कि कृष्ण के और कौन से सिद्धान्त बुद्ध को स्वीकार थे ?

गीतावादी कृष्ण ने वैदिक कर्म काण्डो आदि की धार्मिक साम्प्रदायिकता का बडे जोर से खण्डन किया है और बुद्ध ने भी ऐसा ही किया था।

प्रोफेसर यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या कृष्ण ने वैदिक कर्म काण्डो का खण्डन किया है ?

गीतावादी क्या इसमे भी कोई सन्देह है ?

प्रोफेसर गीता तो वैदिक धर्म का अनुकरण करने वाला ग्रन्थ समझा जाता है।

गीतावादी यह भ्रम सम्प्रदायवादियो ने फैला रखा है। वास्तव मे गीता मे तो वैदिक कर्म काण्डो की स्पष्टतया निन्दा की गई है और अर्जुन को वेद वाक्यो की उलझन से निकलने का उपदेश दिया गया है। दूसरे अध्याय के ४२ से ४४ तक के श्लोको मे वैदिक कर्मकाण्ड करने वालो को मूर्ख, हठी और बुद्धिहीन बताया है और कहा है कि इनको आत्म-ज्ञान की समत्व बुद्धि कभी प्राप्त हो ही नही सकती। फिर ४५वें और ४६वें श्लोको मे वेदो की त्रिगुणात्मक उलझन से निकल कर आत्मभाव मे स्थिति करने का उपदेश अर्जुन को दिया गया है। ९वें अध्याय के २०वें और २१वें श्लोको मे भी वैदिक कर्मकाण्डो की निन्दा की गई है और दूसरे अनेक स्थलो पर वेदो और यज्ञो की हीनता का प्रतिपादन किया गया है।

प्रोफेसर : परन्तु ९वें अध्याय के इन्ही श्लोको मे कहा है कि "सोम रस पीने वाले लोग वैदिक यज्ञ करके उसके पुण्य से स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं और वहाँ इन्द्र लोक मे देवताओ के भोग भोगते हैं। इससे मालूम होता है कि साम्प्रदायिक लोगो की तरह कृष्ण भी स्वर्ग नरक का अस्तित्व मानते थे ?"

गीतावादी . हिन्दू लोगो मे यह विश्वास सदा से चला आता है कि वेद विहित कर्म काण्डो से पुण्य होता है जिससे मरने के बाद मनुष्य स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। हिन्दू शास्त्रो मे इस तरह से प्राप्त होने वाले स्वर्ग लोक का बहुत ही रोचक वर्णन विस्तार से किया हुआ है और वैदिक कर्म काण्ड न करने वाले कुकर्मी लोगो के नरक मे जाने और उन नरको के अत्यन्त भयकर रूपो का भी वर्णन किया हुआ है, जिनको सुनने से लोगो के मन पर उनके दृढ सस्कार जम जाते हैं। उन सस्कारो के प्रभाव से मरने के अनन्तर अच्छे काम करने वाले लोग अपने लिए, स्वप्न अवस्था के दृश्यो के समान, उन शास्त्रो मे वर्णित स्वर्ग लोक की कल्पना कर लेते हैं और वहाँ कल्पित भोग भोगने का अनुभव करते हैं। इसी तरह बुरे कर्म करने वाले लोग बुरे सस्कारो के प्रभाव से शास्त्रो मे वर्णित नरको की कल्पना करके नरक के कल्पित दुख भोगने का अनुभव करते हैं। स्वर्ग और नरक कोई स्थूल भौतिक लोक नही है किन्तु अपने-अपने मन की कल्पना मात्र हैं। इसलिए २०वें श्लोक मे "दिव्य भोग" कह कर स्पष्ट कर दिया है कि वे स्थूल आधिभौतिक भोग नही हैं और साथ ही स्वर्ग-प्राप्ति की निस्सारता बताने के लिए २१वें श्लोक मे कह दिया गया है कि "पुण्य क्षीण होने से वे लोग पीछे मृत्यु लोक मे आते हैं और इस तरह आवागमन के चक्कर मे घूमते रहते हैं," अत स्वर्ग के इस वर्णन का उद्देश्य लोगो के अन्धविश्वास हटाने का है, उसे पुष्ट करने का नही। भगवान् बुद्ध भी अच्छे कर्मो से स्वर्ग और बुरे कर्मो से नरक प्राप्त होना मानते हैं।

प्रोफेसर : गीता मे ब्रह्म लोक, देव लोक, पितृ लोक आदि अनेक लोको मे जाने का भी तो वर्णन ८वें

अध्याय मे है और इसके अतिरिक्त ८वें अध्याय के २४वें और २५वें श्लोको मे मरने के बाद उत्तरायण और दक्षिणायण मार्ग से शुक्ल और कृष्ण गति प्राप्त होने का भी उल्लेख है।

गीतावादी : जैसा कि मैंने अभी कहा है कि ये सभी लोक मन की कल्पना के कल्पित बनाव मात्र हैं। हिन्दू शास्त्रो मे मरने के बाद बहुत से कल्पित लोकों में जाने का वर्णन विस्तार से किया हुआ है, जिनको पढ सुन कर लोगो के मन पर उनके संस्कार जम जाते हैं, फिर इस सिद्धान्त के अनुसार कि "या मतिर् सा गति र्भवति" अर्थात् जिसकी जैसी मति होती है उसकी वैसी गति होती है, वह निश्चय किया गया कि जिसके मन के जैसे सस्कार होते है, उन्ही के अनुसार मरने के बाद उनके लिए कल्पित बनाव बन जाते हैं। साधारण-तया लोगो के मन मे यह जानने की उत्कण्ठा स्वभाव से ही उत्पन्न होती है कि मरने के बाद हमारी क्या दशा होगी ? इसका समाधान "व्यवहार दर्शन" मे होना अत्यन्त आवश्यक था। इसलिए भगवान ने पहले शास्त्रो में वर्णित मरने के बाद जो गति होती है, उसका थोडा सा उल्लेख करके, उनसे लोगो की श्रद्धा हटाने के लिए, उनकी त्रुटियां, हानि और मिथ्यापन साथ ही स्पष्ट कर दिया है। गीता मे ब्रह्म लोक आदि लोको के उल्लेख का उद्देश्य उनका निषेध करने का है न कि उनका विधान करने का। ८वें अध्याय के १६वें श्लोक मे साफ कह दिया गया है कि "ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने भी लोक हैं, वे सब जन्म-मरण के चक्कर मे डालने वाले हैं, मुझे अर्थात् सब के आत्म भाव को प्राप्त होने से ही पुनर्जन्म से छुटकारा होता है।" ८वें अध्याय के २४वें और २५वें श्लोको मे उत्तरायण और दक्षिणायण मार्ग का जिक्र इसीलिए किया गया है कि उस समय लोगो मे मरने के अनन्तर शास्त्रो के अनुसार इन दो गतियो के प्राप्त होने का अत्यन्त दृढ़ विश्वास था। उसका खण्डन करने के लिए ही इनका उल्लेख करके अर्जुन को साफ कह दिया गया है कि "ये दो गतियां सदा से मानी जाती रही हैं, परन्तु समत्व योगी इनसे मोहित नही होता, इसलिए तू सदा सर्वथा समत्व योग मे जुडा रह" अर्थात् शास्त्रो मे वर्णित इन गतियों की उपेक्षा कर। दूसरे लोगो की तरह अर्जुन को भी यह जानने की उत्कण्ठा हुई थी कि मरने के बाद मेरी क्या गति होगी, क्योकि कृष्ण के कहे हुए "व्यवहार दर्शन" मे विधान किये हुए" सब के एकता के ज्ञान की समत्व बुद्धि से सासारिक व्यवहार करने के समत्वयोग मे लगे रहने से स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले वैदिक कर्म काड तो छूट जाएँगे और समत्व योग की पूर्णता इसी जन्म मे प्राप्त होना कठिन है और पूर्णता प्राप्त हुए बिना ही शरीर छूट जाएगा तो मुक्ति भी नही होगी। ऐसी अवस्था मे दोनो तरफ से भ्रष्ट हो जाऊँगा।" ६ अध्याय के ३७-३८ श्लोको मे की हुई उसकी इस आशका का उत्तर देते हुए भगवान ने कहा है कि "इस समत्व योग के कल्याणकर अभ्यास मे लगे रहने वाले की कभी दुर्गति नही होती, किन्तु मरने के बाद, यदि मन मे भोगो की वासनाएँ रहती हैं तो सुख भोगो के अनुकूल उन लोको की कल्पना करके, उन मे कल्पित लम्बे समय तक कल्पित भोग भोग कर फिर वह पवित्र श्रीमानो के घर मे जन्म लेता है और यदि भोगो की वासनाएँ नही रहती हैं तो आत्मज्ञानी समत्वयोगियो के कुल मे जन्म लेता है, जहाँ पहले के अभ्यास के प्रताप से फिर आगे प्रयत्न करता हुआ पूर्णता को पहुँच जाता है। इस समत्व योग का जिज्ञासु भी वैदिक कर्म काण्डो में वर्णित फलो को पीछे छोड देता है। तपस्वियो, सूखे ज्ञान की बातें बनाने वालो और कर्म काडियो आदि से समत्व योगी श्रेष्ठ है। इसलिए तू समत्व योगी हो।"

इन श्लोको में भगवान् ने समत्व योग के अभ्यास मे लगे हुए जिज्ञासु की मरने के बाद, उसके पूर्व संस्कारो के अनुसार, उत्तम गति होने और और क्रमोन्नति करते हुए परमगति प्राप्त होने का आश्वासन देकर अर्जुन की आशका का निवारण किया है। फिर ८वें अध्याय के अन्त के श्लोक मे कहा है कि "वेदों, यज्ञो, तपो और दानो के जो फल शास्त्रो मे कहे हैं, उन सब का उल्लंघन अर्थात् उपेक्षा करके समत्वयोगी परम आदि स्थान को प्राप्त होता है," इससे शुक्ल और कृष्ण गतियो के शास्त्रों के वचनो का तिरस्कार करने का उपदेश देकर

उनका निषेध कर दिया। साराश यह कि गीता मे इन गतियो के उल्लेख का तात्पर्य उनके खण्डन करने का है, न कि उनकी पुष्टि करने का।

प्रोफेसर : १०वें और ११वें अध्यायो मे आदित्यो, वसुओ, रुद्रो, अश्विनी कुमारो, मरुतगणो, गन्धर्वों, सिद्धो, पितरो, वरुणो, यक्षो, नागो, सुरो, असुरो आदि का भी तो वर्णन किया गया है और कमलासन पर वैठे ब्रह्मा का जिक्र है तथा कई पौराणिक कहानियो को भी स्थान दिया गया है।

गीतावादी उस समय के लोगो की जो-जो मान्यताएँ शास्त्रो और काव्यो के आधार पर थी, उन सबको, मन की कल्पनाएँ मात्र बताकर, सबकी एकता अथवा सब का समावेश सबके अपने आप मे करके, उनके अलग अस्तित्व का विश्वास मिटाने के उद्देश्य से उनका वर्णन किया गया है। १०वें और ११वें अध्यायो मे सारे विश्व के कल्पित बनावो की अपने आप मे एकता समझाई गई है।

प्रोफेसर . गीता के तीसरे अध्याय मे यज्ञ की अवश्य कर्तव्यता का विधान भी तो किया गया है। हवन यज्ञ करना, यह साम्प्रदायिकता नही तो क्या है ?

गीतावादी : तीसरे अध्याय मे जिस यज्ञ का विधान है, वह हवन आदि कर्मकाड नही है किन्तु अपनी-अपनी योग्यता के चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार नियत किये हुए कर्त्तव्य कर्मों को ही यज्ञ कहा गया है। तीसरा अध्याय कर्म योग का है और इसके ९वें श्लोक से यज्ञ के विधान का आरम्भ हुआ है। उसके पहले के अर्थात् ८वें श्लोक मे भगवान् ने अर्जुन को कहा है कि

नियत कुरु कर्म त्व कर्म ज्यायो ह्यकर्मण.।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः॥

अर्थ "तू अपना नियत कर्म कर। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तो तेरी शरीर यात्रा भी नही हो सकेगी।" फिर इस श्लोक के बाद ही कहा है कि

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धन.।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसग· समाचर॥

अर्थात् "इस लोक मे यज्ञ के सिवाय अन्य किसी प्रयोजन के लिए किए जाने वाले कर्म वन्धन-कारक होते हैं, इसलिए हे कौन्तेय ! तू आसक्ति छोडकर, उस यज्ञ के लिए, भली प्रकार कर्म कर।" इन उपर्युक्त श्लोको पर निष्पक्ष भाव से, साम्प्रदायिक आग्रह छोड कर, विचार किया जाय तो पूर्ण रूप से निश्चय हो जाता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार अपने लिए नियत कर्मों को ही "यज्ञ" कहा है। ८वें श्लोक मे कहा है कि "कर्म किये बिना तेरा शरीर-निर्वाह भी नही होगा", सो शरीर का निर्वाह अपने-अपने नियत कर्म करने पर निर्भर रहता है। हवन अनुष्ठान आदि कर्मकाडो से शरीर का निर्वाह नही होता और ९वें श्लोक मे जो यह कहा है कि "यज्ञ के सिवाय और किसी प्रयोजन के लिए कर्म करना वन्धन-कारक है", यदि यहाँ यज्ञ शब्द का अर्थ हवन, अनुष्ठान आदि ही लिया जाए तो जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के जितने भी कर्म किये जाते हैं, वे सब बन्धनकारक माने जाएँगे। तब मनुष्य के लिए छुटकारा पाने की तो कोई आशा ही नही रह जाती, क्योकि शरीर यात्रा के लिए कर्म करना कभी छूट नही सकता। इसलिए कल्याणार्थी के लिए सदा हवन अनुष्ठान आदि मे ही लगे रहना होगा, तब शरीरो का निर्वाह कैसे होगा ?" इस तरह का अप्राकृतिक और अव्यावहारिक विधान गीता जैसे "व्यवहार दर्शन" मे हो नही सकता। इसके अतिरिक्त ९वें श्लोक के उत्तरार्द्ध मे अर्जुन को आज्ञा दी है कि "तू आसक्ति छोड कर यज्ञ के लिए कर्म कर," सो क्या यह आज्ञा हवन के निमित्त तिल, जव, घी, समिधा आदि सामान एकत्र करने के लिए हो सकती है ? गीता की रचना युद्ध से विरक्त अर्जुन को युद्ध मे प्रवृत्त करने के लिए हुई है और दूसरे अध्याय मे युद्ध करने रूपी अपना क्षात्र धर्म पालन करने का स्पष्ट आदेश दिया गया है।

क्या उस आदेश के विरुद्ध, यहाँ यह कहना युक्ति संगत होता है कि "हवन के सिवाय और प्रयोजन के लिए कर्म करना बन्धनकारक है, इसलिए तू हवन के लिए कर्म कर।" यदि क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करना बन्धनकारक माना जाता तो अर्जुन को उसमें प्रवृत्त करना बिल्कुल असगत होता। भगवान् कृष्ण इस तरह की असगत और परस्पर विरोधी बातें नही कह सकते थे। सच बात तो यह है कि गीता मे विधान किया हुआ "यज्ञ" चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने-अपने नियत कर्म, लोक सग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए करना ही है। अर्जुन का उस समय अपने क्षात्र धर्म के अनुसार कर्त्तव्य कर्म, युद्ध करना ही "यज्ञ" था। गीता मे विधान किये हुए "यज्ञ" का अर्थ इसी पृष्ठ भूमि पर दृष्टि रखते हुए करना चाहिए।

प्रोफेसर : आगे १०वें श्लोक मे कहा है कि, "प्रजापति ब्रह्मा ने पहले यज्ञ सहित प्रजा रची", इससे विदित होता है कि पौराणिक कथाओ के अनुसार ब्रह्मा और कर्म काडात्मक यज्ञ करने को ही कृष्ण ने मान्यता दी है ?

गीतावादी : जब कृष्ण ने वेदो को ही मान्यता नही दी, तो पुराणो को मान्यता कैसे दे सकते थे ? समष्टि संकल्प रूप प्रकृति का ही एक नाम ब्रह्मा है। गीता में सृष्टि की रचना सर्वत्र प्रकृति द्वारा ही बताई गई है। १०वें श्लोक का तात्पर्य यह है कि प्रकृति द्वारा लोगो की रचना, उनके स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्मों के साथ ही होती है, जिनको यथावत करते रहने से सबके जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होती रहती है। क्योकि लोगो के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ सबके अपने-अपने काम करने से ही उत्पन्न होते हैं। गीता मे इसी को 'यज्ञ" कहा है। अगर यहाँ "यज्ञ" शब्द का अर्थ हवन करना मान लिया जाय तो उसकी कुछ भी सगति नही बैठती, क्योकि हवन के साथ ही प्रजा की रचना होती तो सब कोई सदा हवन ही करते रहते और उसी से सबके खाने, पीने, रहने आदि के पदार्थ उत्पन्न हो जाते, परन्तु ऐसा तो कही भी नही होता। यद्यपि अब हवन कोई नही करता है पर अपनी-अपनी योग्यता से काम करने से सबके जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होकर प्राप्त हो जाते हैं।

प्रोफेसर : ११-१२वें श्लोको मे यज्ञ द्वारा देवताओ के पुष्ट होने का भी तो कहा है। देवता तो हवन से ही पुष्ट होते हैं, ऐसा शास्त्रों का कथन है।

गीतावादी . यहाँ जिन देवो के पुष्ट होने का कहा है, वे शास्त्रो मे वर्णित स्वर्गादि लोको मे रहने वाले देवता नही हैं, किन्तु स्थूल विश्व को धारण पोषण करने वाली सूक्ष्म समष्टि शक्तियो को "देव" कहा है। अलग-अलग व्यक्तियो की व्यष्टि शक्तियो की क्रियाओ के योग से समष्टि शक्तियाँ पूरित होती है और उन पूरित हुई समष्टि शक्तियो से सब लोगो के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनमे उन लोगो की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। जिस तरह एक राष्ट्र के अलग-अलग व्यक्तियो की विद्या और ज्ञान के योग से सारे राष्ट्र के राष्ट्रीय विद्या और ज्ञान बनते हैं, जिससे वह राष्ट्र अपने लोगो को विद्या और ज्ञान से पूरित करता है, अलग-अलग व्यक्तियो के बल के योग से राष्ट्र बलवान होता है, जिससे वह सबकी रक्षा करता है; अलग-अलग व्यक्तियो की सम्पत्ति के योग से राष्ट्र सम्पत्तिवान होता है, जिससे वह लोगो की आर्थिक उन्नति करता है और अलग-अलग व्यक्तियो के उद्योग के योग से राष्ट्र उद्योग से पूर्ण होता है, जिससे लोगो के जीवन की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी होती है, उसी तरह ससार मे प्रत्येक व्यक्ति चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार अपने-अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्म करके समष्टि शक्तियो को पुष्ट करता है, तब समष्टि शक्तियो द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। यही भाव इन श्लोको मे वर्णित यज्ञ के द्वारा देवताओ को पुष्ट करने और उन देवताओ के पुष्ट होने से सबकी आवश्यकताएँ पूरी होने का है। हमारी केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व वित्त मन्त्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने गत वर्ष के बजट पर लोक सभा मे अपना भाषण देते हुए गीता के इन्ही श्लोको का हवाला देकर द्वितीय पच-

उनका निषेध कर दिया। साराश यह कि गीता मे इन गतियो के उल्लेख का तात्पर्य उनके खण्डन करने का है, न कि उनकी पुष्टि करने का।

प्रोफेसर : १०वें और ११वें अध्यायो मे आदित्यो, बसुओ, रुद्रो, अश्विनी कुमारो, मरुतगणो, गन्धर्वो, सिद्धो, पितरो, वरुणो, यक्षो, नागो, सुरो, असुरो आदि का भी तो वर्णन किया गया है और कमलासन पर बैठे ब्रह्मा का जिक्र है तथा कई पौराणिक कहानियो को भी स्थान दिया गया है।

गीतावादी उस समय के लोगो की जो-जो मान्यताएँ शास्त्रो और काव्यो के आधार पर थी, उन सबको, मन की कल्पनाएँ मात्र बताकर, सबकी एकता अथवा सब का समावेश सबके अपने आप मे करके, उनके अलग अस्तित्व का विश्वास मिटाने के उद्देश्य से उनका वर्णन किया गया है। १०वें और ११वें अध्यायो मे सारे विश्व के कल्पित बनावो की अपने आप मे एकता समझाई गई है।

प्रोफेसर . गीता के तीसरे अध्याय मे यज्ञ की अवश्य कर्तव्यता का विधान भी तो किया गया है। हवन यज्ञ करना, यह साम्प्रदायिकता नही तो क्या है ?

गीतावादी : तीसरे अध्याय मे जिस यज्ञ का विधान है, वह हवन आदि कर्मकाड नही है किन्तु अपनी-अपनी योग्यता के चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार नियत किये हुए कर्त्तव्य कर्मो को ही यज्ञ कहा गया है। तीसरा अध्याय कर्म योग का है और इसके ९वें श्लोक से यज्ञ के विधान का आरम्भ हुआ है। उसके पहले के अर्थात् ८वें श्लोक मे भगवान् ने अर्जुन को कहा है कि

नियत कुरु कर्म त्व कर्म ज्यायो ह्यकर्मण.।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण॰॥

अर्थ "तू अपना नियत कर्म कर। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तो तेरी शरीर यात्रा भी नही हो सकेगी।" फिर इस श्लोक के बाद ही कहा है कि

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धन.।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसग॰ समाचर॥

अर्थात् "इस लोक मे यज्ञ के सिवाय अन्य किसी प्रयोजन के लिए किए जाने वाले कर्म बन्धन-कारक होते हैं, इसलिए हे कौन्तेय ! तू आसक्ति छोडकर, उस यज्ञ के लिए, भली प्रकार कर्म कर।" इन उपर्युक्त श्लोको पर निष्पक्ष भाव से, साम्प्रदायिक आग्रह छोड कर, विचार किया जाय तो पूर्ण रूप से निश्चय हो जाता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार अपने लिए नियत कर्मो को ही "यज्ञ" कहा है। ८वें श्लोक मे कहा है कि "कर्म किये विना तेरा शरीर-निर्वाह भी नही होगा", सो शरीर का निर्वाह अपने-अपने नियत कर्म करने पर निर्भर रहता है। हवन अनुष्ठान आदि कर्मकाडो से शरीर का निर्वाह नही होता और ९वें श्लोक मे जो यह कहा है कि "यज्ञ के सिवाय और किसी प्रयोजन के लिए कर्म करना बन्धन-कारक है", यदि यहाँ यज्ञ शब्द का अर्थ हवन, अनुष्ठान आदि ही लिया जाए तो जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के जितने भी कर्म किये जाते हैं, वे सब बन्धनकारक माने जाएँगे। तब मनुष्य के लिए छुटकारा पाने की तो कोई आशा ही नही रह जाती, क्योकि शरीर यात्रा के लिए कर्म करना कभी छूट नही सकता। इसलिए कल्याणार्थी के लिए सदा हवन अनुष्ठान आदि मे ही लगे रहना होगा, तब शरीरो का निर्वाह कैसे होगा ?" इस तरह का अप्राकृतिक और अव्यावहारिक विधान गीता जैसे "व्यवहार दर्शन" मे हो नही सकता। इसके अतिरिक्त ९वें श्लोक के उत्तरार्द्ध मे अर्जुन को आज्ञा दी है कि "तू आसक्ति छोड कर यज्ञ के लिए कर्म कर," सो क्या यह आज्ञा हवन के निमित्त तिल, जव, घी, समिधा आदि सामान एकत्र करने के लिए हो सकती है ? गीता की रचना युद्ध से विरक्त अर्जुन को युद्ध मे प्रवृत्त करने के लिए हुई है और दूसरे अध्याय मे युद्ध करने रूपी अपना क्षात्र धर्म पालन करने का स्पष्ट आदेश दिया गया है।

क्या उस आदेश के विरुद्ध, यहाँ यह कहना युक्ति संगत होता है कि "हवन के सिवाय और प्रयोजन के लिए कर्म करना बन्धनकारक है, इसलिए तू हवन के लिए कर्म कर।" यदि क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करना बन्धनकारक माना जाता तो अर्जुन को उसमे प्रवृत्त करना बिल्कुल असगत होता। भगवान् कृष्ण इस तरह की असंगत और परस्पर विरोधी बाते नही कह सकते थे। सच बात तो यह है कि गीता मे विधान किया हुआ "यज्ञ" चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने-अपने नियत कर्म, लोक सग्रह अर्थात् समाज की सुव्यवस्था के लिए करना ही है। अर्जुन का उस समय अपने क्षात्र धर्म के अनुसार कर्त्तव्य कर्म, युद्ध करना ही "यज्ञ" था। गीता मे विधान किये हुए "यज्ञ" का अर्थ इसी पृष्ठ भूमि पर दृष्टि रखते हुए करना चाहिए।

प्रोफेसर : आगे १०वें श्लोक मे कहा है कि, "प्रजापति ब्रह्मा ने पहले यज्ञ सहित प्रजा रची", इससे विदित होता है कि पौराणिक कथाओ के अनुसार ब्रह्मा और कर्म काडात्मक यज्ञ करने को ही कृष्ण ने मान्यता दी है ?

गीतावादी : जब कृष्ण ने वेदो को ही मान्यता नही दी, तो पुराणो को मान्यता कैसे दे सकते थे ? समष्टि सकल्प रूप प्रकृति का ही एक नाम ब्रह्मा है। गीता मे सृष्टि की रचना सर्वत्र प्रकृति द्वारा ही बताई गई है। १०वें श्लोक का तात्पर्य यह है कि प्रकृति द्वारा लोगो की रचना, उनके स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्मों के साथ ही होती है, जिनको यथावत करते रहने से सबके जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होती रहती हैं। क्योकि लोगो के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ सबके अपने-अपने काम करने से ही उत्पन्न होते है। गीता मे इसी को 'यज्ञ" कहा है। अगर यहाँ "यज्ञ" शब्द का अर्थ हवन करना मान लिया जाय तो उसकी कुछ भी सगति नही बैठती, क्योकि हवन के साथ ही प्रजा की रचना होती तो सब कोई सदा हवन ही करते रहते और उसी से सबके खाने, पीने, रहने आदि के पदार्थ उत्पन्न हो जाते, परन्तु ऐसा तो कही भी नही होता। यद्यपि अब हवन कोई नही करता है पर अपनी-अपनी योग्यता से काम करने से सबके जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होकर प्राप्त हो जाते हैं।

प्रोफेसर : ११-१२वें श्लोको मे यज्ञ द्वारा देवताओ के पुष्ट होने का भी तो कहा है। देवता तो हवन मे ही पुष्ट होते हैं, ऐसा शास्त्रो का कथन है।

गीतावादी यहाँ जिन देवो के पुष्ट होने का कहा है, वे शास्त्रो मे वर्णित स्वर्गादि लोको मे रहने वाले देवता नही हैं, किन्तु स्थूल विश्व को धारण पोषण करने वाली सूक्ष्म समष्टि शक्तियो को "देव" कहा है। अलग-अलग व्यक्तियो की व्यष्टि शक्तियो की क्रियाओ के योग से समष्टि शक्तियाँ पूरित होती हैं और उन पूरित हुई समष्टि शक्तियो से सब लोगो के जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनसे उन लोगो की आवश्यकताएँ पूरी होती है। जिस तरह एक राष्ट्र के अलग-अलग व्यक्तियो की विद्या और ज्ञान के योग से सारे राष्ट्र के राष्ट्रीय विद्या और ज्ञान बनते हैं, जिससे वह राष्ट्र अपने लोगो को विद्या और ज्ञान से पूरित करता है, अलग-अलग व्यक्तियो के बल के योग से राष्ट्र बलवान होता है, जिससे वह सबकी रक्षा करता है, अलग-अलग व्यक्तियो की सम्पत्ति के योग से राष्ट्र सम्पत्तिवान होता है, जिससे वह लोगो की आर्थिक उन्नति करता है और अलग-अलग व्यक्तियो के उद्योग के योग से राष्ट्र उद्योग से पूर्ण होता है, जिससे लोगो के जीवन की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं; उसी तरह ससार मे प्रत्येक व्यक्ति चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानुसार अपने-अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्म करके समष्टि शक्तियों को पुष्ट करता है, तब समष्टि शक्तियो द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ पूरी करता है। यही भाव इन श्लोको मे वर्णित यज्ञ के द्वारा देवताओ को पुष्ट करने और उन देवताओ के पुष्ट होने से सबकी आवश्यकताएँ पूरी होने का है। हमारी केन्द्रीय सरकार के भूतपूर्व वित्त मन्त्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने गत वर्ष के बजट पर लोक सभा मे अपना भाषण देते हुए गीता के इन्ही श्लोको का हवाला देकर द्वितीय पच-

वर्षीय योजना मे सबको अपनी अपनी योग्यतानुसार सहयोग देने का अनुरोध किया था और हमारे प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू भी देश के सब प्रकार के उद्योग धन्धो मे योग देने को ही यज्ञादिक, सच्चा धार्मिक कर्मकाड कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने भी देवताओ का अस्तित्व माना है। शायद उनका मतलब भी इन्ही सूक्ष्म समष्टि शक्तियो से होगा।

जगत से भिन्न देवताओ को मान कर उनका भजन पूजन करने वालो की तो ७वें और ९वें अध्याय मे बहुत निन्दा की गई है।

प्रोफेसर : पर १४ वें श्लोक मे कहा है कि "भूत प्राणी अन्न से होते हैं, अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है," इससे तो मालूम होता है कि हवन से वर्षा होने का शास्त्रो मे जो वर्णन है, वही कृष्ण ने माना है।

गीतावादी : ऐसी बात नही है। इस श्लोक मे "पर्जन्य" शब्द आया है, उसका प्रचलित अर्थ "वर्षा किया जाता है, जो बहुत सकुचित है। "पर्जन्य" शब्द का व्यापक अर्थ उत्पादक शक्ति है। "जन्य" शब्द का अर्थ है "उत्पन्न करने योग्य", जिसके पहले "परि" उपसर्ग लगाकर, "पर्जन्य" शब्द बना है। उत्पादक शक्ति से अन्न आदि खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते है और वह उत्पादक शक्ति सब के अपने-अपने काम करने रूप यज्ञ से ही बनती है, इसलिए श्लोक के अन्त मे "यज्ञ कर्मसमुद्भव" कहकर अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है कि अपने-अपने कर्म करने रूप यज्ञ से ही उत्पादक शक्ति होती है। गीता के साम्प्रदायिक टीकाकारो ने पूर्वापर की सगति पर कुछ भी ध्यान न देकर "पर्जन्य" शब्द का प्रचलित सकुचित अर्थ वर्षा और "यज्ञ" शब्द का प्रचलित अर्थ हवन करके, गीता मे वैदिक कर्म काड का विधान बता कर उसको साम्प्रदायिक रूप दे दिया है, जिसके फलस्वरूप आम जनता भी इसको एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ समझ रही है, परन्तु भगवान कृष्ण गीता जैसे "व्यवहार दर्शन" मे इस तरह की अव्यावहारिक और अयुक्तिक तथा पूर्वापर विरोधी बातें कैसे कह सकते थे कि हवन से वर्षा होती है और केवल वर्षा ही से खाद्य पदार्थ होते हैं, क्योकि जिन देशो मे कभी हवन का नाम भी नही सुना गया, वहां सदा बहुतायत से वर्षा होती रहती है और बहुत से उद्योगशील पुरुषार्थी लोग वर्षा न होने पर भी नहरों आदि की सिंचाई से खाद्य पदार्थ उत्पन्न करते रहते हैं। जब गीता के दूसरे अध्याय मे ही वैदिक कर्म काडो का खडन कर आये हैं, तो उसके विरुद्ध तीसरे अध्याय मे हवन का विधान होना कभी बुद्धि सगत नही हो सकता। तीसरे अध्याय के १३वें और १६वें श्लोको मे यज्ञ मे भाग नही लेने वालो को चोर, पापी कह कर उनको जीने के अनाधिकारी कहा है, तो क्या यह बात थोडी देर के लिए भी मानी जा सकती है कि जो सज्जन हवन नही करते हैं, उन सब को कृष्ण पापी, चोर और जीने के अनधिकारी समझते थे ?

प्रोफेसर . नही, अक्ल तो यह गवाही नही देती।

गीतावादी : प्रोफेसर साहब ! भगवान् बुद्ध की तरह कृष्ण पूरे बुद्धिवादी थे। गीता के दूसरे अध्याय के आरम्भ से ही अर्जुन को बुद्धि से काम लेने और स्वतन्त्र विचार करने का उपदेश देते चले गये हैं। पूर्णावस्था की निर्वाण स्थिति को प्राप्त हुए लोगो को "स्थित प्रज्ञ" अर्थात् निश्चित बुद्धिवान विशेषण दिया है और सर्वत्र बुद्धि और ज्ञान ही की महिमा गाई है। वहां साम्प्रदायिक कर्म काडो के अन्धविश्वास के लिए अवकाश ही कहां रह सकता है। १८वें अध्याय के ६३वे श्लोक मे कृष्ण ने अर्जुन को यहां तक कह दिया है कि "मैंने तुझको गुह्य से गुह्य ज्ञान कहा है, इस पर पूरी तरह विचार करके, फिर तेरी जो इच्छा हो, सो कर अर्थात् मेरे उपदेशो मे भी अन्धश्रद्धा मत कर, किन्तु अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से अच्छी तरह विचार करके फिर तुझे जो अच्छा लगे सो कर।" यही बात भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यो को कही थी। इससे स्पष्ट है कि भगवान् कृष्ण

और बुद्ध के सिद्धान्तो मे अन्धविश्वासों को कोई स्थान नही दिया गया है, किन्तु बुद्धि से काम लेने का विचार स्वातन्त्र्य है।

प्रोफेसर : चौथे अध्याय के २४वें श्लोक मे कहा है कि "यज्ञ के उपकरण, होम किया जाने वाला पदार्थ, होम की अग्नि और होम करने वाला, सभी ब्रह्म है" और ६वें अध्याय के १६वें श्लोक मे कहा है कि "मैं क्रतु हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं स्वधा हूँ, मैं मन्त्र हूँ, मैं औषधी हूँ, मैं घी हूँ, मैं अग्नि हूँ, और मैं आहुति हूँ।" इससे तो विदित होता है कि कृष्ण ने हवन को मान्यता दी है।

गीतावादी : आप को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उस समय देश मे हवन का बहुत अधिक प्रचार था। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त ऐसा कोई भी शुभ अवसर नही था, जो हवन के बिना सम्पन्न होता। आर्यों का सारा जीवन ही एक प्रकार से हवनमय अथवा कर्मकाडमय ही था। ऐसी परिस्थिति मे, यह कृष्ण जैसे महापुरुष का ही अदम्य साहस था कि इतने गहरे अन्धविश्वासो का विरोध करता। आपने जिन श्लोको का उल्लेख किया है उनमे हवन की मान्यता की पुष्टि करने का तात्पर्य नही है, किन्तु सब के अपने-अपने कर्तव्य कर्मों को हवन का रूपक देकर, उन सब मे परमात्मा की सर्वव्यापकता की एकता और समता की बुद्धि करने का है। इन श्लोको का यह अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने पेशे के काम करने के औजार, क्रिया, द्रव्य, जिनके लिए काम किये जाते हैं, वे, और स्वय काम करने वाला, सब परमात्मा रूप है अर्थात् सब की एकता है। बुद्धि मे इस एकता और समता का निश्चय रखते हुए सब को अपनी-अपनी योग्यता के कर्तव्य कर्म करना चाहिए। चौथे अध्याय के २५ से ३० तक के श्लोको मे उस समय के लोगो मे प्रचलित अनेक प्रकार के "यज्ञो" का कुछ उल्लेख करके अन्त मे यह स्पष्ट कर दिया है कि लोग इनको भी "यज्ञ" ही मानते हैं। परन्तु इन सब से ज्ञान यज्ञ ही श्रेष्ठ है अर्थात् सब की एकता के ज्ञान युक्त अपनी-अपनी योग्यता के कर्म, लोक सग्रह के लिए करना ही सच्चा यज्ञ है। १७ वें अध्याय मे "यज्ञ" के तीन भेद किये हैं, उनमे "सात्विक यज्ञ" इसी को कहा है। अन्य यज्ञो को राजस, तामस कहा है। और १८वें अध्याय मे इसी "यज्ञ" की आवश्यकता का विधान किया गया है।

प्रोफेसर : गीता मे विधान किए हुए "यज्ञ" का जो खुलासा आप ने किया, वह ठीक समझ मे आता है। यही "यज्ञ" बुद्धि सगत है और इसमें कोई साम्प्रदायिकता नही है। ससार के सभी लोगो के लिए यह "यज्ञ" करना आवश्यक है और इसी से सब की आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। पर भाई साहब! यह बात आप नही कहिए कि गीता मे साम्प्रदायिकता है ही नही। गीता का आरम्भ ही साम्प्रदायिकता के आधार पर हुआ। प्रथम अध्याय ही मे अर्जुन ने धर्म नाश होने, अधर्म बढने, पिंडोदक क्रियाएँ लुप्त होने, जाति धर्म और कुल धर्म नष्ट होने और हत्या के पाप से पितरो सहित नरक मे पडने आदि की बातें शास्त्रो के आधार पर कही हैं।

गीतावादी : महाशय जी! गीता के "व्यवहार दर्शन" का आरम्भ यथार्थ में प्रथम अध्याय से नही होता प्रथम अध्याय मे तो अर्जुन के विषाद का ही वर्णन है, इसीलिए इस अध्याय का नाम ही "अर्जुन विषाद योग" है। गीता का यथार्थ आरम्भ दूसरे अध्याय के दूसरे और तीसरे श्लोको मे, भगवान् श्रीकृष्ण के वचनो से होता है जिनमे भगवान् ने पहले अध्याय मे कही हुई अर्जुन की बातो को कड़े शब्दो मे उसकी मूर्खता बताकर, उसको फटकारा है।

प्रोफेसर : फिर दूसरे अध्याय के ७वें श्लोक मे अर्जुन ने अपने को "धर्म समूढ़ चेता" कह कर धर्म के विषय मे ही शिक्षा देने की कृष्ण से प्रार्थना की है।

गीतावादी यहाँ "धर्म संमूढ चेता" से साम्प्रदायिक धर्म का तात्पर्य नहीं है किन्तु अपने कर्तव्य कर्म के विषय मे कि कर्त्तव्य विमूढता का है।

प्रोफेसर : परन्तु आगे दूसरे अध्याय मे ३१ से ३७ तक के श्लोको मे स्वय कृष्ण ने ही अर्जुन को अपने धर्म पर डटे रहने का जोर दिया है और उसी से स्वर्ग प्राप्त होने का आश्वासन दिया है।

गीतावादी गीता मे भगवान् कृष्ण ने जहाँ-जहाँ धर्म पालन करने का विधान किया है, वहाँ धर्म शब्द का अर्थ, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने शरीर के स्वाभाविक गुणो की योग्यता के कर्तव्य कर्म करना है, न कि किसी साम्प्रदायिक धर्म का। अर्जुन अपने शरीर के स्वाभाविक गुणो के अनुसार क्षत्रिय था और दुष्टो के साथ युद्ध करना उसका कर्तव्य था और वही उसका स्वाभाविक धर्म था। उस कर्तव्य कर्म रूप धर्म की अर्जुन के माने हुए शास्त्रो के आधार पर ही अवश्य कर्तव्यता यहाँ बताई गई है। स्वर्ग प्राप्ति का उल्लेख भी अर्जुन के माने हुए शास्त्रो के अनुसार ही किया गया है जिनमे कहा गया है कि "वीर क्षत्रिय युद्ध मे मरकर स्वर्ग प्राप्त करता है।" यह मत भगवान श्री कृष्ण का अपना नही है, क्योकि उसके बाद ही ३८वें श्लोक मे साफ कह दिया है कि "सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-अजय, को समान मानकर युद्ध कर। ऐसा करने से तुझे जो पाप का भय है, वह न लगेगा।" गीता मे सर्वत्र अपने कर्तव्य कर्म निष्काम भाव से करने को कहा गया है। इसलिए स्वर्ग प्राप्ति की कामना के प्रलोभन के लिए वहाँ स्थान ही नही है। पूर्वापर की सगति मिलाकर गीता का अर्थ करनाचाहिए। भगवान कृष्ण के कहे हुए "व्यवहार दर्शन" मे यह कैसे हो सकता है कि परस्पर विरोधी बातें कही जाएँ ?

प्रोफेसर : वर्ण व्यवस्था भी तो साम्प्रदायिकता ही है। हिन्दू लोग वर्ण व्यवस्था को अपने धर्म का एक अग मानते हैं।

गीतावादी वर्ण व्यवस्था समाज की सुव्यवस्था के लिए कार्य विभाग का विधान है। जिस व्यक्ति के शरीर की जो स्वाभाविक योग्यता हो, उसके अनुसार समाज की आवश्यकताएँ पूर्ति के कार्य करने की व्यवस्था ही वर्ण व्यवस्था है। समाज की सुख शान्ति के लिए अपनी-अपनी योग्यता के काम करने की हमारे यहाँ वैज्ञानिक ढग से कार्य विभाग की व्यवस्था की गई थी, ताकि जो व्यक्ति जिस काम के करने के योग्य हो, वही काम करे ताकि वह सुचारु रूप से काम हो सके। सभी सभ्य समाजो मे योग्यतानुसार काम करने की व्यवस्था होती है, इसलिए कार्य विभाग की वर्ण व्यवस्थामे किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नही है। मध्य युग मे इस देशमे इस कार्य विभाग के लिए गुणो की योग्यता की उपेक्षा करके जन्मजात अधिकार मान लिया गया। उसी से इस मे साम्प्रदायिकता का रूप आ गया, जिससे देश की बडी भारी हानि हुई। जिस वैज्ञानिक सिद्धान्त पर वर्ण व्यवस्था रची गई थी और जिसका विधान गीता मे किया गया है, यदि वही प्रचलित रहती तो इस देश की अधोगति नही होती। वर्तमान मे तो वर्ण व्यवस्था का इतना विपर्यास हो गया है कि वास्तव मे वर्ण व्यवस्था रही ही नही। उसके स्थान पर जन्मगत जाति-पाँति के अगणित भेद हो गये और उसी को धर्म का अग मान लिया गया, इसलिए लोगो को वर्ण व्यवस्था मे साम्प्रदायिकता प्रतीत होती है।

प्राय सभी सम्प्रदाय या मजहब किसी अपार शक्ति सम्पन्न और विशेष गुणो वाले अदृश्य ईश्वर या उसी तरह के किसी अप्रत्यक्ष, कल्पित व्यक्ति के अस्तित्व की मान्यता पर निर्भर रहते हैं परन्तु जहाँ सब के अपने आप मे और जगत से भिन्न किसी अलग ईश्वर या अप्रत्यक्ष व्यक्ति का होना माना ही नही जाता, वहाँ साम्प्रदायिकता अथवा मजहबीपन के लिए कोई स्थान नही रहता। गीता मे तो भगवान् कृष्ण ने अपने उपदेश के अन्त मे साफ शब्दो मे कह दिया है कि "सब धर्मो को बिल्कुल छोडकर एक मेरी शरण मे आ" अर्थात "मैं

शब्द से प्रतिपादित सर्वव्यापक, सब की एकता स्वरूप अपने आपका अनुभव कर। इस नि.सकोच सिंह गर्जन के सामने सम्प्रदाय रूपी सियार ठहर ही नही सकते।

प्रोफेसर . गीता के १६वें अध्याय के २३वे श्लोक मे कृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि "जो शास्त्र विधि को छोडकर अपनी मनमानी करता है, उसकी दुर्दशा होती है, इसलिए तू शास्त्र के प्रमाण से कर्तव्या-कर्तव्य का निर्णय करके शास्त्र विधि के अनुसार कर्म कर।" इससे साम्प्रदायिक शास्त्रो के मानने पर जोर दिया मालूम होता है।

गीतावादी · गीता मे अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने वाले और उस सिद्धान्त के आधार पर सासारिक व्यवहार करने का विधान करने वाले शास्त्रो ही को शास्त्र माना है। १३वें अध्याय के चौथे श्लोक मे उपनिषदो और ब्रह्म सूत्र को प्रमाणिक माना है और १५वें अध्याय मे, अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन करके, अन्त के श्लोक मे इसी को शास्त्र कहा है। फिर १६वें अध्याय के अन्त मे इसी को शास्त्र के अनुसार अपना कर्तव्य कर्म करने को अर्जुन से कहा गया है। जो इन शास्त्रो के अनुसार सब की एकता के ज्ञान-पूर्वक अपने कर्म कर्तव्य नही करते, किन्तु अपनी व्यक्तिगत कामनाओ की पूर्ति के लिए ही भेदवाद के शास्त्रो के आधार पर चेष्टाएँ करते रहते हैं, उनकी दुर्दशा होना निश्चित बताया है। भेदवाद के शास्त्रो की तो दूसरे अध्याय के ५२-५३वें श्लोक मे स्पष्टतया निन्दा की गई है। जहाँ अर्जुन को कहा है कि "जब तेरी बुद्धि अज्ञान रूपी कीचड से निकल जाएगी, तब तू शास्त्रो मे सुनाए जाने वाले और सुने गये वचनो की उपेक्षा कर देगा। श्रुति के वचनो से विक्षिप्त हुई तेरी बुद्धि जब समता के भाव मे अचल और अटल हो जाएगी, तब तुझे समत्व योग प्राप्त होगा।" इन वाक्यो से साफ है कि गीता भेदवाद के साम्प्रदायिक शास्त्रो को हेय मानती है।

प्रोफेसर · पर कृष्ण ने तो गीता मे अपनी भक्ति तथा पूजा करवाने पर बहुत जोर दिया है। जगह जगह कहा है कि 'मुझ मे चित्त लगा दे, मेरी भक्ति कर, मेरी उपासना कर, मेरा भजन कर, मेरे लिए कर्म कर, सब कुछ मेरे अर्पण कर, मेरी शरण मे आ. मुझे नमस्कार कर" इत्यादि और अपनी बडाई भी बहुत हाँकी है, जैसे कि 'सब यज्ञो और तपो का भोक्ता मे ही हूँ। सब लोगो का महान ईश्वर मे हूँ, मैं पुरुषोत्तम हूँ। यहाँ तक कहा है कि "अमृत और अव्यय ब्रह्म का, शाश्वत धर्म और अत्यतिक सुख का आधार मैं ही हूँ।" ७वे से १२वें अध्याय तक ६ अध्याय तो भक्ति या उपासना के ही माने जाते हैं। भक्ति मार्ग ही तो सबसे बडी साम्प्र-दायिकता है।

गीतावादी : मैंने आपको पहले ही बतला दिया है कि कृष्ण ने गीता मे उत्तम पुरुष वाचक सर्वनामो का जो प्रयोग किया है, वह शरीरधारी कृष्ण के व्यक्तित्व के लिए नही किया है, किन्तु सारे विश्व के आत्मभाव यानी सब की एकता के भाव से किया है और इस तथ्य को स्थान-स्थान पर साफ भी कर दिया है कि "मैं अपनी परा और अपरा प्रकृति से जगत् को धारण करता हूँ, जगत् की उत्पत्ति और सहार करता हूँ, मणियो मे धागे की तरह मैं सब मे ओत प्रोत पिरोया हुआ हूँ, मैं सबकी आत्मा हूँ, मैं सबके अन्दर समान रूप से रहता हूँ, मैं सब भूतों का बीज हूँ, मेरे बिना संसार मे कोई भी चराचर वस्तु नही है, मैं अपने एक अंश से जगत् को धारण किए हुए हूँ", इत्यादि वाक्यो से अपना सर्वात्मभाव बार-बार जताते रहे हैं और ११वें अध्याय मे तो अपना विश्वरूप दिखला कर सारे विश्व के साथ अपनी एकता पूर्णतया बता दी। १०वें अध्याय के विभूति वर्णन मे वसुदेव के घर मे जन्म लेने वाले अपने कृष्ण के शरीर को अपनी अनेक विभूतियों मे से एक विभूति गिनाया है, इससे स्पष्ट होता है कि गीता मे कृष्ण ने जो मैं, मेरा, मुझे, मुझ से, मुझ मे, मेरे लिए, मेरे द्वारा आदि सर्वनाम कहे हैं, वे कृष्ण के व्यक्ति शरीर के लिए नही हैं, किन्तु विश्वात्मा अर्थात् सारे विश्व के एकत्व भाव के लिए कहे हैं। इस तथ्य पर

गीतावादी यहाँ "धर्म समूढ चेता" से साम्प्रदायिक धर्म का तात्पर्य नहीं है किन्तु अपने कर्तव्य कर्म के विषय मे कि कर्तव्य विमूढता का है।

प्रोफेसर : परन्तु आगे दूसरे अध्याय मे ३१ से ३७ तक के श्लोको मे स्वय कृष्ण ने ही अर्जुन को अपने धर्म पर डटे रहने का जोर दिया है और उसी से स्वर्ग प्राप्त होने का आश्वासन दिया है।

गीतावादी गीता मे भगवान् कृष्ण ने जहाँ-जहाँ धर्म पालन करने का विधान किया है, वहाँ धर्म शब्द का अर्थ, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने शरीर के स्वाभाविक गुणो की योग्यत के कर्तव्य कर्म करना है, न कि किसी साम्प्रदायिक धर्म का। अर्जुन अपने शरीर के स्वाभाविक गुणो के अनुसा क्षत्रिय था और दुष्टो के साथ युद्ध करना उसका कर्तव्य था और वही उसका स्वाभाविक धर्म था। उस कर्तव्य क रूप धर्म की अर्जुन के माने हुए शास्त्रो के आधार पर ही अवश्य कर्तव्यता यहाँ बताई गई है। स्वर्ग प्राप्ति उल्लेख भी अर्जुन के माने हुए शास्त्रो के अनुसार ही किया गया है जिनमे कहा गया है कि "वीर क्षत्रिय यु मरकर स्वर्ग प्राप्त करता है।" यह मत भगवान श्री कृष्ण का अपना नही है, क्योकि उसके बाद ही ३८वें मे साफ कह दिया है कि "सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-अजय, को समान मानकर युद्ध कर। ऐसा करने जो पाप का भय है, वह न लगेगा।" गीता मे सर्वत्र अपने कर्तव्य कर्म निष्काम भाव से करने को कहा ग इसलिए स्वर्ग प्राप्ति की कामना के प्रलोभन के लिए वहाँ स्थान ही नही है। पूर्वापर की सगति मिला का अर्थ करनाचाहिए। भगवान कृष्ण के कहे हुए "व्यवहार दर्शन" मे यह कैसे हो सकता है ि विरोधी बातें कही जाएँ ?

प्रोफेसर : वर्ण व्यवस्था भी तो साम्प्रदायिकता ही है। हिन्दू लोग वर्ण व्यवस्था को अ एक अग मानते हैं।

गीतावादी वर्ण व्यवस्था समाज की सुव्यवस्था के लिए कार्य विभाग का विधान है के शरीर की जो स्वाभाविक योग्यता हो, उसके अनुसार समाज की आवश्यकताएँ पूर्ति के कार्य क ही वर्ण व्यवस्था है। समाज की सुख शान्ति के लिए अपनी-अपनी योग्यता के काम करने की निक ढग से कार्य विभाग की व्यवस्था की गई थी, ताकि जो व्यक्ति जिस काम के करने के र करे ताकि वह सुचारु रूप से काम हो सके। सभी सभ्य समाजो मे योग्यतानुसार काम करने इसलिए कार्य विभाग की वर्ण व्यवस्थामे किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नही है' मध्य युग विभाग के लिए गुणो की योग्यता की उपेक्षा करके जन्मजात अधिकार मान लिया गया दायिकता का रूप आ गया, जिससे देश की बडी भारी हानि हुई। जिस वैज्ञानिक सि रची गई थी और जिसका विधान गीता मे किया गया है, यदि वही प्रचलित रहती नही होती। वर्तमान मे तो वर्ण व्यवस्था का इतना विपर्यास हो गया है कि वास्त नही। उसके स्थान पर जन्मगत जाति-पाँति के अगणित भेद हो गये और उसी को इसलिए लोगो को वर्ण व्यवस्था मे साम्प्रदायिकता प्रतीत होती है।

प्राय सभी सम्प्रदाय या मजहब किसी अपार शक्ति सम्पन्न और उसी तरह के किसी अप्रत्यक्ष, कल्पित व्यक्ति के अस्तित्व की मान्यता पर अपने आप से और जगत से भिन्न किसी अलग ईश्वर या अप्रत्यक्ष व्यक्ति साम्प्रदायिकता अथवा मजहबीपन के लिए कोई स्थान नही रहता। गीत के अन्त मे साफ शब्दो मे कह दिया है कि "सब धर्मो को बिल्कुल छो

पूजन का विधान किया है, परन्तु गीता मे इस तरह के पूजन अर्चन का कही भी विधान नही है। गीता 'व्यवहार दर्शन' का ग्रन्थ है और व्यावहारिक पूर्ण पुरुष की क्या योग्यता और उसमे क्या-क्या गुण होते हैं, वे चतुर्भुज रूप का रूपक बाध कर यहाँ बताया गया है।

प्रोफेसर : ९वे अध्याय के २६वें श्लोक मे कहा है कि "जो भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल मुझे प्रीतिपूर्वक देता है, वह मैं खाता हूँ," तो पत्र, पुष्प, फल और जल मूर्तियो पर ही तो चढाये जाते हैं, इससे मूर्ति पूजा का विधान पाया जाता है।

गीतावादी : उस श्लोक मे या उसके पहले, पीछे कही भी प्रतीक, मूर्ति, चित्र आदि की पूजा का विधान नही किया गया है। इस श्लोक मे भी यह नही कहा गया है कि "ये पदार्थ मेरे किसी प्रतीक, मूर्ति पर चढाने से मैं खाता हूँ।" वास्तव मे जड़ मूर्तियों मे खाने की योग्यता ही नही होती, फिर कृष्ण कैसे कह सकते थे कि इन मूर्तियो पर चढाने से मैं खाता हूँ। वास्तव मे तथ्य यह है कि ससार मे जितने प्राणी है, वे सब, सब के आत्मा कृष्ण के रूप हैं, जिसमे से जिस शरीर की जैसी योग्यता हो, उसी के अनुसार प्रीतिपूर्वक यथायोग्य पदार्थ भेट करने से उनमे वैश्वानर अग्नि रूप से रहने वाला सबका आत्मा कृष्ण ही खाता है। १५वें अध्याय के १४वें श्लोक मे कहा है कि "मैं सब प्राणियो के देहो मे जठराग्नि रूप से स्थित होकर चार प्रकार का अन्न यानी भोजन पचाता हूँ।"

प्रोफेसर : १०वें अध्याय के २५वें श्लोक मे कृष्ण ने कहा है कि "यज्ञाना जप यज्ञोऽस्मि" अर्थात् 'यज्ञो मे जप यज्ञ मैं हूँ' इससे ईश्वर के नाम के जाप का विधान पाया जाता है।

गीतावादी : इस अध्याय मे केवल विभूतियो का वर्णन मात्र है। इसमे किसी क्रिया की अवश्य कर्तव्यता का विधान नही है। किसी भी प्रकार की विशेषता रखने वाली अनेक विभूतियो के वर्णन मे यज्ञो मे विशेषता रखने वाले जप यज्ञ को एक विभूति गिनाया है, इससे जाप करने की अवश्य कर्तव्यता का विधान नही होता, परन्तु साम्प्रदायिक टीकाकारो ने ९वे अध्याय के २६वें श्लोक और इस "यज्ञाना जप यज्ञोऽस्मि" का अपना मनमाना भावार्थ निकाल कर अपने-अपने सम्प्रदायो के उपयोगी विधान का रूप दे दिया है।

प्रोफेसर : "ओम्कार" के जाप का तो गीता मे अनेक स्थलो पर विधान पाया जाता है।

गीतावादी : "ओम्कार" सारे विश्व की एकता का बोध कराने वाला एक अक्षर है। अ, उ, म् तीन अक्षर मिलकर एक "ओम्" अक्षर बनता है। इन तीन अक्षरो से विश्व की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो अवस्थाओ की एकता का सकेत होता है। इस अक्षर के उच्चारण द्वारा सब की एकता का चिन्तन करते रहने का विधान है। किसी व्यक्ति या ईश्वर के नाम का जाप या चिन्तन का विधान नही है।

प्रोफेसर : पर गीता मे कृष्ण ने श्रद्धा को तो बहुत महत्त्व दिया है ?

गीतावादी : अवश्य ही। मनुष्य के प्राय. सभी व्यवहारो मे श्रद्धा या विश्वास की कुछ न कुछ आवश्यकता पडती ही है, क्योकि मनुष्य एक प्रकार से श्रद्धामय होता है। जब से एक बालक की समझ का विकास आरम्भ होता है तभी से वह माता पिता, गुरु तथा अन्य सम्बन्धियो की बातो पर विश्वास करके ही अपने ज्ञान को बढाता है। ससार की अधिकाश बातें हम केवल इन्द्रियो के ज्ञान से ही नहीं जान सकते, किन्तु दूसरो पर विश्वास करके ही जानते हैं परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य श्रद्धा या विश्वास विचारपूर्वक करते हैं। जिसको जिस विषय का जितना यथार्थ ज्ञान हो, उस विषय मे उस पर उतनी ही श्रद्धा या विश्वास करते हैं। जिसको जिस विषय का जितना यथार्थ ज्ञान ही न हो या अल्प ज्ञान हो, उस विषय मे उस पर श्रद्धा या विश्वास कर लेना अथवा अदृश्य कल्पित बातों मे विश्वास करना अन्ध श्रद्धा होती है, जिसके लिए गीता मे कोई स्थान नही है। इसीलिए गीता मे बुद्धि को प्रधानता दी गई है। परन्तु हरेक मनुष्य की बुद्धि इतनी विकसित नही होती कि वह श्रद्धा या विश्वास

ध्यान रखने से "मुझ मे मन लगा, मेरी भक्ति कर" आदि वाक्यो का यह अर्थ होता है कि सारे जन समाज के साथ अपनी एकता का अनुभव कर, सब से नम्र रह, सब से प्रेम कर, सारे समाज के लिए कर्म कर, सब का आदर कर, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सबके स्वार्थों के साथ जोड दे और अपने व्यक्तित्व की सारे विश्व के साथ एकता कर दे।" १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक मे जो "मामेक शरण व्रज" कहा है, उसका यही अर्थ है। जिस-जिस स्थल पर भक्ति करने का आदेश दिया गया है, वहाँ अनन्य भाव से भक्ति करने को कहा गया है अर्थात् कृष्ण को कोई अलग या दूसरा व्यक्ति समझ कर उसकी उपासना करने को नही कहा गया है किन्तु सारे विश्व मे जो एक तत्त्व व्यापक है, उसकी प्रेम लक्षणा भक्ति करने को कहा गया है। साराश यह है कि विश्व प्रेम ही भक्ति या उपासना मानी गई है। किसी विशेष व्यक्ति या शक्ति की उपासना का विधान नही है। इस विषय का विशेष खुलासा कराने के लिए १२वें अध्याय के आरम्भ मे अर्जुन ने प्रश्न किया है, जिसके उत्तर मे भगवान् ने साफ कह दिया है कि ११वें अध्याय मे सारे विश्व की एकता स्वरूप मैंने जो विश्व रूप दिखाया है, उस विश्व से प्रेम-पूर्वक अपने कर्तव्य करना ही सच्ची उपासना है और जो लोग निर्गुण अव्यक्त की उपासना करते हैं, वे भी सर्वत्र समबुद्धि और सब भूतो के हित मे लगे रहने से मुझे अर्थात् सर्वातम भाव को प्राप्त होते हैं। फिर आगे १३वें श्लोक से १९वें श्लोक तक सच्चे भक्त के लक्षण कहे हैं, उन मे साम्प्रदायिक बुद्धि से पूजन अर्चन आदि के प्रतीक, मूर्ति, चित्र आदि की उपासना अथवा कर्मकाण्डो और स्तुतियों द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने अथवा निराकार ईश्वर के ध्यान मे लगे रहने को नही कहा है, किन्तु 'अद्वेष्टा सर्वभूताना मैत्र करुण एव च' से आरम्भ करके सब के साथ प्रेम करने और यथायोग्य समता का वर्ताव करने वाले भक्तो को ही सच्चा भक्त निश्चित किया गया है। कृष्ण को एक विशेष व्यक्ति या विशेष मनुष्य मान कर इस भाव से उसकी उपासना करने वालो को ७वें अध्याय के २४वें श्लोक मे और ९वें अध्याय के ११वें श्लोक मे निर्बुद्धि और मूढ कहा है और अन्त मे १८वें अध्याय के ४६वें श्लोक मे असन्दिग्ध शब्दो मे अन्तिम निर्णय दे दिया गया है कि "जिससे सारे प्राणियो की प्रवृत्ति चल रही है और जिससे सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, उसकी अपने कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त होता है।" तात्पर्य यह है कि लोकसग्रह के लिए अपनी-अपनी योग्यता के कर्म करना ही कृष्ण ने उपासना, भक्ति या पूजन अर्चन कहा है।

प्रोफेसर : ११वें अध्याय मे चतुर्भुज रूप की उपासना का भी तो उल्लेख है ?

गीतावादी : वहां चतुर्भुज रूप का जो उल्लेख है उसमे उस रूप की उपासना करने का विधान नही किया गया है कि "मेरे चतुर्भुज रूप का अमुक विधि से पूजन अर्चन करना चाहिए।" जब अर्जुन विराट् रूप के घोर दृश्य देखकर अत्यन्त घबडा गया, तव उसने धीरज और शान्ति प्राप्त करने के लिए चतुर्भुज रूप दिखाने की भगवान् से प्रार्थना की, क्योकि मस्तक पर मुकुट और चार हाथो मे शख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए उस रुप का यह रहस्य है कि जिस मनुष्य के मस्तक अर्थात् बुद्धि में सब की एकता का ज्ञान रूपी मुकुट धारण किया हुआ है और जो विद्या रूपी शख, कर्म कौशल रूपी चक्र, गदा रूपी बल और जल मे कमल की तरह जगत् के व्यवहारो मे अलिप्त और अनासक्त रहने रूपी कमल से युक्त हो, वही पूर्ण पुरुष या पुरुषोत्तम होता है। वही ससार के सब प्रकार के व्यवहार सागोपाग कर सकता है और सब प्रकार का व्यवहार करता हुआ भी पूर्ण शान्त रहता है, कभी क्षुब्ध नही होता, और क्योकि मनुष्य जिस किसी गुण युक्त पदार्थ का निश्चल चित्त से चिन्तन करता है, वह स्वय वैसा ही वन जाता है, इसलिए अर्जुन को वह रूप बहुत प्यारा था। अत भगवान् ने उसके कहने पर विराट् रूप की तरह ही मनोयोग की दिव्य दृष्टि से चतुर्भुज रूप उसको दिखा दिया वह भौतिक स्थूल रूप नही था, किन्तु काल्पनिक रूपक था, इसलिए उस रूप का पूजन अर्चन करने का प्रश्न ही नही था। साम्प्रदायिक लोग इस रहस्य पर ध्यान न देकर गीता मे वर्णित इस चतुर्भुज रूप की मूर्तियां वना कर पचोपचार या षोडशोपचार आदि पूजन अर्चन करते है जिससे लोगों मे भ्रम उत्पन्न होता है कि गीता मे कृष्ण ने चतुर्भुज मूर्ति

पूजन का विधान किया है, परन्तु गीता मे इस तरह के पूजन अर्चन का कही भी विधान नही है। गीता 'व्यवहार दर्शन' का ग्रन्थ है और व्यावहारिक पूर्ण पुरुष की क्या योग्यता और उसमे क्या-क्या गुण होते हैं, वे चतुर्भुज रूप का रूपक वाध कर यहाँ वताया गया है।

प्रोफेसर : ९वें अध्याय के २६वें श्लोक मे कहा है कि "जो भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल मुझे प्रीतिपूर्वक देता है, वह मैं खाता हूँ," तो पत्र, पुष्प, फल और जल मूर्तियो पर ही तो चढाये जाते हैं, इससे मूर्ति पूजा का विधान पाया जाता है।

गीतावादी : उस श्लोक मे या उसके पहले, पीछे कही भी प्रतीक, मूर्ति, चित्र आदि की पूजा का विधान नही किया गया है। इस श्लोक मे भी यह नही कहा गया है कि "ये पदार्थ मेरे किसी प्रतीक, मूर्ति पर चढाने से मैं खाता हूँ।" वास्तव मे जड मूर्तियो मे खाने की योग्यता ही नही होती, फिर कृष्ण कैसे कह सकते थे कि इन मूर्तियो पर चढाने से मैं खाता हूँ। वास्तव मे तथ्य यह है कि ससार मे जितने प्राणी हैं, वे सव, सव के आत्मा कृष्ण के रूप हैं, जिसमे से जिस शरीर की जैसी योग्यता हो, उसी के अनुसार प्रीतिपूर्वक यथायोग्य पदार्थ भेंट करने से उनमे वैश्वानर अग्नि रूप से रहने वाला सवका आत्मा कृष्ण ही खाता है। १५वें अध्याय के १४वें श्लोक में कहा है कि "मैं सव प्राणियो के देहो मे जठराग्नि रूप से स्थित होकर चार प्रकार का अन्न यानी भोजन पचाता हूँ।"

प्रोफेसर : १०वें अध्याय के २५वे श्लोक मे कृष्ण ने कहा है कि "यज्ञाना जप यज्ञोऽस्मि" अर्थात् 'यज्ञो मे जप यज्ञ मैं हूँ' इससे ईश्वर के नाम के जाप का विधान पाया जाता है।

गीतावादी : इस अध्याय मे केवल विभूतियो का वर्णन मात्र है। इसमे किसी क्रिया की अवश्य कर्तव्यता का विधान नही है। किसी भी प्रकार-की विशेपता रखने वाली अनेक विभूतियो के वर्णन मे यज्ञो मे विशेषता रखने वाले जप यज्ञ को एक विभूति गिनाया है, इससे जाप करने की अवश्य कर्तव्यता का विधान नही होता, परन्तु साम्प्रदायिक टीकाकारो ने ९वें अध्याय के २६वें श्लोक और इस "यज्ञाना जप यज्ञोऽस्मि" का अपना मनमाना भावार्थ निकाल कर अपने-अपने सम्प्रदायो के उपयोगी विधान का रूप दे दिया है।

प्रोफेसर : "ओम्कार" के जाप का तो गीता मे अनेक स्थलो पर विधान पाया जाता है।

गीतावादी : "ओम्कार" सारे विश्व की एकता का वोध कराने वाला एक अक्षर है। अ, उ, म् तीन अक्षर मिलकर एक "ओम्" अक्षर वनता है। इन तीन अक्षरो से विश्व की आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो अवस्थाओं की एकता का संकेत होता है। इस अक्षर के उच्चारण द्वारा सव की एकता का चिन्तन करते रहने का विधान है। किसी व्यक्ति या ईश्वर के नाम का जाप या चिन्तन का विधान नही है।

प्रोफेसर : पर गीता मे कृष्ण ने श्रद्धा को तो वहुत महत्त्व दिया है ?

गीतावादी : अवश्य ही। मनुष्य के प्राय. सभी व्यवहारो मे श्रद्धा या विश्वास की कुछ न कुछ आवश्यकता पड़ती ही है, क्योकि मनुष्य एक प्रकार से श्रद्धामय होता है। जव से एक वालक की समझ का विकास आरम्भ होता है तभी से वह माता पिता, गुरु तथा अन्य सम्बन्धियो की वातो पर विश्वास करके ही अपने ज्ञान को वढ़ाता है। ससार की अधिकाश वातें हम केवल इन्द्रियो के ज्ञान से ही नही जान सकते, किन्तु दूसरो पर विश्वास करके ही जानते हैं परन्तु वुद्धिमान् मनुष्य श्रद्धा या विश्वास विचारपूर्वक करते हैं। जिसको जिस विषय का जितना यथार्थ ज्ञान हो, उस विषय मे उस पर उतनी ही श्रद्धा या विश्वास करते हैं। जिसको जिस विषय का जितना यथार्थ ज्ञान ही न हो या अल्प ज्ञान हो, उस विषय मे उस पर श्रद्धा या विश्वास कर लेना अथवा अदृश्य कल्पित वातों में विश्वास करना अन्ध श्रद्धा होती है, जिसके लिए गीता मे कोई स्थान नही है। इसीलिए गीता मे बुद्धि को प्रधानता दी गई है। परन्तु हरेक मनुष्य की बुद्धि इतनी विकसित नही होती कि वह श्रद्धा या विश्वास

के विना केवल बुद्धि के तर्क से सव विषयो को समझ सके, विशेष करके आत्मज्ञान जैसे अत्यन्त सूक्ष्म विपय को समझने के लिए पहले पहल तत्त्वज्ञानी पुरुषो के उपदेशो मे श्रद्धा करने की आवश्यकता होती है। उनके उपदेशो को श्रद्धापूर्वक सुनकर फिर तत्परता से उनका मनन करना चाहिए। इसीलिए गीता के चौथे अध्याय के ३६वें श्लोक मे कहा है कि "श्रद्धावान् मनुष्य इन्द्रियो को वश मे रखता हुआ तत्परता से आत्मज्ञान प्राप्त करता है" और ४०वें श्लोक मे कहा है कि "विचार हीन और श्रद्धा रहित मनुष्य सशय मे पडा रह कर अपना नाश कर लेता है।" इस विपय मे श्रद्धा किस पर करनी चाहिए, इसका खुलासा ३४, ३५वें श्लोको मे कर आये हैं, कि "तत्त्वज्ञानी पुरुषो से इसका उपदेश लेना चाहिए, जिसको जान लेने पर फिर मोह नही होता और सब भूतो को तू अपने मे देखेगा।" तात्पर्य यह है कि तत्त्वज्ञानी पुरुष वे होते हैं जो सब के साथ अपनी एकता के ज्ञान का अनुभव रखते हैं और उन्ही पर श्रद्धा करने को कहा गया है। गीता मे वर्णित श्रद्धा या विश्वास प्रधानतया अपना आत्म विश्वास है और जहां जहां श्रद्धा करने का विधान किया गया है वहां रूपान्तर से सब के अपने आप आत्मा का ही विश्वास करने को कहा गया है। छठे अध्याय के ५वें और छठे श्लोक मे कहा है कि "मनुष्य अपना उद्धार आप ही करे, अपना पतन नही करे, क्योकि मनुष्य आप ही अपना बन्धु और आप अपना ही शत्रु है। जिसने आप ही अपना अन्त करण जीत लिया है, वह अपना बन्धु है और जिसको आत्म विश्वास नही है, वह अपना शत्रु होकर अपने शत्रु की तरह वर्तता है"। ५वें अध्याय के १४वें और १५वें श्लोको मे कहा है कि "मनुष्यो के कर्मों के कर्त्तापन को और कर्मों को ईश्वर नही रचता और न वह कर्मों के फल का सयोग ही रचता है किन्तु सबका अपना अपना स्वभाव वर्तता है। सर्व व्यापक परमात्मा किसी के पाप पुण्य को नही लेता। जीवो का ज्ञान, अज्ञान मे ढका हुआ है जिससे वे मोहित हो रहे हैं।" इन श्लोको से साफ है कि गीता अपने आत्मा से भिन्न, अपने उत्थान या पतन के लिए किसी दूसरी शक्ति या ईश्वर पर श्रद्धा या विश्वास करके उन पर निर्भर रहने को नही कहती।

प्रोफेसर १७वें अध्याय मे जहां श्रद्धा के ३ भेद कहे हैं वहां तो देवताओ, यक्षो आदि की पूजा का वर्णन है?

गीतावादी परन्तु वह श्रद्धापूर्वक पूजा करने का आज्ञावाचक विधान नही है। १६वें अध्याय के अन्त मे भगवान् ने अर्जुन को कहा था कि "जो शास्त्र विधि को छोडकर अपने कर्तव्य कर्म न करके मनमानी करता है उसको न तो सिद्धि प्राप्त होती है और न सुख, न परम गति। इसलिए शास्त्र मे कहे हुए कर्त्तव्याकर्त्तव्य की व्यवस्थानुसार अपना कर्तव्य कर्म कर।" इस पर अर्जुन के मन मे यह शका उठी कि जो शास्त्र विधि के अनुसार अपना कर्तव्य कर्म न करके अपनी मनमानी करते हैं उनकी दुर्गति होना तो ठीक है परन्तु जो "शास्त्र विधि छोडकर श्रद्धापूर्वक यजन पूजन करते हैं उनकी निष्ठा सात्विक, राजस, तामस मे से कौनसी होती है?" उसने इस आशय का प्रश्न १७वें अध्याय के प्रथम श्लोक मे किया, जिसके उत्तर मे भगवान् ने श्रद्धा के तीन भेद कहे हैं कि "सात्विक श्रद्धा वाले देवो का पूजन करते हैं, राजस श्रद्धा वाले यक्षो और राक्षसो का पूजन करते हैं और तामस श्रद्धा वाले मरे हुए पितरो और भौतिक जड पदार्थों का पूजन करते हैं।" और फिर आगे कह दिया है कि "अति उग्र तामस श्रद्धा के आसुरी निश्चय वाले लोग शरीर को कष्ट देने वाले घोर तप करते हैं।" यह उन लोगो की श्रद्धा का वर्णन है कि जो श्रद्धा पूर्वक यजन पूजन आदि करते हैं, अपनी तरफ से किसी देवता आदि की श्रद्धापूर्वक उपासना करने का उपदेश नही है। ७वें अध्याय के २० से २३ तक के श्लोको मे तथा ६वें अध्याय के २३ से २५ तक के श्लोको मे श्रद्धा युक्त देवताओ का पूजन अर्चन करने वालो को निर्बुद्धि या अल्पबुद्धि कहकर उनकी गिरावट होना बताया है और कहा है कि जिस की जिसमे श्रद्धा होती है, उसकी उसी मे गति होती है। मनुष्य अपने अन्त करण की श्रद्धा से ही अपना भविष्य बनाता है। इन वाक्यो से श्रद्धापूर्वक देवताओ आदि की

उपासना करने वालो की साफ तौर से निन्दा की गई है। साराश यह है कि कृष्ण ने देवताओं या अपनी मूर्ति आदि की पूजा करवाने के लिए श्रद्धा को कहीं भी महत्त्व नही दिया है और न कही अपने व्यक्तित्व की वडाई ही की है किन्तु जहाँ जहाँ अपनी महानता का उल्लेख किया है, वह सर्वात्म भाव के लिए किया है, जो वास्तव मे ही महान् है।

प्रोफेसर : एक ही मनुष्य व्यक्ति भाव का व्यवहार करे और साथ ही सव की एकता का अनुभव और उसमे अपनी स्थिति सदा बनाये रखे, यह वात समझ मे नहीं आती ?

गीतावादी : हम लोगो जैसे साधारण व्यक्तियो की समझ इतनी परिमित और सकुचित है कि महान् पुरुपो के अन्त करण की स्थिति तक वह पहुँच नही सकती। भगवान बुद्ध तो आत्मानुभव की निर्वाण स्थिति मे पहुँच कर भी अपने शिष्यो को प्रचार करने के लिए धर्मोपदेश देते रहे थे। कृष्ण और बुद्ध की अत्यन्त प्राचीन वातें छोड भी दें तो वर्तमान मे हमारे प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू की भी दोहरी स्थिति प्रत्यक्ष देखने मे आती है। एक तरफ वे व्यक्तित्व के भाव से अपने शरीर के सब व्यवहार करते हैं और दूसरी तरफ सारे देश के प्रधान मन्त्री के भाव से सारे देश वासियो की अपने साथ एकता का अनुभव रखते हुए, सव के हित के कार्य उसी शरीर से करते हैं और सारे देश की एकता उनमे केन्द्रित है। शरीर दृष्टि से व्यक्ति होते हुए भी उनके अन्त:-करण की स्थिति समष्टि मे है और विश्व के सव देशो मे सारे भारत की एकता के प्रतीक माने जाते है।

प्रोफेसर : आपके इन दृष्टान्तो से कृष्ण की व्यष्टि और समष्टि दोहरी स्थिति समझ मे आ सकती है पर कृष्ण की तरह वुद्ध या नेहरू ने अपनी वडाई अपने मुँह से तो नही की ?

गीतावादी · भगवान वुद्ध ने जव ३५ वर्ष की अवस्था मे वोध प्राप्त किया तव अपनी उस अलौकिक परमोच्च स्थिति को लोगो के सामने प्रकट किया तभी तो लोगो को उनकी महानता का पता लगा और उनका आदर और पूजन करने लगे और वे अपने को पूर्ण मानकर ही ससार को अपने दिव्य उपदेश देने और अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने मे प्रवृत्त हुए। यदि वे अपने मुँह से अपनी महानता प्रकट न करते तो ससार उनकी अलौकिक शक्ति को न जान सकता और उनके कल्याणकर उपदेशो से वचित रहता। प० जवाहरलाल नेहरू भी समय समय पर कहते रहते हैं कि "मैं भारत के किसी विशेप प्रान्त का, विशेप जाति का, विशेप वर्ग का या विशेप सम्प्रदाय का नही हूँ, किन्तु सारे भारत का हूँ।" प्रधान मन्त्री होने के कारण सारे भारत के लोगो की रक्षा, शिक्षा, भरण, पोपण और सर्वांगीण उन्नति का दायित्व अपने ऊपर वताते है और सारे देश का शासन करते हैं। देश की सारी जनता अपने-अपने हितो की रक्षा और दुख निवारण के लिए उनका आश्रय लेती है और उनको राष्ट्र का उद्धारक, राष्ट्र का निर्माता, राष्ट्र का रक्षक तथा सर्वेसर्वा मानकर उनमें पूर्ण श्रद्धा रखती है। यद्यपि आधिभौतिक दृष्टिकोण के कारण, मानवीय त्रुटियो का अनुभव करते हुए अपने मुँह से वे अपनी वडाई कुछ भी नही करते, पर जो उनकी वास्तविक स्थिति है उससे इनकार भी नही कर सकते। परन्तु भगवान् कृष्ण मनुष्य रूप मे होते हुए भी आध्यात्मिकता की पूर्णावस्था मे स्थित थे, इसलिए अपनी वास्तविक स्थिति का वर्णन करने मे उनको कोई सकोच नही था। अपने मुँह से अपनी वड़ाई करने का प्रश्न तो वहाँ होता है, जहाँ अपने से भिन्न दूसरे किसी को अपने से छोटा या हीन समझा जाय। भगवान कृष्ण तो कहते हैं कि छोटे-वडे, ऊँच-नीच, भले-वुरे सव मुझ मे हैं और सव मे मैं एक समान हूँ। यहाँ तक कि जड चेतन सव को अपने मे और अपने आपको सव मे अनुभव करते हैं, उनके लिए व्यक्तित्व का अहकार या व्यक्तित्व की मान वड़ाई के लिए अवकाश ही कैसे रह सकता है ?

प्रोफेसर : कृष्ण तो अपने को ईश्वर का अवतार वताते हैं ?

गीतावादी : जो कृष्ण अपने से और जगत से भिन्न किसी ईश्वर का अलग अस्तित्व मानते ही नही,

के विना केवल बुद्धि के तर्क से सब विषयो को समझ सके, विशेष करके आत्मज्ञान जैसे अत्यन्त सूक्ष्म विषय को समझने के लिए पहले पहल तत्त्वज्ञानी पुरुषो के उपदेशो मे श्रद्धा करने की आवश्यकता होती है। उनके उपदेशो को श्रद्धापूर्वक सुनकर फिर तत्परता से उनका मनन करना चाहिए। इसीलिए गीता के चौथे अध्याय के ३९वें श्लोक मे कहा है कि "श्रद्धावान् मनुष्य इन्द्रियो को वश मे रखता हुआ तत्परता से आत्मज्ञान प्राप्त करता है" और ४०वें श्लोक मे कहा है कि "विचार हीन और श्रद्धा रहित मनुष्य सशय मे पडा रह कर अपना नाश कर लेता है।" इस विषय मे श्रद्धा किस पर करनी चाहिए, इसका खुलासा ३४, ३५वें श्लोको मे कर आये हैं, कि "तत्त्वज्ञानी पुरुषो से इसका उपदेश लेना चाहिए, जिसको जान लेने पर फिर मोह नही होता और सब भूतो को तू अपने मे देखेगा।" तात्पर्य यह है कि तत्त्वज्ञानी पुरुष वे होते हैं जो सब के साथ अपनी एकता के ज्ञान का अनुभव रखते हैं और उन्ही पर श्रद्धा करने को कहा गया है। गीता मे वर्णित श्रद्धा या विश्वास प्रधानतया अपना आत्म विश्वास है और जहाँ जहाँ श्रद्धा करने का विधान किया गया है वहाँ रूपान्तर से सब के अपने आप आत्मा का ही विश्वास करने को कहा गया है। छठे अध्याय के ५वें और छठे श्लोक मे कहा है कि "मनुष्य अपना उद्धार आप ही करे, अपना पतन नही करे, क्योकि मनुष्य आप ही अपना बन्धु और आप अपना ही शत्रु है। जिसने आप ही अपना अन्त करण जीत लिया है, वह अपना बन्धु है और जिसको आत्म विश्वास नही है, वह अपना शत्रु होकर अपने शत्रु की तरह वर्तता है"। ५वें अध्याय के १४वें और १५वें श्लोको मे कहा है कि "मनुष्यो के कर्मों के कर्तापन को और कर्मों को ईश्वर नही रचता और न वह कर्मों के फल का सयोग ही रचता है किन्तु सबका अपना अपना स्वभाव वर्तता है। सर्व व्यापक परमात्मा किसी के पाप पुण्य को नही लेता। जीवो का ज्ञान, अज्ञान से ढका हुआ है जिससे वे मोहित हो रहे हैं।" इन श्लोको से साफ है कि गीता अपने आत्मा से भिन्न, अपने उत्थान या पतन के लिए किसी दूसरी शक्ति या ईश्वर पर श्रद्धा या विश्वास करके उन पर निर्भर रहने को नही कहती।

प्रोफेसर : १७वें अध्याय मे जहाँ श्रद्धा के ३ भेद कहे हैं वहाँ तो देवताओ, यक्षो आदि की पूजा का वर्णन है ?

गीतावादी : परन्तु वह श्रद्धापूर्वक पूजा करने का आज्ञावाचक विधान नही है। १६वें अध्याय के अन्त मे भगवान् ने अर्जुन को कहा था कि "जो शास्त्र विधि को छोडकर अपने कर्तव्य कर्म न करके मनमानी करता है उसको न तो सिद्धि प्राप्त होती है और न सुख, न परम गति। इसलिए शास्त्र मे कहे हुए कर्त्तव्याकर्त्तव्य की व्यवस्थानुसार अपना कर्तव्य कर्म कर।" इस पर अर्जुन के मन मे यह शका उठी कि जो शास्त्र विधि के अनुसार अपना कर्तव्य कर्म न करके अपनी मनमानी करते हैं उनकी दुर्गति होना तो ठीक है परन्तु जो "शास्त्र विधि छोडकर श्रद्धापूर्वक यजन पूजन करते हैं उनकी निष्ठा सात्विक, राजस, तामस मे से कौनसी होती है ?" उसने इस आशय का प्रश्न १७वें अध्याय के प्रथम श्लोक मे किया, जिसके उत्तर में भगवान् ने श्रद्धा के तीन भेद कहे हैं कि "सात्विक श्रद्धा वाले देवो का पूजन करते हैं, राजस श्रद्धा वाले यक्षो और राक्षसो का पूजन करते हैं और तामस श्रद्धा वाले मरे हुए पितरो और भौतिक जड पदार्थों का पूजन करते हैं।" और फिर आगे कह दिया है कि "अति उग्र तामस श्रद्धा के आसुरी निश्चय वाले लोग शरीर को कष्ट देने वाले घोर तप करते हैं।" यह उन लोगो की श्रद्धा का वर्णन है कि जो श्रद्धा पूर्वक यजन पूजन आदि करते हैं, अपनी तरफ से किसी देवता आदि की श्रद्धापूर्वक उपासना करने का उपदेश नही है। ७वें अध्याय के २० से २३ तक के श्लोको मे तथा ९वें अध्याय के २३ से २५ तक के श्लोको मे श्रद्धा युक्त देवताओ का पूजन अर्चन करने वालो को निर्बुद्धि या अल्पबुद्धि कहकर उनकी गिरावट होना बताया है और कहा है कि जिस की जिसमे श्रद्धा होती है, उसकी उसी मे गति होती है। मनुष्य अपने अन्त करण की श्रद्धा से ही अपना भविष्य बनाता है। इन वाक्यो से श्रद्धापूर्वक देवताओ आदि की

उपासना करने वालों की साफ तौर से निन्दा की गई है। साराश यह है कि कृष्ण ने देवताओ या अपनी मूर्ति आदि की पूजा करवाने के लिए श्रद्धा को कहीं भी महत्त्व नही दिया है और न कही अपने व्यक्तित्व की वडाई ही की है किन्तु जहाँ जहाँ अपनी महानता का उल्लेख किया है, वह सर्वात्म भाव के लिए किया है, जो वास्तव मे ही महान् है।

प्रोफेसर : एक ही मनुष्य व्यक्ति भाव का व्यवहार करे और साथ ही सब की एकता का अनुभव और उसमे अपनी स्थिति सदा बनाये रखे, यह वात समझ मे नही आती ?

गीतावादी : हम लोगो जैसे साधारण व्यक्तियो की समझ इतनी परिमित और सकुचित है कि महान् पुरुषो के अन्त करण की स्थिति तक वह पहुँच नही सकती। भगवान बुद्ध तो आत्मानुभव की निर्वाण स्थिति मे पहुँच कर भी अपने शिष्यो को प्रचार करने के लिए धर्मोपदेश देते रहे थे। कृष्ण और बुद्ध की अत्यन्त प्राचीन वातें छोड भी दें तो वर्तमान मे हमारे प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू की भी दोहरी स्थिति प्रत्यक्ष देखने मे आती है। एक तरफ वे व्यक्तित्व के भाव से अपने शरीर के सब व्यवहार करते हैं और दूसरी तरफ सारे देश के प्रधान मन्त्री के भाव से सारे देश वासियो की अपने साथ एकता का अनुभव रखते हुए, सव के हित के कार्य उसी शरीर से करते है और सारे देश की एकता उनमे केन्द्रित है। शरीर दृष्टि से व्यक्ति होते हुए भी उनके अन्त-करण की स्थिति समष्टि मे है और विश्व के सव देशो मे सारे भारत की एकता के प्रतीक माने जाते हैं।

प्रोफेसर : आपके इन दृष्टान्तो से कृष्ण की व्यष्टि और समष्टि दोहरी स्थिति समझ मे आ सकती है पर कृष्ण की तरह वुद्ध या नेहरू ने अपनी वडाई अपने मुँह से तो नही की ?

गीतावादी . भगवान बुद्ध ने जब ३५ वर्ष की अवस्था मे वोध प्राप्त किया तव अपनी उस अलौकिक परमोच्च स्थिति को लोगो के सामने प्रकट किया तभी तो लोगो को उनकी महानता का पता लगा और उनका आदर और पूजन करने लगे और वे अपने को पूर्ण मानकर ही ससार को अपने दिव्य उपदेश देने और अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने मे प्रवृत्त हुए। यदि वे अपने मुँह से अपनी महानता प्रकट न करते तो ससार उनकी अलौकिक शक्ति को न जान सकता और उनके कल्याणकर उपदेशो से वचित रहता। प० जवाहरलाल नेहरू भी समय समय पर कहते रहते है कि "मैं भारत के किसी विशेप प्रान्त का, विशेप जाति का, विशेप वर्ग का या विशेप सम्प्रदाय का नही हूँ, किन्तु सारे भारत का हूँ।" प्रधान मन्त्री होने के कारण सारे भारत के लोगो की रक्षा, शिक्षा, भरण, पोपण और सर्वांगीण उन्नति का दायित्व अपने ऊपर बताते हैं और सारे देश का शासन करते है। देश की सारी जनता अपने-अपने हितो की रक्षा और दुख निवारण के लिए उनका आश्रय लेती है और उनको राष्ट्र का उद्धारक, राष्ट्र का निर्माता, राष्ट्र का रक्षक तथा सर्वेसर्वा मानकर उनमें पूर्ण श्रद्धा रखती है। यद्यपि आधिभौतिक दृष्टिकोण के कारण, मानवीय त्रुटियो का अनुभव करते हुए अपने मुँह से वे अपनी वडाई कुछ भी नही करते, पर जो उनकी वास्तविक स्थिति है उससे इनकार भी नही कर सकते। परन्तु भगवान् कृष्ण मनुष्य रूप मे होते हुए भी आध्यात्मिकता की पूर्णावस्था मे स्थित थे, इसलिए अपनी वास्तविक स्थिति का वर्णन करने मे उनको कोई सकोच नही था। अपने मुँह से अपनी वडाई करने का प्रश्न तो वहाँ होता है, जहाँ अपने से भिन्न दूसरे किसी को अपने से छोटा या हीन समझा जाय। भगवान कृष्ण तो कहते हैं कि छोटे-वडे, ऊँच-नीच, भले-वुरे सव मुझ मे है और सव मे मैं एक समान हूँ। यहाँ तक कि जड चेतन सव को अपने मे और अपने आपको सव मे अनुभव करते हैं, उनके लिए व्यक्तित्व का अहकार या व्यक्तित्व की मान वड़ाई के लिए अवकाश ही कैसे रह सकता है ?

प्रोफेसर : कृष्ण तो अपने को ईश्वर का अवतार वताते हैं ?

गीतावादी : जो कृष्ण अपने से और जगत से भिन्न किसी ईश्वर का अलग अस्तित्व मानते ही नही,

वे ईश्वर का अवतार होना कैसे मान सकते हैं ? भक्ति मार्ग के द्वैतवादी लोग, जो जगत से भिन्न एक अलग ईश्वर का अस्तित्व मानते हैं, वे ही उसके अवतार होने की बातें करते हैं। गीता मे कही भी अवतार शब्द नही आया है।

प्रोफेसर : अद्वैत वेदान्त के मानने वाले भी तो अवतारवाद को मानते हैं ?

गीतावादी : उस अवतारवाद का यह रहस्य है कि प्रकृति के सदा बदलने वाले ससार रूपी इस खेल मे जब विषमता बहुत बढ जाती है और निहित (स्थापित) स्वार्थों के अत्याचार अत्यन्त उग्र तथा असत्य होकर समाज मे विशृखलता उत्पन्न कर देते हैं तब सब लोग अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं और उस क्षोभ की प्रतिक्रिया से उनमे क्रान्ति की भावना बहुत तीव्र रूप धारण कर लेती है, तब उन्ही की सम्मिलित मानसिक शक्ति, परिस्थिति के उपयुक्त किसी विशेष विभूतिसम्पन्न क्रान्तिकारी रूप मे प्रकट होकर, उस विशृखलता को मिटाने के लिए विषमता रूपी अधर्म को दबा कर, समता रूपी धर्म का पुन स्थापन करती है। उसीको अवतार सज्ञा दे दी जाती है। समय-समय पर प्रकट होने वाले ऐसे महापुरुषो को गीता मे विभूति नाम दिया गया है। भगवान् कृष्ण भी इसी तरह एक विशेष विभूतिसम्पन्न शरीर मे प्रकट हुए थे और १०वें अध्याय मे अन्य विभूतियो के साथ-साथ अपने मनुष्य रूप को भी एक विभूति गिनाया है। अवतारवाद के इसी सिद्धान्त के आधार पर भगवान् बुद्ध भी एक अवतार माने जाते हैं और यदि वही प्राचीन परिपाटी अब तक चली आती रहती तो महात्मा गान्धी और प० जवाहर लाल नेहरू भी विशेष विभूति सम्पन्न होने के कारण अवतार माने जाते। महात्मा गाधी को तो बहुत से भावुक लोग अवतार मानते ही हैं और कई लोग नेहरूजी को भी इस युग का कृष्ण मानते हैं। वास्तव मे ससार मे जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सब सर्वव्यापी परमात्मा के ही रूप हैं, परन्तु जो लोग विशेष विभूतिसम्पन्न होते हैं, उनको अवतार सज्ञा दे दी जाती है।

जिस समय भगवान् कृष्ण प्रकट हुए थे उस समय देश मे स्थापित स्वार्थों के अत्याचारो के कारण विषमताएँ बहुत बढ गई थी और सत्ताधारी लोगो के अन्याय चरम सीमा तक पहुँच गये थे, जिनके विरुद्ध भगवान् कृष्ण ने क्रान्ति करके अत्याचारी सत्ताधारियो को समाप्त किया और विषमता रूपी अधर्म को मिटाकर समता-रूपी धर्म की पुन स्थापना करने का आयोजन किया था। गीता के चौथे अध्याय मे उन्होंने अपने प्रकट होने का यही उद्देश्य बताया है और सारी गीता मे समता के प्रचार पर विशेष जोर दिया गया है। ५वें अध्याय के १८वें श्लोक मे यहाँ तक कहा गया है कि "विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल मे, बुद्धिमान लोग समदर्शी होते हैं" अर्थात् बुद्धिमान लोग ऊँच-नीच, छोटे-बडे, यहाँ तक कि पशु पक्षियो मे भी, बिना भेद भाव के, एक ही सम आत्मा के अनेक रूप अनुभव करते हैं। फिर वही पर १९वें श्लोक मे स्पष्ट कर दिया है कि "जिनका मन समता के भाव मे स्थित हो जाता है, वे यहाँ ही ससार को जीत लेते हैं, क्योकि सर्वव्यापक आत्मा निर्दोष और सम है, इसलिए वे (समदर्शी) लोग ब्रह्म मे स्थित होते हैं।" फिर छठे अध्याय के २९वें और ३२वें श्लोको मे कहा गया है कि "जिसकी बुद्धि समता के भाव से युक्त होती है, वह समदर्शी महात्मा सब प्राणियों को अपने मे और अपने को सब प्राणियो मे देखता है और आत्मौपम्य बुद्धि से सब के सुख दुखो को अपने समान ही अनुभव करता है, मेरे मत मे वही परम समत्वयोगी है", और १३वें अध्याय के २७वें और २८वें श्लोको मे कहा है कि "सब नाशवान भूत प्राणियो मे जो अविनाशी एव सम परमेश्वर को स्थित देखता है, वही सम्यक्दर्शी है और सब को सम भाव से देखने वाला आत्मज्ञानी पुरुष परम गति को पाता है," इत्यादि वाक्यो से पूर्णतया स्पष्ट होता है कि भगवान् कृष्ण ने मनुष्यमात्र मे ऊँच-नीच, जाति-पाति आदि किसी भी प्रकार के भेद बिना पूर्ण समता का उपदेश दिया है। केवल मनुष्यो मे ही नही, किन्तु समस्त भूत प्राणियो मे

समदर्शी होने को कहा है। भगवान् बुद्ध ने भी इसी सिद्धान्त का समर्थन किया है और जाति-पाति के सब भेद मिटा कर सब की समानता का उपदेश दिया है।

प्रोफेसर : जब कृष्ण ने मनुष्य मात्र मे ही नही, किन्तु सब भूत प्राणियो मे समता का भाव देखने पर इतना जोर दिया है तो स्त्रियो को वे बिल्कुल ही क्यो भूल गये ? स्त्रियो के प्रति भी पूर्ण समता का भाव रखना क्या न्याय सगत न था ?

गीतावादी : हमारे यहाँ स्त्री और पुरुष दोनो के योग से पूरा मनुष्य बनना माना जाता है। मनुष्य का दाहिना आधा अग पुरुष और बाँया आधा अग स्त्री माना जाता है, अत. मनुष्य मे स्त्री और पुरुष दोनो का समावेश है। इसीलिए स्त्री शब्द का अलग प्रयोग नही किया गया है।

प्रोफेसर : परन्तु ६वें अध्याय के ३२वें श्लोक मे कहा गया है कि "मेरा आश्रय करके पाप योनियो के लोग तथा स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गति को पाते हैं।" फिर ३३वें श्लोक मे कहा है कि "फिर पुण्य-वान् ब्राह्मण और भक्त राजर्षियो का तो कहना ही क्या है," इससे मालूम होता है कि स्त्रियो को पाप योनियो तथा वैश्य और शूद्रो की श्रेणी मे रख कर ब्राह्मण और क्षत्रियो से हीन माना है और यही हाल वैश्यो और शूद्रो का किया है, फिर समता का भाव कहाँ रहा ?

गीतावादी : ये श्लोक तो समता के भाव को और अधिक पुष्ट करते हैं। आपको उस समय के हिन्दू समाज की परिस्थिति पर ध्यान देना चाहिए। उस समय समाज मे विषमता के भाव इतने बढे हुए थे कि ब्राह्मण, क्षत्रियो की अपेक्षा स्त्रियो तथा वैश्यो, शूद्रो को बहुत हीन समझा जाता था और उनकी अपेक्षा इनके अधिकार बहुत ही कम और नीचे दर्जे के माने जाते थे। जन्म से वर्ण मानने की प्रथा जोर पकड गई थी। इन हीन माने जाने वालो का अधिकार आत्म कल्याण प्राप्त करने का भी नही माना जाता था। ऐसी परिस्थिति मे भगवान् कृष्ण ने आत्म कल्याण प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणो और क्षत्रियो के बराबर ही इनका अधिकार बताकर, वह विषमता मिटाई है न कि उसकी पुष्टि की है।

प्रोफेसर फिर भी ब्राह्मणो और क्षत्रियो से तो इन को हीन ही बताया है।

गीतावादी : गीता मे जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण नही माने हैं, किन्तु गुणो के आधार पर वर्ण व्यवस्था की गई है। सतोगुण की प्रधानता वाले लोग शिक्षा का कार्य करने योग्य ब्राह्मण माने गये, रजोगुण और सतोगुण की प्रधानता वाले लोग रक्षा का कार्य करने योग्य क्षत्रिय माने गये, रजोगुण और सतोगुण की प्रधानता वाले लोग खेती और वाणिज्य करने योग्य वैश्य माने गये और तमोगुण की प्रधानता वाले लोग शारीरिक श्रम करने योग्य शूद्र माने गये और साथ ही तीसरे अध्याय के ३५वें श्लोक मे और १८वे अध्याय के ४७वें श्लोक मे साफ कह दिया गया है कि अपनी-अपनी योग्यता के काम अथवा पेशे सभी श्रेष्ठ हैं। उनमे कोई हीनता अथवा उत्तमता नही है; परन्तु इतनी बात अवश्य है कि प्रकृति के नियमानुसार सत्व गुण ऊँचा उठाने वाला होता है, तमोगुण नीचा गिराने वाला और रजोगुण दोनो के बीच की स्थिति का है। यह बात १४वें अध्याय के १८वें श्लोक मे कही है। प्रकृति के इस अटल नियम मे कोई फेरफार नही कर सकता। अस्तु, जिनमे सत्वगुण की प्रधानता होती है, उनमे स्वभाव से ही श्रेष्ठ गुण होते हैं और वे रजोगुणी, तमोगुणी लोगो से ऊपर रहते हैं; परन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि रजोगुण, तमोगुण की प्रधानता वाले लोग कभी ऊचे उठ ही नही सकते। वे भी अपने मे सतोगुण बढाकर उन्नति कर सकते हैं। अपनी उन्नति करने का सब को समान अधिकार है। समाज मे प्रत्येक मनुष्य का उसके गुणों के अनुसार स्थान रहता है। गुणो के अनुसार परस्पर यथायोग्य व्यवहार करना ही यथार्थ समता का भाव है। गुणो की उपेक्षा करके सब के साथ एक समान व्यवहार करना अव्यावहारिक और अप्राकृतिक है। गीता मे भगवान कृष्ण ने "व्यवहार दर्शन" का प्रतिपादन किया

है और उसमे बुद्धियोग की प्रधानता दी है। उसमे अव्यावहारिक समता का विधान कैसे हो सकता है, कोई भी बुद्धिमान मनुष्य श्रेष्ठ, दुष्ट, विद्वान, मूर्ख, बालक-वृद्ध, पिता-पुत्र, माता, पत्नी आदि के साथ एक समान बर्ताव करने की कल्पना भी नही कर सकता, जैसा कि अनेक बेसमझ लोग समता का अर्थ लगाते हैं। क्या गाय और कुत्ते तथा हाथी और चीटी मे समानता हो सकती है ? यह तो समता नही, किन्तु उल्टी विषमता है। गीता का साम्यभाव ऐसा अप्राकृतिक नही है कि भेददृष्टि रखते हुए भी सब के साथ समानता का वर्ताव करने का अव्यावहारिक प्रयत्न किया जावे। अनेकता के भेद तो बदलते रहते हैं, इसलिए वे अस्थायी हैं परन्तु एकता का भाव स्थायी है, इसलिए गीता मे सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए यथायोग्य समता का व्यवहार करने का विधान है। गीता मे एकता ही को समता कहा है। जिस तरह एक ही शरीर के अनेक अग होते हैं जिनकी अलग-अलग योग्यता होती है, मस्तक मे सत्वगुण की प्रधानता होने के कारण वह ज्ञान शक्ति और ज्ञानेन्द्रियो का केन्द्र है, अत वह सबसे उत्तम अग माना जाता है। हाथो मे रजोगुण की प्रधानता होने के कारण वे बल और क्रियाशीलता के केन्द्र हैं और पैरो मे तमोगुण की प्रधानता होने के कारण वे सारे शरीर का बोझ अपने ऊपर उठाए रहते हैं। इस तरह अलग-अलग अगो की अलग-अलग योग्यता और उनके अलग-अलग व्यवहार होते हैं और अलग-अलग योग्यता के अनुसार वे उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ अग माने जाते हैं, परन्तु सब एक ही शरीर के अग होते हैं और शरीर निर्वाह के लिए सब के यथायोग्य व्यवहार समान रूप से आवश्यक है, सभी अग समान रूप से प्यारे लगते हैं और सभी अगो के सुख दुख एक दूसरे को समान रूप से ही अनुभव होते हैं। इसी तरह शरीर के आदर्श पर गीता का साम्यभाव समझना चाहिए। यही "आत्मौपम्य" बुद्धि गीता के साम्य भाव का आधार है। भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह यथाधिकार समता के बर्ताव का सिद्धान्त स्वीकार किया है। उनके बताये हुए **अष्टाग** मार्ग मे "ठीक विश्वास, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक आचार, ठीक प्रयत्न आदि के साथ जो "ठीक" विशेषण लगाया गया है, उसका यही यथायोग्य भाव है।

प्रोफेसर : आपकी इस व्याख्या के अनुसार स्त्रियो की योग्यता और अधिकार की क्या स्थिति समझी जाए ?

गीतावादी साधारणतया स्त्रियो के शरीर मे अपने जोडे के पुरुष की अपेक्षा स्वभाव से ही रजोगुण की मात्रा कुछ विशेष होती है, जिसके कारण वे पुरुषो की अपेक्षा विशेष सुकुमार, कोमल हृदय, भावुक, आकर्षक और चपल होती है। उनमे प्रीति और राग की मात्रा अधिक होती है तथा वे लोगो का प्रसव करती हैं। इस प्राकृतिक अतर के कारण पुरुष ज्येष्ठ अग माना गया है तथा स्त्री कनिष्ठ अग मानी गई है और स्वाभाविक गुणो के अनुसार ही उनके लिए यथायोग्य कार्य विभाग किया गया है। परन्तु यह आवश्यक नही है कि स्त्री अपने स्वाभाविक गुणो मे उन्नति नही कर सकती। बहुत सी स्त्रियाँ अपने गुणो मे उन्नति करके पुरुषो से उच्च-स्थिति पर पहुँच जाती हैं और बहुत से पुरुष गिरकर हीन स्थिति मे चले जाते हैं। गीता मे तो १०वें अध्याय के ३४वें श्लोक मे श्रेष्ठ गुण सम्पन्न स्त्रियो को भगवान् ने अपनी विशेष विभूतियो मे गिनाया है।

प्रोफेसर जब गुणो के अनुसार यथायोग्य समता का व्यवहार करने का सिद्धान्त आप गीता मे बताते हैं तो ६वें अध्याय के ३१वें श्लोक मे अपनी भक्ति करने से बहुत दुराचारी मनुष्यो को भी साधु और धर्मात्मा मानने और उनकी श्रेष्ठ गति होने को कैसे कहा ? इसी तरह चौथे अध्याय के ३६वें श्लोक मे कहा है कि "यदि तू सब पापियो से अधिक पापी है तो भी ज्ञान रूपी नौका से तर जायगा।" जब दुराचारी पापी लोग भी धर्मात्मा माने जावें तो गुणो की योग्यता के अनुसार समता के व्यवहार करने का सिद्धान्त कहाँ रहा ?

गीतावादी अनन्य भाव की भक्ति और आत्मज्ञान वस्तुत एक ही स्थिति के दो नाम हैं। परमात्मा मे सब की एकता का अनुभव करना और अपने मे सब की एकता का अनुभव करना रूपान्तर से एक ही बात है।

सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करने वाला मनुष्य वास्तव मे कभी दुराचारी या पापी हो ही नही सकता। यदि पहले उसने दुराचार या पाप किये भी हो तो भी जब सब की एकता का दृढ ज्ञान हो जाता है, फिर उससे कोई दुराचार या पाप बन ही नही सकता, क्योकि अपने आप के साथ या परमात्मा के साथ कोई भी दुराचार नही कर सकता। इसके अतिरिक्त एक तथ्य अत्यन्त महत्व का विशेष ध्यान देने योग्य है, कि अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब कि आत्मज्ञानी महापुरुष लोक-सग्रह अथवा समाज की सुव्यवस्था के लिए इस तरह के आचरण करते हैं जिनको अज्ञानी जनता बहुत बुरा समझती है, क्योकि साधारण लोगो की दृष्टि बहुत सकुचित व्यक्तित्व के भावो तक ही परिमित होती है। उनकी बुद्धि आत्मज्ञानी महापुरुषो के "सर्व भूत हितेरता" के अत्यन्त व्यापक सिद्धान्त को ग्रहण नही कर सकती। इसलिए वे अपनी विपरीत समझ से उनको दुराचारी और पापी समझते हैं। इन श्लोको का यही मर्म है कि ज्ञानी पुरुष वास्तव मे दुराचारी और पापी नही होते, चाहे अज्ञानी जनता उनको ऐसा मानती रहे। दूसरे अध्याय के ६९वें श्लोक मे इसी रहस्य का खुलासा व्यजनात्मक शैली से किया गया है कि "जो सब भूतो की रात होती है उसमे आत्मज्ञानी पुरुष जागता है और जिसमे सब भूत जागते है उसको आत्मज्ञानी रात देखता है।" वर्तमान समय मे भी हमारे प्रधानमत्री नेहरूजी की सरकार लोकहित के लिए बहुत से ऐसे काम करती है, जिनको बेसमझ जनता और विशेषकर स्वार्थी और भावुक लोग बहुत अन्याय और पाप समझते हैं। उदाहरण के लिए, देश मे समता-स्थापना के लिए नेहरू सरकार ने अस्पृश्यता निवारण तथा स्त्रियो के लिए तलाक और पिता की सम्पत्ति मे समान उत्तराधिकार के कानून बनाए तथा जागीरदारो की जागीरें छीनी और धनवानो पर बहुत अधिक कर लगाए, तब रूढिवादी स्वार्थी लोगो ने स्वतत्रता और धर्म पर कुठाराघात होने आदि का हुल्लड मचाया तथा जब देश की एकता पर आघात पहुँचाने वाले लोगो तथा कानून भंग करने वाले उपद्रवियो का दमन किया गया और उनको जेलो मे डाला गया तब भी लोगो ने उसका विरोध किया और बडे अत्याचार होने के नारे लगाए। इसी तरह खेती की रक्षा के लिए टिड्डियो के दलो का नाश किया गया तथा प्रजा की हानि करने एव रोगादि उत्पन्न करने वाले अन्य जन्तुओ को मारा गया तब भावुक लोगो ने उसको घोर पाप समझा। तात्पर्य यह कि साधारण लोगो की ओछी बुद्धि अच्छे-बुरे का यथार्थ निर्णय नही कर सकती, क्योकि उनकी दृष्टि व्यक्तित्व के भावो और प्रत्यक्ष के स्वार्थो तक ही सकुचित रहती है। सब लोगो के हित की दृष्टि को वे लोग समुचित महत्व नही देते, परन्तु जिन महापुरुषो पर सारे समाज का दायित्व रहता है, वे इन सकुचित विचारो के लोगो के आक्षेपो से प्रभावित नही होते। वास्तव मे वे पापी या दुराचारी नही होते लेकिन उनकी स्थिति इन बातो से बहुत ऊँची होती है। इसलिए वे समष्टि लोक हित करने मे किसी सकुचित विधि-निषेध की मर्यादाओ मे बधे हुए नही रहते, किन्तु जिस समय जो व्यवहार समाज के लिए हितकर होता है, उस समय वही करते हैं।

परन्तु साधारण लोगो के लिए ज्ञानी महापुरुषो के बनाये हुए श्रेष्ठाचार की विधि।निषेध के नियमो अथवा कानूनो का पालन करना ही अत्यावश्यक होता है। यदि वे ऐसा न करें तो समाज मे उच्छृखलता उत्पन्न हो जाय, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के १२वें अध्याय मे जो भक्त के लक्षण कहे हैं, १६वें अध्याय मे दैवी सम्पद् और १७वें अध्याय मे सात्विक तप का जो विधान किया है तथा १७वें और १८वें अध्यायो मे जो सात्विक आचरणो का वर्णन किया है, उन्ही के अनुसार साधारण लोगो को आचरण करना चाहिए। इस तरह श्रेष्ठाचरणो तथा नैतिकता का गीता मे विस्तार से विधान किया गया है। भगवान बुद्ध ने इन्ही मे से ५ नियमो को अपने निवृत्ति-मार्ग के उपयुक्त समझ कर "पचशील" नाम से स्वीकार किया है।

प्रोफेसर : परन्तु बुद्ध तो अपने "पंचशील" के नियमो पर पूरी तरह दृढ रहे और कृष्ण ने इनके विरुद्ध आचरण किया। भक्त के लक्षणो मे तथा दैवी सम्पद् और तप के विधान मे दया और अहिंसा को

श्रेष्ठाचरणो मे गिनाते हुए भी अर्जुन को अपने गुरूजनो और बान्धवो की हत्या करने का जोरदार उपदेश दिया और महाभारत की लडाई मे हजारो-लाखो मनुष्यो को मरवा दिया ?

गीतावादी : जैसा कि मैं पहले कह आया हूँ भगवान् बुद्ध का उद्देश्य सन्यास मार्ग द्वारा व्यक्तिगत निर्वाण प्राप्त करने का था और उस समय यज्ञ आदि कर्मकाडो मे अत्यन्त उग्र रूप धारण की हुई जीव हिंमा को रोकने का उनका मुख्य उद्देश्य था। ऐसी परिस्थिति मे एकागी अहिंसा आदि व्रतो का उपदेश बिल्कुल उपयुक्त था और व्यक्तिगत रूप से प्रयत्नशील मनुष्य उनका यत्किंचित् पालन भी कर सकता था, परन्तु जव सारे समाज की सुव्यवस्था का प्रश्न उपस्थित होता है तव किसी भी नियम का सदा सर्वदा एकागी रूप से पालन करना विल्कुल ही अप्राकृतिक और अव्यावहारिक होता है। यह ससार त्रिगुणात्मक प्रकृति का बनाव है। इसमे सात्विक प्रकृति के लोगो की अपेक्षा राजस-तामस प्रकृति के लोगो की अधिकता होती है, जो वडे स्वार्थी, दुष्ट और क्रूर स्वभाव के होते हैं। उनको यदि न दबाया जाय और उनकी निरकुशता वढने दी जाय तो भले आदमियो का जीवित रहना ही असम्भव हो जाय। भगवान् कृष्ण के सामने यही समस्या थी। दुष्ट आततायी लोगो के अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच गये थे और गीता के चौथे अध्याय मे उन्होंने अपने शरीर धारण करने का उद्देश्य ही भले आदमियो की रक्षा और दुष्टो का नाश करना बताया है। अगर वे ऐसा नही करते तो दुष्ट लोग भले आदमियो को रहने ही नही देते और फिर न तो कोई अपना व्यक्तिगत कल्याण कर सकता और न समाज ही सुव्यवस्थित रहता।

प्रोफेसर : बुद्ध ने घृणा को प्रेम से, क्रोध को दया से, बुराई को भलाई से जीतने आदि के उपदेश दिये हैं। कृष्ण ने ऐसा न करके हिंसा का मार्ग स्वीकार किया। इससे मालूम होता है कि कृष्ण के और बुद्ध के सिद्धान्तो मे ज़मीन आसमान का अन्तर है।

गीतावादी : भगवान बुद्ध ने जो घृणा को प्रेम से, क्रोध को दया से, बुराई को भलाई से जीतने का उपदेश दिया है, वह विशेष करके व्यक्तिगत है। मनुष्य को अपने अन्त करण को घृणा, क्रोध, बुराई आदि के भावो को प्रेम, दया, भलाई आदि के भावो का अभ्यास करके जीतना चाहिए। इस तरह के अभ्यास से कुछ हद तक व्यक्तिगत सफलता प्राप्त हो सकती है, परन्तु दूसरे लोगो को इन उपायो से जीतने मे सफलता बहुत ही कम मिलती है अथवा यो कहें कि सफलता मिलने में सदेह ही रहता है। यदि सामने सात्विकी प्रकृति का मनुष्य हो तो उस पर प्रभाव पड सकता है, परन्तु रजोगुणी, तमोगुणी मनुष्यो पर प्रभाव पडना असम्भव ही होता है। भगवान बुद्ध के समय मे उनके अनुयायी पूर्णतया प्रेम, दया आदि गुणो के पालन करने वाले नही हो सके थे और वौद्ध राजा लोग एक दूसरे से लडाइया करते रहते थे। समाज पूर्णतया अहिंसक नही हो गया था। वौद्ध धर्म के अनुयायियो मे हिंसा-वृत्ति दूसरो से कम नही थी। वर्तमान समय मे हमारे देश मे महात्मा गान्धी अहिंसा और प्रेम के सवसे वडे उपासक थे, परन्तु देशवासियो को वे अहिंसक नही वना सके, न देश मे आपस की फूट ही मिटा सके। मुसलमानो के साथ यद्यपि वे वहुत प्रेम करते थे, परन्तु वे जिन्ना और दूसरे मुसलमान नेताओ का जरा भी हृदय परिवर्तन नही कर सके। अन्त मे भारतमाता का शरीर कट कर टुकडे-टुकडे हो गये। और देश के विभाजन के समय मुसलमानो ने इतने नर नारियो की हत्या की कि जितनी महाभारत के युद्ध मे नही हुई होगी और उन्होने स्त्रियो पर इतने अमानुपी व क्रूरतापूर्ण अत्याचार किये कि जिनको सुनकर लोगो का खून उवल उठा और उसकी प्रतिक्रिया इस देश मे भी हुई। महात्माजी ने उपवास करके भारत से पाकिस्तान को ५५ करोड रुपये दिला दिये और हमारे प्रधान मन्त्री नेहरूजी पाकिस्तान के साथ प्रेम और शान्ति से मैत्री रखना चाहते हैं और इसके लिए अनेक उपाय करते हैं, परन्तु पाकिस्तान वालो पर तो उसका जरा भी असर नही पडता और वहा सदा जग और जहाद के नारे लगते रहते हैं। इनके कोप मे अहिंसा शब्द शायद ही मिले।

प्रोफेसर : सन्त विनोवा भावे और कई अन्य उच्चकोटि के विचारक और गाधीजी के मुख्य शिष्य नेहरू सरकार को देश का सैनिक बल घटाने और पाकिस्तान को शान्तिमय उपायो से मित्र बनाने का आन्दोलन करते हैं। क्या उन महानुभावो का मत ठीक नही है ?

गीतावादी : प्रोफेसर साहव ! यह सन्तपने के भावुकतापूर्ण अव्यावहारिक चुटकले है। इसी सन्तपने की भावुकता ने एक हजार वर्ष पहले देश को इतना निर्बल बना दिया था कि वह विदेशी आक्रमणकारियो का गुलाम बन गया था और अपना सर्वस्व खो बैठा। ससार मे बलवान लोग ही जीवित रह सकते हैं, यह प्रकृति का अटल नियम है। यदि नेहरू सरकार इन लोगो की सलाह मानने की भूल करके देश का सैनिक बल घटा दे तो पाकिस्तान वाले तुरन्त ही देश पर आक्रमण करके अपने आधीन कर लें। वे तो यह चाहते ही हैं कि किसी तरह भारत अपनी सन्ताई भावुकता से प्रभावित होकर निर्बल हो जाय और हमारा सामना करने के योग्य न रहे ताकि हम फिर से भारत के मालिक बन कर पहले की तरह इन लोगो पर अपने मनमाने अत्याचार करें। ये शान्तिदूत होने का दावा करने वाले सन्त लोग तो अपनी सन्ताई की झक मे शायद भारत पर पाकिस्तान का आधिपत्य होना भी सहन कर लेंगे और महात्मा गान्धी की तरह मुसलमानो को अपना भाई मान कर उनके शासन मे रहने मे भी कोई आपत्ति नही समझेंगे ; परन्तु क्या भारत की ३५ करोड हिन्दू जनता अपने पुराने कटु अनुभवो को भूल कर पाकिस्तान का गुलाम बनना स्वीकार कर लेगी और क्या यह देश के लिए कल्याणकर होगा ? महात्मा गान्धी ने दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान मे अग्रेजो को हिटलर के सामने आत्म-समर्पण करने की सम्मति दी थी। अगर अग्रेज उनकी सम्मति मान कर आत्म-समर्पण कर देते तो, क्या वे स्वतन्त्र रह सकते थे ? और आज उनकी कैसी दुर्गति हो गई होती ? कबूतर के आँखें मूंद लेने से बिल्ली उसको जीवित नही छोड देती। हा, किसी देश पर आक्रमण करने के लिए सैनिक बल बढाना और आक्रमण की तैयारी करना बहुत ही बुरा है ; परन्तु अपनी आत्म-रक्षा के लिए पूरी तरह से तैयार रहना प्रत्येक सरकार का परम पवित्र कर्तव्य है और मुझे विश्वास है कि नेहरू सरकार अपने इस परम पवित्र दायित्व से कदापि विमुख नही होगी। यदि हमारे पास सैनिक बल पर्याप्त नही होता तो काश्मीर को खूंखार आक्रमणकारियों से कभी नही बचा सकते और हैदराबाद के रजाकारो के अमानुषी अत्याचारो को कदापि समाप्त नही कर सकते थे। वर्तमान मे पूर्वोत्तर सीमा के नागा लोगो के उपद्रव सैनिक शक्ति से ही तो दबाये जाते है।

प्रोफेसर : महात्मा गाँधी के पास कौनसी सैनिक शक्ति थी ? उन्होने अहिंसात्मक सत्याग्रह ही से तो अंग्रेजो जैसी महान शक्ति को देश से निकाल कर स्वतन्त्रता प्राप्त की।

गीतावादी : क्षमा करना साहव। अग्रेज लोग अहिंसात्मक सत्याग्रह से डर कर नही चले गये। उनके भारत छोडने का यह कारण था कि दूसरे विश्व-युद्ध मे उनकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी और वे इतना वडा साम्राज्य अपने आधीन रखने मे असमर्थ हो गये थे। दूसरी तरफ जब सुभाष बाबू की सगठित की हुई आजाद हिन्द फौज के सिपाई यहाँ पीछे आये तब उन्होने यहाँ की फौज को भी अग्रेजो के विरुद्ध उभाड दिया। इस कारण उनका यहाँ टिक सकना असम्भव हो गया। वे बहुत बुद्धिमान और दूरदर्शी लोग हैं, अत भारत के साथ-साथ बर्मा और सीलोन को भी उसी समय छोड दिया।

गीता के प्रथम अध्याय के ४६वें श्लोक मे अर्जुन ने भी अहिंसात्मक सत्याग्रह करके कौरवो के हाथ से मारा जाना श्रेष्ठ बताया था ; परन्तु भगवान् कृष्ण ने उसके इस प्रस्ताव को मूर्खता, नपुंसकता और हीन पुरुषो के हृदय की दुर्बलता कह कर ठुकरा दिया। भगवान कृष्ण के मतानुसार अपने शरीर को पीड़ा देना और आत्म-हत्या करना सब से बडी हिंसा है। गीता के १७वें अध्याय के ५, ६ और आगे १९वें श्लोको मे शरीर को और अपनी आत्मा को कृश करने और पीड़ा देने वाले आसुरी और तामसी तपो की बहुत कड़े शब्दो मे

निन्दा की है और इसी तरह भगवान् बुद्ध ने भी शरीर को कष्ट देने वाले तपो का पूरी तरह निषेध किया है।

प्रोफेसर . आपस के झगडे या मतभेद निपटाने के लिए लडाई करके हत्या कांड करने की अपेक्षा शान्तिपूर्वक वार्तालाप करके समझौते से मिटाना कितना अच्छा है। नेहरू जी तो इसी रास्ते पर चलते हैं और इसी दिशा मे उनके निर्माण किये हुए "पचशील" के सिद्धान्त ससार के बहुत से राष्ट्र स्वीकार करते हैं।

गीतावादी : भगवान् कृष्ण भी पहले शान्तिमय उपायो से झगडे निपटाना उचित समझते थे, इसलिए उन्होने कौरवो पांडवो मे समझौता कराने का बहुत प्रयत्न किया था और शान्तिदूत होकर कौरवो के पास गये भी थे। यद्यपि पाडव सारे राज्य के पूर्ण अधिकारी थे, परन्तु उनको केवल पांच गांव देकर बाकी सारा राज्य कौरवो को रखने को कह दिया। पाडवो की तरफ से जब इतना भारी त्याग करना स्वीकार कर लिया गया, फिर भी कौरव लोग अपनी दुष्टता पर डटे रहे, समझौता करना स्वीकार नही किया, तब लडाई करने का निर्णय किया गया। जब दुष्टो की दुष्टता शान्तिमय उपायो से छूट ही न सके, तब लोक कल्याण के लिए उनको मार देना हिंसा नही होती। ऐसा करने का कारण द्वेष या वैर नही होता किन्तु समाज के प्रति अपना कर्तव्य पालन करना होता है। अर्जुन जब अपने सम्बन्धियो के मोह के कारण तथा हिंसा के भय से अपने उस कर्तव्य से विमुख होने लगा तब कृष्ण ने उसको समझाया कि बिना कारण किसी निर्दोष प्राणी को कष्ट देना या मारना अवश्य ही हिंसा होती है, परन्तु निर्दोष लोगो की अत्याचारियो से रक्षा करने के लिए, उन अत्याचारियो को मार देना हिंसा नहीं होती किन्तु वास्तव मे अहिंसा होती है, क्योकि अगर अत्याचारी लोगो को दड नही दिया जाय तो वे निरकुश होकर निर्दोष लोगो की बहुत बडी हिंसा करें। बडी हिंसा को रोकने के लिए थोडी हिंसा की जाय तो वह वास्तव मे अहिंसा ही होती है, परन्तु "आत्मौपम्य" साम्यबुद्धि से ही ऐसा करना चाहिए अर्थात् सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करते हुए, सब के दुख-सुख को अपने समान समझना चाहिए। जिस तरह अपने शरीर का कोई अग रोगी होजाय अथवा सड गल जाय तो उसका यथायोग्य उपचार किया जाता है अथवा आवश्यकता होने पर काट भी दिया जाता है, ताकि शरीर के दूसरे अगो अथवा सारे शरीर का बचाव हो जाय। यद्यपि वह दूषित अग अपने ही शरीर का भाग होता है और वह उतना ही प्यारा होता है जितने कि दूसरे अग प्यारे होते हैं, परन्तु सारे शरीर की स्वस्थता के लिए उसको काट देना ही हितकर होता है। उसी तरह सारे समाज के हित के लिए, किसी प्रकार के द्वेष बिना दुष्टो को दड दिया ही जाना चाहिए। इसलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के उपदेश के आरम्भ मे पहले अर्जुन को आत्मज्ञान दिया और बताया कि एक ही अविनाशी और समआत्मा सब प्राणियो मे एक समान व्यापक है। इस एकता के ज्ञान को स्मरण रखता हुआ किसी प्रकार के राग द्वेष बिना, अपना कर्तव्य कर्म कर। शरीर सब के नाशवान हैं, इसलिए शरीरोके मरने के मोह मे अपने कर्तव्य करने नही छोडने चाहिए और ऐसा करने मे भी दूसरो से पृथक् अपने व्यक्तित्व का अहकार नही करना चाहिए कि अकेले मेरे करने से ही कोई काम होता है और न दूसरो से पृथक् अपने व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि का लक्ष्य ही रखना चाहिए यानी यह भाव नही रखना चाहिए कि इस काम से मेरी किसी प्रकार की व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि होगी, किन्तु अपने व्यक्तित्व के अहकार को समष्टि अहकार के अन्तर्गत समझना चाहिए और व्यक्तिगत स्वार्थो को समष्टि स्वार्थों के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह निष्काम कर्म करने का गीता मे विधान किया गया है। भगवान कृष्ण ने व्यक्तिगत कामनाओ अथवा वासनाओ को त्यागने पर बहुत जोर दिया है और भगवान् बुद्ध ने भी कामनाओ और वासनाओ के त्यागने का यही सिद्धान्त स्वीकार किया है।

प्रोफेसर परन्तु इस तरह व्यक्तित्व को मिटा देने और व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग देने से मनुष्य का जीवन निर्वाह कैसे हो सकेगा ?

गीतावादी . छोटे से पृथक् व्यक्तित्व को सब के साथ जोड देने से किसी का व्यक्तित्व मिट नही जाता

किन्तु वह महान् हो जाता है और थोडे से व्यक्तिगत स्वार्थों को सब के स्वार्थो मे मिला देने से मनुष्य के जीवन की आवश्यकताएँ सब के सहयोग से बहुत अच्छी तरह पूरी होती है। गीता के ९वें अध्याय के २२वे श्लोक मे भगवान् ने कहा है कि "जो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करके अच्छी तरह उपासना करता है, उस सदा एकता के भाव मे जुडे हुए व्यक्ति के अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा मैं किया करता हूँ।" इसका तात्पर्य यह है कि जो सब के साथ अपनी पूर्ण एकता का अनुभव रखता हुआ अपने कर्तव्य कर्म, लोक सग्रह के लिए यथावत करता है, उसकी आवश्यकताएँ सब के सहयोग से स्वत ही पूरी होती रहती है, और चौथे अध्याय के ३१वें श्लोक मे कहा है कि "यज्ञ से बचा हुआ अमृत भोगने वाला मनुष्य सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है, यज्ञहीन का न तो यह लोक और न परलोक ही सुधरता है।" इसका तात्पर्य भी यही है कि सब की एकता के साम्यभाव से जो अपने कर्तव्य कर्म, लोक संग्रह के लिए करता है, उसका यह जीवन और आगे का जीवन अत्यन्त उच्च-कोटि का हो जाता है। इस सिद्धान्त से न तो किसी का व्यक्तित्व मिटता है और न किसी के व्यक्तिगत स्वार्थो की हानि ही होती है, किन्तु छोटे से व्यक्तित्व और छोटे से व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग, सब की एकता मे होता है यानी वे सब के साथ जुड जाते हैं, जिससे सब के साथ साझा हो जाता है। यह निष्काम कर्मयोग भगवान् कृष्ण का बताया हुआ मध्य मार्ग है और भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह "न तो व्यक्तिगत विषय भोगो में आसक्ति रखना और न शरीर को कष्ट देना" का यही मध्यम मार्ग रूपान्तर से स्वीकार किया है।

प्रोफेसर · अच्छे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसके साधन भी अच्छे ही होने चाहिए। बुरे साधनो से अच्छे उद्देश्य की सिद्धि नही हो सकती, क्योकि कारण के गुण कार्य मे आये बिना नही रह सकते।

गीतावादी : यह बात बिल्कुल ठीक है, पर जिसका परिणाम अच्छा हो, वह साधन कभी बुरा हो ही नही सकता, चाहे ऊपरी स्थूल दृष्टि से वह कितना ही बुरा क्यो न प्रतीत होता हो। आम आदि मधुर फलो के बीज यद्यपि मधुर और सुन्दर नही दीखते, पर उसके बड़े मधुर और सुन्दर फल उत्पन्न होते हैं। अच्छे अन्न उत्पन्न करने के लिए खेतो मे गन्दगी, कचरे और गोबर की खाद दी जाती है, यद्यपि वह बहुत खराब और दुर्गन्ध युक्त होती है पर उसका परिणाम बहुत ही लाभदायक होता है। मलेरिया की बीमारी मिटाने के लिए कुनेन खिलाया जाता है, जो अत्यन्त कडवा होता है। इसी तरह दूसरे भयकर रोगो मे अफीम, संखिया, कुचीला आदि जहरो का प्रयोग किया जाता है और शरीर के रोगी अगो को काट भी दिया जाता है। खेतो मे अन्न आदि के पेडो पौधो के पनपने के लिए उनके पास के घास पात काटे जाते है और वृक्षो तथा पेडो के बढने के लिए उनकी कलम की जाती है। यद्यपि ऊपरी दृष्टि से ये सब बुरे मालूम पडते हैं, पर इनका परिणाम अच्छा होता है। तात्पर्य यह है कि जिन साधनो का परिणाम अच्छा होता है, वे साधन बुरे प्रतीत होने पर भी अच्छे ही होते हैं; परन्तु अच्छे बुरे परिणाम का पहले निर्णय करने के लिए उपयुक्त योग्यता होनी चाहिए। बीज बोने, खाद देने, घास पात उखाडने या कलम करने के लिए बनस्पति विज्ञान के जानकार लोग ही योग्य होते है। शरीरो की चिकित्सा करने के लिए शरीर-विज्ञान के जानकार वैद्य या डाक्टर लोग ही योग्य होते हैं। यदि अयोग्य व्यक्ति इन कामो को करने लगे तो उनका दुरुपयोग कर देंगे जिसका भयकर परिणाम हो जायेगा। इसी तरह संसार के व्यवहार मे साधन और साध्य की अच्छाई या बुराई का यथार्थ निर्णय वे ही सज्जन कर सकते है, जो सब की एकता के ज्ञान से युक्त "आत्मौपम्य" समत्व बुद्धि से व्यवहार करते है। स्थूल बुद्धि की साधारण जनता ही नही, किन्तु भेद बुद्धि से व्यक्तित्व के भाव मे और व्यक्तिगत स्वार्थो मे आसक्ति रखने वाले बडे-बडे विद्वान लोग भी इन बातो का यथार्थ निर्णय नही कर सकते। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय के १६वें श्लोक मे कहा है कि "कर्म अकर्म के विषय मे बडे-बडे विद्वान भी मोहित हो जाते हैं" और १८वें और १९वें श्लोको मे कहा है कि "इस विषय का यथार्थ निर्णय वे ही आत्मज्ञानी बुद्धिमान पुरुष कर सकते है जो

कर्म मे अकर्म और अकर्म मे कर्म देखते हैं" अर्थात् जो कर्म रूप अनेकता मे अकर्मरूप एकता और अकर्मरूप एकता मे कर्म रूप अनेकता का अभेद ज्ञान रखते हैं और जिनके सब व्यवहार अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की कामनाओ से रहित, सब की एकता के सात्विक ज्ञान युक्त होते है और फिर १८वें अध्याय के २०वें श्लोक मे सात्विक ज्ञान का खुलासा इस प्रकार किया है कि "जिस ज्ञान से सब अलग-अलग भूत प्राणियो मे एक, अखड एव अविनाशी भाव का अनुभव होता है, वह सात्विक ज्ञान है।" इस प्रकार सब के साथ अपनी एकता का अनुभव करने वाले महा-पुरुप के व्यवहार अथवा किसी उद्देश्य की सिद्धि के साधन, भौतिक स्थूल दृष्टि से चाहे कितने ही बुरे प्रतीत क्यो न हो, परन्तु वास्तव मे वे बुरे नही होते, किन्तु अच्छे ही होते हैं, क्योकि उनका परिणाम लोकहितकर होता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिये गीता के १८वें अध्याय के १७वें श्लोक मे कहा है कि "जिसको पृथक् व्यक्तित्व का अहंकार नही होता और जिसकी बुद्धि व्यक्तिगत स्वार्थों मे आसक्त नहो होती, वह इन लोगो को मार डाले तो भी वह न तो हत्यारा होता है, न बधता ही है।"

प्रोफेसर : गान्धीजी ने तो इस श्लोक को अत्युक्ति बताया है।

गीतावादी : साधारण लोगो के लिए तो यह अवश्य ही अत्युक्ति है, परन्तु जो महापुरुष उपरोक्त निस्वार्थभाव की उच्चकोटि को पहुँच जाते हैं, उनके लिए यह बिल्कुल ही अत्युक्ति नही है। वर्तमान मे प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हमारे न्यायालयो मे न्यायाधीश लोग हजारो मनुष्यो को जेलो का कठिन दण्ड देते हैं और हजारो को फासी पर लटकाने का हुक्म दे देते हैं, परन्तु न वे हत्यारे होते हैं और न उनको ऐसा करने के लिए दड ही मिलता है। हजारो उपद्रवियो और डाकुओ को हमारी पुलिस लाठियो से पीटती है और गोलियो से मार देती है, परन्तु पुलिस के अफसर हत्यारे नहीं होते, न उनको कोई दड ही मिलता है किन्तु वे लोग बडे वीर माने जाते है और वडे-वडे इनाम पाते हैं। महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी तथा लक्ष्मीबाई जैसे वीर शिरोमणियो ने अगणित शत्रुओ को मारा। आज उनकी वडे गौरव के साथ पूजा होती है और उनकी स्मृतियाँ मनाई जाती हैं। काश्मीर और हैदराबाद मे विजय पाने वाले हमारे सेनापतियो का बहुत ही सम्मान किया गया था।

प्रोफेसर : यह तो आपका कहना ठीक है। फिर साधनो की अच्छाई पर इतना जोर क्यो दिया जाता है ?

गीतावादी · यह सब साधारण जनता के लिए है। मैंने आपको अभी कहा है कि परिणाम की अच्छाई बुराई का पहले से ही निर्णय करने की योग्यता विशेष व्यक्तियो मे ही होती है। साधारण जनता इसका यथार्थ निर्णय नही कर सकती। यदि उसको साधनो के चुनने मे स्वतन्त्रता दे दी जाय तो वह उनका दुरुपयोग या विपर्यास करके वडे अनर्थ कर दे, जिससे देश की अपार हानि हो जाय। इसीलिए उन लोगो के लिए साधनो की अच्छाई पर विशेष जोर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इस समय जो पश्चिमी राष्ट्र आपस मे स्पर्धा करके लडाई की तैयारी करने के लिए, उससे होने वाले अत्यन्त भयकर परिणामो की तरफ ध्यान न देकर, प्रलयकारी एटम और हाईड्रोजन वमो जैसे सर्व विध्वसक शस्त्रास्त्रो की बढा-चढ़ी करने मे लगे हुए हैं, उन लोगो पर साधनो की अच्छाई के सिद्धान्त के महत्त्व का प्रभाव डालना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रोफेसर : आमतोर से सव की यह धारणा है कि अहिंसा के विषय मे बुद्ध और कृष्ण के सिद्धान्तो मे विरोध है, परन्तु आपने तो हिंसा अहिंसा का रूप ही वदल दिया। इसी तरह साधन साध्य की व्याख्या भी वदल दी। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर वह विरोध मिट जाता है।

गीतावादी : हिंसा अहिंसा और साधन साध्य के विषय मे मैंने कोई नई वात नही कही है, किन्तु गीता मे जो प्रतिपादन किया गया है, उसीको स्पष्ट किया है। जैसा कि मैं अभी कह आया हूँ, कि साधारण लोग हिंसा अहिंसा और साधन साध्य का विचार केवल व्यक्तित्व के भाव, व्यक्तिगत स्वार्थो और व्यक्तिगत पुण्य-पाप आदि

के अत्यन्त संकुचित दृष्टिकोण से करते हैं; परन्तु इस दृष्टिकोण से यथार्थ निर्णय नही होता, क्योंकि संसार के मूल मे एकता होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का सम्बन्ध दूसरो के साथ अटूट बना रहता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव वहुत व्यापक होता है और स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से दूसरो पर पड़े बिना नही रहता, चाहे वह प्रत्यक्ष मे दीखे या नही दीखे। भगवान् कृष्ण ने इसी तथ्य के आधार पर गीता मे सब लोगो को यथार्थ व्यवहार का मार्ग दिखाया है, क्योकि गीता एक सार्वजनिक "व्यवहार दर्शन" है और उसका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो व्यक्ति केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए काम करता है और जो सार्वजनिक कार्य करता है, उनके विचारो और व्यवहारो मे बहुत अन्तर होता है। जो केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए ही काम करता है, वह दूसरो की बुराई-भलाई की परवाह नही करता, परन्तु सार्वजनिक कार्यकर्ता सब का हित करना चाहता है। ऐसा करने मे किसी के व्यक्तिगत स्वार्थों को हानि पहुँचे तो उसकी परवाह नही करता, क्योकि वह जानता है कि सबके हित मे प्रत्येक व्यक्ति का हित निहित है और सबके लाभ से प्रत्येक व्यक्ति को भी उसके भाग का स्थायी लाभ पहुँचता है, परन्तु केवल व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत अस्थायी और परिणाम मे बहुत हानिकारक होते हैं। इसलिए सार्वजनिक हित के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्मों से यदि किसी के व्यक्तिगत स्वार्थों मे बाधा लगती है या किसी व्यक्ति को पीडा या हिंसा होती है तो वास्तव मे वह हिंसा नही होती, किन्तु अहिंसा ही होती है।

यही हाल प्रेम का है। आमतौर से लोग विशेष व्यक्तियों के प्रेम को ही प्रेम समझते हैं, पर यह यथार्थ प्रेम नही है। व्यक्तियो मे प्रेम की आसक्ति मोह का रूप धारण कर लेती है। इसीलिये गीता के ११वें अध्याय के अन्तिम श्लोक में "निर्वैर सर्वभूतेषु" अर्थात् "किसी भी प्राणी से वैर नही करना", और १२वें अध्याय के १३वें श्लोक मे "अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्" अर्थात् सब प्राणियो से प्रेम करना, कहकर वास्तविक प्रेम का विधान किया है और साथ ही उस श्लोक मे "निर्ममो निरहंकार." का विशेषण लगा कर व्यक्तिगत प्रेम की आसक्ति का निषेध किया है। गीता मे प्रतिपादित विश्वप्रेम का आधार सबकी एकता का आत्मभाव है जो किसी जाति, वर्ण, वर्ग सम्प्रदाय, सम्बन्ध, लिंग, पद आदि किसी भी प्रकार के भेद विना नि.स्वार्थ और स्वाभाविक होता है; क्योंकि जब सबके साथ अपनी आत्मीयता अथवा एकता का अनुभव किया जाता है, वहाँ भेद के लिए अथवा राग द्वेष और वैर के लिए कोई अवकाश नही रहता। भगवान् बुद्ध ने भी इसी तरह विश्व प्रेम का उपदेश दिया है।

प्रोफेसर : कृष्ण और बुद्ध के सिद्धान्तो की समानता तो आपने अच्छी तरह दिखा दी, परन्तु इनके निर्वाण के सिद्धान्तो मे बहुत अन्तर दीखता है ? कृष्ण के कहे हुए निर्वाण मे तो कर्मशीलता बनी रहती है और बुद्ध के कहे हुए निर्वाण मे दीपक की लौ बुझ जाने की तरह, "कुछ भी न रहना" अर्थात् कर्मशून्यता बताई गई है।

गीतावादी : कृष्ण का सिद्धान्त है कि शरीर को क्रियारहित कर लेने मात्र से कर्मशून्यता नही हो जाती, किन्तु वह मन के सयम से होती है। गीता के तीसरे अध्याय के चौथे से छठे श्लोक तक कहा है कि "कोई शरीरधारी एक क्षण के लिये भी विना कर्म के नही रह सकता। प्रकृति के गुणो के वश हुआ निरन्तर कर्म करता ही रहता है अर्थात् प्रत्येक शरीर प्रकृति के गुणो का बनाव है और प्रकृति के क्रियाशील होने के कारण, शरीर से कोई भी कभी क्रिया रहित नही हो सकता।" "जो मूर्ख कर्मेन्द्रियों को रोककर मन से विषयो का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी यानी पाखडी है। परन्तु जो मन से इद्रियो का संयम करके आसक्ति रहित होकर कर्मेन्द्रियो से कर्म करता रहता है, वही विशेष है" और-निर्वाण पद का वर्णन करते हुए दूसरे अध्याय के ७१वें और ७२वें श्लोकोमे कहा है कि "जो मनुष्य सब कामनाओ को छोडकर निःस्पृह भाव से, ममता और अहंकार से रहित होकर संसार के व्यवहार करता है, वही शान्ति प्राप्त करता है। यही ब्राह्मी स्थिति है। इसको प्राप्त होकर मनुष्य

मोहित नही होता और अन्तकाल तक भी इसमे स्थित रहता हुआ, ब्रह्म निर्वाण पद को प्राप्त होता है।" फिर आगे ५वें अध्याय के २४वें और २५वें श्लोक मे कहा है कि "जो सब के आन्तरिक एकता के भाव मे सुख, आराम और प्रकाश अनुभव करता है वह समत्वयोगी ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ, ब्रह्मनिर्वाण पद मे, स्थित होता है। जिनके अत करण का (पृथक् व्यक्तित्व का भावरूपी) मैल क्षीण हो गया है, द्वैत भाव मिट गया है और जिन्होने मन जीत लिया है, वे सब भूतो के हित मे लगे हुए ऋषि ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त होते हैं।" इस तरह कृष्ण ने "निर्वाण" पद का विस्तार के साथ खुलासा किया है। भगवान बुद्ध ने भी मन की निर्वासना की स्थिति मे ही निर्वाण होना माना है। कामनाओ और वासनाओ का त्याग दोनो मे एक समान है। भगवान बुद्ध ने भी शून्यता को "निर्वाण" नही कहा है, किन्तु 'निर्वाण की स्थिति का कुछ भी वर्णन नही किया है जिससे यह नही समझना चाहिये कि कुछ भी न रहना निर्वाण है। जो दीपक के लौ के बुझ जाने की उपमा "निर्वाण" को दी जाती है, उसका तात्पर्य पृथक् व्यक्तित्व का भाव मिट जाना है। अर्थात् व्यष्टि की समष्टि मे एकता हो जाना है। दीपक की लौ बुझ जाए तो भी समष्टि प्रकाश तो बना ही रहता है। इसी तरह व्यष्टिभाव मिट जाए तो भी समष्टिभाव तो बना ही रहता है। भगवान कृष्ण ने इस बात के पूरी तरह स्पष्ट करने के लिए निर्वाण के साथ समष्टिवाचक "ब्रह्म" शब्द जोडा है, जिससे निर्वाण अवस्था का पूरा बोध हो जाय कि व्यक्तित्व का भाव मिटकर समष्टिभाव मे पूर्णतया स्थित होना ही निर्वाण है। व्यष्टि लहर भाव के बदले, समष्टि समुद्र भाव और व्यष्टि बूंद के बदले, समष्टि जल भाव मे दृढ स्थिति हो जाना ही निर्वाण है। भगवान बुद्ध ब्रह्म अथवा आत्मा के विषय मे बिल्कुल मौन रहे। इसीलिए निर्वाण के साथ ब्रह्म आदि शब्द को न जोडकर "निर्वाण" की स्थिति के विषय मे भी मौन ही रहे। उन्होंने उस समय की परिस्थिति के अनुसार सन्यास मार्ग को प्रधानता दी थी, इसलिए अपने सिद्धान्तो का नकारात्मक शैली का प्रतिपादन किया है, परन्तु भगवान कृष्ण ने "व्यवहार दर्शन" कहा है। इसलिए स्वीकारात्मक रूप से अपने सिद्धान्तो को पूर्णतया स्पष्ट किया है। इतना ही अतर है, परन्तु यह अतर सिद्धान्तो मे नही है, किन्तु उनके प्रतिपादन करने की शैली मे है। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि भगवान बुद्ध निर्वाण की स्थिति प्राप्त करने के बाद भी लोगो को उपदेश देने का कार्य करते ही रहे।

भगवान कृष्ण ने गीता के छठे अध्याय मे मन की स्थिरता के लिए एक साधन रूप से ध्यान योग के अभ्यास का विधान किया है और भगवान बुद्ध ने ध्यानयोग की स्थिति, निर्वाण अवस्था मे भी आवश्यक मानी है। कृष्ण का व्यावहारिक उपदेश था, इसलिए ध्यानयोग को केवल साधना का स्थान दिया है, सदा उसी मे लगे रहने को नही कहा। पर भगवान बुद्ध का निवृत्ति मार्ग का उपदेश था। इसलिये निरन्तर ध्यानयोग मे लगे रहने की व्यवस्था की है।

प्रोफेसर आप ने बुद्ध और कृष्ण के सिद्धान्तो का जो तुलनात्मक विवेचन किया है और गीता के "व्यवहार दर्शन" का जो विस्तृत खुलासा किया, उससे यह तथ्य निश्चित होता है कि वर्तमान मे हमारे देश के लिए गीता मे वर्णित "व्यवहार दर्शन" विशेष उपयुक्त ही नही, किन्तु अत्यन्त आवश्यक है। कृष्ण के बताये हुए मार्ग पर चलने ही से हमारे देश की सर्वांगीण उन्नति और कल्याण हो सकता है और इसी से हमारी सरकार द्वारा बनाई हुई समाजवाद की सब योजनाओ मे पूर्ण सफलता प्राप्त की जा सकती है।

गीतावादी इसमे कोई सदेह नही। यद्यपि वर्तमान मे योरुप और अमेरिका के लोगो के लिए भगवान बुद्ध का निवृत्ति प्रधान "पचशील" का मध्यम मार्ग विशेष उपयुक्त है, क्योकि उन देशो के लोग भौतिक उन्नति और विलासिता मे बहुत बढे चढे हैं, जिसके परिणामस्वरूप परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, सन्देह और भय से अत्यन्त विक्षिप्त और दुखी हो रहे हैं और आपस मे लड झगड कर विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं। उनमे शान्ति उत्पन्न करने के लिए भगवान बुद्ध के शान्तिदायक उपदेश ही अचूक उपाय हो सकते हैं, परन्तु

हमारे देश की दशा उनसे विल्कुल ही भिन्न है। यहां के लोगो मे आध्यात्मिकता का दुरुपयोग एव विपर्यास हो जाने के कारण उनकी अवस्था वहुत ही हीन है। जीवन के लिए अत्यावश्यक पदार्थों की देश मे वडी कमी है। मनुष्य सस्या वे हिसाव वढी हुई है। उनके हिसाव से देश की उपज वहुत कम है। करोडो नर-नारी निवृत्ति और भक्ति मार्ग आदि धार्मिक अधविश्वासो मे पड़े हुए तथा ईश्वर पर झूठा भरोसा करके निरूद्यमी और आलसी जीवन व्यतीत करते हैं अथवा अपने समय और शक्ति का धार्मिक कर्मकांडो मे अपव्यय करते हैं। पुरुपार्थ की अपेक्षा प्रारव्ध को अधिक महत्व देते है। अनन्त प्रकार के देवी देवताओ, भूतो, प्रेतो, गृह नक्षत्रो के वहम, अध-विश्वासो और सामाजिक रूढियो मे जकडे हुए आत्म-गौरव, आत्म-विश्वास और आत्मोत्साह को खोये वैठे हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों से इतने प्रभावित हो रहे हैं कि देश की एकता और सामाजिक नैतिकता की सर्वथा उपेक्षा करते है। ऐसी दशा मे गीता मे वर्णित भगवान कृष्ण का वताया हुआ प्रवृत्ति प्रधान महाक्रांतिकारी "व्यवहार दर्शन" अथवा निष्काम कर्मयोग ही के अवलम्व से हमारे देश का पुनरुत्थान हो सकता है। यदि हमारी सरकार इसी को मान्यता देकर लोगो मे इसका जोरदार प्रचार करे तो अपनी सव समाजवादी योजनाओ और समाज कल्याण के प्रयत्नो मे पूर्णतया सफल हो सकती है। देश के कल्याण का दूसरा कोई अचूक उपाय नही है।

भनवान वुद्ध का निवृत्ति प्रवान उपदेश यद्यपि उस समय हमारे देश के लिए आवश्यक और उपयोगी था, परन्तु इस समय विशेप उपयोगी नही है। गीता मे वर्णित भगवान कृष्ण के प्रवृत्ति प्रधान "व्यवहार दर्शन" की अथवा निष्काम कर्मयोग का मध्यम मार्ग साधारणतया सव लोगो के लिए सदा ही समान रूप मे अत्यन्त उपयोगी है। इसीलिये गीता को इतना महत्व दिया जाता है और इसीलिये यहाँ वे लोग इसकी "जयन्ती" प्रति वर्ष मनाते हैं।

परिशिष्ट

सस्मरण प्रकरण के मुद्रित होने के वाद प्राप्त हुए सस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं ।

१

A Sage Counsellor

It is with great pleasure that I make this contribution to the Souvenir Volume that is being brought out about the life and works of Seth Ram Gopal Mohatta. Being born with the proverbial silver spoon in his mouth and having been brought up in the lap of luxury, he soon displayed those noble traits of character which later blossomed forth and unfolded a fine specimen of manhood As an illustrious son of an illustrious father he followed the noble family traditions of philanthropy, large heartedness and of sharing his worldly goods with his less fortunate brethren It was his munificent donation that made it possible for the Hindus of Karachi to have a magnificent Gymkhana building and in gratitude the Institution was named after him as Ram Gopal Mohatta Hindu Gymkhana The Gymkhana came to be an important landmark in the physical and cultural development of the Hindus of Karachi Here foregathered the young and the old for outdoor sports and indoor games and recreation, and the Gymkhana grounds and the building were the venue of many important tournaments and other civic events.

Seth Goverdhandas Mohatta Eye Hospital at Karachi was yet another instance of the manifold charities of Seth Ram Gopal who believed that the best form of charity was to succour the needy and the afflicted and to promote the cause of education and physical development, for he used to say that a healthy mind can live only in a healthy body and that it was the sacred duty of each one of us to keep this temple of our mind and body pure and vigorous so as to be able to discharge our obligations to the Creator

Seth Ram Gopal Mohatta is of a very retiring disposition and has never craved for any public honours, titles or distinctions, in fact he shuns all sort of publicity and works in a quiet and unostentious manner so that 'the right hand doth not know what the left hahd doeth '

On the few occasions that I have met Seth Ram Gopal Mohatta I have been impressed by his personality and charm and his deeply religious attitude to life Behind his rugged mein is a man of sterling worth and sagacity—a soul that is easily moved to

tears at the sight of human suffering Looking at him I have always said to myself "well here is a man who can be a sage counsellor to Kings and Crown Princes"

We pray that God Almighty may spare him for many years, in health and vigour, to continue his philanthropic activities in which he has always been ably seconded by his younger brother R B Shiv Ratan Mohatta.

T J BHOJWANI
Ex-Chief Officer, Karachi Municipal Corporation.
Ex-Regional Food Commissioner of India.

●

२

A Dedicated Life to Public Service

I join in the many high tributes that are being paid on this occasion to Seth Ram Gopal Mohatta His has been a life dedicated to public service and endowed with scholarliness There are numerous reminders of his munificence for the common weal The books he has written also carry an inspiring message. By example and precept, therefore, he has helped to uplift society It is proper and fitting that his great services should evoke our admiration and acknowledgement May he live long to continue his benevolent activities

P. R NAYAK I C.S.
Commissioner,
Delhi Municipal Corporation,
Delhi.

tears at the sight of human suffering Looking at him I have always said to myself "well here is a man who can be a sage counsellor to Kings and Crown Princes"

We pray that God Almighty may spare him for many years, in health and vigour, to continue his philanthropic activities in which he has always been ably seconded by his younger brother R B. Shiv Ratan Mohatta.

T. J BHOJWANI
Ex-Chief Officer, Karachi Municipal Corporation.
Ex-Regional Food Commissioner of India.

•

२

A Dedicated Life to Public Service

I join in the many high tributes that are being paid on this occasion to Seth Ram Gopal Mohatta His has been a life dedicated to public service and endowed with scholarliness There are numerous reminders of his munificence for the common weal The books he has written also carry an inspiring message. By example and precept, therefore, he has helped to uplift society It is proper and fitting that his great services should evoke our admiration and acknowledgement May he live long to continue his benevolent activities

P. R. NAYAK I.C.S.
Commissioner,
Delhi Municipal Corporation,
Delhi.